स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY/BY-06
पारिस्थितिकी

प्रथम खण्ड
पर्यावरण और उसके घटक

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY/BY-06
पारिस्थितिकी

खंड
1
पर्यावरण और उसके घटक

इकाई 1
पारिस्थितिकी और पारितंत्र 7

इकाई 2
पर्यावरण के घटक : 1 — प्रकाश, तापमान और वायुमंडल 28

इकाई 3
पर्यावरण के घटक : 2 — जल 55

इकाई 4
पर्यावरण के घटक : 3 — मृदा 75

स्व. प्रो. एस. सी. गोयल
को
समर्पित

पारिस्थितिकी

विज्ञान और विज्ञानेतर छात्रों के पूर्व स्नातक अध्ययन के लिए पारिस्थितिकी एक ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। पारिस्थितिकी के अध्ययन से जीवों और उनके भौतिक पर्यावरण के बीच पारस्परिक संबंधों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है चूंकि इस विषय का संबंध मानव कल्याण और जीवन के स्तर को सुधारने के लिए महत्वपूर्ण है। बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित संसाधनों को ध्यान में रखते हुए पारिस्थितिकीय विचार विमर्श मानव और प्रकृति के संबंधों को समझने में मदद करता है। इसके अलावा हम इस ज्ञान का उपयोग उन पर्यावरणीय समस्याओं को समझने के लिए भी कर सकते हैं जिनका मानव जाति को सामना करना पड़ता है। इसलिए अखबारों में, सामाजिक-आर्थिक लेखों और पर्यावरण की योजनाओं से संबंधित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय बैठकों में आजकल पारिस्थितिकी की चर्चा करना आम बात हो गई है।

पारिस्थितिकी, विज्ञान के विभिन्न विषयों, मानविकी तथा मनुष्य के प्रयास के सभी पहलूओं के साथ घनिष्ठ रूप से संबंधित है। पारिस्थितिकी मुख्य रूप से प्रकृति में किया गया अध्ययन है परन्तु इसके कई पहलूओं का अध्ययन प्रयोगशाला में भी किया जाता है। यह वैज्ञानिक विषय व्यावहारिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है जिसका उपयोग प्राकृतिक संसाधनों की व्यवस्था कृषि पीड़क और रोगाणुओं के नियंत्रण में होता है, तथा साथ ही इसका ज्ञान मृदा संरक्षण, जल, जीवीय विविधता और हमारे जीवमंडल के जीवन सहायक तंत्र में बहुत उपयोगी है। इस पाठ्यक्रम की इकाइयों में हमने मूल पारिस्थितिकीय संकल्पनाओं और पारिस्थितिकी संबंधी ज्ञान के दर्शन के परिप्रेक्ष्य में चर्चा की है। हमें आशा है कि यह विषय पढ़ने में आपको रुचिकर लगेगा। इस पाठ्यक्रम के बारे में आपकी राय और सुझाव जानने के लिए प्रत्येक खंड के अंत में एक प्रश्नावली का फार्म जुड़ा हुआ है। खंड समाप्त करने के बाद कृपया फार्म भर कर हमें भेज दें।

पाठ्यक्रम के उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम को पढ़ने के बाद आप :

- पर्यावरण, पारिस्थितिकी और पारितंत्र की संकल्पना समझ सकेंगे।
- पौधों और जन्तु समुदाय के संबंध में मृदा, पानी, तापक्रम, प्रकाश जैसे विभिन्न जीविय और अजीवीय घटकों पर विचार कर सकेंगे।
- पारितंत्र की किस्मों की पहचान कर सकेंगे।
- पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह और पोषक चक्रों की रूपरेखा बना सकेंगे।
- समुदाय, जनसंख्या और मानव कल्याण में पारिस्थितिकी की भूमिका की परिभाषा और जानकारी दे सकेंगे।

अध्ययन निर्देश

इस सामग्री के अध्ययन का पूर्ण रूप से लाभ उठाने के लिए कृपया नीचे दी गई बातों पर ध्यान दीजिए :

i) एक पुस्तिका बना लीजिए, जिसमें एक तरफ रेखाएं हों और दूसरी तरफ सादा कागज हो, एक पेन और कुछ रंगीन पेन/पेंसिल पढ़ते समय अपने पास रखिए।

ii) इकाइयों को धीरे-धीरे और ध्यानपूर्वक पढ़िए। चित्रों और फ्लो-चार्टों के अध्ययन पर पर्याप्त समय लगाइए। फिर चित्रों तथा फ्लो-चार्टों को बिना देखे बनाने की कोशिश कीजिए और उन्हें अच्छी तरह लेबल कीजिए। इन सब से आपको विषय को समझने में सहायता मिलेगी।

iii) जब आप पाठ पढ़ें, तो महत्वपूर्ण अंशों के नीचे अलग रंगों से रेखा खींच दीजिए। यदि आवश्यक हो तो मुख्य बातों को प्रत्येक पत्रे पर छोड़ी गई खाली जगह में या अपनी पुस्तिका में लिख लीजिए।

iv) एक भाग या उपभाग समाप्त करने के बाद आप स्वयं से पूछिए कि आपने क्या सीखा? मुख्य बातों की सूची अपनी पुस्तिका में बनाने की कोशिश कीजिए और उस की तुलना पाठ से कीजिए कि कहीं आपसे कुछ छूट तो नहीं गया।

v) स्वयं की परीक्षा के लिए सभी बोध प्रश्नों को हल कीजिए, जहां कहीं भी "बोध प्रश्न" आते हैं उनमें से किसी भी प्रश्न को न छोड़ें क्योंकि वे विषय के बारे में आपकी समझ का मूल्यांकन करने के लिए तैयार किए गए हैं। यदि आप उत्तर नहीं दे सकते तो पाठ को दोबारा पढ़िए।

vi) "बोध प्रश्न" और "अंत में कुछ प्रश्न" के उत्तर प्रत्येक इकाई के अंत में दिए गए हैं। प्रश्नों को हल करने से पहले उत्तर देखने का प्रयास न कीजिए।

vii) यदि पाठ में आपको कोई शब्द समझ नहीं आता तो शब्दकोश में देखिए। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों के लिए प्रत्येक खंड के अंत में दी गई शब्दावली को देखिए या जरूरी हो तो वैज्ञानिक शब्दावली देखिए।

viii) यदि आप किसी मूल तथ्य में उलझ रहे हों तो ऐसे में एन.सी.ई.आर.टी. की स्कूली किताबों से मदद लीजिए। ये पुस्तकें आपके लिए बहुत उपयोगी होंगी और आपको समझने में भी आसानी होगी। विषय के बारे में अधिक जानकारी के लिए हमने हरेक खंड के अंत में अध्ययन के लिए "कुछ उपयोगी पुस्तकों" की सूची दी है। ये पुस्तकें आपके अध्ययन केन्द्र पर उपलब्ध होंगी।

खंड 1 पर्यावरण और इसके घटक

पारिस्थितिकी का इतिहास मानव जाति के उद्गम से जुड़ा हुआ है। मनुष्य अवचेतन रूप से अपने प्राकृतिक संसाधनों की व्यवस्था में पारिस्थितिकी के सिद्धान्तों को लागू करता रहा है। हमारे प्राकृतिक पर्यावरण के निम्नीकरण से उभरने वाली समस्याओं के कारण इस विषय का महत्व बढ़ा है तथा इसे सुव्यवस्थित किया गया है। इसलिए आधुनिक पारिस्थितिकी के सिद्धांतों का ज्ञान आवश्यक हो गया है।

इस खंड की इकाई-1 में हमने पारिस्थितिकी के कुछ मूल शब्दों और संकल्पनाओं जैसे कि पर्यावरण, जनसंख्या, समुदाय पारितंत्र और जीवमंडल का संक्षेप में उल्लेख किया है। इस इकाई में हमने पारिस्थितिकी, इसकी शाखाओं और दूसरी जीव विज्ञान संबंधी विषयों के साथ इसके पारस्परिक संबंधों की विस्तृत जानकारी देने का प्रयास किया है। कुछ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों का भी विवरण दिया गया है जो कि पारिस्थितिकी के विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

इकाई-2 में हमने प्रकाश, तापमान और वायुमंडल जैसे पर्यावरणीय घटकों का वर्णन किया है जो प्रत्येक जीव को प्रभावित करते हैं। आप जलवायु पर इन घटकों के कुछ प्रभावों को जानेंगे जो पौधों और जंतुओं के वितरण, व्यवहार और उनके उत्तरजीविता को प्रभावित करते हैं। आप यह भी जानेंगे कि विभिन्न जातियां चरम प्रकाश, तापमान, और वायुमंडलीय परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने के लिए किन-किन विशेष लक्षणों को विकसित करती है।

इकाई-3 में जल का पारिस्थितिकीय घटक के रूप में वर्णन किया गया है जिसमें जीवों के संदर्भ में जल के पृष्ठ तनाव श्यानता, उत्प्लावकता और पारदर्शिता जैसे गुणों का वर्णन किया गया है। अलवण जल, लवण जल और खारे जल तथा जीवित अवयवों का तुलनात्मक वर्णन किया गया है तथा जीवित समुदायों के वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में भी बताया गया है। इस इकाई में आप जल चक्र का अध्ययन करेंगे और पौधों तथा जंतुओं में अनुकूलन के संदर्भ में सूखे और जलाक्रांति के मुख्य प्रभावों के बारे में भी पढ़ेंगे।

आखिरी इकाई में आप मृदा के कुछ मुख्य पहलूओं का अध्ययन करेंगे। पहले हमने इस बहुमूल्य पर्यावरण संसाधन से संबंधित मूल संकल्पनाओं और शब्दों की व्याख्या की है। इसके बाद हमने मृदा निर्माण की प्रक्रिया, उनके वहन के तरीकों पर आधारित मृदा की विभिन्न किस्मों और मृदा की संरचना, गठन और परिच्छेदिका जैसे मूल गुणों का वर्णन किया है। अंत में हमने मृदा के विभिन्न भौतिक और रसायनिक गुणों की व्याख्या की है और देखा है कि मृदा जीवजात भूमि की उर्वरता को कैसे प्रभावित करती है।

इस खंड का अध्ययन करने के बाद आप :

- पर्यावरण पारिस्थितिकी और पारितंत्र की परिभाषा दे सकेंगे और इनकी व्याख्या कर सकेंगे,
- प्रकाश, उष्मा, वायुमंडल, जल, मृदा जैसे विभिन्न पर्यावरणी घटकों और पारितंत्र में इनके महत्व का वर्णन कर सकेंगे,
- पौधों और जंतुओं में प्रकाश, तापमान और जल के प्रति अनुकूलन का वर्णन कर सकेंगे।

इकाई 1 पारिस्थितिकी और पारितंत्र

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
1.2 पारिस्थितिकी
परिभाषा
पारिस्थितिकी का इतिहास
पारिस्थितिकी के उपप्रभाग
जीव-विज्ञान के दूसरे विषयों से पारिस्थितिकी का संबंध
1.3 पर्यावरण
बाह्य और आंतरिक पर्यावरण
प्राकृतिक बनाम कृत्रिम (मानव निर्मित) पर्यावरण
1.4 जनसंख्या
1.5 समुदाय
समुदाय के प्रकार
वृद्धि रूप और संरचना
1.6 पारितंत्र
पारितंत्र के घटक
पारितंत्र का आकार
पारितंत्र के प्रकार
प्राकृतिक और कृत्रिम पारितंत्र
1.7 जीवमंडल
1.8 सारांश
1.9 अंत में कुछ प्रश्न
1.10 उत्तर

1.1 प्रस्तावना

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में आधार पाठ्यक्रम में आप पर्यावरण, पारिस्थितिकी, पारितंत्र ऊर्जा-प्रवाह और पोषक चक्र की संकल्पनाओं से पहले ही परिचित हो चुके हैं। जैसा कि आपने पढ़ा है, जीवों का उनके पर्यावरण के साथ आपसी संबंध के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं। जीवों में रोगाणु (microbes), पौधे, जंतु और आदमी शामिल हैं। पारिस्थितिकी के अध्ययन से हमें पता चलता है कि वे कौन से तरीके हैं जिन से जीवों पर पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है और जीव किस प्रकार ऊर्जा प्रवाह और खनिज चक्र सहित पर्यावरण संसाधनों को काम में लाते हैं। जीव के जीवन काल में जो भी वस्तु उसे घेरे रहती है या उस पर प्रभाव डालती है उन सबको पर्यावरण कहते हैं, जिसके दो घटक होते हैं जीवीय (biotic) और अजीवीय (abiotic)। अनेक पौधों और जंतुओं की जातियों (species) का विलुप्त हो जाना, पर्यावरण का प्रदूषण और जनसंख्या विस्फोट आदि कुछ ऐसी प्रमुख पारिस्थितिकीय समस्याएं हैं जो प्रकृति के संतुलन को विश्व स्तर पर प्रभावित कर रही हैं। पृथ्वी और इसके जीवन को बनाए रखने वाले तंत्र को कायम रखने के लिए इसकी पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं को समझना बेहद आवश्यक है।

इस इकाई में, जो कि पारिस्थितिकी पाठ्यक्रम की पहली इकाई है, हम पारिस्थितिकी के मूल शब्दों और संकल्पनाओं की संक्षेप में व्याख्या करके शुरुआत करेंगे। इसके बाद हम पारिस्थितिकी की व्याख्या, इतिहास, कार्यक्षेत्र और विभिन्न शाखाओं की चर्चा करेंगे। इसके अलावा, हम पारितंत्र संरचना और कार्य के मूलभूत लक्षणों का भी वर्णन करेंगे।

इस इकाई को शुरू करने से पहले कृपया आधार पाठ्यक्रम के चौथे खंड (पर्यावरण और संसाधन) की इकाई 14 और इकाई 15 को पढ़ लीजिए ताकि पारिस्थितिकी के बारे में आपकी याद ताजा हो जाए।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस स्थिति में होंगे कि आप :

- पारिस्थितिकी, पर्यावरण, जनसंख्या, समुदाय, पारितंत्र, जीवमंडल जैसे शब्दों को सही संदर्भ में प्रयोग कर सकेंगे और उन्हें परिभाषित कर सकेंगे,
- पारिस्थितिकी के विषय के विकास की रूपरेखा दे सकेंगे,
- पारिस्थितिकी के तीन प्रमुख उपप्रभागों अर्थात् स्वापारिस्थितिकी (autecology), संपारिस्थितिकी (synecology) और आवास पारिस्थितिकी (habitat ecology) का वर्णन कर सकेंगे,
- जीव विज्ञान के अन्य विषयों और पारिस्थितिकी का आपसी संबंध चित्र की सहायता से बता सकेंगे

- प्राकृतिक और मानव-निर्मित (कृत्रिम) पर्यावरण में अंतर कर सकेंगे,
- जनसंख्या के मूल संख्यात्मक और संरचनात्मक गुण बता सकेंगे,
- समुदाय (community) के विशिष्ट लक्षण बता सकेंगे और प्रमुख एवं लघु समुदायों के बीच अंतर जान सकेंगे,
- पारितंत्र के घटकों का वर्णन कर सकेंगे।

1.2 पारिस्थितिकी

1.2.1 परिभाषा

आम बोलचाल में काम आने वाले कई शब्दों का वैज्ञानिक जगत में सुनिश्चित अर्थ निर्धारित होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि पारिस्थितिकी के अध्ययन के प्रारंभ में आप कुछ परिभाषाओं और संकल्पनाओं से परिचित हो जाएं।

आज पारिस्थितिकी एक जानी पहचाना शब्द लगता है। हालांकि पारिस्थितिकीय अध्ययन कई वर्षों से जारी है, लेकिन लोगों को अभी हाल ही में यह ज्ञान हुआ है कि पारिस्थितिकी उनके दैनिक जीवन का एक हिस्सा है। आजकल अखबारों और पत्रिकाओं में प्रकृति और उससे मानव द्वारा छेड़छाड़ के नतीजों के बारे में खूब लिखा जा रहा है, जैसे कि वनोन्मूलन (जंगलों को खत्म करना), मृदा अपरदन (मिट्टी का कटाव), भोपाल गैस त्रासदी, चेरनोबिल दुर्घटना, ओज़ोन सूराख, पृथ्वी का गरमाना और कई दूसरी समस्याएं। ऐसी समस्याओं के बारे में जनता का आक्रोश हमारे समाज के लिए पारिस्थितिकी की प्रासंगिकता को साफ तौर से दर्शाता है। पारिस्थितिकी अब विज्ञान का एक सुविकसित विषय है जिसका महत्व मानव कल्याण और अस्तित्व के लिए दिनोंदिन बढ़ रहा है।

पारिस्थितिकी शब्द अंग्रेजी के "इकोलॉजी (ecology) का पर्याय है। इकोलॉजी शब्द 1868 में गढ़ा गया था। यह दो ग्रीक शब्दों से मिल कर बना है। एक शब्द है "ओईकोस" (oikos) जिसका अर्थ है घर या सम्पदा और दूसरा शब्द है लोगोस (logos) जिसका अर्थ है अध्ययन। इसका शाब्दिक अर्थ घर या प्रकृति के आवास का अध्ययन करना है। पारिस्थितिकी को "जीवित जीवों का एक दूसरे से और अपने पर्यावरण से संबंधों के वैज्ञानिक अध्ययन" के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

पारिस्थितिकीय अध्ययनों का उद्देश्य जीवों का उनके पर्यावरण से संबंधों को समझना है। ऐसा करने का सर्वोत्तम तरीका व्यापक क्षेत्रीय पर्यवेक्षण करना और उन पर्यवेक्षणों की पुष्टि के लिए प्रायोगिक अध्ययन करना है।

1.2.2 पारिस्थितिकी का इतिहास

पारिस्थितिकी की जड़ें प्राकृतिक इतिहास तक गई हैं जो कि मानव सभ्यता जितना पुराना है। वस्तुस्थिति यह है कि भले ही अनजाने में सही, मनुष्य प्रारंभिक इतिहास से ही पारिस्थितिकी से व्यावहारिक रूप से जुड़ गया। आदिम समाजों में हर व्यक्ति से अपेक्षा की जाती थी कि अति जीविता (जीवित बने रहना) के लिए उसे अपने पर्यावरण का समुचित ज्ञान हो अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों और आसपास के पौधों और पशुओं का पर्याप्त ज्ञान हो। आदिम जन जातियां शिकार करने, मछली पकड़ने और भोजन इकट्ठा करने पर आश्रित थी और निर्वाह के लिए उन्हें अपने पर्यावरण का विस्तृत ज्ञान होना आवश्यक था। बाद में स्थायी कृषि जीवन अपनाने के कारण पौधों की सफल खेती और पशुओं को पालतू बनाने के लिए प्रयोगात्मक पारिस्थितिकी का ज्ञान प्राप्त करना और भी आवश्यक हो गया।

हमारे प्राचीन भारतीय ग्रंथ पारिस्थितिकी के सिद्धांतों के वर्णन से भरे पड़े हैं। वैदिक काल (1500 ईसा पूर्व-600 ईसा पूर्व) के श्रेष्ठ ग्रंथ जैसे कि वेद, संहिताएं, ब्राह्मण और आरण्यक उपनिषदों में पारिस्थितिकीय संकल्पनाओं के अनेक उल्लेख दिए गए हैं।

पहली और चौथी शताब्दी के बीच भारत में चिकित्सा शास्त्र का ग्रंथ चरक संहिता और शल्य शास्त्र का ग्रंथ सुश्रुत संहिता रचे गए। इससे पता चलता है कि उस काल के दौरान लोगों को पौधों और जंतुओं की पारिस्थितिकी का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने जंतुओं की आदत और आवास के आधार पर, तथा मृदाओं का उनके गुणों, जलवायु और वनस्पति के आधार पर, वर्गीकरण किया और विभिन्न स्थानों के प्ररूपी (typical) पौधों का वर्णन किया। चरक ने लिखा है कि हवा, ज़मीन, पानी और ऋतुएं जीवन के लिए अपरिहार्य है और प्रदूषित वायु और जल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

यूरोप में ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में भी पारिस्थितिकी समस्याओं के प्रति इसी प्रकार की जागरूकता थी। यूनान के प्राचीन दार्शनिक पर्यावरण के अध्ययन के महत्व को अच्छी तरह समझते थे।

हिप्पोक्रेटीज़ (Hippocrates) ने अपने ग्रंथ "ऑन एयर्स, वाटर्स एण्ड प्लेसेज़" (on airs, waters and places) में इस बात पर जोर दिया है कि आयुर्विज्ञान के छात्रों को पारिस्थितिकीय ज्ञान होना आवश्यक है। उसने पानी, हवा और स्थान का मनुष्य के स्वास्थ्य और रोग पर पड़ने वाले प्रभाव पर बल दिया है। अरस्तु (Aristotle) ने जंतुओं की आदत और आवास के आधार पर उनका वर्गीकरण किया है।

इकोलॉजी शब्द के निर्माण से बहुत पहले पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से परिचय कराने वाला पहला व्यक्ति थियोफ्रास्टस (Theophrastus) (ईसा पूर्व 370-250) था। उसने ऊंचाई, नमी और प्रकाश प्रभावन (light exposure) के संदर्भ में पौधों के प्रकार और आकार का अध्ययन किया।

अनेक शताब्दियों के अंतराल के बाद यूरोप के प्रकृति वैज्ञानिकों ने पारिस्थितिकीय विचारधारा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। फ्रांसीसी प्रकृति वैज्ञानिक जार्ज एम.एल. बुफों (Georges M.L. Buffon) ने नेचूरल हिस्ट्री (Natural History) नामक अपनी पुस्तक में पर्यावरण से जंतुओं के संबंध के बारे में ज्ञान को क्रमबद्ध करने का गंभीर प्रयास किया।

अठाहरवीं शताब्दी के प्रारंभ में सूक्ष्मदर्शन वैज्ञानिक (Microscopist) एन्टन वान लीवनहुक (Anton von Leeuwenhoek) ने आहार शृंखला और जनसंख्या नियमन पर मौलिक अध्ययन किया, जो आधुनिक पारिस्थितिकी का एक प्रमुख अंश के रूप में स्थापित हो गया है।

ऐसा लगता है कि हैन्स रीटर (Hans Reiter) पहला व्यक्ति था जिसने 1868 में दो ग्रीक शब्दों ओइकोस (घर) और लोगोस (अध्ययन) को जोड़कर इकोलॉजी शब्द का निर्माण किया। लेकिन जर्मनी का जीववैज्ञानिक अर्नस्ट हीकल (Ernst Haeckel) (1866-1870) वह व्यक्ति था जिसने इकोलॉजी (पारिस्थितिकी) की विस्तृत परिभाषा इस प्रकार की — "पारिस्थितिकी से हमारा अर्थ उस ज्ञान से है जो प्रकृति की व्यवस्था से संबंधित है — जंतु का अपने कार्बनिक और अकार्बनिक पर्यावरण के साथ संपूर्ण संबंधों की खोज से है और इससे भी सबसे महत्वपूर्ण है जिन जंतुओं और पौधों के यह प्रत्यक्ष रूप से संपर्क में आता है उनके प्रति इसके संबंध" एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि डार्विन (Darwin) ने जिन जटिल पारस्परिक संबंधों का अस्तित्व के लिए संघर्ष के रूप में उल्लेख किया है, पारिस्थितिकी उसी का अध्ययन है।

हीकल से कुछ वर्ष पहले फ्रांसीसी प्राणी वैज्ञानिक आइसोडोर जाफ्री सेंट हिलारे (Isodore Geoffroy St. Hilare) और अंग्रेज़ प्रकृति वैज्ञानिक सेंट जार्ज जेक्सन मिवार्ट (St. George Jackson Mivart) ने क्रमशः इथोलॉजी (ethology) और हैक्सिकोलॉजी (hexicology) शब्दों का प्रस्ताव रखा। इनकी परिभाषा लगभग इकोलॉजी जैसी ही है। चार्ल्स एल्टन (Charles Elton) नामक एक अंग्रेजी प्राणि वैज्ञानिक ने अपनी पुस्तक एनिमल इकोलॉजी (Animal Ecology) को वैज्ञानिक प्राकृतिक इतिहास के रूप में परिभाषित किया है।

कार्ल मोबियस (Karl Mobius) ने पारिस्थितिकी में समुदाय की संकल्पना को जंतुओं पर लागू किया, जबकि फोर्बोस (Forbes) 1887, वार्मिंग (Warming) 1909, काउल्स (Cowles) 1899, क्लिमेंटस (Clements) 1916, आदि ने पौधों और जंतुओं के समुदाय के अध्ययन के बारे में उल्लेखनीय योगदान दिया।

"जनसंख्या और इसके अनेक संबंधित पक्षों की संकल्पना का विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में हुआ। सामुदायिक पारिस्थितिकी को समझने के लिए गणितीय तकनीकों का इस्तेमाल हुआ। तब से ये गणितीय और सांख्यिकीय तरीके जनसंख्या गतिकी (dynamics) को समझने के काम में लाए जा रहे हैं।

एक प्रतिष्ठित अंग्रेजी वनस्पति वैज्ञानिक सर आर्थर टैन्सले (Sir Arthur Tansley) ने 1935 में पारितंत्र या पारिस्थितिकीय तंत्र की संकल्पना प्रस्तुत की। पारिस्थितिकी के विकास के इतिहास में यह एक प्रमुख घटना थी। लिन्डमैन (Lindeman) द्वारा विकसित समुदाय के पौषी-गतिशील पक्ष और सुकाचेव (Sukachev) द्वारा बायोजिओसीनोसेस (Biogeocoenoses) के विचारों के साथ-साथ पारितंत्र की संकल्पना ने समाकलित (holocoenotic) दृष्टिकोण से जीव पर्यावरण कॉम्प्लेक्स पर खोज को प्रेरित किया और इससे पारिस्थितिकी की प्रगति में चार चांद लग गए। हाल ही में यूजीन पी. ओडम (Eugene P. Odum) नामक एक अमरीकी पारिस्थितिकी वैज्ञानिक ने पारिस्थितिकी को "प्रकृति की संरचना और उसके कार्य का अध्ययन" के रूप में परिभाषित किया है।

जैसा कि दूसरे देशों में हुआ, भारतवर्ष में पारिस्थितिकीय अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में वर्णनात्मक रूप से शुरू हुआ। वन अधिकारियों (1875-1929) द्वारा जंगलों का वर्णनात्मक लेखा-जोखा किया गया। लेकिन पहला पारिस्थितिकीय अंशदान इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पी. डयुजॉन (Prof. P. Dudgeon) द्वारा 1921 मे दिया गया। उन्होंने समुदायों के अनुक्रमण में पर्यावरण की भूमिका का वर्णन किया।

1940 के दशक तक पारिस्थितिकी के बारे में पर्याप्त वर्णनात्मक और पर्यवेक्षात्मक जानकारी उपलब्ध थी। अब विशिष्ट पर्यावरणीय कारकों के संदर्भ में पादपों (अलग-अलग या समूहों में) के व्यवहार और वितरण के बारे में सही ज्ञान प्राप्त करना बाकी था। इससे वृक्षों और शाकों (herbs) के स्वपारिस्थितिकीय अध्ययनों के प्रयोगात्मक पहलू (1940-1965) को समझने का रास्ता खुला। वन, घास स्थल समुदाय के सपारिस्थितिकीय तथा वृक्षों, झाड़ियों और घास स्थलों के स्वपारिस्थितिक पर प्रोफेसर आर. मिश्रा (Prof. R. Misra) के नेतृत्व में अध्ययन हुआ, जिन्होंने 1960 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में एक फलता-फूलता संस्थान (school) स्थापित किया।

बढ़ती हुई जनसंख्या को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों के असरदार प्रबंध के लिए 1960 के दशक के आरंभ में विभिन्न पारितंत्रों की संरचना और उन के कार्य को अच्छी तरह से समझने की आवश्यकता महसूस की गई।

इसी इरादे से अंतर्राष्ट्रीय जीव विज्ञानीय कार्यक्रम (International Biological Programme) शुरू किया गया जिसमें उत्पादकता और मानव कल्याण के जीव विज्ञानीय आधार को बहुत महत्वपूर्ण माना गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत मानव अनुकूलनशीलता, पारितंत्र के संरक्षण (conservation) और जीव विज्ञानीय संसाधनों के उपयोग के अलावा विभिन्न स्थलीय और जलीय पारितंत्रों की उत्पादकता का मूल्यांकन भी किया गया।

अंतर्राष्ट्रीय जीव विज्ञानीय कार्यक्रम (International Biological Programme) जीव विज्ञानीय उत्पादकता और मानव कल्याण के अध्ययन की एक विश्वव्यापी योजना है जिसको अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान संघों की परिषद (International Council of Scientific Unions — ICSU) ने शुरू किया, जोकि पेरिस में एक गैर-सरकारी संगठन है। अंतर्राष्ट्रीय जीव विज्ञानीय कार्यक्रम की शुरुआत

कुछ पारिस्थितिकीय क्षेत्रों के ज्ञान में कमी को पूरा करने के उद्देश्य से की गई थी। इसी कमी को एक समन्वित वृहत दृष्टिकोण द्वारा दूर किया जाना है जिसमें तुलनीय परिणाम पाने के लिए विधियों का मानकीकरण भी शामिल है।

ये क्षेत्र, जिनका अंतर्राष्ट्रीय जीव विज्ञानीय कार्यक्रम के अंतर्गत अध्ययन किया गया
- स्थलीय समुदायों की उत्पादकता
- उत्पादन प्रक्रिया
- स्थलीय समुदायों का संरक्षण
- अलवण जल (fresh water) समुदायों की उत्पादकता
- समुद्री समुदायों की उत्पादकता
- मानव अनुकूलनशीलता
- जीव विज्ञानीय संसाधनों का उपयोग और प्रबंध

हाल ही में पारिस्थितिकी में बढ़ती हुई रुचि का बहुत बड़ा कारण तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या और हवा, मिट्टी और पानी के प्रदूषण की वजह से पर्यावरण में व्यापक बिगाड़ से उत्पन्न समस्याएं रही है। यूनेस्को (UNESCO) के मनुष्य और जीवमंडल कार्यक्रम (Man and Biosphere Programme) और मानव पर्यावरण पर 1972 में स्टॉकहोम में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सम्मेलन (United Nations Environment Conference) जैसे अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और विवेकपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देने के लिए अब पारिस्थितिकीय अध्ययनों पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) और प्रकृति तथा प्रकृति संसाधन संरक्षण का अंतर्राष्ट्रीय संघ (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources — IUCN) प्रकृति के लिए विश्वव्यापी निधि (Worldwide Fund for Nature) ने विश्व-व्यापी स्तर पर पारिस्थितिकीय अध्ययन को बहुत प्रेरित किया है। पर्यावरण की समस्याओं को सुलझाने में पारिस्थितिकी को अभी बहुत योगदान देना है।

बोध प्रश्न 1

चरक और सुश्रुत की संहिताओं में वर्णित पारिस्थितिकीय ज्ञान को 10 पंक्तियों में लिखिए?

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.2.3 पारिस्थितिकी के उपप्रभाग

पहले पारिस्थितिकी, पादप और जंतु पारिस्थितिकी में विभाजित की गई थी। लेकिन आधुनिक पारिस्थितिकी ऐसा कोई भेद नहीं करती क्योंकि पौधे और जंतु आपस में और अपने पर्यावरण से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं तथा एक दूसरे पर निर्भर हैं।

आज पारिस्थितिकी के प्रमुख उपप्रभाग (i) स्वपारिस्थितिकी (autecology), (ii) संपारिस्थितिकी (synecology), (iii) आवास पारिस्थितिकी (habitat ecology), ये नीचे दिये गए हैं।

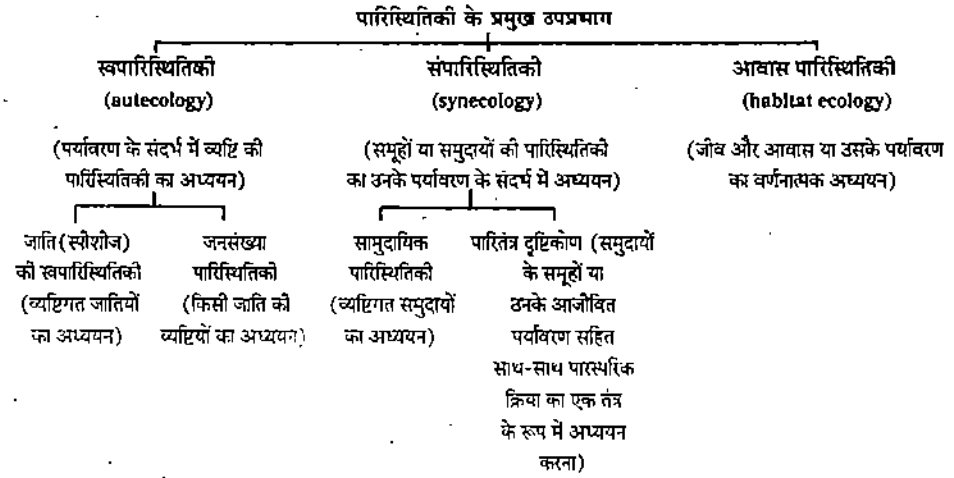

(i) **स्वपारिस्थितिकी** : यह व्यष्टिगत जातियों या व्यष्टियों (individuals) का पर्यावरण के संदर्भ में अध्ययन करता है। स्वपारिस्थितिकीय अध्ययन करने के दो दृष्टिकोण हैं। (क) **जातियों की स्वपारिस्थितिकी** जिसमें व्यष्टिगत जातियों का अध्ययन किया जाता है। (ख) **जनसंख्या पारिस्थितिकी** जिसमें उसी जाति के व्यष्टियों का अध्ययन किया जाता है।

(ii) संपारिस्थितिकी : जीवित जीवों के समुदायों का एक इकाई के रूप में अध्ययन करता है। स्वपारिस्थितिकी और संपारिस्थितिकी के अंतर को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। अगर एक नीम के पेड़ (या अनेक नीम के पेड़ों) या एक कौआ (या अनेक कौओं) का पर्यावरण के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है तो यह स्वपारिस्थितिकीय अध्ययन है। लेकिन अगर अध्ययन वन समुदाय का संपूर्ण रूप से किया जाता है जिसमें अनेक भिन्न-भिन्न पक्षी, वृक्ष और जंतु एक ही क्षेत्र के वासी हों तो यह संपारिस्थितिकीय अध्ययन कहलाएगा।

संपारिस्थितिकीय अध्ययन दो प्रकार के हो सकते हैं। **(क) समुदाय पारिस्थितिकी** : जीविय (जीवित) समुदाय के अध्ययन से संबंधित। समुदाय में एक विशेष क्षेत्र में परस्पर निर्भर रहने वाले पेड़ और जंतु शामिल हैं, या **(ख) पारितंत्र पारिस्थितिकी** : जिसका विकास हाल ही में हुआ है। यह जीवित जीवों के समुदाय और उनके पर्यावरण का प्रकृति की समाकलित इकाई के रूप में अध्ययन है।

(iii) आवास पारिस्थितिकी : यह जीवों तथा उनके आवास या पर्यावरण का वर्णनात्मक अध्ययन है। इस अध्ययन के केंद्र-बिंदु स्थलीय अलवण जल, समुद्री जल और ज्वारनदमुख जैसे विभिन्न प्रकार के आवास हैं।

1.2.4 जीव विज्ञान के अन्य विषयों से पारिस्थितिकी का संबंध

पारिस्थितिकी के विस्तार और इसकी प्रासंगिकता को समझने के लिए आइए केक के रूप में एक चित्र की सहायता से अन्य जीव विज्ञानीय विषयों के संदर्भ में इसकी स्थिति को समझें।

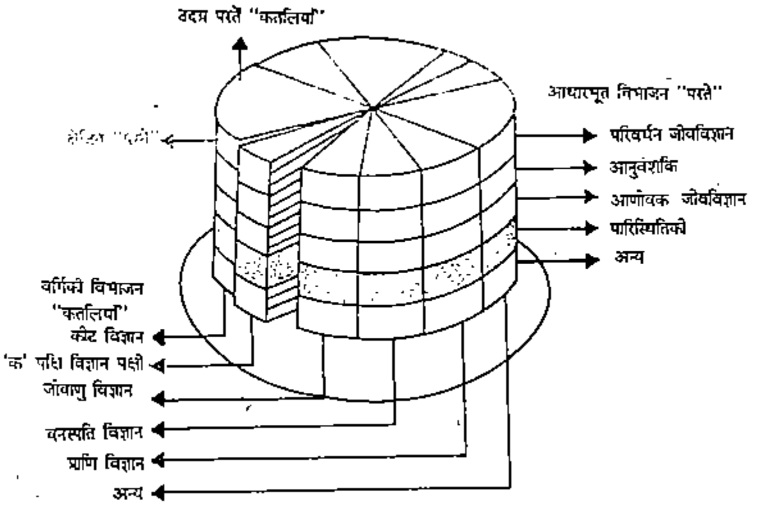

चित्र 1.1 : परतों वाला जीव विज्ञानीय केक जो पारिस्थितिकी का दूसरे जीव विज्ञानीय विषयों से संबंध दर्शाता है

इस परिकल्पित जीव विज्ञानीय केक में अनेक क्षैतिज परतें हैं, जो सभी जीवों पर लागू जीव विज्ञान के "आधारभूत" प्रभागों को दर्शाती हैं। आकारिकी (Morphology), कार्यिकी (Physiology), आनुवंशिकी (Genetics) पारिस्थितिकी विकास (Evolution), आण्विक जीव विज्ञान (Molecular Biology) परिवर्धन जीव विज्ञान (Developmental Biology) इत्यादि। ये क्षैतिज परतें उदग्र रूप से असमान "वर्गिकी कतलियों" (taxonomic slices) में विभाजित की गई हैं जिन्हें प्रत्येक कतली जीव वैज्ञानीय क्षेत्र द्वारा लेवल की गई हैं। मोटी कतलियां जीव विज्ञान के बड़े प्रभागों को दर्शाती हैं और इन्हें प्राणि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जीवाणु विज्ञान आदि के रूप में लेबल किया गया है। पतली कतलियों को शैवाल विज्ञान (Phycology), पक्षि विज्ञान (Ornithology), आदिजंतु विज्ञान (Protozoology) के रूप में लेवल किया गया है क्योंकि वे विशिष्ट प्रकार के जीवों से संबंधित हैं।

आइए हम कतली "क" अर्थात् पक्षी विज्ञान के बारे में चर्चा करें जिसके अंतर्गत पक्षियों का अध्ययन किया जाता है। यह कतली आण्विक जीव विज्ञान, परिवर्धन जीव विज्ञान, आनुवंशिकी, पारिस्थितिकी आदि की क्षैतिज परतों सहित यह दर्शाती है कि पक्षियों का अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण आण्विक या पारिस्थितिकीय, या किसी भी दूसरे प्रकार का या दो या दो से अधिक दृष्टिकोणों का मिला जुला रूप हो सकता है। "जीव विज्ञानीय केक" सादृश्य से हमें यह समझने में सुविधा होती है कि पारिस्थितिकी जीव विज्ञान का आधारभूत प्रभाग है।

कुछेक वर्गिकीय जातियों या समूहों तक अध्ययन को सीमित रखना प्रायः महत्वपूर्ण है क्योंकि विभिन्न प्रकार के जीवों के अध्ययन के लिए विभिन्न विधियों की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, कबूतर और जीवाणु (bacteria) का अध्ययन एक ही विधि अपना कर नहीं किया जा सकता लेकिन आधुनिक पारिस्थितिकीय सिद्धांतों ने विविध पारितंत्रों की तुलना करने के लिए ऊर्जा प्रवाह, पोषक चक्रण और जनसंख्या गति की जैसी अनेक एकताकारी संकल्पनाएं दी हैं।

बोध प्रश्न 2

नीचे दी गई सूची में से उपयुक्त शब्द छांटकर रिक्त स्थान भरिए।

(क) वन में वृक्ष की किसी जाति की एकल आबादी का अध्ययन .... कहलाता है।

(ख) किसी तालाब में जीवों के समुदाय को .... कहते हैं।

(ग) जीव समुदाय तथा उसके पर्यावरण के अध्ययन को .... कहते हैं।

(संपारिस्थितिकी, स्वपारिस्थितिकी, पारितंत्र)

1.3 पर्यावरण

जीव जिस पर्यावरण से जीवन निर्वाह करते हैं उसी पर्यावरण पर बहुत ही ज्यादा निर्भर रहते हैं। विषाणु (virus) से मनुष्य तक सभी खाने, ऊर्जा, पानी, ऑक्सीजन और दूसरी जरूरतों के लिए अनिवार्य रूप से पर्यावरण पर निर्भर रहते हैं। पर्यावरण को "जीवित, अजीवित घटकों का कुल योग; जीव को घेरे हुए प्रभाव और घटनाओं " के रूप में परिभाषित किया जाता है। जीव और पर्यावरण के आपसी संबंध और पारस्परिक क्रिया अत्यधिक जटिल हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए पर्यावरण को मोटे तौर पर दो घटकों में वर्गीकृत किया जाता है: अजीवीय और जीवीय।

तालिका 1.1

पर्यावरण के घटक

अजीवीय घटक	जीवीय घटक
ऊर्जा	हरे पौधे
विकिरण (radiation)	अहरित पौधे
तापमान और ऊष्मा प्रवाह	अपघटक (decomposers)
जल	परजीवी (parasites)
वायुमंडलीय गैसें और पवन	सहजीवी (symbionts)
आग	जंतु
गुरुत्व (gravity)	मनुष्य
स्थलाकृति (topography)	
भूविज्ञानीय स्तर (geologic substratum)	
मृदा (मिट्टी)	

आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि पर्यावरण स्थैतिक (static) नहीं है। जीवीय और अजीवीय कारक जो फ्लक्स (flux) रूप में हैं, लगातार बदलते रहते हैं। जीव पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों को एक निश्चित परिसर (range) के अंदर सहन कर सकते हैं, जिसे **"सहनशीलता का परिसर"** कहते हैं।

1.3.1 बाह्य और आंतरिक पर्यावरण

आइए हम पर्यावरण की संकल्पना को कुछ उदाहरणों से समझने की कोशिश करें। चित्र 1.2 पर ध्यान दीजिए। क्या आप तालाब में अकेली कार्प मछली के पर्यावरण को पहचान सकते हैं?

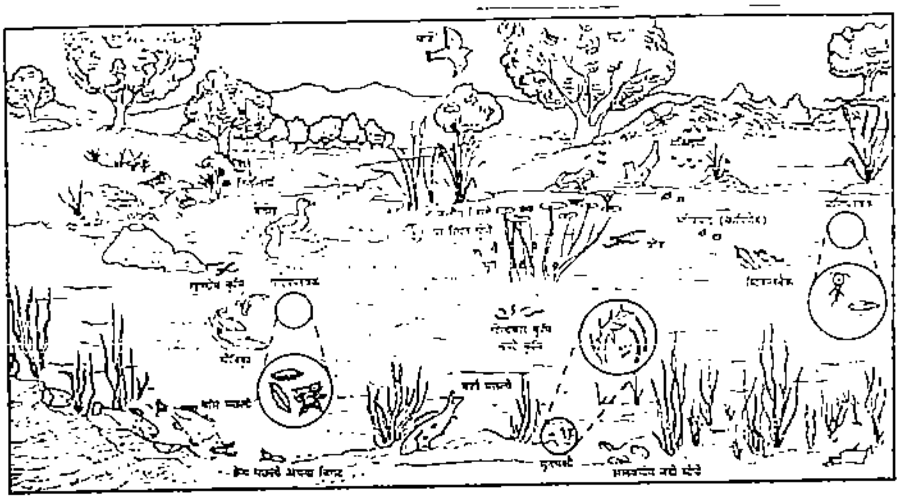

चित्र 1.2 : एक तालाब

इसका पर्यावरण प्रकाश, ताप, जल और अजीवीय घटकों वाला है जिसमें पोषक, ऑक्सीजन, दूसरी गैसें और कार्बनिक पदार्थ घुले हुए हैं। जीवीय पर्यावरण में सूक्ष्म प्लवक (plankton) के साथ-साथ उच्च कोटि पादप (plants) और जंतु तथा अपघटक (decomposers) भी होते हैं। पादप विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे कि पादप प्लवक (phytoplankton), आंशिक रूप से डूबे हुए पौधे और तालाब के किनारे के आसपास उग रहे पेड़-पौधे। जंतुओं में प्राणिप्लवक (zooplankton), कीट, कृमि (worms), मालस्क (सीप-घोंघे आदि), टेडपोल, मेंढक, पक्षी और अनेक प्रकार की मछलियां होती हैं। चित्र के निचले भाग में दिखाए गए मृतभक्षी अपघटक हैं।

ऊपर वर्णित जिस पर्यावरण में मछली रहती है वह उसका बाह्य पर्यावरण है। जीवित जीवों का आंतरिक पर्यावरण भी होता है, जो बाहरी शारीरिक सतह से घिरा रहता है। काय सतह बाह्य और आंतरिक पर्यावरण के बीच एक विनिमय रोध के रूप में कार्य करती है। (चित्र 1.3 क और ख) लेकिन एक-कोशिकीय जीवों में कोशिका की परिसीमा जीव की परिसीमा भी है। एक-कोशिकीय जीवों में द्रव्य का विनिमय, जीव जिस बाह्य पर्यावरण में रहते है, उससे सीधे रूप में होता है (चित्र 1.3 क)।

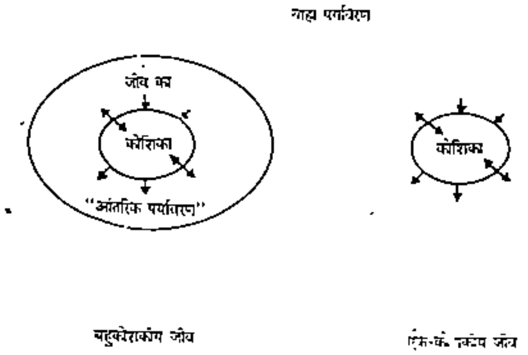

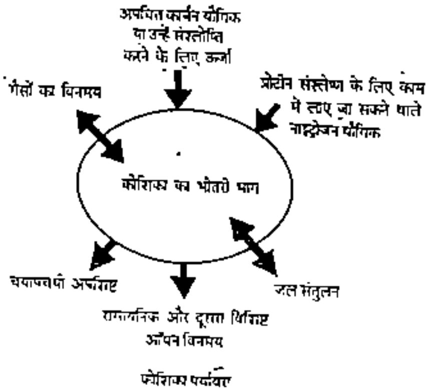

चित्र 1.3 क : बहुकोशिकीय (multicellular) जीवों में शरीर की बाहरी सतह बनाने वाली कोशिकाओं को छोड़कर अधिकांश कोशिकाएं जीवों के आंतरिक पर्यावरण के प्रति खुली रहती है और ये कोशिकाएं आंतरिक पर्यावरण से ऊर्जा और द्रव्यों का विनिमय करती हैं। जबकि एक-कोशिकीय (unicellular) जीवों में कोशिका सतह जीव और पर्यावरण के बीच की परिसीमा भी होती है। सभी विनिमय कोशिका और बाह्य पर्यावरण के बीच सीधे रूप से होता है।

चित्र 1.3 ख : एक जीवित कोशिका और इसके एकदम समीप पर्यावरण के बीच आवश्यक विनिमय

बाह्य पर्यावरण की तुलना में आंतरिक पर्यावरण अपेक्षाकृत स्थायी है। लेकिन यह पूर्णतया (absolutely) अपरिवर्ती या नियत (constant) नहीं है। चोट, बीमारी या अत्यधिक दबाव से आंतरिक पर्यावरण उलट-पुलट जाता है। उदाहरण के लिए अगर एक समुद्री मछली को अलवण जल में रख दिया जाए तो वह जिन्दा नहीं बच पाएगी।

1.3.2 प्राकृतिक बनाम कृत्रिम (मानव निर्मित) पर्यावरण

अभी तक जिन पर्यावरणों की चर्चा की गई है, वे प्राकृतिक पर्यावरण हैं। अनेक मामलों में आदमी ने प्राकृतिक स्थितियों को बहुत ज्यादा बदल डाला और नई परिस्थितियां रच डाली। उदाहरण के लिए खेत जोत डाले या शहर बना डाले। आइए शहरी पर्यावरण पर विचार करते हुए हम प्राकृतिक और कृत्रिम पर्यावरण के बीच अंतर देखें।

शहर का पर्यावरण एक मनुष्य-रचित पर्यावरण है। शहर का वायुमंडल आम तौर पर कारखानों, मोटर वाहनों और बिजली उत्पादक संयंत्रों से निकली विभिन्न गैसों के कारण प्रदूषित रहता है। पानी सीधे नदियों से नहीं लिया जाता बल्कि छाने और जल उपचार संयंत्र (water treatment plant) से संक्रमणरहित किए जाने के बाद घरों आदि में दिया जाता है। चयापचयी अपशिष्ट (metabolic wastes) और कूड़े-कचरे का निपटान स्थानिक रूप से नहीं किया जाता बल्कि इन्हें सीवर (sewer) लाइनों द्वारा उपचार के लिए या शहर से बहुत अलग किसी सुदूर जगह पर डाल देने के लिए ले जाया जाता है। शहर में अन्न नहीं उगाया जाता बल्कि शहर मे रहने वालों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से मंगवाया जाता है।

शहर में लोग ईटों, पत्थरों और सीमेंट से बने मकानों में रहते हैं। सामान्य सम्पन्न व्यक्तियों के घर और कार्यालय वातानुकूलित होते हैं और इससे एक ऐसा वायुमंडल बन जाता है जो बाहरी पर्यावरण के प्रभाव से मुक्त रहता है। इसके अलावा, जीवन को आरामदेह बनाने के लिए पंखे, फ्रिज, रेडियो, टेलीविजन आदि आधुनिक सुविधाएं प्राप्त होती हैं जिन्हें बिजली की आवश्यकता होती है। इस बिजली का उत्पादन मनुष्य द्वारा कृत्रिम रूप से किया जाता है।

मानव निर्मित पर्यावरण ऊर्जा और सामग्री की अत्यधिक मात्रा में उपभोग करता है तथा इसे सतत देखभाल, पर्यवेक्षण और प्रबंध की आवश्यकता पड़ती है ताकि इसे आवास योग्य बनाए रखा जाए (चित्र 1.4)।

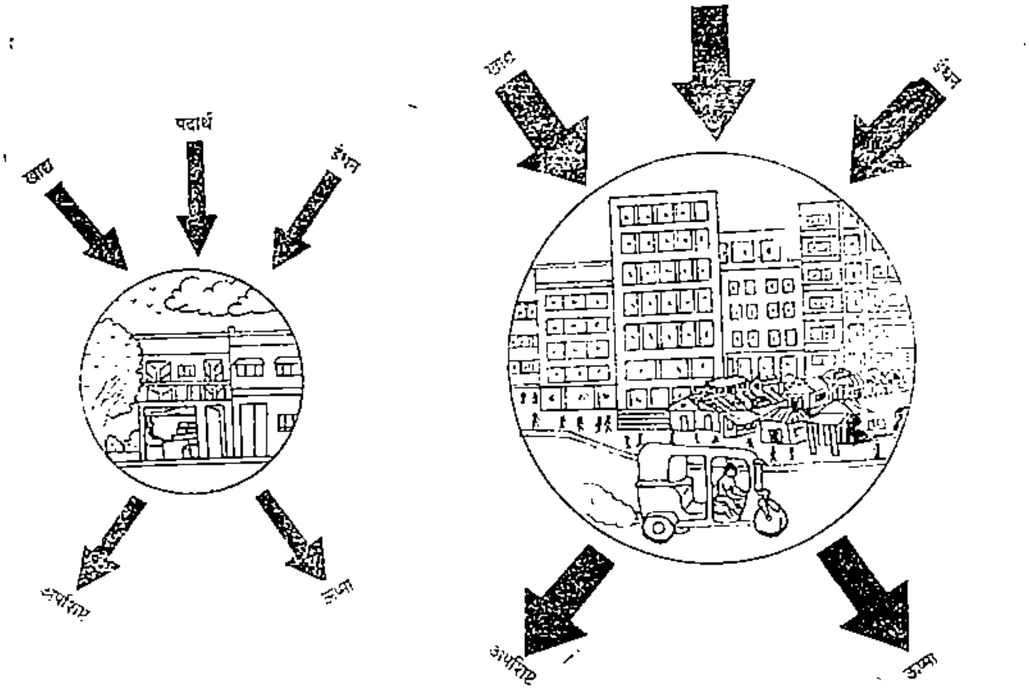

चित्र 1.4 : शहरों का आकार बढ़ने के साथ-साथ पर्यावरण से अधिक खाद्य सामग्री और ऊर्जा की खपत होती है और ऊष्मा तथा अपशिष्ट बढ़ी हुई मात्रा में पर्यावरण को लौटा दिए जाते हैं। (क) छोटा शहर (ख) बड़ा शहर

बोध प्रश्न 3

पाँच पंक्तियों में पर्यावरण की परिभाषा दीजिए और बाह्य तथा आंतरिक पर्यावरण में अंतर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

1.4 जनसंख्या

आप "जनसंख्या" (population) शब्द से अवश्य परिचित होंगे। यह इस शताब्दी का सर्वाधिक चर्चित मुद्दा है यह आशंका है कि अगर विश्व जनसंख्या को इस प्रकार तेजी से बढ़ने दिया गया तो निकट भविष्य में ही यह खाद्य आपूर्ति को पछाड़ देगी। जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान ऊंची दर सरकारों, वैज्ञानिकों और प्रशासकों के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है। क्या आपने कभी सोचा है कि जनसंख्या का क्या अर्थ है?

तकनीकी अर्थ में जनसंख्या को "एक नियत समय में एक विशिष्ट क्षेत्र में एक ही जाति के मुक्त रूप से पारस्परिक प्रजनन करने वाले व्यष्टियों के समूह" के रूप में परिभाषित किया जाता है। उदाहरण के लिए जब हम किसी शहर की जनसंख्या 50,000 बताते हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि उस नगर में होमो सेपिएन्स (Homo Sapiens) अर्थात मानव के व्यष्टियों की आबादी 50,000 है। दूसरे जीवों को, जैसे कि उस शहर में मौजूद बिल्लियों और कुत्तों को इस गणना में शामिल नहीं किया गया है क्योंकि ये दो भिन्न जातियों की आबादी है।

किसी भी जनसंख्या की अपनी विशिष्टताएं होती हैं जो कि उसके व्यष्टियों की विशिष्टताओं से भिन्न होती हैं। व्यष्टि पैदा होता है और मर जाता है पर जनसंख्या चलती-रहती है। जन्म और मृत्यु के दर से जनसंख्या का आकार घटता बढ़ता रहता है। व्यष्टि नर या मादा हो सकता है जवान या बूढ़ा हो सकता है, जबकि जनसंख्या का अपना लैंगिक अनुपात तथा वयस संघटन होता है।

प्रकृति में एक ही आबादी को अनेक स्थानिक प्रजनन आबादियों में उपविभाजित किया जाता है जिसे डीम कहते हैं। डीम एक ही जाति की भौगोलिक रूप से अलग की गई आबादी है। उदाहरण के लिए, दिल्ली के कुतुब मीनार के बाग की छिपकलियां, दिल्ली के लोदी गार्डन की छिपकलियां या इलाहाबाद के स्वराज भवन के बाग की छिपकलियां अलग-अलग डीम हैं।

फलस्वरूप, एक डीम में प्रत्येक व्यष्टि को विपरीत लिंग के दूसरे व्यष्टि से मैथुन के बराबर अवसर मिलते हैं, लेकिन दूसरे डीम के व्यष्टियों से मैथुन के अवसर नहीं मिलते। बारंबार मैथुन और एक ही तरह की पर्यावरणी परिस्थितियों के कारण एक डीम के सदस्यों की शक्लें एक दूसरे से बहुत अधिक मिलती जुलती हैं।

जनसंख्या के कुछ विशेष अभिलक्षण होते हैं जिन्हें केवल जनसंख्या स्तर पर अभिव्यक्त किया जा सकता है और जिन

को जनसंख्या की व्यष्टियों पर लागू नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए व्यष्टिगत जीव पैदा होते, बढ़ते और मर जाते हैं। लेकिन जन्म-दर, मृत्यु-दर, घनत्व जैसे अभिलक्षण केवल जनसंख्या स्तर पर ही अर्थपूर्ण होते हैं।

किसी जनसंख्या के गुण दो मूल प्रकार के होते हैं : (i) संख्यात्मक गुण जैसे कि घनत्व, जन्म दर, मृत्यु-दर; और (ii) संरचनात्मक गुण जैसे कि आयु, वितरण, परिक्षेपण और वृद्धि रूप।

(i) संख्यात्मक गुण

घनत्व (density) : प्रति इकाई क्षेत्रफल व्यष्टियों की जनसंख्या

जन्म दर (natality) : वह दर जिससे जनन (reproduction) द्वारा किसी जनसंख्या में नए व्यष्टि जुड़ते जाते हैं।

मृत्यु दर (mortality) : वह दर जिससे मृत्यु द्वारा जनसंख्या में से व्यष्टि कम हो जाते हैं।

परिक्षेपण (dispersal) : जिस दर से किसी जनसंख्या के व्यष्टि क्षेत्र से बाहर जाकर बस जाते हैं उसे परिक्षेपण दर कहते हैं।

(ii) संरचनात्मक गुण

जनसंख्या वृद्धि रूप (population growth form) : इसका अर्थ जनसंख्या वृद्धि के स्वरूप से है। जनसंख्या वृद्धि के दो स्वरूप हैं जो "J" और "S" रूपी वृद्धि वक्रों द्वारा दर्शाए जाते हैं। जानकारी के लिए चित्र 1.5 देखिए।

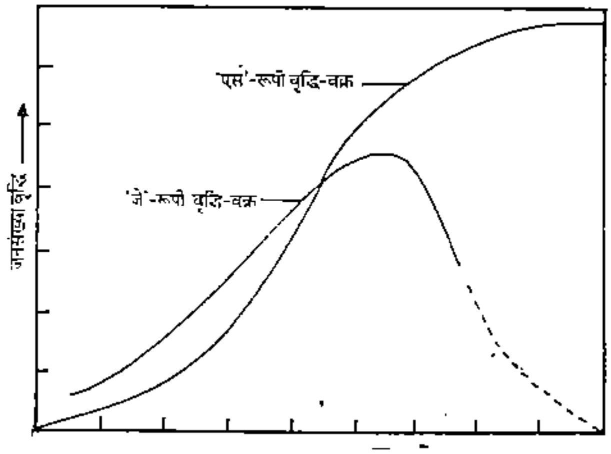

चित्र 1.5 : जनसंख्या वृद्धि के दो प्रकार के वक्र (S- रूपी और J- रूपी)

विभिन्न जीवों और पर्यावरण की विशेषताओं के आधार पर जनसंख्या वृद्धि के इन दो विपर्यासी (contrasting) वक्रों को विभिन्न तरीकों से रूपांतरित या संयुक्त, या रूपांतरित और संयुक्त, दोनों किया जा सकता है। सामान्यतः J-रूपी वृद्धि वक्र उन जातियों के लिए प्ररूपी (typical) है जिनका जनन तेजी से होता है और जिन पर मौसम के अनुसार घटते-बढ़ते प्रकाश, तापमान, वर्षा जैसे पर्यावरणी कारकों का बहुत ज्यादा असर पड़ता है। इस प्रकार के वक्र में चोटी पर पहुंचने तक जनसंख्या घनत्व चरघातांकी (exponential) तरीके (ज्यामितीय श्रेणी — geometric progression 8, 16, 32, 64, 128 आदि) से तेजी से बढ़ता है। इसके बाद पर्यावरणी या अन्य कारकों के कारण जनसंख्या में अचानक गिरावट या ह्रास होता है।

S-रूपी सिग्मायड् (sigmoid) वृद्धि वक्र आम तौर से जैविक जनसंख्या की विशेषता है। इस प्रकार के वक्र में जनसंख्या घनत्व में शुरू में बढ़ोतरी धीमी होती है, उसके बाद चरघातांकी वृद्धि होती है (उसी तरह जैसी कि J-ग्राफ के चरघातांकी वृद्धि में होती है)। इसके बाद जब तक संतुलन नहीं आ जाता और बना नहीं रहता तब तक पर्यावरणी प्रतिरोध (पर्यावरणी सीमाकारी कारकों का कुल जोड़ जो जीवीय विभव नहीं होने देता) में बढ़ोत्तरी के कारण यह जनसंख्या वृद्धि धीरे-धीरे कम हो जाती है।

परिक्षेपण (dispersal) स्थान में व्यष्टियों के वितरण का स्वरूप।

आयु वितरण (age distribution) : किसी जनसंख्या में विभिन्न आयु वर्ग के व्यष्टियों का अनुपात।

अब आप जनसंख्या के अधिक महत्वपूर्ण गुणों (attributes) को जान गए हैं। यह पूछना युक्तिसंगत है : जनसंख्याओं (समष्टियों) का अध्ययन कैसे किया जाता है? क्या सभी गुणों का समान महत्व है या कुछ गुण दूसरों से अधिक महत्वपूर्ण हैं? जनसंख्या विश्लेषण में जिन प्रमुख गुणों का अध्ययन किया जाता है वह जनसंख्या का घनत्व है जो चार प्राचलों (parameters) पर निर्भर है। ये प्राचल हैं : (i) जन्म दर (ii) मृत्यु दर (iii) आप्रवास (iv) उत्प्रवास (अगले पृष्ठ पर देखिए)

इस प्रकार जब-जब किसी जनसंख्या का घनत्व कम होता है या बढ़ता है हम यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि चार प्राचलों में से कौन-सा प्राचल बदल गया है।

पौधों में सक्रिय प्रवास संभव नहीं है हालांकि हवा, पानी और जंतुओं द्वारा बीजों का दूर-दूर तक परिक्षेपण हो सकता है।

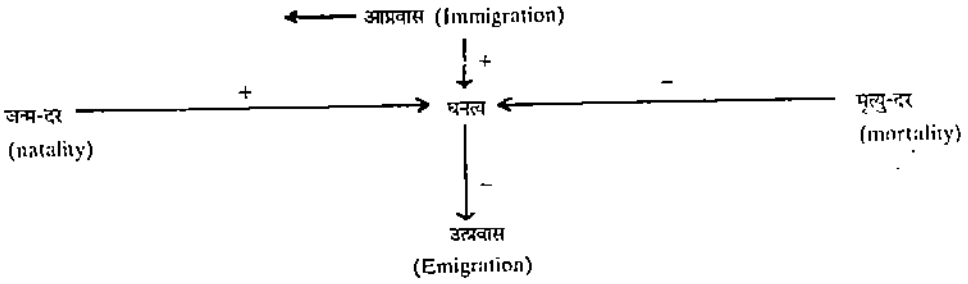

1.5 समुदाय

अगर आप अपने चारों ओर निगाह डालें तो आप देखेंगे कि पौधों और जंतुओं की जनसंख्या अपने आप नहीं बन जाती। इसका कारण बहुत स्पष्ट है। जीवित बने रहने के लिए किसी एक जाति के व्यष्टि दूसरी जाति के व्यष्टियों पर निर्भर हैं जिसके साथ वे अनेक तरीकों से सक्रिय रूप से पारस्परिक क्रिया करते हैं। गिलहरियों को खाने के लिए फलों और गिरीदार फलों (nuts) तथा आश्रय के लिए पेड़ों की आवश्यकता पड़ती है। पौधे भी अकेले अपने बूते पर अपना अस्तित्व बनाए नहीं रह सकते। बीच परिक्षेपण और परागण (pollination) के लिए उन्हें जंतुओं की आवश्यकता पड़ती है तथा मृदा सूक्ष्मजीवों (microorganism) की आवश्यकता पड़ती है जो अपघटन (decomposition) द्वारा उन्हें पोषण की सप्लाई पहुंचाते हैं।

प्रकृति में किसी क्षेत्र में आपसी सहनशीलता और एक दूसरे के प्रति पर्यावरण से लाभकारी पारस्परिक क्रिया करते हुए साथ-साथ रहने वाली विभिन्न जातियों (पौधों और/या जंतु) की आबादी के पुंज से जीवीय (biotic) समुदाय बनता है।

अधिकतर मामलों में समुदायों का नाम प्रमुख (dominant) पादप जातियों के ऊपर रखा जाता है। उदाहरण के लिए घास स्थल में घासों की प्रमुखता रहती है हालांकि इसमें शाकों, झाड़ियों और वृक्षों के साथ-साथ विभिन्न जातियों के संबंध जंतु भी हो सकते हैं।

समुदाय के बारे में अब तक दिए गए विवरण और उसकी परिभाषा से आप यह अवश्य समझ गए होंगे कि समुदाय का आकार स्थिर या दृढ़ नहीं है। समुदाय बड़े या छोटे हो सकते हैं।

1.5.1 समुदाय के प्रकार

आकार और तुलनात्मक आत्मनिर्भरता के आधार पर समुदाय दो प्रकार के होते हैं।

(i) प्रमुख समुदाय (major community) : ये बड़े आकार के सुसंगठित और अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर हैं। ये बाहर से केवल सौर ऊर्जा पर निर्भर हैं और निकटवर्ती समुदायों के निवेश और उत्पाद से आत्मनिर्भर है। भारतवर्ष के उत्तर पूर्व में उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वन प्रमुख समुदाय का एक अच्छा उदाहरण है।

किसी चट्टान पर लाइकेन (lichen) की छोटी सी परत, गाय का गोबर, दूर तक फैला एक जंगल, मूंगा चट्टान आदि सभी समुदाय के उदाहरण हैं, क्योंकि इन सभी में विभिन्न प्रकार की जीवों की परस्पर क्रिया करती हुई और एक दूसरे पर निर्भर जनसंख्या है।

(ii) लघु समुदाय (minor community) : ये पड़ोसी समुदायों पर निर्भर हैं और प्रायः समाज (societies) कहलाते हैं। ये प्रमुख समुदाय के भीतर ही गौण समूह है और इसलिए जहाँ तक ऊर्जा तथा पोषक गतिशीलता का संबंध है ये पूरी तरह से आत्मनिर्भर इकाइयां नहीं है। उपला (गाय का गोबर) इस तरह के समुदाय का एक अच्छा उदाहरण है।

1.5.2 वृद्धि, रूप और संरचना

एक समुदाय में जातियों की संख्या और उनकी आबादी का आकार बहुत तरह का हो सकता है। एक समुदाय में एक या अनेक जातियां हो सकती है। पर्यावरणी कारक समुदाय का लक्षण और समुदाय में सदस्यों के संगठन का स्वरूप निश्चित करते हैं। समुदाय का विशिष्ट स्वरूप एक संरचना कहलाता है जो विभिन्न आबादियों द्वारा निभाई गई भूमिकाओं, उनकी परास (range), उनके रहने के क्षेत्र के प्रकार, समुदाय में जातियों की विविधता और उनके बीच पारस्परिक क्रिया के स्पेक्ट्रम (spectrum) में प्रतिबिंबित होता है। फलस्वरूप किसी समुदाय की संरचना इस तरह की होती है—

(i) प्रमुखता (Dominance)

हरेक समुदाय में कुछ ओवर टॉपिंग (over topping) जातियां भारी संख्या में होती हैं। अपनी अधिक संख्या या जीव भार (biomass) के कारण, प्रमुख जातियां समुदाय की दूसरी जातियों के आवास की विशिष्टता में परिवर्तन कर देती हैं और उनकी वृद्धि को प्रभावित करती हैं। अधिकतर समुदायों में केवल एक जाति विशेष रूप से ध्यानाकर्षी होने के कारण प्रमुख होती है और ऐसे मामले में समुदाय का नाम प्रमुख जाति पर रखा जाता है। जैसे कि उदाहरण के लिए स्प्रूसवन समुदाय। लेकिन कुछ समुदायों में एक से अधिक प्रमुख जातियां हो सकती हैं, जैसे कि पश्चिमी हिमालय में ओक-फ़र वन।

(ii) जाति विविधता

समुदाय का एक महत्वपूर्ण गुण इसकी जातियों की विविधता है। विविधता का परिकलन, जातियों की संख्या (richness)

और हरेक जाति की प्रचुरता (evenness) दोनों के आधार पर किया जाता है। तुलनात्मक प्रचुरता एक समुदाय में विभिन्न जातियों के तुलनात्मक अनुपात का एक माप है। जातियों की संख्या जितनी अधिक होगी और जितने समान रूप से उनका वितरण होगा, उनकी विविधता भी उतनी ही अधिक होगी।

आप के लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि जातियों की विविधता और प्रमुखता परस्पर संबंधित हैं। जिन समुदायों में एक या थोड़ी सी जातियां प्रमुख होती हैं उनमें जाति विविधता कम होती है जबकि उन समुदायों में जहां कोई एक जाति वास्तव में प्रमुख नहीं है और सभी जातियों में व्यष्टि समान रूप से वितरित है जातियों की विविधता ज्यादा देखने को मिलती है।

विविधता समुदाय के स्थायित्व से भी संबंधित है। स्थायी समुदाय वह है जो किसी भी तरह से अस्त-व्यस्त किए जाने के बाद अपनी मूल अवस्था में लौट सकने में सक्षम हो। जिन समुदायों में जातियों की विविधता ज्यादा है वे अपेक्षाकृत अधिक स्थायी है क्योंकि ऐसे समुदायों में अनेक विकल्पी रास्ते होते हैं जो व्यष्टियों को अपेक्षित ऊर्जा और पोषक पदार्थ प्राप्त करने के लिए सक्षम बनाते हैं। दूसरी तरह से हम कह सकते हैं कि भारी संख्या में जातियों की उपस्थिति का अर्थ है कि अगर एक जाति समाप्त हो जाती है तो दूसरी जाति कम से कम आंशिक रूप से तो उसका प्रकार्य (function) और स्थान ग्रहण कर सकती है। लेकिन अब इसका तेजी से एहसास होने लगा है कि कुछ परिस्थितियों में यह आवश्यक नहीं है कि बहुत ज्यादा विविधता के फलस्वरूप स्थायित्व भी बहुत ज्यादा हो। स्थायित्व उपस्थित जातियों की कुल संख्या की बजाय सुअनुकूलित जातियों की संख्या पर निर्भर है। मनुष्य द्वारा निर्मित समुदाय जैसे कि लॉन (lawn) या कृषि के खेत बहुत अस्थायी हैं और उन्हें लगातार हस्त-कौशल और रख-रखाव की आवश्यकता होती है।

(iii) समुदाय के व्यष्टियों के पारस्परिक संबंध

विभिन्न जीव एक दूसरे पर जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं वे सब पारस्परिक संबंधों में शामिल हैं। हम जिन तीन संबंधों की चर्चा करेंगे वे हैं (क) प्रतियोगिता, (ख) स्तरण, और (ग) निर्भरता।

(क) प्रतियोगिता (Competition)

विभिन्न जीवों द्वारा समान संसाधन की मांग प्रतियोगिता को जन्म देती है। विभिन्न जातियों के बीच प्रतियोगिता अंतर्जातिय (interspecific) और एक ही जाति के व्यष्टियों के बीच होने वाली प्रतियोगिता अंतःजातीय (intraspecific) कहलाती है।

(ख) स्तरण (Stratification)

एक समुदाय में विभिन्न जीव स्तरण के विशिष्ट स्वरूप विकसित कर लेते हैं ताकि समुदाय के सदस्यों के बीच स्पर्धा और विरोध कम से कम हो जाए। प्रत्येक स्तर के पौधे और जन्तु आकार, व्यवहार और अनुकूलन में दूसरे स्तर के पौधों और जंतुओं से भिन्न होते हैं। उष्ण-कटिबंधीय (tropical) वन उदग्र स्तरण का एक अच्छा उदाहरण है, जैसा कि चित्र 1.6 में दिखाया गया है। लम्बे उग रहे पेड़ ऊपरी मंजिल बनाते हैं और अपने नीचे उग रहे छोटे पेड़ों के लिए प्रकाश और नमी की परिस्थितियों में काफी-कुछ परिवर्तन कर देते हैं। बदले में ये अपनी ओर से जमीन की वनस्पति के लिए परिस्थितियां तय करते हैं। एक वन में पाँच या छह स्तर हो सकते हैं और इस प्रकार इसमें जीवों के लिए विविध प्रकार के आवास मिल जाते हैं।

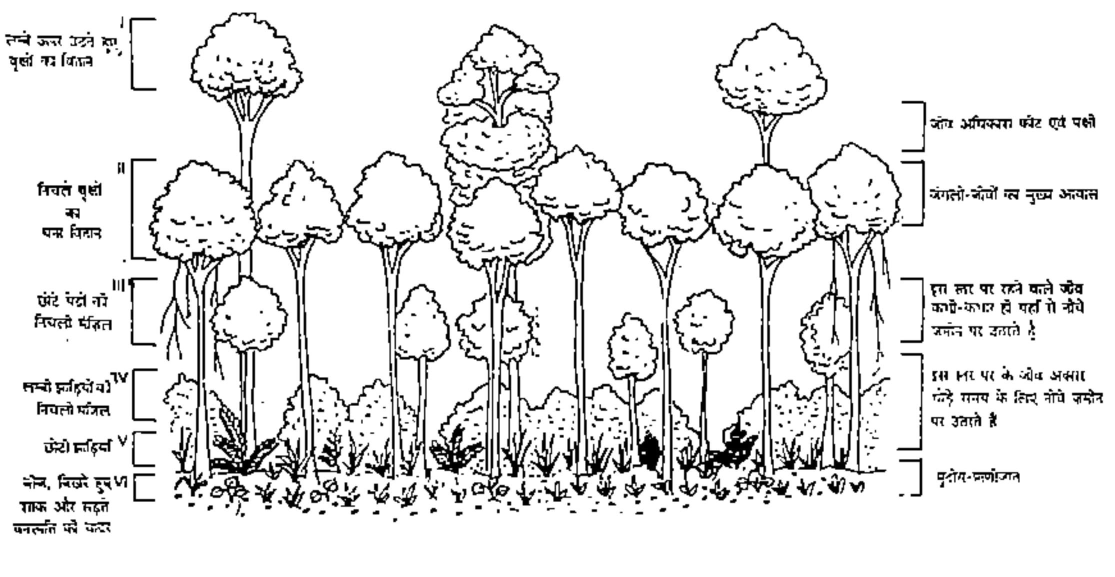

चित्र 1.6 : समुदाय में प्रतियोगिता से बचने के लिए जीव उदग्र/खड़ा स्तरण दर्शाते हैं, जैसा कि किसी उष्ण कटिबंधी वन के एक खंड में दिखाई दे रहा है जिसमें वनस्पति के पांच या छह स्तर तक हो सकते हैं, जो जीवों के लिए अनेक आवास उपलब्ध कराते हैं।

समुदाय में स्पर्धा एक जाति के अंदर आपस तक ही सीमित नहीं है। विभिन्न जातियां पोषकों, स्थान, रोशनी और अन्य संसाधनों के लिए एक दूसरे से स्पर्धा करती हैं। प्रत्येक स्तर के पौधे और जंतु दूसरे स्तर के पौधों और जंतुओं से आकार, व्यवहार के प्रकार और अनुकूलन में भिन्न होते हैं। अंतर्जातीय प्रतिस्पर्धा को न्यूनतम करने के लिए स्तरण एक व्यावहारिक नीति है। अंतर्जातीय स्पर्धा का अर्थ विभिन्न जातियों के बीच प्रतिस्पर्धा से है। उदाहरण के लिए अगर अनेक भिन्न-भिन्न जातियां साथ-साथ विकसित हों और उनकी मांग एक जैसी हो, तब वे सभी लगभग समान संख्या में बची और बनी रहेंगी तथा समुदाय में एक ही स्थिति (प्रमुख या अप्रमुख) और स्तर में रहेंगी। वे जातियां जिन की आवश्यकताएं अतिव्याप्त नहीं होती वे एक-दूसरे पर बहुत कम प्रभाव डालेंगी और इसलिए वे समुदाय में भिन्न प्रकार्यात्मक (functional) स्थितियों में या उप-स्तरों (layers) में रहेंगी। उदाहरण के लिए एक लम्बे उग रहे पेड़ को लीजिए, जो उन्हीं परिस्थितियों में उग रहे प्रच्छन्न रूप से छोटे-छोटे पेड़ों से ऊपर निकल जाता है और ऊपर का स्तर घेर लेता है। व्यापक वितान (canopy) वाले लम्बे पेड़ क्षेत्र में प्रमुख होते हैं और प्रकाश तथा नमी परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं। फलस्वरूप वन समुदाय में लम्बे पेड़ विशेषता या अभिलक्षण को नियंत्रित करते हैं। जीवों की केवल वही जातियां बची रह सकती हैं जो प्रमुख जातियों द्वारा उत्पन्न की गई पर्यावरणीय परिस्थितियों का सामना कर सकें। अगर किसी कारण से प्रमुख जातियां समाप्त हो जाती हैं तो समुदाय की विशेषताएं बदल जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि प्रमुखता की स्थिति किसी दूसरी जाति द्वारा संभाल ली जाती है। अल्पतर स्तर (lesser strata) में मौजूद अप्रमुख जातियां शायद प्रमुख जातियों से सीधी होड़ कम ही कर पाती हैं। लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से पुनरुत्पादन (regeneration) के मामलों में वे प्रमुख जातियों से भारी टक्कर ले सकती हैं। प्रमुख जाति को सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि अपनी वृद्धि की प्रारंभिक अवस्था के दौरान यह दूसरी जातियों के साथ टक्कर ले सकें। उत्तरजीविता (जीवित बचे रहने) के लिए विभिन्न जातियों की पौध (seedling) के बीच स्पर्धा सर्वाधिक स्पष्ट है क्योंकि सभी एक ही सीमित पर्यावरण पर निर्भर हैं।

(ग) निर्भरता (Dependence)

समुदाय में कुछ जातियां ऐसी हैं जो बचे रहने के लिए प्रमुख सदस्य पर पूर्णतया निर्भर है। ब्रायोफाइट (bryophytes) थैलोफाइट (thallophytes) और कुछ संवहनी (vascular) छोटे पौधे ऐसे जीवों के उदाहरण हैं। इन पर निर्भर जीवों को विशेष परिस्थितियों, जैसे कि छाया और नमी, की आवश्यकता होती है जो इन्हें प्रमुख जातियों द्वारा मिलती है। अगर प्रमुख जातियां खत्म हो जाती हैं तो निर्भर जातियां मर जाएंगी।

किसी समुदाय में रहने वाले जंतु आम तौर पर पौधों पर निर्भर रहते हैं। गतिशील बड़े जंतु, जैसे कि हिरण, अनिवार्य रूप से किसी एक समुदाय तक सीमित नहीं है। लेकिन अनेक कम गतिशील जातियां निश्चित रूप से एक ही समुदाय तक सीमित रहती है। उदाहरण के लिए कीटों और पक्षियों की कुछ जातियों का एक विशेष प्रकार की वनस्पति से विशिष्ट साहचर्य होता है।

किसी समुदाय के जीवों के बीच परस्पर क्रिया के अतिरिक्त वे अपने पर्यावरण के साथ भी सक्रिय रूप से परस्पर क्रिया करते हैं। किसी समुदाय में केवल वे पौधे और जंतु ही बचे रहते हैं जो प्राप्त पर्यावरण के अनुकूल हैं। जलवायु पर्यावरण के प्रकार को तय करती है और इसलिए समुदाय में जीवों के प्रकार को भी निर्धारित करती है। उदाहरण के लिए यह जलवायु में होने वाला परिवर्तन ही है जो यह निश्चित करता है कि कोई क्षेत्र रेगिस्तान बन जाएगा या वन। अपनी बारी में क्षेत्र का पर्यावरण यह तय करता है कि जो जीव बचे रहेंगे वे किस प्रकार के होंगे।

(iv) पोषी संरचना (Trophic structure)

समुदाय में जीव अपने भरण संबंधों के माध्यम से एक दूसरे से गहरे रूप से परस्पर संबंधित हैं।

समुदाय में बिल्कुल स्पष्ट दूसरा पक्ष यह है कि चरम जलवायु परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में जातियों की विविधता और संख्या बहुत ज्यादा घट जाती है। इसका कारण यह है कि केवल कुछ ही जातियां अपने को कठिन पर्यावरण के अनुकूल बना पाती हैं।

जो समुदाय व्यापक क्षेत्रों तक फैले हुए हैं उनकी मृदा या स्थलाकृति (topography) की स्थानिक परिस्थितियां भी अक्सर विविध होती हैं। इस प्रकार किसी समुदाय में स्थानिक आवास एक दम से भिन्न जातियों को शरण दे सकता है जो सामान्य समुदाय संघटन से बहुत भिन्न है।

एक समुदाय के सदस्य एक ही आवास क्षेत्र और इसके संसाधनों का इस्तेमाल करते हैं। एक समुदाय किसी क्षेत्र में रहने वाले केवल जीवित जीवों का प्रतिनिधित्व करता है। जब जीवित और अजीवित, दोनों घटक एक समन्वित इकाई के रूप में लिए जाते हैं, तो हम पारितंत्र की बात करते हैं। पारितंत्र एक संकल्पना है जिस के बारे में अगले उप-भाग में विचार किया जाएगा।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिए गए कथनों का सत्य या असत्य के रूप में पहचानिए। सामने दिए गए कोष्ठकों में सही कथन के सामने "सही" और गलत कथन के सामने "गलत" लिखिए।

क) अगर उत्प्रवास (emigration) बढ़ता है तो जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाएगा। (   )

ख) अगर मृत्यु-दर बढ़ जाती है तो जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाएगा। (   )

ग) किसी जीव की वृद्धि-दर केवल जनसंख्या पर मापी जा सकती है। (   )

घ) जीव विज्ञानीय जनसंख्याओं में जनसंख्या वृद्धि का "J" ग्राफ अधिक सामान्य है। ( )

च) समुदाय में जातियों की विविधता स्थायित्व की वजह से हमेशा ही अधिक होती है। ( )

छ) अगर पर्यावरणी परिस्थितियां बदल जाएं तो प्रमुख जाति समाप्त हो सकती है। ( )

ज) वन में टीक (teak) वृक्ष और कुंज (scrub) वनस्पति एक ही स्तर पर होते हैं। ( )

झ) जातियों की विविधता केवल जातियों की संख्या के आधार पर परिकलित की जाती है। ( )

1.6 पारितंत्र (Ecosystem)

पौधे, जंतु और मानव दूसरे पौधों और जंतुओं की ढेर सारी किस्मों के साथ रहते हैं। जीवों के ये समुदाय व्यष्टियों या जनसंख्याओं के मात्र तदर्थ संग्रह नहीं हैं, वल्कि ये एक अत्यधिक सुव्यवस्थित गतिशील और जटिल संगठन के द्योतक हैं। अपने जीवीय और अजीवीय पर्यावरणों सहित ऐसा संगठन, जो इन पर्यावरणों का नियंत्रण करता है और जिससे जीवित जीव अपना निर्वाह करते हैं, तकनीकी रूप से "पारितंत्र" या "पारिस्थितिकीय तंत्र" कहलाता है।

जीवित जीवों और उनके पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रिया एक दुतरफा रास्ता है : जीव अपने पास-पड़ोस को प्रभावित करते हैं और बदले में आस-पड़ोस द्वारा प्रभावित होते हैं। ब्रिटेन के वनस्पति विज्ञानी प्रोफेसर आर्थर टेन्स्ले ने 1935 में "इकोसिस्टम" (पारितंत्र) शब्द प्रस्तावित किया और इसे पर्यावरण के सभी जीवित और अजीवित कारकों के एकीकरण से जन्मे तंत्र के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने पारितंत्र को न केवल जीव काँप्लेक्स बल्कि पर्यावरण बनाने वाले भौतिक कारकों का सम्पूर्ण काँप्लेक्स माना।

इस परस्पर क्रियाशील तंत्र की संकल्पना अत्यंत मूल्यवान सिद्ध हुई है और पारिस्थितिकीय अध्ययनों के लिए पारितंत्र एक मूल इकाई मानी जाती है।

1.6.1 पारितंत्र के घटक

पारितंत्र के घटक जीवीय और अजीवीय घटकों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं।

अजीवीय घटक (Abiotic components)

पर्यावरण और पारितंत्र के जीवीय और आजीवीय घटक एक ही होते हैं।

1) **ऊर्जा** : मूल रूप से सूर्य से प्राप्त ऊर्जा जीवन को बनाए रखने के लिए अपरिहार्य है। पौधों के मामले में सूर्य सीधे ही आवश्यक ऊर्जा सप्लाई करता है। जंतु सौर ऊर्जा का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकते बल्कि पौधों या जंतुओं या दोनों को खाकर अप्रत्यक्ष रूप से सौर ऊर्जा को काम में लाते हैं।

2) **पदार्थ** : (i) कार्बनिक यौगिक-प्रोटीन (proteins), कार्बोहाइड्रेट्स (carbohydrates), लिपिड्स (lipids), ह्यूमस (humus) जैसे कार्बनिक पदार्थ (organic) जो कि अकार्बनिक पदार्थों से बनते हैं अपघटन के बाद फिर से अकार्बनिक पदार्थों में बदल जाते हैं; (ii) अकार्बनिक पदार्थ—जैसे कि ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन, कार्बन डाइऑक्साइड, जल, गंधक, नाइट्रेट्स, फॉस्फेट्स अनेक धातुओं की जीवों की उत्तरजीविता (survival) के लिए अत्यावश्यक है। (iii) जलवायु कारक : प्रकाश, गर्मी, तापमान, पवन, आर्द्रता (नमी), वर्षा हिमपात आदि। (iv) मृदीय कारक : (मृदा की संरचना और उसके भौतिक एवं रसायनिक अभिलक्षण) भी जीवों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

जीवीय घटक (Biotic components) : इनमें पौधे, जंतु, और अपघटक (decomposers) शामिल हैं और प्रकार्यात्मक गुणों के अनुसार इन्हें उत्पादकों और उपभोक्ताओं में वर्गीकृत किया जाता है।

(क) उत्पादक — स्वपोषी (autotrophs) अपना पोषण स्वयं करने वाले हरे पौधे हैं। ये अपने और अप्रत्यक्ष रूप से दूसरे गैर-उत्पादकों के लिए प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा धूप में कार्बन डाइऑक्साइड और पानी जैसे सरल अकार्बनिक पदार्थों से कार्बोहाइड्रेट्स संश्लेषित करते हैं। स्थलीय पारितंत्र में उत्पादक मूलतया शाकीय और काष्ठीय उत्पादक हैं जबकि समुद्र और अलवण जल पारितंत्र में सूक्ष्मदर्शीय शैवाल की अनेक जातियां उत्पादक हैं। रसायन संश्लेषी (chemosynthetic) जीवाणु भी उत्पादक हैं। लेकिन ये जीवाणु उस तरह ऊर्जा प्राप्त नहीं करते जैसे कि पौधे करते हैं जो कि प्रमुख उत्पादक हैं। ये जीवाणु गहरे समुद्र की खाइयों में पाए जाते हैं जहां सौर ऊर्जा नहीं है और वे समुद्र-तल की दरारों से रिसने वाली हाइड्रोजन सल्फाइड से रसायन संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

(ख) उपभोक्ता परपोषित (hetrotrophs) — वे हैं जो प्रकाश संश्लेषण करने में अक्षम हैं और जंतुओं, पौधों या दोनों से प्राप्त कार्बनिक खाद्य पर निर्भर है। उपभोक्ताओं को दो मोटे समूहों में बांटा जा सकता है जैसे कि स्थूल (macro) उपभोक्ता और सूक्ष्म (micro) उपभोक्ता। (i) स्थूल उपभोक्ता या भक्षपोषी (phagotrophs), पौधों, जंतुओं या दोनों का अशन (feed) करते हैं और अपने खाद्य स्रोतों के आधार पर विभाजित किए जाते हैं। शाकाहारी मुख्य रूप से पौधों पर अशन करने वाले प्राथमिक उपभोक्ता हैं जैसे कि गाय, खरगोश। मांसाहारी केवल जंतुओं का आहार करते हैं। इनमें द्वितीयक उपभोक्ता जैसे भेड़िया, उपभोक्ताओं को खाते हैं। द्वितीयक उपभोक्ताओं पर अशन करने वाले मांसाहारी तृतीयक उपभोक्ता कहलाते हैं, जैसे कि शेर जो भेड़ियों को खा सकता है। ऐसे जीव जो पौधों

और जंतुओं, दोनों को खा सकता है सर्वभक्षी (ominvores) कहलाते हैं, जैसे कि आदमी। (ii) सूक्ष्म उपभोक्ता मृतपोषित (saprotrophs), अपघटक (decomposers) या ऑस्मोट्राफ (osmotrophs), मुख्य रूप से जीवाणु और कवक (fungi) हैं जो पादप और जंतु मूल के अपघटनी मृत कार्बनिक पदार्थों (organic matter-detritus) से ऊर्जा और पोषक प्राप्त करते हैं। अपघटन के कुछ उत्पाद, जैसे कि पारितंत्र में निर्मुक्त अकार्बनिक पोषक उत्पादकों द्वारा पुनः काम में ले लिए जाते हैं और इस प्रकार पुनः चक्रित हो जाते हैं। केंचुए और कुछ मृदा जीव जैसे सूत्रकृमि (nematodes) और संघिपाद (arthropods) मलबा (detritus) खाने वाले हैं और कार्बनिक पदार्थ के अपघटन में सहायता करते हैं।

1.6.2 पारितंत्र का आकार

जैसा कि आप जानते हैं पारितंत्र एक गोबर के उपले जितना छोटा और सरल हो सकता है या महासागर या स्वयं जीवमंडल जितना बड़ा और जटिल हो सकता है जिसमें जातियों की भरी पूरी किस्में हों। देखने वाली एक दिलचस्प बात यह है कि पारितंत्र के भीतर पारितंत्र स्थित होता है। उदाहरण के लिए गोबर पारितंत्र वन पारितंत्र में हो सकता है और वन पारितंत्र स्वयं जीवमंडल में स्थित है।

कुछ मामलों में, जैसे कि तालाब पारितंत्र, सीमाएं सुनिर्धारित होती हैं। वनों, घासस्थलों और मरुस्थलों के मामले में सुनिश्चित सीमाएं नहीं होती। ये पारितंत्र प्रायः संलग्न पारितंत्र में एक संक्रमण जोन (transition zone) या विसरित (diffused) सीमा जोन द्वारा अलग किया जाता है जिसे संक्रमिका (ecotone) कहते हैं। संलग्न पारितंत्रों के जीव संक्रमिका जोन में घुल मिल जाते हैं। परिणामस्वरूप इनमें पड़ोसी पारितंत्रों की अपेक्षा जातियों की विविधता अधिक मिलती है।

1.6.3 पारितंत्र के प्रकार

मूलरूप से पारितंत्र दो प्रकार के होते हैं : स्थलीय और जलीय। अगर आप हिमालय क्षेत्र में मैदानों से पहाड़ों की ओर यात्रा करें तो भू-दृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखेंगे। मरुस्थल, घासस्थल, फसलों के खेत, वन और हिमनद (glacier) विभिन्न स्थलीय पारितंत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। महासागर ज्वारनदमुख (estuaries), मैंग्रोव, तटीय कच्छ (coastal marshes) झीलें, तालाब और अनूप (swamps) जलीय पारितंत्र के उदाहरण हैं।

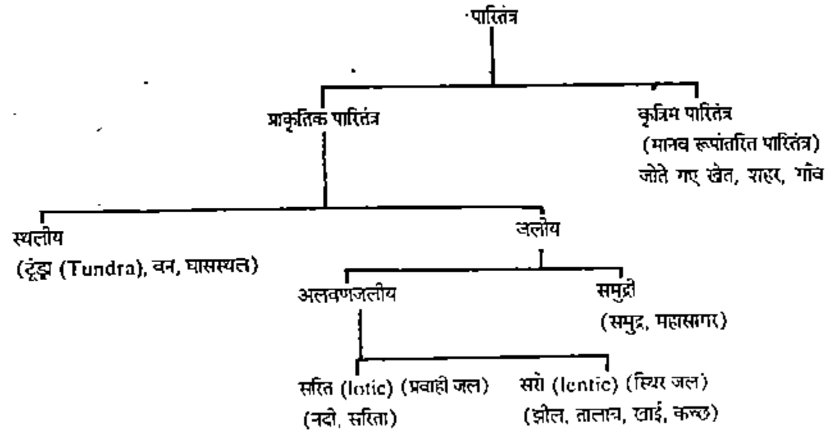

पारितंत्र के उपप्रभाग

पारितंत्रों को भी दो समूहों में रखा जा सकता है : प्राकृतिक और कृत्रिम या मानव निर्मित।

1) **प्राकृतिक पारितंत्र** वे हैं जो मानव उत्पात से ज्यादातर मुक्त हैं। जैसे उष्ण कटिबंधी वन, घासस्थल, महासागर, झीलें और मरुस्थल।

2) **प्राकृतिक पारितंत्रों के मानव रूपांतरण (modification)** के परिणामस्वरूप कृत्रिम या मनुष्य रूपांतरित पारितंत्र बनते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य ने प्राकृतिक वनों और घासस्थलों को फसल के खेतों में बदल डाला है। कृत्रिम पारितंत्र का चरम उदाहरण शहर है। मानव के बढ़ते हुए हस्तक्षेप ने अनेक प्राकृतिक पारितंत्रों को नष्ट कर दिया है और उनकी जगह कृत्रिम पारितंत्र बना डाले हैं जैसे कि फसलों के खेत, नगर-केन्द्र और औद्योगिक संपदाएं।

सभी पारितंत्र आस-पड़ोस के पारितंत्रों से पूरी तरह से एकता बनाए रखते हैं और ऊर्जा तथा पोषकों, दोनों के आयात और निर्यात द्वारा एक दूसरे से न्यूनाधिक मात्रा में संपर्क बनाए रखते हैं।

पदार्थ/पोषक चक्रण पारितंत्र के जीवित और अजीवित घटकों के बीच खनिज और रसायन का होने वाला पुनः चक्रण का नाम है।

पारितंत्र एक गतिशील तंत्र है। ऊर्जा प्रवाह और पोषक चक्रण इसके विशेष लक्षण हैं। इसके माध्यम से पदार्थ लगातार प्रवाहित होते रहते हैं और इस प्रवाह को बनाए रखने के लिए पारितंत्र के अपने अंदर ऊर्जा की पर्याप्त सप्लाई है। पारितंत्रों में पर्याप्त आत्म-नियमन क्षमता है जो समस्थापन कहलाती है जिसके कारण ये छोटी-मोटी अस्त-व्यस्तता को झेल जाते हैं।

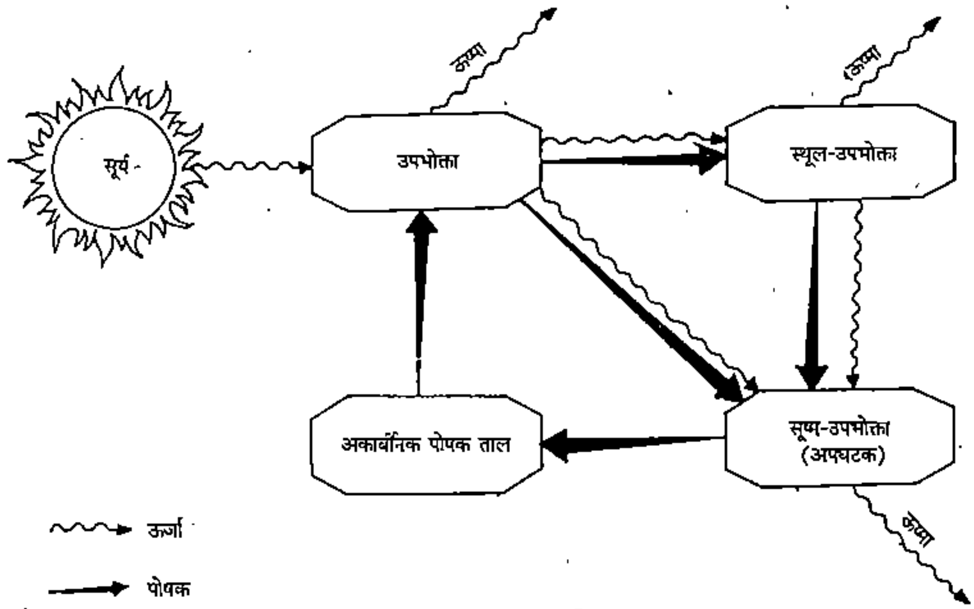

चित्र 1.7 : पारितंत्र में पोषक पदार्थों का चक्र किस तरीके से घूमता है यह दर्शाने वाला चित्र ऊर्जा का कोई चक्र नहीं है क्योंकि सूर्य से जितना भी लिया जाता है उसका आखिर में ऊष्मा के रूप में क्षय हो जाता है।

बोध प्रश्न 5

नीचे दी गई सूची में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थान में भरिए :

क) .... उत्पादकों द्वारा प्रारंभिक उपयोग के लिए पदार्थों का पुनःचक्रण करते हैं।

ख) मांसाहारी केवल .... का आहार करते हैं।

ग) जीवीय समुदाय के केवल .... द्वारा ऊर्जा ग्रहण की जाती है और खाद्य में बदल दी जाती है।

घ) रसायन पारितंत्र में .... करते हैं जबकि ऊर्जा .... होती है।

च) जीवीय समुदाय अपने भौतिक पर्यावरण से परस्पर क्रिया करते हुए एक .... का गठन करते हैं।

छ) संलग्न पारितंत्र अक्सर एक दूसरे से एक संक्रमण जोन द्वारा अलग रखे जाते हैं जिसे .... कहते हैं।

(जंतु, पारितंत्र, मृतपोषित (saprotrophs), संक्रमिका (ecotone), प्रवाह, उत्पादक चक्र)

1.7 जीवमंडल

जीवमंडल पृथ्वी का वह भाग है जहां जीवन का अस्तित्व संभव है। यह पृथ्वी के चारों ओर एक पतली परत है। अगर आप पृथ्वी को सेब के आकार का मानें तो जीवमंडल की मोटाई इसकी त्वचा जितनी होगी।

जैसा कि आप चित्र 1.8 में देख सकते हैं, जीवमंडल पृथ्वी की सतह से लगभग 11000 मीटर नीचे महासागर के अधस्तल (sea-floor) से लेकर सबसे ऊंचे पहाड़ की चोटी तक या समुद्र तल से लगभग 9,000 मीटर ऊपर तक जाता है। इसका सबसे घनी आबादी वाला क्षेत्र समुद्र तल से एक दम ऊपर और नीचे वाला है।

जीवमंडल एक अत्यधिक एकीकृत परस्पर क्रियाशील जोन है जिसमें वायुमंडल, जलमंडल और स्थलमंडल शामिल है (चित्र 1.9)।

जीवमंडल में जीवन समुद्र की सतह से 200 मीटर (660 फीट) नीचे और समुद्र तल से लगभग 600 मीटर (20,000 फीट) ऊपर के बीच प्रचुर मात्रा में होता है (चित्र 1.8)।

जीवमंडल उत्तर और दक्षिण ध्रुव के छोर पर सबसे ऊंचे पहाड़ों और सबसे गहरे समुद्रों में नहीं होता क्योंकि वहां की परिस्थितियां जीवन को सहारा नहीं देती। कभी कभार 9,000 मीटर से ज्यादा की बड़ी-बड़ी ऊंचाइयों पर कवक के बीजाणु और जीवाणु (spores of fungi) पाए जाते हैं लेकिन वे चयापचयी रूप से (metabolically) सक्रिय नहीं है और इसलिए केवल प्रसुप्त (dormant) जीव हैं।

जीवमंडल के भीतर मौजूद जीवन के लिए जिस ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है वह सूर्य से मिलती है। जीवित जीवों के लिए आवश्यक पोषक बाहर से नहीं बल्कि हवा, पानी और मिट्टी से प्राप्त होते हैं। जीवन के चलते रहने के लिए वही रसायन बार-बार पुनः चक्रित होते हैं। जीवित जीव जीवमंडल में एक समान रूप से वितरित नहीं है। ध्रुवीय प्रदेशों में कुछ ही जीव रहते हैं, जब कि ऊष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों में पौधों और जंतुओं की विविधता की भरमार है।

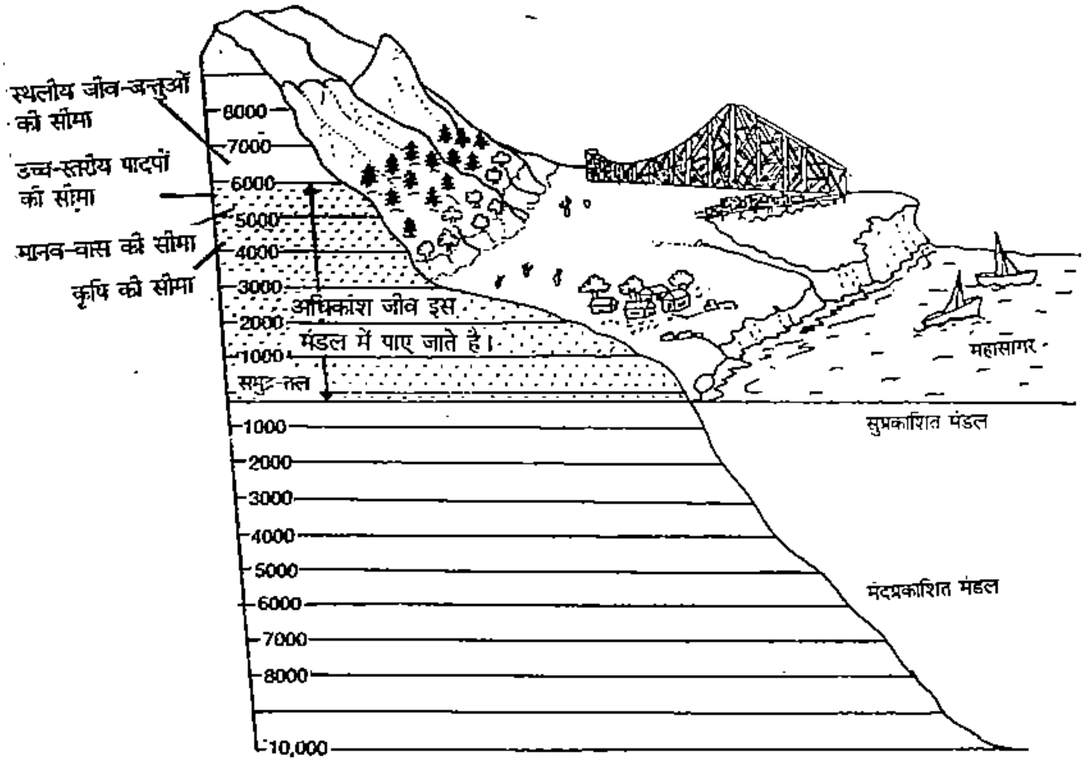

चित्र 1.8 : जीवमंडल की उदग्र विमाएं (vertical dimensions) सबसे ऊंचे पहाड़ की चोटी से लेकर महासागर की गहराई तक जीवन है। लेकिन चरम परिस्थितियों में जीवन दुर्लभ ही देखने में आता है। अधिकतर जीव एक पतले क्षेत्र तक सीमित हैं जो यहां समुद्र तल से 6,000 मीटर ऊपर और 200 मीटर नीचे के बीच दर्शाया गया है।

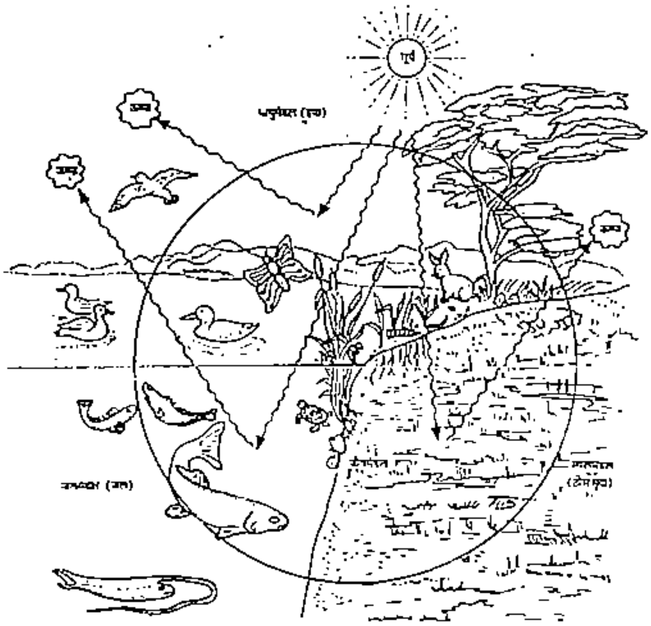

चित्र 1.9 : स्थलमंडल, वायुमंडल और जलमंडल के प्रतिच्छेद (intersection) पर जीवमंडल होता है। जैसा कि यहां दिखाया गया है, जीवमंडल धूप से ऊर्जित होता है।

1.8 सारांश

आपने इस इकाई में निम्नलिखित का अध्ययन किया है :

- पारिस्थितिकी : जीवित जीवों का एक दूसरे से और अपने पर्यावरण से संबंध।
- भारतवर्ष में पारिस्थितिकी के विकास के विशेष संदर्भ सहित आदि मानव से लेकर वर्तमान काल तक पारिस्थितिकी का इतिहास।

- पारिस्थितिकी का निम्न प्रकार उप विभाजन :
  i) स्वपारिस्थितिकी — एक अकेली जाति के व्यष्टियों या समष्टियों का उनके पर्यावरण के विषय में अध्ययन।
  ii) संपारिस्थितिकी — भिन्न-भिन्न जातियों की परस्पर क्रियाशील समष्टियों का अध्ययन।
  iii) आवास पारिस्थितिकी — आवास एवं/अथवा इनमें स्थित जीवों के विषय का अध्ययन।
- पारिस्थितिकी का जीव विज्ञान की अन्य शाखाओं, जैसे वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, आदिजंतु विज्ञान के साथ संबंध।
- पर्यावरण : इसमें जीवीय, अजीवीय कारक, जीवों को घेरे रहने वाले प्रभाव और घटनाएं शामिल हैं। पर्यावरण कृत्रिम या प्राकृतिक, वाह्य या आंतरिक हो सकता है।
- जनसंख्या : एक ही जाति के लैंगिक रूप से या संभाव्य रूप संकरण (interbreeding) जीवों का समूह जिनमें दो मूल तरह के गुण होते हैं : (i) संख्यात्मक गुण — घनत्व, जन्म दर, मृत्यु दर, परिक्षेपण, और (ii) संरचनात्मक गुण — जैसे वितरण, परिक्षेपण और वृद्धि रूप।
- समुदाय विभिन्न जातियों की अनेक समष्टियों का स्थानिकृत समूह है और इसे प्रमुख तथा लघु समुदायों में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- समुदाय गुणों में वृद्धि रूप और संरचना शामिल है : प्रमुखता, जाति विविधता, समुदाय के सदस्यों में पारस्परिक संबंध, और पोषी संरचना।
- पारितंत्र — जो कि समुदाय और उसके भौतिक पर्यावरण का एक स्थानिकृत समूह है, जिसका भरण-पोषण, ऊर्जा प्रवाह और पोषक चक्रण से होता है।
- पारितंत्र के घटक जैसे कि (i) अजीवीय या अजीवित पर्यावरणी कारक : ऊर्जा पदार्थ, जलवायु कारक और मृदीय कारक; (ii) जीवीय या जीवित पर्यावरणी कारक — पौधे, जंतु और अपघटक।
- प्राकृतिक पारितंत्र, जो अपरिवर्तित या मनुष्य द्वारा सिर्फ मामूली सा परिवर्तित है, और कृत्रिम पारितंत्र जो मनुष्य द्वारा प्राकृतिक पारितंत्र के प्रमुख हेर-फेर का नतीजा है।
- जीवमंडल : जिसमें पृथ्वी पर सभी जीवित जीव और विश्व स्तर पर भौतिक तथा रसायनिक पर्यावरण के साथ उनकी परस्पर क्रिया शामिल है। यह ऊर्जा उपभोग और पदार्थ चक्रण तंत्र को बनाए रखता है। यह तंत्र सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के सहारे चलता है जो उपयोग के बाद निम्न कोटि ऊष्मा (low-grade heat) के रूप में वापस वायुमंडल में लौटा दी जाती है।

1.9 अंत में कुछ प्रश्न

1. उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थान भरिए :

   क) जीवमंडल में .... और .... शामिल हैं।

   ख) मृत्यु दर और उत्प्रवास में वृद्धि से जनसंख्या का घनत्व .... है।

   ग) वन में जीवों का समूह .... समुदाय कहलाता है।

   घ) जन्म दर और आप्रवास वृद्धि के साथ जनसंख्या का घनत्व .... है।

   च) पेड़ के लट्ठे पर जीवों का समुदाय .... कहलाता है।

   (लघु, स्थलमंडल, प्रमुख, वायुमंडल, बढ़ता, घटता, जलमंडल)

2. दूसरे जीव विज्ञानीय क्षेत्रों से पारिस्थितिकी के संबंध को दर्शाने वाले जीव विज्ञान केक को लेबल कीजिए।

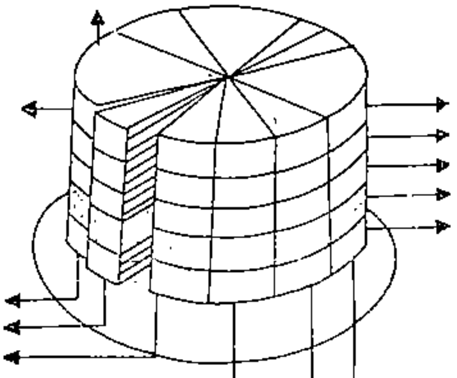

3. प्राकृतिक और कृत्रिम पारितंत्रों के बीच अंतर पाँच पंक्तियों में बताइए, और उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

4 स्थूल उपभोक्ताओं और सूक्ष्म उपभोक्ताओं के बीच अंतर पांच पंक्तिओं में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

5 नीचे महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय शब्द और उनकी परिभाषाएं दी गई हैं। आपको कालम-I में दी गई उपयुक्त परिभाषा कालम-II में दिए गए पारिस्थितिकीय शब्द से मिलान करना है। उपयुक्त मिलान की संख्या दिए गए कोष्ठक में लिखिए।

	कालम-I		कालम-II
1	पारिस्थितिकी	( )	यह किसी विशेष क्षेत्र में आवास करने वाली विभिन्न जातियों की आबादी का समूह है जो आपसी सहनशीलता और आपस में तथा अपने पर्यावरण से लाभदायक परस्पर क्रिया करते हुए साथ-साथ रहती है।
2	समुदाय	( )	इसकी जीवों के एक दूसरे से और अपने पर्यावरण से संबंध के वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषा दी जाती है।
3	पारितंत्र	( )	किसी विशेष समय पर किसी-किसी विशेष क्षेत्र में एक ही जाति के जीवों का समूह जो मुक्त रूप से मैथुन करने के लिए सक्षम है।
4	जनसंख्या	( )	यह किसी क्षेत्र में समुदाय की एक इकाई होती है जो भौतिक पर्यावरण के साथ परस्पर क्रिया करती है जिससे ऊर्जा का प्रवाह सुपरिभाषित पोषी संरचना, जीवीय विविधता और पदार्थ चक्रण होता है।

6 पारिस्थितिकी के विकास में प्राचीन यूनानी दार्शनिकों के योगदान के बारे में संक्षेप में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

7 निम्नलिखित पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों द्वारा दी गई पारिस्थितिकी की विभिन्न परिभाषाएं बताइए :

क) अर्नस्ट हीकल (दस पंक्तियाँ)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

ख) चार्ल्स एल्टन (दो पंक्तियाँ)

....

....

ग) यूजीन पी. ओडम (दो पंक्तियाँ)

....

....

8 पारिस्थितिकी के प्रभाग दर्शाने वाला चार्ट बनाइए।

9 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर बहुत ही संक्षेप में दीजिए :

क) प्रमुख जातियों से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

ख) जाति विविधता क्या है?

....

....

....

....

....

ग) तुलनात्मक प्रचुरता से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

10 जीवमंडल की उदग्र सीमा बताइए?

....

....

1.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1 चरक और सुश्रुत की संहति संहिताओं में पर्याप्त सामग्री है जो यह संकेत करती है कि उस काल के लोगों को जंतु और पादप पारिस्थितिकी का अच्छा ज्ञान था। चरक और सुश्रुत दोनों की संहिताओं में जंतुओं का वर्गीकरण आदत (habit) और आवास (habitat) के आधार पर तथा भूमि का वर्गीकरण मृदा की प्रकृति, जलवायु और वनस्पति के आधार पर किया गया है। विभिन्न स्थानों के प्ररूपी पौधों का वर्णन भी किया गया है। इसके अलावा चरक संहिता यह बताती है कि चरक का विश्वास था कि वायु, भूमि, जल और ऋतुएं जीवन के लिए अपरिहार्य हैं और प्रदूषित पानी और हवा मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

2 क) स्वपारिस्थितिकी

ख) संपारिस्थितिकी

ग) परितंत्र

3 पर्यावरण की परिभाषा किसी जीव को घेरे रहने वाले जीवित, अजीवित घटकों, प्रभावों और घटनाओं के कुल योग के रूप में दी जाती है। जीव के बाहर का पर्यावरण उसका बाह्य पर्यावरण है और उसके शरीर के भीतर घिरा हुआ पर्यावरण आंतरिक पर्यावरण है।

4 क) गलत ख) सही ग) गलत घ) गलत
च) सही छ) सही ज) गलत झ) गलत

5 क) मृतपोषित ख) जंतु
ग) उत्पादक घ) चक्र, प्रवाह
च) पारितंत्र छ) संक्रमिका

अंत में कुछ प्रश्न

1 क) वायुमंडल, स्थलमंडल, जलमंडल
ख) घटती
ग) प्रमुख
घ) बढ़ती
च) लघु

2 दूसरे जीव विज्ञानीय क्षेत्रों से पारिस्थितिकी के संबंध को दर्शाने वाले जीव विज्ञानी केक का लेबल।

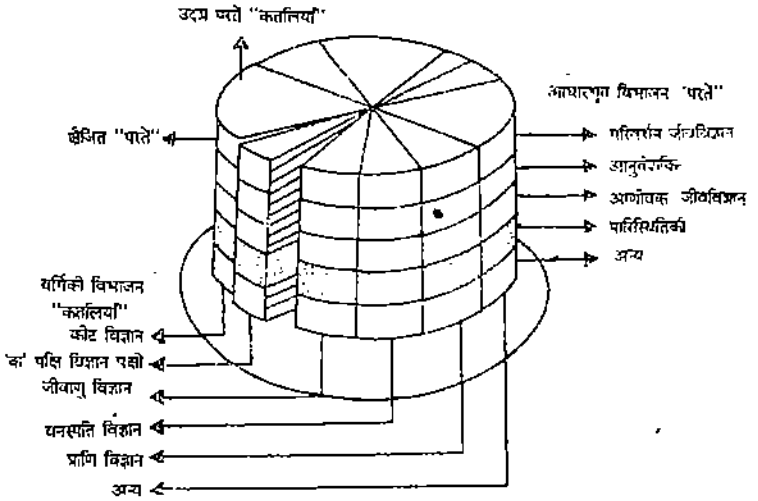

3 प्राकृतिक पारितंत्र वे हैं जो मानव द्वारा अविक्षुब्ध (undisturbed) या अपेक्षाकृत अविक्षुब्ध है, जैसे प्राकृतिक वन, ज्वारनदमुख, जबकि कृत्रिम पारितंत्र वे प्राकृतिक पारितंत्र है जो मनुष्य द्वारा महत्वपूर्ण रूप से बदल दिए गए हैं, जैसे गेंहू का खेत, चाय के बाग, (घास का) लॉन।

4 दोनों ही परपोषित हैं किन्तु स्थूल उपभोक्ता पोषण पाने के लिए जीवित पौधों या जंतुओं या दोनों का आहार करते हैं जबकि सूक्ष्म उपभोक्ता पादपों और जंतुओं की मृत जैव शरीरों को अपघटित करते हैं और मृत शरीरों से अपघटित पदार्थ को अवशोषित करके पोषण प्राप्त करते हैं।

5 1 2

2 1

3 4

4 3

6 प्राचीन यूनानी दार्शनिक पर्यावरण के अध्ययन के महत्व को अच्छी तरह समझते थे। हेपोक्रेट्स ने हवाओं, पानी और स्थानों पर अपनी रचनाओं में मनुष्य के स्वास्थ्य और रोगों पर पानी, हवा और स्थान के प्रभाव का वर्णन करते हुए आयुर्विज्ञान के छात्रों के लिए पारिस्थितिकीय पृष्ठभूमि की आवश्यकता पर जोर दिया है। अरस्तु ने स्वभाव और आवास के आधार पर जंतुओं का वर्गीकरण किया। थिओफ्रास्टस ने तुंगता (attitude), नमी और प्रकाश उद्भासन (exposure) के संदर्भ में पौधों के प्रकार और रूपों का अध्ययन किया। ऐसा माना जाता है कि वह पहला व्यक्ति था जिसने इकोलॉजी शब्द के निर्माण से बहुत पहले पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की चर्चा की।

7 क) अर्नस्ट हीकल ने पारिस्थितिको की परिभाषा प्रकृति की व्यवस्था से संबंधित ज्ञान के रूप में की है — जंतु का अपने कार्बनिक और कार्बनिक पर्यावरण के साथ कुल संबंधों की खोज से है और इसमें भी सबसे महत्वपूर्ण है जिन जंतुओं और पौधों के यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संपर्क में आता है, उनके प्रति इसके संबंध — एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि डार्विन ने जिन जटिल पारस्परिक संबंधों को अस्तित्व के लिए संघर्ष की पारिस्थितियां बताया है पारिस्थितिकी उन सभी संबंधों का अध्ययन है।

ख) चार्ल्स एल्टन ने पारिस्थितिकी को वैज्ञानिक प्राकृतिक इतिहास के रूप में परिभाषित किया है।

ग) यूजीन पी. ओडम ने पारिस्थितिकी को प्रकृति की संरचना और प्रकार्य के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है।

8 पारिस्थितिकी के प्रभाग दिखाने वाली तालिका :

पारिस्थितिकी के प्रमुख उपप्रभाग

- **स्वपारिस्थितिकी (autecology)** (पर्यावरण के संदर्भ में व्यष्टि की पारिस्थितिकी का अध्ययन)
  - जाति (स्पीशीज) की स्वपारिस्थितिकी) (व्यष्टिगत जातियों का अध्ययन)
  - जनसंख्या पारिस्थितिकी (किसी जाति को व्यष्टियों का अध्ययन)
- **संपारिस्थितिकी (synecology)** (समूहों या समुदायों की पारिस्थितिकी का उनके पर्यावरण के संदर्भ में अध्ययन)
  - सामुदायिक पारिस्थितिकी (व्यष्टिगत समुदायों का अध्ययन)
  - पारितंत्र दृष्टिकोण (समुदायों के समूहों या उनके आजीवित पर्यावरण सहित साथ-साथ पारस्परिक क्रिया का एक तंत्र के रूप में अध्ययन करना)
- **आवास पारिस्थितिकी (habitat ecology)** (जीव और आवास या उसके पर्यावरण का वर्णनात्मक अध्ययन)

9 क) समुदाय में प्रमुख जातियां कुछ ओवर टॉपिंग जातियां है जो अपनी अधिक संख्या से जिस आवास में रहती है उसके अभिलक्षणों को रूपांतरित कर देती है और समुदाय की दूसरी जातियों की वृद्धि पर प्रभाव डालती है।

ख) जातियों की विविधता ज़ातियों की संख्या और प्रत्येक जाति की तुलनात्मक प्रचुरता का माप है।

ग) समुदाय में विभिन्न जातियों की प्रचुरता भिन्न-भिन्न होती है। तुलनात्मक प्रचुरता समुदाय में भिन्न-भिन्न जातियों के तुलनात्मक अनुपात का माप है।

10 जीवमंडल की उदग्र सीमा समुद्र तल से 9,000 मीटर की ऊंचाई से लेकर महासागर के अध्स्तल तक जो कि 11,000 मीटर की गहराई पर स्थित है, फैली हुई है।

इकाई 2 पर्यावरण के घटक : 1 — प्रकाश, तापमान और वायुमंडल

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
2.2 प्रकाश
विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम
सौर ऊर्जा निवेश
विकिरणमापी उपकरण
प्रकाश के कालगत परिवर्तन — दैनिक और ऋतुनिष्ठ
प्रकाश और जीवों का वितरण
प्रकाशकालिता
2.3 तापमान
अक्षांशीय परिवर्तन
तुंगीय परिवर्तन
भूमंडलीय तापमान
तापमान बलाघात
अनुकूलनताएं
2.4 वायुमंडल
संरचना
स्तरीकरण
दाब प्रवणता
भूमंडलीय वायु-परिचालन
हवाएँ
2.5 सारांश
2.6 अंत में कुछ प्रश्न
2.7 उत्तर

2.1 प्रस्तावना

इकाई-1 में हमने पारिस्थितिकी विज्ञान के विषय में सामान्य परिचय दिया था। आपने पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक घटकों के विषय में जाना जो कि जीवधारियों को प्रभावित करते हैं। इस इकाई में तथा इससे अगली दो इकाइयों में पर्यावरण के अजैविक घटकों एवं उनकी पारस्परिक क्रिया के विषय में चर्चा की जाएगी।

यदि हम पृथ्वी के विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में रहने वाले जीवों के अस्तित्व, वितरण, प्रचुरता तथा अनुकूलनशीलता को समझना चाहते हैं तो हमें अजैविक घटकों में से भौतिक पर्यावरणपरक कारकों जैसे प्रकाश तापमान, पवन, जल, मृदा आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इस इकाई में हम पृथ्वी पर पहुंचने वाले सौर-विकिरण के गुणात्मक और मात्रात्मक पहलुओं का वर्णन करेंगे तथा वायुमंडल और तापमान का वर्णन करेंगे। हम प्रकाश को मापने वाले यंत्रों के विषय में भी जानेंगे। प्रकाश एवं उष्मा के परिवर्तन का जैविक समुदायों के वितरण एवं व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हरे पौधे सौर ऊर्जा को ग्रहण करके प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा उसे रासायनिक ऊर्जा में बदल देते है। प्राणियों में प्रकाश द्वारा प्राप्त होने वाला अभिग्रहण ही वह सबसे महत्वपूर्ण संवेदन है जिसके द्वारा वे अपने पर्यावरण को देख सकते हैं। अधिकतर प्राणियों में प्रकाशग्राही ज्ञानेन्द्रियां होती हैं जो उनके व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करती हैं।

जीवधारी कुछ विशिष्ट ताप परिसर के लिए ही अनुकूलित होते हैं जिसमें वे जीवित रह सकते हैं एवं प्रजनन कर सकते हैं। पौधे और प्राणी चरम ताप को सहन करने के लिए कुछ विशिष्ट संरचनात्मक तथा क्रियात्मक अनुकूलन विकसित कर लेते हैं, या फिर वे कुछ विशिष्ट तौर-तरीके अपना लेते हैं जिनसे वे प्रतिकूल तापक्रम से अपने आपको बचा सकें। जीवों के वितरण एवं व्यवहार को प्रभावित करने में पवन भी एक और महत्वपूर्ण कारक है। पवन का महत्व खास तौर से पौधों के लिए है क्योंकि पौधों को पवन के तेज वेगों से जूझना पड़ता है। कुछ पवन अनुकूलनों का इस इकाई में संक्षेप में विवेचन किया जाएगा।

हमने अजैविक कारकों का अलग-अलग विवेचन सुविधा के लिए किया है लेकिन ये कारक शायद ही कभी अलग अपना प्रभाव डालते हैं। प्रस्तुत इकाई तथा अन्य इकाइयों में किए गए विवेचन से आपको इन सब कारकों के पारिस्थितिक तंत्र प्रक्रियाओं पर समाकलित प्रभाव को समझने में सहायता मिलेगी।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रकाश की गुणवत्ता, मात्रा एवं अवधि में विभेद कर सकेंगे, विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र में प्रकाश का महत्व बता सकेंगे और प्रकाश को मापने के विभिन्न यंत्रों का वर्णन कर सकेंगे।
- भूमंडलीय विकिरण-संतुलन की रूपरेखा दे सकेंगे, और स्थलीय तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में प्रकाशीय विभिन्नता का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।
- तापमान में अक्षांशीय परिवर्तन और तुंगीय परिवर्तन का वर्णन कर सकेंगे, और विभिन्न बायोमों के समासंघ ताप के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे।
- पृथ्वी के वायुमंडल की संघटना एवं उसके स्तरीकरण का वर्णन कर सकेंगे।
- भूमंडलीय पवन परिसंचरण (circulation) प्रतिपन (inversion) तथा मानसून आदि की रूपरेखा दे सकेंगे।
- विभिन्न आवासीय परिस्थितियों में प्रकाश, ताप और पवन की चरम सीमाओं के कारण पौधों और प्राणियों में होने वाले अनुकूलनों के महत्व को समझ सकेंगे।
- निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों को समझा सकेंगे और उनका उचित संदर्भ में उपयोग कर सकेंगे :
  सौर स्थिरांक (solar constant), अलबीडो (albedo), लुक्स (lux), प्रकाशकालिता (photoperiodism) एडाइबेटिक परिवर्तन (adiabetic change), यूरीथर्म (eurytherm), तापकालिता (thermoperiodism), विशिष्ट तापमान (cardinal temperature), समतापी (homeotherm), विषमतापी (heterotherm), असमतापी (poikilotherm), संकीर्णतापी (stenotherm)।

2.2 प्रकाश

हम सभी जानते हैं कि हमारे जैवमंडल में होने वाली समस्त संक्रियाओं के लिए सूर्य ही अंततोगत्वा ऊर्जा-स्रोत है। सूर्य से आने वाले विद्युतचुंबकीय विकिरण ऊर्जा प्रदान करते हैं। ऊर्जा पृथ्वी एवं वायुमंडल को गर्म करती है, इसीसे जीवधारियों के लिए एक अनुकूल भूमंडलीय ताप प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त प्रकाश सजीव सृष्टि में अनेक विविध भूमिकाएं निभाता है। हम जानते हैं कि इससे प्रकाश-संश्लेषण होता है। इसके अलावा प्रकाश पौधों और प्राणियों के लिए सूचना का प्रेषण भी करता है जिससे वे अपने जीवनचक्रों के कार्यक्रम का निर्धारण कर सकें, जैसे कि कलियों और फूलों के खिलने के समन्वय में, पत्तियों के झड़ने में और इसी प्रकार के अन्य शरीर क्रियात्मक कार्य करने में। प्रकाश की मात्रा घटने-बढ़ने से सामान्यतः पौधों का स्थानीय वितरण प्रभावित होता है। प्राणियों में प्रकाश से जनन, शीत-निष्क्रियता तथा प्रवास का नियमन होता है और निःसंदेह प्रकाश के कारण ही जीव देख सकते हैं। ये सभी जैविक घटनाएं प्रकाश की तीव्रता (intensity) में होने वाले अंतर एवं प्रकाश के ऋतुनिष्ठ (seasonal) और दैनिक (diurnal) द्विवापरक परिवर्तन द्वारा प्रभावित होती हैं।

आगे वाले खंडों में हम सौर-विकिरणों के गुणधर्मों तथा उनके भूमंडलीय वितरण का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

2.2.1 विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम (इकाई-10), (भाग 10.2.1) में आपने विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम के बारे में पढ़ा है। यह गामा (γ-ray) तथा एक्स-किरणों (x-rays) से विस्तार करता हुआ, परावैंगनी (ultraviolet), दृश्यमान (visible), अवरक्त (infrared) से लेकर रेडियोतरंगों (radiowaves) तक फैला हुआ है। पृथ्वी की सतह पर पड़ने वाले सौर विकिरण का स्पेक्ट्रमी वितरण एवं उसकी तीव्रता ज्ञात की गई है। जैसाकि चित्र 2.1 में दिखाया गया है, पृथ्वी पर पड़ने वाला विकिरण परावैंगनी के निकट से लेकर लाल के आगे अवरक्त तक फैला हुआ है। जैसा कि आप जानते हैं, साधारणतः सिर्फ विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम के दृश्यमान भाग को ही प्रकाश कहा जाता है। जिस प्रकाश में हम वस्तुओं को देख सकते हैं उसकी आवृत्ति के परास को दृश्य क्षेत्र (visible) कहा जाता है।

विद्युतचुंबकीय विकिरणों में द्वैत प्रकृति है — तरंगात्मक और कणात्मक। प्रकाश द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रकाश जैवकीय घटनाओं में से अनेक कुछ को प्रकाश की तरंगात्मक प्रकृति के द्वारा भलीभांति समझाया या सकता है जबकि अन्य घटनाओं को प्रकाश की कणात्मक प्रकृति के आधार पर समझा-समझाया जा सकता है। (यदि आप इस अवधारणों को फिर से दोहराना चाहें तो रसायन विज्ञान की कक्षा XI-XII भाग-2 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद) में सेक्शन 1.1 प्रकाश की द्वैत प्रकृति पढ़ें। विद्युत तरंग विकिरण-ऊर्जा का एक स्वरूप है। यह ऊर्जा के विविक्त (discrete) पैकेट द्वारा जिन्हें फोटॉन (photon) कहते हैं, संचरित होता है। प्रत्येक तरंगदैर्ध्य के फोटॉन में ऊर्जा क्वांटम (मात्रा) अलग-अलग होती है। किसी विशिष्ट तरंग की ऊर्जा की मात्रा उसके तरंगदैर्ध्य (wavelength) अथवा बारंबारता (frequency) पर निर्भर होती है और उसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

ν = "न्यू" बोला जाता है।

1 cm = 10^{-2} meter (m)
1 μm (micrometer = 10^{-6} m
1 nm (nanometer) = 10^{-9} m
1 A° (Angstrom) = 10^{-10} m

$E \alpha \nu$

$E = h\nu$

E = तरंग ऊर्जा (Joule/second)

ν = तरंग की बारंबारता (Hertz cycles/second)

h = प्लैंक नियतांक (Plank's constant)
इसका मान $\sim 1.6 \times 10^{-34}$ (calorie/second)
या $\sim 6.6 \times 10$ (Joule/second)

वारंवारता तरंगदैर्घ्य के व्युत्क्रम (inversely) अनुपात में होती है और इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$\nu = \frac{c}{\lambda}$$

c = प्रकाश का वेग (निर्वात में)

$\sim 3.0 \times 10^{10}$ cm/s or 3.0×10^{8} m/s

λ = तरंगदैर्घ्य (cm या m में)

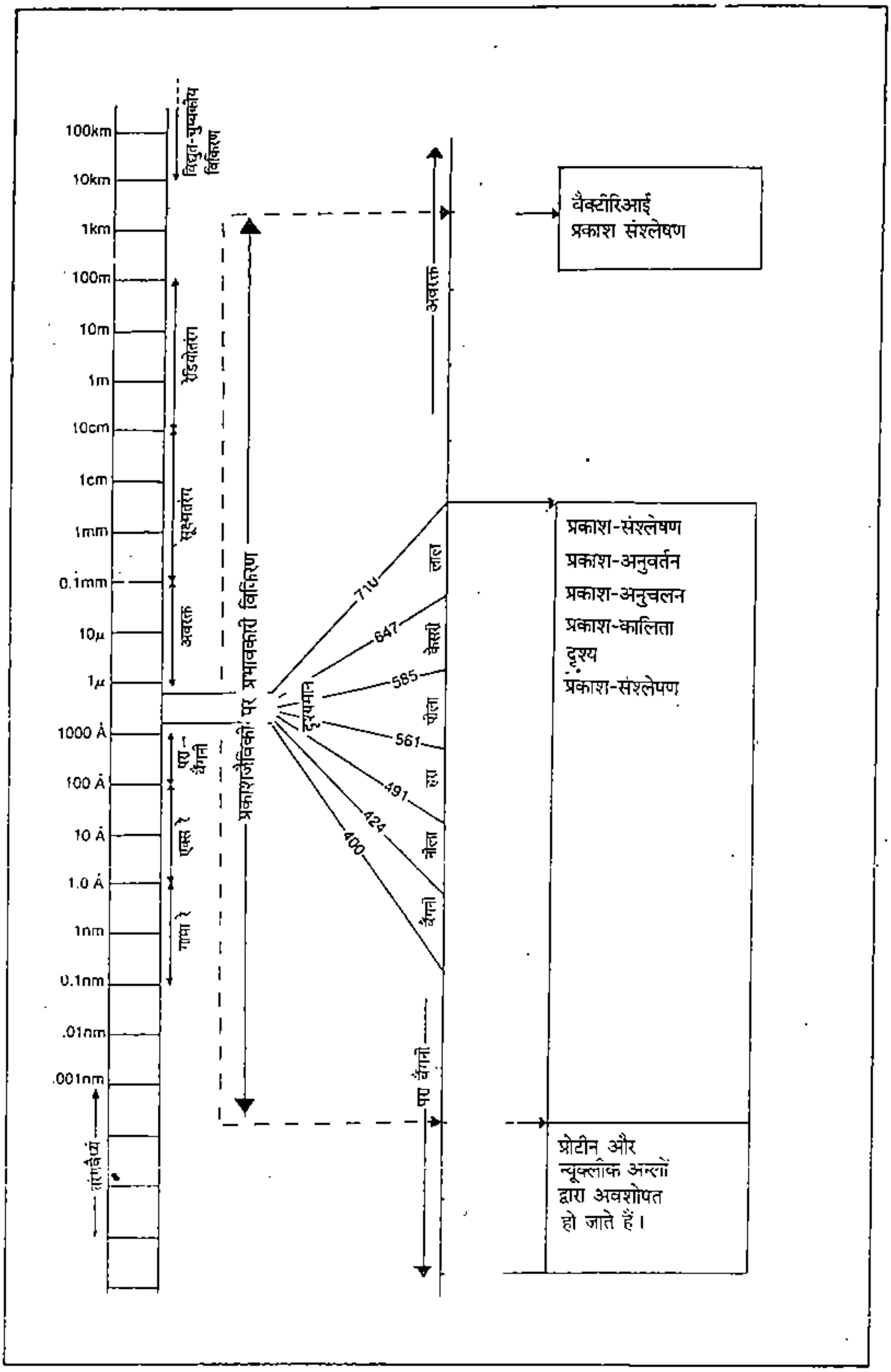

चित्र 2.1 : सौर-विकिरण का विद्युत-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम और उनके द्वारा होने वाली प्रकाश-जैवकीय परिघटनाएँ

चित्र 2.1 में दिए गए विद्युत चुंबकीय स्पेक्ट्रम के दृश्यमान क्षेत्र को देखिए। लाल प्रकाश की तुलना में नीले प्रकाश का तरंगदैर्ध्य छोटा होता है और बारंबारता अपेक्षाकृत अधिक होती है और ऊर्जा अधिक होती है जबकि लाल प्रकाश में उच्चतर तरंगदैर्ध्य और अपेक्षाकृत कम बारंबारता होती है और ऊर्जा कम होती है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है. दृश्यमान प्रकाश में विभिन्न रंग है और प्रत्येक रंग का अपना एक विशिष्ट तरंगदैर्ध्य परास है। वैज्ञानिक विशिष्ट वर्ण-छलनियों का प्रयोग करके एक विशिष्ट तरंगदैर्ध्य प्राप्त करते हैं और इसका जीवधारियों की विविध, जैवकीय प्रक्रियाओं पर और उनके व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

चित्र 2.1 में पराबैंगनी, दृश्यमान तथा अवरक्त के क्षेत्र दिखाए गए हैं और साथ में उनके द्वारा होने वाली प्रकाश-जैविकीय परिघटनाएँ भी दिखाई हैं। आप इस चित्र का थोड़ी देर तक अच्छी तरह अध्ययन कीजिए। अगला खंड पढ़ने से पहले, आप निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल कीजिए। कुछ प्रकाश जैविकीय परिघटनाओं के विषय को फिर से ध्यान में लाने के लिए अन्त में दी गई पारिभाषिक शब्दावली को देखिए।

मानव नेत्र 400 nm से लेकर 700 nm के तरंग परास के प्रति कार्यशील होते हैं। इन तरंगों से ही हमारी दृष्टि क्षमता है, इसलिए इन्हें दृश्यमान प्रकाश कहते हैं। हमारी आंखें 555 nm की तरंगों के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील होती हैं। प्रकाश संश्लेषण में भी लगभग उन्हीं तरंगदैर्ध्य की ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो दृश्यमान प्रकाश में है।

लाल प्रकाश तरंग में कम ऊर्जा होती है परन्तु अत्यधिक वेधने की क्षमता होती है। लाल बत्तियां सड़कों पर इसीलिए लगाते हैं।

बोध प्रश्न 1

क) 2×10 cm के तरंगदैर्ध्य के विकिरण में प्रति क्वांटम ऊर्जा का परिकलन कीजिए।

अपने उत्तर जूल और कैलोरी दोनों इकाइयों में दीजिए। (प्रकाश की गति = 3×10^{10} cm/second)

....

....

....

ख) कॉलम 1 में दिए गए तरंगदैर्ध्य-परासों को कॉलम 2 में दिए गए अनुरूप कथनों से मिलाइए।

कॉलम 1 तरंगदैर्ध्य परास	कॉलम 2 कथन
i) 900 nm	क) प्रोटीन और न्यूक्लीक अम्लों द्वारा अवशोषित हो जाते हैं।
ii) 200 nm – 300 nm	ख) प्रकाश जैविकीय परिघटनाओं में प्रभावकारी विकिरण।
iii) 300 nm – 900 nm	ग) बैक्टीरिया प्रकाश संश्लेषण।
iv) 390 nm – 760 nm	घ) दृश्यमान प्रकाश।

ऊर्जा को मापने की वर्तमान इकाई Joule/second
4.18 Joule (J) = 1 caloric (c)
Watt = Joule/second.

2.2.2 सौर ऊर्जा निवेश

हम पहले ही बता चुके हैं कि पृथ्वी की सतह पर पड़ने वाले सौर विकिरण का स्पेक्ट्रमी वितरण और तीव्रता हमें मालूम है। सूर्य से विकीर्णित विपुल ऊर्जा (5.6×10^{27} cal/min.) का एक अरबवें भाग का भी केवल आधा ही भाग पृथ्वी द्वारा अवरोधित होता है। साथ ही यह सौर-विकिरण सारा पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश नहीं कर सकता। लेकिन वायुमंडल की चरम सतह (top of atmosphere) पर प्राप्त होती रहने वाली सौर-ऊर्जा की मात्रा स्थिर बनी रहती है। इस ऊर्जा को सौर-स्थिरांक (solar constant) कहते हैं। इस सौर-स्थिरांक की परिभाषा इस प्रकार की जाती है — पृथ्वी की सूर्य से औसत दूरी होने पर, सौर विकिरण पुंज से लंबवत् (perpendicular) अभिविन्यस्त (oriented) में पृथ्वी की समतल सतह के एक इकाई क्षेत्र पर पड़ने वाले सौर-विकिरण की दर। औसतन यह 2 calorie/cm. होती है।

जब वायुमंडल में से होते हुए सौर-विकिरण उसके साथ अन्योन्यक्रिया (interact) करता है तो उसमें तीन विभिन्न तरीकों से ह्रास होता है। परावर्तन (reflection), प्रकीर्णन (scattering) तथा अवशोषण (absorption)। चित्र 2.2 में एक सौ इकाई सौर विकिरण की पृथ्वी और वायुमंडल में अन्योन्यक्रिया (interaction) का नतीजा दर्शाया गया है। पृथ्वी पर आने वाले कुल सौर-विकिरण का लगभग 30 प्रतिशत भाग बादलों द्वारा परावर्तित हो जाता है, इसका लगभग 19 प्रतिशत भाग ऑक्सीजन, ओज़ोन, जल, हिम क्रिस्टलों तथा निलंबित कणों में सीधे ही अवशोषित हो जाता है जिससे वायु कुछ हद तक गर्म हो जाती है। शेष 51 प्रतिशत पृथ्वी की सतह में या तो अवशोषित हो जाता है या पृथ्वी से परावर्तित हो जाता है तथा उष्मा में बदल जाता है। इस प्रकार कुल पृथ्वी और वायुमंडल द्वारा अवशोषित 70 प्रतिशत विकिरण (19 प्रतिशत वायुमंडल द्वारा और 51 प्रतिशत पृथ्वी द्वारा) हमारे जैवमंडल को कार्यान्वित रखने में काम आता है।

आकाश का नीला रंग नाइट्रोजन और ऑक्सीजन के अणुओं द्वारा दृश्यमान सूर्य-प्रकाश के नीले अंश के प्रकीर्णन के कारण है।

पृथ्वी पर भांति-भांति की सतहें पाई जाती हैं — खुरदरी, चिकनी, हिमाच्छादित, जलाच्छादित और विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों से ढकी हुई। विकिरण की कितनी मात्रा अवशोषित होगी अथवा परावर्तित होगी, इस बात पर निर्भर है कि सतह कैसी है। मौसम विज्ञान की शब्दावली में आपतित (incident) विकिरण की परावर्तितता की प्रतिशतता को अल्बेडो (albedo) कहते हैं जो इस प्रकार मालूम किया जाता है।

$$\text{अल्बेडो} = \frac{\text{परावर्तित विकिरण}}{\text{आपतित विकिरण}} \times 100$$

हिमाच्छादित स्थलों का अल्बेडो वनस्पतिधारी स्थलों अथवा जलीय स्थानों के अल्बेडो से अधिक होता है। ताजी गिरी बर्फ में प्रतिरूपता 75 से 95 प्रतिशत के बीच अल्बेडो होता है। महासागरीय जल में कम अल्बेडो होता है, और यही कारण है कि उनका रंग समीपवर्ती महाद्वीपीय स्थलीय भागों की अपेक्षा अधिक गहरा दिखाई पड़ता है। खुरदरी सतहों का अल्बेडो चिकनी सतहों के अल्बेडो से कम होता है साथ ही हल्के रंग की सतह से गहरे रंग की सतहों की अपेक्षा अधिक परिवर्तन होता है। परावर्तिता आपतित विकिरण के कोण पर भी निर्भर होती है। जब सूर्य की किरणें सतह से कम लंबवत होती हैं तो वह अधिक परावर्तित होती हैं और जब सूर्य विकिरण सतह से लगभग समकोण बनाती हुई होती है तब कम परावर्तित होती है।

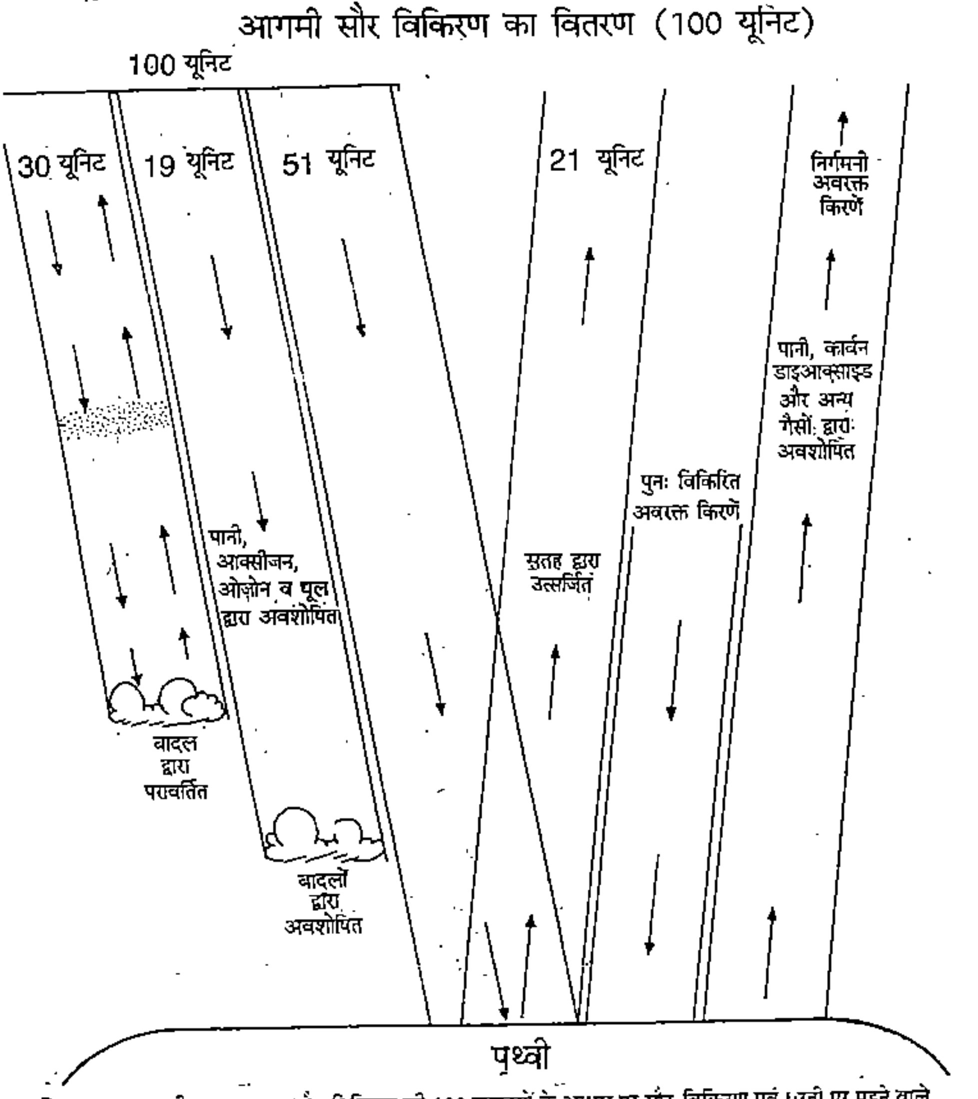

चित्र 2.2 : आगामी (incoming) सौर-विकिरण की 100 इकाइयों के आधार पर सौर-विकिरण एवं धरती पर पड़ने वाले अवरक्त (infrared) विकिरण की भूमंडलीय-व्यवस्था।

हम पढ़ चुके हैं कि जब पृथ्वी और वायुमंडल सौर-विकिरण को प्राप्त करते हैं, उसके कुछ भाग को सोख लेते हैं तथा गर्म हो जाते हैं। हम यह भी जानते हैं कि रात में पृथ्वी ठंडी होती जाती है अतः प्रश्न यह उठता है कि पृथ्वी द्वारा अवशोषित विकिरण ऊर्जा रोज कहां चली जाती है? वास्तव में अवशोषित विकिरण पुनः लगातार पृथ्वी से वापस ऊष्मा के रूप में विकीर्णित होता जाता है, और यह ऊष्मा अवरक्त विकिरण के रूप में वापस अंतरिक्ष में लौटती जाती है। यदि यह ऊर्जा वापस विकीर्णित न होती तो वायु का तापमान हर रोज लगातार बढ़ता ही बढ़ता जाता। चित्र 2.2 को देखिए, अवरक्त विकिरण का अधिकतर भाग वायुमंडल जल-वाष्प, कार्बन डाइआक्साइड तथा अन्य कुछ गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है और इस तरह ये ऊर्जा को अंतरिक्ष में चले जाने से रोकती हैं। इसमें से कुछ अंश पृथ्वी की सतह की ओर को पुनः विकीर्णित हो जाता है और इस तरह भूमंडलीय तापमान को बनाए रखने में सहायता करता है। सौर-विकिरण का समुद्र तल पर मान लगभग 1.5 gc/sq. cm/min. ~ 10,000 fc होता है।

अंग्रेज़ी में कैलोरी को छोटे c से व किलो कैलोरी को बड़े C से लिखते हैं।

सौर विकिरण जब बादलों से, जल में से तथा वनस्पति में से होकर गुजरता है तब उसका स्पेक्ट्रम वितरण बहुत बदल जाता है। लघु पराबैंगनी (short ultra violet) विकिरण बाहरी वायुमंडल की ओजोन परत से एकाएक कम हो जाता है। दृश्यमान प्रकाश वायुमंडल में अवशोषित होने से काफी हद तक कम हो जाता है। चित्र 2.3 में तीन चीजें दिखाई गई हैं। एक तो वायुमंडल के ऊपर सौर विकिरण का स्पेक्ट्रमी वितरण, दूसरा वायुमंडल में से गुजरने के बाद

साफ मौसम के दौरान पृथ्वी पर पहुंचने का स्पेक्ट्रमी वितरण और तीसरा वनस्पति-आवरण के नीचे का स्पेक्ट्रमी वितरण। इस चित्र को ध्यानपूर्वक देखिए और उसके बाद ही अगले खंड को पढ़ना आरंभ कीजिए।

पृथ्वी पर पहुंचने वाले सौर विकिरण का स्थूल स्पेक्ट्रमी वितरण
दृश्यमान प्रकाश = 39%
अवरक्त = 60%
पराबैंगनी = 1%

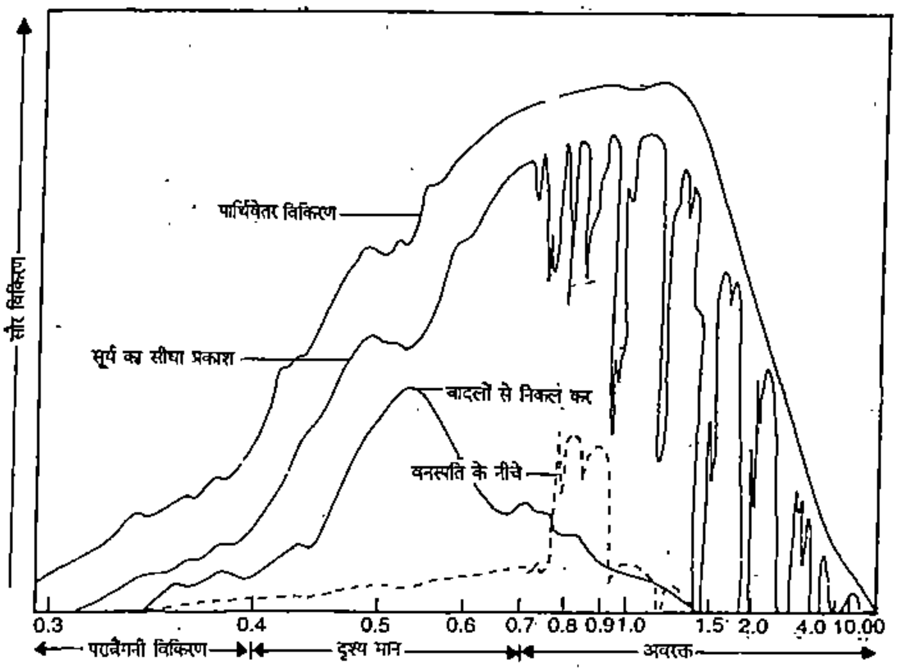

चित्र 2.3 : पृथ्वी पर सौर-विकिरण का स्पेक्ट्रमी-वितरण : साफ मौसम में, बादलों के होने पर, और वनस्पति के नीचे (चित्रण गेट (gates) 1965, पर आधारित)।

2.2.3 विकिरणमापी यंत्र

इस खंड में हम सौर-ऊर्जा, प्रकाश-तीव्रता तथा प्रकाशावधि को मापने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले यंत्रों के विषय में पढ़ेंगे।

सौर-ऊर्जा के निवेश का मापन

सभी तरंगदैर्ध्यों के सौर विकिरणों की ऊर्जा तथा किसी विशिष्ट तरंगदैर्ध्य परास की ऊर्जा को मापने के लिए विविध प्रकार के अनेक यंत्र बनाए गए हैं। पाइरेनोमीटर (चित्र 2.4) द्वारा छोटे तरंगदैर्ध्य के सूर्य प्रकाश की ऊर्जा को, परोक्ष सूर्य प्रकाश की ऊर्जा, और प्रकीर्णित हुए आकाश प्रकाशीय विकिरण की ऊर्जा को मापा जाता है। विकिरण के प्रापक (receiver) में एकांतर क्रम में काली और सफेद पट्टियाँ होती हैं। ये पट्टियां क्रमानुसार गर्म और ठंडे थर्मोकपल

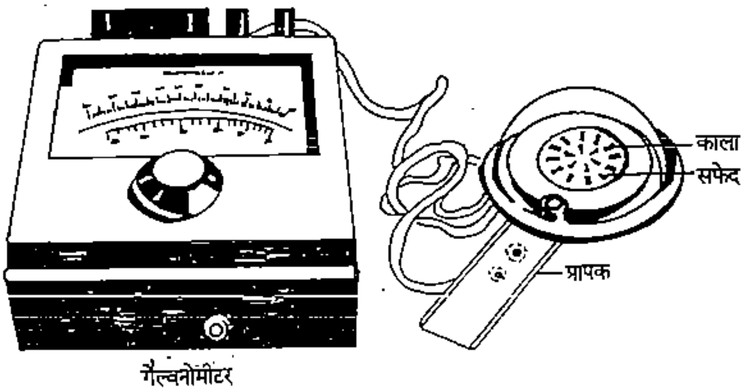

चित्र 2.4 : पाइरेनोमीटर

जंक्शनों के रूप में कार्य करती हैं। यह व्यवस्था काँच के बने एक गोल बल्ब में बंद होती है, यह बल्ब प्रापक-सतह को हवा आदि से होने वाली बाधा से बचाता है। चूंकि यह काँच में बंद होता है, इसलिए प्राप्त होने वाली तरंगदैर्ध्य अनुक्रिया केवल दृश्यमान 280 nm से 3000 nm तक में तरंगदैर्ध्यों तक ही सीमित होती है।

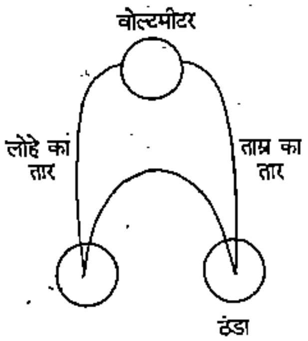

चित्र 2.5 : थर्मोकपल : जब दो अलग-अलग पदार्थों/मिश्र धातुओं के तारों/पट्टियों को परस्पर जोड़ा जाता है तब और जब इन दोनों जंक्शनों को अलग-अलग तापों पर रखा जाता तब उन दोनों के बीच विद्युत-प्रेरक बल पैदा हो जाता है।

प्रापक को जब धूप में रखा जाता है तब काली पट्टियों का ताप बढ़ जाता है, क्योंकि वे अपने ऊपर पड़ने वाले तमाम विकिरणों को सोख लेती हैं, लेकिन सफेद पट्टियाँ ठंडी बनी रहती हैं क्योंकि वे विकिरण को संपूर्णतः परावर्तित कर देती हैं। इस प्रकार यदि हम इन पट्टियों के बीच में थर्मोकपल जोड़ दें तो एक ताप विद्युतप्रेरक बल (thermo-emf) पैदा हो जाता है जैसा कि हाशिए में चित्र 2.5 में दिखाया गया है। गैल्वानोमीटर (चित्र 2.4) की सुई विक्षेपित होती है तथा विद्युत प्रेरक बल को दर्शाती है। इस विधि से प्रापक द्वारा अवशोषित होने वाले विकिरणों को मापा जा सकता है। समान्यतः गैल्वानोमीटर में इस प्रकार पठनांक बने होते हैं कि वे प्रापक द्वारा अवशोषित आपतित विकिरण के प्रति एक लगभग रेखीय वोल्टता-अनुक्रिया को सीधे दर्शाते हैं और इस प्रकार विकिरण को सीधे मापा जा सकता है।

रेडियोमीटर के द्वारा उन सभी तरंगदैर्घ्यों की ऊर्जा के प्रवाह को मापा जाता है जो प्रापक की एक सतह पर प्राप्त होती है। ऐसे भी यंत्र हैं जो नीचे पहुंचने वाले आपतित सौर विकिरण तथा ऊपर को पुनः होने वाले विकिरण परावर्तित के बीच के अंतर को सीधे ही माप सकते हैं और हमें विकिरण का शुद्ध मान दे सकते हैं। ऐसे यंत्रों को नेट (Net) रेडियोमीटर कहते हैं चित्र 2.6 क। इस यंत्र में दो खुली सतहें होती हैं जिन में से एक सतह (x) का रुख ऊपर की तरफ होता है और दूसरी सतह (y) का नीचे की तरफ होता है। इस यंत्र के कार्य करने का सिद्धांत वैसा ही है जैसा कि पाइरेनोमीटर का। इसमें प्रापक एक लंबी पतली काली पोती हुई धातु की पट्टी होती है जिसके दोनों पार्श्वों को सफेद रंगा गया होता है। इस पट्टी के सफेद और काले भाग एक थर्मोकपल से जोड़ दिए जाते हैं।

इस यंत्र में काला प्रापक कांच के ढक्कन से बंद नहीं होता इसलिए यह सभी तरंगदैर्घ्यों के लिए संवेदी होता है। लेकिन प्रापक हवा में खुला होता है इसलिए इस के द्वारा विकिरण के बहुत सही-सही मूल्य नहीं मिल पाते क्योंकि इसकी सतह से कुछ उष्मा संवहन और संचालन के द्वारा वायु में पहुँच जाती है। साथ ही इस पर आर्द्रता का भी प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार की बाधा से बचने के लिए प्रापक के ऊपर से एक स्थिर गति से वायु प्रवाहित की जाती है, या इसको एक ऐसे उपयुक्त पदार्थ से ढक दिया जाता है जो दृश्यमान एवं अवरक्त विकिरणों दोनों के लिए पारदर्शी होता है।

भारत के मौसम विज्ञान विभाग, पूना में सौर विकिरण को ताप विद्युत पाइरेनोमीटर द्वारा मापा जाता है जैसा कि चित्र 2.6 ख में दिखाया गया है। संवेदक काले किये गये तांबे व निकैल का मिश्र धातु थर्मोपाइल से बना होता है। जब यह अनावृत किया जाता है तो इसके द्वारा ताप विद्युत प्रवाह बढ़ जाता है जो आपतित विकिरण के आनुपातिक होता है। यह प्रवाह लगातार रिकार्ड करने वाले मिलीवोल्टमीटर में पहुंचाया जाता है।

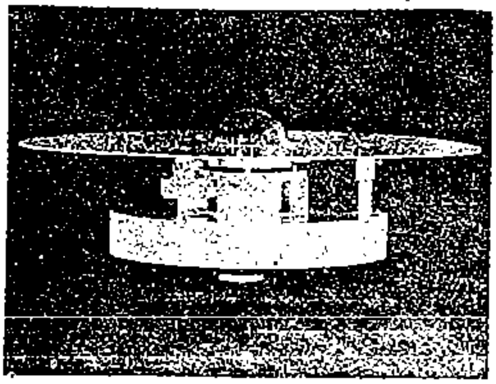

चित्र 2.6 (क) : नेट रेडियोमीटर का चित्र

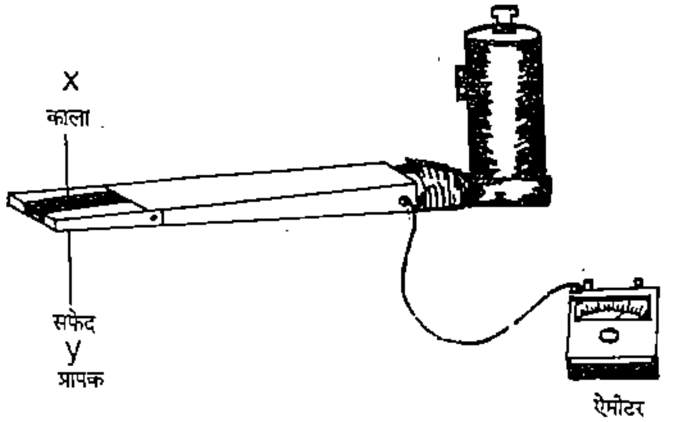

चित्र 2.6 ख : तापविद्युत (Thermoelectric) पाइरेनोमीटर (आभार : भारतीय मौसम विज्ञान विभाग, पूना)

1 फुट-कैंडल = 10.7639 लुक्स मीटर (lm) हम वस्तुओं को 0.25 फुट कैंडल के प्रकाश में देख सकते है और हमें पढ़ने के लिए लगभग 20 फुट कैंडल की आवश्यकता पड़ती है। शीतोष्ण पौधे प्रकाशसंश्लेषण के लिए लगभग 2000 फुट कैंडल प्रकाश का और ऊष्णकटिबंधीय स्पीशीज 8,000 फुट कैंडल अथवा इससे कुछ अधिक प्रकाश का प्रयोग करते हैं। दोपहर को सूर्य का प्रकाश स्वच्छ आकाश में लगभग 10,000 फुट कैंडल होता है।

प्रकाश तीव्रता का मापन

किसी सतह पर पड़ने वाले प्रकाश स्रोत की तीव्रता को किस प्रकार मापा जा सकता है? जैसा कि आप जानते हैं स्रोत से निकलने पर प्रकाश हर दिशा में समान रूप से फैलता जाता है। किसी इकाई क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रकाश की मात्रा बढ़ती दूरी के आधार पर कम होती जाती है। यह कमी प्रकाश स्रोत से दूरी के वर्ग के बराबर होती है। चित्र 2.7 में दर्शाया गया है कि स्रोत से दूरी बढ़ने पर प्रकाश की तीव्रता किस प्रकार घटती जाती है।

प्रकाश तीव्रता को लुक्स (lux) या मीटर कैंडल (metre-candle) में मापा जाता है। लुक्स प्रकाश की वह मात्रा है जो एक मापक कैंडल (standard candle) से एक मीटर दूरी पर वक्र सतह (curved surface) के एक वर्गमीटर पर पड़ता है। इससे पहले एक दूसरी इकाई फुट कैंडल (foot candle) इस्तेमाल की जाती थी। फुट कैंडल प्रकाश की वह मात्रा है जो एक मापक कैंडल से एक फुट की दूरी पर वक्र सतह के एक वर्ग फुट पर पड़ती है। फुट कैंडल के विस्तार का अनुमान लगाने के लिए हाशिए में दी गई टिप्पणी को पढ़िए।

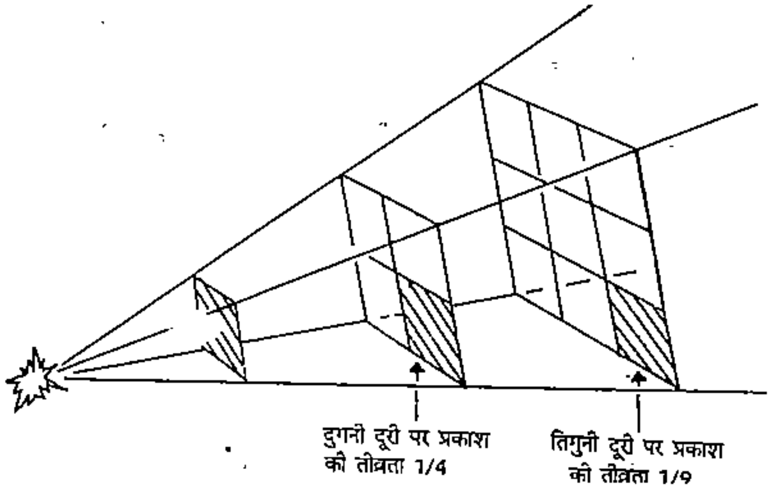

चित्र 2.7 : दूरी के अनुसार प्रकाश की आभासी चमक में आती कमी

फोटोमीटर (चित्र 2.8) से प्रकाश की तीव्रता मापी जाती है। धातु से बनी प्लेट का एक फोटोसेल होता है जिसकी सतह से तब इलैक्ट्रॉन निकलते हैं जब उस पर पर्याप्त बारंबारता का प्रकाश पड़ता है किणणित सतह से लगातार निकलते हुए इलेक्ट्रॉन ही धारा बनाते हैं। इस धारा को संवेदन ऐमीटर से मापा जाता है जो प्रकाश की तीव्रता को मीटर कैंडल में दर्शाने के लिए अशांकित होता है। यंत्र का चलाना बहुत ही आसान है। फोटोसेल वाले यूनिट को प्रकाश की तरफ घुमा दिग जाता है तथा प्रकाश की तीव्रता के मान को ऐमीटर पर पढ़ लिया जाता है।

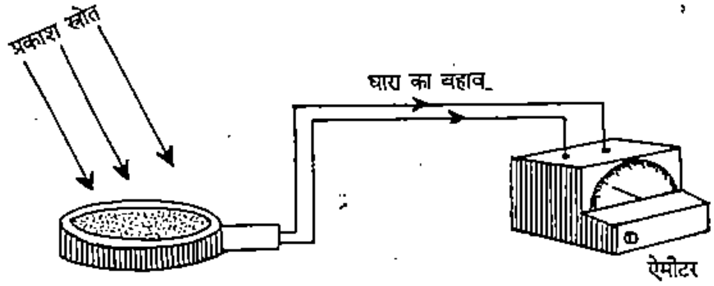

चित्र 2.8 : फोटोमीटर का चित्र

प्रकाश की कालावधि

सनशाईन-रिकॉर्डर (sunshine recorder, चित्र 2,9) से धूप की कालावधि मापी जाती है। इस रिकार्डर का मुख्य भाग कांच का एक गोला होता है जिसका व्यास लगभग 10 से. मी. होता है. यह गोला एक गोलीय धात्विक प्याले पर संकेन्द्रिक रूप में टिका हुआ होता है। प्याले की भीतरी सतह कटी खांचों में एक विशेष कार्ड को कसकर फसाया हुआ होता है। जब सूर्य की किरणें एक टम कार्ड पर केन्द्रित (focus) की जाती हैं तब उससे कार्ड के कुछ भाग धीरे-धीरे जल जाते हैं और इन्हीं जले हुए अंशों से धूप की कालावधि का परिकलन कर लिया जाता है। अलग-अलग मौसम के लिए भिन्न 2 कार्ड होते हैं।

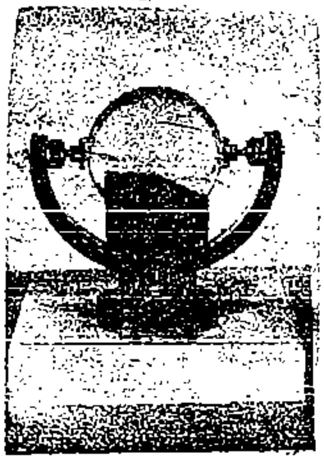

चित्र 2.9 क : सनशाइन रिकार्डर

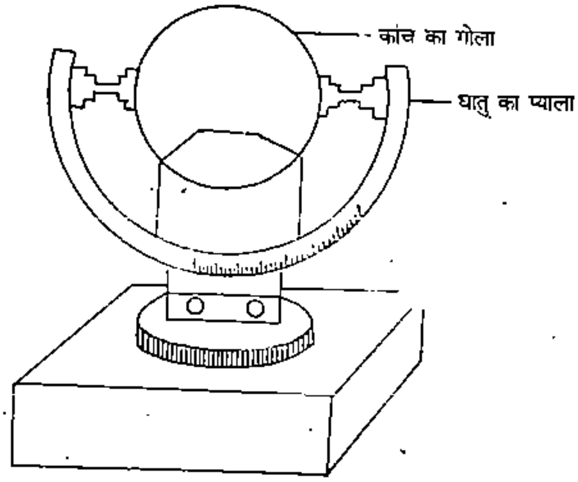

चित्र 2.9 ख : सनशाइन रिकार्डर का फोटोग्राफ

2.2.4 प्रकाश के कालगत परिवर्तन — दैनिक और ऋतुनिष्ठ

हम जानते हैं कि किसी स्थान पर पड़ने वाले विकिरणों की मात्रा में जो दिन और रात संबंधी विविधता आती है वह पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने से ही बनती है, और ऋतुपरक विविधताएँ पृथ्वी के सूर्य के चारों तरफ परिक्रमा करने के कारण आती हैं। चूंकि पृथ्वी का निरक्षीय समतल उसके कक्ष के सापेक्ष 23.27° के कोण पर झुका हुआ होता है, इसलिए सूर्य की किरणें पृथ्वी के प्रत्येक भाग पर सीधे उदग्र रूप में नहीं पड़ती। मार्च 22 से लेकर सितम्बर 22 तक (शरदीय साथन autumnal equinox) पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव सूर्य की तरफ झुका हुआ होता है, इसलिए सर्वाधिक तीव्रता वाला सौर-किरण-पुंज उत्तरी गोलार्ध में केन्द्रित होता है। इसलिए इस दौरान उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु होती है और उत्तरी ध्रुव पर दिन के चौबीसों घंटे सूर्य निकला रहता है। इसके विपरीत दक्षिणी ध्रुव पर छह महीने रात होती है और दक्षिणी गोलार्ध में शीत ऋतु। ध्रुवों पर इसके विपरीत स्थिति सितम्बर 24 से मार्च 20 (वंसत सायन spring equinox) तक होती है, इन दिनों उत्तरी गोलार्ध में शीत ऋतु तथा दक्षिणी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु होती है (चित्र 2.10)।

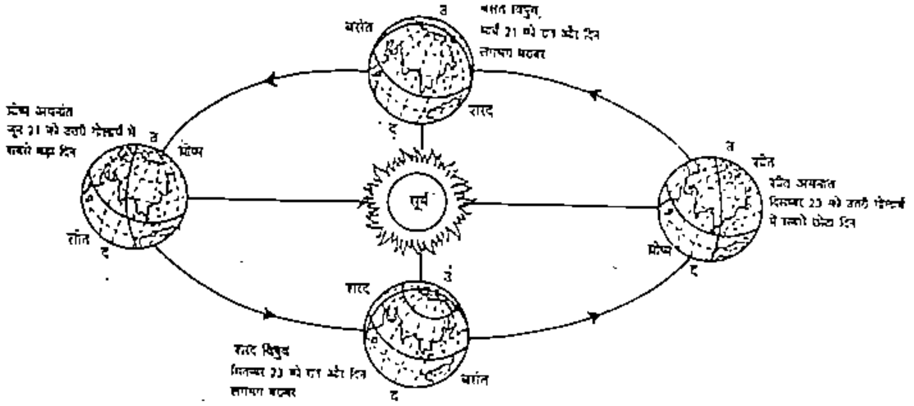

चित्र 2.10 : पृथ्वी पर आने वाले सौर-विकिरण की मात्रा का वार्षिक उतार-चढ़ाव

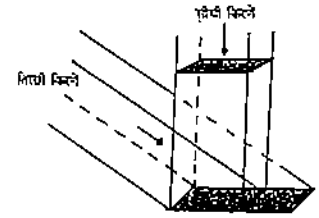

चित्र 2.11 : सौर-विकिरण के आपतित कोण की विविधता। तिरछी किरणों की अपेक्षा सीधी किरणें पृथ्वी की सतह के प्रति इकाई क्षेत्र पर अधिक सौर-विकिरण डालती हैं

पृथ्वी पर विकिरण के वितरण में क्षैतिज विविधता भी पाई जाती है। चूंकि पृथ्वी की आकृति लगभग गोल होती है, इसलिए आने वाले सूर्य के प्रकाश की समानांतर किरणें पृथ्वी के सभी भागों पर सीधे उदग्र रूप में नहीं पड़तीं। आपतित-विकिरण निम्नतर अक्षांशों की अपेक्षा उच्चतर अक्षांशों पर पृथ्वी की सतह पर तिरछा गिरता है, वह अधिक वायुमंडल में से गुजरता है, अधिक बड़े क्षेत्र मे फैल जाता है, और इस तरह यह विकिरण उस विकिरण से कम तीव्र होता है। (चित्र 2.11) जो विषुवत् रेखा (equator) पर या उसके समीप पड़ने वाली उदग्र (vertical) किरणों के कारण होता है।

2.2.5 प्रकाश और जीवों का वितरण

हम शुरू में ही बता चुके हैं कि पृथ्वी के विभिन्न प्रदेशों में प्रकाश की मात्रा विविधता से सामान्यतः पौधों और प्राणियों का भूमंडलीय और स्थानीय वितरण प्रभावित होता है। प्रकाश की एक बहुत बड़ी भूमिका स्पीशीज़ के संघटन में और वनस्पति के विकास में होती है। हम प्रकाश तीव्रता की भूमंडलीय विविधता का पहले ही विवेचन कर चुके हैं। आइए, अब हम स्थलीय तथा जलीय परितंत्रों में प्रकाश-जलवायु (light climate) की विविधता के विभिन्न कारणों का अध्ययन करें। किसी भी एक स्थान की प्रकाश-जलवायु का व्यापक विचार प्राप्त करने के लिए तीन पहलुओं पर सूचना प्राप्त करनी आवश्यक है (1) प्रकाश की तीव्रता अर्थात् प्रति इकाई क्षेत्र में प्रति इकाई काल के दौरान प्रकाश की मात्रा, (2) प्रकाश की गुणवत्ता अर्थात् तरंगदैर्घ्य संघटना, और (3) प्रकाशकालिता अथवा प्रकाश की कालावधि।

पत्ती पर आपतित संपूर्ण विकिरण ऊर्जा का 5 प्रतिशत भाग वाष्पीकरण में परिवर्तित एवं प्रयुक्त हो जाता है, 19 प्रतिशत भाग विकिरण द्वारा समाप्त हो जाता है, 50 प्रतिशत भाग पत्ती की सतह से परावर्तित अथवा संचारित हो जाता है। देखा गया है कि हीलिएंथस की पत्ती को प्रकाश संश्लेषण के लिए 0.42 से 1.66 प्रतिशत तक ही विकिरण ऊर्जा प्राप्त होती है।

स्थलीय परितंत्रों (terrestrial ecosystem) में प्रकाश-जलवायु में होने वाले महत्वपूर्ण स्थानीय परिवर्तन, वनस्पति का प्रकाश के मार्ग में बाधा बनने के कारण होते हैं। किसी जंगल में अपने पूरे-पूरे फैले छत्र (canopy) वाले ऊंचे वृक्ष सबसे ज्यादा धूप प्राप्त करते हैं और वे आपतित प्रकाश का प्रमुख भाग सोख लेते हैं। यह भाग प्रकाश स्पेक्ट्रम के विशेषतः लाल और नीले क्षेत्रों का होता है। नीचे उग रही झाड़ियाँ और घास-पात केवल वही प्रकाश प्राप्त कर पाती है जो ऊपर से वृक्ष क्षेत्र में से छनकर नीचे पहुँचता है। वने जंगल में बहुतलीय वनस्पति के कारण प्रकाश का अवरोध बहुत कुशलता से ऊपरी पौधे करते हैं। जंगल के फर्श पर पड़ने वाले प्रकाश की तीव्रता, लम्बे पौधों की शीर्ष पत्तियों के छत्र पर पड़ने वाले आपतित और विकीर्णित प्रकाश का केवल एक प्रतिशत अंश ही होती है।

चित्र 2.12 : बहुतलीय वनस्पति में प्रकाश का स्तरीकरण

चयनात्मक अवशोषण के कारण वृक्ष छत्रों में से गुजरते हुए प्रकाश की स्पेक्ट्रम गुणवत्ता भी बदल जाती है। फिर भी हम देखते हैं कि कुछ पादप स्पीशीज ऐसी अल्प प्रकाश-तीव्रताओं में भी पनपने के लिए अनुकूलित हो गई है। कुछ पौधे तेज प्रकाश में अच्छी तरह पनपते बढ़ते हैं और कुछ को अपनी प्राकृतिक वृद्धि के लिए विसृत (diffused) प्रकाश की आवश्यकता होती है—इस आधार पर पारिस्थिति विज्ञानियों ने पौधों को दो वर्गों में बांटा है — सायोफाइट (sciophytes छायाप्रेमी) तथा हीलियोफाइट (heliophytes धूपप्रेमी)। कुछ पौधे साए या तेज प्रकाश की अपनी पसन्द में बहुत पक्के होते हैं, ऐसे पौधों को अविकल्पी (obligate) सायोफाइट अथवा अविकल्पी हीलियोफाइट कहते हैं। कुछ ऐसे पौधे हीलियोफाइट भी हैं जो साए में भी उग सकते हैं, हालांकि इतनी अच्छी तरह से नहीं। ऐसे पौधों को विकल्पी (facultative) सायोफाइट कहते हैं। इसी प्रकार वे सायोफाइट जो तेज प्रकाश में भी उग सकते हैं, विकल्पी हीलियोफाइट कहलाते हैं।

पौधे केवल तभी पनप सकते हैं जब प्रकाश-संश्लेषण में प्राप्त की गई ऊर्जा श्वसन में इस्तेमाल होने वाली ऊर्जा से अधिक होती है। प्रकाश की वह तीव्रता, जिस पर प्रकाश-संश्लेषण द्वारा प्राप्त की गई ऊर्जा बस केवल श्वसन की ऊर्जा आवश्यकता के लिए पर्याप्त होती है, उसे प्रकाश क्षतिपूर्ति बिंदु (light compensation point) कहते हैं। वृक्षों के नीचे सघन साए में प्रकाश की मात्रा इतनी पर्याप्त नहीं होती कि वहां के पौधों को तात्कालिक ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति प्रकाश संश्लेषण द्वारा हो सके। अतः उनकी पत्तियाँ और कुछ शाखाएँ भी गिर जाती हैं। वृक्ष की पत्तियाँ स्वयं को इस प्रकार व्यवस्थित कर लेती हैं कि वे प्रकाश क्षतिपूर्ति बिंदु के ऊपर कार्य करती है। अभी तक हमने स्थलीय पारितंत्रों में स्पीशीज़ के वितरण पर प्रकाश के प्रभाव का विवेचन किया है। आइए, अब हम जलीय पारितंत्रों में प्रकाश के वितरण को देखें।

लाल शैवालों में एक पूरक वर्ण फाइकोएरिथरिन (phycoerythrin) होता है जिसके द्वारा वे हरे तरंगदैर्घ्य की ऊर्जा का उपयोग भोजन बनाने में कर सकते हैं और अधिक गहराइयों में जीवित रह सकते हैं।

पानी की गहराई बढ़ते जाने के साथ प्रकाश तीव्रता के उदग्र स्तरीकरण (vertical stratification) और साथ ही उसके स्पेक्ट्रम-गुणवत्ता में होने वाले परिवर्तन इसलिए होते हैं कि प्रकाश का जल में अंतर्वेधन सीमित होता है। सामान्यतः जल में लगभग 30 मीटर की गहराई तक सूर्य के प्रकाश का केवल एक प्रतिशत से भी कम भाग ही पहुँच पाता है। जल में गाद, मिट्टी, विलेय पदार्थों, प्लवक जीवों (plankton) तथा निलंबित पदार्थों के होने से प्रकाश का अंतर्वेधन और भी कम हो जाता है। ऐसे पदार्थों से प्रकाश की तीव्रता में काफी कमी आ जाती है और प्रकाश की गुणवत्ता भी बदल जाती है। यदाकदा, डकवीड (duckweed) जैसे पौधे, जो कि जल की सतह पर मुक्त तैरते रहते हैं, आने वाले प्रकाश को रोकते हैं। इसके अतिरिक्त, स्वयं शुद्ध जल भी प्रकाश का तीव्र दर से अवशोषण करता है और इसलिए उसके स्पेक्ट्रमी वितरण में बहुत परिवर्तन करता है। लाल और नीले तरंगदैर्घ्य की किरणें रह जाती हैं तथा शेष हरा प्रकाश ही अधिक गहराई तक पहुंच जाता है।

हम जानते हैं कि प्रकाश संश्लेषण की मात्रा का सीधा संबंध प्रकाश की तीव्रता से होता है और इस प्रकार जल में प्रकाश क्षतिपूर्ति बिंदु एक निश्चित गहराई पर आता है जिसे क्षतिपूर्ति गहराई (compensation depth) कहते हैं। इस गहराई से ऊपर और नीचे के क्षेत्रों को क्रमशः प्रकाशी क्षेत्र (photic zone) तथा अप्रकाशी क्षेत्र (aphotic zone) कहते हैं।

झील में तीन क्षेत्र होते हैं, जैसा कि चित्र 2.13 में दिखाया गया है। लिटोरल क्षेत्र (littoral zone) में झील के वे सभी क्षेत्र आते हैं जिनमें प्रकाश झील की तली तक पहुँचता है और जहाँ जलीय पौधों, जलीय प्राणियों और विघटकों (decomposers) की वृद्धि होती रहती है। प्रोफुंडल क्षेत्र (profundal zone) में ऐसे क्षेत्र भी होते हैं जो इतने गहरे होते हैं कि उनमें प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश नहीं पहुँच पाता। यह क्षेत्र क्षतिपूर्ति गहराई के नीचे होते हैं। लिम्नेटिक क्षेत्र (limnetic zone) प्रोफुंडल क्षेत्र के ऊपर खुला धूप से प्रकाशित जल वाला क्षेत्र होता है। यह क्षेत्र लिटोरल क्षेत्र के आगे विस्तृत होने वाला क्षेत्र है। इस क्षेत्र में छोटे, स्वछंद तैरने वाले प्लवक पाए जाते हैं, खास तौर से पादप-लवक (phytoplankton)।

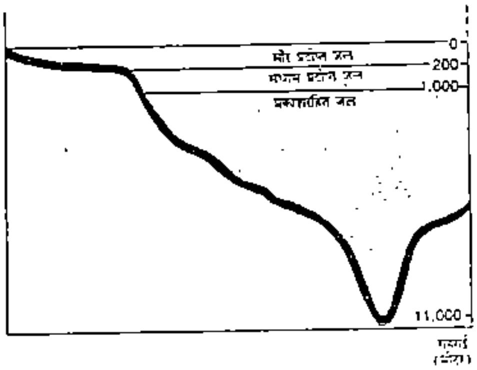

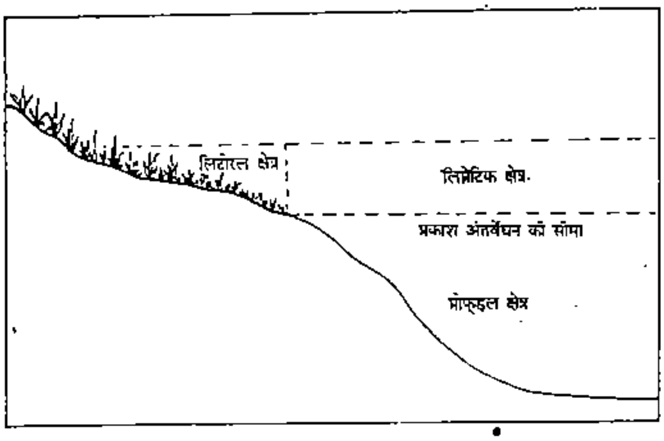

चित्र 2.13 : प्रकाश के अंतर्वेधन के अनुसार झील के विभिन्न क्षेत्र

चित्र 2.14 : महासागर में विभिन्न गहराइयों पर प्रकाश का अंतर्वेधन

समुद्री जीवों की वितरण-व्यवस्था के नियमन में प्रकाश एक महत्वपूर्ण कारक है। चित्र 2.14 में महासागर की वे अलग-अलग गहराइयां दिखाई गई हैं जिन पर प्रकाश का अंतर्वेधन होता है।

2.2.6 प्रकाशकालिता

प्राणियों में अनेक क्रियाकलाप जैसे कि प्रजनन (breeding) एवं प्रवसन (migration) पौधों का पुष्पन एवं बीजों का अंकुरण आदि, नियमन प्रकाश और अंधेरे की दैनिक कालावधियों के द्वारा होता है। प्रकाशकाल संबंधित व्यावहारपरक परिघटना को प्रकाशकालिता (photoperiodism) कहते हैं। उदाहरण के लिए मूली, आलू और पालक में तब पुष्पन होता है जब प्रकाश की कालावधि 12 घंटे प्रति दिन से अधिक होती है। ऐसे पौधों को दीर्घप्रदीप्तिकाली पौधे (long day plant) कहते हैं।

प्रकाशकालिता की जानकारी की बहुत बड़ी व्यावहारिक उपयोगिता है, क्योंकि इसी के आधार पर पौधों की खेती के लिए उचित स्पीशीज़ का बीज और ऋतुओं को चुना जाता है।

गेंहू, तंबाकू, डहेलिया तथा कई अन्य पौधों में तभी पुष्पन होता है जब प्रकाश की कालावधि 12 घंटे प्रति दिन से कम होती है। यानि कि रात 12 घंटे से अधिक हो। ऐसे पौधों को अल्प प्रदीप्तिकाली पौधे (short day plant) कहते हैं। इस प्रकार की अनुक्रियाओं से सिद्ध होता है कि पौधों के अन्दर ऐसी विशेष क्रियाविधि है जो प्रकाश और अंधेरे के काल को नापती है और यही कारण है कि पौधों में विशिष्ट ऋतुओं में ही फूल लगते हैं।

इसी प्रकार की प्रकाशकालिक अनुक्रियाएँ प्राणियों में भी देखने को मिलती हैं। वे अनुक्रियाएँ दिवापरक (diurnal) चांद्रपरक (lunar) अथवा वार्षिक (annual) हो सकती है। पक्षियों में प्रजनन तथा उनका प्रवास ऐसी ही वार्षिक प्रकाशकालिक अनुक्रिया के उदाहरण हैं। ऐसी ही अनुक्रियाओं के अध्ययन से लगता है कि कुछ पौधों और जानवरों का वितरण आवश्यक प्रकाशकालिक उद्दीपन के कारण सीमित होता है और तभी वे कुछ विशिष्ट अक्षांशों में ही पाए जाते हैं।

अब आप निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

बोध प्रश्न 2

क) निम्नलिखित कथनों में से गलत शब्दों को काटिए।

i) किसी वस्तु की चमक इस बात पर निर्भर करती है कि उस पर पड़ रहे प्रकाश को वह कितना (अवशोषित/परावर्तित) करती है।

ii) किसी सतह पर आपतित विकिरण का कोण जितना अधिक होगा, उस सतह से उतना ही (अधिक/कम) परावर्तन होगा।

iii) सौर ऊर्जा की मात्रा जो (मार्ग में पृथ्वी से रुकती है/वायुमंडल के सबसे ऊँचे भाग पर पड़ती है) को सौर-स्थिरांक कहते हैं।

iv) जब आपतित सौर-किरण पुंज किसी सतह पर उदग्रत: (vertically)/तिर्यक्तः (obliquely) पड़ता है तब उस किरण पुंज में तीव्रता (अधिक/कम) होती है।

v) अल्पप्रदीप्ति पौधों को बारह घंटे से (कम/ज्यादा) प्रकाश कालावधि की आवश्यकता होती है।

vi) (अवरक्त/पराबैंगनी) विकिरण को ओजोन परत रोक देती है।

vii) (अवरक्त/दृश्यमान) विकिरण मेघावरण में से गुजर सकता है।

viii) दृश्यमान/अवरक्त प्रकाश वायुमंडल में अवशोषित होने पर मोटे तौर पर घट जाता है।

ख) कॉलम 1 में दिए गए कथनों का कॉलम 2 में दिए गए शब्दों से मिलान कीजिए :

कालॅम 1	कालॅम 2
i) सायोफाइट जो चटक धूप में भी उग सकते है।	क) अविकल्पी हीलियोफाइट
ii) चटक धूप में पनपने वाले पौधे	ख) हीलियोफाइट
iii) छायादार जगहों में पनपने वाले पौधे	ग) सायोफाइट
iv) वे पौधे जिन्हें चटक धूप में नहीं उगाया जा सकता है।	घ) विकल्पी सायोफाइट

ग) कॉलम 1 में दिए यंत्रों को कॉलम 2 से मिलाइए।

कॉलम 1	कॉलम 2
i) फोटोमीटर	क) निम्न तरंगदैर्घ्य और नभ प्रकाश विकिरण में ऊर्जा
ii) नेट रेडियोमीटर	ख) प्रकाश की तीव्रता
iii) पाइरेनोमीटर	ग) नीचे आ रहे आपतित सौर विकिरण की ऊर्जा और ऊपर की ओर परावर्तित पुनः विकीर्णित ऊर्जा के बीच का अंतर
iv) सनशाइन रिकार्डर	घ) दिन के दौरान प्रकाश तीव्रता में उतार चढ़ाव

अब चूंकि आप इस खंड को पूरा कर चुके हैं, अब समय है थोड़ा सुस्ता लेने का। अगर चाहें तो एक प्याला चाय पी लीजिए।

2.3 तापमान

तापमान, गतिज ऊर्जा अथवा अणुओं की गति की ऊर्जा का लगभग माप होता है। किसी पदार्थ के अणु जितनी तेजी से गति करते हैं, उस पदार्थ का तापमान उतना ही अधिक होता है। किसी भी पदार्थ की उष्मा उसके द्वारा दी गई संपूर्ण आण्विक ऊर्जा की मात्रा होती है। इसे कैलोरी में मापा जाता है। तापमान, आपेक्षिक उत्तापन (relative heating) के वर्णन करने का एक सुविधाजनक तरीका है।

तापमान एक प्रमुख पर्यावरण कारक है। इसके द्वारा जीवधारियों के जीवन में आवश्यक क्रियाकलाप प्रभावित होते हैं जैसे कि चयापचय (metabolism) वृद्धि, तथा प्रजनन। ताप का प्राथमिक प्रभाव एंजाइमों (enzymes) की स्थिरता और उनकी क्रियाशक्ति पर पड़ता है। हम जानते हैं कि एंजाइम कोशिकाओं के भीतर होने वाली जैव-रासायनिक क्रियाओं को चलाते हैं और उनका नियमन करते हैं। इसके अलावा अधिक तापमान से एंजाइम नष्ट हो जाते हैं। तापमान के द्वारा जैव झिल्लियों के गुण-धर्म भी प्रभावित हैं।

हम जानते हैं कि पृथ्वी के विभिन्न स्थानों के तापों में बहुत अंतर है जिनके प्रति जीवधारियों को अनुकूलित होना बहुत जरूरी है। किसी क्षेत्र में किस प्रकार के पौधे और प्राणी पनप सकते हैं, जीवित रह सकते हैं और प्रजनन कर सकते हैं, यह उस क्षेत्र के तापमान और पानी की उपलब्धता पर ही बहुत हद तक निर्भर होता है। प्रत्येक जीवधारी के द्वारा तापमान को सह सकने की एक निश्चित सीमा होती है, इस सीमा का सबसे ऊंचा और सबसे नीचा तापमान घातक होता है। यह सीमा अलग-अलग स्पीशीज़ के लिए अलग-अलग होती है। इस प्रकार तापमान उन कारकों में से एक कारक है जो पौधों और प्राणियों के भौगोलिक वितरण को सीमित करता है। तापमान से ही परोक्ष रूप में जल की उपलब्धता भी प्रभावित होती है और जल स्वयं एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय कारक है। तापमान बलाघात के प्रति जीवधारियों में होने वाले अनुकूलनों का वर्णन करने से पहले, आइए विभिन्न अक्षांशों (latitudinal) तथा तुंगताओं (altitudinal) पर ताप विभिन्नताओं का विवेचन करें और तापमान की भूमंडलीय तस्वीर को देखें।

2.3.1 अक्षांशीय परिवर्तन

पृथ्वी पर पाए जाने वाले अक्षांशीय तापमान की विविधता दो मुख्य परिवर्तनों के कारण पैदा होती है :

1) सूर्य से आ रही विकिरण और

2) थल एवं जल-संहतियों (land and water masses) का वितरण

क्या आप सोच सकते हैं कि तापमान को प्रभावित करने वाला कोई अन्य कारक है?

अन्य कारक हैं, हवा और पानी की गति तथा पहाड़ियों और पर्वतों के ढलानों की दिशाएं, जो तापमान को बदलती हैं।

हम जानते हैं कि उच्चतर अक्षांशों पर दिन और रात के अवधिकाल में फर्क ज्यादा होता है यानि वहाँ सूर्य से आने वाले विकिरण की मात्रा वर्ष भर बदलती रहती है। फिर भी अगर हम औसत मान कर परिकलन करें तो पृथ्वी के प्रत्येक बिंदु पर हर वर्ष दिन के प्रकाश की कुल घंटों की अवधि एक ही होती है—प्रतिदिन औसत बारह घंटे दिन और बारह घंटे रात। फिर भी सभी जगह ऊष्मा की मात्रा बराबर नहीं होती क्यों? यह उष्मा की मात्रा प्रति इकाई क्षेत्र में प्रति घंटे पड़ने वाली विकिरण ऊर्जा की मात्रा पर निर्भर होती है और जैसा कि हमने पढ़ा है यह विकिरण ऊर्जा आने वाली धूप के कोण पर निर्भर करती है। पिछले खंड में आप पढ़ चुके हैं कि उदग्र (vertical) किरण पुंज अधिक तीव्र होता है और उच्चतर अक्षांशों पर पड़ने वाला तिर्यक् (oblique) किरण पुंज कम तीव्र। अतः हम देखते हैं कि क्षैतिजशः बढ़ते जाते अक्षांशों पर प्रति इकाई क्षेत्र पर आपतित विकिरण ऊर्जा की मात्रा धीरे-धीरे घटती जाती है। आइए, अब जरा बाहर निकल जाने वाले अवरक्त (infrared) विकिरण का भी हिसाब ले लें। चित्र 2.15 में दिए गए वक्रों को देखें जिनमें विविध अक्षांशों पर अवशोषित सौर विकिरण तथा बाहर जाने वाले अवरक्त विकिरणों की तुलना की गई है। आप देखेंगे कि निम्नतर अक्षांशों पर अवशोषण के द्वारा उष्मायन की दर ज्यादा है जबकि बाहर जाने वाले अवरक्त विकिरणों द्वारा शीतलन की दर कम है।

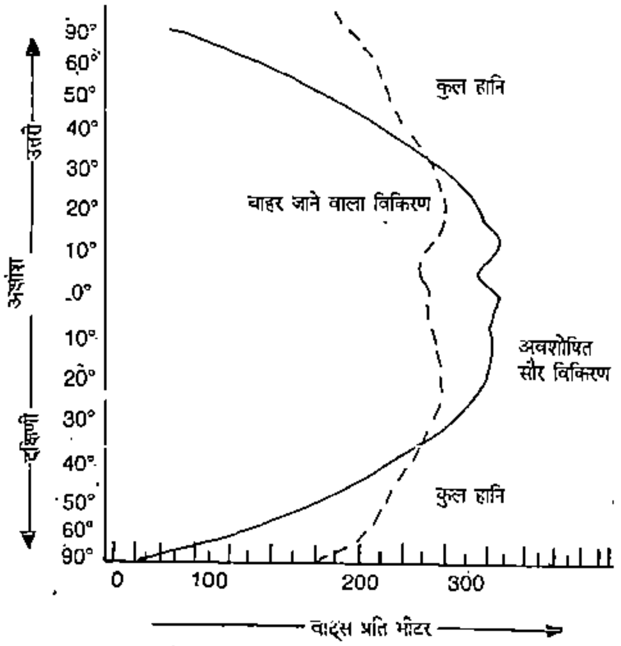

चित्र 2.15 : अवशोषित सौर विकिरण तथा बाहर जाने वाला अवरक्त विकिरण विभिन्न आक्षाशों पर

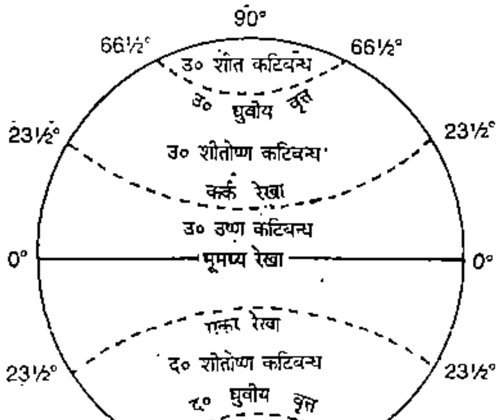

चित्र 2.16 : विभिन्न ताप क्षेत्र

दूसरी तरफ उच्चतर अक्षांशों में इससे उल्टा होता है—वहां अवशोषण की दर की अपेक्षा शीतलन की दर कहीं ज्यादा होती है। लगभग 28° N तथा 33° S के लगभग ऊपर शीतलन और उष्मायन दर बराबर है। विषुवत रेखा की तुलना में ध्रुवों पर प्राप्त होने वाली विकिरण ऊर्जा केवल लगभग 40 प्रतिशत ही होती है। विभिन्न अक्षांशों पर ऊष्मा परिवर्तन दो और कारणों से भी होते हैं—गर्म और ठंडी जल संहतियों (water masses) की गति तथा ठंडी और गर्म महासागरीय धाराओं (warm ocean currents) का परस्पर विनिमय।

विभिन्न अक्षांशों पर तापमान में होने वाले परिवर्तनों के अलावा हम देखते हैं कि एक ही अक्षांश पर अलग-अलग स्थान के तापमानों में भी काफी अंतर होता है। उदाहरण के लिए भारत में कलकत्ता और नागपुर एक ही अक्षांश पर स्थित हैं, लेकिन कलकत्ता के तापमान में, समुद्र की निकटता के कारण, अधिक उतार-चढ़ाव नहीं होते। तालिका 2.1 में इन दो स्थानों के तापों की तुलना की गई है।

तालिका 2.1

एक ही अक्षांश ~22° N पर स्थित कलकत्ता (समुद्र तट के नजदीक) और नागपुर (समुद्र तट से सुदूर) के अधिकतम और न्यूनतम तापमानों की तुलना

माह	कलकत्ता		नागपुर	
	उच्चतम तापमान	न्यूनतम तापमान	उच्चतम तापमान	न्यूनतम तापमान
जनवरी	26	12	29	13
फरवरी	29	15	33	15
मार्च	34	20	36	19
अप्रैल	36	24	40	24
मई	36	26	43	28
जून	34	26	38	27
जुलाई	32	20	31	24
अगस्त	32	26	30	24
सितम्बर	32	26	31	23
अक्तूबर	31	24	32	20
नवम्बर	29	18	30	14
दिसम्बर	27	13	29	12

क्या आप जानते हैं कि यह अंतर क्यों है? ऐसा इसलिए है क्योंकि थल और जल उष्मा को अलग-अलग तरीके से अवशोषित करते हैं और इसी के कारण एक ही अक्षांश पर अधिक अंतर पैदा हो जाते हैं। थल के स्थानों, क्षेत्रों अथवा केन्द्रों पर तापमान के दैनिक दिवापरक एवं ऋतुपरक उतार-चढ़ाव ज्यादा होते हैं। स्कूल में आपने इस बारे में भूगोल विषय में अध्ययन किया होगा।

ताप-विभिन्नता के आधार पर प्रत्येक भूगोलार्ध (hemisphere) में तीन स्पष्ट उष्मा क्षेत्र देखे जा सकते हैं। चित्र 2.16 गर्म उष्ण क्षेत्र विषुवत् रेखा के समीप हैं। मध्यम अथवा शीतोष्ण क्षेत्र बीच में हैं और ठंडे क्षेत्र ध्रुवों पर हैं। प्रत्येक क्षेत्र में वहां की प्रतिरूपी पादप और प्राणी समष्टियाँ पाई जाती हैं।

2.3.2 तुंगीय परिवर्तन

आप जानते हैं कि बढ़ती जाती तुंगता के साथ तापमान घटता जाता है। ऐसा मुख्यतः ट्रोपोस्फियर में संवहनी धाराओं (convection currents) के कारण होता है। ट्रोपोस्फियर पृथ्वी के वायुमंडल का सबसे निचला और सबसे सघन क्षेत्र होता है। वायुमंडल के विभिन्न क्षेत्रों के विषय में आप खंड 2.4.2 में पढ़ेंगे। जैसा कि हम जानते हैं, पृथ्वी की सतह सौर-विकिरण के कारण गर्म होती है, और इससे ही सतह के तुरन्त संपर्क में आने वाली हवा गर्म हो जाती है। इसी के कारण संवहनी धाराएं पैदा हो जाती हैं जो हवा को लगातार निचले क्षेत्रों से ऊपर वाले क्षेत्रों में और ऊपर वाले क्षेत्रों से नीचे के क्षेत्रों में लाती ले जाती हैं और यह तब होता है जब समुद्र स्तर से वायु ऊपर उठती हुई ऊपरी वायुमंडल में जाती है जहाँ कि दबाव कम होता है तो कम दबाव के कारण हवा फैलती है यानि उसका आयतन बढ़ जाता है। फैलते समय वायु के अणु सहवर्ती अणुओं को पीछे धक्का देते हैं। ऐसा होने में अणुओं की गतिज ऊर्जा (kinetic energy) समाप्त हो जाती है और यही वह ऊर्जा होती है जो ताप में कमी आने के रूप में परिलक्षित होती है। जब गैस-अणु नीचे आ रहे होते हैं तब उनके संपीड़ित (compressed) हो जाने से उन्हें उतनी ही ऊर्जा फिर से प्राप्त हो जाती है और इस तरह तापमान बढ़ जाता है। तापमान में होने वाले इस प्रकार के परिवर्तन को, जिसमें उस तंत्र (system) तथा उसके परिवेश (surrounding) के बीच ताप में ना तो कोई बढ़ोतरी होती है और न ही कोई ह्रास, इसे एडाइबेटिक परिवर्तन (adiabatic change) कहते हैं।

2.3.3 भूमंडलीय तापमान

आइए, अब हम भूमंडलीय तापमान को चित्र 2.17 में देखें। विश्व के समतापरेखीय मानचित्र में पृथ्वी पर पाए जाने वाले वार्षिक औसत तापमान की व्यवस्था दर्शायी गई है। इसमें हम देखते है कि महाद्वीपीय बल-संहतियों में अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत तापमान परास पाए जाते हैं। दक्षिण गोलार्द्ध में उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा अधिक जल संहति है इसलिए इसमें कम तापमान परास,है। चित्र 2.18 में भारत के नगरों का वार्षिक औसत तापमान दिखाया गया है।

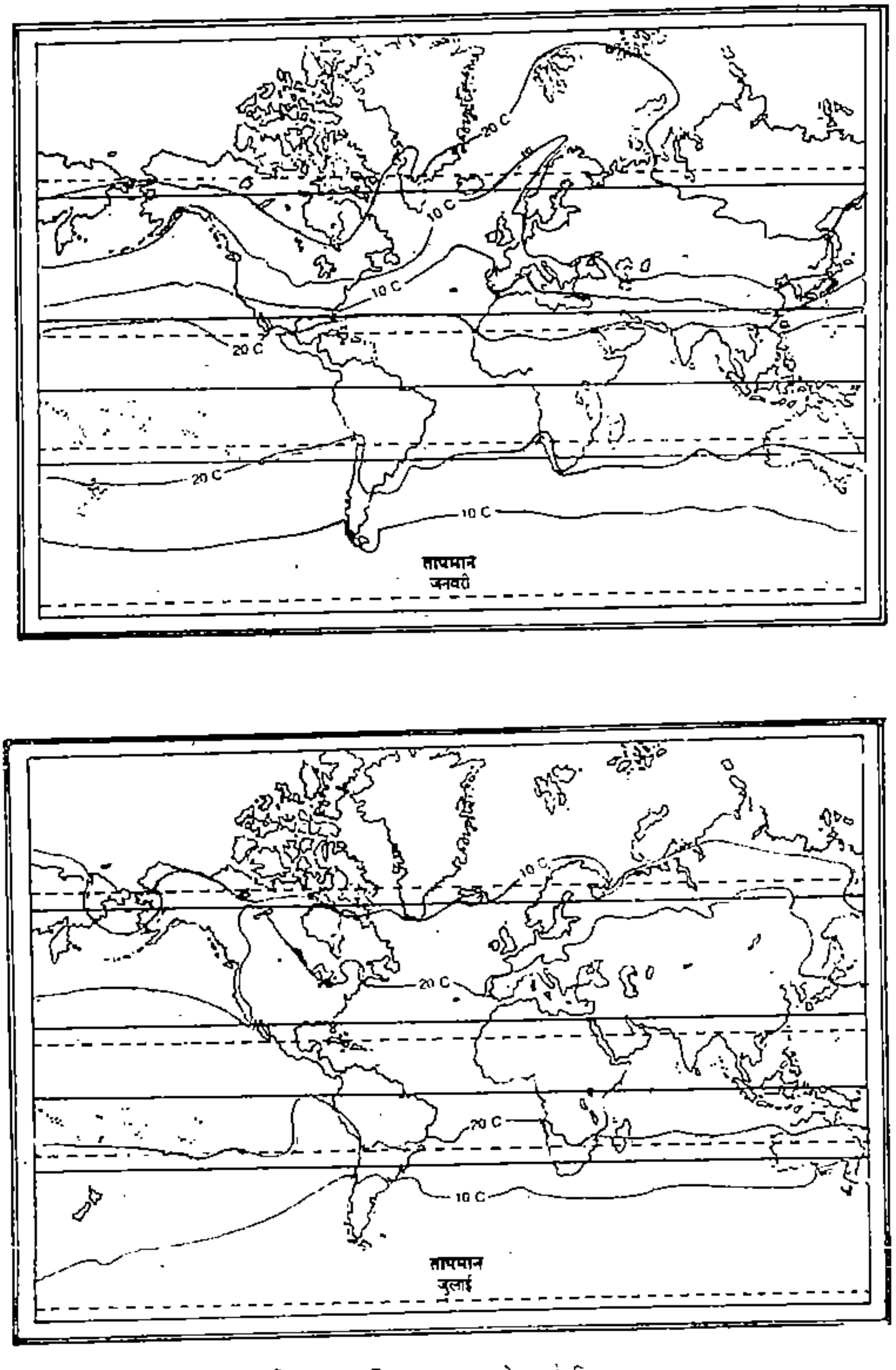

चित्र 2.17 : विश्व का समताप रेखा मानचित्र

दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेश की मछली ट्रेमेटोमस बरनाकी (Trematomus Bernacchi) की तापमान सहनशीलता बहुत सीमित होती है। करीबन 4°C, -2 से + 2° C — के परास में। इस प्रकार यह अतिसंकीर्ण ... में ठंड के लिए अनुकूलित है।

2.3.4 तापमान-बलाघात

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि जल के साथ मिलकर तापमान जीवधारियों के भौगोलिक वितरण और उनके प्रसार को बहुत महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करता है। प्रत्येक जीवधारी एक निश्चित तापमान परास में ही सीमित होता है और यह परास अलग-अलग स्पीशीज़ में काफी भिन्न हो सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, तापमान की एक ऊपरी

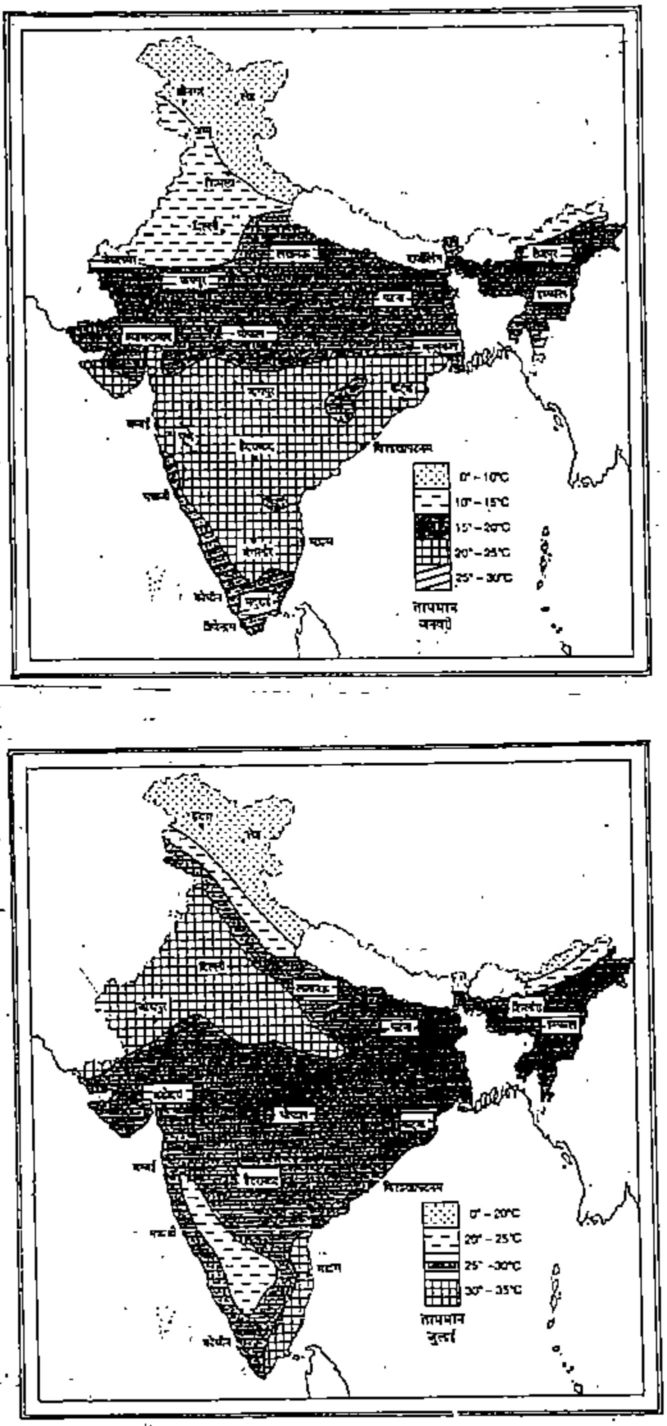

चित्र 2.18 : भारत में औसतन वार्षिक तापमान (यह मानचित्र राजनीतिक सीमाएं नहीं दर्शाते

घातक सीमा (upper lethal limit) और एक निचली घातक सीमा (lower lethal limit) होती है। इन तापों से परे कोई निर्दिष्ट जीव अपनी सामान्य जीवन-क्रियाएं नहीं चला सकता उसमें अनिवार्य (irreversible) क्षति हो सकती है या मर भी सकता है।

उच्चतम तथा न्यूनतम घातक तापमान तथा अनुकूलन तापमान को मुख्य आधारी तापमान (cardinal temperature) कहते हैं। और ये तापमान हर स्पीशीज़ में अलग-अलग होते हैं। कुछ जीवों में उच्चतम व न्यूनतम तापमान में बहुत कम अंतर होता है उन्हें संकीर्णतापी जीव (stenothermal) कहते हैं। अन्य जीवों में इन तापमानों को सहन करने की सीमाएं फैली होती हैं। इन्हें विस्तृत तापी (eurythermal) जीव कहते हैं। इसके अतिरिक्त जीवों में वृद्धि परिवर्धन और प्रजनन के लिए अलग-अलग अनुकूलतम तापमान भी होते हैं, यानि विशिष्ट तापमान पर ही वे अपनी विशिष्ट शरीर-क्रियाओं को अधिकतम कुशलता से चला सकते हैं। स्थलीय जैविक समुदायों की विशिष्टताओं का निर्धारण, तापमान और वर्षा द्वारा होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमंडल में जो विभिन्न बायोम (biomes) फैले होते हैं

वे तापमान के अनुरूप फैले हैं। तापमान स्वयं भी अन्य कारकों द्वारा प्रभावित होता है तथा अन्य कारकों को प्रभावित करता है। चूंकि तापमान तुंगता एवं अक्षांश के अनुसार बदलता है, इसलिए विषुवत् रेखा से उच्चतर अक्षांशों की ओर पाई जाने वाले वनस्पति की विविधता कुछ-कुछ वैसी ही होती है जैसी कि मैदानों से उच्चतर तुंगताओं के बीच पाई जाती है। यह बात चित्र 2.20 में दर्शायी गई है।

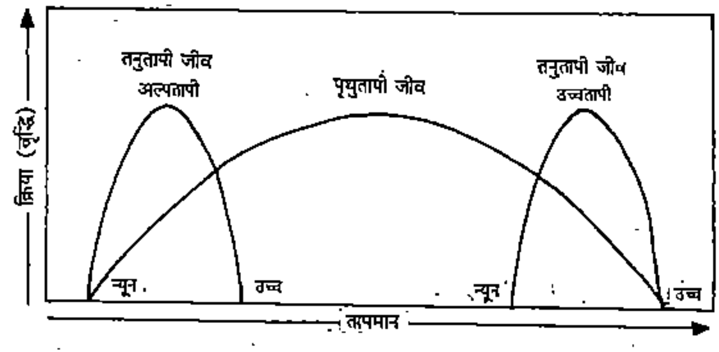

चित्र 2.19 : स्टीनोथर्मल (stenothermal) और यूरीथर्मल (eurythermal) जीवधारियों की क्षमता-सीमाएं। स्टीनोथर्मल स्पीशीज़ में अधिकतम, न्यूनतम तथा अनुकूलतम सीमाएं एक बहुत ही संकीर्ण परास में पाई जाती हैं। यूरीथर्मल स्पीशीज़ में तापमान-सहनशीलता का एक बड़ा परास पाया जाता है।

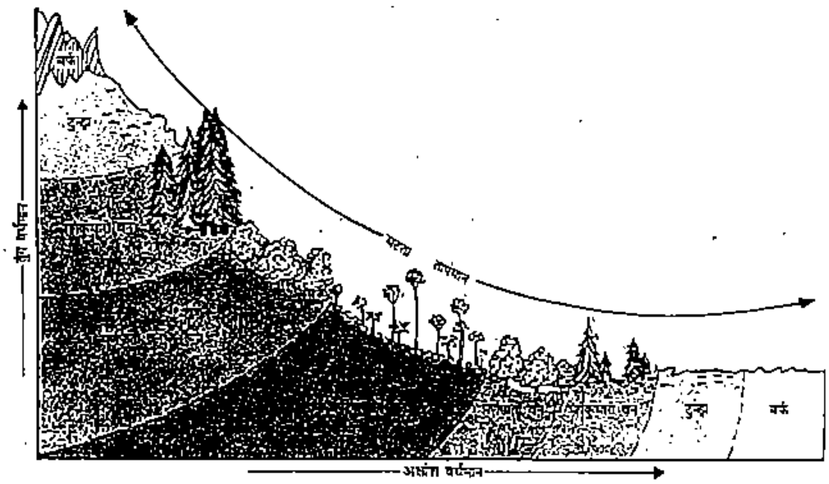

चित्र 2.20 : वनस्पति के क्षेत्र, तुंगता के साथ ठीक उसी प्रकार बदलते जाते हैं जैसे कि अक्षांशों के साथ। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वनस्पति का निर्धारण अंशतः तापमान से भी होता है। दूसरा अन्य कारण वर्षा है।

विभिन्न भू-प्रदेशों में पाए जानेवाले बायोमों का नाम उनमें पनप रही वनस्पति के प्रकार के अनुसार दिया गया है, जैसे शंकुधर वन (coniferous forests), पर्णपाती वन (deciduous forests), घासी मैदान (grasslands), सवाना (savanna) आदि। मरुस्थल और टुंड्रा में चरम तापमान अनुभव किए जाते हैं। ऐसे बायोमों के जीव तापमान सह्य की सीमाओं पर जीवित रहते हैं। आइए, अब हम बायोमों में रहने वाले जीवधारियों पर पड़ने वाले तापमान वलाघात का वर्णन करें।

चरम गर्मी और सर्दी

संसार के विशालतम मरुस्थल विषुवत् रेखा के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर लगभग 30° अक्षांश तक फैले पाये जाते हैं।

मरुस्थल शुष्क प्रदेश हैं जिनमें वार्षिक वर्षा 20 से.मी. से भी कम होती है और यहां की मिट्टी उपजाऊ होते हुए भी इतनी छिद्रित होती है कि उसमें जल रुक ही नहीं पाता। गर्मियों में वहाँ के तापमान में बहुत ज्यादा दैनिकदिवापरक अंतर पाया जाता है। दिन में अधिकतम तापमान 40°C हो सकता है और उसी रात को यह 15°C तक गिर जाता है वहाँ मेघावरण न होने के कारण प्रकाश की तीव्रता बहुत अधिक हो जाती है। वास्तविक मरुस्थल है अफ्रीका का सहारा और आस्ट्रेलिया का विशाल मरुस्थल जहां वार्षिक वर्षा 2 से.मी. से भी कम होती है। ऐसे स्थानों में केवल वे ही पौधे और प्राणी जीवित रह पाते हैं जिनमें कुछ ऐसे विशेष लक्षण विकसित हो गए हों जो उन्हें उच्चताप और जलाभाव को सहन कर सकने योग्य बना देते हैं।

इसके विपरीत तापमान की दूसरी चरम सीमा उत्तरी ध्रुव प्रदेश तथा ऐल्पाइन टुंड्रा में पाई जाती है। टुंड्रा शब्द का अर्थ है अनावृत पर्वत शिखर (bare mountain top) जहां कुछ नहीं है। टुंड्रा वर्ष के अधिकांश भाग में बर्फ से जमे

रहते हैं और यहां भी वार्षिक वर्षा लगभग 20 से.मी. ही होती है इसलिए मरुस्थलों से बहुत मिलते-जुलते हैं। लेकिन अल्पकालिक ग्रीष्म के दौरान, यहां बर्फ की ऊपरी परतों के पिघलने से जल भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। तब जमीन पर छोटी-छोटी घास और मॉस (moss) एवं लाइकेन (lichen) जहां-तहां उग आते हैं। 3-5 से.मी. मोटी इस पिघली परत के नीचे जो मिट्टी होती है जहां हमेशा बर्फ जमी रहती है उसे स्थायी तुषारभूमि (permafrost) कहते हैं। चूंकि यहां पौधों की जड़ें मिट्टी में गहराई तक घुस नहीं सकती इसलिए यहां वृक्ष नहीं होते हैं।

उत्तर ध्रुवीय टुंड्रा संसार के उत्तरीय अक्षांशों की मेखला तक ही सीमित है। ऐशिया, यूरोप तथा उत्तरी अमरीका में समुद्र तटों और उत्तर ध्रुवीय महासागरों के द्वीपों में पाए जाने वाले उत्तर ध्रुवीय घास मैदान यही टुंड्रा है। ऐल्पाइन टुंड्रा विश्व भर में विभिन्न अक्षांशों पर उच्च तुंगताओं पर पाए जाते हैं।

आइए, अब देखें कि तापमान की इन चरम सीमाओं में पौधे और प्राणी किस प्रकार अनुकूलित हैं।

2.3.5 अनुकूलनताएं

प्रत्येक जीवधारी अपने जीवन-इतिहास में जलवायु संबंधी परिस्थितियों के एक निश्चित परास के भीतर ही जीवित रह सकते हैं और जनन कर सकते हैं। गर्म अथवा ठंडे पर्यावरणों में रहने वाले जीवधारियों में ऐसे व्यावहारात्मक (behavioural) तथा शरीर क्रियात्मक (physiological) लक्षण पाए जाते हैं जिन के कारण वे चरम तापमानों पर जीवित बने रह सकते हैं। स्वयं को जीवित रखने में कुशल ये जीवधारी या तो इन चरम परिस्थितियों को सहन कर लेते हैं या फिर वे ऐसी विधियाँ विकसित कर लेते हैं कि ऐसे परिस्थितियों को सहन कर वह पूरी तरह बच जाएं। उदाहरणतः उच्चताप प्रभाव से बचने के लिए मरुस्थलों में पाए जाने वाले पौधों में क्यूटिकल की एक मोटी परत होती है उनमें मासलता (succulence) आ जाती है। पत्तियों और तनों में जल-संचयी ऊतक विकसित हो जाते हैं। अनेक कैक्टसों में तना हरा होता है और वह पत्तियों का कार्य करता है यानि प्रकाश-संश्लेषण द्वारा भोजन बनाने का। इन पौधों में शरीर-क्रियात्मक अनुकूलन भी होते हैं। इनके स्टोमैटा (stomata) दिन में बंद रहते हैं ताकि वाष्पोत्सर्जन (transpiration) में होने वाली जल-हानि को रोका जा सके। दिन के दौरान जब स्टोमैटा बंद होते हैं तब कार्बनडाइआक्साइड (CO_2) का विसरण (diffusion) नहीं हो सकता। प्रकाश संश्लेषण करने के लिए इन पौधों में विशिष्ट शरीर क्रियात्मक अनुकूलन हो जाते हैं। रात के समय जब उनके स्टोमैटा खुले होते हैं तब वे कार्बनडाइआक्साइड (CO_2) को भीतर ले लेते हैं और उसे चार कार्बन वाले अम्ल (4-carbon acid) के रूप में इकट्ठा कर लेते हैं। रात के समय पकड़ ली गई यह कार्बनडाइआक्साइड बाद में दिन के समय विमोचित हो कर प्रकाश संश्लेषण में इस्तेमाल हो जाती है। इस प्रकार के उपापचय को क्रस्टलैसियन ऐसिड मेटाबोलिज्म (crustulacean acid metabolism) कहते हैं। इस विधि का विस्तार से वर्णन जैव क्रिया विज्ञान (physiology) के पाठ्यक्रम में किया जाएगा। स्थिर अनुकूल तापमान क्षेत्र (constant favourable temperature) बनाम एकांतरक्रमी तापमान (alternating temperature) के लिए पौधों की अनुक्रियाओं के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि बीजांकुरण, वनस्पति वृद्धि अथवा फल-निर्माण एकांतरक्रमी तापमान में सबसे अच्छे होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पौधों में तापमान परिवर्तनों के प्राकृतिक तालबद्ध दैनिक द्विवापरक चक्र (rythmic diurnal cycle) के साथ संमजन बना होता है। नियतकालिक ताप परिवर्तनों के प्रति पौधों की अनुक्रियाओं के नियमन को तापकालिता (thermoperiodism) कहते हैं।

आइए, अब हम देखें कि तापमान बलाघात से जूझने के लिए प्राणी क्या-क्या उपाय करते हैं। पौधों की अपेक्षा प्राणियों की स्थिति बेहतर है क्योंकि वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा सकते हैं। वे शरीर क्रियात्मक तथा व्यावहारात्मक विधियों से अपने भीतर और बाहर के पर्यावरण का नियमन करके तापमान बलाघात से जूझते हैं। कदाचित आप जानते ही होंगे कि पक्षी और स्तनजीवी अपने शरीरों का तापमान स्थिर बनाए रख सकते हैं। ऐसा वे कोशिकीय श्वसन के दौरान निकलने वाली उपापचय ऊर्जा का इस्तेमाल करके करते हैं, इन्हें समतापी (homeotherm) अथवा अंतः तापी (endotherm) कहते हैं क्योंकि वे अपनी भीतरी विधियों द्वारा स्थिर देह-तापमान का नियंत्रण करते हैं। इस गर्मी को भीतर कायम बनाए रखने में देह की वसा, देह के ऊपर पाए जाने वाले पर, समूर (fur) अथवा बाल आदि सहायता करते हैं। कुछ प्राणी अपने देह तापमान का नियमन करने के लिए अनेक व्यावहारात्मक क्रियाविधियाँ भी इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार के नियमन को व्यवहारात्मक तापमान नियमन करते हैं। उदाहरणतः दिन में अधिक गर्मी के समय वे छायादार स्थानों में चले जाते हैं या पानी में डुबकी लगा सकते हैं। रेगिस्तानी प्राणी, जैसे सांप, छिपकली, बिच्छू तथा चूहे अधिकतर रात्रिचर होते हैं, यानि वे दिन के समय चिलचिलाती धूप से बचने के लिए छिपे रहते हैं और रात को या सुबह तड़के जब तापमान सामान्यतः कम होता है, भोजन की तलाश में घूमते, विचरते हैं। छिपकली और सांप जैसे सरीसृपों को अनियततापी (cold blooded) कहा जाता है क्योंकि वे अपने शरीर का तापमान नियंत्रित नहीं कर सकते। मगर इन प्राणियों पर किए गए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि वे भी व्यावहारात्मक विधियों से अपने शरीर के तापमान को कारगर रूप में नियंत्रित कर सकते हैं। सरीसृप प्राणी अपनी बिलों के भीतर और बाहर इस तरह आते जाते हैं कि उनके शरीर का तापमान काफी हद तक स्थिर बना रहता है। देखा गया है कि पर्यावरण में होने वाले भारी तापमान के उतार चढ़ाव के बावजूद रेगिस्तानी छिपकली अपने देह तापमान को 31° और 39° के बीच बनाए रख सकती है। ऐसे प्राणियों को असमतापी अथवा बाह्य तापी (poikilothermic) कहते हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि वे व्यावहारात्मक विधियों के द्वारा अपने शरीर के तापमान को काफी हद तक नियंत्रित कर सकते हैं। प्राणी अपने शरीर के तापमान को पसीने तथा वाष्पन के द्वारा अतिरिक्त गर्मी को निकाल कर भी नियंत्रित करते हैं।

अधिक ठंडी जलवायु में प्राणियों में गर्मी एकत्रित करने के लिए अनुकूलन होते हैं। पक्षी अपने शरीर को कंपकपा कर अपने पंखों की पेशीय क्रिया को बढ़ाकर अपने शरीर को गर्म रखते हैं। कैमीलियान (एक प्रकार का गिरगिट) अपना रंग बदल कर काला कर लेता है जिससे उसकी गर्मी अवशोषित करने की क्षमता बढ़ जाती है, ऐसे प्राणियों को एक्टोधर्मी (ectotherm) कहते हैं जो धूप तापते हैं। प्राणी एक और तरीके से तापमान का नियंत्रण करते हैं जिसमें वे अपने

सर्दी में उत्तरी प्रदेशों से साइबेरियन सारस भरतपुर पक्षी वन को प्रवास करते हैं।

शरीर का कुछ ही भाग धूप में रखते हैं ताकि उतनी ही गर्मी वे प्राप्त कर सकें जितनी उन्हें चाहिए। प्रतिकूल जलवायु परिस्थिति से बचने का एक और तरीका प्रवास के रूप होता है। कदाचित आप जानते हैं कि उत्तरी अथवा शीतलतर प्रदेशों के पक्षी, सर्दियों में दक्षिणी गर्मतर प्रदेशों में पहुँच जाते हैं। मछलियाँ तैर कर लंबी-लंबी दूरियां तय करती हैं ताकि वे ऐसी जल राशियों में पहुँच जाएं जहां उनके जीवित रहने के लिए अनुकूल तापमान मिलता है। कुछ प्राणी, जैसे कि चमगादड़ झाउमूसे (hedgehog) स्थलीय गिलहरी और छिपकलियाँ अपनी उपापचयी क्रियाओं को घटा कर शीत निष्क्रियता की अवस्था में आ जाती हैं जिससे उनकी ऊर्जा आवश्यकताएं कम से कम हो जाती है। गर्मियों में उच्च तापमान से बचने के लिए कीट, फेफड़ा-मछली ऐम्फिबियन आदि भी अपने क्रिया कलापों को निलंबित कर देते हैं और एक प्रसुप्त जीवन व्यतीत करने लगते हैं। इस अवस्था को ग्रीष्म निष्क्रियता (aestivation) कहते हैं।

अब आप निम्नलिखित बोध प्रश्न को हल करने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न 3

क) सही कथनों पर (√) निशान लगाइए :

i) बढ़ते जाते अक्षांशों में तापमान में विविधता किस कारण आती है :

क) प्रकाश कम घंटे रहता है।

ख) सौर-किरण पुंज की तीव्रता घट जाती है।

ग) अवरक्त किरणों के ठंडे होने की दर सौर विकिरण के अवशोषण से ज्यादा होती है।

ii) वनस्पति पर बढ़ती जाती तुंगता का प्रभाव वैसा ही होता है जैसा कि बढ़ते जाते अक्षांशों का, क्योंकि :

क) पर्वतों के कारण धूप का कोण बदल जाता है।

ख) तुंगता और अक्षांश दोनों ही बायोस्फियर में अधिक ऊपर होते हैं।

ग) अक्षांश तथा तुंगता दोनों ही के साथ तापमान घटता जाता है।

iii) तापमान में होने वाले दिवापरक परिवर्तन कहां पर ज्यादा होते हैं :

क) रेगिस्तानी प्रदेश

ख) तटवर्ती प्रदेश

iv) जिस प्राणी की देह का तापमान परिवेश बदलता है उसे क्या कहते हैं :

क) पोइकिलाथर्म

ख) होमोथर्म

v) स्टीनोथर्मी प्राणी किस प्रकार के तापमान को सहन करते हैं :

क) उच्चतम और न्यूनतम ताप में बहुत अधिक अंतर वाले तापमान को

ख) सीमित अंतर वाले तापमान को

ख) जब हवा ऊपर को उठती है तब उसका तापमान क्यों गिर जाता है? समझाइए।

....

....

....

ग) गलत शब्दों को काटिए।

i) पृथ्वी पर औसतन हर बिंदु पर (दिन का प्रकाश/उष्मा) प्रतिवर्ष समान घंटों के लिए पड़ता है।

ii) (उच्चतर/निम्नतर) अक्षांशों पर सौर-विकिरण के अवशोषण के द्वारा गर्म होने की दर शीतलन की दर से (अधिक/कम) होती है।

2.4 वायुमंडल

आधार पाठ्यक्रम की इकाई 15 में आप पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी के चारों ओर वायुमंडल यानि एक गैसीय आवरण होता है। वायुमंडल हमारे जीवमंडल का ही एक अनिवार्य भाग है। वायुमंडल की संरचना का अध्ययन करना जरूरी है क्योंकि इसी संरचना के आधार पर हमारे इस ग्रह की जलवायु और मौसम तथा इस पर जीवनाश्रयी तंत्र निर्भर करते हैं।

2.4.1 संरचना

आज का वायुमंडल उस एक लंबे विकासीय प्रक्रम का उत्पाद है जो चार अरब वर्ष पहले शुरू हुआ था। वायुमंडल विभिन्न गैसों के मिश्रण तथा निलंबित कणों का बना है (तालिका 2.2) जैसा कि आप इस तालिका में देखेंगे, वायुमंडल

में लगभग 12 गैसे पाई जाती है, इनमें से अधिकतर गैसे अत्यन्त अल्प मात्रा में होती हैं। नाइट्रोजन और ऑक्सीजन इसकी मुख्य गैसें हैं। वायुमंडलीय गैसों में लगातार मिश्रण होने के कारण इसकी यह संरचना लगभग 15 किलोमीटर की ऊंचाई तक करीब-करीब स्थिर बनी रहती है। हम पृथ्वी पर चाहे कहीं भी जाएं, हम निश्चिंत रह सकते हैं कि हम अनिवार्यतः एक ही प्रकार की वायु में सांस ले रहे हैं।

तालिका 2.2

जल वाष्प को छोड़कर वायुमंडल के निम्न भाग (80 किलोमीटर तक) में गैसों का आपेक्षिक अनुपात

गैस	प्रतिशत आयतन	प्रति दस लाख में भाग
नाइट्रोजन	78.08	780,840.0
ऑक्सीजन	20.95	209,460.0
आर्गन	0.93	9,340.0
कार्बनडाइऑक्साइड	0.03	340.0
हीलियम	0.00052	5.2
नीऑन	0.0018	18.0
क्रिपटान	0.0010	1.0
मीथेन	0.00015	1.5
हाइड्रोजन	0.00005	0.5
नाइट्रस ऑक्साइड	0.00005	0.5
ओजोन	0.000007	0.07
जीनॉन	0.000009	0.09

वायुमंडल में सूक्ष्मतल अथवा ठोस कण भी होते हैं जिन्हें ऐरोसोल (aerosol) कहते हैं। ये अधिक निचले वायुमंडल में पृथ्वी की सतह के निकट (80 किलोमीटर तक) पाए जाते हैं। ये ऐरोसोल अनेक स्रोतों से आते हैं। दावानलों (forest fires) के परिणामस्वरूप, मिट्टी के वायु अपरदन से, समुद्री लहरों की फुआर से निकले लवण क्रिस्टलों के रूप में, औद्योगिक एवं कृषि क्रियाकलाप से।

2.4.2 स्तरीकरण

वायु तापमान में अंतर के आधार पर वायुमंडल को उदग्र रूप (vertically) में चार परतों में बांटा गया है (चित्र 2.21 देखिए) ट्रोपोस्फीयर (troposphere), स्ट्रेटोस्फीयर (stratosphere), मीजोस्फीयर (mesosphere) तथा थर्मोस्फीयर (thermosphere)।

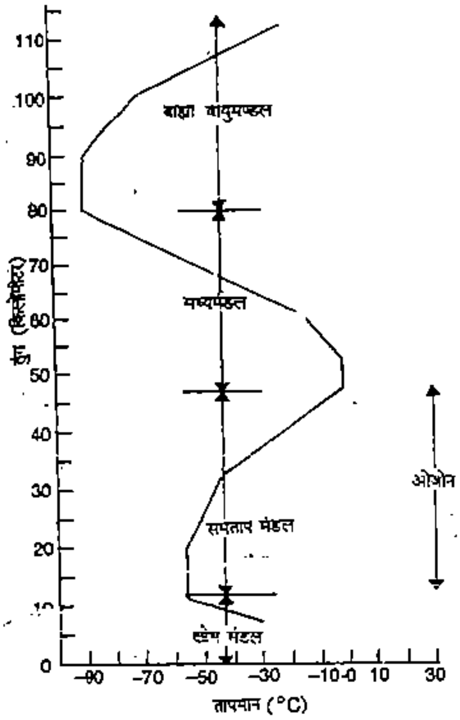

चित्र 2.21 : वायुमंडल को उदग्र रूप में चार क्षेत्रों में बांटा गया है जो वायु के तापमान पर आधारित हैं।

ग) i) ख, ii) ग, iii) क, iv) घ।

3 क) i) ग, ii) ग, iii) क, iv) क, v) ख।

ख) हवा ज्यों-ज्यों ऊपर उठती जाती है, त्यों-त्यों वह फैलती जाती है और आसपास के अणुओं को धकेलती जाती है। इस प्रक्रिया में उसकी गतिक ऊर्जा नष्ट हो जाती है और वह ठंडी हो जाती है।

ग) सही उत्तर

i) दिन का प्रकाश, ii) उच्चतर, निम्नतर या कम, उच्चतर

4 क) iii)

ख) i) घटता, ii) स्ट्रोटोस्फीयर, iii) बढ़ता, iv) निम्नतम

5 क) 5.5 किलोमीटर से अधिक ऊंचाई पर वायु दाब और घनत्व के कम होने के कारण ऑक्सीजन-स्तर कम हो जाता है।

ख) i) सही

ii) गलत, यह क्षेत्र न्यूनाधिक उत्तर की तरफ होता है, क्योंकि दक्षिणी गोलार्द्ध में थल भाग कम होता है जो दक्षिण पूर्वी व्यापारिक पवनों के मार्ग को अवरुद्ध कर सके।

iii) गलत, नमी को विषुवत रेखा के समीपवर्ती भागों में छोड़ती हुई, शुष्क हवा 60° उत्तरांश पर नहीं, बल्कि लगभग 30° उत्तरांश पर पहुँच जाती है।

iv) सही

6 क) क्योंकि पौधे चल फिर नहीं सकते

ख) ● पवन-रोधक अथवा आश्रय पट्टी
● जीवित रहने के लिए बेहतर सफलता, बेहतर

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1 क) ऊर्जा : रेडियोतरंगे < दृश्यमान < पराबैंगनी < एक्स-किरणें < गामाकिरणें
तरंगदैर्घ्य : उपरोक्त क्रम का उल्टा (विपरीत)।

ख) ● $200 \times 10^{-9} = 2 \times 10^{-7}m = 2 \times 10^{-5}cm$

● $640 \times 10^{-6} = 6.4 \times 10^{-4}m = 6.4 \times 10^{-2}cm$

● $4000 \times 10^{-10} = 4 \times 10^{-7}m = 4 \times 10^{-5}cm$

ग) ● 1.99×10^{-19} J $= 4.75 \times 10^{-20}$ cal $= 1.99 \times 10^{-12}$egrs

2 पृथ्वी अपने ऊपर पहुँचने वाले कुल विकिरण का लगभग 30% भाग या तो परावर्तित कर देती है या छितरा देती है और इसीलिए अंतरिक्ष यात्रियों को पृथ्वी चमकती हुई दिखाई देती है।

3 अर्जेन्टीना चूंकि दक्षिण गोलार्द्ध में है, इसलिए वहां सर्दियों मे गर्म कपड़ों की आवश्यकता होगी।

4 तुंगता के बढ़ने से और अक्षांशों के घटने से तापमान कम होता जाता है। इसलिए स्पीशीज़ों के वितरण पर तापमान का प्रभाव समान ही होता है।

5 हवा ज्यों-ज्यों ऊपर को उठती जाती है, त्यों-त्यों वह फैलती जाती है और अपने आस-पास के अणुओं को धकेलती जाती है। इस प्रक्रिया में उसकी गतिक ऊर्जा नष्ट होती जाती है और वह ठंडी होती जाती है।

6 जमीन पर वायु-वेग को कम करने के लिए ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को सघन रूप में तथा वायु वेग की दिशा में समकोण बनाते हुए लगा दिया जाता है।

इकाई 3 पर्यावरण के घटक : 2 — जल

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
3.2 जल की संरचना
3.3 जल के गुण
ससंजक गुण तथा पृष्ठीय तनाव
पारदर्शिता एवं दवाब
तापीय गुण
विशिष्ट ताप
गैसों की विलेयता
जल की अवस्थायें
ताप के आधार पर जल का घनत्व
3.4 भूमंडल पर जल का वितरण
भूमिगत जल
जल-चक्र
अलवणीय जल
खारा जल
समुद्री जल
3.5 जल प्रभाव तथा अनुकूलनशीलता
सूखा
जलाक्रान्ति
जलीय अनुकूलन.
3.6 सारांश
3.7 अंत में कुछ प्रश्न
3.8 उत्तर

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप प्रकाश, ताप और वायुमंडल के बारे में पढ़ चुके हैं। अब इस इकाई में हम आपको जल के बारे में बतायेंगे जो कि वायुमंडल का एक अन्य अजैव घटक है। अगली इकाई में हम मिट्टी के बारे में उल्लेख करेंगे जो एक महत्वपूर्ण अजैव घटक है। इन तीनों इकाइयों में दिये गये विवरण से आप विभिन्न अजैवों के बीच पारस्परिक क्रियाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और आपको जैविक तथा अजैविक घटकों के बीच क्रियाओं का भी ज्ञान मिल सकेगा। पृथ्वी के तीन-चौथाई भाग में पानी है और जीवित पदार्थों का भी 70 प्रतिशत भाग पानी का बना हुआ है। इसी लिये पानी को अमृत कहा गया है।

हम सर्वप्रथम जल के अणु की रासायनिक रचना एवं गुणों के बारे में चर्चा करेंगे जिससे कि यह पता चल सकेगा कि वह जीवन के लिये कितना महत्वपूर्ण है। अगले भाग में हम नदी, झील, नदीमुख और समुद्रीय जल के बारे में चर्चा करेंगे। एक अन्य भाग में हम यह जान सकेंगे कि किस प्रकार से जल नदियों से समुद्र और फिर नदियों में आता है और पृथ्वी पर जल-चक्र अर्थात् जल का वितरण किस प्रकार से होता है। अंत में हम यह भी देखेंगे कि पानी की कमी अथवा अधिकता की स्थिति में पेड़ पौधे तथा जीव-जन्तु अपने को किस प्रकार से जीवित रख सकते हैं। इस इकाई को पूर्ण रूप से समझने के लिये भी यह आवश्यक है कि आप को परमाणु, आयन, प्रकाश, ताप आदि के बारे में मूल ज्ञान हो।

उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के बाद आप पृष्ठ-तनाव, वृष्टिपात, नदी तथा समुद्री जल, जल-चक्र तथा वाष्पीकरण आदि को भली प्रकार से समझ सकेंगे।
- नदी तथा समुद्री जल में अंतर एवं उन में रहने वाले जीव-जन्तुओं में अनुकूलन के बारे में जान सकेंगे।
- पृथ्वी पर जल-चक्र, वितरण तथा जल की बहुतायत या कमी की अवस्था में पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तुओं में अनुकूलन के विषय में भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 जल की संरचना

जल एक विश्वव्यापक विलायक है और जीवों के शरीर का एक बड़ा भाग जल से बना है। पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह

है जिसमें जल अपनी तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है। जल की प्राप्यता अथवा अभाव का पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं और मनुष्यों की बहुतायत एवं विस्तार पर बहुत अधिक असर पड़ता है। जल की विशेषता उस की संरचना एवं गुणों के कारण है जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

जल का एक अणु, हाइड्रोजन के दो तथा आक्सीजन के एक परमाणु से मिल कर बना है। हाइड्रोजन परमाणुओं के इलैक्ट्रॉन आक्सीजन के परमाणु से साझा करते हैं। दोनों परमाणुओं के बीच बंटे हुए इलैक्ट्रॉनों का वितरण असमयित होता है। आक्सीजन के केन्द्रक पर हाइड्रोजन के केन्द्रक से अधिक घनात्मक आवेश होता है। इलैक्ट्रॉनों पर ऋणात्मक आवेश होने के कारण वे आक्सीजन केन्द्रक की ओर अधिक आकर्षित होते हैं, इस के फलस्वरूप हाइड्रोजन के केन्द्रक पर आंशिक घनात्मक आवेश उत्पन्न होता है और आक्सीजन के केन्द्रक पर ऋणात्मक आवेश होता है। इसीलिये जल के अणु को ध्रुवीय अणु कहते हैं। याद रखने योग्य बात यह है कि जल का अणु ध्रुवीय होने के बाद भी उदासीन अणु की तरह व्यवहार करता है क्योंकि इलैक्ट्रॉनों तथा प्रोटॉनों की संख्या बराबर होती है।

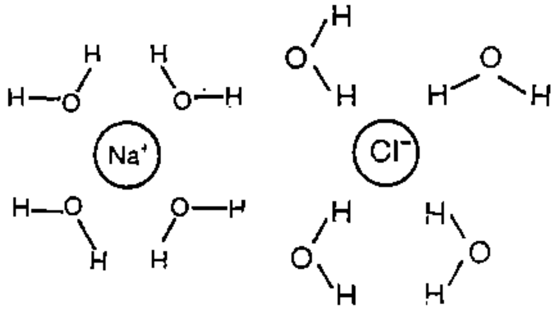

जल अणु ध्रुवीय गुणों के कारण आयन और दूसरे ध्रुवीय अणुओं के आस पास इकट्ठे हो जाते हैं।

चित्र 3.1 : एक जल अणु।

जल के अणुओं के ध्रुवीय होने के कारण जल के दो अणु एक दूसरे से अशक्त हाइड्रोजन बॉण्डों द्वारा जुड़े रहते हैं इसी प्रकार जल के बहुत से अणुओं के एक दूसरे से जुड़ने से जालक-संरचना की उत्पत्ति होती है जिस के कारण जल संसंजक गुण तथा अन्य असाधारण गुण जैसे पृष्ठ-तनाव, विशिष्ट ताप एवं वाष्पीय-तापन दर्शाता है।

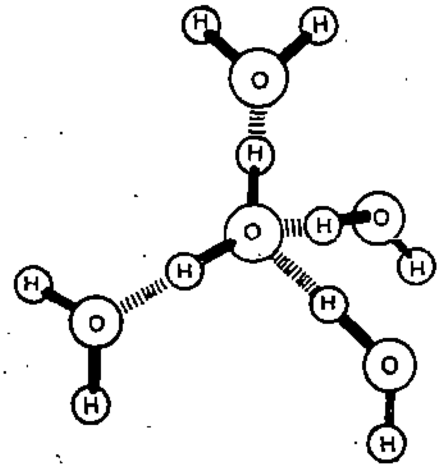

पानी के अणु अस्थायी रूप से हाइड्रोजन बद्ध जालक में जुड़े जाते हैं। 37ºC पर 15% जल अणु दूसरे 4 अणुओं से जुड़ कर फ्लिकरिंग क्लस्टर नामक अल्प कालिक समूह बना लेते हैं।

चित्र 3.2 : जल संरचना।

3.3 जल के गुण

इस भाग में हम जल के उन गुणों की चर्चा करेंगे जो कि जीवों के लिये लाभदायक है। जल के सभी भौतिक गुण जो जीवों के लिये लाभकारी हैं अधिकतर हाइड्रोजन बॉण्डों तथा जालक संरचना के कारण ही हैं।

3.3.1 ससंजक गुण तथा पृष्ठीय-तनाव

जल निर्बाध रूप से वहता है फिर भी इस के अणु एक दूसरे से अलग नहीं होते हैं। वे सब एक दूसरे से विशेषतया ध्रुवीय पृष्ठों से जुड़े रहते हैं। इसीलिये जल एक नली में भी निर्बाध रूप से वहता रहता है जिस के कारण घुलनशील तथा निलंबित कण पूरी तरह से बिखर जाते हैं। इन्ही कारणों से जल जीवों के शरीर के अन्दर तथा बाहर एक श्रेष्ठ वाहक माध्यम का कार्य करता है।

जल का पृष्ठीय तनाव अन्य सभी तलीय पदार्थों से, सिवाय पारे को छोड़कर, बहुत अधिक है। पृष्ठीय तनाव का महत्व स्पष्ट है। कुछ पदार्थ जैसे कि परागकण तथा धूल के कण जल से अधिक भारी होने पर भी इस की सतह पर तैरते रहते हैं जो कि जल के अधिक पृष्ठीय तनाव के कारण ही संभव है। ज़मीन में कोशिकीय आकर्षण (capillary attraction) द्वारा बहुत अधिक जल संचित हो सकता है जो कि पेड़-पौधों की वृद्धि के लिए बहुत आवश्यक है।

3.3.2 पारदर्शता एवं दबाव

जल एक पारदर्शी माध्यम होने के कारण उस में सूर्य का प्रकाश काफी गहराई तक प्रवेश कर सकता है। प्रकाश की विभिन्न तरंग-दैर्ध्य का जल की विभिन्न गहराइयों में अवशोषण होता है। ताप की लम्बी विकिरण तरंगों का अवशोषण लगभग जल के तल पर ही हो जाता है। परन्तु छोटे विकिरण कुछ अधिक गहराई तक पहुंच जाते हैं। जिस गहराई तक प्रकाश की किरणें जल में जा सकती हैं उस को 'फोटिक' क्षेत्र कहते हैं और उस के नीचे जहाँ पूर्ण अंधकार होता है वह एफोटिक क्षेत्र कहा जाता है।

3.3.3 तापीय गुण

जल के कुछ विशेष तापीय गुणों के कारण उस के तापमान में बहुत कम बदलाव होते हैं इसीलिये हवा की अपेक्षा जल के तापमान में कम परिवर्तन होते हैं। अन्य द्रव्यों की अपेक्षा जल में तापमान धीमी गति से घटता या बढ़ता है। एक ग्राम जल का तापमान 1 डिग्री से० बढ़ाने के लिये एक कैलोरी ताप ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो कि अन्य द्रव्यों में उतना ही तापमान बढ़ाने के लिये आवश्यक ऊर्जा से करीब दुगनी होती है। हाइड्रोजन के कई बॉण्ड जो जल-अणुओं से जुड़े रहते हैं, यद्यपि काफी मात्रा में ताप ले लेते हैं फिर भी उस के तापमान में कोई परिवर्तन नहीं होता है। ताप के कम होने पर भी जल का तापमान धीरे-धीरे ही कम होता है।

3.3.4 विशिष्ट ताप

जल का ठण्डा और गर्म होना दूसरे द्रवों के अपेक्षाकृत बहुत धीमा होता है। इसका कारण यह है कि जल के अणु एक दूसरे से हाइड्रोजन बॉण्डों के द्वारा जुड़े होते हैं। जब जल भाप में बदलता है तो हाइड्रोजन बॉण्ड टूटते हैं जिस के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जल का विशिष्ट ताप 4.18 जूल (1 कैलोरी) प्रति ग्राम प्रति डिग्री से० होता है अर्थात् यह 4-5 डिग्री से० ताप ऊर्जा 1 ग्राम पानी को गर्म करने में लगती है।

3.3.5 गैसों की विलेयता

अधिकतर गैसें जल में सरलता से घुल जाती हैं जो जैविक क्रियाओं के लिये बहुत आवश्यक है। किसी भी गैस की जल में विलेयता शून्य और सैद्धान्तिक अधिकतम संतृप्ति स्थिति के बीच भिन्न होती है। अधिकतम संतृप्ति स्थिति से अभिप्राय है कि गैस की वह मात्रा जो जल और वायुमंडल की साम्यावस्था में घुल सकती है।

आक्सीजन सरलता से जल में घुल जाती है और इस की मात्रा जल की विभिन्न गहराइयों में भिन्न होती है। घुली हुई आक्सीजन जल के जीवों में श्वसन क्रिया के लिए ज़रूरी होती है तथा इस के द्वारा निर्जीव कार्बनिक पदार्थों का अपघटन भी होता है।

जलीय वनस्पति में प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया के लिये कार्बन-डाइ-आक्साइड की आवश्यकता होती है। जल में कार्बन-डाइ-आक्साइड जीवों की श्वसन क्रिया और कार्बनिक पदार्थों के अपघटन से उत्पन्न होती है। कार्बन-डाइ-आक्साइड वायुमंडल से भी सीधे पानी में घुल सकती है। यह गैस बहुत सरलता से जल में घुल कर कार्बनिक अम्ल (H_2CO_3) बनाती है जिस से जल का pH भी प्रभावित होता है। यह अलवणीय जल में कैलशियम, मैगनीशियम, तथा अन्य खनिज पदार्थ कार्बोनेट और बाइकार्बोनेट के रूप में मिलते हैं। कुछ अन्य गैसें जैसे नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, सल्फर-डाइ-आक्साइड, अमोनिया आदि भी जल में सरलता से घुल जाती हैं।

3.3.6 जल की अवस्थायें

जल से ताप ऊर्जा निकालने या उस में बढ़ाने से यह भाप से द्रव और द्रव से ठोस अवस्था में अथवा विपरीत दिशा में परिवर्तित किया जा सकता है। एक ग्राम जल को बर्फ में परिवर्तित करने के लिए करीब 80 कैलोरी ताप ऊर्जा की आवश्यकता होती है और एक ग्राम जल को भाप में बदलने के लिये 540 कैलोरी ताप ऊर्जा की आवश्यकता होती है (चित्र 3.3)। जल के भाप में परिवर्तित होने पर हाईड्रोजन बॉण्ड जो आस-पास के जल अणु से जुड़े रहते हैं टूट जाते हैं।

जल के वाष्पीकरण में बहुत अधिक ताप ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिसके कारण पृथ्वी पर एक संतुलित तापमान बना रहता है जो जीवित रहने के लिये बहुत आवश्यक एवं उपयुक्त है।

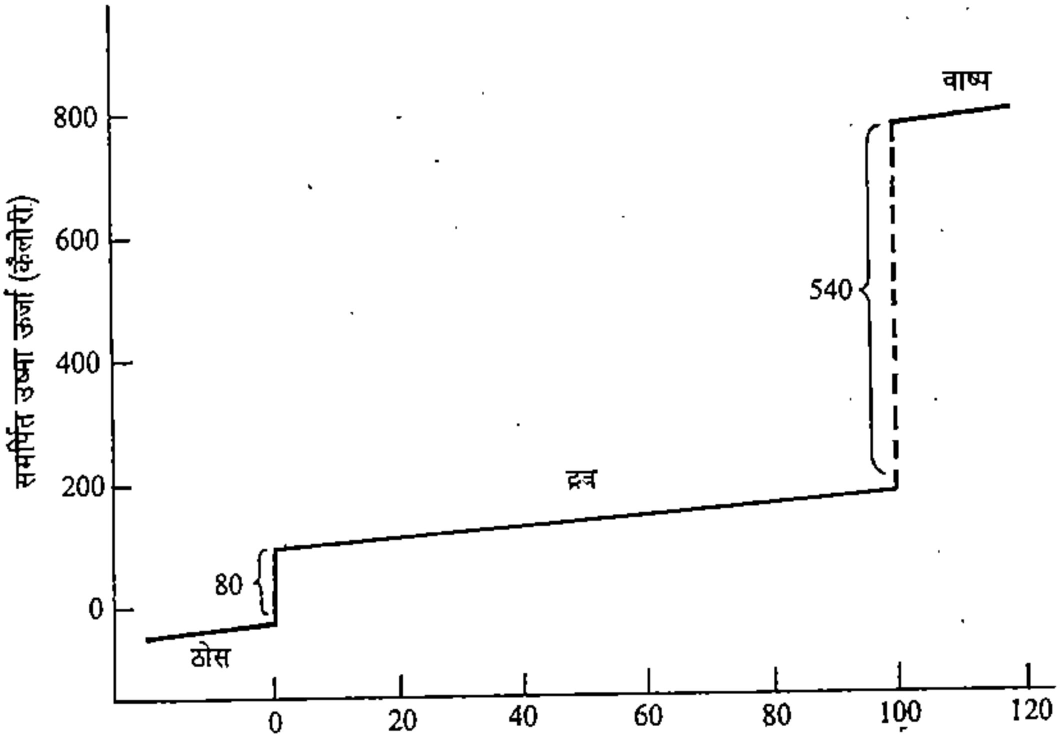

चित्र 3.3 : एक ग्राम जल की ठोस, तरल अथवा वाष्प अवस्था कैलोरीज की मात्रा पर निर्भर करती है।

3.3.7 ताप के आधार पर जल का घनत्व

ठंडे होने पर जल के अणु एक दूसरे के निकट आ जाते हैं जिससे जल सघन हो जाता है। यद्यपि जल की सबसे अधिक सघनता 4 डि॰ से॰ पर होती है फिर भी इस तापमान पर यह द्रव अवस्था में ही रहता है और इस के अणु बराबर चलायमान रहते हैं। जब तापमान 4 डि॰से॰ से कम हो जाता है तब जल-अणु स्थिर हो जाते हैं और उन के बीच के हाइड्रोजन बॉण्ड और मज़बूत हो जाते हैं इसीलिये बर्फ़ जल से हल्की होती है और उस पर तैरती रहती है। जल हमेशा ऊपर से नीचे की ओर जमता है। जब उस के ऊपरी तल पर बर्फ़ की पर्त बन जाती है तो वह एक उष्मारोधक का कार्य करती है और नीचे का जल नहीं जम पाता है। इस कारण उन स्थानों पर जहाँ सर्दी में जल की ऊपरी सतह जम जाती हैं वहाँ नीचे के जल में जीव जीवित रह सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित की पूर्ति कीजिये।

i) एक कैलोरी ताप ऊर्जा से एक ग्राम जल का तापमान.................डिग्री बढ़ता है।

ii) जल के भाप बनने पर हाइड्रोजन बाण्ड खंडित होते हैं जिन के लिये उन को.................की आवश्यकता होती है।

iii) जल जीवों में अपने आंतरिक.................को बनाये रखने में सहायता करता है।

iv) जल के भाप बनने से पृथ्वी का तापमान सामान्य रहता है जो कि.................के लिये उपयुक्त है।

v) जब ऊपर की सतह का जल जम जाता है तो यह बर्फ़ एक उष्मारोधक बन कर.................पानी नहीं जमने देती है।

3.4 भूमंडल पर जल का वितरण

भौतिक और रासायनिक गुणों का अध्ययन करने के पश्चात् आप अपने ग्रह पर जल के बारे में जानना चाहेगें (चित्र 3.5)। हमारी पृथ्वी पर वर्षा, अलवणीय जल का मूल स्रोत है। हिमपिंड, नदियाँ, झीलें, झरने, कुएँ आदि कुछ अन्य साधन हैं, परन्तु इन सबको जल केवल वर्षा तथा बर्फ़ के पिघलने से ही मिलता है वस्तुतः यह भी वर्षा के जल के विभिन्न रूप हैं। वर्षा के न होने पर इनमें भी जल बहुत समय तक नहीं रह सकता।

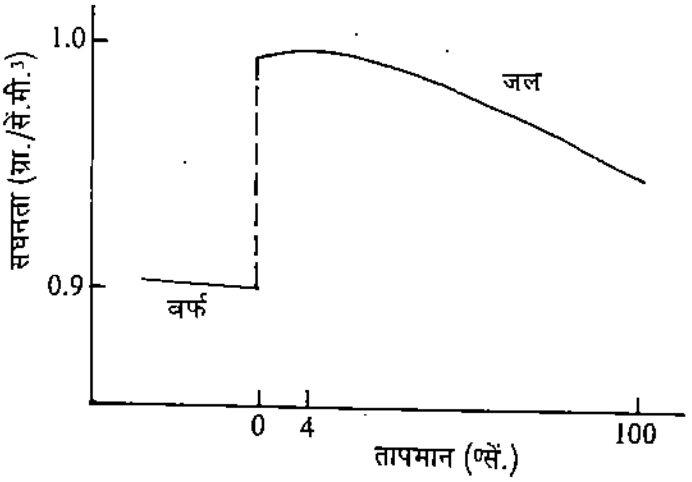

चित्र 3.4 : जल 0 डि°से° पर जमता है और 100 डि°से° पर उबलता है। इन दोनों तापमानों के बीच यह द्रव के रूप में रहता है। जल सबसे अधिक सघन 4 डि°से° पर रहता है इसीलिये बर्फ़ उस पर तैरती है।

तमिलनाडु को छोड़कर जहाँ अक्तूबर और नवम्बर में वर्षा उत्तरी-पूर्वी मानसून से होती है, भारत के अधिकतम भागों में जून और सितम्बर के बीच वर्षा दक्षिणी-पश्चिमी मानसून में होती है। भारत के विभिन्न भौगोलिक स्थानों पर ऋतुओं में वर्षा की मात्रा में काफी भिन्नता होती है और अक्सर ही—सामान्य से कम या अधिक होती है। भारत के वर्षा-मानचित्र को ध्यान पूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि विभिन्न भागों में वर्षा की मात्रा में कितनी असमानता है (चित्र 3.6)।

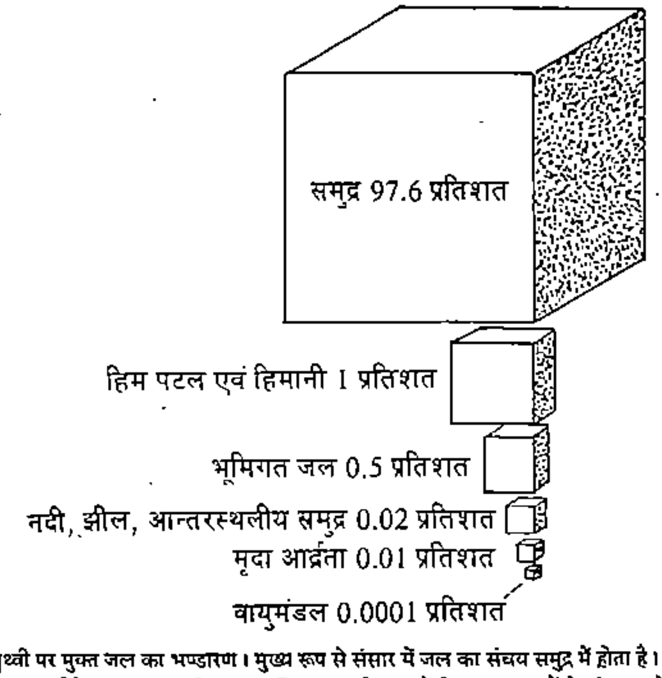

चित्र 3.5 : पृथ्वी पर मुक्त जल का भण्डारण। मुख्य रूप से संसार में जल का संचय समुद्र में होता है। आसानी से उपलब्ध होने वाला अलवणीय जल भूमिगत जल के रूप में छिद्रयुक्त चट्टानों के संस्तरण में पाया जाता है।

हमारे देश के मेघालय प्रदेश में चिरापूंजी में एक वर्ष में सबसे अधिक वर्षा करीब 11 मीटर होती है जबकि राजस्थान के जैसलमेर में केवल 0.2 मीटर ही होती है। परन्तु यह इन स्थलों के लिये सामान्य है और उसी के अनुसार वहाँ पर जीवन चलता रहता है।

रेगिस्तानी स्थानो पर प्रति वर्ष 0.25 मी. या उस से भी कम वर्षा होती है तथा घास के मैदानों और अरण्य-भूमि (wood land) में 0.25-0.75 मी., शुष्क जंगलों में 0.75-1.25 मी. तथा नम जंगलों (wet forest) में 1.25 मी. से भी अधिक वर्षा होती है। हमारे देश के कुछ भागों में लगभग प्रतिवर्ष अधिक वर्षा के कारण बाढ़ आती रहती है। वर्षा के न होने या देरी से होने के कारण सूखा पड़ता है। कभी-कभी एक ही समय पर किसी स्थान पर बाढ़ आती है तो दूसरी जगह पर सूखे का प्रकोप होता है। अक्सर यह भी देखा गया है कि एक ही स्थान पर सूखा पड़ता है और फिर बाढ़ भी आ जाती है। मनुष्य का वर्षा पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसी कारण से बाढ़ आती है या सूखा पड़ता है। हम यह भी नहीं जानते कि किस प्रकार से अतिवृष्टि को रोका जाये या वर्षा की कमी को पूरा किया जाए।

जल हमारे ग्रह पर एक निर्धारित मात्रा में पाया जाता है परन्तु इसका वितरण काफी अनियमित है। हमारी धरती का लगभग 95 प्रतिशत जल चट्टानों के रासायनिक परिबद्ध (chemically bound into rocks) अवस्था एवं

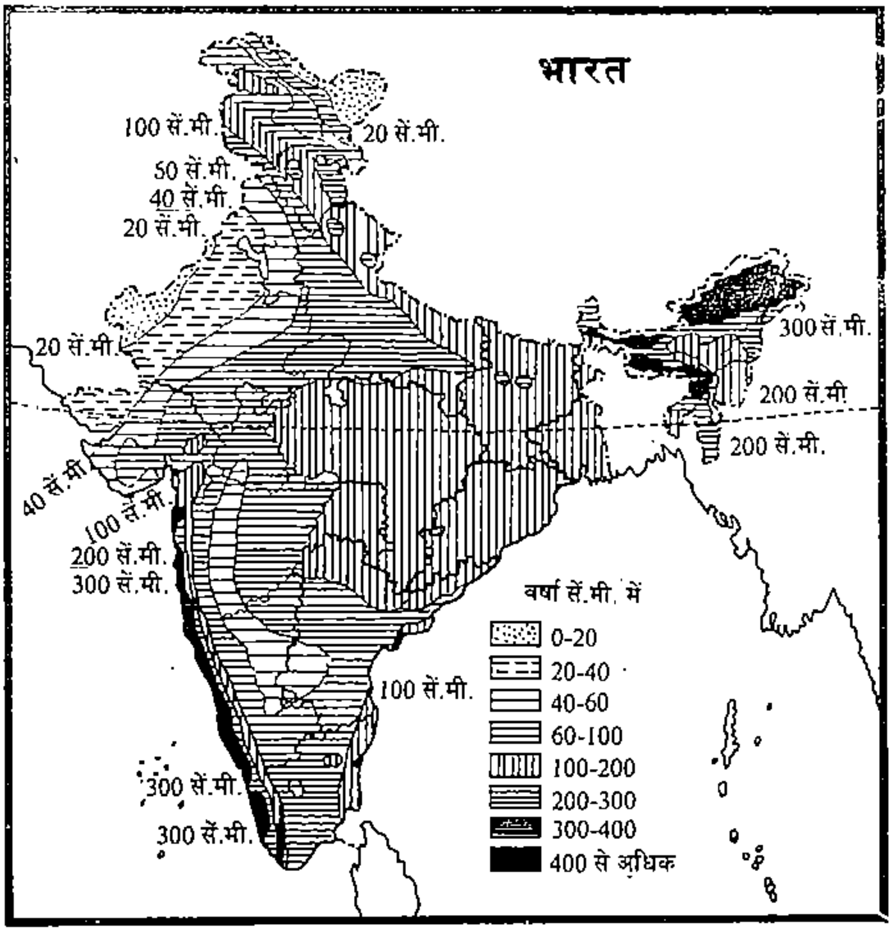

चित्र 3.6 : भारत का वर्षा मानचित्र।

अचक्रीय रूप में पाया जाता है, शेष का 97.3 प्रतिशत समुद्रीजल, करीव 2.1 प्रतिशत ध्रुवों और ग्लेशियर में हिम के रूप में और शेष अलवणीय जल है जो वायुमंडलीय वाष्प, भूमिगत एवं अंत-स्थलीय तलों पर पाया जाता है। इस प्रकार से अलवणीय जल का 1 प्रतिशत से भी कम भाग जल-चक्र के अंतर्गत आता है।

3.4.1 भूमिगत जल

अलवणीय जल का एक बड़ा भाग भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है। काफी गहराई में होने के कारण न तो पेड़-पौधे इस का उपयोग कर सकते हैं और न ही यह भाप बन कर उड़ सकता है। यह ज़मीन के अन्दर ही गुरूत्व (gravity) के प्रभाव से छिद्रिल (porous) धरातल में बहता रहता है। जिसकी गति कुछ मिलीमीटर से लेकर लगभग एक मीटर प्रतिदिन तक हो सकती है। कुछ स्थानों पर भूमिगत जल पृथ्वी के ऊपर चश्मे के रूप में निकलने लगता है। ज़मीन के अन्दर उस क्षेत्र को जिससे कुओं को जल मिलता है जलभर कहते हैं। कुछ जलभरों में जल का दवाव इतना अधिक होता है कि कुआँ खोदने पर जल ज़मीन के ऊपर तक आ जाता है। ऐसे कुओं को जिन में जल अपने आप ऊपर की सतह तक आ जाता है "आर्टीसियन कुँए" कहते हैं। ऐसे स्थानों पर जहाँ झीलें और नदियाँ नहीं होती है वहाँ भूमिगत जल बहुत महत्वपूर्ण होता है। भारत में उपयोग करने हेतु कुल भूमिगत जल की मात्रा 42.3×10^{10} घन. मी. है जिसका केवल एक-चौथाई भाग सिंचाई, उद्योग एवं घरेलू कार्यों के उपयोग में लाया जाता है। कई स्थानों पर जितना भूमिगत जल इकट्ठा हो जाता है उस से कहीं अधिक निकाला जाता है जिस से गंभीर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

यद्यपि अलवणीय जल का भंडार मनुष्य के वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं से कहीं अधिक हैं परन्तु उस के असमान वितरण तथा मौसमों की अस्थिरता के कारण विश्व में अधिकतर स्थानों पर जल का अभाव सदैव बना रहता है।

विश्व में जल के वितरण का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने पर तीन मुख्य बातों का पता चलता है। प्रथम तो जल काफी मात्रा में स्थाई रूप से संचित है। जल की सब से अधिक मात्रा समुद्र में है। उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव, हिमशिलायें, ग्लेशियर एवं झीलें भी जल के बहुत बड़े भंडार हैं परन्तु मनुष्य को यह उपलब्ध नहीं है। द्वितीय, पृथ्वी पर जल के कुछ स्रोत जैसे बर्फ, वर्षा, बादल निरंतर अभिवाहित (constant flux) रहते हैं और नदियाँ समुद्र की ओर बहती रहती हैं। तीसरा, पृथ्वी पर जल का वितरण बहुत असमान है।

3.4.2 जल-चक्र

पृथ्वी पर जल निरंतर गतिशील रहता है और कई जटिल पारस्परिक कुण्डली (inter-related loop) के रूप में पाया जाता है। जल-चक्र में वायुमंडल, समुद्र, पृथ्वी तथा सभी जीवित प्राणी सम्मिलित हैं। जल का परिसंचरण काफी गतिशील एवं विश्वव्यापी है परन्तु सुविधा के लिये इस को विभिन्न वर्गों में बांटा जा सकता है।

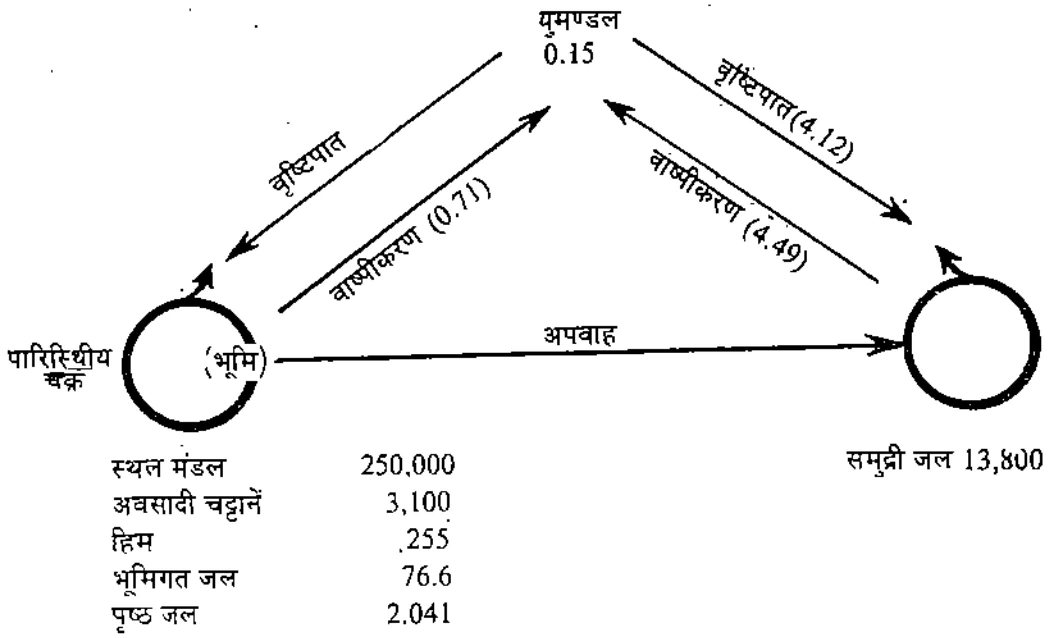

चित्र 3.7 : जल-चक्र की सामान्य प्रतिकृति (pattern) और वितरण 10^{17} कि. ग्रा. कोष्ठक में जो वार्षिक दर को दर्शाती है।

(1) वृष्टिपात (Precipitation)

इस का शाब्दिक अर्थ है ऊँचाई से नीचे गिरना। जल के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि आर्द्रता से घनीभूत होकर किसी भी रूप जैसे वर्षा, बर्फ़, ओले, ओस आदि के नीचे गिरने को वृष्टिपात कहते हैं। जल के वाष्प बनने से आर्द्रता वायु मंडल में पहुँचती है वह द्रव (जल) अथवा ठोस (बर्फ़, ओले आदि) के रूप में घनीभूत होकर नीचे गिरती है (चित्र 3.8)। इस प्रकार से जल वायुमंडल में संघनित होकर वृष्टिपात के द्वारा भूमि और समुद्र में वापस आ जाता है।

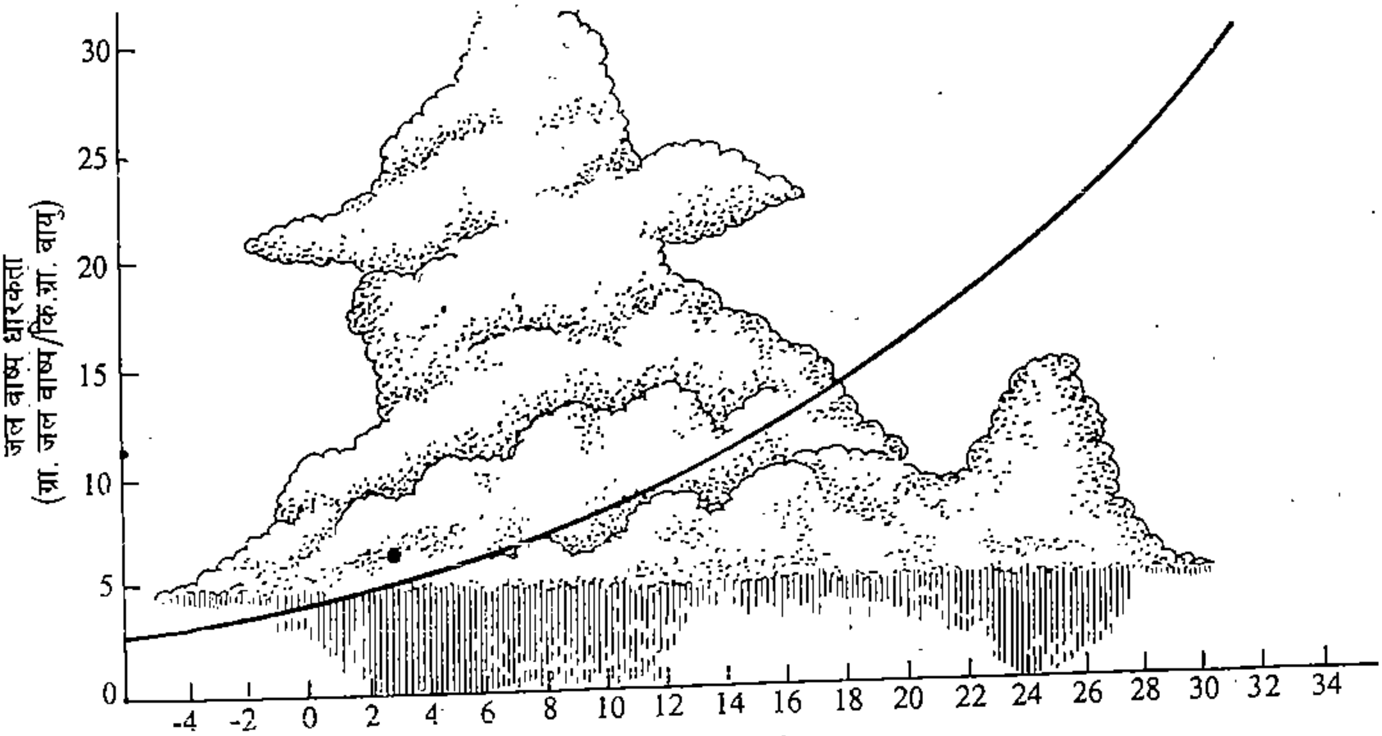

चित्र 3.8 : नमी से भरी हवा की आर्द्रता तापमान पर निर्भर करती है यदि हवा ठंडी होती है तो आर्द्रता बढ़ जाती है और जब यह 100 प्रतिशत से अधिक हो जाती है तो वृष्टिपात होता है।

संघनन वह क्रिया है जिस में जल वाष्प अवस्था से तरल (ओस की बूंदें) अवस्था में बदल जाता है। निक्षेपण की क्रिया में जल सीधे वाष्प अवस्था से ठोस (बर्फ़ के खो) अवस्था में बदल जाता है। वायुमंडल में संघनन और निक्षेपण की क्रिया से बनी हुई नन्ही-नन्ही बूंदों और बर्फ़ से बादल बनते हैं। आप को यह ध्यान में रखना चाहिये कि वाष्पीकरण में ऊर्जा का उपयोग होता है (पसीना उड़ने से हमारे शरीर को ठंडक प्रतीत होती है क्योंकि इस क्रिया में हमारे शरीर के अतिरिक्त ताप का उपयोग होता है)। जितनी ऊर्जा का उपयोग वाष्पीकरण में होता है लगभग उतनी ही मात्रा वाष्प के संघनन में निकल जाती है। पृथ्वी पर जल का अधिक भाग वर्षा द्वारा ही प्राप्त होता है।

प्रकृति में जल-चक्र सूर्य ऊर्जा द्वारा बनाया रखा जाता है। सूर्य के ताप से समुद्र और पृथ्वी का जल भाप बन कर उड़ता है और जब यह वायुमंडल में ठंडा होता है तो बादल बन जाता है जिस को वायु काफी दूर-दूर के स्थानों पर उड़ा कर ले जाती है। वर्षा और बर्फ़ के पिघलने से नदियों में जल की पुनः पूर्ति होती है जो यह फिर से समुद्र में चला जाता है।

(2) अपवाह (Run off)

वर्षा का कुछ जल तो धरती द्वारा सोख लिया जाता है और कुछ ऊपरी ढलानों पर बह जाता है जिस को अपवाह जल कहते हैं जो कि झीलों और नदियों में जल का प्रमुख स्रोत होता है। जल अपवाह की तीव्रता तथा मात्रा पर मिट्टी की विशिष्टता, सतह की चिकनाहट एवं ढलान का विशेष प्रभाव पड़ता है। जल के बहने से मृदा अपरदन होता है तथा चट्टानें भी टूट-फूट जाती हैं। वर्षा के दिनों में अत्यधिक जल अपवाह से देश के कई स्थानों में बाढ़ आ जाती है।

(3) उदातीकरण (Sublimation)

यह वह क्रिया है जिस में जल अपनी ठोस अवस्था से बग़ैर द्रव में बदले हुए सीधे वाष्प रूप में परिवर्तित हो जाता है। हिम-कणों के जमाव बिन्दु से कम तापमान पर भी धीरे-धीरे ग़ायब हो जाना उदातीकरण का एक उदाहरण है।

(4) वाष्पीकरण (Evaporation)

यह वह क्रिया है जिस में द्रव जल एक साधारण तापमान पर भी वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। वाष्पीकरण सभी प्रकार के जल पिण्डों तथा गीली सतहों से होता रहता है। वायुमंडल में वाष्प का एक बहुत बड़ा भाग समुद्र से वाष्पीकरण के कारण होता है।

(5) वाष्पोत्सर्जन (Transpiration)

यह वह क्रिया है जिस में जल वाष्प के रूप में पेड़-पौधों से उत्सर्जित होता है। पृथ्वी पर वाष्पोत्सर्जन की मात्रा बहुत अधिक है। उदाहरण के लिये एक हैक्टेयर मक्का के खेत से प्रतिदिन लगभग 35,000 लि. (8800 गैलन) जल उत्सर्जित होता है। वनस्पति क्षेत्रों में जल हानि बराबर वाष्पीकरण एवं ट्रांस्पीरेशन दोनों ही क्रियाओं से होती रहती है. इस को इवैपो-ट्रांस्पीरेशन कहते हैं।

प्रकृति में जल-चक्र के बारे में जानने के बाद आप पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के जल के बारे में जानना चाहेंगे।

3.4.3 अलवणीय जल

जल एक सर्वव्यापक विलायक है जिसमें कई प्रकार के घुलित लवण पाये जाते हैं। अजलवणीय जल में लवण की मात्रा 15 प्रतिशत से कम होती है। विभिन्न प्रकार के घुलनशील लवण जो चट्टानों के टूटने-फूटने, मृदा अपरदन तथा जैवीय पदार्थों के सड़ने-गलने से निकलते हैं वह जल में सरलता से घुल जाते हैं। जल पर तैरती वनस्पति एवं पादयप्लवक (phytoplankton) के पोषण के लिये जो वह तली (substratum) से नहीं ले सकते हैं, यह घुले हुये लवण बहुत महत्व के होते हैं। अलवणीय जल में नाइट्रोजन, फासफोरस एवं सिलिकन के घुलित लवण भी बहुत आवश्यक होते हैं। नाइट्रेट्स, नाइट्राइट्स एवं अमोनिया के लवण पेड़-पौधों के लिये आवश्यक पोषक होते हैं। डायटम एवं स्पंज अपनी बाहरी दीवार और कंटिका के निर्माण में जल में घुलित सिलीकेट का उपयोग करते हैं।

बहुत से अन्य तत्व जैसे कैलशियम, मैगनीशियम, मैंगनीज़, लोहा, सोडियम, पोटैशियम, सल्फर और जिंक आदि भी जल में घुले रहते हैं जिन का प्रभाव जलीय जीव-समूह पर काफी पड़ता है। लोहा एक आवश्यक पोषक तत्व है जो अलवणीय जल के विभिन्न पिण्डों फेरस आक्साइड या सल्फाइड के रूप में पाया जाता है। इन की प्राप्यता पर जल के pH का काफी प्रभाव पड़ता है। कैलशियम भी जीव-जन्तुओं एवं पेड़-पौधों के लिये एक आवश्यक तत्व है। आर्थ्रोपोड के आवरण, सीपियों के कवच एवं कुछ कीड़ों में नलिकाओं के बनने में कैलशियम कार्बोनेट की आवश्यकता होती है।

3.4.4 खारा जल (Brackish Water)

खारे जल में घुलित लवणों की मात्रा 0.5 से 35 प्रतिशत तक होती है जो कि अलवणीय जल की अपेक्षा काफी अधिक होती है। ऐसे जल की लवणता समुद्री और अलवणीय जल से बहुत भिन्न होती है। नदीमुख (Estuary) जो कि किसी नदी का आखिरी भाग होता है यहाँ नदी का अलवणीय जल, समुद्र के जल से मिल कर खारा जल बनाता है। किसी भी नदीमुख में खारापन ऊपर के मध्य के हिस्से से नीचे की ओर बढ़ता है और नदीमुख के मुहाने पर खारापन समुद्र के जल के खारेपन के बराबर होता है।

3.4.5 समुद्री जल

समुद्री जल बहुत खारा होता है। समुद्र में लवणों की मात्रा लगभग एक सी रहती है। भार के हिसाब से 1000 भाग जल में लवणों की मात्रा 35वाँ भाग होती है और इस को 35 प्रतिशत लिखा जाता है। समुद्री जल में पाये जाने वाले लवणों का औसतन संयोजन तालिका 3.1 में दिया गया है। कुछ खारे जल की झीलों में भी 25 से 35 प्रतिशत तक खारापन हो सकता है। ऐसे प्राकृतिक वासों के जीवों में क्रियाएँ बहुत सीमित होती हैं।

अलवणीय जल में पाये जाने वाले बहुत से जन्तु एवं पौधे समुद्री जल में नहीं पाये जाते हैं क्योंकि वे समुद्री जल के इतने अधिक खारेपन को सहन करने में पूर्णतया असमर्थ होते हैं। कुछ कीटों को छोड़कर जैसे हैलोबेटस और तटीय कोलेम्बोला वर्ग के आइसोटोमा और स्पिन्थुरस जैसे अन्य अधिकतर कीट समुद्री वातावरण में नहीं पाये जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) अलवणीय जल की लवणता से आप क्या समझते हैं ?
2) नदीमुख क्या होता है ?
3) वे कौन से घटक हैं जो समुद्री जल को खारा बनाते हैं ?

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित कथनों में से कौन से सही हैं और कौन से गलत। सही कथन के लिये (स) तथा गलत के लिये (ग) लिखें।

1) भूमि पर जल का वितरण समान है।
2) जीवों, वायुमंडल तथा भूमि के बीच जल नियमित रूप से संचारित होता रहता है जिसे जल-चक्र कहते हैं।
3) अधिकतर वाष्प पत्तियों की सतह से जल के वाष्पीकरण होने से पैदा होते हैं।
4) ऐसी प्रक्रिया जिससे बर्फ़ बिना पिघले वाष्पित हो जाती है, उदात्तीकरण कहलाती है।
5) जल-चक्र को चलाने के लिये तथा भूमि पर जल की नियमित आपूर्ति के लिये ऊर्जा वायु द्वारा मिलती है।
6) सारा वाष्पित जल मिलकर बादल बनता है जो वायु द्वारा उड़ते हुए भूमि के ऊपर से गुज़रते हैं तथा काफी ठंडे होने पर जल अथवा बर्फ़ के रूप में अवक्षेपित हो जाते हैं।
7) पौधों में जड़ों से पत्तियों तक पानी के गमन को वाष्पोत्सर्जन कहते हैं।

3.5 जल प्रभाव तथा अनुकूलनशीलता

जल सभी स्थानों पर समान मात्रा में यदा-कदा मिलता है और यहाँ तक एक ही स्थान पर इस की मात्रा पूरे वर्ष बराबर नहीं होती है। ऐसा विशेषकर हमारे देश में है जहाँ वर्षा तथा मानसून में भौगोलिक कारणों से बहुत भिन्नता है।

जल की अधिकता या कमी दोनों ही गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न कर देती हैं। पेड़-पौधे तथा जीव-जन्तु जल की कमी या अधिकता में भी जीवित रहने के लिये अपने आकार, प्रकार तथा कार्यों में कुछ विशेषताएँ उत्पन्न करके अनुकूलित कर लेते हैं।

3.5.1 सूखा

जल की कमी की अवस्था को सूखा कहते हैं। सूखा पड़ने के कई कारण हो सकते हैं। अधिकतर सामान्य से कम मात्रा में वर्षा होना सूखा पड़ने का मुख्य कारण है। सामान्य से 75 प्रतिशत कम वर्षा होने को सूखे की अवस्था कहा जा सकता है।

ध्यान रखने योग्य बात यह है कि केवल कुल वर्षा ही नहीं परन्तु वर्षा का वितरण समय पर हुआ या नहीं फ़सल के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। वर्षा में थोड़ी कमी या अधिकता से कृषि उत्पादन में कोई सीधा असर नहीं पड़ता है। भारी सूखे की अवस्था में नदियों में पानी का बहाव कम हो जाता है, भूमिगत जल का स्तर गिर जाता है, कृषि उत्पादन में कमी हो जाती है, वन्य जीवन का नाश (विशेषकर जल में रहने वाले जीव) होने लगता है। वर्षा के न होने से नदियों, झीलों तथा जलाशयों में पानी का स्तर गिर जाता है। इसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन तथा चारे की पैदावार पर काफी असर पड़ता है जिससे खाद्य पदार्थों की कमी हो जाती है तथा मनुष्यों और जानवरों को काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जंगलों में आग लगने की घटनाएँ बढ़ जाती हैं, कुल मिला कर स्थिति बहुत ही कष्टदायक हो जाती है।

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण सारे विश्व में जल स्रोतों का आवश्यकता से अधिक शोषण होने लगा है। तेज़ी से बढ़ते हुए शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा यंत्रचालित खेतीबाड़ी में अलवणीय जल की खपत होती है जिससे जल स्रोतों के शोषण को और अधिक बढ़ावा मिलता है। जल स्रोतों के ज़रूरत से ज्यादा शोषण से वृद्धि तथा विकास में गम्भीर बाधा उत्पन्न हो सकती है। गुजरात के तटीय प्रदेश में भूमिगत जल को अधिक मात्रा में निकाल लेने के कारण जलभरों में खारा पानी प्रवेश कर गया (चित्र 3.9)। लवणता की अधिकता के फलस्वरूप भूमिगत जल मनुष्यों तथा कृषि दोनों के लिये अनुपयुक्त हो जाता है। भूमिगत जल धरती पर तालाबों, पोखरों तथा सरिताओं के रूप में पाया जाता

है। भूमिगत जल को अधिकता में निकालने और उपयोग करने से जलस्तर कम हो जाता है तथा नदियों एवं झीलों में भी जल स्तर गिर जाता है और वे सूख भी सकती है।

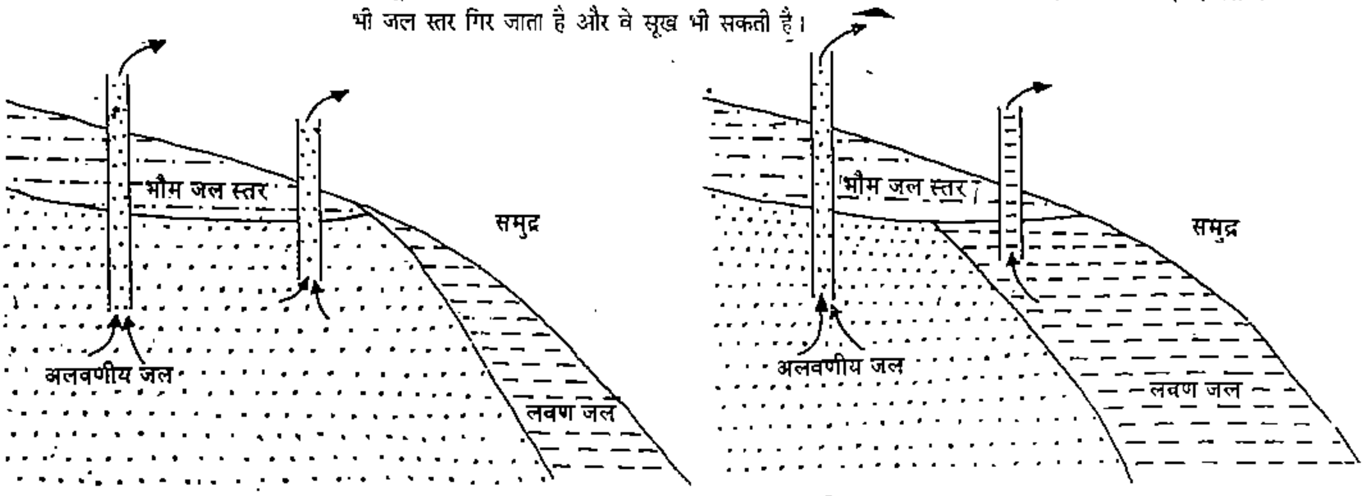

चित्र 3.9 : खारे जल का अन्तर्वेधन।

चित्र यह दर्शाता है कि किस प्रकार से खारा जल पृथ्वी पर अलवणीय जल के स्रोतों तक पहुँचता है और जब ऐसा होता है तो भूमिगत जल मनुष्यों तथा उद्योगों के उपयोग के लिये अनुपयुक्त हो जाता है।

3.5.2 जलाक्रान्ति

जल से मिट्टी के बेहद संतृप्त होने को जलाक्रान्ति कहते हैं। अगर किन्हीं कारणों से जलस्तर भूमि की सतह के समीप आ जाता है जो पौधों तथा मिट्टी की उर्वरता के लिये हानिकारक है। जलाक्रान्ति की अवस्था मे मिट्टी के छिद्रों में वायु के स्थान पर पानी भर जाता है जिससे मिट्टी में अनाक्सीय स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। आक्सीजन की कमी होने की स्थिति में पौधों की जड़ें तथा मिट्टी में पाये जाने वाले आक्सीजीवों का समूह नष्ट हो सकता है तथा भूमि की उर्वरता खत्म हो सकती है।

यदि जलस्तर जड़ों के क्षेत्र तक पहुंच जाता है तो यह पौधों की वृद्धि को बुरी तरह से प्रभावित करता है। जब जलस्तर जड़ों के क्षेत्र के समीप या उसके बिल्कुल नीचे वाले क्षेत्र में पहुँच जाता है तो कोशकीय क्रिया द्वारा जल भूमि की सतह तक पहुँच जाता है। मिट्टी की सतह से जल वाष्पित हो जाता है और उस में घुलित लवण मिट्टी में ही रह जाते हैं जो सतह की मिट्टी को खारा बना देते हैं (चित्र 3.10)। अगर किसी तरह से यह लवण बहते नहीं हैं तो मिट्टी में लवणता इतनी अधिक हो जाती है कि फसल उगाना सम्भव नहीं हो पाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि जलस्तर को ऊँचा चढ़ने से रोकने के लिये अधिक सिंचाई नहीं करनी चाहिये तथा जलनिकास का उचित प्रबन्ध करना चाहिये।

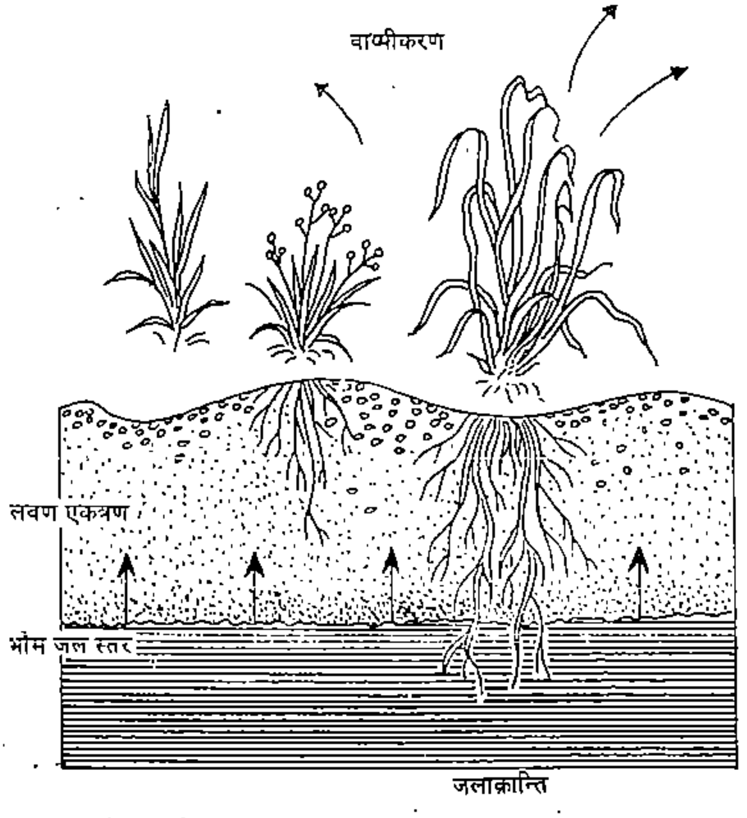

चित्र 3.10 : लवणता एवं जलाक्रान्ति। कम जलनिकसित मिट्टी के ऊपरी तलों पर लवण और खनिज जमा हो जाते हैं।

3.5.3 जलीय अनुकूलन

यह जानने के बाद कि पानी की कमी दो प्रकार की हो सकती है आप यह भी जानना चाहेंगे कि इन अवस्थाओं में पौधे तथा जीव-जन्तु जीवित रहने के लिये अपने को कैसे अनुकूलित करते हैं।

I. पौधों में अनुकूलनशीलताएँ

जलोद्भिद : वह पौधे जो विभिन्न जलीय आवास जैसे झील, तालाब, नदी, समुद्र इत्यादि में बढ़ते हैं उन को जलोद्भिट (hydrophytes) कहते हैं। उनके आवास के अनुसार इनको विभिन्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

स्वतंत्र रूप से तैरने वाले पौधे

यह पौधे जल तथा हवा दोनों के सम्पर्क में रहते हैं परन्तु इन का तलों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह जल की सतह पर तैरते रहते हैं। ऐसे कई पौधों में पत्तियाँ या तो बहुत छोटी होती हैं या कइयों में बहुत बड़ी। कुछ तैरने वाले पौधों के नाम हैं वुलफिया, स्पाइरोडेला, अज़ोला, सालविनिया, पिस्टिया और आईकोर्निया (चित्र 3.11)।

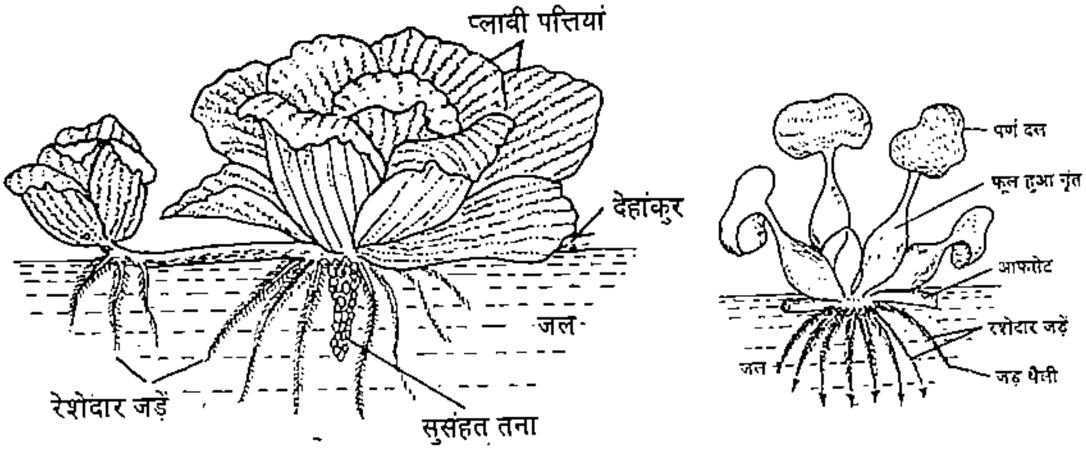

चित्र 3.11 : स्वतंत्र रूप से तैरने वाले जलोद्भिद (अ) पिस्टिया, (ब) आईकोर्निया।

तल से जुड़ी हुई जड़ें परन्तु तैरती हुई पत्तियों वाले पौधे

यह पौधे जलाशयों के किनारे छिछले जल में पाए जाते हैं। इन जलोद्भिद की जड़ें दलदल में दबी रहती हैं। परन्तु पत्तियों के वृन्त लंबे होते हैं जिस के कारण वह पानी की सतह पर तैरती रहती हैं। पत्तियों के अलावा, पौधों का पूरा भाग पानी के भीतर होता है। ऐसे कुछ पौधों के नाम हैं निमफिया, नीलम्बों, ट्रापा तथा मारसीलिया (चित्र 3.12)।

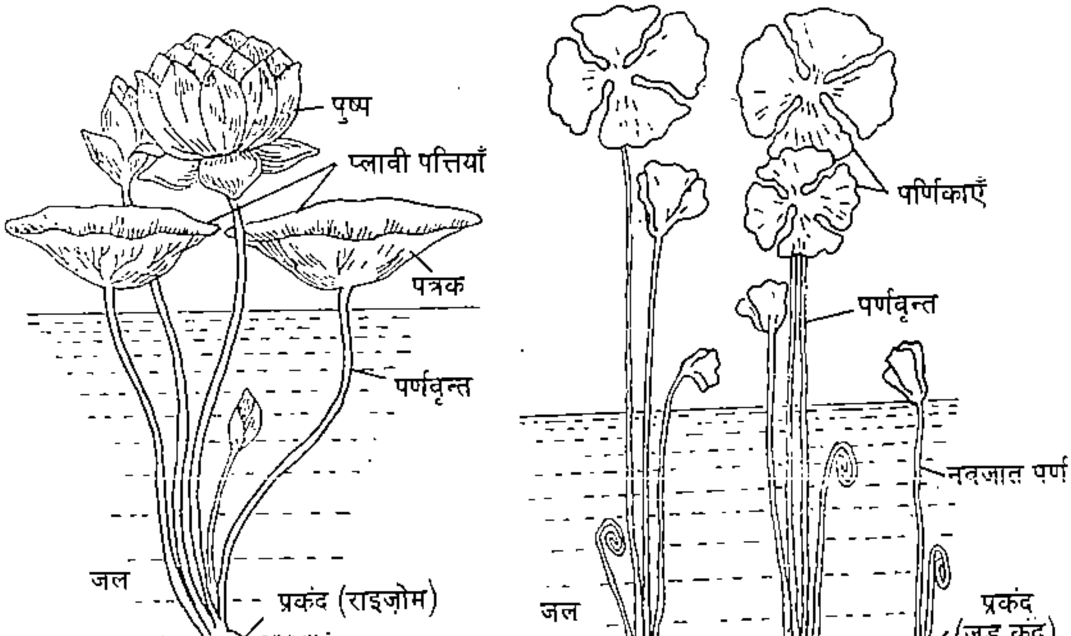

र 3.12 : जड़ों वाले जलोद्भिद जिनकी पत्तियाँ तैरती रहती है रहती है (अ) नीलम्बो, (ब) मारसीलिया,

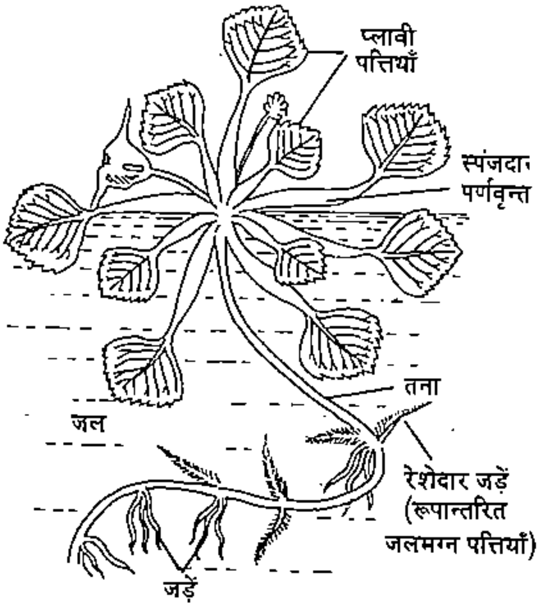

चित्र 3.12 : (स) ट्रापा।

जल में डूबे हुये तैरने वाले पौधे

यह पौधे सिर्फ जल के सम्पर्क में रहते हैं क्योंकि यह पूरी तरह से डूबे रहते हैं परन्तु उन की जड़ें दलदल से जुड़ी नहीं होती हैं। इन के तने लम्बे होते हैं तथा पत्तियाँ अधिकतर छोटी होती हैं। कुछ ऐसे पौधों के उदाहरण हैं सैरेटोफाईलम तथा यूट्रिकुलिरिया (चित्र 3.13)।

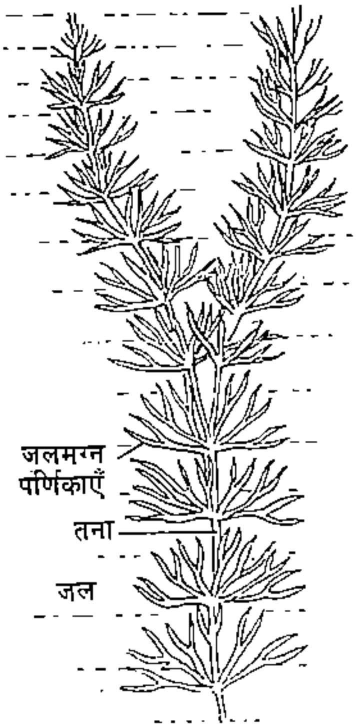

चित्र 3.13 : पानी में डूबे हुये तैरने वाले जलोद्भिद सैरेटोफाईलम

ज़मीन से जुड़े हुये जल में डूबे पौधे

यह जलोद्भिद जल में पूर्ण रूप से डूबे रहते हैं और इनकी जड़ें मिट्टी से जुड़ी रहती हैं। ऐसे एक पौधे का उदाहरण है हाइड्रिला — यह एक ऐसा खर-पतवार है जिस की जड़ें रेशेदार होती हैं (चित्र 3.14)।

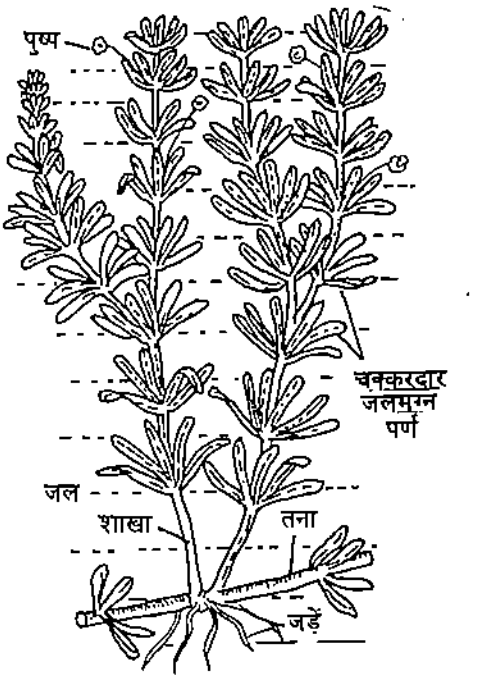

चित्र 3.14 : ज़मीन से जुड़े हुये जल में डूबे जलोद्भिद — हाईड्रिला

ज़मीन से जुड़े निर्गत जलोद्भिद

यह पौधे छिछले जल में पाये जाते हैं। इन पौधों को बहुत अधिक पानी की आवश्यकता होती है। इन की शाखाएँ या तो पूरी तरह से या उन का कुछ भाग हवा में रहता है। इन की जड़ें ज़मीन से जुड़ी और पूरी तरह से पानी में डूबी रहती हैं। कुछ पौधों जैसे रैननकुलस और सैजीटेरिया के तने का कुछ भाग पानी में डूबा रहता है तथा कुछ बाहर हवा में निकला रहता है (चित्र 3.15)।

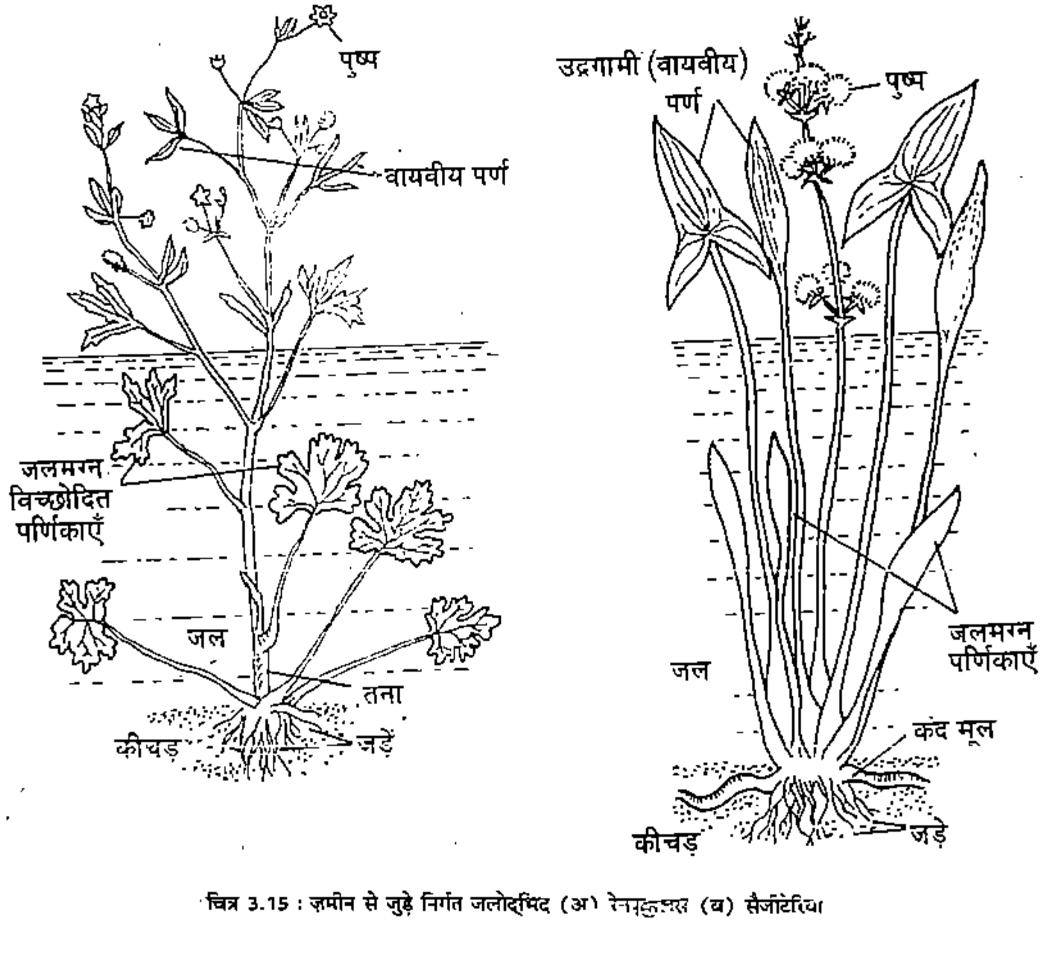

चित्र 3.15 : ज़मीन से जुड़े निर्गत जलोद्भिद (अ) रेननकुलस (ब) सैजीटेरिया

समोद्भिद

यह पौधे उन स्थानों पर होते हैं जहाँ की मिट्टी नम और अच्छी तरह से हवा-मिश्रित होती है। इन पौधों के लिये संतुलित नमी वाली हवा और मिट्टी उपयुक्त होती है और ऐसे स्थानों में जीवित नहीं रह सकते हैं जहाँ की मिट्टी में अधिक पानी हो या लवणों की मात्रा बहुत अधिक हो। कुछ बातों में इन पौधों की स्थिति जलोद्भिद तथा मरूद्भिद के बीच की है। समोद्भिद, बड़ी पत्तियों वाले वह पौधे होते हैं जो झीलों तथा नदियों के किनारे-किनारे नमी वाले स्थानों में उगते हैं। आमतौर पर समोद्भिद वर्ग के पौधों में जड़ें बहुत विकसित होती हैं तथा तना ठोस और बहुत सी शाखाओं वाला ऊपर हवा में होता है। दोपहर में यह पौधे अस्थायी रूप में मुरझा जाते हैं।

मरूद्भिद

साधारण तौर पर मरूद्भिद सूखी जगहों पर उगने वाले पौधे होते हैं। कुछ लोगों की परिभाषा में मरूद्भिद वे पौधे हैं जो उन स्थानों पर उगते हैं जहाँ की मिट्टी में सामान्य मौसम में कम से कम 2 डेसीमीटर गहराई तक पानी खत्म हो गया हो। इसलिये शुष्क स्थानों में वे सभी पौधे जो कि नदियों और झीलों के किनारे तक ही सीमित नहीं रहते, मरूद्भिद पौधे माने [illegible] की आकृति, शारीरिक क्रिया-विज्ञान और जीवन-चक्र के आधार पर इन को सूखे से बच निकलने या झेलने वाले पौधों के वर्ग में लाया जा सकता है। इस वर्ग के पौधे अपना जीवन-चक्र उस थोड़े से समय में पूरा कर लेते [illegible] नमी की मात्रा अनुकूल हो। लेकिन प्रतिकूल शुष्क परिस्थितियों में यह पौधे बीजों के रूप में रहते है। ऐसे पौधों के कुछ उदाहरण हैं **आर्जिमोन मैक्सीकाना, सोलेनम जैन्थोकारपम**। कुछ गूदेदार मरूद्भिद पौधों के नाम हैं ओपनशिया स्पीसीज़, यूफोर्बिया स्पैलैन्डैस। कुछ बिना गूदे के बहुवर्षीय पौधे होते हैं जैसे कैलोट्रोपिस प्रोसेरा, अकेशिया नीलोटिका, जैसा कि चित्र 3.16 और 3.17 में दिखाया गया है।

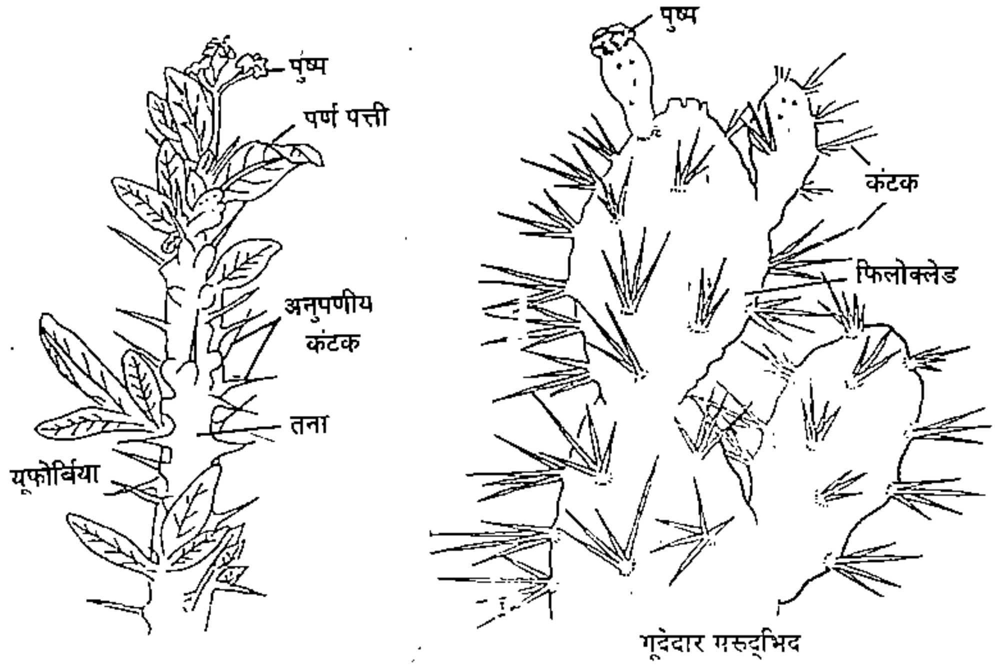

चित्र 3.16 : गूदेदार मरूद्भिद पौधे। (अ) यूफोर्बिया स्पैलेन्डैस (ब) ओपेनशिया स्पीसीज़।

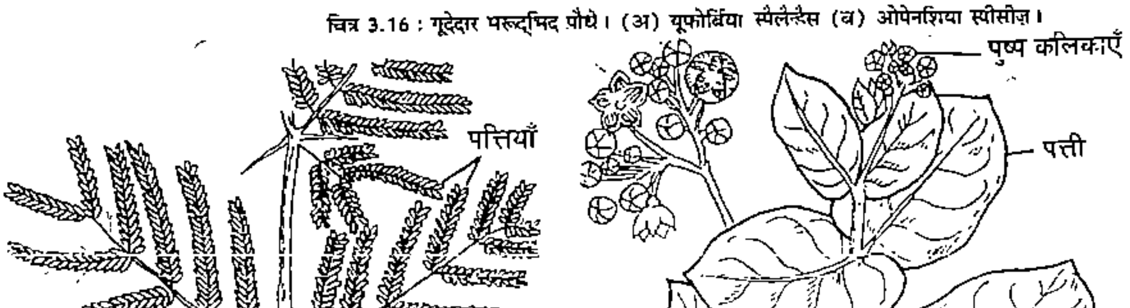

चित्र 3.17 : बिना गूदेदार बहुवर्षी मरूद्भिद पौधे। (अ) कैलोट्रोपिस प्रोसेरा (ब) अकेशिया नीलोटिका

कुछ पौधों की जातियाँ जो पानी के किनारे उगती हैं उन की जड़ों और तनों के उस भाग में जो मिट्टी के अन्दर होता है आक्सीजन की कमी हो जाती है। सभी जीवित कोशिकाओं तथा ऊतकों के लिये श्वासक्रिया बहुत ही आवश्यक कार्य है, और आक्सीश्वासन क्रिया के लिये आक्सीजन की आवश्यकता होती है। दलदल में पाये जाने वाले पौधों जैसे कि चावल-ओराइज़ा साटाइवा में जड़ें बिना आक्सीजन के श्वसन क्रिया करने के लिये अनुकूलित हो जाती हैं। अधिकतर पौधे समोद्भिद स्थिति में उगते हैं। समोद्भिद पौधे वे होते हैं जो ऐसी जगहों पर पाये जाते हैं जहाँ न तो पानी की कमी हो और न ही उस की अधिकता, लेकिन ये पौधे वर्षा के मौसम में अस्थायी तौर पर कुछ सप्ताह के लिये पानी में डूबे रह सकते हैं। इन पौधों में जलोद्भिद पौधों की विशेष जड़ों वाला एक नई जड़ों का समूह विकसित हो जाता है। सेकरम वेन्गालैन्स नामक पौधे जब पानी में डूबे रहते या मिट्टी में अत्यधिक पानी होता है तो इन की पुरानी जड़ें भर जाती हैं और नई जड़ें पैदा हो जाती हैं जिनमें हवा की मात्रा अधिक होती है।

स्वतंत्र रूप से तैरने वाली पौधों की जातियां पानी की सतह पर बढ़ती रहती हैं। ऐसे पौधों की जड़ें अविकसित रहती हैं क्योंकि पूरा पौधा ही जल के सम्पर्क में रहता और अवचूषण उस की पूरी सतह से होता रहता है। पत्तियों के रन्ध्र (stomata) केवल ऊपरी सतह पर होते है जो कि पानी के सम्पर्क में नहीं आते हैं। जलोद्भिद् पौधों के लिये सीधा खड़ा तना अनावश्यक होता है। स्वतंत्रता से तैरने वाले अधिकतर पौधों जैसे वुल्फिया, लैमना तथा अज़ोला की जड़ें तथा तना बहुत अविकसित होता है। इन पौधों में पत्तियाँ बहुत विशिष्ट होती हैं तथा यह पानी सोखने, प्रकाश संश्लेषण करने तथा तेज़ी कायिक प्रवर्धन (vegetative multiplication) करने के लिये अनुकूलित होती हैं। और इन में बड़े-बड़े वायु-स्थान होने के कारण यह पौधे को उत्प्लावकता (buoyancy) प्रदान करता है।

जल में पूरी तरह से डूबे रहने वाले जलोद्भिद पौधे जैसे कि हाइड्रिला में कम प्रकाश तथा अत्यधिक पानी के वातावरण के लिये अनुकूलशीलता होती है। तने में बड़ी-बड़ी खोखली जगहें जिनमें हवा भरी रहती है, गर्तिकायें (lecunae) कहलाती है। यह गर्तिकायें इन पौधों को उत्प्लावकता प्रदान करती है तथा इसी कारण पौधा पूरी तरह से फैल कर पानी पर तैरता रहता है। स्थलीय पौधों में कुछ यान्त्रिक ऊतक जैसे कि दृढ़ऊतक (sclarenchyma) ए काष्ठीयदारु (woody xylem) सेकेन्डरी दारू (secondary xylem) तथा छाल सामान्य रूप से पाये जाते हैं जो उन पौधों को यान्त्रिक आधार प्रदान करते हैं परन्तु इस प्रकार के ऊतक जलोद्भिद पौधों में नहीं पाये जाते। इसलिये जलोद्भिद पौधों में गर्तिकाओं का होना तथा यान्त्रिक ऊतकों का न होना दो मुख्य अनुकूलशीलताएँ हैं (चित्र 3.18)।

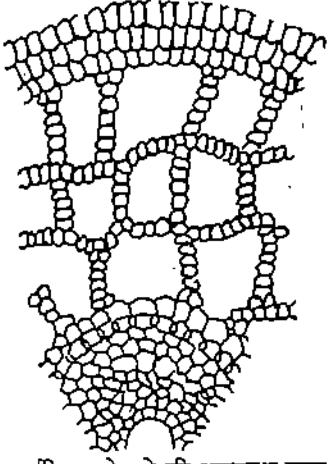

चित्र 3.18 : हाइड्रिया पौधे के तने का अनुप्रस्थ सेक्शन (पूरी तरह पानी में डूबा रहने वाला जलोद्भिद)।

अधिकतर पौधों की तैरती हुई पत्तियों के आकार और उन में अनुकूलनशीलताओं के लक्षणों में समानता होती है। पत्तियाँ अधिकतर छत्रिकाकार तथा वृताकार होती हैं उनका गठन चमड़े की तरह का होता है। पत्तियों की ऊपरी सतह मोमी तथा चिकनी होती है जिस कारण पानी उन की सतह पर नहीं ठहरता और फिसल जाता है। पत्तियों के किनारे इतने मज़बूत होते हैं कि हवा और पानी की धारा के दबाव से टूटने-फूटने से अपने को बचा लेती हैं। तैरती हुई पत्तियों में वायुतक बहुतायत में होने के बावजूद उनका आकार यांत्रिक ऊतक तथा रसायनिक क्रिस्टलों जैसा दृढ़ कोशिका (scleroids) के कारण बना रहता है (चित्र 3.19)।

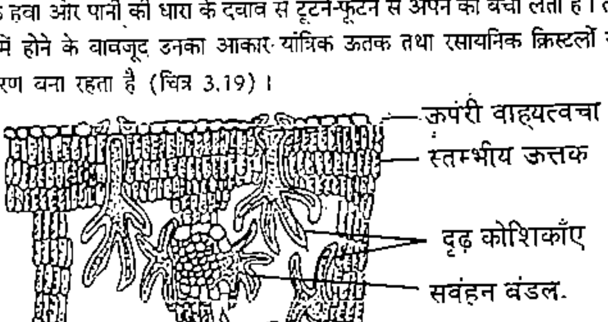

चित्र 3.19 : पत्ती का अनुप्रस्थ सेक्शन। इसमे यांत्रिक ऊतक तथा दृढ़ कोशिका दिखाई गई है।

आप को मालूम है कि वे पौधे जो शुष्क स्थानों में रहने के लिये अनुकूलित होते हैं मरूद्भिद कहलाते हैं। जलीय आवास और उसके महत्व से सम्बंधित समोद्भिद और मरूद्भिद पौधों के बीच कोई पक्की रेखा नहीं खींची जा सकती। यह पारिभाषिक शब्द केवल आपेक्षिक है। कुछ जीव वैज्ञानिक केवल उन पौधों को मरूद्भिद मानते हैं जिनमें वृद्धि जल (growth water) की बहुत कमी होती है। पानी की कमी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, पौधों की संरचना तथा सामान्य क्रियाओं पर बुरा असर पड़ता है। मरूद्भिद पौधे केवल शुष्क आवासों में रहने के लिये अनुकूलित होते हैं तथा मरुस्थलों में अपना प्रमुख स्थान बना लेते हैं क्योंकि वहाँ पर अन्य दूसरे प्रकार के पौधे नहीं होते हैं। परन्तु जब नमी की स्थिति अच्छी हो जाती है तो समूचे जीवीय समूह (biomass) में वृद्धि हो जाती है। पौधों को पानी की उपलब्धि के दृष्टिकोण से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है : 1. शुष्क आवास, 2. नम आवास। पौधों को दो कारणों से पानी नहीं मिल पाता है या तो उसमें घुलित लवणों की अत्यधिक मात्रा होती है या पानी के उन स्थानों में जम जाने से जहाँ तापमान जमाव बिन्दु से नीचे होता है। पौधों का कुम्हलाना एक और प्रमुख कारण है जो मिट्टी की नमी को नियन्त्रित रखता है जिसके कारण पौधा ज़मीन से पर्याप्त मात्रा में पानी नहीं ले पाता है और स्थायी रूप से कुम्हलाने लगता है। यह सब मिट्टी के गठन और उसमें नमी की मात्रा पर भी निर्भर करता है। खुरदुरी मिट्टी में कम नमी के होने के बावजूद कुछ पानी पौधों में मौजूद रहता है इसीलिये चिकनी मिट्टी में, बालूई मिट्टी की अपेक्षा पौधा जल्दी मुरझा जाता है।

मरूद्भिद पौधों को उनकी आकृति, क्रियाओं तथा जीवन-चक्र के आधार पर निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता हैं।

अ) वार्षिक इफीमेरल (Ephemeral annuals) : यह पौधे अधिकतर शुष्क स्थानों पर पाए जाते हैं और इन को सूखा झेलने वाले या सूखे से बच निकलने वाले पौधे भी कहा जाता है। जब पानी की स्थिति अच्छी होती है तो यह अपना जीवन-चक्र 6-8 हफ़्तों में पूरा कर लेते हैं। जब पानी की कमी होने लगती है तो यह पौधे सूख जाते हैं और केवल बीज बच जाते हैं जो शुष्क और प्रतिकूल अवस्थाओं को भी झेल लेते हैं। यह पौधे सूखे की स्थिति से बचते हैं और ऐसे बीज पैदा करते हैं जो शुष्क और प्रतिकूल अवस्थाओं को भी झेल लेते हैं। यह पौधे सूखे की स्थिति से बचते हैं और ऐसे बीज पैदा करते हैं जो शुष्क अवस्था के प्रतिरोधी होते हैं। ऐसे पौधों के कुछ उदाहरण हैं **आर्जीमोन मैक्सीकाना, सोलेनम ज़ेन्थोकारपम तथा केसिया टोरा।**

ब) गूदेदार मरूद्भिद पौधे : जो पौधे गर्म तथा शुष्क स्थानों पर रहने के लिये अनुकूलित होते हैं गूदेदार मरूद्भिद पौधे कहलाते हैं। इन के तने, पत्तियाँ तथा जड़ें गूदेदार तथा फूली हुई होती हैं जो पानी इक्ट्ठा रखने वाले अंग का कार्य करते हैं। यह पौधे वर्षा ऋतु के थोड़े से ही समय में काफी मात्रा में पानी जमा कर लेते हैं। वाष्पोत्सर्जन के कारण पानी की क्षति को कम करने के लिये इन पौधों की पत्तियाँ या तो छोटी होती हैं या फिर काँटों में परिवर्तित हो जाती हैं और या फिर होती ही नहीं। इन पौधों की जड़ें, ज़्यादा गहराई तक नहीं जाती तना चौड़ा तथा क्षैतिज दिशा में फैला हुआ होता है और पत्तियाँ मोटी, फूली हुई और चमड़े के समान होती हैं। गूदेदार मरूद्भिद पौधों के कुछ उदाहरण हैं **ओपनशिया स्पीशिज़ यूफोर्बिया स्पैल्नडैन्स**, विभिन्न प्रकार के कैक्टस (cactus) तथा अगेव (agave)। कुछ ऐसे पौधों में तना गूदेदार हो जाता है जैसे कि ओपनशिया और यूफोर्बिया स्पैल्नडैन्स। इनको गूदेदार मरूद्भिद भी कहते हैं। ऐसे मरूद्भिद पौधों में क्यूटिकल मोटी होती है तथा हाइपोडर्मिस दो या तीन परतों की बनी होती है।

स) गूदेरहित बहुवर्षीय मरूद्भिद पौधे : यह पौधे वास्तव में मरूद्भिद पौधे होते हैं जो सूखे की स्थिति का प्रतिरोध कर लेते हैं क्योंकि इन में संकटपूर्ण शुष्क अवस्थाओं में जीवित रहने के लिए आकृत, संरचना तथा क्रियाओं में बहुत सी अनुकूलनशीलताएँ होती हैं। इन पौधों में जड़ें बहुत विस्तृत होती हैं तथा उनकी वृद्धि तेजी से होती है ताकि यह जड़ें भूमि से दक्षतापूर्वक पानी ले सकें। वाष्पोत्सर्जन द्वारा पानी की क्षति को रोकने के लिए पत्तियाँ बहुत ही अविकसित होती हैं तथा कुछ मरूद्भिद घासों की पत्तियाँ मुड़ी होती हैं। कुछ उदाहरण हैं **कैलोट्रोपिस परोसिरा, अकैशिया नीलोटिका और सैकरम मुन्जा।** बिना गूदेदार मरूद्भिद पौधों की जड़ें बहुत ही विस्तृत रूप से फैली रहती हैं जैसे कैलोट्रोपिस। वाष्पोत्सर्जन द्वारा पानी की क्षति को कम करने के लिये प्रमुख अनुकूलनशीलताएँ इस प्रकार हैं :

i) पत्तियों पर मोटी मोमी क्यूटिकल की परत होती है।

ii) क्यूटिकल तथा एपिडर्मिस की मोटी परतें होती हैं।

iii) पत्तियाँ छोटी, पतली अथवा कम समय के लिये जीवित रहने वाली होती हैं।

iv) पत्तियाँ काँटों में परिवर्तित हो जाती हैं तथा पराकोटि अवस्थाओं में तने पर पत्तियाँ नहीं होती हैं।

v) घास में पत्तियों का सूख जाना एक साधारण बात है।

vi) कई प्रकार की घासों में पत्तियों का मुड़ जाना भी देखा गया है।

II. जलीय वातावरण के लिये जानवरों में पारिस्थितिकीय अनुकूलन

जलीय वातावरण में जानवरों को पानी की अधिकता का सामना करना पड़ता है। अलवणीय तथा समुद्री जल में रहने वाले जानवर पानी का संतुलन बनाये रखने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के तरीके अपनाते हैं।

जलीय जीवों के शारीरिक पानी तथा उन के आस-पास के जल के बीच परासरणी-दबाव में भिन्नता होने की समस्या को सुलझाने के लिए इन जीवों में कई परासरणी-नियंत्रक क्रिया-विधि विकसित हो जाती हैं। अलवणीय जल में पाये

जाने वाले जानवरों के शरीर में लवणों की मात्रा आसपास वाले पानी की अपेक्षा अधिक होती हैं। अतः वाहर का पानी लगातार शरीर के अंदर विसरित होता रहता है। अतिरिक्त जल को निरंतर शरीर से निकालने की आवश्यकता होती है। अधिकतर जलीय जानवरों जैसे प्रोटोज़ोआ और मछलियों में से अतिरिक्त जल परासरणी नियंत्रण (Osmoregulation) क्रिया द्वारा वाहर निकलता रहता है। प्रोटोज़ोआ वर्ग में संकुचनशील रिक्तिकाएँ होती हैं जब कि दूसरे वहुकोशिकाओं वाले अकशेरुकी तथा कशेरुकी (कार्डेटा) वर्गों के जीव उत्सर्जन के लिए नेफरीडिया तथा गुर्दे का प्रयोग करते हैं।

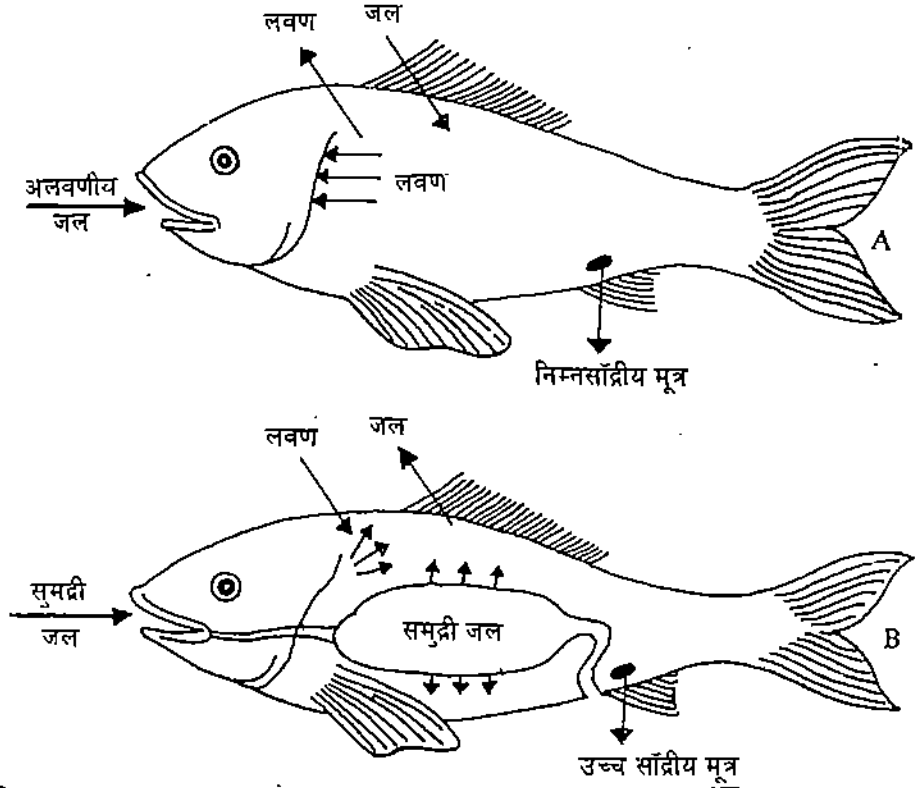

चित्र 3.20 : परासरणी नियंत्रण : (अ) अलवणीय जल की मछली में तथा (व) समुद्री मछली में।

समुद्री जानवरों में स्थिति ठीक इसके विपरीत होती हैं। उन के शरीर में लवणों की सांद्रता आसपास के पानी की अपेक्षा कम होती है (हाईपोटोनिक)। इन परिस्थितियों में शरीर से पानी निकलने की प्रवृत्ति होती हैं परन्तु परासरणी नियंत्रण क्रिया द्वारा पानी शरीर के अंदर ही रोके रखा जाता है परन्तु लवणों का उत्सर्जन हो जाता है। जानवरों में लवणों की सांद्रता को सहने की क्षमता अलग-अलग होती है। जीवों जिनमें ये सहनक्षमता कम होती है और सांद्रता के घटाव-वढ़ाव को सहन नहीं कर सकते, को स्टीनोहैलाइन कहते हैं। और ऐसे जीव जो कि लवणों की वहुत अधिक या कम सांद्रता में भी जीवित रह सकते हैं यूरीहैलाइन कहलाते हैं। डायटम और समुद्री अर्चिन जो गर्म जल में वड़े होते हैं, को छोड़कर अधिकतर ठंडी जगहों के अलवणीय या समुद्री जल में रहने वाले जीवों का वड़ा आकार होता है।

जानवरों में मरुस्थलीय वातावरण के लिये पारिस्थितिक अनुकूलशीलताएँ

जल की कमी की परिस्थितियों में जानवर कई ऐसी अनुकूलनशीलताएँ पैदा कर लेते हैं जिससे वह पानी अपने अंदर वनाये रख सके और उस की क्षति को रोक सके। अधिकतर मरुस्थलीय जानवर विल वना कर रहते हैं और रात्रिचर अर्थात् सूर्य ढलने के वाद क्रियाशील होते हैं जिस से दिन के गर्म तापमान से वचा जा सके। कुछ जानवरों जैसे साही की त्वचा अभेद्य तथा कांटेदार होती है और कुछ की त्वचा अन्य जानवरों जैसे ऊंट में काफी मात्रा में पानी संचित करने की क्षमता होती है और इनमें वसा की उपापचय (metabolic) क्रियाओं से पानी वनता है जिस को उपापचय जल कहते हैं। मूत्र का उत्सर्जन शुष्क रूप में होता है जिससे पानी का संरक्षण किया जा सके। इस के अतिरिक्त झुलसने वाली गर्मी से वचने के लिये यह ग्रीष्म निष्क्रियता (aestivation) अपनाते हैं। घास के मैदानों तथा जंगलों में जानवर कुओं तथा नदियों से पानी लेते हैं। स्थलीय जानवरों में पानी को संचित करने या वाहर निकालने की क्षमता अलग-अलग होती है तथा वह उनके आवासों की स्थितियों से वहुत प्रभावित होती हैं।

वोध प्रश्न 4

सही कथन पर (√) चिन्ह लगाइये।

i) खारेपन का कारण है

अ) क्षारीयता

व) सोडियम क्लोराइड

स) सोडियम कार्बोनेट

द) पोटेशियम क्लोराइड।

ii) तटीय क्षेत्रों में भूमिजल जल के अत्यधिक अवशोषण के कारण अलवणीय जल में ...... का अंतर्वेधन हो जाता है

अ) खारा जल

ब) क्षारीय जल

स) लवण जल

द) अम्लीय जल।

iii) बढ़ती हुई .... भूमिगत जल के अत्यधिक अवशोषण का कारण है।

अ) कृषि

ब) जंगलों की संख्या

स) उद्यान कृषि

द) शहरों की संख्या

iv) मरूद्भिद पौधे सूखे की स्थिति का सामना करने का कारण है .... ।

अ) पानी का वाष्पीकरण

ब) पानी का संचय

स) पानी का अवशोषण

द) लवणों की सांद्रता बढ़ना।

v) भूमिजल एवं सिंचाई जल के वाष्पन के कारण भूमि पर कौन सी चीज संचित हो जाती है .... ।

अ) पानी

ब) लवण

स) खनिज

द) पानी तथा खनिज दोनों

3.6 सारांश

इस इकाई में आपने सीखा कि :

- जल एक ध्रुवीय अणु हैं तथा जीवन के लिये परम आवश्यक है।
- धरती का तीन-चौथाई भाग पानी से ढका है। इसके अलावा जीवमंडल में जल के वितरण में काफी असमानता है तथा अलवणीय जल की मात्रा बेहद कम होती है।
- जल एक सार्वत्रिक (universal) विलायक है तथा सभी जीवों के शरीर के अन्दर तथा बाहर होने वाली रसायनिक क्रियाओं को बढ़ाता है।
- लवणों की मात्रा के आधार पर जल तीन प्रकार का हो सकता है जैसे कि अलवणीय जल, खारा जल, तथा समुद्री जल। पानी की लवणता, पानी में घुले लवणों की मात्रा पर निर्भर करती है। सभी तरह के प्राकृतिक जल में सोडियम, पोटाशियम, मैगनिशियम आदि के लवणों जैसे सल्फेट, फास्फेट, कॉर्बोनेट, बाईकार्बोनेट तथा नाइट्रेट इत्यादि भिन्न-2 मात्राओं में होते हैं।
- जल चक्र एक प्राकृतिक व्यवस्था है जिसके द्वारा पानी इकट्ठा होता है तथा उस का स्वच्छीकरण और वितरण होता है। जल के वाष्पन तथा अवक्षेपन दोनों की प्रक्रियाओं के लिये ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है।
- जब वर्षा सामान्य से 75 प्रतिशत कम होती है तो सूखा पड़ता है। पौधे तथा जानवर दोनों ही सूखे की अवस्थाओं से बुरी तरह से प्रभावित हो जाते हैं तथा केवल वे ही जीवित रह पाते हैं जो भीषण मरूद् (xeric) परिस्थितियों के लिये अनुकूलन पैदा कर लेते हैं।
- जलाक्रान्ति एक और समस्या है जो उन खेतों में सिंचाई के कारण पैदा होती है जहाँ पानी के निकास का उचित प्रबन्ध नहीं होता तथा इसके कारण जलस्तर ऊँचा उठ जाता है। पौधों की जड़ें भर जाती हैं क्योंकि मिट्टी में हवा के रंध्रों की जगह पानी भर जाता है। पानी के वाष्पन के बाद मिट्टी में लवणों की मात्रा बढ़ जाती है। इन बढ़े हुये लवणों के प्रति पौधों की अनुकूलनशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि जड़ों का फैलाव कितना है।

3.7 अंत में कुछ प्रश्न

1 जीवों के लिये जल किस प्रकार एक उत्तम अभिगमन तन्त्र (transport system) की भांति काम कर सकता है ?

....
....
....
....

2 तापमान 0° से.ग्रे. से भी कम होने पर भी झीलें पूरी क्यों नहीं जमती ?

....
....
....
....

3 जल किन गुणों के कारण एक अच्छा विलायक माना जाता है ?

....
....
....
....

4 जल चक्र में सूर्य ऊर्जा का क्या महत्व है ?

....
....
....
....

5 जल की लवणता क्या होती है तथा इससे क्या हानि हो सकती है ?

....
....
....
....

3.8 उत्तर

1 • एक डिग्री • ऊर्जा • तापमान • जीवन का लगातार चलना • तली

2 • मीठे जल की लवणता साधारणतया 0.50/00 (प्रत्येक भाग एक हज़ार में) होती है। इस का अर्थ है कि यदि एक लिटर जल का वाष्पन होता है तो इससे 0.5 ग्रा. अकार्बनिक अवशेष प्राप्त होगा।
- नदीमुख अलवणीय तथा लवणीय जल का मिश्रण होता है जिसे खारा जल कहते हैं।
- समुद्रीजल में अत्यधिक लवणता सोडियम क्लोराइड के कारण होती है।

3 i) ग, ii) स, iii) ग, iv) स, v) ग, vi) स, vii) ग

4 i) ब, ii) स, iii) द, iv) ब, v) ब

अंत में कुछ प्रश्न

1 जल के अणु हाइड्रोजन बॉण्ड के कारण एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और पृथक नहीं हो पाते हैं। जल के अणु सतहों विशेषतया ध्रुवीय सतहों से जुड़े रहते हैं। इसी लिये पानी किसी भी नलिका को भर सकता है और बह (flow) सकता है जिससे घुलनशील तथा निलंबित (suspended) अणु समान रूप से वितरित रहते हैं। इसलिये जल एक उत्तम अभिगमन तंत्र की तरह काम करता है।

2 जल का अधिकतम घनत्व 40° से.ग्रे. पर होता है। इस तापमान से ऊपर या नीचे के ताप पर यह प्रसारित होकर हल्का हो जाता है। इस विशेष गुण के कारण जल जम नहीं पाता है।

3 जल के अणु ध्रुवीय होते हैं तथा यह एक दूसरे से हाइड्रोजन बॉण्ड द्वारा जुड़े रहते हैं। इन दो गुणों के कारण जल एक अच्छा विलायक माना जाता है। पानी में बहुत से यौगिक घुल जाते हैं क्योंकि यह अणु को तोड़ कर आयन बनाता है।

4 जल का वायुमंडल तथा धरती की सतह के बीच निरंतर परिसंचरण होता रहता है जिसे जल चक्र कहते हैं। सारे वाष्पित जल से बादल बनते हैं जो हवा द्वारा भूमि के ऊपर से गुज़रते हुए इतने ठंडे हो जाते हैं कि वे वर्षा या वर्फ़ के रूप में अवक्षेपित हो जाते हैं। भूमि जल झरनों, पंपों तथा वाष्पोत्सर्जन (पानी का जड़ों से पत्तियों तक संचलन) द्वारा सतह पर वापस लौट आता है। पानी दोबारा समुद्र में आ जाता है। धरती की सतह से वायुमंडल तक पानी का निरंतर परिसंचरण सूर्य ऊर्जा द्वारा संचालित होता है।

5 मिट्टी में बढ़ते हुये लवणों के कारण खारापन पैदा हो जाता है। जब पौधे अपनी आवश्यकतानुसार जल सोख लेते हैं तो सभी प्राकृतिक जल स्रोतों में लवणों की सांद्रता बढ़ जाती है। सिंचाई के बढ़ने के साथ-साथ खारेपन की समस्या भी बढ़ती जाती है जिसके फलस्वरूप खेतों में पैदावार कम हो जाती है।

इकाई 4 पर्यावरण के घटक : 3 — मृदा

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
4.2 मृदा क्या है ?
4.3 मृदा का निर्माण
शैलों का अपक्षय
खनिजीभवन और ह्यूमसभवन
4.4 मृदा के प्रकार
अवशिष्ट मृदा
वाहित मृदा
4.5 मृदा गठन एवं संरचना
4.6 मृदा परिच्छेदिका
4.7 भौतिक गुण
हल्की एवं भारी मृदा
मृदा जल
पारगम्यता
वातन
4.8 रासायनिक गुण
धनायन विनिमय क्षमता
पोषक तत्वों की उपलब्धता
4.9 मृदा जीवजात तथा मृदा उर्वरता
क्षय और पोषक तत्व चक्र
वृद्धि पदार्थों का उत्पादन
नाइट्रोजन यौगिकीकरण
मृदा का मिश्रण
मृदा वातन का सुधार
सम्पूर्ण संरचना का सुधार
4.10 सारांश
4.11 अंत में कुछ प्रश्न
4.12 उत्तर

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों मे आपने जल, ऊष्मा और प्रकाश जैसे पर्यावरणीय घटकों का अध्ययन किया। आप देख चुके हैं कि ये कारक किस प्रकार परस्पर क्रिया करते हैं और जीवों (living organisms) के वितरण (distribution) तथा पारिस्थितिकी को प्रभावित करते हैं। अव आप इस इकाई में एक और महत्वपूर्ण पर्यावरणीय घटक अर्थात् मृदा (soil) के बारे मे पढ़ेंगे।

मृदा पृथ्वी की पपड़ी का जटिल, शीघ्र, सतत परिवर्तनशील भाग है जो कहीं तो कुछ सेंटीमीटर ही है और कहीं कई मीटर गहरा है। यह पौधों की वृद्धि के लिए एक प्राकृतिक माध्यम है और जीवों, जिसमें मानव जाति भी शामिल है के अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक है।

मृदा का अध्ययन अब विज्ञान की एक सुविकसित आत्मनिर्भर शाखा के रूप में होता है जो मृदा-विज्ञान (pedology) कहलाती है। इस इकाई में हम आपसे मृदा के महत्वपूर्ण पहलूओ के बारे में चर्चा करेंगे। इकाई के पहले भाग में मृदा निर्माण के बारे में और उसके बाद मृदाएं जिस तरीके से वाहित होती हैं, उस आधार पर उनके प्रकारों के बारे में जानकारी दी गई है। उसके बाद हम मृदा गठन (texture), संरचना (structure) और परिच्छेदिका (profile) के बारे में बतायेंगे। उनके बारे में जानने के बाद आप मृदा के विभिन्न भौतिक और रासायनिक गुणों पर पड़ने वाले प्रभावों को समझ सकेंगे। इकाई के अंतिम भाग में हम आपसे मिट्टी में रहने वाले जीवों और मृदा उर्वरता बनाए रखने में उनकी भूमिका के बारे में चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- मृदा की परिभाषा तथा इसकी प्रकृति एवं बनावट का वर्णन कर सकेंगे,
- मृदा निर्माण प्रक्रिया की रूपरेखा बना सकेंगे,

- विभिन्न प्रकार के मृदा कणों और मृदा के विभिन्न गठन वर्गों की सूची तैयार कर सकेंगे,
- हल्की और भारी मृदा में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे,
- मृदा में पाए जाने वाले विविध प्रकार के जल (forms of water) और पादप वृद्धि में उनके सापेक्षिक महत्व का वर्णन कर सकेंगे,
- विविध प्रकार की मृदा और उनके महत्वपूर्ण विभेदक लक्षणों की सूची बना सकेंगे,
- पारगम्यता और वातन जैसे भौतिक गुणों के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे,
- मृदा के रासायनिक गुणों — खास तौर पर धनायत विनिमय क्षमता (cation exchange capacity) और मृदा जीवों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा अनुपलब्धता की चर्चा कर सकेंगे।

4.2 मृदा क्या है?

अंग्रेजी के "सॉयल" (soil) शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के सोलम (solum) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है वह भू-पदार्थ जिसमें पौधे उगते है। सॉयल (यानि मृदा या मिट्टी) पृथ्वी की संपीड़ित बाहरी पपड़ी है जिसकी मोटाई बारीक परत (फिल्म) से लेकर तीन मीटर से भी कुछ अधिक हो सकती है। मृदा पौधों को सीधा खड़ा रखने यानि मजबूती प्रदान करने के अलावा इन के लिए जल तथा पोषक तत्वों के भंडारन का कार्य करती है। इसमें अनेकों प्रकार के सूक्ष्म-वनस्पतिजात (micro-flora) एवं प्राणीजात (fauna) होते हैं।

मृदा अकार्बनिक (inorganic) और कार्बनिक (organic) पदार्थों का जटिल मिश्रण है। इसके अकार्बनिक पदार्थ यानि खनिज अवयव जनक पदार्थ (मिट्टी बनाने वाली चट्टानों) के खंडीभवन (fragmentation) और अपक्षय (weathering) से उत्पन्न होते हैं। मिट्टी के खनिज कणों के बीच कुछ बारीक खाली जगह रह जाती है जो कि गैसों से भरी होती है। मृदा के अकार्बनिक घटकों में कार्बनिक अवशिष्ट (organic wastes) पौधों तथा जंतुओं के निर्जीव अवशेष (remains) और उनके अपघटन (decomposition) उत्पाद (products) होते हैं। इनके अलावा उर्वर (fertile) भूमि में कई प्रकार के शैवाल (algae), जीवाणु (bacteria), कवक (fungi) तथा अनेकों छोटे और बड़े प्राणी भी मौजूद होते हैं।

4.3 मृदा का निर्माण

मिट्टी को बनाने वाली प्रक्रियाओं का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है:

4.3.1 शैलों का अपक्षय

मृदा निर्माण की प्रक्रिया मंद, क्रमिक और सतत होती है। उन सभी प्राकृतिक प्रक्रियाओं को जिनके कारण जनक शैलों (parent rocks) का विघटन (disintegration) होता है सामूहिक रूप से अपक्षय कहते हैं और इनमें भौतिक, रासायनिक या जीवीय (biological) एजेंसियां कार्य करती हैं।

भौतिक अपक्षय (Physical weathering)

कुछ यांत्रिक बलों (mechanical forces) का कारण शैलों का भौतिक अपक्षय होता है। एक ऐसे यांत्रिक बल का उदाहरण है तापमान। तापमान के घटने-बढ़ने से शैल-सतह फैलती या सिकुड़ती है। जिसके कारण चट्टानें चटक जाती है और इनमें दरारें पड़ जाती है। अत्यधिक ठंड के कारण चट्टानों की विदरिकाओं (crevices) में मौजूद जल जम जाता है तथा बर्फ के बन जाने से यह फैलता है चूंकि इसका आयतन बढ़ जाता है इसके फैलने के बल (force of expansion) से चट्टानों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं जब यह टुकड़े ढाल से लुढ़क कर नीचे गिरते हैं तो इनके और भी छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं। ओले, वर्षा तथा तेजी से बहने वाली जल धाराएं भी भौतिक अपक्षय के महत्वपूर्ण कारक है। आपने ऋषिकेश और हरिद्वार में (जहां गंगा की तेज धाराएं हिमालय में गंगोत्री से निकलकर मैदानी भाग में पहुँचती हैं) गंगा-तल में पत्थरों के अनेकों प्रकार के गोल-गोल टुकड़े देखे होंगे। हवा भी भौतिक अपक्षय का अन्य कारक है, खास तौर पर यह रेत धूलि (sand-dust) ले जाती है जो लुढ़कते शिला-खंडों के साथ रगड़ाव के कारण अपघर्षण (abrasion) पैदा करता है। विंध्याचल पर्वत के जंगलों में आम तौर पर यह देखा जाता है कि पेड़ों की जड़ें चट्टानों की विदरिकाओं में घुस जाती हैं और कुछ समय के बाद जब ये जड़ें मोटाई में काफी बढ़ जाती हैं तो इस यांत्रिक बल के कारण भी उन चट्टानों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

रासायनिक अपक्षय (Chemical weathering)

चट्टानों के विघटन के दौरान इनमें रासायनिक परिवर्तन भी हो सकते हैं। रासायनिक परिवर्तनों के लिए जल एक महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि यह शैल-पदार्थों के एक या अधिक घटकों के साथ विलयन (dissolution) या अभिक्रिया (reaction) करता है। घुले हुए पदार्थों की उपस्थिति और उष्ण तापमान, रासायनिक अपक्षय में सहायक होते हैं। कुछ शैल-घटक घुल (dissolve) सकते हैं और पुनः अवक्षेपित (reprecipitate) हो सकते हैं जिनके कारण शैल गठन (rock texture) बारीक धूलि गठन में बदल जाता है। फेल्डस्पार (feldspar) और अभ्रक (mica) जैसे

कुछ पदार्थ उद्कन क्रिया (hydration) द्वारा नरम पड़ जाते हैं और आसानी से अपक्षय-योग्य हो जाते हैं। रासायनिक अपक्षय की एक और महत्वपूर्ण प्रक्रिया जल अपघटन (hydrolysis) द्वारा होती है। जिसमें जल का वियोजन (dissociation) खास कर कार्बन डाइक्साइड और कार्बनिक अम्लों (organic acids) की उपस्थिति में, H^+ और OH^- आयनों में होता है और जो ऑर्थोक्लेज की तरह सिलिकेट पर कार्य करता है और सिलिकेट मृत्तिका (silicate clays) बनाता है। रासायनिक अपक्षय के अन्य साधन ऑक्सीकरण (oxidation) अपचयन (reduction) और कार्बोनिटीकरण (carbonation) हैं, जिनमें जनक शैलों के खनिज घटकों में क्रमशः ऑक्सीजन का जोड़ना, ऑक्सीजन का हटाना और कार्बनिक अम्लों की क्रिया शामिल है।

यह जानना महत्वपूर्ण है कि चट्टानों का अपक्षय बहुत मंद प्रक्रिया है। जनक शैल पदार्थ की प्रकृति के अनुसार इस प्रक्रिया में सैकड़ों या हजारों वर्ष लग सकते हैं। यह एक सतत चलने वाली परिघटना है जिससे पृथ्वी की सतह पर धीरे-धीरे मिट्टी जमा होती रहती है।

4.3.2 खनिजीभवन और ह्यूमसभवन

अपक्षय के कारण मृदा चट्टानें छोटे-छोटे कणों में टूटती हैं लेकिन यह परिपक्व मृदा नहीं है और इस प्रकार से बने पदार्थों में पौधे पनप नहीं सकते हैं। अपक्षीण (weathered) पदार्थों की उत्पत्ति के बाद उनमें अनेकों परिवर्तन होते हैं, तब कहीं ये पदार्थ मृदा का रूप लेते हैं।

यह परिवर्तन क्या है इनका अध्ययन आप इस भाग में करेंगे। आपने अभी तक पढ़ा है कि अपक्षय अधिकांशतः भौतिक तथा रासायनिक कारणों से होता है, अब आप देखेंगे कि अपक्षीण पदार्थों के रूप में और अधिक परिवर्तन यानि खनिजीभवन और ह्यूमसभवन, जीवीय कारणों के कारण होते हैं।

मृदा निर्माण की आरंभिक अवस्थाओं में अपरिपक्व मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अधिक नहीं होती है क्योंकि वनस्पति और इसके साथ पाये जाने वाले प्राणिजात अधिक संख्या में नहीं होते। ऐसी मृदा में प्रारंभ में कुछ साधारण किस्म के पौधे जैसे शैवाल, लाइकेन (lichen) मॉस (moss) और अनेकों नन्हें पौधे उगते, जनन करते तथा अंत में मर जाते हैं। अतः जिन कार्बनिक पदार्थों से वे बने होते हैं, उनमें कई परिवर्तन होते हैं और फिर वे मिट्टी के साथ मिल जाते हैं। कुछ समय के बाद विविध प्रकार के पौधे, प्राणी और सूक्ष्मजीव ऐसी मृदा को अपना घर बना लेते हैं। ये अपने अवशिष्ट पदार्थों (wastes) तथा मृत अवशेषों के रूप में मृदा में कार्बनिक पदार्थ का योगदान करते हैं। बाद में यह कार्बनिक मलबा (organic debris) सरल उत्पादों में बदल जाता है। यह प्रक्रिया अपघटन (decomposition) कहलाती है। जो कई प्रकार के सूक्ष्मजीवों जैसे जीवाणु (bacteria) कवक, आदि के कारण होती है। ये सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थों को कई यौगिकों (compounds) जैसे पालीसैकेराइड, प्रोटीन, वसा (fats), लिग्निन (lignin), मोम (wax), रेजिन (resin) आदि में बदल देते हैं। बाद में ये यौगिक भी सरल उत्पादों जैसे कार्बन डाइआक्साइड, जल और खनिजों में बदल जाते हैं। बाद वाली प्रक्रिया को खनिजीभवन कहा जाता है। खनिजीभवन के पश्चात अपूर्ण रूप से विघटित जो अवशिष्ट पदार्थ बच जाता है उसे ह्यूमस (humus) कहते हैं और ह्यूमस के बनने की प्रक्रिया को ह्यूमसभवन कहते हैं। ह्यूमस एक अक्रिस्टलीय (amorphous) कोलॉइडी और गहरे रंग का पदार्थ है जो कई प्रकार की मृदाओं में पाया जाता है। ह्यूमस खनिज पोषकों का महत्वपूर्ण स्रोत है। किसी भी भूमि की उर्वरता आम तौर पर उसमें मौजूद ह्यूमस की मात्रा पर निर्भर करती है। यह अधिकांश मृदा जीवों के लिए भोजन का स्रोत है। ह्यूमस कार्बनिक पदार्थ मुख्यतः सैलुलोस और लिग्निन का बना होता है और मिट्टी में विघटन की विभिन्न अवस्थाओं में यह प्रोटीन के साथ मिला होता है। कार्बनिक पदार्थ मृत जड़ों, पौधों, प्राणियों और मृदावासी अन्य जीवों के अवशेषों के बने होते हैं। नाइट्रोजनी कार्बनिक यौगिकों पर कई प्रकार के जीवाणु और कवक कार्य करते हैं तथा अंत में नाइट्रेटों (nitrates) में बदल जाते हैं, जो पौधों के द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। ह्यूमस महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मृदा के कणों को ढीला कर देती है जिससे कि वायु का इसमें आसानी से आना-जाना हो सके। अपनी कोलॉइडी प्रकृति के कारण इसमें जल को सोखने तथा उसे धारण करने की क्षमता होती है। यह मिट्टी को काफी अच्छी श्रेणी का बना देता है।

4.4 मृदा के प्रकार

पूर्व भाग में आप पढ़ चुके हैं कि मिट्टी का बनना जटिल प्रक्रिया है, जिसमें कई चरण होते हैं। आप यह भी पढ़ चुके हैं कि खनिज पदार्थ जनक शैलों के अपक्षय से उत्पन्न होता है। इस भाग में आप जनक शैल से खनिज पदार्थ की उत्पत्ति पर आधारित विभिन्न प्रकार की मृदा के बारे में अध्ययन करेंगे।

4.4.1 अवशिष्ट मृदा

अवशिष्ट मृदा (residual soil) का निर्माण उसी स्थान पर होता है जहां कि जनक शैल का अपक्षय होता है यानि नीचे पड़े हुए शैल से मृदा का निर्माण स्व स्थाने (in situ) होता है। इन्हें स्थानबद्ध मृदा (sedentary soil) भी कहते हैं। इनमें सतही स्तर काफी अपक्षीण होते हैं, लेकिन बढ़ती हुई गहराई के साथ (या ज्यों-ज्यों नीचे की ओर जाएं) अपक्षय का अंश कम होता जाता है और शैल खंड धीरे-धीरे बड़े होते जाते हैं और रासायनिक दृष्टि से अधिकांशतः अपरिवर्तित रहते हैं तथा अंत में नीचे पड़े हुए जनक शैल के साथ मिल जाते हैं।

भारतवर्ष में मुख्य अवशिष्ट मृदा को निम्न किस्में हैं। विंध्य पर्वत श्रेणी तथा इसके दक्षिण में प्रायद्वीपिय भारत के अधिकांश भागों में पाई जाने वाली **लाल मिट्टी** तथा दक्षिण पश्चिम भारत की **काली मिट्टी**। लाल मिट्टी में कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और नाइट्रोजन की कमी होती है और इनका लाल रंग आयरन पेरोक्साइड की उपस्थिति के कारण होता है। काली मिट्टी को काली कपास मिट्टी भी कहते हैं, जिसमें मृत्तिका की अधिकता होती है। इनमें पोटाश कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा लोह की अच्छी मात्रा होती है। काली मिट्टी कपास की खेती के लिए उपयुक्त है। ग्रीष्म ऋतु में काफी चौड़े तथा गहरे दरार पड़ जाना इस प्रकार की मृदा की पहचान है।

4.4.2 वाहित मृदा

वाहित मृदाओं (transported soils) का निर्माण अपक्षीण पदार्थ से होता है जो वहकर अपनी उत्पत्ति के स्थान से दूर जमा हो जाता है। वहन-कारक की प्रकृति के अनुसार वाहित मृदा के प्रकार इस प्रकार है :

i) मिश्रोढ़ (colluvial)

ii) जलोढ़ (alluvial)

iii) हिमानी (glacial)

iv) वातोढ़ (aeolian)

i) मिश्रोढ़ : ऐसी मिट्टी का निर्माण गुरुत्वाकर्षण के कारण होता है। समय-समय पर खड़ी चट्टानों से या उनकी सीधी ढालों से शैल-खंड गिरकर नीचे जमा होते रहते हैं। ये पदार्थ काफी खुरदरे तथा शैलों के बड़े-बड़े खंडों के रूप में होते हैं और उनकी सतह खड़ी तथा असंतुलित होती है। अपक्षीण शैल पदार्थों के गिरने का अन्य कारण भूस्खलन (landslides) है। ये आमतौर पर भारी वर्षा के कारण या भूकंप के फलस्वरूप होते हैं, जिनकी वजह से शैल पदार्थ खड़ी ढाल पर नीचे लुढ़कने लगते हैं। मिश्रोढ़ मृदा बिना स्तर विन्यास (stratification) के होती है और इनमें मृदा कण तथा शैल खंड बेतरतीब ढंग से पडे रहते हैं।

ii) जलोढ़ : इस श्रेणी के पदार्थ बहते हुए जल द्वारा **बाढ़ग्रस्त मैदानों (flood plains), नदी के कगारों (terraces), डेल्टा और जलोढ़ पंख (alluvial fans)** के रूप में जमा होते हैं। इस प्रकार से एकत्रित पदार्थों के दो विशिष्ट अभिलक्षण हैं, जिनसे वे आम तौर पर आसानी से पहचाने जा सकते हैं। पहला, प्रत्येक कण बहते हुए जल के प्रभाव से गोल और चिकना हो जाता है। दूसरा इनके स्तर प्रायः स्पष्ट होते हैं क्योंकि प्रत्येक स्तर में विशेष क्षेत्र (particular range) या आकार वर्ग (size classes) के कण होते हैं जो बहा ले जाने वाली जलधारा की गति पर निर्भर करते हैं। खुरदरे पदार्थ तेज जलधारा द्वारा इकट्ठे किए जाते हैं, जबकि महीन या बारीक कण अपेक्षाकृत शांत जल द्वारा।

इस प्रकार की मृदा नदी और मंद गति से बहने वाली जलधारा के किनारे पाई जाती है। पहले ये निक्षेप (deposits) इतने नीचे होते हैं कि ये उच्चतम ज्वार (high-water) अवस्थाओं से प्रायः बाढ़ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में इनमें बारीक कणों की मात्रा में वृद्धि होती रहती है, खास कर जबकि उनमें पेड़ पौधे काफी तादाद में होते हैं। विकास की अवस्था में इन्हें बाढ़ग्रस्त मैदान कहते हैं। जैसे ही जलधारा (stream) अपनी नाली (channel) को गहरा करती जाती है, कछार उच्चतम ज्वार की पहुंच से ऊपर या बाहर रह जाता है और यह कगार (terrace) कहलाता है। बड़ी-बड़ी धाराओं के किनारे प्रायः टैरेस वर्तमान जलस्तर से काफी ऊंचाई पर होता है।

जहां पर जलधाराएं झील या समुद्र में प्रवेश करती हैं (यानि नदी के मुहाने पर) वहां गाद (silt) और मृत्तिका (clay) का निक्षेप, जो शांत जल के किनारे जमा होता है, डेल्टा बनाता है। यह आम तौर पर तब तक बढ़ता जाता है, जब तक कि नदी के मुहाने से आगे तक न फैल जाए। पश्चिम बंगाल और बंगला देश का सुंदरवन इस प्रकार के डेल्टा का उदाहरण है जहां मैंग्रोव (mangrove) प्रकार की वनस्पति पाई जाती है।

जलोढ़ फैन (alluvial fan) का निर्माण जहां पर नदी उच्च भूमि (uplands) से उतरती है वहां होता है और जैसे ही जलधारा निचले स्तर पर आती है कभी-कभी प्रवणता (gradient) में अचानक परिवर्तन होता है। इससे अवसाद (sediment) का निक्षेपण होता है तथा जलोढ़ फैन बन जाते हैं। अपनी अवस्थिति और मलवे के लक्षण की वजह से वे डेल्टा से भिन्न होते हैं। पंख पदार्थ आम तौर पर बजरी (gravel) और पथरीला (stony) होता है और इनसे जल अच्छी तरह से निष्कासित हो सकता है।

वाहित मृदाओं में गंगा-सिंधु के मैदान की जलोढ़ मृदा काफी उर्वर है और कई हजार वर्षों से इसमें खेती होती जा रही है। गंगा सिंधु मैदान की जलोढ़ मृदाओं का जनक पदार्थ वास्तव में हिमालय पर्वत शृंखला में है। पर्वतीय और पहाड़ी प्रक्षाल (washes) काफी तादाद में अवसाद अंशदान करते हैं। यह अवसाद नदियों द्वारा काफी मात्रा में लाए जाते हैं और मैदानी भागों में जमा होते रहते हैं। अधिकांश जलोढ़ मृदा में फसल की सघन खेती की जाती है।

iii) हिमानी मृदा : ऐसी मृदा का निर्माण वर्फ और तुहिन की घर्षण-क्रिया के कारण होता है। गतिशील, भारी वर्फ-चट्टान और हिमनदी (glacier) अपने साथ-साथ काफी मात्रा में असंपिंडित (unsolidated) सतही पदार्थों को अपने साथ लिए हुए चलते हैं। इस प्रकार, अपघर्षक क्रिया (abrasive action) से कठोर शैल-खंडों के तीक्ष्ण कोने और किनारे चिकने हो जाते हैं। हिमानी मृदा देहरादून के इलाके और कश्मीर के कुछ भागों में पाई जाती है।

iv) वातोढ़ मृदा : वायु-वाहित (यानि वायु द्वारा ले जाई जाने वाली) शैल-पदार्थों से इस प्रकार की मृदा का निर्माण होता है। इसे टिब्बा (dunes) और लोएस (loess) में विभाजित किया जा सकता है।

टिब्बे तीन प्रकार की परिस्थितियों में पाए जाते हैं। प्रथमतः ये समुद्रों और झीलों आदि के किनारे हो सकते हैं। यहां जल धाराएं भूमि का अपरदन (erosion) करती हैं और अपरदन के फलस्वरूप बने रेत-कणों को खाड़ी तटों पर जमा करती हैं और फिर वायु इन कणों को उड़ा कर भूमि पर ले आती है। दूसरे, नदी-घाटियों के किनारे टिब्बे बनते हैं जहां बाढ़ का पानी बाढ़ग्रस्त मैदानों पर रेत जमा करता है। सूखने पर यह रेत हवा के द्वारा उड़ जाती है। तीसरे, सूखे क्षेत्रों में रेतीले पत्थर (sandstone) और अन्य शैलों के अपक्षय से रेत का निर्माण होता है और जो विरल वनस्पति (sparse vegetation) के कारण आसानी से उड़ जाती है। टिब्बा रेत के बारे में एक रोचक बात यह है कि यह समरूप आकार प्रकार (uniform size and composition) के कणों का बना होता है। बारीक कणों को तो और भी दूर उड़ा लिया जाता है, जबकि बजरी आदि जैसे भारी कण उसी स्थान पर रह जाते हैं। कृषि के लिए टिब्बा मृदा अधिक उपयोगी नहीं होती। इस प्रकार की मृदाएं आम तौर पर राजस्थान, दक्षिण-पश्चिम पंजाब और गुजरात के कुछ भागों में पाई जाती हैं।

लोएस मृदा काफी महीन असंपिंडित और स्तरहीन कणों का, जिन्हें हवा उड़ा कर कुछ दूर ले जाती है, निक्षेप है। यही कारण है कि लोएस, टिब्बा-मृदा की अपेक्षा अधिक बारीक गठन वाली होती हैं। कुछ स्थानों में इन निक्षेपों की मोटाई 70 मीटर तक हो सकती है। कभी-कभी लोएस आंशिक रूप से ज्वालामुखी राख का भी बना होता है।

आप अभी-अभी विभिन्न प्रकार की मृदाओं के बारे में पढ़ चुके हैं जिनका वर्गीकरण जनक-शैल से उनकी उत्पत्ति के आधार पर किया जाता है। अब हम आपको एफ.एस.टी.-1, के उपभाग 17.2.2 (खंड 4, इकाई 17) में देखने और भारतीय उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली मृदा किस्मों को दोहराने की सलाह देंगे। इस उपभाग का अध्ययन करते समय आप चित्र संख्या 17.3 को सावधानी से देखिए और उन क्षेत्रों को नोट कीजिए जहां विशेष किस्म की मृदा पाई जाती है। इससे पहले कि आप आगे अध्ययन करें निम्नलिखित बोध प्रश्न हल कीजिए।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए कथनों में, सही शब्द (शब्दों) को लिखकर पूरा कीजिए।

i) मृदा के मुख्य संघटक हैं : .... तथा ....।

ii) शैलों का ...., उसके बाद .... और ...., मृदा के निर्माण के मुख्य चरण है।

iii) हाल ही में अपक्षीण शैल पदार्थ से निर्मित मृदा में कार्बनिक पदार्थों की .... होती है।

iv) काली मृदा में सामान्यतः .... अधिक होती है।

v) .... मृदा उसी स्थान पर बनती है जहां उनकी उत्पत्ति जनक शैल से होती है, जबकि .... मृदा जनक शैल से अपने उत्पत्ति स्थान से दूर बनती है।

4.5 मृदा गठन एवं संरचना

पिछले भाग में की गई चर्चा से आपको यह पता चल गया होगा कि मृदा मुख्यतः विभिन्न आकार के कणों, जिनकी उत्पत्ति जनक शैल पदार्थ के विघटन से हुई है, से निर्मित होती है। आज हम जिन कणों को देखते हैं उनकी उत्पत्ति संभवतः आरंभिक भूवैज्ञानिक काल (geological period) में हुई होगी और वे आज भी उत्पन्न हो रहे हैं तथा पवन, जल या बर्फ जैसे कारकों द्वारा काफी दूर-दूर तक जाते रहते हैं।

इस भाग में हम विविध प्रकार के गठन वर्गों और मृदा की संरचना की चर्चा करेंगे। मृदा-गठन का अर्थ इसकी बनावट में मृदा के सापेक्षिक कण आकार (comparative particle size) से है। मृदा का कण आकार संघन (composition) जानने के लिए यह देखा जाता है कि इसके प्रत्येक अंश में कितने प्रतिशत (भार में) खनिज पदार्थ हैं। मृदा के किसी दिए हुए नमूने में विभिन्न आकार के कण अलग-अलग अनुपातों में पाये जाते हैं। उनके आकार (व्यास में) के आधार पर मृदा विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने विभिन्न कण आकार वर्गों (particle size composition) का जो विशिष्ट नामकरण किया है, वह इस प्रकार हैं।

तालिका 1
आकार (व्यास) पर आधारित मृदा कणों का वर्गीकरण

क्र.स.	कण का प्रकार	आकार (व्यास मिलीमीटर में)
1	मृत्तिका (कोलॉइड) (clay colloids)	0.002 से कम
2	गाद (silt)	0.002 - 0.02
3	महीन रेत (fine sand)	0.02 - 0.20
4	मोटी रेत (coarse sand)	0.20 - 2.0
5	पत्थर और बजरी (stone and gravel)	2.0 और अधिक

आपने तालिका 1, श्रेणी-1 में अभी देखा है कि 0.002 मिलीमीटर से छोटे कणों को कोलॉइड वर्ग में रखा जाता है। ये मृदा कण यदि जल में मिलाने पर शीघ्रता से नीचे नहीं बैठते तो वे कोलॉइडी घोल या सॉल, (sol) बनाते हैं। यदि वे कुछ ही घंटों में जल में नीचे बैठ जाते हैं तो वे निलंबन (suspension) बनाते हैं। मृदा के मृत्तिका अंश में मौजूद खनिज कोलॉइड भौतिक-रासायनिक रूप से सक्रिय होते हैं।

आप पढ़ चुके हैं कि आकार के अनुसार मृदा कणों को पांच श्रेणियों में रखा जाता है। किसी एक प्रकार की मृदा में सिर्फ एक ही प्रकार के कण मौजूद हों, यह आवश्यक नहीं है यानि इसमें इन श्रेणियों में से किसी के भी कण अलग-अलग मात्रा में हो सकते हैं। गाद, मृतिका और रेत, जो मृदा में होते हैं, के अनुसार मृदा को कई वर्गों में जैसे रेतीला दुमट (sandy loam), मृत्तिका दुमट (clay loam), मृत्तिका (clay) आदि (देखिए चित्र 4.1) में बांटा जा सकता है।

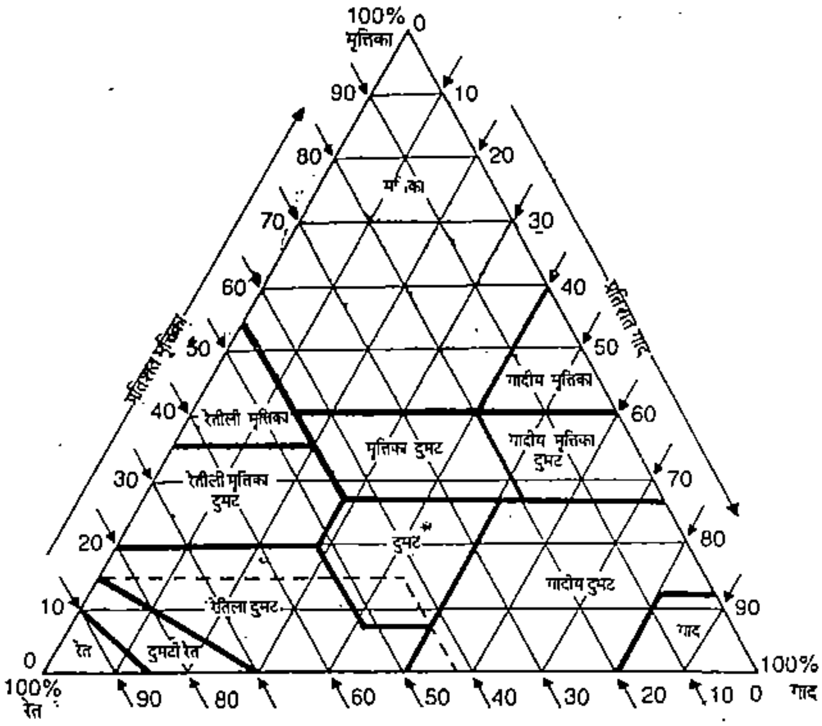

चित्र 4.1 : मृदा गठन त्रिभुज। इस त्रिभुज से मृदा के गठन के प्रकार का कैसे पता चलता है, यह दर्शाने के लिए मान लीजिए कि मृदा के एक नमूने का विश्लेषण किया गया, और यह देखा गया कि इसमें 47 प्रतिशत रेत, 15 प्रतिशत मृत्तिका और 40 प्रतिशत गाद है। त्रिभुज पर 47 प्रतिशत मान रेत अक्ष (तल) पर रखिए और तीर द्वारा दिखाई गई दिशा में रेखाओं के समांतरण एक रेखा खींचिए। फिर या तो मृत्तिका के लिए, प्रतिशत मान मृत्तिका अक्ष (त्रिभुज के बायीं ओर) या 40 प्रतिशत गाद अक्ष पर, (त्रिभुज के दांयी ओर) रखिए और दोनों अक्षों में से किसी अक्ष से होकर दूसरी रेखा उस दिशा में खींजिए जिन्हें क्रमशः तीर द्वारा दर्शाया गया है। दोनों रेखाएं त्रिभुज के दुमट क्षेत्र में एक-दूसरे को काटती हैं और इस प्रकार मृदा के इस नमूने को दुमट वर्ग में रखा गया है। (दुमट प्रकार की मृदा रेत, गाद और मृत्तिका कणों का मिश्रण है। जिस दुमट में रेत की मात्रा अधिक होती है उसे रेत-दुमट वर्ग में रखा जाता है और इसी प्रकार गाद दुमट, गाद मृत्तिका दुमट और मृत्तिका दुमट अन्य दुमटीय वर्ग हैं।)

जैसा कि आप ऊपर देख चुके हैं, मृदा का गठन, वर्ग त्रिभुज आरेख के अनुसार किया जा सकता है। इसमें रेत, गाद और मृत्तिका के सभी संभावित मिश्रणों को बारह प्रमुख भागों में बांटा गया है। कोई भी मृदा किस वर्ग की है, मोटे तौर पर इसकी जांच खेत में मृदा को देखकर की जा सकती है। परन्तु वर्ग का सही निर्धारण, यांत्रिक विश्लेषण (mechanical analysis) द्वारा ही किया जाता है। मृदा अंश का यांत्रिक विश्लेषण द्वारा अध्ययन करने से तथा यह जान करके कि किस समूह के कणों की मात्रा अधिक है मृदा को एक खास गठन वर्ग में रखा जाता है। अनुभवी क्षेत्र सर्वेक्षक (surveyor) गीली मृदा को अपनी अंगुलियों से छूकर ही बता सकता है कि यह किस वर्ग की है।

गठन शब्द से तात्पर्य मृदा में रेत, गाद और मृत्तिका के अलग-अलग अनुपातों से है, लेकिन किसी भी मिट्टी में मृदा कणों की व्यवस्था या इनके समूहन (aggregation) की स्थिति से मृदा की संरचना (soil structure) का बोध होता है। मिश्रण रूप में रेत, गाद और मृत्तिका का समूहन निम्न प्रकार से हो सकता है :

i) दानेदार (granular)

ii) आकर्ण (crumb)

iii) पट्टिकित (platy)

iv) खंडी (blocky)

v) उपकोणीत खंडी (subangular blocky)

vi) प्रिज्मीय (prismatic) और

vii) स्तंभाकार (columnar) (देखिए चित्र 4.2)।

क्र.सं.	संरचना प्रकार	आरेखीय प्रकार	समूह-वर्णन
i	दानेदार (Granular)		अपेक्षाकृत अछिद्री छोटे और गोलाभ पेड्स,(peds) निकटवर्ती समूहों में फिट न होने वाले
ii	भुरभुरा (Crumb)		अपेक्षाकृत छिद्रदार, छोटे और गोलाभ पेड्स, निकटवर्ती समूहों में फिट न होने वाले
iii	पट्टकित (Platy)		प्लेट के रूप में पेड्स — प्रायः एक दूसरे पर आच्छादित
iv	खंडी (Blocky)	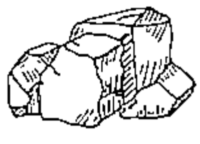	खंड जैसे पेड्स जो अन्य पेड्स से इस प्रकार घिरे होते हैं कि इनके तेज कोणीय फलक पेड्स के लिए ढाल बनाते हैं। इनके समूह प्रायः छोटे-छोटे खंडीय पेड्स में टूट जाते हैं।
v	उपकोणीत खंडी (Subangular Blocky)		अन्य समूहों से घिरे खंड-सदृश्य पेड्स जिनके उपकोणीय फलक दूसरे पेड्स के लिए ढाल का कार्य करते हैं।
vi	प्रिज्मीय (Prismatic)	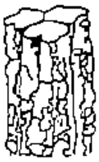	बिना गोल सिरों वाले स्तंभ-सदृश्य पेड्स अन्य प्रिज्मीय समूह पेड के लिए ढाल बनाते हैं। कुछ प्रिज्मीय पेड्स छोटे-छोटे खंडों में टूट जाते हैं।
vii	स्तंभाकार (Columnar)		स्तंभ की तरह के गोल सिरों वाले पेड्स। ये पार्श्व भाग में अन्य स्तंभाकार समूहों से घिरे होते हैं, जो पेड्स के लिए ढाल बनाते हैं।

चित्र 4.2 : विविध प्रकार की मृदा संरचना।

मृदा कणों का समूहन कोलाइडी अंशों, कार्बनिक मूल के पदार्थों और जल अणुओं की काफी पतली फिल्म के कारण होता है। मुद्रा के समूहों को पेड्स (peds) कहते हैं। मिट्टी की संरचना का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे मृदा के बहुत सारे भौतिक गुण जैसे वातन (aeration), जल धारण क्षमता (water holding capacity) आदि प्रभावित होते हैं।

4.6 मृदा परिच्छेदिका

अब तक आप पढ़ चुके हैं कि शैलों के अपक्षय से मृदा का निर्माण होता है अपक्षय प्रक्रिया की चर्चा भाग 4.3 में की जा चुकी है। लम्बे समय तक मृदा के बनते रहने से इसके उदग्र स्तरण (vertical stratification) या एक दूसरे के ऊपर क्षैतिज (horizontal) स्तर बनते रहते हैं। ये स्तर प्रगामी ढंग से परिपक्व होते रहते हैं। मृदा के एक उदग्र खंड ऊपरी सतह से लेकर जनक शैल तक विभिन्न मोटाई के क्षैतिज स्तर देखें जा सकते हैं। इन्न ये क्षैतिज

स्तर एक-दूसरे से अपने रंग, गठन, संरचना और रासायनिक गुणों में स्पष्टतया भिन्न होते हैं। मृदा का ऐसा उदग्र खंड जिसमें ऊपर परिपक्व मृदा और सबसे नीचे आधार शिला (bedrock) होती है मृदा परिच्छेदिका (soil profile) कहलाता है।

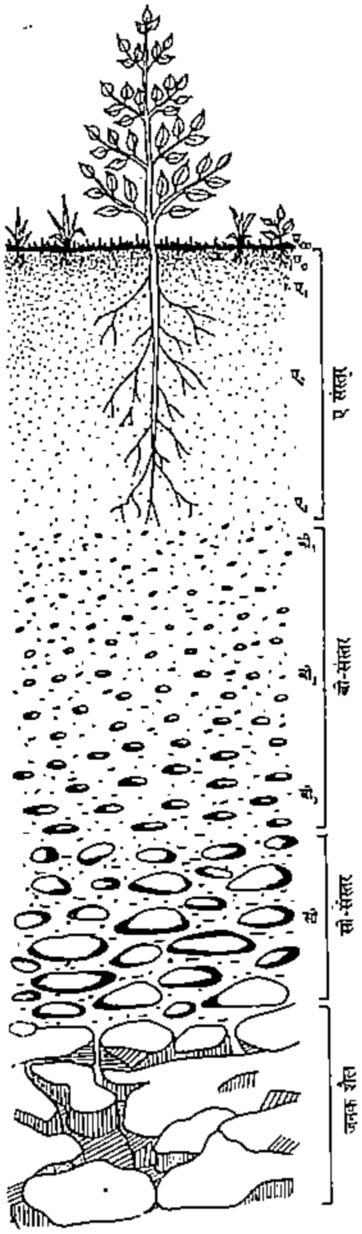

चित्र 4.3 : मृदा परिच्छेदिका। विविध संस्तर मृदा निर्माण के चरणों को दर्शाते हैं।

मृदा परिच्छेदिका में क्षैतिज स्तरों का नामकरण शिखर से तल तक ए, बी और सी के रूप में किया जाता है (देखिए चित्र 4.3)। परिपक्व मृदा यानि सबसे ऊपर स्थित मृदा को ए-संस्तर (horizon) और उससे नीचे वाली परतें यानि उप-मृदा (sub-soil) को बी-संस्तर कहा जाता है। जनक शैल का अल्प खंडित भाग सी-संस्तर कहलाता है। ए-संस्तर की ऊपरी सतह उर्वर होती है तथा इसमें कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं। ये पदार्थ विघटन और अपघटन की विभिन्न अवस्थाओं में होते हैं। सबसे ऊपरी स्तर में अबद्ध रूप में पेड़ों से गिरे हुए पत्ते, टहनियां और कार्बनिक मलबा या तो ज्यों का त्यों या अधिकांशतः अपघटित रूप में होता है और इसे ए $_{00}$ (A_{00}) स्तर कहा जाता है। इसके नीचे जिसमें आंशिकतः अपघटित कार्बनिक पदार्थ को ए $_0$ (A_0) स्तर होता है जहां कार्बनिक पदार्थ को बनाने वाली चीजों की पहचान नहीं की जा सकती। पूर्णतः अपघटित कार्बनिक पदार्थ यानि ह्यूमस खनिज घटकों के साथ मिलकर मृदा को उर्वर बना देता है। ये खनिज घटक तथा ह्यूमस आपस में मिलकर मृदा सम्मुचय (soil aggregates) या आकण (crumbs) बनाते हैं। इस स्तर को ए$_1$ (A_1) कहा जाता है और यह गहरे रंग का होता है। ए$_2$ (A_2) और ए$_3$ (A_3) स्तरों में ह्यूमस की मात्रा कम होती जाती है और ये ए$_1$ की अपेक्षा कम गहरे रंग के होते हैं। उष्णकटिबंधीय (tropical) क्षेत्रों में पाये जाने वाली मृदा जहां कि गर्म तथा नम वातावरण होता है मृदा ए-संस्तर का विभिन्न उप-संस्तरों में विभेद स्पष्ट नहीं होता। क्योंकि यहां मृदा में जैव क्रिया काफी तेज होती है जिससे ह्यूमस बनने और खनिजीभवन जल्दी होते हैं। बी-संस्तर को भी बी$_1$ (B_1), बी$_2$ (B_2) और बी$_3$ (B_3) में विभाजित किया गया है और इनमें ऊपर वाला उप संस्तर नीचे की अपेक्षा अधिक परिपक्व यानि तैयार होता है। बी$_1$ संस्तर ए$_3$ (A_3) के सदृश्य है लेकिन इसमें कुछ दानेदार संरचनाएं होती हैं, बी$_2$ और बी$_3$ संस्तरों में मृदा खंड होते हैं जो प्रायः लोह और अल्यूमीनियम के मेल से बने होते हैं। सी-संस्तर अपक्षीयत जनक पदार्थ का होता है जो अभी तक वास्तविक मृदा में परिवर्तित नहीं हुआ है।

बोध प्रश्न 2

i) मृदा गठन और मृदा संरचना में क्या अंतर है?

....

....

....

ii) गाद दुमट, गठन में मृत्तिका दुमट से अधिक सूक्ष्म होता है। सत्य या असत्य? ( )

iii) ए-संस्तर में :

क) कार्बनिक पदार्थ अपघटन की विभिन्न अवस्थाओं में देखे जाते हैं। ( )

ख) सूक्ष्म जैविक (microbial) सक्रियता कम होती है। ( )

ग) अपक्षीण पदार्थ परिपक्व मृदा में परिवर्तित नहीं होते हैं। ( )

घ) सी-संस्तर की अपेक्षा मृदा का रंग हल्का होता है। ( )

(सही उत्तर पर "✓" का चिह्न लगायें।)

4.7 भौतिक गुण

मनुष्य मृदा को जिस-जिस काम में लाता है उसके लिए मिट्टी की उपयुक्तता उसके भौतिक गुणों पर बहुत निर्भर है। गुण जैसा कि नमी के भंडारन की क्षमता, वातन और पोषक तत्वों का धारण जैसे गुण मृदा की भौतिक अवस्थाओं से घनिष्ट रूप से जुड़े हुए हैं। यह समझना जरूरी है कि मृदा के भौतिक गुणों का उसकी उर्वरता पर काफी असर पड़ता है और किस हद तक मानव उपयोग इन गुणों को बदल सकता है। मृदा के भौतिक गुण न केवल उस समय महत्वपूर्ण हैं जबकि इसका उपयोग पौधे की वृद्धि के लिए माध्यम के रूप में किया जाता है बल्कि उस समय भी जबकि मृदा का उपयोग महामार्ग, बांध बनाने, भवनों की नीव रखने और साथ ही साथ ईंट और खपरैल बनाने में संरचनात्मक पदार्थ के रूप में किया जाता है।

4.7.1 हल्की एवं भारी मृदा

मृदा में गाद और विशेषकर मृत्तिका के होने से इसका गठन बारीक हो जाता है तथा जल और वायु का आना-जाना मंद हो जाता है। इस प्रकार की मृदा गीली होने पर चिपचिपी होकर काफी सुघट्य (plastic) हो जाती है। गीली होने और सूखने पर फैलने और सिकुड़ने की क्षमता भी प्रायः काफी हो जाती है। मृत्तिकीय और गादीय मृदा में जल को सोखने की क्षमता भी अधिक होती है। खेती या कृषकों की भाषा में ऐसी चिकनी मिट्टी को भारी मृदा और मोटी (coarse) रेतीली तथा बजरी मिट्टी को हल्की मृदा कहते हैं। यह उनकी मात्रा प्रति इकाई आयतन नहीं दर्शाता बल्कि यह उनकी खेती के औजारों को मिट्टी में चलाने के लिए आवश्यक शक्ति को बताता है। यह मात्रा रेतीली मृदा के लिये अधिक

है और मृत्तिका के लिये कम। अतः यह गुण मृदा कणों के बीच संसंजन (cohesion) का माप है। यद्यपि यह मिट्टी में कण आकार वितरण पर निर्भर है परन्तु यह विद्यमान कणों के प्रकार भी निर्भर करता है।

4.7.2 मृदा जल

मृदा जल का संबंध बहुत महत्वपूर्ण है। पहले तो बढ़ते हुए पौधों की वाष्पन और वाष्पोत्सर्जन (evaporation and transpiration) आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी मात्रा में जल संभरण जरूरी है। इसके अलावा जब पौधों को आवश्यकता हो तब इस जल का होना जरूरी है और इसका अधिकांश भाग मृदा से मिलना चाहिए। दूसरे, जल विलायक का कार्य करता है जो विलीन पोषक तत्वों के साथ मिलकर मृदा घोल (soil solution) बनाता है।

मृदा जल के प्रकार

गुरुत्वीय जल या भूमिगत जल (Gravitational water or ground water) : भारी वर्षा या सिंचाई के बाद जल का अधिकांश भाग बह जाता है या जमीन के नीचे चला जाता है। यह गुरुत्व जल कहलाता है। अधिकांश मृदा के लिए इसका बहुत कम महत्व है क्योंकि यह गुरुत्व के प्रभाव के कारण अपेक्षाकृत तेजी से जमीन के नीचे चला जाता है।

कोशिका जल (Capillary water) : जल का कुछ भाग गुरुत्व के खिंचाव के विपरीत महीन मृदा कणों के बीच सूक्ष्म अंतरालों में, कणों को घेरे हुए पतली फिल्म के रूप में, और जहां मृदा कण एक दूसरे से सटे रहते हैं, वहां मोटी फिल्म के रूप में रह जाता है तथा जल का एक भाग मृदा कोलॉइडों द्वारा शोषित हो जाता है। गुरुत्व के नीचे की ओर खिंचाव के कारण इन फिल्मों की मोटाई न्यूनतम हो जाती है। मृदा नमी का यह रूप ऐसी हालत में रहता है कि तरल रूप में किसी भी दिशा मे इसकी गति बहुत सीमित होने के कारण लगभग नगण्य होती है।

आर्द्रताग्राही जल (Hygroscopic water) : वायु-शुष्क मृदा में भी जल होता है। अगर हम किसी बंद बर्तन में सूखी मिट्टी को गर्म करें तो इसके ढक्कन पर जल की बूंदों को देखा जा सकता है। नमी की इस थोड़ी सी मात्रा को आर्द्रताग्राही जल कहा जाता है। मृदा कोलॉइड इसे इतनी दृढ़ता से पकड़े रहता है कि यह जल पौधों को नहीं मिल पाता।

मृदा नमी का धारण (Retention of soil moisture) : मृदा में जल का जाना, नमी के भंडारन की क्षमता और पौधों के लिए नमी की उपलब्धता, ये सभी मृदा गुणों पर निर्भर करते हैं। इनमें से प्रत्येक कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मृदा छिद्रों के आकार एवं वितरण से और नमी (moisture) के प्रति कणों के लगाव (affinity) से जुड़ा होता है। इस पहलू को साफ-साफ समझने के लिए अब हम कुछ संकल्पनाओं की चर्चा करेंगे।

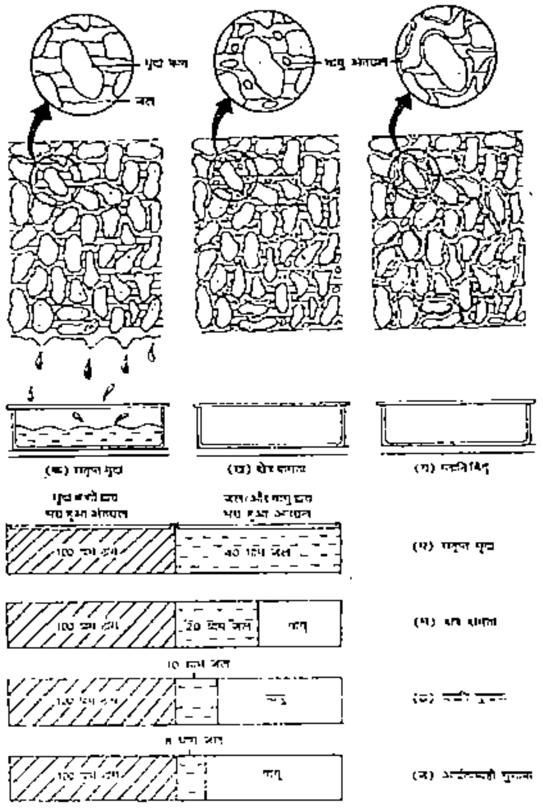

चित्र 4.4 : दानेदार, गादीय दुम्ट प्रकार की मृदा का नमूना, मृदा कणों, वायु तथा विभिन्न नमी स्तरों के आयतनों को दर्शाते हुये : चित्र (क) और (घ) जल से पूर्णतः संतृप्त मृदा (Saturated soil) को दर्शाते हैं : चित्र (ख) और (च) में सूक्ष्म छिद्रों से जल बाहर निकलने की अवस्था दिखाई गई है। इस स्थिति में मृदा क्षेत्र क्षमता (Field capacity) पर होती है। पौधे म्लानि गुणांक (Wilting coefficient) (ग और छ) पर पहुंचने तक तेजी से मृदा से जल निकालेंगे। वैसे तो मृदा में अभी प्रर्याप्त नमी है (देखिए चित्र छ)। 'ज' में आर्द्रताग्राही गुणांक (Hygroscopic coefficient) के प्रति नमी की मात्रा में और भी कमी दिखाई गई है। इस स्थिति में ज्यादातर मृदा कोलॉइडों द्वारा जल मज़बूती से पकड़ा जाता है।

अधिकतम धारण क्षमता (Maximum retentive capacity) : आइए हम उदाहरण के तौर पर एक ऐसी मृदा का नमूना लें जो दानेदार हो और इसका गठन तथा संरचना सर्वत्र एकरूप हो। ऐसे गुणों वाली एक मृदा है गाद दुमट। भारी वर्षा और सिंचाई के बाद, जैसे-जैसे जल जमीन द्वारा सोखा जाता है वैसे-वैसे छोटे और बड़े मृदा छिद्रों में भरी वायु हटती जाती है तथा एक ऐसी स्थिति आती है जब सभी छिद्र जल से भर जाते हैं इस स्थिति में मृदा जल संतृप्त (water saturated) कहलाती है और अपनी अधिकतम धारण क्षमता पर होती है। (देखिए चित्र 4.4 घ)।

क्षेत्र क्षमता (Field capacity) : ऊपर बताई गई मृदा में यदि हम जल संभरण बंद कर दें यानि इससे और अधिक वर्षा न हो या हम सिंचाई भी बंद कर दें तो ऐसी स्थिति में कुछ समय बाद जल का कुछ भाग अधिक तेजी से नीचे चला जाएगा। एक दो दिन के बाद जल का तेजी से नीचे की ओर जाना बंद हो जाएगा। इस समय हम पाते हैं कि जल बड़े छिद्रों (macropores) से बाहर निकल जाता है और इसका स्थान वायु ले लेती है (देखिए चित्र 4.4, ख, च)। छोटे छिद्रों या सूक्ष्म रंध्र (micropores) अभी भी जल से भरे रहते हैं और यह मुख्य स्रोत है जहां से पौधे की जड़ें जल का शोषण करती हैं। अतः क्षेत्र क्षमता का संबंध भूमि से गुरुत्व जल के बाहर निकल जाने के बाद जो जल बच जाता है, उससे है।

ग्लानि गुणांक (Wilting coefficient) : पौधे मृदा से जल का शोषण कर उसमें नमी की मात्रा कम कर देते हैं। क्योंकि पौधों की पत्तियों से जल वाष्पोत्सर्जन (transpiration) द्वारा वायुमंडल में चला जाता है। मृदा में जल की कमी का दूसरा कारण पानी का मृदा सतह से वाष्पीकरण है। वाष्पोत्सर्जन और वाष्पन दोनों क्रियाओं से जल का गायब होना साथ-साथ होता रहता है। मृदा से जल के तेजी से कमी होने के लिए ये दोनों क्रियाएं ही उत्तरदायी हैं। अगर इस जल की पुनः पूर्ति न की जाए तो मिट्टी सूख जाती है (देखिए चित्र 4.4 ग, छ) और पौधों में नमी की कमी से होने वाले प्रभाव नजर आने लगते हैं। दिन में तापमान अधिक हो या हवा अथवा दोनों के कारण पौधे मुरझाने लगते हैं, लेकिन रात में यह पुनः स्फीत (turgid) हो जाते हैं। लेकिन यदि मृदा में बाहर से जल न दें तो आखिर में ऐसा समय आ जाता है जब पौधे दिन और रात में मुरझाये ही रहते हैं। वैसे तो पौधे इस समय मरे हुए नहीं होते हैं, परन्तु जल न मिलने के कारण मर भी सकते हैं। ऐसी स्थिति में यदि मृदा की जांच की जाए तो पता चलता है कि इसमें अभी भी नमी की काफी मात्रा है और मृदा में नमी की इस शेष मात्रा को ग्लानि गुणांक (मुरझान गुणांक wilting coefficient) कहते हैं (देखिए चित्र 4.4 ग, छ)। मृदा का यह शेष जल सूक्ष्म छिद्रों में और प्रत्येक कण के चारों ओर पाया जाता है। इसलिए जल की काफी मात्रा मृदा में समय-समय विद्यमान होते हुए भी पौधों को पानी नहीं मिल पाता है (चित्र 4.4 छ) और यही कारण है कि मृदा में समय-समय जल देते रहना चाहिए ताकि पौधों को पर्याप्त जल मिल सके।

आर्द्रताग्राही गुणांक (Hygroscopic coefficient) : मृदा-नमी संबंधों की अगर अधिक विस्तृत जानकारी के लिए मृदा का एक नमूना लेकर 24 घंटे, 110°C, पर अवन-शुष्क कर लीजिए। इस मृदा को यदि ऐसे वातावरण में रखा जाए जो जल वाष्प से पूर्णतः संतृप्त हो तो यह मृदा कुछ जल का अधिशोषण (adsorption) कर लेगी। यह जल मृदा कणों के इर्द-गिर्द एक पतली झिल्ली के रूप में पाया जाता है। यह जल केवल वाष्प अवस्था में ही छूट सकता है। इस समय नमी की मात्रा जो कि यूनिट भार भट्टी द्वारा अधिशोषित की जाती है उसे आर्द्रताग्राही गुणांक कहा जाता है (देखिए चित्र 4.4 ज)। जैसी की उम्मीद की जाती है, इन परिस्थितियों में जिस मृदा में कोलॉइडों की मात्रा अधिक होती है वह रेतीली मृदा की अपेक्षा अधिक जल धारण करती है।

आम तौर पर मृदा नमी, जिसका विस्तार 0 से 7 तक है, पी.एफ. (pF) में व्यक्त किया जाता है। pF कोशिका विभव (capillary potential) का लघुगणक (logarithm) है। (pF)-0 संतृप्त मृदा का द्योतक है, 2.7 क्षेत्र क्षमता का 4.2 स्थायी ग्लानि प्रतिशत का और 5.5 वायु शुष्क स्तर (air dry level) तथा 7.0 अवन-शुष्क (oven dry) अवस्था का। एक ही (pF) पर रेत की अपेक्षा मृत्तिका में नमी की वास्तविक मात्रा अधिक होती है।

उपलब्ध और अनुपलब्ध जल

आप ऊपर देख चुके हैं कि जल प्रत्यक्ष रूप से सूखी मिट्टी के नमूने में भी मौजूद रहता है (देखिए चित्र 4.4 ग)। लेकिन पौधे के लिए यह अधिक महत्व का नहीं होता क्योंकि पौधे जल के इस रूप का उपयोग नहीं कर पाते हैं। यह जल मृदा कोलॉइडों की सतह पर मजबूती से चिपका रहता है। इस प्रकार का जल अनुपलब्ध (non-available) जल कहा जाता है यानि स्थायी मुरझान (permanent wilting) के समय जो जल मृदा में होता है वह पौधों को नहीं मिल पाता है। पौधों के लिए लाभदायक जल का निर्धारण उपलब्ध (available) जल द्वारा ही किया जाता है न कि मृदा में विद्यमान कुल जल से। स्पष्ट है कि उपलब्ध जल की मात्रा विभिन्न मृदाओं में अलग-अलग होती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक रेतीली मृदा की क्षेत्र क्षमता 12 प्रतिशत है जिस में से केवल एक प्रतिशत अनुपलब्ध जल रहता है और मृदा में नमी की क्षमता यदि 35 प्रतिशत है इसमें 10 प्रतिशत अनुपलब्ध जल हो सकता है।

4.7.3 पारगम्यता

पारगम्यता (permeability), मृदा की जल या वायु को ले जाने की क्षमता है। पारगम्यता या अंतःस्पंदन (infiltration) दर की माप, किसी निश्चित अवधि में मृदा में से जल के बहाव की दर से की जाती है। इसलिए सर्वाधिक पारगम्य पदार्थ वे हैं जिनमें नमी मुक्त रूप से आ जा सके। और भी प्रकार की मृदा आम तौर से रेत की मात्रा अधिक होती है। लेकिन ज्यों-ज्यों कण का आकार छोटा होता जाता है, मृदा अपेक्षाकृत कम पारगम्य हो जाती है। मृत्तिका में जल की गति बहुत कम होती है। इसके कारण जल मृदा की सतह या इसके अंदर एकत्रित हो सकता

है और जलाक्रांति (water-logging) के कारण कई प्रकार के उत्तर प्रभाव या नुकसान हो सकते हैं। मृदा में से होकर पूरी तरह से अंतःश्रवण (percolation) कर सकने वाली जल की मात्रा, मृदा के बीच के और निचले संस्तरों, की पारगम्यता पर बहुत निर्भर करती है। जब इनमें से कोई भी अपारगम्य होता है तो ऊपर संस्तर जल्दी ही जल से संतृप्त हो जाते हैं। इससे जल बगल वाले भाग में जाने लगता है और सतह पर बहने लगता है। जहां ढाल होती है, वहां इसके फलस्वरूप अपरदन (erosion) होता है और सपाट स्थलों पर अस्थायी बाढ़ आ जाती है।

4.7.4 वातन

सुवातित (well aerated) मृदा वह है जिसमें पौधों की जड़ों और अन्य मृदा जीवों के लिए विभिन्न गैसें पर्याप्त मात्रा और उचित अनुपात में उपलब्ध हों ताकि उनकी सामान्य श्वसन क्रियाएं चल सकें। आपको यह जानना चाहिए कि मृदा में ऑक्सीजन का नवीकृत होना मृदा जीवों की उपापचय क्रियाओं के लिये अति आवश्यक है।

सुवातित मृदा के नीचे दिए गए दो महत्वपूर्ण अभिलक्षण है। पहला, वायु के आवागमन के लिए पर्याप्त अंतराल होना चाहिए। दूसरा, इन अंतरालों में पर्याप्त मात्रा और उचित अनुपात में आवश्यक गैसों के आसानी से आने-जाने के लिए काफी अवसर होना चाहिए। मृदा का वातन (aeration) महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि यह मृदा में रहने वाले अनेक जीवों की उपापचय प्रक्रियाओं (metabolic processes) की दरों को काफी प्रभावित करता है। इसलिए मृदा जीवों के बने रहने के लिये ऑक्सीजन के संभरण की पूर्ति बराबर होनी चाहिये।

मृदा वातन अच्छी तरह न होने के कारण सूक्ष्म जैवीय प्रक्रियाओं पर पड़ने वाला एक सर्वाधिक प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि कार्बनिक पदार्थ की ऑक्सीजन दर में कमी हो जाती है। आपको याद होगा कि मृदा के निर्माण में यह एक आवश्यक प्रक्रिया है। ऐसा लगता है कि दर में यह कमी कार्बन डाईऑक्साइड की अधिकता की अपेक्षा ऑक्सीजन की कमी से अधिक जुड़ी हुई है। दलदले (swampy) क्षेत्रों में पादप अवशेषों के क्षय (गलने) की दर कम होना इस बात का अच्छा उदाहरण है कि कम ऑक्सीजन किस प्रकार कार्बनिक पदार्थ के अपघटन को प्रभावित करती है।

गैसीय ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में सभी वायु जीवी उचित ढंग से कार्य करने में असमर्थ हैं। उदाहरण के लिए, नाइट्रोजन और गंधक तत्वों के ऑक्सीकरण के लिए उत्तरदायी जीवाणु वायु की कमी वाली मृदा में अपेक्षाकृत अप्रभावी होते हैं। यह बात सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरों (symbiotic nitrogen fixers) और एजोटोबैक्टर (*Azotobacter*) जैसे कुछ मुक्तजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकरों के लिए भी सही है।

अल्प वातन का कुप्रभाव उच्चतर पादपों (higher plants) पर भी निम्न ढंग से पड़ता है : पादप की वृद्धि, खास कर जड़ें काफी कम होती है। पोषक तत्वों और जल का अवशोषण (absorption) प्रायः कम हो जाता है। अल्पवातित मृदा में कुछ कार्बनिक घटक बन जाते हैं, जो पौधों के लिए विषैले (toxic) होते हैं।

4.8 रासायनिक गुण

मृदा एक गत्यात्मक तंत्र है जिसके विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाएं होती रहती हैं। इस विषमांगी तंत्र (heterogenous system) में मृदा, जल विलयन माध्यम (solution) की तरह कार्य करती है। और यह विभिन्न जटिल रासायनिक अभिक्रियाओं का भी माध्यम है। मृदा में पाये जाने वाले कोलॉइडी घटक (मृत्तिका तथा ह्यूमस) अपनी सतह पर धनायनों को जोड़ते हैं तथा इनका विनिमय करते हैं।

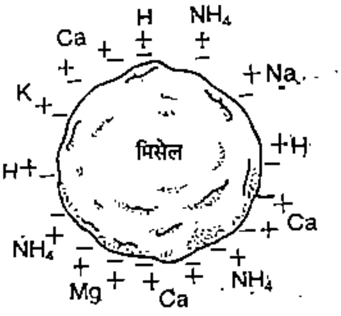

चित्र 4.5 : कोलॉइडी मिसेल में धनायन विनियम का चित्रण।

धनायन विनिमय मृदा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिक्रियाओं में से एक है। कोलॉइडी मृदा कणों, जैसे ह्यूमस और मृत्तिका में प्रायः ऋण विद्युत आवेश (electronegative charge) होता है। यह आवेश ज्यादा ऋणायनों (anions) के अधिशोषण (absorption) के फलस्वरूप या क्रिस्टल जालक (crystal lattice) में परमाणु-आवेश में असंतुलन के कारण हो सकता है। ऋण आवेश के संतुलन के लिए कण अपनी सतह पर धनायनों का अधिशोषण करते हैं (देखिए चित्र 4.5)। संतुलनकारी आयनों को विनिमय (exchangeable) धनायन कहते हैं और ये मृदा विलयन के साथ गतिक संतुलन (kinetic equilibrium) रखते हैं। ये धनायन पादप पोषक तत्व के मुख्य स्रोत हैं।

4.8.1 धनायन विनिमय क्षमता

धनायन का कोलॉइडी केन्द्रक (nucleus) या मिसेल (micelle) द्वारा अधिशोषण और मिसेल द्वारा पकड़े गए एक या अधिक आयनों का इसके साथ-साथ मुक्त होना धनायन विनिमय कहलाता है। मुख्य धनायन हैं Ca^{2+}, Mg^{2+}, K^{2+}, Na^{+} और NH_4^{+}। अन्य धनायनों की लेश मात्र (trace amounts) जैसे कि Cu^{2+}, Mn^{2+} और Zn^{2+} भी मृदा में रहती हैं। इसको हमें उदाहरण द्वारा समझना चाहिए। मान लीजिए कि मृत्तिका मिसेल की क्षमता की पूर्ति Ca^{2+} आयनों से, एक चौथाई की K^{+} आयनों से, और एक चौथाई की H^{+} आयनों से होती है तो इसकी स्थिति चित्र 4.6 की तरह होगी।

अब मान लीजिए कि कोलॉइडी पदार्थ की अभिक्रिया पोटेशियम क्लोराइड की सांद्र विलयन (strong solution) से की गई। कुछ समय के बाद, पोटेशियम क्लोराइड के आयन मिसेल पर सभी धनायनों का स्थान ले लेंगें और अब मिसेल बिल्कुल पोटेशियम संतृप्त रह जाएगा तथा अधिशोषित कैल्सियम और हाइड्रोजन क्लोराइडों के रूप में विलयन

(घोल) में रह जाएगा। चूंकि ये धनायन (यानि H^+ और Ca^{2+}) आसानी से विस्थापित या स्थानांतरित हो सकते हैं अतः इन्हें विनिमय (exchangeable) आयन कहते हैं। जिस दक्षता (efficiency) से आयन एक दूसरे का स्थान ले लेते हैं उसका निर्धारण निम्न कारकों द्वारा किया जाता है (क) सापेक्षित सांद्रता या आयनों की संख्या (ख) आयनों पर आवेशों की संख्या, और (ग) विभिन्न आयनों की गति या सक्रियता की चाल (यानि तेजी)।

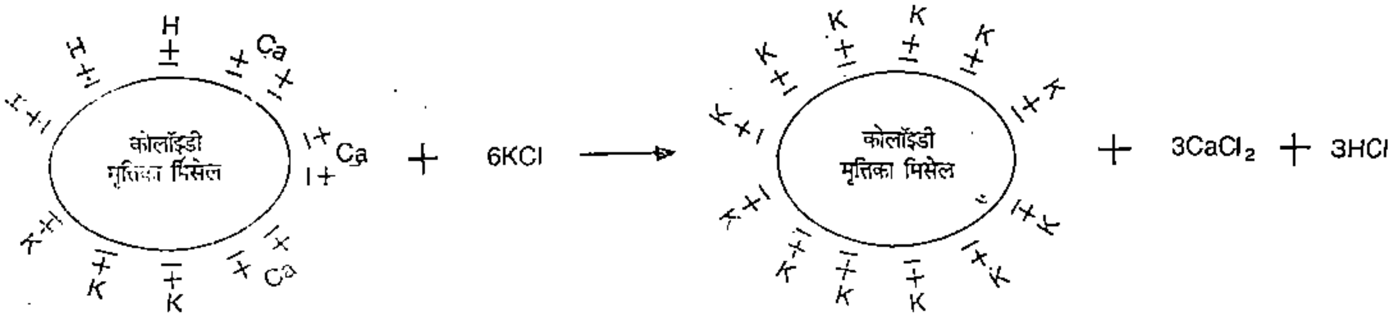

चित्र 4.6 : कोलॉइडी मिसेल में धनायन विनियम का चित्रण।

मृदा कोलॉइडों के पोषक तत्वों के अवशोषण की क्षमता का निर्धारण आसानी से किया जा सकता है। सामान्यतः जिन तरीको को अपनाया जाता है उनमें मूल अवशोषित पोषक तत्वों के स्थान पर बेरियम या अमोनियम आयन लिए जाते हैं और तब अधिशोषित बेरियम या अमोनियम की मात्रा का निर्धारण किया जाता है। धनायन विनिमय क्षमता का निधार्रण तुल्यांको (equivalents) या खासकर मृदा के प्रति 100 ग्राम (g) सहस्रांश तुल्यांक (मिली तुल्यांक milli-equivalents) के रूप में किया जाता है। मृदा की कुल धनायन विनिमय क्षमता कार्बनिक और खनिज मृदा कोलॉइडों — दोनों के विनिमय स्थलों की कुल संख्या है। अगर मृत्तिका की धनायन विनिमय क्षमता 1 m.e. (1 m.e./100g) है तो यह शुष्क मृत्तिका के प्रति 100 g के लिए एक mg हाइड्रोजन या इसके बराबर अधिशोषण करने या धारण करने की क्षमता रखती है। आपको तुल्यांक या तुल्य शब्द पर ध्यान देना चाहिए। यह बताता है कि अन्य आयन भी m.e. के रूप में अभिव्यक्त किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम कैल्शियम पर विचार करते हैं। इस तत्व का परमाणु भार, 40 है। जबकि हाइड्रोजन का परमाणु भार 1 है। प्रत्येक कैल्शियम आयन के दो आवेश हैं और यह $2H^+$ के तुल्य हैं। इसलिए एक mg हाइड्रोजन को विस्थापित करने के लिये कैल्शियम की आवश्यक मात्रा 40/2 या 20mg है। तब यह कैल्शियम के 1 m.e. का भार है। अगर किसी मृत्तिका के 100 g में कुल 250 mg कैल्शियम के अधिशोषण करने की क्षमता है तो इसकी धनायन विनिमय क्षमता 250/20 या 12.5 m.e./100 g होगी। m.e. के रूप में अभिव्यक्त करना बहुत ही प्रचलित है। धनायन विनिमय क्षमता, बहुत कम मृत्तिका या कार्बनिक पदार्थ वाले मृदा के लिए 5 से भी कम है जबकि कार्बनिक पदार्थ (organic matter) वाले मृदा के लिए यह लगभग 200 है।

मृदा के रासायनिक और भौतिक, दोनों गुणों पर इन धनायनों के संघटन (composition) का काफी प्रभाव पड़ता है। साधारण या अधिक वर्षा वाले शीतोष्ण (temperate) और ठंडे जलवायु क्षेत्र में मृदा में H^+ आयन पर्याप्त मात्रा में बनते हैं। पौधों के लिए ये अधिक लाभ के नहीं होते हैं और जब वे कोलॉइडी सम्मिश्रणों में अधिक मात्रा में होते हैं तो खासकर Ca, Mg और K जैसे महत्वपूर्ण क्षारकीय (basic) आयनों के निक्षालन (leaching) द्वारा होने वाली कमी को रोकने का कोई तरीका नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप मृदा की उर्वरता में कमी होती है। यह अवस्था आयनों के एक-दूसरे को विस्थापित करने H, Ca, Mg, K, NH_4 और Na के क्रम में, की क्षमताओं के अंतर के कारण उत्पन्न हो सकती है। जहां भी इस प्रकार के विस्थापन के लिए पर्याप्त H आयन होते हैं वहां क्षारकीय आयनों के साथ संतृप्ति डिग्री को हमेशा धनायन विनिमय द्वारा कम किया जा सकता है। एक बार विस्थापित होने पर क्षार अपवाह जल के साथ बह जाते हैं। इस प्रकार अधिशोषित क्षारकों की मात्रा के काफी कम होने पर कोलॉइडों को असंतृप्त कहा जाता है।

धनायन विनिमय क्षमता = विनिमय H + विनिमय क्षार

4.8.2 पोषक तत्वों की उपलब्धता

आप पढ़ चुके हैं कि धनायन विनिमय पौधों के लिए पोषक तत्वों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पोषक तत्वों के पौधों और सूक्ष्म जीवों के उपयोग के लिए मुक्त होने पर, धनायन विनिमय दो प्रकार से कार्य करता है। पहला, धनायन विनिमय द्वारा मुक्त पोषक तत्व मृदा विलयन में चले जाते हैं। वहां पहुँचकर वे अंत में या तो जड़ों की अवशोषक सतहों (absorptive surface) और मृदा जीवों के संपर्क में आते हैं या अपवाह (drainage) जल द्वारा बाहर निकल जाते हैं। दूसरा, अगर मूल रोमों (root hairs) और सूक्ष्मजीवों का मृदा कोलॉइडी सतहों के साथ काफी निकट संपर्क हो जाता है तो मृदा और जड़ों तथा सूक्ष्मजीवों के बीच धनायनों का विनिमय सीधे हो सकता है। इस स्थिति में मूल रोमों और सूक्ष्मजीवों की सतह पर उत्पन्न H आयन मृदा मिसेल पर अधिशोषित धनायनों के साथ विनिमय करते हैं। इनमें से कोई भी H आयन मृदा विलयन के लिए बिना मुक्त हुए भी यह कार्य करता है।

धनायन संतृप्ति (Cation Saturation) और पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण (Nutrient Absorption)

अधिशोषित पोषक तत्वों का पाया जाना हमेशा इतना सरल नहीं है जितना कि ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है। क्योंकि पौधों के लिए पोषक तत्वों के मुक्त होने की क्रिया को बढ़ाने या घटाने के लिए कई कारक सक्रिय रहते हैं। पहला, विचाराधीन पोषक तत्व धनायन वाली मृदा का धनायन विनिमय क्षमता का एक खास अनुपात होता है। उदाहरण के लिए, अगर मृदा का कैल्शियम संतृप्ति प्रतिशत अधिक है तो इस धनायन का विस्थापन (displacement) सरलता से और तेजी से होता है। इस प्रकार किसी भी मृदा में जिसकी विनिमय क्षमता 8 है, यदि विनिमय (exchangeable) कैल्शियम 6 e.q. है तो इसका अर्थ संभवतः शीघ्र उपलब्धता से है। लेकिन मृदा की कुल विनिमय क्षमता यदि 30 हो तो Ca के 6 e.q. से बिल्कुल विपरीत स्थिति उत्पन्न होगी। यह एक कारण है कि एल्फा-एल्फा (जिसे प्रचुर मात्रा में कैल्शियम चाहिए) जैसी फसल में चूना डालते समय मृदा के एक भाग की क्षारक संतृप्ति कैल्शियम से कम से कम 90 प्रतिशत के लगभग या इससे अधिक होनी चाहिए।

संवद्ध आयनों का प्रभाव : इसका दिए हुए धनायन का एक पौधे द्वारा ग्रहण करना इसके साथ संलग्न आयनों का प्रभाव है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि विनिमय कैल्शियम की उपयुक्त मात्राएं दो मृदाओं के वश में है और एक मामले में संलग्न धनायन प्रबल रूप से हाइड्रोजन है और दूसरे में अधिकांशतः सोडियम। चूंकि अधिशोषण की शक्ति (strength of absorption) सामान्यतः H > Ca > Mg > K > Na क्रम में है तो यह स्पष्ट है कि प्रथम में, मृदा घोल में कैल्शियम आयन अधिक मात्रा में होंगे क्योंकि वे संलग्न H आयनों की अपेक्षा कम दृढ़ता से पकड़े गए हैं। दूसरे में, मृदा में कैल्शियम आयनों की सांद्रता (concentration) अपेक्षाकृत कम है क्योंकि वे सोडियम आयनों की अपेक्षा मृदा कोलॉइडों द्वारा अधिक मजबूती से थामे गए हैं।

कोलॉइड किस्म का प्रभाव : तीसरे, जिस दृढ़ता से विभिन्न प्रकार के कोलॉइडी मिसेल विशिष्ट प्रकार के धनायनों को थामे रहते हैं। वह प्रत्येक के लिए अलग-अलग है। यह निःसंदेह धनायन विनिमय को प्रभावित करेगा। उदाहरण के लिए, जिस दृढ़ता से मॉन्टमोरिलोनाइट (montmorillonite मृत्तिका का एक प्रकार) Ca को पकड़े रहता है। वह केओलिनाइट (kaolinite) (दूसरे प्रकार की मृत्तिका) से कहीं अधिक होता है। इसके फलस्वरूप यह कहा जाता है कि मॉन्टमोरिलोनाइट मृत्तिका में क्षारक संतृप्ति के लिए कम से कम 70 प्रतिशत चूना मिलाया गया होगा। यह कार्य बढ़ते हुए पौधों की आवश्यकता पूर्ति के लिए कैल्शियम का आसानी और तेजी से विनिमय हो सकने से पूर्व हुआ होगा। दूसरी ओर, केओलिनाइट मृत्तिका अधिक तेजी से कैल्शियम को छोड़ती है। यह इस अवयव के लिए काफी कम क्षारक संतृप्ति प्रतिशत पर संतोषजनक स्रोत का कार्य करता है। इससे स्पष्ट होता है कि दोनों मृदाओं के लिए चूना मिलाने का कार्यक्रम अलग-अलग होगा (यानि अलग-अलग मात्रा में चूना मिलाया जाएगा)।

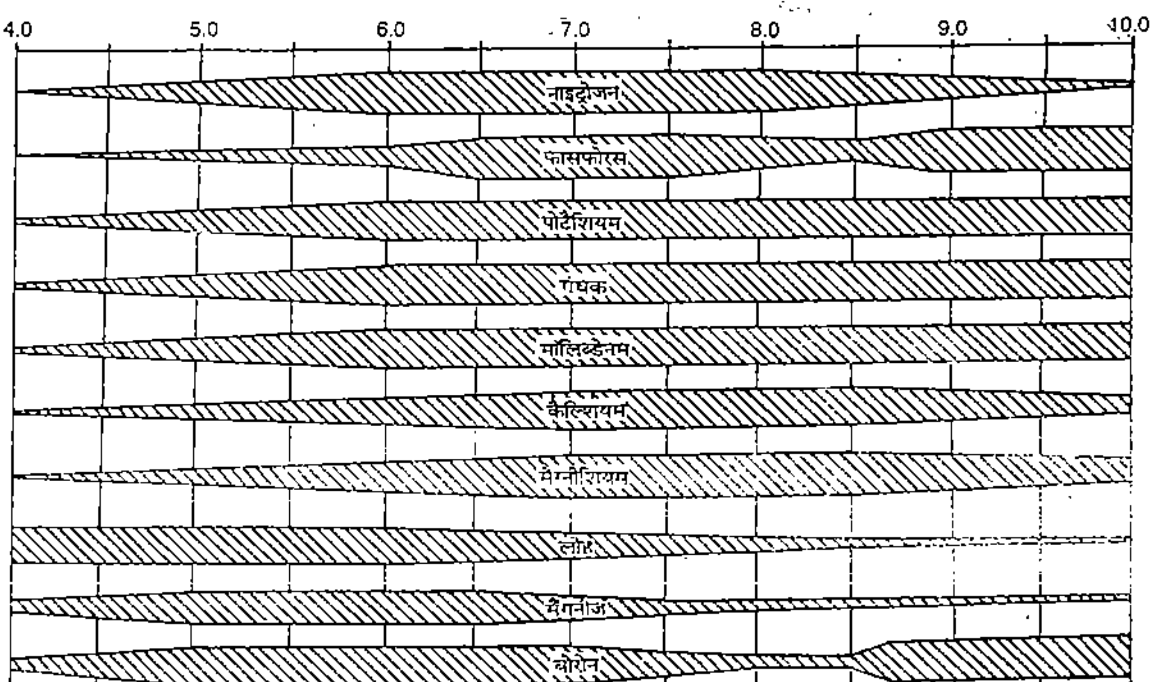

चित्र 4.7 : मृदा pH के साथ पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की सापेक्ष उपलब्धता का संबंध।

पोषक तत्व की उपलब्धता और pH संबंध : पादप वृद्धि पर pH का एक सबसे बड़ा प्रभाव पोषक तत्वों की उपस्थिति पर है। जब क्षारक संतृप्ति 100 प्रतिशत से कम होती है तो pH में वृद्धि होने से मृदा विलयन में कैल्शियम और मैग्नीशियम की मात्रा बढ़ जाती है। क्योंकि ये दोनों तत्व आम तौर पर प्रबल विनिमय क्षारक हैं। कई अध्ययनों से पता चलता है कि पौधों में कैल्शियम की मात्रा बढ़ने से पादप-वृद्धि और ज्यादा होती है। यह बढ़ते हुए pH या क्षारक संतृप्ति प्रतिशत के नियंत्रण में है। pH एवं कैल्शियम तथा मैग्नीशियम और अन्य पोषक तत्वों के बीच जो सामान्य संबंध है, उसे चित्र 4.7 में दिखाया गया है।

मृदा pH के बढ़ने के साथ-साथ मॉलिब्डेनम की उपलब्धता बढ़ जाती है (देखिए चित्र 4.7)। pH कम होने पर यह लौह (iron) के साथ मिलकर अघुलशील (insoluble) यौगिक बनाता है और अप्राप्य हो जाता है। इन अवस्थाओं में मॉलिब्डेनम की कमी के प्रति संवेदनशील (susceptible) पौधों, जैसे फूलगोभी, तिपतिया (clover) और सिट्रस (citrus) में मृदा में pH के बढ़ने से इनकी वृद्धि पर असर पड़ता है। क्षारीय मृदा यानि ऊसर मिट्टी (alkaline soil) में पोटेशियम प्रायः अच्छी मात्रा में पाई जाती है जिससे यह पता चलता है कि इसमें विनिमय पोटेशियम का निक्षालन और निष्कासन सीमित मात्रा में होता है।

अधिक pH पर कुछ पादप-पोषक तत्वों की उपलब्धता या विलेयता कम हो जाती है। लौह और मैंगनीज जिनकी मात्रा कैल्शियमी (calcareous) मृदा में कम हो जाती है, इस तथ्य के अच्छे उदाहरण हैं। अम्लीय मृदाओं (acidic soil) में यानि कम pH पर फ़ासफोरस और बोरोन भी अप्राप्य होने लगते हैं। अति अम्लीय और क्षारीय, दोनों प्रकार की मृदा में तांबा और जस्ता भी कम मिलते हैं। पौधों के लिए मृदा में अधिकांश पोषक तत्व pH 6.5 पर, में अनुकूलनतम मात्रा में उपलब्ध होती है।

मृदा रसायन शास्त्र का एक और पहलू जो कि चित्र 4.7 में नहीं दिखाया गया है, वह है कि अन्त्य (extreme) pH पर पोषक तत्वों का संतुलन प्रतिकूल हो जाता है और कुछ पोषक तत्व अधिक विलेय (घुलनशील) होकर विषाक्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कम pH पर Al, Fe, Mn, Zn और Cu काफी मात्रा में निकलते (मुक्त होते) हैं और विषाक्त हो जाते हैं। H और OH आयन भी pH 4 से नीचे और 9 से ऊपर सीधे हानिकर हो जाते हैं।

4.9 मृदा जीवजात (biota) तथा मृदा उर्वरता

मृदा में नाना प्रकार के जीव पाए जाते हैं और वे उतने ही प्रकार के कार्य करते हैं। उनकी कई क्रियाएं मृदा के निर्माण में मदद करती हैं और उसकी उर्वरता (fertility) को बढ़ाने में योगदान देती है। इन जीवों के कुछ मुख्य कार्यों की चर्चा नीचे की गई है।

4.9.1 क्षय (decay) और पोषक तत्व चक्र (nutrient cycle)

मृदा जीव कार्बनिक पदार्थ के क्षय के मुख्य एजेंट हैं। कार्बनिक पदार्थ के विघटन और खनिजीकरण से मृदा में कुछ तत्वों की काफी बढ़ोतरी होती है और पौधे इन तत्वों का उपयोग कर सकते हैं। मृदा में अपघटक जिनके अंतर्गत अनेकों प्रकार के जीवाणु, एक्टिनोमाइसेटीज और कवक आते हैं, कार्बनिक पदार्थ पर कार्य करते हैं (यानि कार्बनिक पदार्थ को गलाने का कार्य करते हैं)। ये जीव अपने किण्वकों (enzymes) द्वारा कार्बनिक यौगिकों का जल अपघटन (hydrolysis) और ऑक्सीकरण (oxidation) करते हैं। जटिल कार्बनिक यौगिक सरल यौगिकों में तब तक टूटकर बदलते रहते हैं जब तक कि कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन अंत में जाकर कार्बन डाइऑक्साइड और जल के रूप में मुक्त नहीं हो जाते। कार्बनिक पदार्थ में निहित अन्य पोषक तत्व मुक्त होकर अकार्बनिक रूप में आ जाते हैं। आपको याद होगा कि कार्बनिक पदार्थ में विद्यमान पोषक तत्वों का अकार्बनिक रूप में बदलना खनिजीकरण कहलाता है। सम्पूर्ण प्रक्रम निम्न प्रकार से होता है : कवक, चीटियां, भृंग (beetles), बरूथीं (mites), कम्बु (slugs) और घोंघे (snails) जैसे जीव कभी-कभी पत्तियों तथा टहनियों के अंशों पर इनके जमीन पर गिरने के पहले चढ़ाई कर देते हैं। बाद में होने वाले रूपांतरण में प्रत्येक प्रकार के कार्बनिक पदार्थ (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन तथा वसा आदि) तथा इन पदार्थों के टूटने के प्रत्येक चरण में अलग-अलग प्रकार के मृतजीवी (saprophytes) कार्य करते हैं। ये मृतजीवी पदार्थ को गलाने का कार्य करते हैं और गलने की क्रियाएं कई चरणों में होती हैं। प्रत्येक चरण एक अलग समूह के जीव द्वारा पूरा होता है तथा इससे भिन्न प्रकार का [illegible] उत्पन्न होता है।

उदाहरण के लिए प्रोटीन टूटकर क्रमशः एमिनो एसिड, अमोनिया लवणों, नाइट्राइडों और नाइट्रेटों में बदलते हैं। इसका प्रत्येक चरण अलग-अलग जीव या जीवों के समूह की क्रिया के फलस्वरूप पूरा होता है। इसलिए क्षय का संपूर्ण प्रक्रम कई चक्रों में पूरा होता है। विविध प्रकार के कार्बनिक यौगिकों के अपघटन के बाद ह्यूमस बनता है। जो परिवर्तन प्रतिरोधी है यानि इसमें आगे परिवर्तन लगभग नहीं होता है। आप इस संबंध में पहले ही पढ़ चुके हैं।

4.9.2 वृद्धि पदार्थों (growth substances) का उत्पादन

अनेकों प्रकार के विषम-पोषी (heterotrophic) मृदा सूक्ष्मजीव, जीवाणु और कवक, 3-इन्डोल एसिटिक ऐसिड (3-indole acetic acid) और अन्य वृद्धिकारक पदार्थ उत्पन्न करते हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह पौधों के भूमिगत अंतः भौमिक (subterranean) वातावरण को नियंत्रित करता है। ऐसे वृद्धि नियंत्रक पदार्थ के होने से पौधों का बढ़ना प्रभावित होता है और इनकी जड़ों पर या जड़ों के आस-पास विशेष प्रकार के जीव रहने लगते हैं।

4.9.3 नाइट्रोजन यौगिकीकरण (fixation)

आप एफ.एस.टी.-1, खंड 4, इकाई-14 में पढ़ चुके हैं कि नाइट्रोजन जीवों का एक आवश्यक अवयव (constituent) है और वायु में मुक्त रूप में इसका अक्षय (inexhaustible) भंडार है। मनुष्य सहित अधिकांश जीव गैसीय नाइट्रोजन का उपयोग करने में असमर्थ है परन्तु अपने पोषण के लिए इन्हें कार्बनिक रूप में नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि जीवों के लिए अकार्बनिक रूप में नाइट्रोजन का पाया जाना अति आवश्यक है।

मुक्त नाइट्रोजन अक्रिय (inert) है लेकिन कुछ विशेष प्रकार के जीव समूहों में वायुमंडल से गैसीय नाइट्रोजन को उपयोग करने की क्षमता होती है। इस प्रक्रिया को नाइट्रोजन यौगिकीकरण कहा जाता है। अन्य जीव इस यौगिकृत नाइट्रोजन (fixed nitrogen) का सरलता से उपयोग करते हैं। वातित (aerated) मृदा में *एज़ोटोबैक्टर (Azotobacter)*; अवातित (unaerated) मृदा में *क्लॉस्ट्रिडियम (Clostridium)*; फली-जड़ें (legume roots) की अधिकांश ग्रंथिकाओं (nodules) में *राइज़ोबियम (Rhizobium)*; और कई नील हरित शैवाल (blue green algae) में *नॉस्टॉक (Nostoc)*, *ऐनाबीना (Anabaena)* आदि जैसे नाइट्रोजन यौगिकीकारी, वायुमंडलीय नाइट्रोजन का नाइट्रोजन यौगिक के रूप में परिवर्तित करते हैं । यह कदम, जीवों को सदा नाइट्रोजन यौगिक के रूप में सप्लाई बनाए रखने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मृदा की उर्वरता पर इस बात का प्रायः प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है कि उसमें कितनी नाइट्रोजन यौगिकीकाएँ मौजूद हैं।

4.9.4 मृदा का मिश्रण (mixing)

मृदा का यांत्रिक मिश्रण और अपक्षय इसमें पाए जाने वाले बड़े जीवों के कारण होता है। पौधों की जड़ों और भूमिगत अंगों की कीलवत (wedge-like) क्रिया से चट्टानों और संहत मृदा (compacted soil) सघन मृदा की विदरिकाएं (दरारें) चौड़ी हो जाती है जिससे कि उनमें अन्य प्रकार से अपक्षय की गुंजाइश अधिक हो जाती है। कृतंक (चूहे वर्ग के प्राणी-rodents), कीट (insects) और कृमि (worms) काफी तादाद में मिट्टी उलटते-पलटते रहते हैं, जिसके कारण मिट्टी का बार-बार भौतिक और रासायनिक कारकों द्वारा अपक्षय होता रहता है। इसके लिए केंचुआ सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। प्रतिवर्ष इन प्राणियों के शरीर से गुजरने वाली मिट्टी का वजन 156 टन शुष्क मृदा प्रति एकड़ है जो एक चौंकाने वाला तथ्य है। कृमि के शरीर से होकर गुजरते समय न सिर्फ कार्बनिक पदार्थ, जो केंचुए का भोजन है, बल्कि खनिज अवयवों पर भी इसके पाचन किण्वों (digestive enzymes) की क्रिया होती है। सामान्यतः केंचुए के मल या त्याज्य पदार्थ के आसपास घनी घास पाई जाती है जिससे यह पता चलता है कि इन त्याज्य पदार्थों में पौधों के लिए पोषक तत्वों की बहुतायत है। इसके अलावा, केंचुओं की यह गतिविधि वातन और अपवहन जल निकास को बढ़ाकर मिट्टी को उर्वर बना देती है। ये मृदा के साथ काफी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ जिनका अपघटन नहीं हुआ है, जैसे पत्तियां, और घास जो उनके भोजन के काम आते हैं, को अपने बिलों में खींच कर ले जाते हैं और मृदा को दानेदार बना देते हैं।

बिलकारी (burrowing) प्राणी भी काफी मात्रा में अवमृदा (subsoil) यानि सतह से नीचे की मिट्टी को सतह पर लाते हैं। इसके अतिरिक्त ये प्राणी वनस्पति को काटकर जमीन के अंदर अपने बिल में रखते हैं। इनमें से कुछ भोजन के काम आता है और कुछ नीडन यानि (घोंसला बनाने वाला पदार्थ - nesting material) के रूप में। नीडन, तथा जीवों के मल-मूत्र (excreta) जैसे पदार्थों से जोकि सतह के नीचे गाड़ दिए जाते हैं, कार्बनिक अंश में काफी वृद्धि होती है और भूमि उर्वर हो जाती है।

4.9.5 मृदा वातन का सुधार

मृदावासी जीव मृदा की संरचना को सुधारते हैं तथा सुवातित करते हैं। जड़ों के क्षय से मृदा में नालियों का जाल सा बिछ जाता है और कृमियों तथा अन्य प्राणियों द्वारा बिल बनाने से असंख्य मार्ग बन जाते हैं जिनसे वायुमंडलीय गैसों का विनिमय होता रहता है यानि मृदा में ऑक्सीजन का विसरण (diffusion) और कार्बन डाइऑक्साइड का निकलना जारी रहता है। सुवातन के कारण पौधों की बढ़ती हुई जड़े प्रायः इन्हीं नालियों के आसपास रहती है।

4.9.6 सम्पूर्ण संरचना (aggregate structure) का सुधार

जीवाणु और नील हरित शैवाल दोनों ही मृदा में बहुतायत से पाए जाते हैं। ये दोनों श्लेष्मक उत्सर्ग (लेसदार पदार्थ — mucilagenous excretions) पदार्थों का उत्सर्जन करते रहते हैं तथा यह पदार्थ उनकी कोशिकाओं के अन्य कार्बनिक उत्सर्गों के साथ मिलकर मृदा कणों को जोड़कर बड़े-बड़े समूहों में बदलने में बड़े प्रभावकारी होते हैं। मृदा कवक भी इनके कणों को एक साथ जोड़ने में ठीक इसी प्रकार का कार्य करते हैं लेकिन उनके कार्य करने का तरीका भिन्न होता है।

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थानों में सही शब्दों को भरिए।

i) भौतिक-रासायनिक दृष्टि से मृदा का सक्रिय अंश .... है।

ii) चिकनी मृदा जिसमें अधिक मात्रा में मृत्तिका एवं गाद है ऐसी मृदा को .... मृदा, और मोटी तथा अधिक रेतीली और बजरी वाली मृदा को .... मृदा कहते हैं।

iii) पौधों द्वारा .... और, मृदा सतह से .... ये दो मुख्य प्रक्रम हैं जिनके कारण मिट्टी से जल तेज दर से कम होता रहता है।

iv) मृदा में .... जल उपलब्ध न होने वाले जल का उदाहरण है जबकि .... जल वह रूप है जो आसानी से पौधों को प्राप्त होता है।

v) मृदा की पारगम्यता इसके कणों के आकार में .... होने में घटती है।

vi) किसी मृदा में धनायन विनिमय क्षमता आयनों की सापेक्षिक ...., आयनों पर .... की संख्या और विभिन्न आयनों की .... पर निर्भर करती है।

vii) कुछ मृदाओं में भारी वर्षा के कारण बहुत अधिक H आयन पाये जाते हैं और इनके फलस्वरूप महत्वपूर्ण क्षारक आयनों का .... होता है जिससे मृदा की उर्वरता .... हो जाती है।

viii) जिन मृदाओं का pH .... होता है उनमें पौधों तथा अन्य मृदा सूक्ष्म जीवों के लिए पोषक तत्व काफी मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

ix) अगर मृदा का pH बहुत कम हो जाए तो एल्युमीनियम, लौह, जस्ता आदि जैसे पोषक तत्व अत्यंत .... हो जाते हैं और मृदा में रहने वाले जीवों के लिए .... साबित होते हैं।

x) ...., ... और .... वे जीव हैं जो कार्बनिक पदार्थों के मुख्य अपघटक हैं।

4.10 सारांश

- मृदा हमारे पर्यावरण का महत्वपूर्ण संघटक है जो मुख्यतः जनक शैलों से उत्पन्न खनिजों, विविध प्रकार के जीवों से उत्पन्न कार्बनिक पदार्थ, जल और गैसों से बना है।
- मृदा के निर्माण का प्रक्रम मंद गति से धीरे-धीरे, सतत चलने वाला है और इसमें सैकड़ों वर्ष लगते हैं। मृदा का मूल ढांचा अपक्षीण शैल पदार्थ का बना होता है। खनिजीभवन और ह्यूमसभवन का प्रक्रम नव-निर्मित मृदा को जीवों की वृद्धि और फलने-फूलने लायक बनाता है।
- उत्पत्ति-स्थलों के आधार पर मृदा को दो मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है अवशिष्ट (residual) और वाहित (transported)। अवशिष्ट मृदा वह है जिसकी उत्पत्ति अपने जनक शैल के स्थान पर ही होती है जबकि वाहित मृदा विभिन्न एजेंसियों द्वारा अपने जनक शैल के मूल स्थान से दूर ले जाई जाती है और वहां इनमें आगे परिवर्तन होता है। अपक्षीण शैल पदार्थ दूर ले जाने वाले एजेंट के अनुसार वाहित मृदा के प्रकार हैं : मिश्रोढ़ (गुरुत्व द्वारा), जलोढ़ (जल द्वारा), हिमानी (बर्फ और हिम द्वारा) और वातोढ़ (हवा द्वारा)।
- मृदा का निर्माण विभिन्न आकार के कणों के अलग-अलग अनुपातों में मिलने से हुआ है। कणों के व्यास के आधार पर मृदा को निम्न वर्गों में बांटा गया है। मृत्तिका, गाद, रेत, बजरी, तथा पत्थर। मृदा के नमूने में मौजूद इन कणों के अनुपात के आधार पर मृदा के बारह वर्गों की पहचान की गई है।
- किसी विशेष अनुपात में मृदा कणों की उपस्थिति यानि मृत्तिका, गाद और रेत के कारण मृदा का गठन भी विशेष ढंग का होता है और इसका असर गैस और नमी के प्रति मृदा की पारगम्यता जैसे गुण पर भी पड़ता है। मृदा कणों के समूहों में होने की व्यवस्था (समूहन-व्यवस्था) इसकी संरचना का द्योतक है। अगर मृदा में मृत्तिका और गाद की मात्रा ज्यादा है तो इसे भारी मृदा कहते हैं और इस मृदा में खेती के औजारों को चलाना कठिन होता है। दूसरी ओर, मृदा में यदि रेत और बजरी का अनुपात ज्यादा है तो इसे हल्की मृदा कहा जाता है और खेती के औजारों को इसमें आसानी से चलाया जा सकता है।
- मृदा में मुख्य तीन प्रकार का जल होता है। मृदा से होकर गुरुत्व जल नीचे चला जाता है। और यह जीवों मुख्यतः पौधों के लिए उपलब्ध नहीं हो पाता है। कोशिका जल मृदा कणों के बीच के छिद्रों में रहता है और मिट्टी में पौधों और जीवों द्वारा इसका उपयोग किया जाता है। आर्द्रताग्राही जल, जल की वह थोड़ी सी मात्रा है जो मृदा कोलॉइडों की सतह को मजबूती से पकड़े रहती हैं। यह जल पौधों को नहीं मिल पाता है।

- पारगम्यता और वातन मृदा के दो महत्वपूर्ण गुण हैं जो पौधों और जीवों की आवश्यकताओं जैसे जल और जरूरी गैसों के उपलब्ध होने पर नियंत्रण रखते हैं। कम वातित मृदा में पौधों, खासकर इनकी जड़ों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसी मृदा का अनुपयुक्त अवस्थाओं में जल और पोषक तत्वों का अवशोषण कम हो जाता है और मृदा में विषाक्त पदार्थ बन जाते हैं।
- धनायन विनिमय मृदा का महत्वपूर्ण रासायनिक गुण है जिसके कारण मृदा में विद्यमान Ca, Mg, K, Na, Cu, Mn, Zn और NH_4 जैसे पोषक तत्व पौधों और जीवों को उपलब्ध होते हैं। मृदा की धनायन विनिमय क्षमता से तात्पर्य है — कोलॉइडों, (चाहे वह कार्बनिक पदार्थ हों या खनिज पदार्थ) के विनियम स्थलों की कुल संख्या से मृदा में किसी प्रकार के पोषक तत्व का निकलना कई कारणों पर निर्भर करता है जैसे विचाराधीन धनायन से अधिकृत मृदा की धनायन विनिमय क्षमता का अनुपात; संबद्ध आयनों का प्रभाव; कोलॉइड मिसेल द्वारा धनायन को पकड़े रहने की दृढ़ता और मृदा pH।
- मृदा में रहने वाले विविध प्रकार के जीव उसकी उर्वरता को बढ़ाने में अत्यधिक योगदान देते हैं। कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाने और बाद में इसके क्षय तथा पोषक तत्व चक्र, मृदा को आपस में मिलाने, वृद्धि कर पदार्थों के उत्पादन, नाइट्रोजन यौगिकीकरण और वातन जैसे उसके योगदान मृदा के सुधार में काफी महत्व है।

4.11 अंत में कुछ प्रश्न

1 क) "सॉयल" (मृदा) शब्द से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

ख) अंजली भर मृदा उठाने पर आप इसमें क्या-क्या पाएंगे?

....

....

ग) मृदा का निर्माण दो चरणों में होता है। वे दो चरण कौन-कौन से हैं?

....

....

2 नीचे दी गई तालिका में रिक्त स्थानों को भरिए :

क्र.स.	मृदा प्रकार	प्रमुख लक्षण
1	अवशिष्ट	i) .... ii) ....
2	वाहित	i) .... ii) ....
क	मिश्रोढ़	i) .... ii) .... iii) .... iv) ....
ख	जलोढ़	i) .... ii) .... iii) .... iv) ....
ग	हिमानी	i) .... ii) ....

		iii) ....
		iv) ....
घ	वातोढ़	i) ....
		ii) ....
		iii) ....
		iv) ....

3 क) निम्नलिखित श्रेणियों की मृदा को उनके व्यास को ध्यान में रखते हुए अवरोही क्रम में व्यवस्थित कीजिए। महीन रेत, मृत्तिका, पत्थर और बजरी, गाद, मोटी रेत।

....

....

ख) किस आधार पर मृदा को किसी खास गठन वर्ग में रखा जाता है?

....

....

....

....

4 क) मृदा जल के कितने प्रकार हैं? इनमें से कौन-सा जल पौधों के उपयोग के लिए उपलब्ध है?

....

....

....

....

ख) भारी और हल्की मृदा में आप कैसे अंतर करेंगे? एक सरल तरीके का सुझाव दीजिए?

....

....

....

....

ग) सुवातित मृदा के मुख्य लक्षण लिखिए।

....

....

....

....

घ) अल्पवातित मृदाएं कालांतर में निम्न कोटि की हो जाती हैं। कैसे?

....

....

....

....

5 किसी मृदा में रेत, गाद और मृत्तिका का प्रतिशत इसकी i) संरचना, ii) जल धारण क्षमता, iii) गठन, iv) पोषक तत्व विभव, v) उर्वरता, स्तर कहलाता है। (सही उत्तर पर "√" का निशान लगाईये)।

6 क) मृदा की धनायन विनिमय क्षमता से आप क्या समझते हैं? इसे सामान्यतः किस प्रकार व्यक्त किया जाता है?

....

....

....

....

ख) मृदा में आयनो का प्रतिस्थापन किन-किन कारणों से होता है?

....

....

....

....

ग) कुछ ऐसे पोषक तत्वों के नाम बताइए जो मृदा के निम्न pH स्तर पर विषाक्त हो जाते हैं।

....

....

7 मृत्तिका कण अपनी सतह पर निम्न आयनों में से किस-किस को आकर्षित कर पकड़े रहेंगे?

i) NO_3^- ii) NH_4^+ iii) $H_2PO_3^-$ iv) Ca^{2+} v) K^+

8 मृदा जीवजात (biota) किस प्रकार इसकी उर्वरता को कायम रखने में मदद करते हैं। अपने उत्तर को नीचे दिए गए स्थान तक सीमित रखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

9 अच्छी फसल की पैदावार के लिए मृदा को कुछ कार्य करने होते हैं। निम्नलिखित में से कौन से कार्य जरूरी हैं।

i) पादप पोषक तत्वों का भंडारन और विनिमय

ii) वायु तथा जल के लिए भंडार और वाहन तंत्र (transport system) का कार्य करना

iii) पौधों को दृढ़ता (anchorage) प्रदान करना

iv) ऊपर दिए गए सभी कार्य

4.12 उत्तर

बोध प्रश्न

1 i) खनिज, कार्बनिक पदार्थ, जल, वायु, जीव
 ii) अपक्षय, खनिजीभवन, ह्यूमसभवन
 iii) कमी
 iv) कार्बनिक पदार्थों
 v) अवशिष्ट, वाहित

2 i) मृदा गठन का अर्थ कण आकार संघटन से है जबकि मृदा संरचना का तात्पर्य मृदा कणों के समूहन की व्यवस्था से है।

ii) असत्य

iii) क)

3 i) मृत्तिका

ii) भारी, हल्की

iii) वाष्पोत्सर्जन, वाष्पन,

iv) आर्द्रताग्राही, कोशिका

v) कमी

vi) सांद्रता, आवेश, सक्रियता

vii) निक्षालन, कम

viii) 6.5

ix) घुलनशील, विषाक्त

x) जीवाणु, एक्टिनोमाइसेटीज, कवक

अंत में कुछ प्रश्न

1 क) संकेत : यह भू-पर्पटी का बाहरी स्तर है जो मृदा में रहने और फलने-फूलने वाले जीवों के लिए भोजन, जल और आवास की सुविधाएं उपलब्ध करता है।

ख) खनिज, कार्बनिक पदार्थ, गैसें, जल और विविध प्रकार के जीव

ग) i) शैलों का अपक्षय

ii) खनिजीभवन और ह्यूमसभवन

2

क्र.स.	मृदा प्रकार	मुख्य लक्षण
1	अवशिष्ट	i) मृदा निर्माण का सम्पूर्ण प्रक्रम एक ही स्थान यानि जनक शैल के स्थान पर होता है। ii) अपक्षय तीव्रता सतह के समीप सबसे अधिक होती है इस प्रकार अपक्षीय पदार्थ में श्रेणीकरण देखा जाता है।
2	वाहित	i) अपक्षीण पदार्थ कई एजेंटों द्वारा अपने उत्पत्ति स्थल से दूर ले जाये जाते हैं। ii) अपक्षीण पदार्थ में कोई श्रेणीकरण नहीं होता।
क	मिश्रोढ़	i) अपक्षीण पदार्थ गुरुत्व द्वारा वाहित। ii) पदार्थ में विविध आकार के कण अव्यवस्थित रूप से मिले होते हैं। iii) मिश्रोढ़ निक्षेपों में स्तरीकरण नहीं होता। iv) पहाड़ी स्थानों, पर्वतों और ढालों पर पाया जाता है।
ख	जलोढ़	i) अपक्षीय पदार्थ प्रवाही जल द्वारा वाहित। ii) प्रवाही जल द्वारा मृदा कण गोल और चिकने हो जाते हैं। iii) जल की गति के अनुसार अलग-अलग स्तर निक्षेपित हो जाते हैं। iv) नदियों और वहते हुए जल स्रोतों के किनारे पाये जाते हैं।
ग	हिमानी	i) अपक्षीण पदार्थ गतिशील वर्फ और हिम द्वारा वाहित। ii) वर्फ और हिम की अपर्षपक क्रिया के कारण घटक कणों की सतहें चिकनी होती हैं। iii) महीन शैल पाउडर से लेकर भारी गोल पत्थरों तक के अपक्षीण और अनपक्षीय पदार्थों का मृदाओं के साथ मिलना। iv) कोई स्तरीकरण नहीं।
घ	वातोढ़	i) पवन द्वारा वाहित अपक्षीण पदार्थ। ii) समरूप आकार और संघटन से बने हुए कण। iii) काफी दूर तक हटा दिए गए पदार्थ। iv) समुद्रों, झीलों, नदियों के तटों और बहुत से शुष्क क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

3 क) पत्थर और बजरी, मोटी रेत, महीन रेत, गाद और मृत्तिका।

ख) मृदा के एक नमूने में मृत्तिका, गाद और रेत के अनुपात के आधार पर एक खास गठन वर्ग में रखा जाता है। इस संबंध में बारह गठन वर्गों को बताने वाला त्रिभुजाकार चित्र सुविधाजनक है।

4 क) जल मुख्यतः तीन रूपों में होता है। गुरुत्व जल, कोशिका जल और आर्द्रताग्राही जल। इनमें से कोशिका जल पौधों को आसानी से मिल पाता है।

ख) अगर खेती से संबंधित औजारों को मृदा के किसी नमूने में आसानी से चलाया जा सके तो इसे हल्की मृदा, जिसे खींचने में कुछ प्रतिरोध हो उसे भारी मृदा कहते हैं।

ग) i) वायु के आने जाने के लिए पर्याप्त अंतराल और

ii) गैसों के आदान-प्रदान के लिए पर्याप्त अवसर।

घ) ऑक्सीजन की कमी से कार्बनिक पदार्थों का तेजी से क्षय होना रुक जाता है और अंत में उसके द्वारा पोषक तत्वों के चक्र और व्यवहार्यता पर प्रभाव पड़ता है।

5 iii) गठन

6 क) यह मृदा में कोलॉइड कणों के कुल विनिमय-स्थलों का द्योतक है। इसे मिली. तुल्यांक (m.e.) प्रति 100 ग्राम में व्यक्त किया जाता है।

ख) i) आयनों का सापेक्षक सांद्रण
ii) आयनों पर आवेशों की संख्या
iii) आयनों की गति

ग) अल्यूमीनियम, लौह, मैंगनीज, जस्ता और तांबा

7 NH_4^+, Ca^{2+}, K^+

8 i) मृदा जीवजात विविध रूपों में मृदा में हमेशा कार्बनिक पदार्थ बढ़ाते रहते हैं।

ii) बहुत प्रकार के जीव अनुक्रमणीय अभिक्रियाएं करते हैं जो कार्बनिक पदार्थ को सरल रूपों में परिवर्तित कर देते हैं जिससे कि पौधे तथा अन्य जीव दोबारा उनका उपयोग कर सकें।

iii) बहुत से मृदा जीव वृद्धिकर पदार्थ उत्पन्न करते हैं जो उनके आसपास के कई दूसरे सूक्ष्मजीवों की वृद्धि पर असर डालते हैं। इस तरह ये अपनी वृद्धि द्वारा मृदा को बेहतर बना देते हैं।

iv) अनेकों प्रकार के जीवाणु तथा नील हरित शैवाल वायुमंडल से प्राप्त नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं जिन्हें पौधे उपयोग में लाते हैं।

v) विविध प्रकार के प्राणियों की बिलकारी सक्रियताओं के कारण मृदा मिश्रण होता रहता है। इससे मृदा का वातान और अपवहन (जल निकासन) बढ़ता है।

vi) जीवाणु नील हरित शैवाल आदि जैसे जीव भी मृदा की कुल संरचना में सुधार लाते रहते हैं।

9 iv)

शब्दावली

अकार्बनिक यौगिक (inorganic compound) : रासायनिक यौगिक जिनमें साधारणतया कार्बन नहीं होता। परन्तु कार्बनडाइऑक्साइड और कार्बोनेट्स जैसे कुछ सरल पदार्थ जिनमें कार्बन होता है इनमें शामिल हैं।

अधिशोषण (absorption) : एक कण, ऑयन या अणु का दूसरे की सतह पर आसंजन।

अनुक्रमण (succession) : एक प्राकृतिक पारिस्थितिकीय प्रक्रम जिसके द्वारा विभिन्न समूह या समुदाय समान एक ही क्षेत्र को कुछ समय के बाद निश्चित क्रम में उत्तरोत्तर कालोनियां बनाते हैं।

अनुकूलन (adaptation) : आनुवंशिक रूप से निर्धारित एक अभिलक्षण, जो कि व्यक्ति में अपने पर्यावरण का सामना करने की क्षमता को बढ़ाता है, एक विकासात्मक प्रक्रम जिसके द्वारा जीव अपने पर्यावरण के लिए अधिक उपयुक्त बनता है।

अनुकूलनशील (adaptable) : परिवर्तन योग्य। जिसके कारण जीवों को जीवित बचे रहने में सहायता मिलती है।

अपक्षय (weathering) : वायुमंडलीय घटकों द्वारा धरातल पर या उसके समीप चट्टानों में होने वाले सभी भौतिक और रासायनिक परिवर्तन।

अवक्षेपण (precipitation) : बादलों से भूमि की सतह पर गिरने वाली नमी। यह वर्षा, ओले, हिम या सहिम वृष्टि (sleet) के रूप में हो सकती है।

आर्द्रताग्राही जल (hygroscopic water) : सतह आसंजन (surface adhesion) द्वारा मृदा कणों में मजबूती से रोका गया और आम तौर पर पौधों को उपलब्ध नहीं होने वाला जल।

आधारशैल (bed rock) : मृदा के नीचे अनपक्षीण (unweathered) ठोस चट्टान।

आप्रवास (immigration) : जातियों या व्यक्तियों का एक नए क्षेत्र के लिए प्रवास।

आवास (habitat) : एक ऐसा विशिष्ट स्थान या जगह जहां पर पौधा या प्राणी प्राकृतिक रूप से या साधारणतया रहता या बढ़ता है।

उत्पादकता (productivity) : इकाई समय में पारितंत्र के जीवित घटक में संचित कार्बनिक पदार्थ की मात्रा, अर्थात् पौधों द्वारा धूप को रासायनिक आबंध ऊर्जा में परिवर्तित करने की दर।

उत्प्रवास (emigration) : किसी जाति या व्यक्ति का उसके रहने के सामान्य क्षेत्र से बाहर प्रवास (migration) करना।

कच्छ (marsh) : जलाक्रांत (water-logged) मैदान जिससे निर्गत वनस्पति प्रमुख होती है।

कार्बनिक यौगिक (organic compound) : कार्बन वाले या अखनिज उत्पत्ति वाले रासायनिक यौगिक।

खाद्य शृंखला (food chain) : पारितंत्र में उत्पादक से उपभोक्ता की ओर जाने वाला एक विशिष्ट पोषक और ऊर्जा मार्ग।

गाद (silt) : 0.002 से 0.02 mm व्यास के मृदा कण।

ग्लानि गुणांक (wilting coefficient) : मृदा की वह न्यूनतम जलमात्रा जिस पर पौधे पानी ले सकते हैं।

ग्लानि बिंदु या स्थायी ग्लानि बिंदु (wilting point or permanent wilting point) : मृदा की वह नम मात्रा जिस पर पौधे मुरझा जाते हैं और नम वायुमंडल में रखे जाने पर भी पुनः ठीक नहीं हो पाते।

चयापचयी/उपापचय (metabolism) : जीवित कोशिकाओं में होने वाली रासायनिक अभिक्रिया के लिए एक सामान्य शब्द इसमें दो मुख्य प्रकार की अभिक्रियाएं शामिल हैं : टूटना अपचयी (catabolic) अभिक्रियाएं और संश्लेषण (उपचय - anabolic) अभिक्रियाएं।

ज्वारनदमुख (estuary) : नदी के प्रवेश मार्ग या मुंह जैसा तटीय प्रदेश, जहां पर अलवण जल (fresh water) और खारा पानी मिलते हैं।

जलाक्रांति (water logging) : उस परिस्थिति को बताती है जब भूमि पानी से पूरी तरह संतृप्त होती है या उसमें पानी खड़ा होता है।

जीवजात (biota) : पेड़-पौधे और जीव-जंतु एक साथ।

टैगा (taiga) : उत्तरी बोरियल वन अंचल (zone) आर्कटिक टूंड्रा के दक्षिण में शंकुधारी वन की चौड़ी पट्टी।

टूंड्रा (tundra) : उत्तर-ध्रुवीय और अल्पाइन प्रदेश में वृक्ष रहित क्षेत्र से लेकर घास, सेज फर्न, बौनी झाड़ियों, लाइकेन और मांस जैसी विभिन्न प्रकार की वनस्पति तक होती है।

तुंगता (attitude) : किसी निर्दिष्ट स्तर, प्रायः समुद्र तल से ऊंचाई।

दीप्तिकाल (photoperiod) : प्रकाश के काल की अवधि, जैसे कि 24 घंटे के चक्र में उस समय की लम्बाई जिसमें दिन में प्रकाश रहता है।

दुमट (loam) : रेत, गाद (silt) और मृत्तिका की निर्धारित मात्रा वाली मृदा का गठन वर्ग (class)।

धनायन (cation) : एक आयन जिसमें धनात्मक विद्युत आवेश होता है।

धनायन विनिमय क्षमता (cation exchange capacity) : विनिमय योग्य धनायनों की कुल मात्रा की माप जो कि मृदा में हो सकती है, इसे m.eq./100 g. में व्यक्त किया जाता है।

ध्रुवीय आबंध (polar bond) : रासायनिक आबंध जिसमें एक इलेक्ट्रॉन एक परमाणु से दूसरे परमाणु में स्थानांतरित होता है, उत्पन्न आयन स्थिर वैद्युत आकर्षण के कारण इक्ट्ठे रहते हैं।

निक्षालन (leaching) : घुलनशील पोषक पदार्थों और अन्य लवणों को, बहते हुए जल के साथ मृदा परिच्छेदिका में से, नीचे की ओर होने वाली गति का प्रक्रम।

प्लवक (plankton) : सूक्ष्म प्लवक, समुद्री और अलवण जल में जलीय पौधे (पादप प्लवक phytoplankton) और जंतु (प्राणी प्लवक zooplankton) जो कि पानी में खुले प्लवन (float) करते हैं।

प्रकाशानुवर्तन (phototropism) : प्रकाश उद्दीपन (stimulus) के प्रति पौधों में वृद्धि अनुक्रिया।

प्रकाशानुचलन (phototaxis) : प्रदीप्त की दिशा में एक जीव या कोशिका की चलन गति (locomotary movement) जैसे कि प्रकाश के प्रति अनुक्रिया (response) में एक युग्मक (gamete) की गति।

प्रकाशसंश्लेषण (photosynthesis) : वह प्रक्रम जिसमें पौधों की पर्णहरित (chlorophyll) कोशिकाएं कार्बन डाइऑक्साइड और जल से साधारण कार्बोहाइड्रेट संश्लेषण के लिए सूर्य की ऊर्जा का उपभोग करती हैं। इसमें ऑक्सीजन एक उप-उत्पाद (by product) है।

पैड (ped) : मृदा संरचना की एक इकाई जैसे कि आकण प्रिज्म, ब्लॉक आदि।

प्रदूषण (pollution) : वायु, भूमि और जल के भौतिक रासायनिक या जैव गुणों में अवांछनीय परिवर्तन जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

प्राणी समूह (fauna) : एक प्रदेश में रहने वाले सभी जंतुओं की किस्मों के लिए एक सामूहिक शब्द।

पुनः चक्रित होना (recycle) : मूल अवस्था में लौटने के लिए चक्र में से दोबारा गुज़रना।

परासरण नियमन (osmo-regulation) : वह प्रक्रम जिसके द्वारा जीवित प्राणी अपने शरीर में पानी की मात्रा का संचार करने और शरीर के तरल पदार्थ में कई विलयों और आयनों की सांद्रता का नियमन करते हैं।

फुट-मोमबती या फुट-कैंडल (ft-c) : प्रकाश का एक मानक माप। यह एक फुट दूरी पर मोमबती के मानक प्रकाश स्रोत की प्रदीप्ति (illumination) है जो कि एक वर्ग फुट सतह पर सभी बिंदुओं पर पड़ता है।

फोटॉन (photon) : दिखाने वाले विकिरण का एक क्वांटम, प्रकाश ऊर्जा का एक "पैकेट"।

सुम्ब कूप (artesian well) : विना पम्प के सतह तक पानी की स्थायी पूर्ति करने वाला अभिलम्व कुआं।

बॉयोजिओसिनोसेस (biogeocoenoses) : पारितंत्र का पर्यायवाची शब्द, जिसका प्रयोग प्रायः यूरोप और रूस के वैज्ञानिक करते हैं।

भू-मंडल का गरमाना (global warming) : कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीन हाउस गैसों की सांद्रता बढ़ने के कारण पृथ्वी के वायुमंडल के परम ताप (absolute temperature) में वृद्धि।

भू-वैज्ञानिक स्तर (geological substratum) : भूमि की पपड़ी की परत।

मैंग्रोव (mangrove) : उष्णकटिबंधों में लवणीय अनूप (swampy) समुद्री तट क्षेत्रों में एक ज्वारीय वन वनस्पति।

मिट्टी या मृदा (soil) : भूमि की पपड़ी का ऊपरी भाग जिसमें पौधे उगते हैं। यह खनिज पदार्थ, वायु, जल, कार्बनिक पदार्थ और जीवों की कई किस्मों से बना है।

मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ (soil organic matter) : मिट्टी का वह कार्बनिक अंश जिसमें पौधों और जंतुओं के विभिन्न अपक्षय तथा अपघटन की अवस्थाओं वाले अवशेष और विभिन्न मृदा जीवों द्वारा संश्लेषित पदार्थ शामिल हैं।

मैदान क्षमता (field capacity) : पानी की वह मात्रा जिसे भूमि गुरुत्व के खिंचाव के बावजूद रख सकती है।

मृदा समुच्चय (soil aggregate) : मृदा कणों का एक-एक अकेला ढेर या गुच्छा जैसे कि आकण (crumb), गोलाभ (spheroidal) इत्यादि।

मृदा संस्तर (soil horizon) : मृदा निर्माण से उत्पन्न विशिष्ट अभिलक्षणों वाली मृदा की एक परत, जो कि मृदा-पृष्ठ के लगभग समानांतर होता है।

मृदा परिच्छेदिका (soil profile) : मृदा का एक उदग्र भाग जो पृष्ठ से लेकर आधार शैल (bed rock) तक मृदा के सभी संस्तरों तक फैला है।

मृदा संरचना (soil structure) : मृदा कणों का समूह में विन्यास।

मृदा गठन (soil texture) : मृदा में रेत, गाद और मृत्तिका की सापेक्ष प्रतिशतता।

मृदा विज्ञान (pedology) : मृदा का अध्ययन।

pH : 0-14 मापक्रम पर अम्लता और क्षारीयता का माप 7 पर pH उदासीन (neutral) है। सात से अधिक संख्या होने पर अर्थात् 8-14 pH क्षारकीय (basic) होता है। और सात से कम होने पर अर्थात् 6-0 pH अम्लीय होता है।

मृत्तिका (clay) : 0.002 mm से कम व्यास वाले मृदा कण।

मानवोद्भवी (anthropogenic) : मानव से संबंधित।

भारी-मिट्टी (heavy soil) : मृदा जिसमें मृत्तिका जैसे बारीक मृदा कणों का अधिक अंश होता है। इस प्रकार की मृदा खेती के लिये बहुत उपयुक्त नहीं होती।

मिसेल (micelle) : ऋणात्मक विद्युत आवेश की सतह वाला जटिल मिट्टी कण।

मरूद्भिद (xerophyte) : पानी की बहते हुए कम सप्लाई वाले या शैरीरक्रियात्मक सूखे वाले स्थान में वास कर सकने वाला पौधा।

रासायनी संश्लेषण (chemosynthesis) : स्वपोषी (autotrophic) पोषण का एक रूप जो कुछ जीवाणुओं में पाया जाता है जिसमें शर्करा निर्माण के लिए ऊर्जा सूर्य की बजाय अकार्बनिक पदार्थों से प्राप्त की जाती है।

रेत (sand) : 0.02 से 2.0 mm व्यास के मृदा कण।

वनस्पति समूह (flora) : किसी प्रदेश में उगने वाली वनस्पति की सभी किस्मों के लिए एक सामूहिक शब्द।

वायुविलय (aerosol) : वायुमंडल में निलम्बित छोटे ठोस और द्रव्य कण।

विशिष्ट ऊष्मा (specific heat) : कैलोरी में ऊष्मा की वह मात्रा जो किसी पदार्थ की द्रव्य इकाई का अपना तापमान एक डिग्री सैल्सियस बढ़ाने के लिए चाहिए होती है।

स्थलाकृति (topography) : पृथ्वी का भौतिक भूगोल।

समाकलित सिद्धांत (holocoenotic principle) : वह सिद्धांत जिसमें पर्यावरण समग्र रूप से कार्य करता है, क्योंकि ऊष्मा, प्रकाश, तापमान जैसे अजीवीय और जीवीय घटक उसमें समाकलित हैं तथा स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करते हैं।

सहसंयोजी आवंध (covalent bond) : इलेक्ट्रॉनों के मिलने से परमाणुओं के बीच बनने वाला रासायनिक आवंध।

सहनशीलता की परास (range of tolerance) : भौतिक और रासायनिक कारकों की परास सीमा जिसमें एक जीव जीवित रह सकता है।

हल्की मिट्टी (light soil) : मोटे गठन वाली रेतीली तथा पथरीली मिट्टी जो कि आसानी से जोती जाती है।

ह्यूमस/ह्यूमसा (humus) : मृत पौधों और जंतुओं या उनके भागों के अपघटन के परिणामस्वरूप बनने वाला एक काले या भूरे रंग का कार्बनिक पदार्थ जो कि मृदा के साथ मिल कर भूमि को उर्वर बनाता है, तथा इसके वातन और जल धारण क्षमता को बढ़ाता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1 *Plant and Environment*, R.F. Daubenmire, Wiley Eastern Pvt. Ltd. Delhi, 1970.

2 *Concept of Ecology* (third edition), E.J. Kormondy, Prentice-Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 1986.

3 *Fundamentals of Ecology* (third edition), E.P. Odum, (Saunders' international student edition) W.B. Saunders Company, Philadephia and London, 1971.

4 *Ecology* (Modern Biology Series – Holt, Rinehart and Winston Inc), 2nd Indian edition, E.P. Odum, Mohan Primlani, Oxford and IBM Publishing Company, New Delhi, 1975.

5 *Soil Conditions and Plant Growth*, E.W. Russell, ELBS, U.K., 1986.

6 *Ecology and Field Biology*, (2nd edition), R.L. Smith, Harper and Row, New York, 1974.

7 *Chemistry of Water and Microbiology*, N.F. Voznaya, (English translation by Alexander Rosinkin), Mir Publishers, Moscow, 1981.

8 *Limnology*, R.G. Wetzel, W.B. Saunders Co., New York, 1975.

प्रिय छात्र/छात्रा,

इस पाठ्यक्रम के बारे में आपकी राय जानने के लिए हमने यह प्रश्नावली तैयार की है, जो इसी खंड के लिए है। आप के उत्तर हमें पाठ्यक्रम को सुधारने में मदद करेंगे। अतः आपसे अनुरोध है कि आप शीघ्र ही हमें यह प्रश्नावली भर कर भेजें।

प्रश्नावली

नामांकन सं. | | | | | | | | | |

1 इकाइयों को पढ़ने में आपको कितने घंटे लगे?

इकाई सं.	1	2	3	4
कुल घंटे				

2 इस खंड से संबंधित कार्य को करने के लिए आपको (लगभग) कितने घंटे लगे।

सत्रीय कार्य सं.		
कुल घंटे		

3 हमारे विचार से आपके सामने 4 प्रकार की कठिनाइयाँ आई होंगी, उन्हें निम्नलिखित तालिका में दिया गया है। उपयुक्त कालमों में कृपया अपनी कठिनाई पर (✓) का निशान लगाइए और सही पृष्ठ संख्या लिखिए।

पृष्ठ सं.	प्रस्तुतीकरण स्पष्ट नहीं है	कठिनाइयों के प्रकार		
		भाषा कठिन है	चित्र स्पष्ट नहीं है	शब्दावली समझाई नहीं गई है

4 हमारा विचार है कि बोध प्रश्नों और अंत में दिये गये प्रश्नों में आपको कुछ कठिनाई हुई होगी। निम्नलिखित तालिका में हमने संभावित कठिनाइयाँ दी हैं। उपयुक्त कालमों में संबंधित इकाइयाँ और प्रश्न संख्या देते हुए अपनी कठिनाइयों पर सही (✓) निशान लगाइए।

इकाई संख्या	बोध प्रश्न संख्या	अंत में दी गई प्रश्न संख्या	प्रश्न स्पष्ट नहीं है	कठिनाई का प्रकार		
				दी गई जानकारी के आधार पर उत्तर नहीं दिया जा सकता	इकाई के अंत में दिया गया उत्तर स्पष्ट नहीं है	दिया गया उत्तर पर्याप्त नहीं है

5 क्या सभी कठिन पारिभाषिक शब्दों को शब्दावली में दिया गया है? यदि नहीं तो कृपया नीचे दी गई जगह में उन शब्दों को लिखिये।

6 अन्य सुझाव :

सेवा में,

पाठ्यक्रम संयोजक, एल.एस.ई.-02, पारिस्थितिकी
विज्ञान विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY/BY-06
पारिस्थितिकी

खंड

2

पारिस्थितिक तंत्र : कार्यकी, प्रकार

इकाई 5

पारिस्थितिक तंत्र कार्य प्रणाली 5

इकाई 6

पोषक चक्र 37

इकाई 7

पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार : 1. स्थलीय पारितंत्र 57

इकाई 8

पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार : 2. जलीय पारितंत्र 75

खंड 2 पारिस्थितिक तंत्र : कार्यकी, प्रकार

पहले खंड में, हमने पारिस्थितिक तंत्र एवं इसके घटकों की संकल्पना पर चर्चा की है। विभिन्न अजैविक घटकों का विलग रूप से इकाई 2, 3 तथा 4 में वर्णन किया गया है। हमें, पारिस्थितिक तंत्र के अध्ययन से ज्ञात है कि जैविक घटक वातावरण के अजैविक घटकों पर निर्भर करते हैं। इस खंड में, हमारा उद्देश्य, पहले की इकाइयों में दी गई जानकारी एवं सिद्धांतों को एकत्रित करना है जिससे कि आपको यह समझ में आ सके कि किस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र पूर्ण रूप से कार्य करता है। इससे पहले के खंड से आपने यह तो जान लिया होगा कि हमारी पृथ्वी को एक विशाल पारिस्थितिक तंत्र माना जा सकता है। चूंकि यह तंत्र अत्यधिक विशाल है और एक बार में इसका अध्ययन करना अत्यधिक जटिल है। अतः इस तंत्र को सुविधा के लिए दो मूल वर्गों में विभाजित किया गया है: स्थलीय तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र। इस खंड में, इन दो प्रमुख पारिस्थितिक तंत्रों का पुनरावलोकन किया जाएगा जिससे इन दोनों की संरचना एवं प्रकार्यों में भिन्नता ज्ञात हो सके।

इस खंड की पहली इकाई में कुछ ऐसे पारिस्थितिक प्रसंगों पर विचार किया गया है, जिनकी अभी तक विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं की गई थी। सर्वप्रथम, हमने पारिस्थितिक तंत्रों के घटकों की, तत्पश्चात पोषण स्तर एवं पारिस्थितिकीय पिरामिडों के बारे में चर्चा की है। इसके बाद पारिस्थितिक तंत्र का भी उल्लेख किया गया है। इसके उपरांत, उत्पादन की संकल्पना अर्थात् प्राथमिक उत्पादन – नेट तथा सकल, द्वितीय उत्पादन; तथा पारिस्थितिकीय कार्य क्षमताओं का परिचय दिया गया है। महत्वपूर्ण प्रसंग जैसे कि ऊर्जा प्रवाह तथा ऊर्जा बजट पर भी चर्चा की गई है। इस इकाई के अंत में, पारिस्थितिक तंत्र के नियंत्रण एवं पुनर्निवेशन पर प्रकाश डाला गया है।

जीव विभिन्न पदार्थों से बने हैं तथा उनको वृद्धि, प्रजनन तथा विभिन्न प्रक्रियाओं के नियंत्रण के लिए रासायनिक पोषक तत्वों के निरन्तर संभरण की आवश्यकता है। इकाई 6 में पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों से अजैविक घटकों तक पोषण प्रवाह तथा चिरस्थायी चक्रों में इनकी वापसी की चर्चा की गई है। दो मूल प्रकार के जैव भूरसायनिक चक्र–गैसीय, जो कार्बन तथा नाइट्रोजन के उदाहरणों द्वारा दर्शाए गए हैं, तथा अवसादी, जो फॉस्फोरस तथा सल्फर द्वारा दर्शाए गए हैं, का विवरण दिया गया है। सूक्ष्मजीवों का, पुनः प्रयोग हेतु जैविक पदार्थों में स्थित पोषक तत्वों के मुक्त कराने में महत्वपूर्ण योगदान तथा पोषण चक्रों पर मानव प्रक्रियाओं के संघात की चर्चा की गई है। अंत में, सम्पूर्ण पोषक बजट तथा उष्णकटिबंधीय वनों के पोषक चक्रण की शीतोष्ण वनों के पोषक चक्रण के साथ तुलना की गई है।

इस खंड की इकाई 7 में स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों के प्रकारों का वर्णन किया गया है। इसमें, आप विभिन्न जीवोमों का विस्तार से अध्ययन करेंगे। इस विषय पर चर्चा की जाएगी कि किस प्रकार मानव की कुछ कार्यकलापों के कारण ये जीवोम प्रभावित हुए हैं। तदुपरान्त, हम वर्तमान कालिक सन्दर्भ में चिपको आंदोलन एवं सामाजिक वन प्रान्तों के बारे में चर्चा करेंगे।

अंत में, इस खंड में, हम व्यापक जल, जिसने पृथ्वी तल का लगभग तीन चौथाई हिस्सा ढका हुआ है, के बारे में चर्चा करेंगे। आप अध्ययन करेंगे कि जलीय पारिस्थितिक तंत्रों के मीठे पानी, समुद्रीय तथा खारे जल पारिस्थितिक तंत्रों में वर्गीकृत किया गया है। हम, अल्पपोषित मध्यपोषित, सुपोषित तथा कृत्रिम झीलों का विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे। इसके अतिरिक्त आप झीलों, नदियों तथा समुद्रीय पारिस्थितिक तंत्रों के जैविक घटकों के मध्य विभिन्नताओं का अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस खंड का अध्ययन करने के उपरान्त आप:

- पारिस्थितिक तंत्र की कार्यकी के विभिन्न पक्षों से संबंधित परिभाषित शब्दों एवं सिद्धांतों का उल्लेख कर सकेंगे तथा उनका प्रयोग कर सकेंगे।
- जैव भूरसायनिक चक्रों में विभिन्न पोषक तत्वों जैसे कार्बन, नाइट्रोजन, सल्फर तथा फॉस्फोरस की गति का चित्रण कर सकेंगे।
- जीवोम जैसे घास स्थल, वन, मरुस्थलों की संकल्पनाओं का वर्णन कर सकेंगे तथा इन जीवोमों के महत्व को मानव कल्याण से संबंधित कर सकेंगे।
- जलीय पारिस्थितिक तंत्रों का उनके वर्गीकरण सहित सामान्य पारिस्थितिक विशेषताएं बता सकेंगे।

अध्ययन निर्देश

हम आपको सलाह देते हैं कि खंड को प्रारंभ करने से पूर्व खंड-1 में दिये गये अध्ययन निर्देश को पुनः देखें। पिछले खंड के समान ही, इस खंड के अंत में भी आप प्रश्नावली पायेंगे, जिसमें हम इस खंड को बेहतर बनाने के लिए आपकी सलाह के रूप में आपकी सहायता प्राप्त करना चाहते हैं। यह ध्यान रखना भी लाभप्रद रहेगा कि इस खंड की प्रत्येक इकाई का अध्ययन करने में आपको कितना समय लगा। प्रश्नावली पर भी एक नजर डालें, इससे आपको यह अनुमान लगाने में आसानी होगी कि इकाईयों का अध्ययन करने के दौरान किन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

इकाई 5 पारिस्थितिक तंत्र कार्य प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
5.2 प्रकृति की एक इकाई के रूप में पारिस्थितिक तंत्र
5.3 पारिस्थितिक तंत्र के घटक
अजैविक घटक
जैविक घटक
5.4 सहिष्णुता परिसर तथा सीमांत घटक
सहिष्णुता परिसर
सीमांत घटक
5.5 पोषण स्तर
5.6 पारिस्थितिकीय पिरामिड
संख्या पिरामिड
जीवभार पिरामिड
ऊर्जा-पिरामिड
पारिस्थितिकीय पिरामिडों की सीमाबद्धताएँ
5.7 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा निवेश
5.8 उत्पादन की संकल्पना
प्राथमिक उत्पादन
द्वितीयक उत्पादन
5.9 ऊर्जा प्रवाह
5.10 आहार शृंखला तथा आहार जाल
आहार शृंखला
आहार जाल
5.11 पारिस्थितिक तंत्र नियंत्रण
5.12 सारांश
5.13 अंत में कुछ प्रश्न
5.14 उत्तर

5.1 प्रस्तावना

एफ.एस.टी.-1 के खण्ड 4 तथा एल.एस.ई.-02 के खंड-1 के अध्ययन के उपरांत आप जानते हैं कि पारिस्थितिक तंत्र के अंतर्गत एक क्षेत्र विशेष में जीव तथा उस क्षेत्र के पर्यावरण के अजैविक घटक, दोनों ही आते हैं। छोटे तथा बड़े, दोनों ही पारिस्थितिकीय संस्थानों के लिए पारिस्थितिकीय तंत्र शब्द का प्रयोग होता है। अतः एक छोटे से तालाब या एक पेड़ को भी हम एक पारिस्थितिक तंत्र के रूप में समझ सकते हैं। दूसरी ओर, हम खेत, घास के मैदान, वन, सागर या अपने पूरे पृथ्वी ग्रह का ही पूर्ण रूप से, एक बड़े स्तर पर, एक पारिस्थितिक तंत्र के रूप में परीक्षण कर सकते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र में संरचना तथा उसकी कार्य प्रणाली, दोनों ही होते हैं। पारिस्थितिक तंत्र की संरचना उन घटकों पर निर्भर करती है जिन्होंने इस तंत्र को बनाया है। पारिस्थितिक तंत्र की कार्य-प्रणाली इन घटकों के परस्पर तथा पूरक रूप से प्रतिक्रिया करने पर निर्भर करती है। आइए अब हम इन प्रतिक्रियाओं का अधिक विस्तार से परीक्षण करें।

इस खंड में आप कुछ ऐसे शब्दों तथा संकल्पनाओं को पाएँगे, जिनका अध्ययन आप ऊपर बताई गई इकाईयों में पहले भी कर चुके हैं। इस इकाई में या तो इन संकल्पनाओं को और भी अधिक विस्तार से बताया गया है या फिर इनका प्रयोग दूसरी संकल्पनाओं को समझाने के लिए किया गया है। इससे पहले कि आप इस इकाई का अध्ययन करें, आपको सलाह दी जाती है कि आप निम्नलिखित इकाइयों पर एक नज़र डाल लें : (i) इकाई-14, खंड-4, एफ.एस.टी.-1; (ii) इकाई-1, खंड-1, एल.एस.ई.-02

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के वाद आप :

- यह वर्णन कर सकेंगे कि पारिस्थितिक तंत्र का अध्ययन एक इकाई के रूप में क्यों किया जाता है
- पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न घटकों को पहचान सकेंगे तथा पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकों, प्राथमिक उपभोक्ताओं, द्वितीयक उपभोक्ताओं तथा अपघटकों का क्रियात्मक योगदान वता सकेंगे
- सीमांत घटकों तथा सहिष्णुता परिसर की संकल्पनाओं का संक्षेपण कर सकेंगे
- विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिकीय पिरामिडों को पहचान सकेंगे, तथा पारिस्थितिक तंत्र गतिकी का वर्णन करने के दौरान पारिस्थितिकीय पिरामिडों की परिसीमाओं तथा लाभों को महसूस कर सकेंगे
- नेट प्राथमिक उत्पादन, सकल प्राथमिक उत्पादन तथा द्वितीयक उत्पादन का वर्णन कर सकेंगे
- आहार-शृंखला, आहार-जाल तथा पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा-प्रवाह का वर्णन कर सकेंगे
- पारिस्थितिकीय क्षमता, ऊर्जा आय व्ययक तथा पारिस्थितिकीय पुनर्निवेशन जैसे पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा दे सकेंगे तथा इन शब्दों का प्रयोग सही संदर्भों में कर सकेंगे

5.2 प्रकृति की एक इकाई के रूप में पारिस्थितिक तंत्र

एक पारिस्थितिक तंत्र (ecosystem) के जैविक (biotic) तथा अजैविक (abiotic) घटकों के मध्य जटिल प्रतिक्रियाओं को दर्शाने वाली प्रकृति की एक क्रियात्मक इकाई के रूप में, सजीव कल्पना की जा सकती है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र के अध्ययन में घटकों का क्रमवंद्ध अध्ययन तथा जैविक एवं अजैविक घटकों के मध्य गहरे संवंध को समझना सम्मिलित है। प्रकृति की इकाई के रूप में हम पारिस्थितिक तंत्र को, क्यों मानते हैं? संभवतः इस समय यह प्रश्न आपके मस्तिष्क में भी उठ रहा होगा कि यदि कोई पर्यावरण के जैविक एव अजैविक घटकों से संवंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना [illegible] के लिए जैव-मंडल के छोटे घटक अर्थात् पारिस्थितिक तंत्र में इन संवंधों की व्याख्या करना तथा [illegible] आसान होगा। हम एक उदाहरण द्वारा इस स्थिति की और भी विस्तार से व्याख्या करेंगे। आइए हम एक गाँव को पारिस्थितिक तंत्र के उदाहरण के रूप में देखें। (चित्र 5.1 देखिए) इसे इस चित्र में दानेदार रेखाओं से ढँके हुए क्षेत्र के रूप में दर्शाया गया है। गाँव पारिस्थितिक तंत्र के भीतर वने हुए तीन वॉक्स तीन सह-तंत्र को

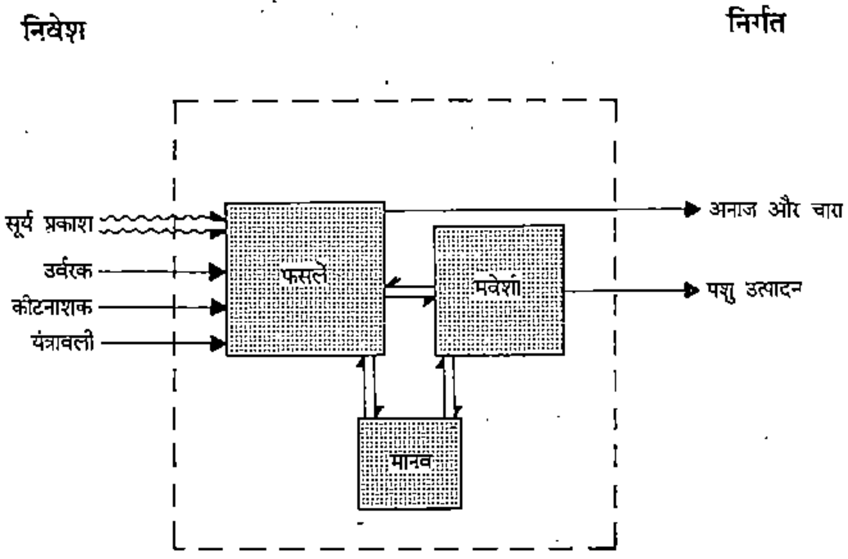

चित्र 5.1 : गाँव पारिस्थितिक तंत्र का माडल।

दर्शाते हैं, जिनके नाम क्रमशः उत्पादक या फसलें, मवेशी तथा मानव हैं। वॉक्सों को जोड़ने वाली ठोस रेखाएँ, प्रतिक्रियाओं को दर्शाती हैं। गाँव पारिस्थितिक तंत्र के वाहर से लाए गए प्रमुख निवेश सौर ऊर्जा, उर्वरक तथा कीटनाशक पदार्थ हैं। ये निवेश, निर्गत की प्रमात्रा निर्धारित करते हैं, जैसे गाँव से निर्यात होने वाला अनाज, चारा तथा अन्य पशु-उत्पादन। अतः आप गाँव पारिस्थितिक तंत्र को जीवों तथा उनके पर्यावरण के अध्ययन का एक संकल्पिक मॉडल मान सकते हैं जो एक संघटित इकाई है।

पारिस्थितिक तंत्र संकल्पिक मॉडल है तथा इन मॉडलों को किसी भी स्तर पर प्रयुक्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ एक पानी से भरे जग से लेकर समस्त पृथ्वी तक विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र आकार तथा जटिलता में विशाल विषमता दर्शाते हैं। अध्ययन के उद्देश्य से अनुसंधानकर्ता पारिस्थितिक तंत्र को अपनी इच्छा के अनुरूप किसी भी प्रकार से अंकित कर सकता है। झील, नदी तथा तालाव जैसे पारिस्थितिक तंत्रों में सीमाएँ एकदम स्पष्ट पहचानी जा सकती हैं, किन्तु अन्य पारिस्थितिक तंत्रों जैसे-घास के मैदान, वन, गाँव

या शहर में सीमाएँ इतनी स्पष्ट नहीं होती हैं, फिर भी ये सीमाएँ अध्ययन के उद्देश्य अथवा किसी भी प्रायोगिक कारण से अंकित की जा सकती हैं।

5.3 पारिस्थितिक तंत्र के घटक

समस्त पारिस्थितिक तंत्रों में जैविक और अजैविक दोनों ही घटक होते हैं। आइए, अब हम इन दोनों प्रकार के घटकों के बारे में विस्तार से चर्चा करें।

5.3.1 अजैविक घटक

अजैविक घटकों में तीन प्रमुख वर्ग देखे जा सकते हैं, जो इस प्रकार हैं :

i) **अकार्बनिक पदार्थ (inorganic substances) :** विभिन्न प्रक्रियाओं के लिए जीवों को लगभग चालीस तत्वों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें से कुछ वृहत् पोषक तत्व (macronutrients) हैं जिनकी पौधों को अधिक मात्रा में आवश्यकता पड़ती है तथा अन्य सूक्ष्मपोषक तत्व (micronutrients) हैं जिनकी आवश्यकता लेशमात्र होती है। इन चालीस पोषक तत्वों में से नौ वृहत् पोषक तत्व हैं। वे इस प्रकार हैं : कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीज़न (ये तीन तत्व समस्त कार्बनिक यौगिकों में पाए जाते हैं), तथा नाइट्रोजन, पोटेशियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम तथा सल्फ़र। अधिकांश पौधों में सूक्ष्मपोषक तत्वों की मात्रा नगण्य के समान है। ये तत्व हैं : लोहा, क्लोरीन, ताँबा, मैंगनीज़, ज़िंक, मोलिबिडनम तथा बोरोन।

ii) **कार्बनिक पदार्थ (organic substances) :** इनके अंतर्गत कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लिपिड तथा उनके संजात जो या तो पौधों अथवा पशुओं के अपशिष्ट पदार्थों से उत्पन्न होते हैं या मृत पौधों अथवा पशुओं के अवशेष, आते हैं। कार्बनिक अवशेषों के अपघटन के परिणामस्वरूप बने विभिन्न आकारों एवं संयोजन के कार्बनिक खंड कुल मिलाकर कार्बनिक अपरद (detritus) कहे जाते हैं। अपघटन के दौरान कार्बनिक पदार्थों से पोषक तत्व मुक्त होते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप गहरे रंग का अक्रिस्टलीय, कलिलीय पदार्थ बनता है, जिसको ह्यूमस (humus) कहते हैं। ह्यूमस मृदा की उर्वरता के लिए महत्वपूर्ण है (इकाई-4, एल.एस.ई.-02 भी देखिए)। कुछ समय पश्चात् ह्यूमस खनिज़ तत्वों में परिवर्तित हो जाता है। चूँकि ह्यूमस बनने की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है, इसके कारण ह्यूमस लगातार मृदा में जुड़ता रहता है तथा अंततः खनिज़ लवणों में परिवर्तित होता रहता है।

Detritus शब्द लेटिन शब्द detere से लिया गया है, जिसका अर्थ है नष्ट हो जाना।

iii) **जलवायु विषयक (climatic) घटक :** इसके अंतर्गत तापमान, वृष्टि, नमी तथा प्रकाश एवं इनके दैनिक एवं ऋतुनिष्ठ (seasonal) उतार-चढ़ाव आते हैं। ये जलवायु-विषयक घटकों, जीवों तथा पारिस्थितिक तंत्रों के बने रहने के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।

5.3.2 जैविक घटक

पारिस्थितिक तंत्र के जैविक अवयव किस प्रकार ऊर्जा एवं पोषक तत्व प्राप्त करते हैं, इसके आधार पर हम इन्हें तीन वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं :

i) **उत्पादक (producer) :** उत्पादकों को स्वयं-पोषी (autotrophs) भी कहते हैं। ये अधिकांशतः हरे पौधे हैं, जो सरल अकार्बनिक पदार्थों से भोजन ले सकते हैं। भोजन का अर्थ है जटिल कार्बनिक यौगिक जैसे–कार्बोहाइड्रेट्स, लिपिड तथा प्रोटीन। हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) की क्रिया द्वारा भोजन बनाते हैं। इस क्रिया में हरे पौधे कार्बन डाइऑक्साइड, जल तथा कुछ खनिज़ों का प्रयोग करते हुए सर्वप्रथम कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं तथा बाद में विभिन्न अन्य कार्बनिक यौगिक जैसे–लिपिड तथा प्रोटीन बनाते हैं। पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया के सह-उत्पाद (by product) के रूप में ऑक्सीजन मुक्त करते हैं। प्रकाश संश्लेषण के दौरान सूर्य के प्रकाश की विकिरणी ऊर्जा रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है तथा पौधों द्वारा बनाए गए यौगिकों के रासायनिक बंधों (chemical bonds) में भंडारित हो जाती है (नीचे दिए गए समीकरण को देखिए) :

उत्पादक = प्राथमिक उत्पादक

$$\underset{\text{कार्बन डाइ-ऑक्साइड}}{6CO_2} + \underset{\text{जल}}{6H_2O} + \underset{\text{सूर्य}}{\text{प्रकाश ऊर्जा}} \xrightarrow{\text{हरे पौधों में पर्ण-हरित}} \underset{\text{ग्लूकोज़ (शर्करा)}}{C_6H_{12}O_6} + \underset{\text{ऑक्सीजन}}{6O_2}$$

जलीय पारिस्थितिक तंत्रों (अलवणीय जल तथा समुद्री) के प्रमुख प्राथमिक उत्पादक शैवाले क. . .

प्रजातियाँ (species) हैं (चित्र 5.2 देखिए)। स्थलीय (terrestrial) पारिस्थितिक तंत्रों में प्रमुख प्राथमिक उत्पादक मुख्यतः शाकीय (herbaceous) पौधे तथा वृक्ष हैं। कुछ प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करने वाले प्रोकैरयोटिक जीव हैं, जैसे नीले-हरे शैवाल (blue-green algae) तथा कुछ जीवाणु भी प्राथमिक उत्पादक कहे जाते हैं। हरे पौधों के अतिरिक्त कुछ रसायन संश्लेषी जीवाणु (chemosynthetic bacteria) हैं, जो स्वयंपोषी हैं। ये जीवाणु सूर्य ऊर्जा का उपयोग न करके कुछ अन्य स्रोतों से ऊर्जा प्राप्त कर कार्बनिक यौगिकों (अमीनो अम्ल, प्रोटीन) का निर्माण करते हैं। इनमें से अमोनियां (NH_3), मीथेन (CH_4) तथा हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) कुछ स्रोत हैं। आप निश्चय ही ऐसे पशुओं की एक बड़ी सूची बना सकते हैं, जो अपना भोजन हरे पौधों से प्राप्त करते हैं। क्या आप कुछ ऐसे जीवों के नाम बता सकते हैं जो पोषण के लिए रसायन-संश्लेषी जीवाणुओं पर निर्भर रहते हैं? आइए अब हम आपको इसके कुछ उदाहरण देते हैं। ऐसे कुछ जीव जैसे–केकड़े (crabs), सीपधारी (molluscs) तथा विशाल कृमि (giant worms) जो सागर के तल या इसके समीप पाए जाते हैं, और, जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच सकता है, वहाँ ऐसे जीव अपना भोजन रसायन संश्लेषी जीवाणुओं से प्राप्त करते हैं।

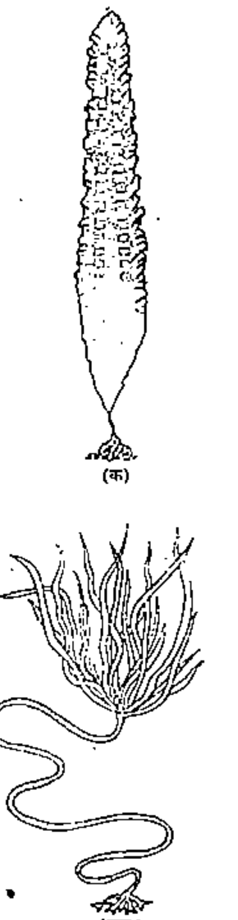

चित्र 5.2 : Marine algae समुद्री शैवाल
क) *Laminaria agradhli*
ख) *Nereocystis luetkeana.*

शाकाहारी = प्राथमिक उपभोक्ता

खुरदार जीव खुर वाले तथा घास चरने वाले पशु हैं, जैसे घोड़े, मवेशी तथा भेड़ें, जो पैर की उंगलियों के अगले हिस्सों पर दौड़ने के अभ्यस्त हैं।

ii) **उपभोक्ता** (consumers): इनको भक्षकपोषी (phagotrophs) या परपोषी (heterotrophs) भी कहते हैं। इस वर्ग के अंतर्गत आने वाले जीव अपना भोजन स्वयं नहीं बनाते बल्कि अन्य जीवों को खाकर अपने लिए ऊर्जा एवं पोषक तत्व प्राप्त करते हैं। कुछ भोजन प्राप्ति हेतु प्राथमिक उत्पादक (हरे पौधे) खाते हैं, तथा इनको शाकाहारी (herbivores) कहते हैं। एक स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में सामान्य शाकाहारी हैं : कीट पतंगे, पक्षी तथा स्तनधारी जीव (mammals)। शाकाहारी स्तनधारियों के दो महत्वपूर्ण वर्ग–कृतंक (rodents) तथा खुरदार जीव (ungulates) हैं। प्राथमिक उपभोक्ता (primary consumers) के अंतर्गत पौधों के परजीवी (कवक, पौधे तथा पशु) भी आते हैं (चित्र 5.3)। जलीय पारिस्थितिक तंत्रों (अलवणीय जल तथा समुद्री) में शाकाहारियों के सामान्य उदाहरण हैं : छोटे क्रेस्टेशिया (crustaceans) तथा सीपीधारी। इनमें से बहुत से जीव जैसे जल-पिस्सू (water fleas), कॉपेपोड (copepod), केकड़े के लारवे (crab larvae), मसल (mussel) तथा क्लैम (clams) इत्यादि अपने इर्द-गिर्द पानी में से सूक्ष्म प्राथमिक उत्पादकों को छानकर अलग कर सकते हैं। इस क्रिया के द्वारा वे अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

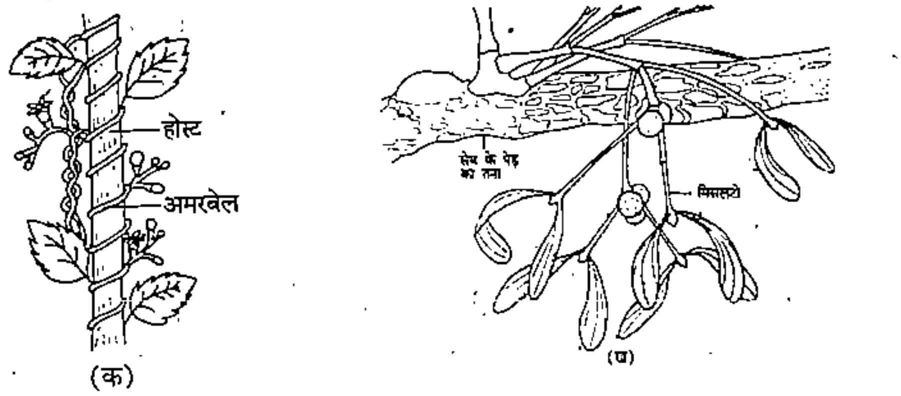

चित्र 5.3 : पौधों के कुछ परजीवी क) Dodder—अमर बेल*Cusuta)*; ख) Mistletoe—बांदा मिसलटो (*Viscum* sp.)

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पशु हैं, जो भोजन के लिए शाकाहारी जीवों पर निर्भर रहते हैं। ऐसे जीवों को द्वितीय उपभोक्ता (secondary consumers) कहते हैं। चूँकि द्वितीय उपभोक्ता शाकाहारियों का भक्षण करते हैं इसलिए वे माँसाहारी (carnivores) कहलाते हैं। ऐसे भी पशु हैं जो द्वितीय उपभोक्ताओं को भक्षण करते हैं। वे भी माँसाहारी हैं तथा तृतीय उपभोक्ता (tertiary consumers) के नाम से जाने जाते हैं। द्वितीय अथवा तृतीय उपभोक्ता निम्नलिखित में से कुछ भी हो सकते हैं : (क) परभक्षी (predators) जो शिकार को ढूँढता है, पकड़ता है और मारकर खाता है, (ख) सड़े गले माँस खाने वाले (carrion feeders) जो मृत जीवों को खाते हैं, या (ग) परजीवी (parasites) जो होस्ट की तुलना में बहुत ही छोटे होते हैं तथा जीवित होस्ट पर ही रहते हैं। वे स्वयं के लिए ऊर्जा प्राप्ति हेतु अपने होस्ट के उपापचय (metabolism) पर निर्भर करते हैं।

कुछ ऐसे भी पशु हैं जिनकी आहार संबंधी आदतें बहुत उदार होती हैं। वे पौधे तथा पशुओं, दोनों को खाते हैं। इसलिए वे शाकाहारियों तथा माँसाहारियों, दोनों श्रेणियों में आते हैं। इनको सर्वाहारी (omnivores) कहते हैं। मानव स्वयं इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है।

iii) **अपघटक** (decomposers) : इनको मृतपोषी (saprotrophs) भी कहते हैं। प्रायः ये सूक्ष्म होते हैं तथा आदत से परपोषी होते हैं। अपघटक, मृत जीवों के कार्बनिक पदार्थों का अवक्रमण

(degradation) करके अपने लिए ऊर्जा एवं पोषक तत्व प्राप्त करते हैं। पौधों तथा पशुओं की मृत्यु के उपरांत उनके मृत शरीर ऊर्जा एवं पोषण के स्रोत उसी प्रकार बने रहते हैं जिस प्रकार उनके पूरे जीवन काल में उनके द्वारा त्यागा गया मल-मूत्र। ये कार्बनिक अवशेष सूक्ष्मजीवों द्वारा अपघटित होते हैं। इन सूक्ष्मजीवों के उदाहरण कवक तथा जीवाणु हैं। ये जीव मृत शरीर तथा अपशिष्ट पदार्थों पर पाचक एन्ज़ाइमों को स्रावित करते हैं, तत्पश्चात् पाचित उत्पाद को सोख लेते हैं। पाचन की दर भिन्न-भिन्न हो सकती है। पशुओं के अपशिष्ट पदार्थ जैसे मल-मूत्र तथा शव के कार्बनिक पदार्थ कुछ ही सप्ताहों में अपघटित हो जाते हैं, जबकि पेड़ों से गिरी हुई पत्तियाँ एवं शाखाएँ इत्यादि अनेकों वर्षों में अपघटित होती हैं। लकड़ी के अपघटन के दौरान, इस पर कवक क्रिया करते हैं तथा सैल्यूलेज़ (cellulase) नामक एन्ज़ाइम उत्पन्न करते हैं, जो लकड़ी को नरम कर देता है। इस तरह छोटे-छोटे जीव आसानी से लकड़ी के भीतर जाकर इसके पदार्थों का अंतर्ग्रहण करते हैं। अपघटित पदार्थों के खंडों को अपरद कहते हैं। ये अपरद अनेक छोटे जीवों के आहार हैं, तथा वे भी अपनी इस क्रिया द्वारा अपघटन में योगदान देते हैं। इस प्रकार अपघटन की क्रिया निरंतर चलती रहती है। इन जंतुओं को अपरदहारी (detritivores) कहते हैं। चूँकि पदार्थों के अपघटन की क्रिया में अपघटकों (जैसे कवक तथा जीव जीवाणु) तथा अपरदहारियों (विभिन्न जंतुओं) का मिला-जुला योगदान है, इसलिए कभी-कभी कुल मिलाकर इन सभी को अपघटक ही कहा जाता है। यद्यपि अपघटक शब्द का संबंध केवल मृतजीवियों से ही है इसलिए कुछ सामान्य स्थलीय अपरदहारी हैं : केंचुआ (earthworm) (चित्र 5.4 क देखिए), काष्ठयूका (wood lice) (चित्र 5.4 ख देखिए) तथा अन्य छोटे (< 0.5 mm) जंतु जैसे–कुटकी, स्प्रिंगटेल तथा सूत्रकृमि (nematodes) हैं।

अपघटक जीव मृत कार्बनिक पदार्थों पर पाचक एन्ज़ाइम स्रावित करते हैं और पाचित भोजन को सोख लेते हैं। इस मानें में ये उपभोक्ताओं से भिन्न हैं जो पहले तो भोजन ग्रहण करते हैं तथा इस भोजन का पाचन इनके शरीर के अंदर होता है।

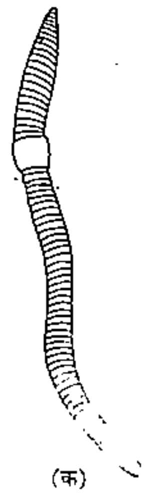

(क)

(ख)

चित्र 5.4 : अपरदहारी।
क) केंचुआ,
ख) मिलीपीड।

5.4 सहिष्णुता परिसर तथा सीमांत घटक

ऊपर के भाग में आपने पारिस्थितिक तंत्र में जैविक तथा अजैविक घटकों तथा उनके क्रियात्मक योगदान एवं संबंधों के बारे में अध्ययन किया है। आपने यह भी देखा है कि ये घटक जीवों के जीवित रहने तथा उनकी कुशलता के लिए तथा कुल मिलाकर पूरे पारिस्थितिक तंत्र के लिए कितने महत्वपूर्ण हैं। किसी भी जीव की सही सक्रियता के लिए इन घटकों की आवश्यकता न्यूनतम तथा अधिकतम सीमाओं के मध्य ही होती है।

5.4.1 सहिष्णुता परिसर (tolerance range)

प्रत्येक जीव पर्यावरणीय घटक जैसे जल, प्रकाश तथा तापमान इत्यादि की अधिकतम तथा न्यूनतम सीमाओं

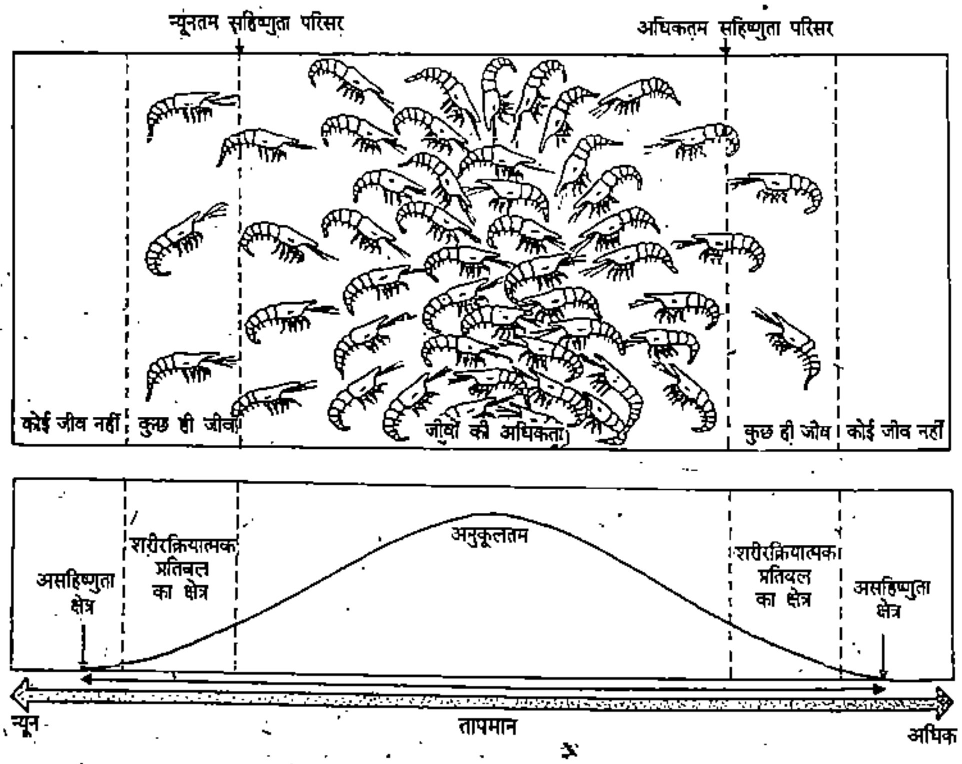

चित्र 5.5 : एक ही प्रजाति के जीवों का एक पर्यावरणीय घटक तापमान के लिए सहिष्णुता परिसर। इस चित्र में दिखाए गए जीव स्कारलेट प्रॉन हैं।

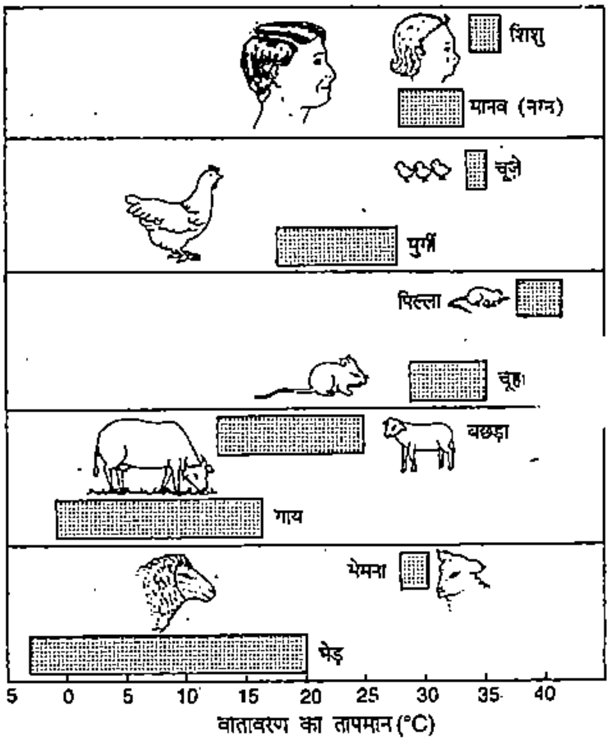

चित्र 5.6 : प्रत्येक प्रजाति में तापमान के लिए सहिष्णुता भिन्न-भिन्न होती है। प्रत्येक शलाका वह तापमान परिसर दर्शा रही है जिसके लिए जीव में सहिष्णुता है। नोट करें किसी भी प्रजाति के शिशु में व्यस्कों की तुलना में सहिष्णुता परिसर कम होता है।

में ही जीवित रहने में समर्थ है। इन्हें सहिष्णुता सीमाएँ (tolerance limits) कहते हैं तथा इन सीमाओं के मध्य परिसर को सहिष्णुता परिसर (tolerance range) कहते हैं (चित्र 5.5 देखिए)। विभिन्न जीवों के सहिष्णुता परिसर भिन्न-भिन्न होते हैं। (चित्र 5.6 देखिए)। इस परिसर की न्यूनतम एवं अधिकतम सीमाओं से बाहर किसी भी प्रजाति विशेष का कोई भी सदस्य जीवित नहीं रह सकता है। एक मछली का उदाहरण लीजिए। सामान्यतः जल तापमान के लिए मछली की सहिष्णुता परिसर संकुचित होती है। यदि पानी अधिक ठंडा हो जाए यानि सहिष्णुता परिसर के नीचे हो तो वे या तो मर जाती हैं या फिर तुलनात्मक रूप से अधिक गर्म पानी की ओर चली जाती हैं।

5.4.2 सीमांत घटक (limiting factors)

समस्त पारिस्थितिक तंत्रों में एक घटक, जो सामान्यतः अजैविक होता है, जीवों की वृद्धि को प्रभावित करता है। इसलिए इसको सीमांत घटक कहते हैं। सीमांत घटक वह है जो अन्य सभी घटकों से अधिक प्रभावशाली तथा महत्वपूर्ण है और जो जीवों की वृद्धि के लिए आवश्यक है। यह जीवों की वृद्धि का निर्धारक है क्योंकि यह सहिष्णुता परिसर के न्यूनतम एवं अधिकतम सीमाओं से आगे है। उदाहरणार्थ कुछ जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में फॉस्फोरस सीमांत घटक है। इस तत्व की खपत सबसे पहले हो जाती है। जब फॉस्फोरस कम हो जाता है तब शैवाल की वृद्धि ठहर जाती है। अतः यह एक ऐसा उदाहरण है जहाँ फॉस्फोरस कम मात्रा में उपलब्ध है तथा एक सीमांत घटक है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि किसी पारिस्थितिक तंत्र में किसी अजैविक घटक की कमी या उसकी अधिकता जीवों के जीवित रहने को प्रभावित करता है। कोई भी घटक जो आवश्यकता से अधिक है, वह जीवों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानिकारक हो सकता है। आप सोचते होंगे कि यह कैसे? आइए, अब हम एक पावर प्लांट का उदाहरण लें, जिसका गर्म पानी पास की नदी में जाता है। परिणामस्वरूप, आसपास के क्षेत्रों में पानी का तापमान 10°C से 30°C बढ़ जाता है। यह अचानक बढ़ा हुआ तापमान अनेकों मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों के लिए घातक है। ऊपर दिया गया उदाहरण घटक की अधिकता का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाता है।

निम्नलिखित उदाहरण में यह दिखाया गया है कि घटक किस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से जीवों को प्रभावित करते हैं। यदि हम ज़मीन के एक टुकड़े को जहाँ पेड़ इत्यादि लगे हुए हैं की सिंचाई आवश्यकता से अधिक कर दें और लंबे समय तक ऐसा ही करते जाएँ तब यह आवश्यकता से अधिक पानी मृदा को जल-संतृप्त कर देगा। ऐसी स्थिति में उस आवश्यक वायु (हवा) का स्थान पानी ले लेगा, जिसे वृक्ष मृदा रंध्रों से प्राप्त

करते हैं। अतः अवायुजीवी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। परिणामस्वरूप, जड़ों को ऑक्सीज़न की कमी हो जाएगी और वृक्ष समाप्त हो जाएँगे। अतः पानी की अधिकता अप्रत्यक्ष रूप से वृक्षों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

बोध प्रश्न 1

क) निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) का निशान तथा गलत के सामने गलत (×) का निशान दिए हुए बॉक्सों में लगाएँ।

i) अध्ययन के तौर पर एक पारिस्थितिक तंत्र एक प्राकृतिक इकाई है जिस के अंतर्गत जीवों के समूह (जैविक घटक) तथा अजैविक पर्यावरणीय घटक (अजैविक घटक) आते हैं।

ii) प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र की स्पष्ट सीमाएँ होती हैं।

iii) पारिस्थितिक तंत्र आकार एवं जटिलता में अत्यधिक विभिन्नता दर्शाते हैं।

iv) एक ऐसा पारिस्थितिक तंत्र आत्मनिर्भर हो सकता है जिसमें स्वयं-पोषी एवं पर-पोषी हों, किन्तु अपघटक न हों।

v) पारिस्थितिक तंत्र स्वयं संपोषित है क्योंकि वह बाहरी प्रभावों से भली-भाँति रोधित होता है।

ख) पारिस्थितिक तंत्र के निम्नलिखित सहघटकों को व्यवस्थित करें: जैविक-घटक, ऊर्जा, उपभोक्ता, अजैविक-घटक, अकार्बनिक तत्व, अपघटक।

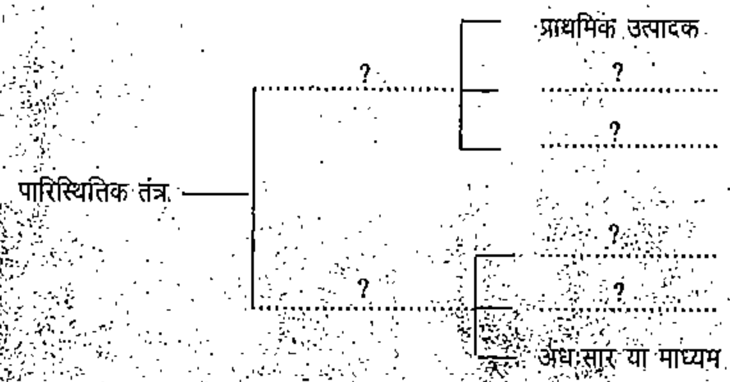

ग) क्या आप सीमांत घटकों के दो ऐसे उदाहरण दे सकते हैं, जिनका उल्लेख मूल पाठ में नहीं किया गया है।

....

....

....

....

5.5 पोषण स्तर

पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न जैविक घटक परस्पर संबंधित होते हैं तथा आहार शृंखला बनाते हैं (एफ.एस.टी.-1, इकाई-14, भाग 14.3 देखिए)। यदि हम आहार शृंखला के समस्त जीवों को उनके सामान्य पोषक स्रोतों (trophic levels) के हिसाब से वर्गीकृत करें तब हम उन्हें विभिन्न पोषण (आहार) स्तरों पर स्थापित कर सकते हैं (चित्र 5.7)। उत्पादक जीव प्रथम पोषण स्तर के अंतर्गत आते हैं, प्रथम उपभोक्ता (शाकाहारी) द्वितीय पोषण स्तर, द्वितीय उपभोक्ता (माँसाहारी) तृतीय पोषण स्तर, तथा तृतीय उपभोक्ता (उच्च वर्गीय माँसाहारी) चतुर्थ पोषण स्तर के अंतर्गत आते हैं। मनुष्य जो सर्वाहारी है एक से अधिक पोषण स्तरों पर आ सकता है (चित्र 5.8 देखिए)। पोषण स्तर सामान्यतः चार या पाँच होते हैं और कभी-कभी छह भी होते हैं। इस इकाई के भाग 5.9 में आप इनके कारणों का अध्ययन करेंगे।

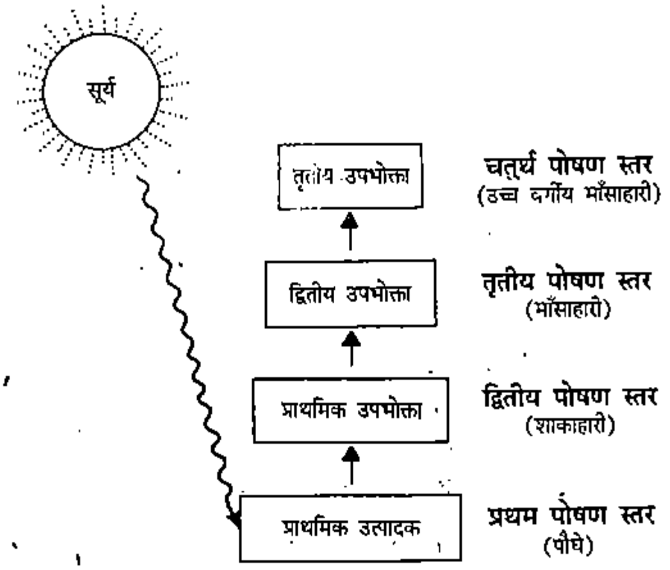

चित्र 5.7 : पारिस्थितिक तंत्र में पोषण स्तरों की आरेखी प्रस्तुती।

पारिस्थितिक तंत्र में पोषण स्तर का अध्ययन, उर्जा रूपांतरण (transformation) का अनुमान देता है। यह हमें लाभप्रद संकलित आधार प्रदान करता है, जिसकी सहायता से हम उन समस्त जीवों को एक वर्ग में रख देते हैं जिनकी सामान्य आहार संवंधी आदतें एक जैसी हैं। इस पोषण स्तर संकल्पना का अर्थ है कि जीव उत्पादक से एक ही समान, श्रेणी की संख्या के उपरांत भोजन प्राप्त करेंगे। यह बात आपको स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि पोषण स्तरों को इस प्रकार अंकित किया गया है कि यह ज्ञात हो सके कि भोजन ऊर्जा के स्रोत अर्थात् उत्पादक से एक जीव कितने चरण दूर है।

पोषण स्तर ↑				
चतुर्थ पोषण स्तर			मानव	तृतीय उपभोक्ता
तृतीय पोषण स्तर		मानव	मछली	द्वितीय उपभोक्ता
द्वितीय पोषण स्तर	मानव	मुर्गी	कीट	प्राथमिक उपभोक्ता
प्रथम पोषण स्तर	गेहूँ	घास	वीड	प्राथमिक उत्पादक

चित्र 5.8 : इस चित्र में तीन आहार श्रृंखलाएँ अलग-अलग चित्रित की गई हैं। इसमें यह दिखाया गया है कि एक ही जीव विभिन्न पोषण स्तरों पर स्थापित हो सकता है। विभिन्न आहार श्रृंखलाओं के इस चित्र में सर्वभक्षी मानव के इस तथ्य को दर्शा रही है। तीर के निशान आहार श्रृंखला की दिशा दर्शा रहे हैं।

5.6 पारिस्थितिकीय पिरामिड

प्राचीन काल में मिस्र (Egypt) के लोगों ने बड़े विशाल गुंवजों का निर्माण किया, जिनको हम पिरामिड के नाम से जानते हैं। जैसा कि आप जानते होंगे कि पिरामिड का आधार चौड़ा होता है और यह ऊपर की ओर धीरे-धीरे पतला होता जाता है। पिरामिड का चौड़ा आधार, उस पर स्थित संरचनाओं को आधार देकर बल प्रदान करता है। जब हम पोषण संवंधों को पारिस्थितिक तंत्र में दर्शाना चाहते हैं तथा उनका अध्ययन करना चाहते हैं तब हम समान स्थिति को देखते हैं। पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न पोषण स्तर परस्पर संबंधित होते हैं तथा पारिस्थितिकीय पिरामिडों के रूप में इनका संक्षेपण किया जा सकता है। प्रत्येक पिरामिड का आधार, प्रथम पोषण स्तर, यानि उत्पादकों को दर्शाता है, जबकि पिरामिड की चोटी तृतीय या उच्चस्तरीय उपभोक्तओं को दर्शाती है, अन्य उपभोक्ता पोषण स्तर इन दोनों के मध्य में होते है। तीन प्रकार के पारिस्थितिकीय पिरामिड संभव हैं, जिनकी चर्चा नीचे की गई है।

5.6.1 संख्या पिरामिड (pyramid of numbers)

एक पारिस्थितिक तंत्र में प्रत्येक पोषण स्तर पर विभिन्न प्रजातियों के जीवों की संख्या के आलेखी प्रस्तुतीकरण को संख्या पिरामिड (pyramid of numbers) कहते हैं। इसमें अनेकों आड़ी शलाकाएँ होती हैं

जो सुनिश्चित पोषण स्तर दर्शाती हैं। ये पोषण स्तर प्राथमिक उत्पादक स्तर से प्रारंभ करके क्रमवद्ध रूप में शाकाहारी, माँसाहारी आदि स्तरों में व्यवस्थित होते हैं (चित्र 5.9)। प्रत्येक शलाका की लंबाई, पारिस्थितिक

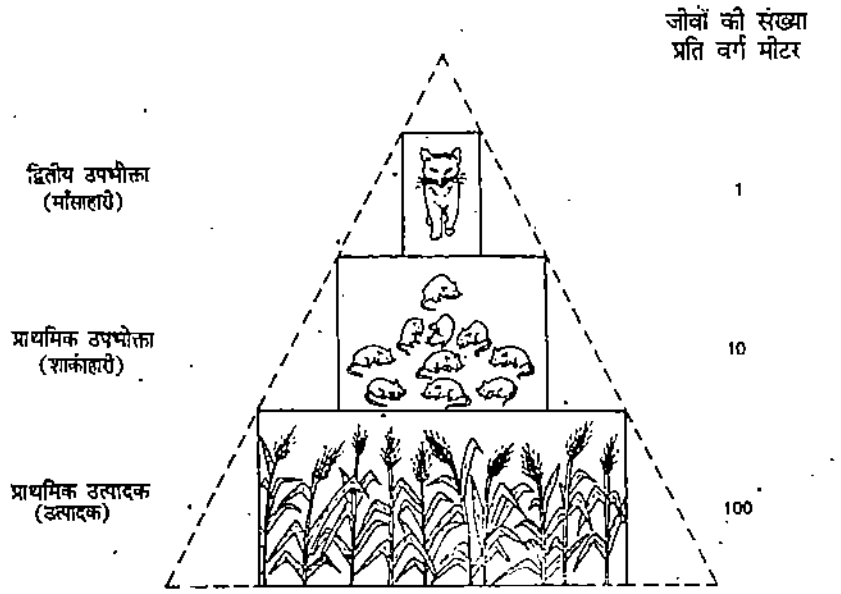

चित्र 5.9 : एक सीधा, संख्या पिरामिड। चित्र में दर्शायी गई जीवों की संख्या परिकल्पित है, तथा जीवों को समान स्केल (scale) पर चित्रित नहीं किया गया है।

तंत्र में प्रत्येक पोषण स्तर पर जीवों की कुल संख्या दर्शाती है। जीवों की संख्या, ऊँचाई की ओर जाते हुए पोषण स्तरों के साथ-साथ प्रत्येक चरण में बहुत तेज़ी से कम होती है तथा इसका आरेखी प्रस्तुतीकरण एक पिरामिड का आकार ले लेता है, जिसको संख्या पिरामिड कहते हैं। आप इन पिरामिडों में देखेंगे कि उच्च पोषण स्तर पर तुलनात्मक रूप से बड़े आकार के जंतु हैं जिनकी संख्या भी कम है। इसका कारण यह है कि उच्च पोषण स्तरीय जीव उन जीवों से बड़े हैं जिनका वे निम्न पोषण स्तर से भक्षण करते हैं। शेर या बाघ के संदर्भ में आकार संबंध सही नहीं बैठता है, क्योंकि मवेशी एवं अन्य शिकार कई बार इनसे आकार में बड़े होते हैं। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि ये जंगली बिल्लियाँ बहुत शक्तिशाली होती हैं और अपने शिकार को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर खाती हैं।

अधिकांश पारिस्थितिक तंत्रों में, संख्या पिरामिड सीधे होते हैं यानि इनका आधार चौड़ा तथा ऊपरी हिस्सा पतला होता जाता है। इन पिरामिडों में जैसे-जैसे पोषण स्तर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे जीवों की संख्या कम

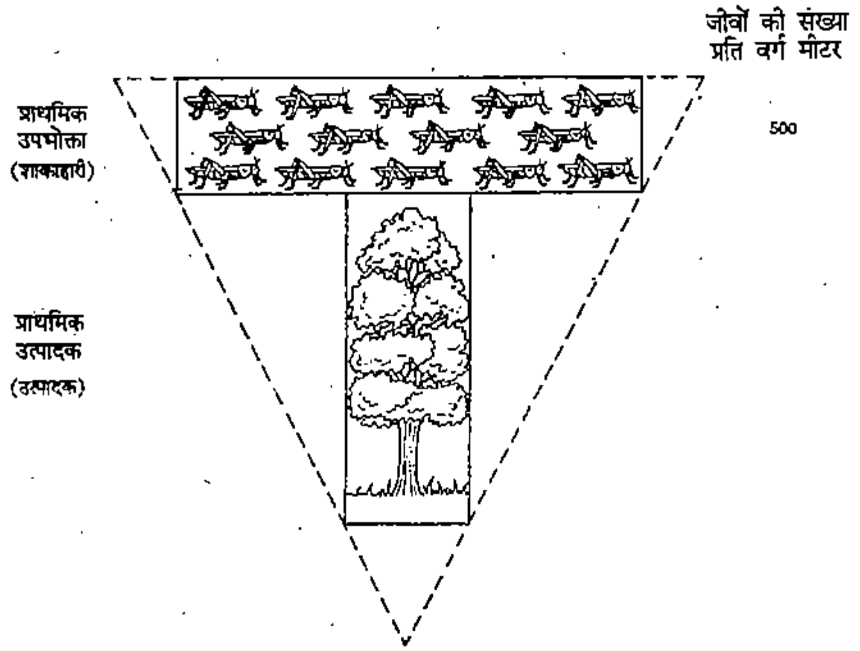

चित्र 5.10 : एक उल्टा संख्या पिरामिड। चित्र में दर्शायी गई जीवों की संख्या परिकल्पित है, तथा जीवों को समान स्केल पर चित्रित नहीं किया गया है।

होती जाती है। फिर भी कुछ पारिस्थितिक तंत्रों में संख्या पिरामिड उल्टे (नीचे सकरा तथा ऊपर चौड़ा) होते हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम केवल एक पेड़ तथा कीट पतंगे, जो इस पेड़ पर निर्भर करते हैं, उनकी स्थिति का आरेख खींचे तब हम यह पाएँगे कि पिरामिड उल्टा होगा, जैसा कि चित्र 5.10 में दिखाया गया है। चूँकि पेड़ एक प्राथमिक उत्पादक है, इसलिए यह पिरामिड का आधार दर्शाएगा और इस पर निर्भर करने वाले कीट पतंगे द्वितीय पोषण स्तर दर्शाएँगे।

संख्या पिरामिड के माध्यम से पारिस्थितिक तंत्र की संरचना का वर्णन करना एक सीमा तक ही शिक्षाप्रद हो सकता है, किन्तु इसकी कुछ सीमा बाध्यता भी हैं जिसकी चर्चा अब हम करेंगे। (i) आपको ज्ञात है कि उत्पादक आकार में भिन्न-भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ ऐसे पिरामिडों में एक अकेला घास का पौधा या शैवाल या एक वृक्ष की समान स्थिति होती है। इस उदाहरण से यह भी समझा जा सकता है कि पिरामिड कभी-कभी सीधा आकार क्यों नहीं प्राप्त कर पाता है। परपोषी आहार शृंखलाएँ भी उल्टा पिरमिड दर्शाती हैं (इनका अध्ययन आप इसी इकाई के भाग 5.10.1, iii में करेंगे (ii) संख्याओं का परिसर इतना अधिक होता है कि यद्यपि लघुगणकीय नापों (logarithmic scales) का प्रयोग किया जाए तो फिर भी नाप के हिसाब से पिरामिड को बनाना कठिन हो जाता है।

5.6.2 जीव भार (pyramid of biomass)

आप देख चुके हैं कि जीव यदि विभिन्न पोषण स्तरों पर अत्यधिक भिन्न आकारों के हों तो संख्या पिरामिड का प्रयोग करना उचित नहीं है। संख्या पिरामिड की कमियों को पराभूत करने के लिए जीव-भार पिरामिड का प्रयोग किया जाता है। जीव-भार एक विशेष समय पर, प्रत्येक पोषण स्तर पर, विभिन्न प्रजातियों के जीवों के कुल शुष्क भार को दर्शाता है। इनको मापने के लिए प्रत्येक पोषण स्तर पर पाए जाने वाले समस्त जीवों को एकत्रित करके, उनका शुष्क भार मापा जाता है। इससे भिन्नताओं से उत्पन्न आकारों की समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं। क्योंकि प्रत्येक पोषण स्तर पर समस्त जीवों का भार लिया जाता है। जीव-भार को g/m^2 में मापा जाता है। नमूना लेते समय जीव-भार की मात्रा को खड़ी फसल (standing crop) या स्थायी जीव-भार (standing biomass) कहते हैं। प्रायः उत्पादकों का जीव भार शाकाहारियों के जीव-भार से कहीं अधिक होता है तथा शाकाहारियों का जीव-भार माँसाहारियों के जीव-भार से अधिक होता है। इसी प्रकार इसका क्रम चलता रहता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यदि हम उत्पादक से उच्च वर्गीय माँसाहारियों की ओर बढ़ें तो प्रत्येक पोषण स्तर पर जीव-भार कम होता जाता है। इसलिए, विभिन्न पोषण स्तरों पर पाए जाने वाले जीवों का जीव-भार का आरेख अधिकतर सीधे पिरामिड का रूप ले लेता है (चित्र 5.11)। फिर भी, सदा ऐसा ही नहीं होता है। बड़ी झीलों एवं सागरों के समान कुछ जलीय पारिस्थितिक तंत्रों

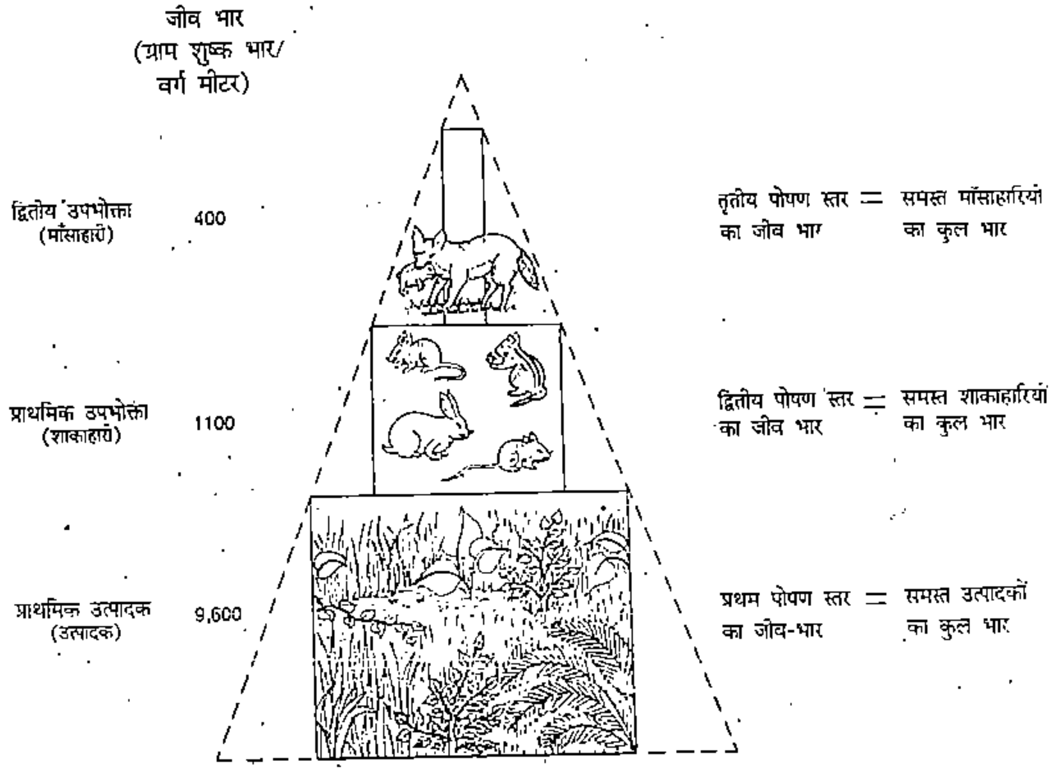

चित्र 5.11 : जीवभार का पिरामिड ऊपर दर्शाए गए जीव भारों के संख्यात्मक आरेख परिकल्पित हैं, तथा जीवों के समान माप से बनाया नहीं गया है।

में, जीव-भार का पिरामिड कभी-कभी उल्टा आकार ले लेता है (चित्र 5.12 क देखिए)। चूँकि जलीय तंत्र में पादप प्लवक (phytoplankton) प्राथमिक उत्पादक है, इसलिए उनका जीवन-चक्र छोटा है, अतः उनका प्रजनन जल्दी-जल्दी होता है। चूँकि ये एक-कोशिकीय जीव हैं इसलिए इनमें बहुत अधिक जीव-भार एकत्रित नहीं होता और उनको दूसरे जीव जैसे जीवप्लवक (zooplankton) मछलियाँ इत्यादि बड़ी आसानी से खा लेती हैं। पुनः एक निश्चित समय पर कुल भार या पादपप्लवकों का स्थायी जीव-भार शाकाहारियों या अन्य उपभोक्ताओं की तुलना में कम होता है। यही कारण है कि जलीय पारिस्थितिक तंत्र के पिरामिड का आधार ऊपर की संरचनाओं की तुलना में छोटा होता है।

जीव-भार का पिरामिड बनाने के लिए नमूने प्राप्त करने का समय अत्यंत महत्वपूर्ण है। आप यह जानना चाहेंगे कि ऐसा क्यों? आइए हम इसे एक विशेष उदाहरण लेकर चर्चा करें। इसके लिए हम सागर का उदाहरण लेते हैं। खुले सागर में सूक्ष्म वनस्पतिप्लवक उत्पादक हैं तथा उपभोक्ता सूक्ष्म जीवप्लवक से लेकर विशाल व्हेल मछली तक फैले हुए है। ऐसी स्थिति में, यदि नमूने तब लिए गए हों जब वनस्पतिप्लवकों की

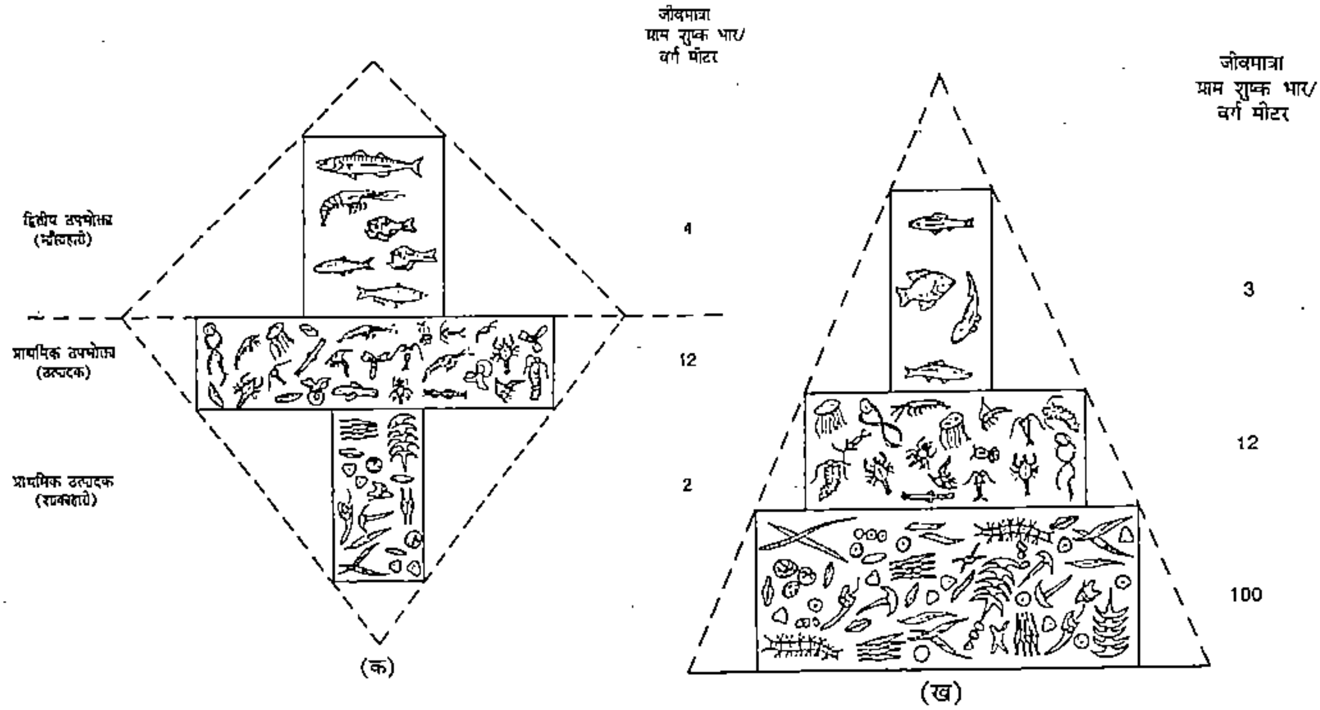

चित्र 5.12 : एक खुले सागर पारिस्थितिक तंत्र में वर्ष के दो भिन्न समयों में जीव मात्रा पिरामिडः क) सर्दियों में, ख) वसन्त ऋतु में। ऊपर दर्शाए गए संख्यात्मक आरेख परिकल्पित हैं तथा जीवों को समान माप से नहीं बनाया गया है।

संख्या कम है, जैसे-सर्दी के मौसम में उपभोक्ताओं का जीव-भार अस्थायी रूप से प्राथमिक उत्पादकों के जीव-भार से अधिक होगा। ऐसी स्थिति में पिरामिड चित्र 5.12 क की भाँति दिखाई देगा। और, यदि नमूनों को वसंत ऋतु (spring) के दौरान लिया जाए जब वनस्पतिप्लवकों की संख्या बहुत अधिक है, या फिर यदि वनस्पतिप्लवकों के अनेकों वंशों को मिला लिया जाए तब पिरामिड का आकार चित्र 5.12 ख की भाँति दिखाई देगा। इस उदाहरण से आपको यह समझ में आ गया होगा कि नमूना लेने का समय बहुत महत्व रखता है। एक ही पारिस्थितिक तंत्र में वर्ष के एक समय में हमें उल्टा पिरामिड मिल सकता है तथा किसी दूसरे मौसम में सीधा पिरामिड मिल सकता है।

5.6.3 ऊर्जा पिरामिड (pyramid of energy)

जब हम एक पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न पोषण स्तरों के क्रियात्मक योगदान की तुलना करना चाहते हैं तब संभवतः ऊर्जा पिरामिड सबसे अधिक सूचनात्मक होता है। यह संख्या एवं जीव-भार पिरामिडों से संबंधित सभी आपत्तियों को समाप्त करता है। एक ऊर्जा पिरामिड ऊष्मा गतिकीय नियमों (laws of thermodynamics) को सही-सही दर्शाता है, क्योंकि ऊर्जा के एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर पर पहुँचने पर ऊर्जा क्षय (हानि) दर्शाता है। अतः ऊर्जा पिरामिड सदैव सीधा होता है (चित्र 5.13 देखिए)। जलीय पारिस्थितिक तंत्रों के भी ऊर्जा पिरामिड सीधे ही होते हैं, लेकिन कहीं-कहीं जीव-भार पिरामिड कभी-कभी उल्टा भी होता है। ऊर्जा पिरामिडों में किसी भी एक पोषण स्तर पर इस स्तर से ठीक नीचे वाले पोषण स्तर की तुलना में कम ऊर्जा होती है। इसका कारण यह है कि एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर ... जाने

ऊष्मा गतिकी का पहला सिद्धांत बताता है कि ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित हो सकती है किन्तु न ही उत्पन्न की जा सकती है न इसका विनाश किया जा सकता है।

ऊष्मा गतिकी का दूसरा सिद्धांत हमें यह बताता है कि कभी भी ऊर्जा का एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तन 100 प्रतिशत नहीं होता है अर्थात् ऊर्जा परिवर्तन में कुछ ऊर्जा का क्षय सदैव होता है।

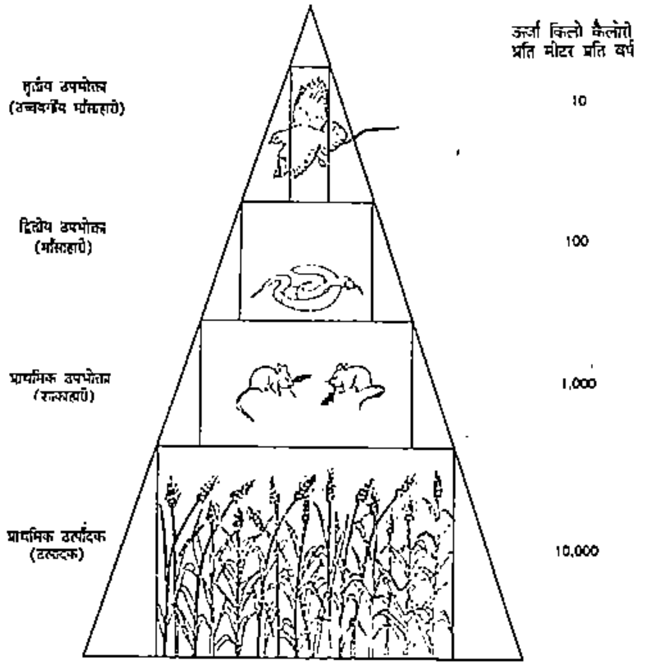

चित्र 5.13 : ऊर्जा पिरामिड। प्राथमिक उत्पादों की संचित ऊर्जा मात्रा अगले पोषण स्तर की ऊर्जा मात्रा की तुलना में सदैव अधिक होती है और इस प्रकार क्रम चलता रहता है। ऊपर दर्शाए गए संख्यात्मक आरेख परिकल्पित हैं, तथा जीवों को समान माप से नहीं बनाया गया है।

के दौरान कुछ ऊर्जा का सदैव ताप के रूप में परिवर्तन हो जाता है। पिरामिड में एक दिए हुए समय में प्रत्येक शलाका प्रत्येक पोषण स्तर पर उपयोग हुई ऊर्जा प्रति वर्ष प्रति इकाई क्षेत्र दर्शाती है। इसके माप की इकाई kcal/m²/yr है। ऊर्जा पिरामिड, एक जीव के द्वारा उपयोग की गई ऊर्जा की सही मात्रा पर आधारित होना चाहिए। यह भी जानना जरूरी है कि वे कितनी उर्जा उपापचय में इस्तेमाल करती हैं तथा कितनी ऊर्जा उनके अपशिष्ट पदार्थों में बची रह जाती है और कितनी ऊर्जा वे अपने शरीर के ऊतकों (tissues) में भंडारित करते हैं। ऊर्जा निवेश और ऊर्जा निर्गत की गणना की जाती है जिससे ऊर्जा वहाव भूमि (या जल) के प्रति इकाई क्षेत्र प्रति इकाई समय पर अभिव्यक्त किया जा सके। यद्यपि ये गणनाएँ अन्य पिरामिडों की तुलना में कुछ कठिन हैं, परन्तु ऊर्जा पिरामिड के अनेकों लाभ हैं: इस प्रकार के पिरामिड की रचना में उत्पादन दर की गणना की जाती है, जो संख्या तथा जीव-भार पिरामिडों में नहीं की जाती। i) एक समय विशेष पर उत्पादन दर (rate of production) से जीवों की स्थायी स्थिति (standing state) का पता चलता है। ऊर्जा पिरामिड की प्रत्येक शलाका, प्रति इकाई क्षेत्र या आयतन में ऊर्जा की वह मात्रा दर्शाता है, जो एक निश्चित समय में, एक पोषण स्तर से प्रवाहित होता है (ii) भार के लिए भार, यह आवश्यक नहीं है कि दो प्रजातियों की अंतर्निहित ऊर्जा (energy content) एक समान हो। इसलिए जैव-भार पर आधारित तुलनाएँ भ्रम में डाल सकती हैं iii) विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों की तुलना करने के अलावा एक ही पारिस्थितिक तंत्र में जीव संख्याओं (populations) का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है तथा ऐसी स्थिति में उल्टा पिरामिड नहीं मिलता है। iv) एक अतिरिक्त आयात के रूप में सूर्य ऊर्जा निवेश (input of solar energy) ऊर्जा पिरामिड के आधार खंड पर जोड़ा जा सकता है।

5.6.4 पारिस्थितिकीय पिरामिडों की सीमाबद्धताएँ

ऊर्जा पिरामिड पिछले दो प्रकार के पारिस्थितिकीय पिरामिडों की तुलना में एक विशिष्ट सुधार है। फिर भी, ये सभी पिरामिड किसी न किसी महत्वपूर्ण पक्ष की उपेक्षा करते हैं। आगे इनमें से कुछ सीमाबद्धताओं पर चर्चा की गई है।

i) कुछ प्रजातियों में एक से अधिक प्रकार की पोषण संबंधी आदतें होती हैं अथवा वे दो या दो से अधिक पोषण स्तरों पर स्थापित होती हैं। यह स्थिति विशेष रूप से प्रायः उच्च पोषण स्तरों के उपभोक्ताओं में देखने को मिलती है। मनुष्य भी इसका एक उदाहरण है। वह अपना भोजन प्राथमिक उत्पादकों तथा उच्च पोषण स्तरों, दोनों से ही प्राप्त करता है। इस प्रकार के जीव जो एक से अधिक पोषण स्तरों पर स्थापित हैं, उन्हें पारिस्थितिकीय पिरामिडों में दर्शाना अत्यंत कठिन है।

ii) मृत पोषियों का पारिस्थितिक तंत्र में महत्वपूर्ण योगदान हैं फिर भी वे पारिस्थितिकीय पिरामिडों में नहीं दर्शाए जाते हैं।

iii) अपरद जैसे मलवा, ह्यूमस, ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं तथा पारिस्थितिक तंत्र की कार्य प्रणाली को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं, फिर भी इनको पारिस्थितिकीय पिरामिडों में नहीं दर्शाया जाता है।

iv) पारिस्थितिकीय पिरामिड मौसम संबंधी एवं दैनिक (diurnal) विभिन्नताओं की ओर किसी प्रकार का भी संकेत नहीं करते हैं।

v) पारिस्थितिकीय पिरामिडों में एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर पर स्थानांतरण (transfer) की दर भी नहीं दर्शाई जाती है।

बोध प्रश्न 2

क) प्रत्येक उन जीवों के दो-दो उदाहरण दें, जो प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पोषण स्तरों पर स्थापित हैं।

....

....

....

....

ख) अपनी पसंद का एक जीव चुनिए और बताइए कि किस प्रकार यह अनेकों, भिन्न पोषण स्तरों पर स्थापित है?

....

....

....

....

ग) कई बार संख्या पिरामिड उल्टे क्यों होते हैं?

....

....

घ) जीव-भार किस इकाई में अभिव्यक्त किया जाता है?

....

च) ऊर्जा पिरामिड कभी भी उल्टे क्यों नहीं होते हैं?

....

....

....

....

....

5.7 पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा निवेश

पारिस्थितिक तंत्र की अतिजीविता (survival) तथा कार्य-प्रणाली (functioning) ऊर्जा निवेश पर निर्भर करती है। विभिन्न प्रकार की पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं के निर्वाह हेतु ऊर्जा की निरंतर उपलब्धता आवश्यक है। किसी भी पारिस्थितिकीय तंत्र के लिए सूर्य का प्रकाश मूल ऊर्जा स्रोत है। जैसा कि आपको ज्ञात है, यह सूर्य ऊर्जा पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकों के माध्यम से प्रवेश करती है। जब एक प्राथमिक उपभोक्ता (शाकाहारी) एक उत्पादक को खाता है, तथा स्वयं अर्थात् प्राथमिक उपभोक्ता द्वितीय उपभोक्ताओं द्वारा खा लिया जाता है, तब हम कह सकते हैं कि ऊर्जा का पारिस्थितिक तंत्र में प्रवाह हो रहा है। आप इस पाठ्यक्रम के खंड -1 की इकाई -2 के सहभाग 2.2.2 में सूर्य ऊर्जा निवेश के कुछ पक्षों का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में दी गई सूचनाएँ आगे आने वाले भागों को समझने के लिए आपको आधार प्रदान करेंगी। कुछ गाद जमा।

जैसा कि आपको ज्ञात ही है कि पृथ्वी के वातावरण की वा गाद जमा होती है boundary) पर प्राप्य ऊर्जा मात्रा की दर 2 cal/cm²/min है। यह मात्रा निश्चित है त हो सकती है। जल प constant) कहलाती है। आप यह भी जान चुके हैं कि वह सूर्य प्रकाश, जो पृथ्वी अच्छी तरह ऑक्सीजनित है, उसका लगभग 30 प्रतिशत अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाता है, और लगभग पानी या अवरवातिकाओं व जमीन वनस्पति या जल

द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है तथा लगभग 19 प्रतिशत वातावरण अवशोषित कर लेता है। सूर्य का प्रकाश, जो पृथ्वी के वातावरण तक पहुँचता है, उसका एक बहुत छोटा हिस्सा लगभग 0.02 प्रतिशत ही प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में प्रयोग हो पाता है। सूर्य प्रकाश का यही वह छोटा भाग है, जिस पर पारिस्थितिक तंत्र के समस्त जीव निर्भर करते हैं। पृथ्वी तल पर प्राप्त हुई सूर्य ऊर्जा प्रवाह (solar flux) विभिन्न जलवायु संबंधी भौगोलिक तथा अन्य पर्यावरणीय घटकों पर निर्भर करता है। औसतन पृथ्वी तल पर पहुँचने वाली सौर ऊर्जा की कुल मात्रा लगभग 3,400 k cal/m²/day है। यह मात्रा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न होती है, उदाहरणार्थ यह अक्षांतर (latitude) के साथ-साथ घटती है तथा इसका निवेश भी एक दिए हुए स्थान पर विभिन्न मौसमों में बदलता रहता है। भारत के चौदह भिन्न नगरों के सौर प्रवाह परिणाम (solar flux values) तालिका 5.1 में दिए गए हैं, जो 361 से 543 cal/cm/day के मध्य में हैं।

तालिका 5.1
सूर्य एवं आकाश का आड़े तल पर औसत कुल विकिरण (cal/cm²/day) (रामदास तथा वेंकटनारायणन, 1954)

त्रिवेन्द्रम	487
बंगलौर	467
मद्रास	530
धारवाड़	480
बंबई	499
पूना	506
अहमदाबाद	543
जोधपुर	534
जयपुर	495
इलाहाबाद	511
कलकत्ता	496
दिल्ली	489
जालंधर	496
श्रीनगर	361

5.8 उत्पादन की संकल्पना

आपने पिछले सहभाग में अध्ययन किया है कि पारिस्थितिक तंत्र तब तक क्रियाशील नहीं हो सकते जब तक इनमें एक बाह्य स्रोत, जैसे–सूर्य ऊर्जा का निरंतर निवेश न हो। सौर-ऊर्जा पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों में प्राथमिक उत्पादकों के माध्यम से प्रवेश करती है। आपको ज्ञात है कि पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा, सौर ऊर्जा को रसायनिक बंध ऊर्जा के रूप में भंडारित करते हैं। निम्नलिखित सहभाग में आप पौधों के इस भंडारित सौर ऊर्जा तथा अगले पोषण स्तर पर इसकी उपलब्धता के विषय में अध्ययन करेंगे।

5.8.1 प्राथमिक उत्पादन (primary production)

प्रकाश संश्लेषण के दौरान पौधों द्वारा संचित (accumulate) की गई ऊर्जा को **उत्पादन** (production) या अधिक विशिष्ट रूप से **प्राथमिक उत्पादन** (primary production) कहते हैं। यह ऊर्जा का प्रथम एवं आधार रूप है, जो पारिस्थितिक तंत्र में भंडारित होता है। तकनीकी रूप से उत्पादन की परिभाषा है–"एक दिए हुए काल में प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादित जीव-भार (biomass) या कार्बनिक पदार्थ (organic matter) की मात्रा।" इसको हम भार (g/m²) या ऊर्जा (k cal/m²) के रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं। ऊर्जा संचय की दर को प्राथमिक उत्पादकता (primary production) कहते हैं। इसको k cal/m²/yr या g/m²/yr के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

पौधों के प्राथमिक उत्पादन को दो विशिष्ट वर्गों में बाँटा जा सकता है – सकल प्राथमिक उत्पादन (gross primary production) तथा नेट प्राथमिक उत्पादन (net primary production)। सकल प्राथमिक उत्पादन का तात्पर्य प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के दौरान, प्राथमिक उत्पादकों के द्वारा, कार्बनिक पदार्थों में आवद्ध (fixed) सौर ऊर्जा की कुल मात्रा से है। पौधों द्वारा आवद्ध सौर ऊर्जा (GPP) का एक बड़ा भाग श्वसन (R) क्रिया में उपयोग हो जाता है। श्वसन क्रिया से प्राप्त उर्जा का उपयोग उपापचय एवं अन्य महत्वपूर्ण क्रियाओं के लिए आवश्यक है। श्वसन व्यय (R) के उपरांत बची हुई ऊर्जा या तो शरीर में नए ऊतकों की वृद्धि में समाविष्ट हो जाती है या फिर इसका प्रयोग नए जीवों की उत्पत्ति (प्रजनन) में हो जाता है। पौधों द्वारा दिए हुए काल में प्रति इकाई क्षेत्र में एक संचित जीव मात्रा या कार्बनिक पदार्थों को नेट प्राथमिक उत्पादन कहते हैं। कुल मिलाकर GPP तथा NPP के संबंधों को निम्नलिखित तरीकों से लिखा जा सकता है:

$$GPP-R = NPP \quad \text{या} \quad GPP = NPP + R$$

आपने इस समीकरण में ध्यान दिया होगा कि जो भी ऊर्जा पौधों द्वारा आवद्ध (GPP) होती है, उसमें से कुछ का उपयोग स्वयं इनके संपोषण (maintenance) में हो जाता है और कुछ बची हुई ऊर्जा (NPP) ही अगले पोषण स्तर के लिए उपलब्ध होती है। अतः वास्तविक प्राथमिक उत्पादन ही एक ऐसी ऊर्जा है, जो अगले पोषण स्तर के लिए उपलब्ध है।

समस्त जीवमंडल (biosphere) की वार्षिक नेट प्राथमिक उत्पादकता लगभग 170 billion tons(शुष्क भार) कार्बनिक पदार्थ है। इसमें से लगभग 115 billion tons ज़मीन पर उत्पादित होते हैं और लगभग 55 billion tons सागरों में उत्पा[illegible] जबकि पृथ्वी का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा सागर से ढका हुआ है। इसमें से मानव लगभग [illegible] वनस्पति खाद्य पदार्थों के रूप में अपने इस्तेमाल के लिए प्राप्त करता है।

उत्पादन क्षमता (pr[illegible] [illegible]धों द्वारा उपयोग की गई अधिकाधिक (maximum) सौर ऊर्जा 5 प्रतिशत है। [illegible] [illegible]मंडल तक पहुँचता है और जिसका एक सूक्ष्मतम हिस्सा

अर्थात् 0.02 प्रतिशत ही कुल मिलाकर हरे पौधों के उपयोग में आता है। उत्पादन क्षमता अर्थात् नेट प्राथमिक उत्पादन एवं सकल प्राथमिक उत्पादन (हरे पौधों द्वारा) का अनुपात है। और यह अनुपात औसतन अधिक होता है। यह लगभग 40 से 85 प्रतिशत के बीच में होता है। वे पौधे सबसे अधिक सक्षम (efficient) होते हैं, जिनकी संपोषण आवश्यकताएँ (maintenance requirements) काफी कम हैं। यह अप्रकाश संश्लेषणिक ऊतकों (जो हरा न हो) के कम से कम होने के कारण है। कुछ ऐसे पौधों के उदाहरण जिनमें कि अप्रकाश संश्लेषिक ऊतक काफी कम हैं, इस प्रकार हैं: घास, शैवाल तथा वनस्पतिप्लवक। शैवाल तथा मकई (corn) के फसल की क्षमता लगभग 80 से 85 प्रतिशत है, निमग्न पौधों (submerged plants) की 60 से 75 प्रतिशत, पर्णपाती वनों (deciduous forests) की लगभग 42 प्रतिशत है।

विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों की विभिन्न उत्पादकताएँ होती हैं (चित्र 5.14 देखिए)। एक पारिस्थितिक तंत्र की उत्पादकता विभिन्न घटकों जैसे सूर्य का प्रकाश, तापमान, वृष्टि तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। उन स्थानों में, जहाँ पौधों की वृद्धि के लिए सर्वश्रेष्ठ परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं, वहाँ उत्पादकता सबसे अधिक होती है। ऐसे क्षेत्र, जो गर्म, नम हैं, जहाँ सूर्य प्रकाश पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तथा जिस स्थान की मृदा में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, वे उत्पादकता के लिहाज़ से सर्वश्रेष्ठ हैं। कुछ क्षेत्रों में उत्पादकता कम होती है, क्योंकि इन क्षेत्रों में कम से कम एक आवश्यक घटक उपलब्ध नहीं होता है।

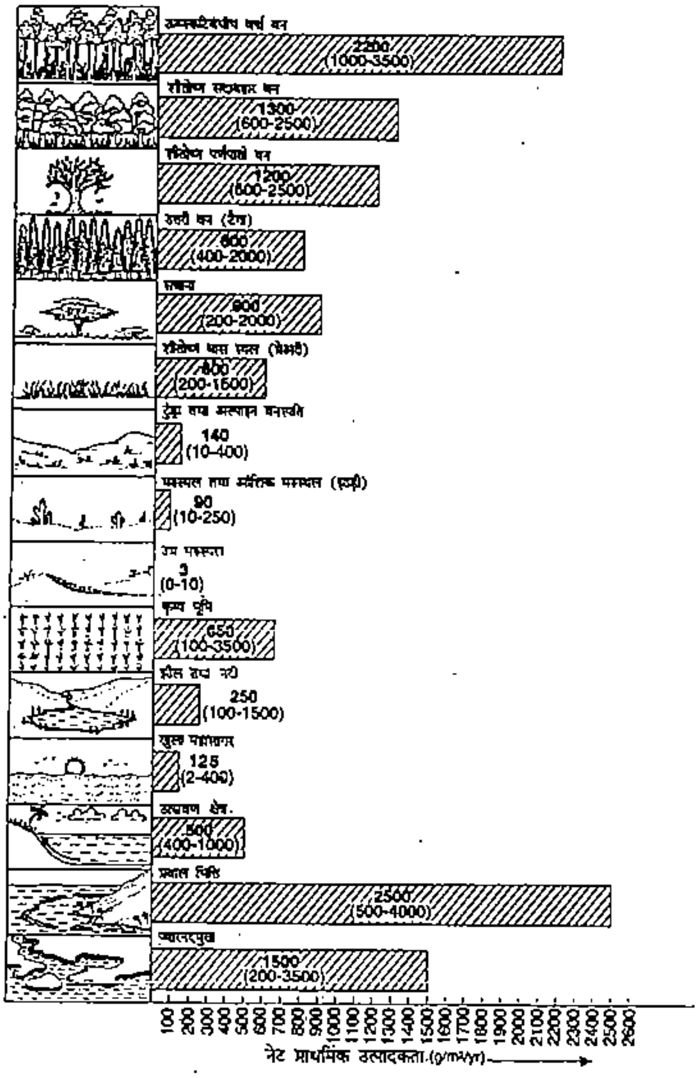

चित्र 5.14 : विश्व के विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों की तुलनात्मक उत्पादकता। बड़े अक्षरों में लिखे गए संख्यात्मक आरेख औसत परिमाण हैं तथा जो कोष्ठकों में लिखे गए हैं, उत्पादकता परिसर दर्शाते हैं (आर.एच. विटेकर कम्यूनिटीज तथा इकोसिस्टम्स, 1975 पर आधारित है)

मरुस्थलों में उत्पादकता कम है, क्योंकि वहाँ पानी की कमी है, ध्रुवीय क्षेत्रों में उत्पादकता कम है, क्योंकि वहाँ तापमान काफी कम है। खुले सागरों में भी उत्पादकता कम है, क्योंकि पोषक तत्वों की उपलब्धता कम है। प्रवाल भित्तियों (coral reefs) तथा उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों (tropical rain forests) में उत्पादकता अधिक है। दलदल (marshes) तथा ज्वारनदमुख (estuaries) अत्यधिक उत्पादकशील हैं, क्योंकि इनके पानी में अत्यधिक पोषक तत्व होते हैं और इनको पर्याप्त प्रकाश भी उपलब्ध होता है।

आपने ऊपर देखा है कि कुछ पारिस्थितिक तंत्रों में निरंतर उच्च उत्पादन होता है। यह उच्च उत्पादन प्रायः तंत्र में अतिरिक्त परिदान ऊर्जा निवेश का परिणाम है। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि परिदान ऊर्जा आस पास का उच्च तापमान, वृष्टि या पोषक तत्वों के अंतर्ग्रहण (inflow) के रूप में हो सकती है। कुछ कृषीय तंत्रों (agricultural systems) में भी उच्च उत्पादकता होती है, उदाहरणार्थ गन्ने की खेती में उत्पादकता 1,700 से 1,800 g/yr, मक्का 10,000 g/yr तथा कुछ उष्णकटिबंधीय फसलों में 3,000 g/yr तक होती है। क्या आप कुछ ऐसे उर्जा परिदानों के विषय में सोच सकते हैं जो उच्च उत्पादकताओं के साथ जुड़ी हुई हैं? कृषीय तंत्र में उर्जा परिदान के अंतर्गत भूमि को कृषि के लिए तैयार करना, जीवाश्म ईंधनों (fossil fuels) का प्रयोग, तथा उर्वरकों (fertilisers) एवं कीटनाशकों (pesticides) का प्रयोग शामिल है।

5.8.2 द्वितीय उत्पादन (secondary production)

आप देख चुके हैं कि नेट प्राथमिक उत्पादन ही केवल वह ऊर्जा है, जो उपभोक्ताओं या परपोषियों (मानव को मिलाकर) को उपलब्ध है। शाकाहारी जीवों जैसे गाय या हिरन घास चरते हैं और इसकी ऊर्जा जो प्राथमिक उत्पादन के रूप में है; उसका इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार ग्रहण किया गया भोजन जंतुओं के आमाशय (stomach) में संसाधित (process) होता है। पाचित पदार्थों का शरीर में आत्मसात् (assimilation) हो जाता है तथा अनुपयोगी पदार्थों का उत्सर्जन (excretion) हो जाता है। कुछ आत्मसात् ऊर्जा का श्वसन क्रिया में उपयोग हो जाता है। श्वसन क्रिया शरीर की उपापचयी आवश्यकताओं (metabolic needs) जैसे–ऊतकों के अनुरक्षण (maintenance) एवं सुधार (repair) के लिए उर्जा उपलब्ध करवाती है। ऊर्जा के बचे हुए भाग का उपयोग प्रजनन (reproduction) के लिए नवीन ऊतकों (new tissues) को उत्पन्न करने में होता है। जंतु के जीव-भार उत्पादन को चाहे वह केवल शारीरिक वृद्धि से अथवा कुछ नए जंतुओं (new born) के योगदान से हो, द्वितीय उत्पादन कहते हैं। परपोषियों द्वारा नए कार्बनिक पदार्थों के बनाने की दर को द्वितीय उत्पादकता (secondary productivity) कहते हैं।

वानस्पतिक पदार्थ, जो जंतुओं द्वारा खाए जाते हैं, वास्तव में इसका बहुत छोटा भाग ही जंतु ऊतकों में परिवर्तित होता है। ऊर्जा मात्रा (energy content) की शब्दावली में, केवल लगभग 10 प्रतिशत ही परिवर्तित होता है। यह ऊर्जा हानि चित्र 5.15 में दर्शाई गई है, जहाँ एक खरगोश प्रत्येक 1.0 k cal खाए हुए भोजन के लिए 0.1 k cal द्वितीय उत्पादन करता है। आइए अब हम यह देखें कि बचे हुए 90 प्रतिशत का क्या होता है? चित्र 5.15 के चित्र में यह दिखाया गया है कि इस बची हुई ऊर्जा के एक बड़े भाग का

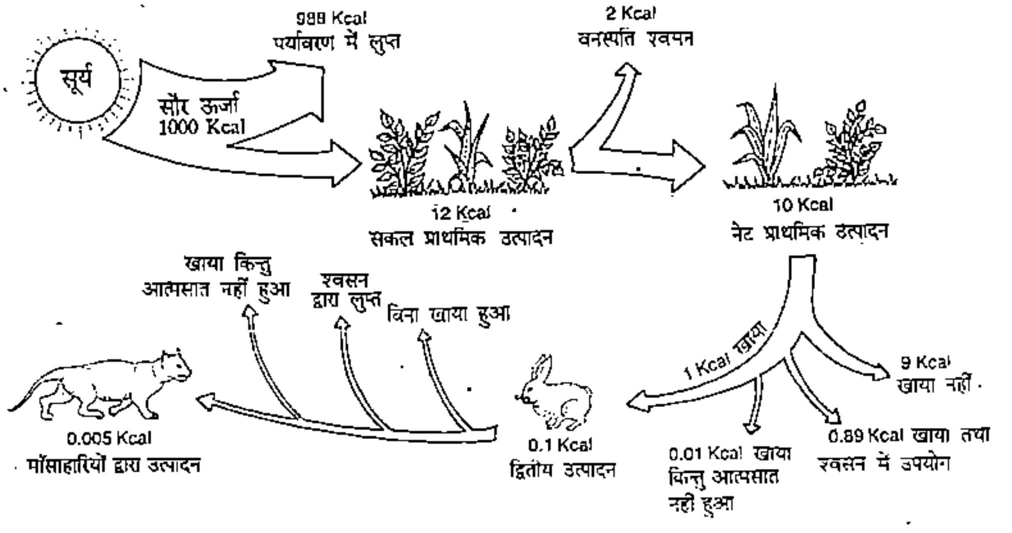

चित्र 5.15 : एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा संबंध। ऊर्जा स्थानांतरण के औसत परिमाण दर्शाए गए हैं, वास्तविक परिमाण विभिन्न तंत्रों के भिन्न-भिन्न होते हैं।

उपयोग श्वसन क्रिया में होता है। श्वसन, जंतु की गतिशीलता (movement) के लिए शक्ति प्रदान करता है तथा इसकी शारीरिक प्रक्रियाओं का अनुरक्षण करता है। ऊर्जा की कुछ मात्रा, आत्मसात् नहीं होती है

और इसीलिए मल में उत्सर्जित हो जाती है। अतः तुलनात्मक रूप से बहुत थोड़ी-सी ही ऊर्जा नवीन शारीरिक ऊतकों के उत्पादन के लिए शेष रह जाती है। इस संकल्पना को एक ज्ञात स्तर पर रखने के लिए, आइए हम एक वयस्क मानव का उदाहरण लें। एक व्यक्ति प्रतिदिन खाना खाता है, फिर भी उस स्वस्थ वयस्क व्यक्ति का भार नहीं बढ़ता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि तंत्रों में परस्पर अत्यधिक विभिन्नताएँ हैं, फिर भी साधारणतया, शाकाहारियों को उपलब्ध प्रत्येक 10 k cal (वनस्पति ऊतकों में से), लगभग 1 k cal ली जाती है तथा केवल लगभग 0.1 k cal शरीर भार के रूप में भंडारित होती है।

अब आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि द्वितीय उत्पादन, प्राथमिक उत्पादन से भिन्न है। द्वितीय उत्पादन प्रायः सकल तथा नेट वर्गों में विभाजित नहीं होता है, क्योंकि परपोषी जीव केवल पहले से ही निर्मित भोजन (manufactured food) का भक्षण करते हैं।

जैसे वास्तविक प्राथमिक उत्पादन की अनेकों विभिन्नताएँ उन्हें प्रभावित करती हैं, उसी प्रकार द्वितीय उत्पादन में भी होता है। मात्रा, गुणता (पोषण स्तर तथा पचनीयता को मिलाकर) तथा वास्तविक उत्पादन की उपलब्धता, ये तीन सीमाबद्धताएँ हैं।

5.9 ऊर्जा प्रवाह

जैसा कि आपको ज्ञात है कि हमारा समूचा विश्व सौर ऊर्जा पर निर्भर करने वाला तंत्र है तथा इसके हरे पौधे सौर ऊर्जा के प्रवेश द्वार हैं। इकाई-2, सहभाग 2.2.5, खंड-1, एल.एस.ई.-02 से आपको ज्ञात ही है कि पृथ्वी तक पहुँची हुई कुल सौर-ऊर्जा का बहुत ही छोटा हिस्सा हरे पौधों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। पौधों द्वारा प्राप्त किए गए सूर्य प्रकाश के इस छोटे से हिस्से पर ही समस्त जीव जगत निर्भर है। इस भाग में, हम आप के साथ इस बात की चर्चा करेंगे कि एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा के लिहाज़ से किस प्रकार विभिन्न जैविक घटक संबंधित हैं।

इस पाठ्यक्रम के पहले खंड के अध्ययन तथा एफ.एस.टी.-1 के चौथे खंड के अध्ययन से आपके पास इस विषय की पर्याप्त पृष्ठभूमि है। एक बात आपको याद रखनी चाहिए कि कोई भी जंतु उस भोजन से ऊर्जा प्राप्त करता है, जिसको वह खाता है। आपको यह भी ज्ञात है कि समस्त जीव अपना भोजन स्वयं नहीं बना सकते हैं। यह शक्ति केवल उत्पादकों के पास है। इसलिए किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न जीवों को अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादकों पर निर्भर करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि ऊर्जा प्रथम पोषण स्तर से अगले पोषण स्तरों पर प्रवाहित हो रही है। एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा क्रमबद्ध रूप से स्थानांतरित होती है। आगे के अध्ययन से पहले आप चित्र 5.16 को ध्यान से देखिए। क्या आपने चित्र में निम्नलिखित दो बातों पर ध्यान दिया है? (i) ऊर्जा प्रवाह केवल एक ही दिशा में है; तथा (ii) प्रत्येक अगले चरण पर ऊष्मा के रूप में कुछ ऊर्जा लुप्त हो जाती है।

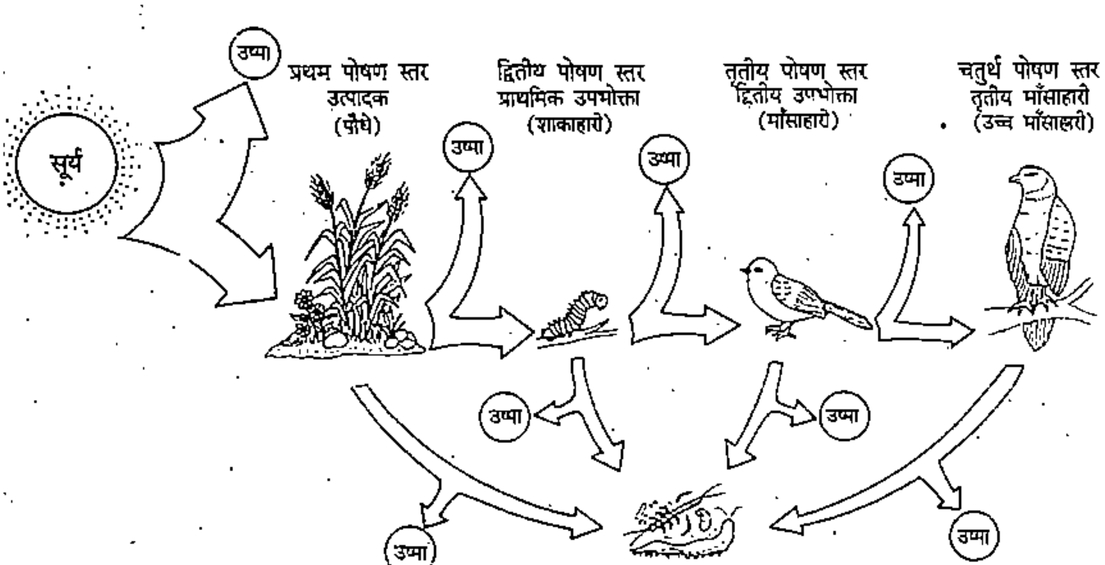

चित्र 5.16 : एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह। उत्पादक सौर ऊर्जा की थोड़ी सी मात्रा का अभिग्रहण करते हैं तथा इस ऊर्जा को पारिस्थितिक तंत्र के अन्द जैविक घटकों को चाहे वे शाकाहारी, मांसाहारी, उच्च मांसाहारी या अपघटक हो, उपलब्ध करवाते हैं।

आइए अब हम पहली बात अर्थात् ऊर्जा प्रवाह की दिशा पर चर्चा करें। ऊर्जा नीचे (उत्पादक) से ऊपर (शाकाहारी, माँसाहारी आदि) के पोषण स्तरों की ओर प्रवाहित होती है (यह कभी भी उल्टी दिशा, अर्थात् माँसाहारी से शाकाहारी तथा शाकाहारी से हरे पौधों की ओर प्रवाहित नहीं होती है। प्रत्येक पोषण स्तर के जीव अपने से नीचे वाले पोषण स्तर के जीवों पर ऊर्जा के लिए निर्भर रहते हैं। यह उर्जा उनके जीवित रहने तथा प्रजनन के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ हम सूर्य के प्रकाश को भोजन के रूप में सीधा परिवर्तित नहीं कर सकते हैं। इसके लिए हम पौधों पर निर्भर रहते हैं जो हमारे लिए इस प्रकार का परिवर्तन करते हैं। यह उष्मा गतिकी के पहले सिद्धांत (first law of thermodynamics) की पुष्टि करता है, कि ऊर्जा न उत्पन्न की जा सकती है और न ही इसका विनाश किया जा सकता है। किन्तु इसको एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा को, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा, हरे पौधे, ग्लूकोज़ का निर्माण कर रसायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। श्वसन क्रिया में जीव जिनमें पौधे भी शामिल हैं ग्लूकोस का उपयोग करते हैं और इस क्रिया में रसायनिक ऊर्जा मुक्त होती है। इस मुक्त हुई ऊर्जा का एक भाग ऊष्मा रूप में अपव्यय हो जाता है, जो ऊर्जा का तीसरा रूप है।

आइए अब हम दूसरी बात अर्थात् प्रत्येक पोषण स्तर पर कुछ ऊर्जा क्षय पर चर्चा करें। आपको याद होगा कि ऊष्मा गतिकी के दूसरे सिद्धांत (second law of thermodynamics) के अनुसार जब ऊर्जा एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित होती है, तब इसमें से प्रयोग न की जा सकने वाली कुछ ऊर्जा ऊष्मा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इसे हम एक अन्य उदाहरण के द्वारा समझेंगे। जब आप ज़मीन पर एक संदूक को खिसकाते हैं तब उसमें से कुछ ऊर्जा संदूक को खिसकाने में लगती है यह ऊष्मा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है, जो घर्षण (friction) के कारण होता है। यह ऊष्मा ऊर्जा आसपास के वातावरण में लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार जब मांसपेशीय कोशिकाओं (muscle cells) में भंडारित ऊर्जा बांह की मांसपेशियों के संकुचन (contraction) में प्रयोग होती है तब शरीर में से लाभप्रद ऊर्जा का कुछ भाग शारीरिक ऊष्मा के रूप में लुप्त हो जाता है। चूंकि ऊष्मा ऊर्जा का प्रयोग लाभप्रद कामों को करने के लिए नहीं किया जा सकता है, इसलिए ऊर्जा क्षय पूर्ति हेतु जैव प्रणालियों (biological system) किसी बाहरी स्रोत से ऊर्जा का उपलब्ध होना जरूरी है। यही नहीं, जीवों तथा पारिस्थितिक तंत्र निरंतर कार्यात्मक (functional) रहे, इसके लिए ऊर्जा उपलब्ध होती रहनी चाहिए।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह के विभिन्न पक्षों से संबंधित एक प्रश्न यह उठता है कि आहार शृंखला में इतने कम पोषण स्तर क्यों हैं? पोषण स्तरों के मध्य रोका न जा सकने वाला ऊर्जा क्षय, यह साबित करता है कि आहार शृंखलाएँ तुलनात्मक रूप से छोटी क्यों होती हैं? अधिक से अधिक चार या पाँच स्तर तक। ऊर्जा पिरामिड के अध्ययन के दौरान आप देख चुके हैं कि किस प्रकार ऊर्जा की मात्रा पहले पोषण स्तर से लेकर आगे के पोषण स्तर तक कम होती चली जाती है। चौथे या पाँचवें स्तर तक पहुँचते-पहुँचते ऊर्जा की मात्रा इतनी कम हो जाती है कि एक और पोषण स्तर को उपलब्ध नहीं करवाई जा सकती है। सामान्यतः एक पोषण स्तर से अगले उच्च पोषण स्तर तक पहुँचने में लगभग 90 प्रतिशत ऊर्जा का क्षय ऊष्मा के रूप में हो जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी भी पोषण स्तर विशेष की केवल 10 प्रतिशत ऊर्जा अगले पोषण स्तर के ऊतकों में समाविष्ट हो पाती है। अतः यदि शाकाहारी 1,000 k cal पौधों से प्राप्त ऊर्जा उपयोग करते हैं तो लगभग 100 k cal ऊर्जा शाकाहारी ऊतकों में परिवर्तित हो जाएगी, 10 k cal माँसाहारी ऊतकों में

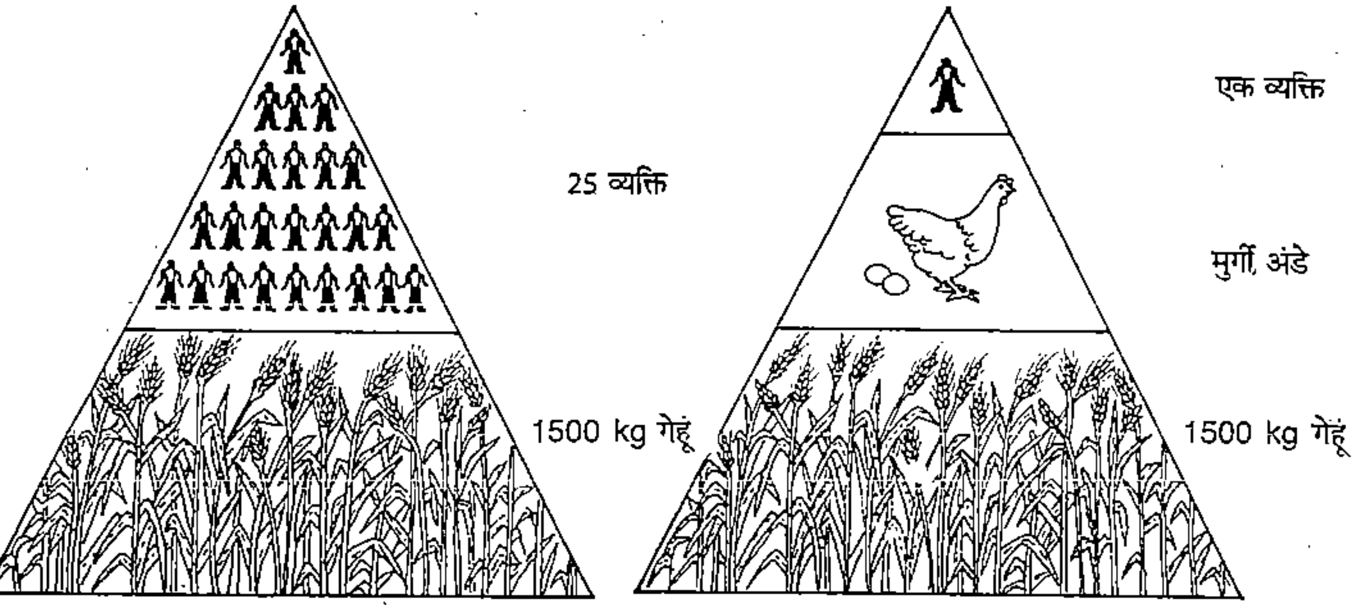

चित्र 5.17 : मानव उपभोग के लिए विभिन्न प्रकार के भोजनों की तुलनात्मक ऊर्जा प्रगुणता।

तथा 1 k cal उच्च माँसाहारी ऊतकों में परिवर्तित हो जाएगी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि वह भोजन जो सीधा पौधों से प्राप्त किया जाता है, उसकी तुलना में वह भोजन जो जंतुओं से प्राप्त होता है (जैसे माँस, अंडे तथा दुग्ध उत्पाद) उसमें ऊर्जा की कीमत अधिक होती है।

ऊर्जा शैली (in terms of energy) के रूप में यदि हम विचार करें तो गेहूँ की रोटी खाना अधिक किफायती होगा बजाय कि हम पहले गेहूँ मुर्गी को खिलाएँ और फिर मुर्गी के अंडे को या माँस खाएँ (चित्र 5.17 भी देखिए)। इसका एक कारण यह भी है कि मुर्गी को जीवित रखने अथवा क्रियाशील बनाए रखने में ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण भाग व्यय हो जाता है, जो गेहूं की रोटी खाने के दौरान नहीं होता है। इस संपूर्ण चर्चा का सार यह है कि आहार शृंखला जितनी ही छोटी होगी, उपयोग की जा सकने वाली ऊर्जा उतनी ही अधिक उपलब्ध होगी।

इस सिद्धांत का अभ्यास कई जीव अपनी ऊर्जा की आवश्यकताओं को पूरा करने में करते हैं। उदाहरणार्थ हम यहाँ बालीन व्हेल मछली (चित्र 5.18) के विषय में चर्चा करेंगे। यह व्हेल मछली विशेष रूप से खुले

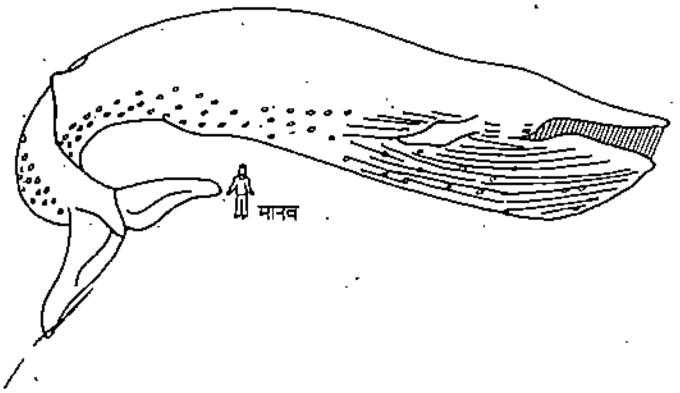

चित्र 5.18 : सबसे बड़ा स्तनपायी–बालीन व्हेल (Baleen whale)

सागरों के ऐसे भागों में पाई जाती है जहाँ इतने विशाल जंतु की ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भोजन स्रोत अपर्याप्त हैं। इस जंतु में एक विशेष अनुकूलन (adaptation) है जिसके कारण यह बड़ी सरलता से सूक्ष्म जंतु प्लवकों तथा छोटी-छोटी मछलियों को खा जाती है। इस विशालकाय जंतु के मुँह के ऊपरी हिस्से से नीचे की ओर एक शृंगी पदार्थ (horny material) की एक परत-सी लटकी रहती है। यह शृंगी पदार्थ बालीन (baleen) कहलाता है तथा यह पदार्थ हमारी उँगलियों के नाखूनों जैसे पदार्थ से मिलता-जुलता है। यह दंत-रहित जंतु अपने मुंह में बहुत सारा पानी भर लेता है, और यह पानी बालीन में से छनकर बाहर आ जाता है। इस प्रकार, इसके मुँह में एक बहुत बड़ी संख्या में छोटे-छोटे जीव प्लवक तथा वनस्पति प्लवक रह जाते हैं, जिसको यह निगल लेता है। इस प्रकार एक बड़ा अर्थात् बालीन माँसाहारी जीव व्हेल उस पारिस्थितिक तंत्र के बहुत ही छोटे आकार के जीवों को आहार रूप में ले रहा है, जहाँ बड़े आकार के जीव आहार के लिए उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार यह अपनी ऊर्जा आवश्यकताएँ पूरी कर रहा है।

ऊर्जा बजट (Energy budget)

हम यह अध्ययन कर चुके हैं कि समस्त जीवों के लिए ऊर्जा प्राप्त करना आवश्यक है, जिससे वे शरीर को संपोषित (maintain) एवं उसकी वृद्धि कर सकें तथा अतिरिक्त ऊर्जा प्राप्त कर प्रजनन कर सकें। प्रत्येक जीव जो एक काल विशेष में कुछ ऊर्जा अर्जन करता है, उसकी एक निश्चित ऊर्जा आय (energy income) है। हर जीव का एक ऊर्जा बजट है, जो इसकी विभिन्न क्रियाओं के लिए ऊर्जा की मात्रा निर्धारित करता है। इसी प्रकार, पूरे पारिस्थितिक तंत्र के लिए ऊर्जा बजट भी बनाया जा सकता है। ऐसा ही एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है (चित्र 5.19 देखिए)। इस प्रकार के अध्ययन से हमें यह पता चल सकता है कि एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा आय कितनी है तथा अगले पोषण स्तरों पर ऊर्जा का स्थानांतरण किस प्रकार होगा। ऊर्जा मापों को सामान्यतः calorie शब्द से दर्शाते हैं। आइए अब हम चित्र 5.19 की चर्चा करें, जिसे अभी आपने देखा है। यह चित्र दर्शा रहा है कि एक पारिस्थितिक तंत्र में अधिकांश ऊर्जा निवेश सौर विकिरण के रूप में हो रहा है, जबकि ऊर्जा निर्गत (output) अपव्यय होती हुई ऊष्मा के रूप में दर्शायी गई है। इस तथ्य पर ध्यान दें कि कुल ऊर्जा निवेश 41086 k cal/m²/yr (410,000 k cal/m²/yr सौर ऊर्जा तथा 486 kcal/m²/yr कार्बनिक पदार्थ के रूप में तंत्र में आयात किया गया) है यह ऊर्जा निर्गत (output) उस (407986 k cal/m²/yr) जो व्यर्थ ऊष्मा के रूप में लुप्त हो जाती है, तथा 2500 kcal/m²/yr जो तंत्र से कार्बनिक पदार्थ के रूप में निर्यात हो जाता है, से मेल खाती है।

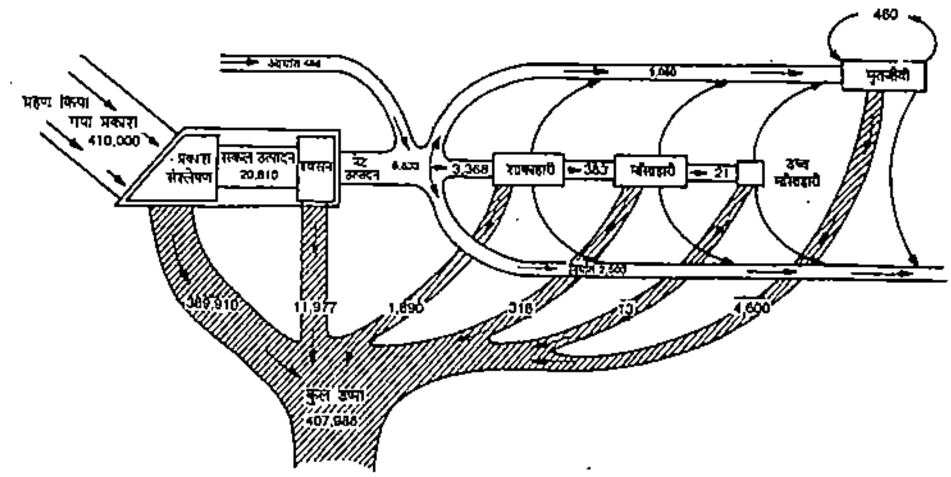

चित्र 5.19 : सिल्वर स्प्रिंग्स, फ्लोरिडा, का ऊर्जा प्रवाह चित्र। समस्त ऊर्जा आरेख k cal/m²/yr के रूप में दर्शाए गए हैं। (ओडम, 1975 पर आधारित)।

बोध प्रश्न 3

क) इस कथन को स्पष्ट कीजिए "पृथ्वी ग्रह के लिए ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है।"

....

....

....

....

....

....

ख) नीचे दिए गए चित्र में कलम या पेंसिल के प्रयोग से निम्नलिखित पहलुओं को दर्शाइए:

i) ऊर्जा प्रवाह की दिशा,

ii) प्रत्येक पोषण स्तर पर उपलब्ध ऊर्जा की तुलनात्मक मात्रा

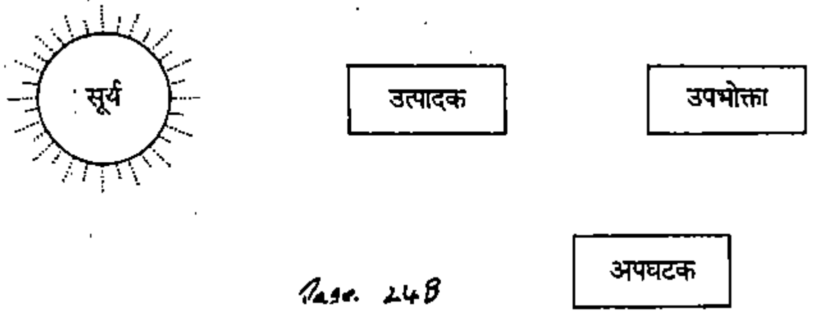

Page 248

ग) एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवेश किसके द्वारा होता है?

i) उत्पादक (producer)

ii) उपभोक्ता (consumer)

iii) अपरदहारी (detritivore)

iv) अपमार्जक (scavenger)

(सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए)

घ) वह दर जिस पर प्रकाश ऊर्जा कार्बनिक पदार्थ की रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है, वह पारिस्थितिक तंत्र का क्या कहलाती है:

i) नेट प्राथमिक उत्पादकता

ii) सकल प्राथमिक उत्पादकता

iii) नेट द्वितीय उत्पादकता

iv) सकल द्वितीय उत्पादकता

(सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए)

च) उत्पादक ऊतकों की लगभग कितनी रसायनिक ऊर्जा शाकाहारी ऊतकों की रासायनिक ऊर्जा बन जाती है?

i) 1 प्रतिशत

ii) 10 प्रतिशत

iii) 30 प्रतिशत

iv) 50 प्रतिशत

(सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए)

छ) निम्नलिखित पारिस्थितिक तंत्रों को उनके प्राथमिक उत्पादनों के अनुसार इस प्रकार सूचीवद्ध कीजिए कि सवसे अधिक उत्पादनशील संख्या एक पर हो तथा सवसे कम उत्पादनशील संख्या आठ पर हो।

मरुस्थल तथा आंशिक मरुस्थल क्षेत्र	( )
सवाना	( )
खुला महासागर	( )
ज्वारनदमुख	( )
शीतोष्ण पर्णपाती वन	( )
उष्णकटिबंधीय वर्षा वन	( )
प्रवाल भित्ति	( )
उग्र मरुस्थल	( )

5.10 आहार शृंखला तथा आहार जाल

आप आहार शृंखला तथा आहार जाल की संकल्पना से भली-भाँति परिचित है, क्योंकि इसे आप एफ.एस.टी.-1, इकाई -14 में पढ़ चुके हैं। उपरोक्त को आधार वनाते हुए हम निम्नलिखित सहभागों में इसकी विस्तार से चर्चा करेंगे।

5.10.1 आहार शृंखला (food chain)

आहार शृंखला में आहार से प्राप्त ऊर्जा एक स्रोत से अनेकों प्रजातियों के माध्यम से स्थानांतरित होती है। एक आहार शृंखला में प्रत्येक जीव अपने से पहले वाले जीव का भक्षण करता है। कोई खा रहा है और कोई खाया जा रहा है, यह क्रम निरंतर ज्यादातर हरे पौधों से प्रारंभ होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि हरे पौधे विकिरण ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं, जो भोजन के रूप में पौधों में भंडारित हो जाता है। निम्नलिखित शृंखला एक वहुत ही सरल भोजन शृंखला है:

सूर्य → घास → वकरी → मानव

इससे पहले के भाग में, आपने यह भी अध्ययन किया है कि प्रत्येक स्थानांतरण पर भोजन ऊर्जा का एक वड़ा हिस्सा ऊष्मा के रूप में लुप्त हो जाता है। यही कारण है कि आहार शृंखला में पोषण स्तरों की संख्या चार या पाँच स्तर तक नियंत्रित रहती है। जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में सूक्ष्म हरे पौधे, जिनको वनस्पति-प्लवक, शैवाल कहते है या अन्य जल-पौधे वही कार्य करते हैं, जो घास तथा वृक्ष इत्यादि जमीन पर करते हैं। दूसरे शब्दों में, जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में अधिकतर आहार शृंखलाओं की शुरुआत वनस्पतिप्लवकों, शैवालों या अन्य जल-पौधों से होती है।

प्रथम पोषण स्तर में जीव के प्रकार के आधार पर तीन तरह की आहार शृंखलाएँ देखी जा सकती हैं, जो निम्न हैं:

i) चारण आहार शृंखला (grazing food chain)

ii) अपरद आहार शृंखला (detritus food chain); तथा

iii) अतिरिक्त आहार शृंखला (auxillary food chain)

i) **चारण आहार शृंखला** : हममें से अधिकांश लोग चारण आहार शृंखला से परिचित हैं। एक आहार शृंखला जिसमें गाय या हिरन जैसे जीव जो घास चरते है; अर्थात् पौधों पर निर्भर रहते हैं, इस प्रकार की आहार शृंखला के उदाहरण हैं। इसी प्रकार, प्राणी प्लवकों एवं मछलियों द्वारा वनस्पतिप्लवकीय शैवालों का भक्षण, चारण आहार शृंखला का एक दूसरा उदाहरण है। अधिकांश पारिस्थितिक तंत्रों में कुल सामूहिक ऊर्जा का केवल एक छोटा सा भाग ही चारण आहार शृंखलों में प्रवाहित होता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक स्तर पर कार्बनिक पदार्थों का एक बड़ा हिस्सा अपरद आहार शृंखला में (मृत्यु, अपरदन तथा जीवों के उत्सर्जन द्वारा) प्रवेश करता रहता है।

वन तथा सागर की चारण आहार शृंखलाएं एक-दूसरे से थोड़ी भिन्न होती है। आइए हम देखें कि यह किस अर्थ में एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। सागर-आहार शृंखलाएँ सबसे लंबी होती हैं, पांच स्तरों तक की, और वन-आहार शृंखलाएँ तुलनात्मक रूप से छोटी होती हैं। इनमें तीन या कभी-कभी चार स्तर होते हैं। जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में चारण आहार शृंखलाओं के लंबे होने का एक कारण वनस्पतिप्लवकों एवं प्राणीप्लवकों का आकार छोटा है, जो मुख्यतः पहले दो पोषण स्तरों का निर्माण करते हैं। यदि द्वितीय पोषण स्तर पर अनेकों छोटे-छोटे शाकाहारी हैं तो इसका अर्थ यह है कि तीसरे स्तर पर भी माँसाहारी तुलनात्मक रूप से छोटे तथा अनेकों होंगे तथा एक अतिरिक्त माँसाहारी स्तर, अंतिम स्तर से पहले होगा। इस स्तर पर पहले की अपेक्षा बड़े माँसाहारी जीव कम संख्या में होंगे।

ii) **अपरद आहार शृंखलाएँ** : अपरद आहार शृंखलाएँ मृत कार्बनिक पदार्थों से प्रारम्भ होती हैं; जो ऊर्जा के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। मृत पौधे तथा उनके भाग, मृत जीव एवं जीवों के मल पदार्थ, कार्बनिक पदार्थों की एक बड़ी मात्रा को देते रहते हैं। इस प्रकार की आहार शृंखलाएँ सभी पारिस्थितिक तंत्रों में व्याप्त हैं किन्तु वन पारिस्थितिक तंत्रों एवं ऊथले जलीय समुदायों (shallow water communities) में ये शृंखलाएं आम होती हैं।

सूक्ष्मदर्शीय कवकों (fungi), जीवाणुओं (bacteria), एवं मृतपोषियों (saprophytes) की विभिन्न प्रजातियाँ अपनी अतिजीविता एवं वृद्धि के लिए आवश्यक ऊर्जा कार्बनिक पदार्थों के अपघटन द्वारा प्राप्त करती हैं। इस प्रक्रिया में वे उन कार्बनिक पदार्थों के विभिन्न पोषक तत्वों को मुक्त करते हैं जो हरे पौधों द्वारा उपयोग कर लिए जाते हैं। अपरद आहार शृंखलाएँ, चारण आहार शृंखलाओं एवं अतिरिक्त आहार शृंखलाओं से विशेषतः मध्य जीवों के माध्यम से जुड़ी रहती है, जिससे एक घेरे (circuit) से दूसरे घेरे में ऊर्जा एवं पदार्थ प्रवाहित हो सकें। उदाहरणार्थ मवेशी, पौधों में भंडारित समस्त ऊर्जा आत्मसात् (assimilate) नहीं कर पाते हैं तथा वे अपचयित अपशेष (undigested residues) मल पदार्थों के रूप में त्यागते हैं, जोकि अपघटकों एवं अपरदहारियों को उपलब्ध हो जाते हैं तथा वे उससे ऊर्जा प्राप्त कर, पोषक तत्वों को मुक्त करते रहते हैं।

अपरद आहार शृंखलाएँ मुख्यतः मृदा में स्थापित होती हैं या जलीय पारिस्थितिक तंत्रों के तलछटों (sediments) में स्थापित होती हैं। वे प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों के महत्वपूर्ण घटक बनाती हैं तथा स्व-संपोषण (self-sustenance) एवं पारिस्थितिक संतुलन (ecological balance) बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। अपरद आहार शृंखलाएँ, आधुनिक मानव की कुछ समस्याओं जैसे गंदे पानी की व्यवस्था (sewage treatment) तथा जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए अपरद आहार शृंखला का ज्ञान अत्यधिक व्यावहारिक साबित हो सकता है।

अधिकांश प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों में चारण एवं अपरद दोनों ही प्रकार की आहार शृंखलाएँ होती हैं। परन्तु उनका तुलनात्मक महत्व विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में भिन्न-भिन्न होता है। स्थलीय एवं ऊथले जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में अपरद आहार शृंखलाएँ काफी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वार्षिक ऊर्जा प्रवाह (annual energy flow) का एक बड़ा हिस्सा इस घेरे के माध्यम से प्रवाहित होता है। ज्वारीह कच्छों (tidal marshes) में लगभग 90 प्रतिशत प्राथमिक उत्पादन अपरद आहार शृंखलाओं के माध्यम से होता है। गहरे जलीय तंत्रों में चारण आहार शृंखलाओं के छाए (dominate) रहने का कारण जीवों का जल्दी-जल्दी प्रजनन करना तथा पैदावार की ऊँची दर है।

iii) **अतिरिक्त आहार शृंखलाएँ** : चारण तथा अपरद आहार शृंखलाओं के अलावा कुछ अन्य अतिरिक्त आहार शृंखलाएँ पर पोषियों (parasites) एवं अपमार्जकों (scavengers) द्वारा परिचालित (operate) होती हैं। कुछ परजीवी आहार शृंखलाएँ काफी जटिल होती हैं और इन शृंखलाओं में ऐसे जीव भी होते हैं जिनका परस्पर कोई संबंध नहीं है। एक हिरन जिसको आंतरिक गोलकृमियों (internal roundworms) द्वारा खाया जा रहा है तथा बाह्य चिचड़ियों (external ticks) द्वारा खाया जा रहा है या एक मानव जिसके रक्त में मलेरिया परजीवी (malarial parasites) है, परजीवी आहार शृंखलाओं के उदाहरण हैं। प्रायः परजीवी संबंध

पर्याप्त आवेष्टित होते हैं क्योंकि परजीवी विभिन्न प्रकार के रोगवाहकों द्वारा या असंबंधित माध्यमिक होस्ट जीवों द्वारा संचारित होते हैं। अन्य आहार शृंखलाओं की भाँति ही समस्त अतिरिक्त आहार शृंखलाओं का मूलभूत ऊर्जा स्रोत सौर-ऊर्जा है, जो पौधों द्वारा रासायनिक ऊर्जा में बदल दिया जाता है।

5.10.2 आहार जाल

प्रकृति में कोई भी आहार शृंखला अलग-अलग नहीं होती है और न ही इतनी सरल होती है, जैसा कि ऊपर दिए गए उदाहरणों से आपको लगा होगा। एक पौधा एक ही समय में अनेकों शाकाहारियों के लिए आहार का स्रोत हो सकता है, उदाहरणार्थ–घास, हिरन, गाय, टिड्डी या खरगोश का संभरण कर सकता है। इसी प्रकार, एक शाकाहारी अनेकों माँसाहारी प्रजातियों के लिए आहार स्रोत हो सकता है (चित्र 5.20 देखिए)। इसके अतिरिक्त, मौसम के हिसाब से आहार उपलब्धता तथा शाकाहारियों एवं माँसाहारियों की प्राथमिकताएँ बदल सकती हैं (उदाहरणार्थ, हम गर्मियों में आम खाते हैं तथा सर्दियों में संतरे खाते हैं)।

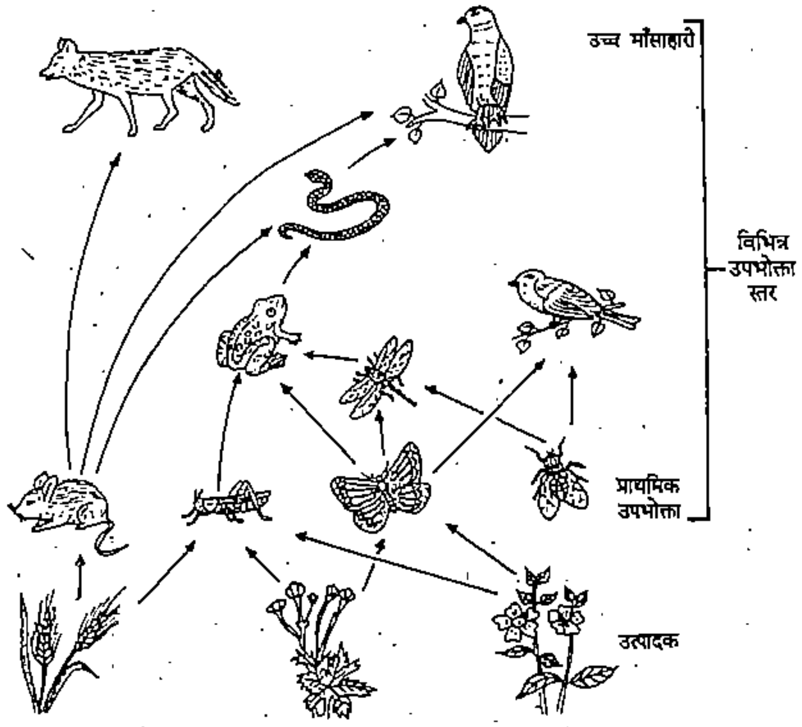

चित्र 5.20 : एक सरल आहार जाल

एक पारिस्थितिक तंत्र में, यदि समस्त आहार शृंखलाओं के अंतःसंबंधों का मानचित्र बनाया जाए तब तक एक आहार जाल बन जाएगा (चित्र 5.20 देखिए)। आहार शृंखला तो आहार जाल में ऊर्जा स्थानांतरण का केवल एक मार्ग दर्शाती है जबकि एक आहार जाल एक पारिस्थितिक तंत्र में जीवों के मध्य ऊर्जा एवं पोषक तत्वों के समस्त संभव स्थानांतरण दर्शाता है।

अधिकांश समुदायों (communities) के आहार जाल बहुत जटिल होते हैं, क्योंकि इनमें अनगिनत प्रकार के जीव शामिल होते हैं। चूँकि एक समुदाय में अनेकों अंतःसंबंधित आहार शृंखलाएँ होती हैं, इसीलिए इस प्रकार के एक या एक से अधिक संबंधों के बदल जाने के बाद भी एक समुदाय स्थिर रहता है। उदाहरणार्थ एक नदी के किनारे पारिस्थितिक तंत्र में यदि टिड्डियों की संख्या कम हो जाए या किसी विपत्ति के कारण वे पूर्णतया समाप्त हो जाएँ तब वे मेंढक जिनका भोजन टिड्डियाँ हैं, न मर जाएँगे न ही इस स्थान को छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाएँगे बल्कि वे अब मक्खियों या तितलियों को अपना आहार बना लेंगे (चित्र 5.20 देखिए)। इससे यह साबित होता है कि किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में आहार जाल स्थिरता प्रदान करता है। इसका अर्थ यह भी हुआ कि एक पारिस्थितिक तंत्र में जितने भी अधिक घटक होंगे, वह तंत्र उतना ही स्थिर होगा।

5.11 पारिस्थितिक तंत्र नियंत्रण

आइए हम इस भाग में पारिस्थितिक तंत्र के कार्य (functioning) के एक और अन्य महत्वपूर्ण पक्ष की चर्चा करें कि किस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र अपना पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखता है। आपको अब तक

Homeo = Same = समान, सम
Stasis = Standing = स्थैतिकता

के अध्ययन से यह ज्ञात हो चुका होगा कि पारिस्थितिक तंत्र एक सक्रिय (dynamic) तंत्र है, जिसमें अनेकों घटनाएँ घटती रहती हैं। उदाहरणार्थ, जीव आहार लेते हैं और फिर किसी अन्य जीव का आहार बनते हैं, नमी एवं पोषक तत्व तंत्र के अंदर एवं बाहर प्रवाहित होते रहते हैं तथा मौसम बदलते रहते हैं। इन समस्त परिस्थितियों के होते हुए भी पारिस्थितिक तंत्र बने रहते (persist) हैं और छोटी-छोटी बाधाओं (slight disturbances) से उबर आते हैं। पारिस्थितिक तंत्र का यह सामर्थ्य जिसके द्वारा वह स्वयं को नियंत्रित (self-regulates) करता रहता है तथा स्वयं को संपोषित करता रहता है, इसे समस्थापन (homeostasis) कहते हैं। क्या पारिस्थितिक तंत्र की अव्यवस्था (perturbations) से उबरने का यह सामर्थ्य असाधारण (remarkable) नहीं है? आइए हम एक सामान्य उदाहरण लें, जिससे वह समझ सकें कि पारिस्थितिक तंत्र में छोटी-छोटी बाधाओं के उपरांत भी किस प्रकार यह संतुलन बनाए रखता है। एक घास के मैदान का उदाहरण लें, जब सूखा पड़ता है तब पौधे ठीक प्रकार से वृद्धि नहीं कर पाते हैं। वे चूहे जिनका आहार घास है, कुपोषित रह जाते हैं और जब ऐसा होता है तब चूहों की जन्म दर घट जाती है तथा भूखे चूहे बिलों में वापस चले जाते हैं और निष्क्रिय हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में, उन्हें कम भोजन की आवश्यकता पड़ती है तथा वे परभक्षियों (predators) से बचे रहते हैं, जिससे उनकी मृत्यु दर घट जाती है। उनका इस प्रकार के व्यवहार उनकी जनसंख्या संतुलन की रक्षा करता है और साथ ही उस घास की भी रक्षा करता है, जो इसके द्वारा शीतनिष्क्रियता (hibernation) के कारण खाई नहीं गई। इस रचना-तंत्र को पुनर्निवेशन-नियंत्रण (feedback-regulation) भी कहते हैं तथा यह पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र के लिए प्रमुख नियंत्रण रचना-तंत्र है। आपको ज्ञात होगा कि एक पारिस्थितिक तंत्र विभिन्न प्रकार के जीवों से बनता है। अतः पारिस्थितिक तंत्र में समस्त जीव अनेकों विभिन्न पुनर्निवेशन कुंडलियों (feedback loops) के भाग हैं। एक पुनर्निवेशन कुंडली वह संबंध है जिसके अंतर्गत किसी भी मूल दर में भिन्नता आने से शेष आगे आने वाली भिन्नताओं की दिशा दर में परिवर्तन हो जाता है। ऊपर दिए गए उदाहरण में, हमने परिचित जीवों का बहुत ही छोटा वर्ग लिया है, जो प्रमुख रूप से चूहे एवं पौधे हैं।

अब हम पारिस्थितिक तंत्र संतुलन के एक अन्य पहलू पर बात करेंगे। एक घटक जो कम या मध्यम पर्यावरणीय तनावों के अंतर्गत पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता या दृढ़ता को प्रभावित करता है, वह है–स्पीशीज़ विविधता (species diversity), स्पीशीज़ संख्या तथा उनका एक दिए हुए पारिस्थितिक तंत्र में तुलनात्मक आधिक्य (abundance)। स्पीशीज़ की अधिक विविधता, पारिस्थितिक तंत्र की एक लंबे समय तक दृढ़ता बढ़ाए रख सकती है। इसका कारण यह है कि अनेकों विभिन्न स्पीशीज़ के कारण उनके मध्य शृंखलाएँ भी अधिक होंगी और इस कारण कोई भी खतरा या परेशानी अच्छी तरह से विभाजित हो जाएगी। एक ऐसा पारिस्थितिक तंत्र, जिसमें विभिन्न स्पीशीज़ हैं, में पर्यावरणीय तनाव (environmental stress) के लिए प्रतिक्रिया (respond) करने के लिए अनेकों रास्ते उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ एक ऐसे पारिस्थितिक तंत्र में जिसमें जटिल आहार जाल है, यदि एक स्पीशीज़ लुप्त हो जाए अथवा आवश्यकता से अधिक कम हो जाए तब भी अन्य स्पीशीज़ के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि अधिकांश उपभोक्ताओं को आहार प्राप्त करने हेतु अनेकों विकल्प उपलब्ध हैं। इसके विपरीत, एक अत्यधिक विशिष्ट कृषि संवर्धित पारिस्थितिक तंत्र में, जिसमें केवल एक ही प्रकार की फसल उगाई गई है जैसे गेहूँ या धान, यह केवल एक वनस्पति रोग या कीट के कारण छिन्न-भिन्न हो सकता है। अतः इस पूरी चर्चा का सारांश यह है कि अत्यधिक संतुलित पारिस्थितिक तंत्र में अनेकों विभिन्न स्पीशीज़ होती हैं।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर आप शायद यह सोच रहे होंगे कि पारिस्थितिक तंत्र में किसी भी रुकावट का सामना करने की सामर्थ्य है। परन्तु हम आपको बताना चाहेंगे कि पारिस्थितिक तंत्र का यह सामर्थ्य सीमित है। परम संकट जैसे आग भू-दृश्य का विनाश कर देता है, अति-शोषण (over-exploitation) (उदाहरण अनियंत्रित जंगल काटना, खानें खोदना) या अत्यधिक सरलता (जैसे एक ही प्रकार के पौधे लगाना या एक ही प्रकार की फसल उगाना) या बहुत ही कठोर (severe) या लंबे समय तक चलते रहने वाले तनाव (prolonged stress) (जैसे सूखा, प्रदूषण) नियंत्रण क्रियाविधि में गंभीर रूप से बाधा डालते हैं जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र का अवक्रमण (degradation) होता है। इस अध्ययन से हम यह समझ सकते हैं कि हमें अपने व्यवहार को नियंत्रित रखना चाहिए जिससे हम पारिस्थितिक तंत्र को अधिक नुकसान न पहुँचाएँ।

बोध प्रश्न 4

क) आपकी आहार शृंखला में,

i) उत्पादक कौन है? ....

ii) उपभोक्ता कौन है? ....

iii) शाकाहारी कौन है? ....

iv) माँसाहारी कौन है? ....

v) अपघटक कौन है? ....

vi) स्वयंपोषी कौन है? ....

vii) परपोषी कौन है? ....

viii) पर-भक्षी कौन है? ....

ख) एक आहार-जाल, आहार-शृंखला की तुलना में अधिक स्थिर क्यों होता है?

....

....

....

ग) यदि कुछ पक्षी खेत में गेहूँ खा रहे हैं तथा किसान इन पक्षियों को मार डाले तब :

i) प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र प्रभावित नहीं होगा

ii) प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र विघटित हो सकता है

iii) जीवमंडल स्थिरता की ओर अग्रसर होगा

iv) जीवमंडल विघटन की ओर अग्रसर होगा

v) (ii) और (iv) दोनों ही

[सही उत्तर पर (√) का सही निशान लगाइए]

घ) एक उत्पादक होता है :

i) आहार शृंखला के आरंभ में

ii) पारिस्थितिकीय पिरामिड के तल पर

iii) एक स्वयं-पोषी

iv) ये सभी

[सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए]

च) एक अपरद आहर शृंखला कहाँ प्रारंभ होती है?

i) सदैव महासागर में

ii) एक उत्पादक से

iii) अपघटित कार्बनिक पदार्थ से

iv) वायु प्रदूषण से

[सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए]

छ) एक प्राकृतिक आहार-जाल :

i) में केवल चारण आहार शृंखलाएँ होती हैं

ii) में अनेकों भोजन-स्तर होते हैं

iii) सामान्यतः स्थिर होता है

iv) ये सभी

[सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए]

ज) किस प्रकार से अपघटक, उत्पादकों के समान हैं :

i) इनमें से कोई भी एक चारण आहार शृंखला का पहला सदस्य होता है

ii) दोनों ही अन्य जीवों के लिए ऑक्सीज़न उत्पन्न करते हैं

iii) दोनों को ही पोषक तत्वों के स्रोत एवं ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

iv) दोनों ही जीव-मंडल के लिए कार्बनिक आहार उपलब्ध करवाते हैं।

[सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए]

झ) अधिकांश आहार शृंखलाओं में कितनी स्पीशीज़ होती हैं :

i) 1 या 2 स्पीशीज़

ii) 3 या 4 स्पीशीज़

iii) 9 या 10 स्पीशीज़

iv) 16 से अधिक स्पीशीज़

[सही उत्तर पर (√) का निशान लगाइए]

5.12 सारांश

हमने इस इकाई में पारिस्थितिक तंत्र की कार्यकी के विभिन्न पक्षों का परीक्षण किया है। इससे आप यह अच्छी तरह समझ चुके होंगे कि :

- पारिस्थितिक तंत्र प्रकृति की कार्यात्मक इकाइयाँ हैं, जिनके आकार या सीमाएँ सुस्पष्ट नहीं होती हैं।
- पारिस्थितिक तंत्र क्रियात्मक रूप से समन्वित होते हैं, जिसमें विभिन्न जैविक एवं अजैविक घटक होते हैं तथा ये संघटित एवं साकल्यवादी ढंग से संचालन करते हैं।
- प्रत्येक जीव में पर्यावरणीय घटक विशेष की एक सीमा तक सहन करने की क्षमता होती है। इस परिसर को सहिष्णुता परिसर कहते हैं। सहिष्णुता परिसर की चरम सीमाओं के दोनों ओर यह घटक सीमांत हो जाता है।
- भोजन-स्तर की संकल्पना हमें यह बताती है कि कौन-कौन से जीव पोषण हेतु एक ही सामान्य स्रोत को आबंधित करते हैं।
- एक पारिस्थितिक तंत्र के स्तरीय संबंधों को पारिस्थितिकीय पिरामिडों के रूप में आरेखित किया जा सकता है। पिरामिड का आधार तल उत्पादकों को दर्शाता है तथा ऊपर की ओर बढ़ते हुए अन्य तल अगले उच्च भोजन-स्तर को दर्शाते हैं।
- पारिस्थितिकीय पिरामिड तीन प्रकार के होते हैं : (i) संख्या-पिरामिड : जो प्रत्येक भोजन स्तर पर जीवों की कुल संख्या दर्शाता है, (ii) जीव-भार पिरामिड : जो प्रत्येक भोजन-स्तर पर जीवों का कुल शुष्क-भार दर्शाता है, (iii) ऊर्जा-पिरामिड : जो प्रत्येक अगले भोजन-स्तर पर उपयोग की गई ऊर्जा की मात्रा दर्शाता है।
- पारिस्थितिकीय पिरामिड : पारिस्थितिक तंत्र की कार्यात्मक संरचना से संबंधित आवश्यक जानकारी देते हैं, किंतु इनकी कुछ सीमाबद्धताएं भी हैं। इनमें से महत्वपूर्ण हैं (क) अपघटक, जो दर्शाए नहीं जाते हैं, (ख) जो विभिन्न पोषण स्तरों से आहार प्राप्त करते हैं, उन जीवों का उल्लेख नहीं किया जाता है, (ग) मौसमी एवं दैनिक विभिन्नताओं का अनुमान नहीं लग पाता है, तथा अपरद एक ऊर्जा स्रोत है, इसका भी अनुमान नहीं लग पाता है (घ) एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर तक स्थानांतरण की दर ज्ञात नहीं है।
- ऊर्जा क्रमबद्ध रूप से स्थानांतरित होती है, अर्थात् सूर्य से उत्पादक को, उपभोक्ता को और फिर अपघटक को मिलती है। ऊर्जा प्रवाह सदा उतार की ओर तथा एक ही दिशा में होता है। ऊर्जा स्थानांतरण की क्रिया के दौरान ऊष्मा लगातार लुप्त होती है जैसा कि ऊष्मा गतिकी पहले एवं दूसरे सिद्धांतों में बताया गया है। एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह का परिणाम बताया जा सकता है। ऊर्जा आयव्ययक, एक पारिस्थितिक तंत्र में एक दी हुई अवधि में ऊर्जा प्रवेश एवं ऊर्जा निकास दर्शाता है।
- पारिस्थितिक तंत्र वे संस्थान हैं जो सौर-ऊर्जा से शक्ति प्राप्त करते हैं। हरे पौधे सौर-ऊर्जा का अभिग्रहण करते है तथा कार्बनिक पदार्थों के रूप में भंडारित होते हैं। एक पारिस्थितिक तंत्र का सकल प्राथमिक उत्पादकता वह दर है, जिस पर प्रकाश संश्लेषण के दौरान कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। नेट प्राथमिक उत्पादकता उस दर को दर्शाता है, जिसमें से कुछ पदार्थ वनस्पति ऊतकों में समाविष्ट हो जाते हैं। पौधों की उपापचयी क्रियाओं में ऊर्जा लुप्त होने के परिणामस्वरूप सकल प्राथमिक उत्पादन नेट प्राथमिक उत्पादन से कम होता है। कार्बनिक आहार पर निर्भर रहने वाले उपभोक्ताओं के भार में वृद्धि को द्वितीय उत्पादन कहते हैं।

- उत्पादकता विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में तथा भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न होता है। जल उपलब्धता, खनिजों की मात्रा तथा सौर विकिरण के अतिरिक्त अनेकों अन्य घटक हैं, जो विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में उत्पादकता सीमित करते हैं।
- ऊर्जा एक पोषण स्तर से अगले पोषण स्तर की ओर प्रवाहित होती है। प्रत्येक स्थानांतरण में लगभग 90 प्रतिशत ऊर्जा लुप्त हो जाती है। एक पारिस्थितिक तंत्र में औसतन एक पोषण स्तर में प्रवेश करती हुई ऊर्जा का लगभग 10 प्रतिशत भाग ही अगले पोषण स्तर पर उपलब्ध हो पाता है। इसलिए उस जीव-भार का जिसका पारिस्थितिक तंत्र एक पोषण स्तर पर संभरण कर सकता है, शीघ्रताशीघ्र घटने लगता है। प्रत्येक पोषण स्तर पर ऊर्जा का क्षय तथा आहार शृंखला में पोषण स्तरों को चार या पाँच स्तर तक सीमित कर देता है।
- विभिन्न पोषण स्तरों के जीव आहार संबंधों के माध्यम से परस्पर संबंधित हैं। इस तथ्य को आहार शृंखला के रूप में दर्शाया जा सकता है। यहाँ तीन मुख्य प्रकार की आहार शृंखलाएँ देखी जा सकती हैं, जो इस प्रकार हैं : चारण, अपरद तथा अतिरिक्त आहार शृंखलाएँ। इन शृंखलाओं का तुलनात्मक महत्व विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में भिन्न-भिन्न हो सकता है।
- पारिस्थितिक तंत्र का अस्तित्व अत्यधिक सक्रिय है। इन तंत्रों ने प्रभावशाली समस्थापन रचना-तंत्र पुनर्निवेशन के माध्यम स्व-नियंत्रण के लिए विकसित किया है।

5.13 अंत में कुछ प्रश्न

1) क) उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

समस्त पारिस्थितिक तंत्रों में निम्न तीन वर्गों के जीव होते हैं .... जो कार्बनिक पदार्थों के उत्पादन के लिए पोषक तत्व तथा ऊर्जा के अजैविक स्रोत का प्रयोग करते हैं, ... जो जीवों के कार्बनिक पदार्थों को पाचित कर ऊर्जा एवं पोषक तत्व प्राप्त करते हैं तथा .... जो मृत जीवों के कार्बनिक पदार्थों तथा उनके मल पदार्थों तथा अन्य कार्बनिक अवशेषों के पाचन द्वारा पोषण एवं ऊर्जा प्राप्त करते हैं। इन तीन वर्गों में से पारिस्थितिक तंत्र .... के बिना भी कार्यात्मक रह सकता है।

2) क) सहिष्णुता-परिसर–इस संकल्पना की चर्चा करें। क्या आप ऐसे पारिस्थितिक तंत्र का उदाहरण दे सकते हैं जिसमें सहिष्णुता परिसर का अतिक्रमण हो गया है? इन घटनाओं के दौरान क्या हुआ, इस पर भी प्रकाश डालें।

....

....

....

....

....

....

....

....

ग) सीमांत घटक क्या है? अधिकांश स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों में सीमांत घटक कौन-सा है?

....

....

....

....

....

3) क) निम्नलिखित में से कौन-सा पिरामिड कभी भी उल्टे आकार का नहीं हो सकता है?
जीव-भार पिरामिड, संख्या पिरामिड, ऊर्जा पिरामिड

....

ख) पारिस्थितिकीय पिरामिडों में कौन से पोषण स्तर का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है?

....

ग) कुछ जलीय पारिस्थितिक तंत्रों जैसे–झील तथा सागर में जीव-भार पिरामिड उल्टा आकार क्यों ले लेता है?

....

4) क) एक पारिस्थितिक तंत्र की नेट प्राथमिक उत्पादकता, उत्पादक ऊतक निर्माण की वह मात्रा है, जो प्रति इकाई क्षेत्र प्रति इकाई समय में बनी है, या .... उत्पादकता, ऋण .... में प्रयोग हुई रासायनिक ऊर्जा। आहार शृंखला के प्रत्येक स्तर पर रासायनिक ऊर्जा की मात्रा घटती जाती है, क्योंकि प्रत्येक जीव कुछ ऊर्जा का .... में प्रयोग करता है, यह क्रिया रासायनिक ऊर्जा को .... में परिवर्तित कर देती है, और इस रूप में ऊर्जा आहार शृंखला से लुप्त हो जाती है।
(उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए)

ख) उत्पादकता को k cal/m²/yr या g/m²/yr में अभिव्यक्त किया जा सकता है। इन दो प्रकार की अभिव्यक्तियों की समानताओं एवं विभिन्नताओं पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

ग) उत्पादकता को कौन प्रभावित करता है?

....

....

घ) किन पारिस्थितिक तंत्रों में उच्च नेट उत्पादकता होती है?

....

....

....

....

च) द्वितीय उत्पादन क्या है? यह प्राथमिक उत्पादन से किस प्रकार भिन्न है?

....

....

....

5. क) उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा मुख्यतः .... रूप में प्रवेश करती है तथा मुख्यतः .... रूप में ऊर्जा का पारिस्थितिक तंत्र से निकास होता है। पारिस्थितिक तंत्र में यह ऊर्जा .... रूप में जीव से जीव तक स्थानांतरित होती है।

ख) क्या पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का पुनः चक्रण हो सकता है? हाँ या नहीं में उत्तर दीजिए। [ ]

ग) कल्पना कीजिए कि एक पौधा सूर्य से प्राप्त प्रकाश ऊर्जा का एक प्रतिशत वनस्पति पदार्थों में परिवर्तित करता है तथा एक जीव अपने द्वारा ग्रहण किए गए आहार ऊर्जा का 10 प्रतिशत भंडारित करता है। यदि हम 10,000 calorie प्रकाश ऊर्जा से आरंभ करें, तब एक व्यक्ति को कितनी ऊर्जा उपलब्ध होगी, जो निम्नलिखित को खाता है :

i) गेहूँ .... calorie
ii) मुर्गी .... calorie
iii) मेढ़क .... calorie

घ) कुछ अन्वेषकों (explorers) का एक दल द्वीप में फँस गया है। उनके पास केवल कुछ मुर्गियाँ तथा कुछ गेहूँ भंडार में है। इन स्रोतों को लंबे समय तक चलाने के लिए उनको क्या करना चाहिए? क्या वे पहले :

i) गेहूँ खाएँ, जब गेहूँ समाप्त हो जाए तब मुर्गियों को मारकर खाएँ, या

ii) मुर्गियों को गेहूँ खिलाएँ, तथा उनके अंडों को खाएँ, जब गेहूँ भी समाप्त हो जाए तब मुर्गियों को मारकर खाएँ, या

iii) मुर्गियों को मारकर खाएँ और जब मुर्गियाँ समाप्त हो जाएँ तब गेहूँ खाएँ?

सही उत्तर की संख्या नीचे दिए गए बॉक्स में लिखिए।

[ ]

अपने उत्तर की पुष्टि 4 या 5 पंक्तियों में कीजिए।

....
....
....
....

च) क्या किसी पारिस्थितिक तंत्र में एक या एक से अधिक आहार जाल होते हैं?

....

छ) 1970 के दशक के दौरान शार्क मछलियों को मारने का अभियान एक भ्रांति बन गया। सागरीय आहार श्रृंखलाओं में शार्क मछली महत्त्वपूर्ण क्यों हैं? यदि बहुत बड़ी संख्या में शार्क को मार दिया जाए तब इसका अन्य मछलियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इस पर आपके क्या विचार हैं?

....
....
....

6) किस प्रकार आहार जाल संबंध पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता को बढ़ावा देते हैं? अपने उत्तर को उचित उदाहरण द्वारा समझाइए।

....
....
....
....
....

5.14 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) i) √
ii) ×
iii) √
iv) ×
v) ×

ख)

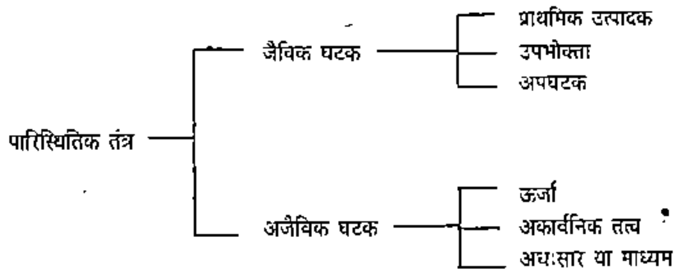

ग) अपने अनुभव के आधार पर लिखिए।
संकेत : i) मरुस्थल में जल
ii) जलीय पारिस्थितिक तंत्र में खारापन।

2) क) गेहूँ, मक्का (प्रथम पोषण स्तर)
वकरी, चूहा (द्वितीय पोषण स्तर)
सिंह, विल्ली (तृतीय पोषण स्तर)

ख) संकेत : उदाहरण भालू

द्वितीय पोषण स्तर (शाकाहारी) क्योंकि ये कंद एवं विभिन्न अन्य वनस्पति उत्पाद खाते हैं; तृतीय पोषण स्तर (माँसाहारी) क्योंकि ये हिरन जैसे जंतु खाते हैं जो शाकाहारी हैं; चतुर्थ पोषण स्तर (उच्च माँसाहारी) तथा ये उन जीवों को खाते हैं जो स्वयं माँसाहारी हों, जैसे-मेंढक।

ग) ऐसी स्थितियों में जहाँ अगले पोषण स्तर की तुलना में उत्पादकों की संख्या कम है, हमको एक उल्टा पिरामिड मिलता है, उदाहरणार्थ एक ऐसी स्थिति जिसमें वहुत वड़ी संख्या में कीट-पतंगे एक अकेले पेड़ से आहार प्राप्त कर रहे हों।

घ) g/m^2

च) ऊर्जा पिरामिड में, किसी भी एक पोषण स्तर पर इससे पहले के पोषण स्तर की तुलना में ऊर्जा की मात्रा कम होती है। इसका कारण यह है कि एक पोषण स्तर से अगले पोषण स्तर में ऊर्जा स्थानांतरण के दौरान ऊर्जा क्षय होती है। चूँकि पहले पोषण स्तर से ही ऊर्जा क्षय प्रारंभ हो जाती है, इसलिए ऊर्जा पिरामिड सदैव सीधे होता है, कभी भी उल्टे नहीं।

3) क) एक पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादक सौर-ऊर्जा का प्रयोग करते हैं तथा इनके द्वारा उत्पादित भोजन मुख्यतः कार्वोहाइड्रेट के रूप में भंडारित करते हैं, वनस्पति ऊतक शाकाहारियों के लिए ऊर्जा स्रोत का कार्य करते हैं, जिनमें भंडारित सौर-ऊर्जा होती है। शाकाहारियों से ऊर्जा माँसाहारियों को मिलती है और यह क्रम इसी प्रकार आगे तक चलता रहता है। अतः हमारे पृथ्वी ग्रह का मूलभूत ऊर्जा स्रोत सूर्य है। जिसको हम एक वड़ा पारिस्थितिक तंत्र भी मान सकते हैं।

ख)

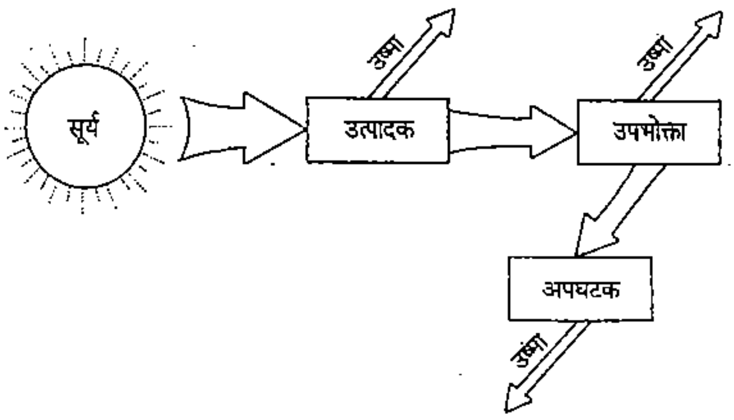

ग) i)

घ) ii)

च) ii)

छ) मरुस्थल तथा आंशिक मरुस्थल क्षेत्र (7)

सवाना (5)

खुला सागर (6)

ज्वारनदमुख (3)

शीतोष्ण पर्णपाती वन (4)

उष्णकटिबंधीय वर्षा वन (2)

प्रवाल भित्ति (1)

उग्र मरुस्थल (8)

4) क) आपकी पसंद।

ख) संकेत : यदि आहार शृंखला की एक जनसंख्या विशेष में भारी कमी आ जाए तब यह विशेष आहार शृंखला लुप्त हो सकती है।

ग) v)

घ) iv)

च) iii)

छ) ii)

ज) iii)

झ) ii)

अंत में कुछ प्रश्न

1) उत्पादक, उपभोक्ता, अपघटक, उपभोक्ता

2) क) प्रत्येक जीव पर्यावरणीय घटक विशेष के परिसर को एक सीमा तक सहन कर सकता है। इस सीमा के बाहर एक जीव का जीवित रहना कठिन है, उदाहरणार्थ pH एक ऐसा घटक है, जो झील में जीवन को प्रभावित करता है। अम्ल वर्षा के कारण झीलों का pH कम हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप बहुत से जीव समाप्त हो जाते हैं। ऐसी झीलों का पानी अत्यधिक पारदर्शी होता है, क्योंकि झील में जीवन नहीं है। (एफ.एस.टी.-1, इकाई-16 सहभाग 16.2.1 को पुनः देखें)

एक अन्य उदाहरण–हानिपूर्ण अपशिष्ट पदार्थों का जीवों जैसे पक्षी, मानव इत्यादि के शरीर में एकत्रित होना, जो आहार शृंखला की चोटी पर हैं (एफ.एस.टी.-1, इकाई-16 सहभाग 16.2.1 देखिए)।

ख) जीव अपनी अतिजीविता एवं सुरक्षा के लिए कुछ पर्यावरणीय घटकों पर निर्भर करते हैं। इनमें से कोई भी घटक यदि आवश्यकता से कम या आवश्यकता से अधिक मात्रा में है तो यह सीमांत घटक बन जाता है। अधिकतर स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों में जल एक सीमांत घटक है।

3) क) ऊर्जा पिरामिड

ख) अपघटक

ग) झीलों तथा समुद्र में अधिकांश प्राथमिक उत्पादक, एक-कोशिकीय शैवाल हैं जो अत्यंत सूक्ष्म हैं तथा जिनका जीवन काल बहुत छोटा होता है। इन उत्पादकों का जीवन चक्र द्वितीय एवं तृतीय पोषण स्तरों के जीवों (जैसे विभिन्न प्रकार की मछलियों) की तुलना में छोटा होता है तथा ये काफी जल्दी-जल्दी प्रजनन करते हैं जिनसे इनकी मात्रा बढ़ जाती है। द्वितीय एवं तृतीय पोषण स्तरों के जीवों का आकार तथा भार उत्पादकों की अपेक्षा अधिक होता है। अतः यदि हम विभिन्न पोषण स्तरों के जीव-भार की गणना ऐसी स्थिति में करें जब उत्पादकों का जीव-भार, उपभोक्ताओं के जीव-भार से कम हो; तब उल्टे आकार का पिरामिड प्राप्त होता है।

4) क) सकल, श्वसन, कार्य करना, ऊष्मा

ख) समानताएँ–दोनों ही प्राथमिक उत्पादन को मापने की इकाइयाँ हैं।

विभिन्नताएँ–प्राथमिक उत्पादन भार के हिसाब से $g/m^2/yr$ अभिव्यक्त किया जाता है, तथा ऊर्जा के हिसाब से $k\ cal/m^2/yr$ में अभिव्यक्त किया जाता है।

ग) उत्पादकता अनेकों प्रकार के घटकों से प्रभावित होती है जैसे–सूर्य का प्रकाश, तापमान, वर्षा तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता।

घ) पारिस्थितिक तंत्र जैसे–प्रवाल भित्ति उष्णकटिबंधीय वर्षा वन तथा ज्वारनदमुख में उच्च नेट उत्पादकता होती है।

च) द्वितीय उत्पादन का अर्थ उपभोक्ता जीवों द्वारा उत्पादन है। प्राथमिक उत्पादन में उत्पादकों द्वारा सौर ऊर्जा ग्रहण की जाती है तथा प्रकाश संश्लेषण के परिणामस्वरूप उनका जीव-भार बढ़ जाता है; जबकि द्वितीय उत्पादन में, उपभोक्ता, अपने ऊतकों के निर्माण के लिए पौधों की भंडारित ऊर्जा का उपयोग करते हैं।

5) क) प्रकाश, ऊष्मा, रसायन

ख) नहीं

ग) i) 10 calorie
ii) 1 calorie
iii) 0.1 calorie

घ) iii) यदि हम व्यक्तियों तथा मुर्गियों के समुदाय का पोषण भंडारित गेहूँ पर करें तो गेहूँ का भंडार शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा। अतः पहले मुर्गियों को खाया जाए और उसके बाद गेहूँ को खाया जाए। इससे गेहूँ का भंडार लंबे समय तक चलेगा।

गेहूँ → मुर्गी → मानव .... (1)

गेहूँ → मानव .... (2)

आहार शृंखला (2) में चूँकि मानव उत्पादन के निकट है इसलिए ऊर्जा क्षय कम से कम होगा और ये मानव, उपलब्ध गेहूँ भंडार पर लंबी अवधि तक अपना पोषण कर सकेंगे।

च) एक आहार जाल

छ) शार्क मछलियों की अनुपस्थिति से छोटी मछलियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाएगी। इसके कारण वनस्पतिप्लवकों की जनसंख्या पर अत्यधिक दबाव पड़ेगा। ऐसे समय पर, जब वनस्पतिप्लवकों की संख्या बहुत कम हो जाती है तब मछलियों के लिए पर्याप्त भोजन नहीं उपलब्ध होता है। परिणामस्वरूप छोटी मछलियों की मृत्यु दर बढ़ जाएगी। अतः संपूर्ण आहार शृंखला छिन्न-भिन्न हो जाएगी।

6) एक आहार जाल वह आहार अंतःसंबंध दर्शाता है, जो पारिस्थितिक तंत्र में पाई जाने वाली विभिन्न आहार शृंखलाओं के मध्य विद्यमान है। एक आहार जाल में ऊर्जा प्रवाह के लिए अनेकों वैकल्पिक मार्ग होते हैं, जो पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता को बढ़ाने में सहायता करते हैं। आप अपनी पसंद का एक उदाहरण दीजिए।

इकाई 6 पोषक चक्र

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
6.2 जैव भूरासायनिक चक्रण
6.3 कार्बन चक्र
6.4 नाइट्रोजन चक्र
6.5 गन्धक चक्र
6.6 फ़ॉस्फोरस चक्र
6.7 वनों में पोषक बजट और पोषक चक्रण
पोषक बजट
उष्ण कटिबंधी और शीतोष्ण कटिबंधी वनों में पोषक चक्रण
6.8 सारांश
6.9 अंत में कुछ प्रश्न
6.10 उत्तर

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप सीख चुके हैं कि सभी पारितंत्रों में संरचना और कार्य में कुछ मूलभूत समानताएँ होती हैं। सभी में सजीव और निर्जीव घटक होते हैं, जिनके माध्यम से ऊर्जा का प्रवाह और पदार्थों का आदान-प्रदान होता है। पृथ्वी पर जीवन क्रम के चलते रहने के लिए चार स्तम्भ हैं–जन्म, वृद्धि, मृत्यु और क्षय। स्थलवासी जीवों के लिए भूमि पोषक खनिजों का अक्षय भंडार नहीं है। यही बात मीठे और खारे पानी में रहने वाले जीवों के लिए भी है। फिर भी, इन करोड़ों वर्षों में जब से पृथ्वी में जीवन विकसित हुआ है और फला-फूला है, पौधों के लिए आवश्यक पोषक पदार्थ पृथ्वी से समाप्त नहीं हो गए। इसी प्रकार वायुमंडल से ऑक्सीज़न और कार्बन डाइऑक्साइड समाप्त नहीं हो गए। इन पदार्थों की कमी इसलिए नहीं होती है क्योंकि सूक्ष्म रूप से संतुलित चक्रों के द्वारा ये समुदाय में घुमा-फिराकर फिर से लौटा दिए जाते हैं।

इस इकाई में हम जैवमंडल में मुख्य पोषक तत्वों की गतिशीलता पर विचार करेंगे। हम अध्ययन करेंगे कि ये किन विविध रासायनिक रूपों में प्रकृति में विद्यमान हैं और किस प्रकार इनका चक्र चलता है। पारितंत्र के अजैव और जैव घटकों के माध्यम से किस प्रकार कार्बन, नाइट्रोजन, गन्धक और फ़ॉस्फोरस का चक्र चलता है, इस विषय पर आपको विशेष जानकारी दी जाएगी। इन पोषकों के चक्रण में उन अपघटक जीवों, (सड़ाने-गलाने वालों) की भूमिका महत्वपूर्ण है, जो इन पोषकों को फिर से काम में लाए जाने के लिए पर्यावरण में पुनः छोड़ देते हैं। ये पोषक चक्र सूक्ष्म रूप से संतुलित होते हैं और सामान्य कार्य कर सकने के लिए प्रत्येक चरण अति महत्वपूर्ण है। फिर भी, मानव अपने कार्यकलापों से इन पोषक चक्रों की मात्रा और दर को गंभीर रूप से प्रभावित तो कर ही रहा है। मानव के कार्यकलापों से इन पोषक चक्रों में क्या असर हुआ है, यह दिखलाने के लिए उपयुक्त उदाहरण भी दिये गए हैं।

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह समझने में सहायता मिलेगी कि किसी पारितंत्र में पादप और जन्तु समुदायों के जीवित रह पाने के लिए पदार्थों के चक्रण और ऊर्जा प्रवाह का संयोग प्राथमिक आवश्यकता है।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- "जैव भूरासायनिक चक्र" शब्द की परिभाषा दे सकेंगे, इसका सही संदर्भ में प्रयोग कर सकेंगे और इस संकल्पना के महत्व को समझा सकेंगे
- गैसीय और अवसादी चक्रों में अंतर समझ सकेंगे
- कार्बन, नाइट्रोजन, गन्धक और फास्फोरस चक्रों के क्रम की रूपरेखा बता सकेंगे
- पोषक चक्रण में सूक्ष्म जीवों के महत्व को समझ सकेंगे
- उष्णकटिबन्धीय तथा शीतोष्ण वनों के पोषक चक्रणों के बीच अंतर जान सकेंगे, और
- पोषक चक्रों के लिहाज से प्रकृति में मानव के हस्तक्षेप के परिणामों को पहचान सकेंगे

6.2 जैव भूरासायनिक चक्रण

इकाई 5 में आप पढ़ चुके हैं कि जीव विविध प्रकार के कार्य कर सके, इस उद्देश्य से पारितंत्रों में ऊर्जा प्रवाहित होती रहती है, जो अंत में ऊष्मा के रूप में क्षय हो जाती है। इस प्रकार तंत्र में अपनी उपादेयता के लिहाज से यह खोयी जा चुकी है। दूसरी ओर, पोषक तत्व कभी भी उपयोग में आने से समाप्त नहीं होते। इन्हें अनिश्चितकाल तक फिर काम में लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जब हम साँस लेते हैं तो हम लाखों उन परमाणुओं को अपने अंदर ले जाते हैं, जो अतीत काल में अकबर अथवा किसी अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति ने साँस से अंदर लिए होंगे। आइए, पहले हम यह बताएँ कि खनिज पोषक शब्द से हम क्या समझते हैं। जैसा कि आप इकाई 5 में पढ़ चुके हैं, 100 अथवा इससे अधिक रासायनिक तत्वों में से लगभग 40 जीवों में विद्यमान होते हैं। इनमें से कुछेक अधिक मात्रा में आवश्यक होते हैं। इन्हें **बृहत् पोषक** कहते हैं। अन्य पोषक जो लेशमात्र ही आवश्यक होते हैं, वे **सूक्ष्म पोषक** कहलाते हैं (देखिए तालिका 6.1)।

तालिका 6.1 : जीवो को बनाने वाले कुछ रासायनिक तथ्वों की आपेक्षित मात्राएँ

	तत्व	मुख्य भंडार
प्रमुख वृहत्पोषक (> 1% शुष्क जैव भार)	कार्बन	वायुमंडल
	हाइड्रोजन	जलमंडल
	ऑक्सीज़न	वायुमंडल
	नाइट्रोजन	वायुमंडल और मृदा
	फ़ॉस्फोरस	स्थलमंडल
आपेक्षिक रूप से अप्रमुख वृहत्पोषक (0.2-1% शुष्क जैव भार)	कैल्शियम	स्थलमंडल
	क्लोरीन	स्थलमंडल
	ताम्र	स्थलमंडल
	लोहा	स्थलमंडल
	मैग्नीसियम	स्थलमंडल
	गन्धक	स्थलमंडल और वायुमंडल
	पोटाशियम	स्थलमंडल
कुछ सूक्ष्म पोषक (< .2% शुष्क जैव भार)	एल्यूमिनियम	स्थलमंडल
	बोरोन	स्थलमंडल
	ब्रोमीन	स्थलमंडल
	जिंक	स्थलमंडल
	कोबाल्ट	स्थलमंडल
	आयोडीन	स्थलमंडल
	क्रोमियम	स्थलमंडल

प्रत्येक पोषक तत्व अन्य तत्वों के साथ मिलकर यौगिक रूप में भी विद्यमान हो सकते हैं। किन्तु ऐसे सभी यौगिकों से जीव आवश्यक पोषक प्राप्त नहीं कर पाते हैं। उदाहरण के लिए, जीव कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) के रूप में ही कार्बन का उपभोग कर सकता है। इसी प्रकार सभी जीवों को नाइट्रोजन चाहिए किन्तु अधिकांश जीव वायुमंडल में विद्यमान गैसीय नाइट्रोजन (N_2) का उपभोग नहीं कर सकते, उन्हें घुलनशील नाइट्रेटों (NO_3) या अमोनिया (NH_3) के रूप में ही नाइट्रोजन चाहिए।

पारितंत्र के निर्जीव से सजीव और फिर वापिस निर्जीव अंश में खनिज पोषक लगभग वृत्तीय ढंग से घूमते रहते हैं। यही है **जैव भूरासायनिक चक्र** (Biogeochemical Cycle) जिसमें **जैव** है सजीव प्राणि; **भू** है वायुमंडल, जल, शैल तथा मृदा और **रासायनिक** है भाग लेने वाले तत्व और प्रक्रियाएँ। सामान्यतया हम इन्हें पोषक या खनिज चक्र कहते हैं। इनके संदर्भ में आपको निम्नलिखित की महत्वपूर्ण भूमिका याद रखनी चाहिए:

क) हरे पौधे जो पोषकों को जैव दृष्टि से लाभदायक यौगिकों के रूप में व्यवस्थित करते हैं।

ख) अपघटक जीव जो अंत में उनको सरल तत्व-अवस्था पर वापिस पहुंचा देते हैं।

ग) वायु तथा जल, जो पारितंत्र के अजैव और जैव घटकों के बीच की दूरी पोषकों को पार करवाते हैं।

साथ ही, जैव भूरासायनिक चक्रों से सम्बद्ध दो महत्वपूर्ण शब्दों से भी आपका परिचय हो जाना चाहिए:

क) पोषकों के विभिन्न **आशय** या **भंडार** (reservoir) जैसे वायुमंडल और चट्टानें। ये विशाल होते हैं और इनके आपेक्षिक आयाम का तब महत्व होता है जबकि हमें पोषक चक्रों पर मानवी कार्यकलापों के प्रभाव को आंकना हो।

ख) चक्रों के वे **कक्ष** (compartment) जिनसे होकर पोषक गुजरते हैं। भंडार की तुलना में पोषक कक्ष में कम समय के लिये संचित होते है। उदाहरण के लिए, पौधे और जानवर कक्ष है, जिनमें से होकर किसी चक्र में छोटी अवधि के लिए पोषक गुज़रते हैं और सुरक्षित रहते हैं।

चित्र 6.1 एक मॉडल दिखलाता है। वायुमंडल और चट्‌टानें **भंडार** हैं; मुख्य **कक्ष** हैं अवसाद और समुद्र, ताजा पानी तथा मृदा। इन में अपघटन तंत्र से मृत कार्वनिक तत्व और प्राथमिक उत्पादक तथा उपभोक्ता भी शामिल है।

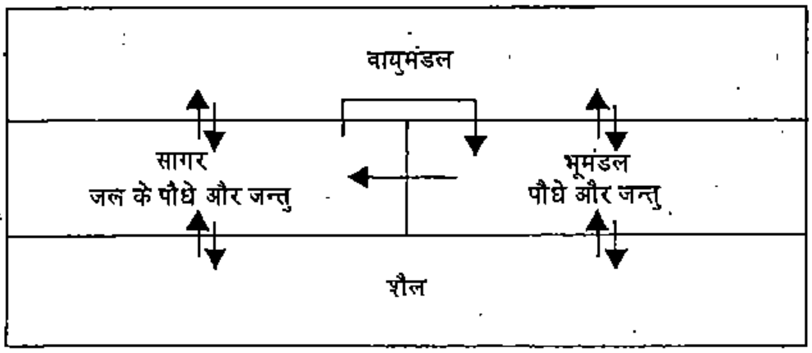

चित्र 6.1: जैव भूरासायनिक चक्र का एक नमूना। आने और जाने वाले खनिजों को तीरों से चित्रित किया गया है।

जैव भूरासायनिक चक्रों के प्रकार

जैव भूरासायनिक चक्रों के दो मूलभूत प्रकार हैं: **गैसीय** और **अवसादी।** जैव भूरासायनिक चक्र के गैसीय प्रकार में एक प्रमुख गैसीय प्रावस्था होती है। कार्वन और नाइट्रोजन के चक्रण, गैसीय जैव भूरासायनिक चक्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अवसादी चक्रों में मुख्य भंडार स्थलमंडल होता है, जहाँ से पोषकों का मोचन मुख्यतः अपक्षयण (weathering) द्वारा होता है। अवसादी चक्रों के उदाहरण हैं फ़ॉस्फोरस और गन्धक के चक्र।

जव हम जैव भूरासायनिक चक्रों का वर्णन करते हैं तो वहुधा कहते हैं कि चक्र **पूर्ण** है अथवा **अपूर्ण।** चक्र पूर्ण तव कहा जाता है जवकि पोषक जैसे-जैसे काम में आते जाएं उनकी वापस प्राप्ति भी होती रहे। अधिकांश गैसीय चक्र सामान्यतवा पूर्ण माने जाते हैं। इसके विपरीत, अवसादी चक्रों को सामान्यतः अपूर्ण माना जाता है क्योंकि कुछेक पोषक तो चक्र में से ज़ाया होकर मिट्टी और अवसाद में पहुंच ही जाते हैं। दूसरे शब्दों में इनमें ऐसे चरण अधिक होते हैं जिनमें थोड़े अथवा लम्वे समय के लिए गतिहीनता आ जाती है। गतिहीनता की अवस्थाओं में सवसे अधिक उल्लेखनीय हैं वे अवसादन जो समुद्रों या महाद्वीपों की गहरी झीलों में होते हैं। दूसरे शब्दों में, कुछ पोषक जैसे फ़ॉस्फोरस या गन्धक यदि निकल चुके हों तो वे अपेक्षाकृत अधिक अवधि के लिए जीवों को उपलव्ध नहीं होंगे। कई पोषकों की गति को मानव ने इतना तेज कर दिया है कि चक्र अपूर्ण ही नहीं हो गए हैं, अचक्रिक तक हो चुके हैं जिसके फलस्वरूप किसी प्रावस्था में पोषक वहुत अधिक और किसी में वहुत कम हो जाते हैं। फ़ॉस्फोरस चक्र पर विचार करते समय इस वात पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

जैव भूरासायनिक चक्रों के कक्षों से भंडार तक पोषकों के जाते रहने की क्रिया को वढ़ावा देने वाले कारक और प्रक्रियाएँ यदि लम्वी अवधि तक चालू रहीं तो पारितंत्रों में निर्धनता आ सकती है। उदाहरण के लिए, विना उर्वरकों के प्रयोग के निरंतर जुताई-कटाई मिट्टी के लिए हानिकारक है। छोटे कण और पोषक पानी के साथ वहकर रिसते-रिसते भूमिगत जल और नदियों में पहुंच जाते हैं और अवमृदा के माध्यम से समुद्र में पहुंचकर अन्य अवसादों के साथ नीचे वैठ जाते हैं और अंततः शैलों में समाविष्ट हो जाते हैं।

कृषि और वानिकी की संक्रियाएं (जैसे वनोन्मूलन) तथा कुछ अन्य क्रियाएं पोषक चक्रण की दरों को गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, जीवाश्मी ईधनों (पत्थर का कोयला, पेट्रोल आदि) को जलाने से वायुमंडल में कार्वन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि होने लगती है। जैसे-जैसे हम अन्य चक्रों पर अलग-अलग चर्चा करेंगे वैसे-वैसे इस वात को अधिक अच्छी तरह से समझ पाएंगे।

बोध प्रश्न 1

नीचे लिखे कथनों में से उन सही कथनों को वताइए जोकि जैव भूरासायनिक चक्र, भंडार और कक्ष—इन शब्दों का सही वोध कराते हैं:

i) वह स्थान, जहां पर शैलों में खनिजों का दीर्घकालीन और सुलभ संग्रहण हो।

ii) वह स्थान, जहाँ पर पोषक चक्र के अंदर खनिजों का अल्पकालीन सुलभ संग्रहण हो।

iii) वह स्थान, जहां पर खनिजों का एक ऐसा दीर्घकालीन संग्रहण हो जिसमें से पोषक चक्रों की क्षतिपूर्ति हो जाती रहे।

iv) जीव, मृदा और वायु के बीच तथा जीव, वायु और समुद्र के बीच होने वाले चक्र।

6.3 कार्बन चक्र

कार्बन सभी कार्बनिक यौगिकों का आधारभूत घटक है। जल के बाद कार्बन ही सबसे अधिक महत्व का तत्व है, जोकि जीवों के शुष्क भार का 49 प्रतिशत भाग होता है। कार्बन चक्र वस्तुतः एक पूर्ण चक्र है अर्थात् जितनी जल्दी कार्बन वातावरण से ले लिया जाता है उतनी ही जल्दी उसकी वापसी भी हो जाती है। सजीवों, मृत जैव पदार्थों तथा जीवाश्मी निक्षेपों–इन सभी में कार्बन का स्रोत कार्बन डाइऑक्साइड ही है।

तालिका 6.2 : प्रमुख जैवमंडलीय कक्षों में कार्बन (आंकड़े–वातावरण गुणवत्ता काउंसिल की 1981 की रिपोर्ट से)

जैवमंडल में प्रमुख कक्ष	कार्बन 10^{9}टनों में
वायुमंडल	711
भूमि	3,100
समुद्र	39,000
(अधिकांशतः कार्बोनेट रूप में)	
पुरानिर्मित ईंधन	12,000

वायुमंडल में CO_2 का सांद्रण लगभग 0.032 प्रतिशत अथवा 320 ppm होता है। वायुमंडलीय राशि के अतिरिक्त CO_2 काफी मात्रा में समुद्रों में घुला हुआ मिलता है। आकलन के अनुसार जितना कार्बन वायुमंडल में है, उससे 50 गुना से अधिक समुद्रों में है। समुद्री भंडार वायुमंडल की राशि का नियमन भी करता है। तालिका 6.2 में जैवमंडल के कार्बन वाले प्रमुख कक्ष दिखाए गए हैं। कार्बन चक्रण में इनकी

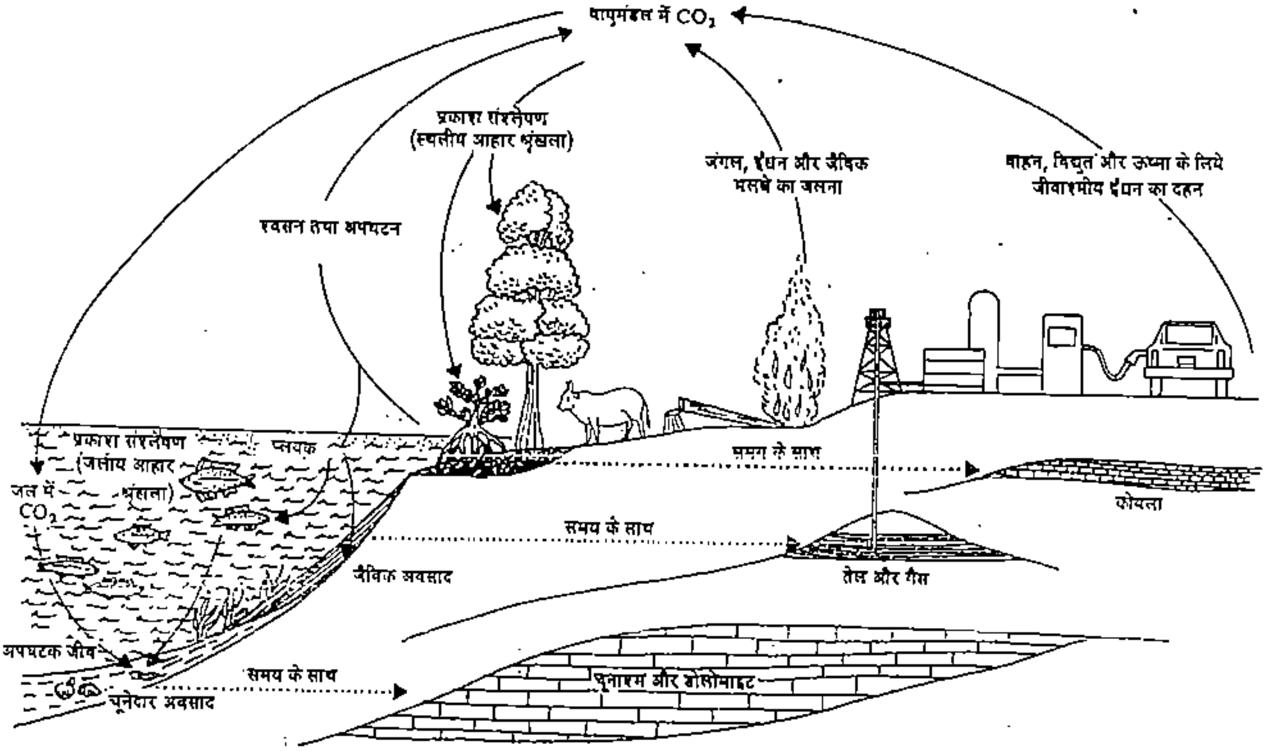

चित्र 6.2 : सरलीकृत कार्बन चक्र

भूमिका इस प्रकार है: वायुमंडलीय भंडार, जहां से यह उत्पादक द्वारा उपभोक्ता के पास ले जाया जाता है, फिर दोनों से अपघक-जीवों के पास जा पहुंचता है और फिर वापिस भंडार में जा मिलता है (चित्र 6.2)। आइए अब हम इस चक्र के प्रत्येक चरण पर विचार करें।

प्रकाश संश्लेषण द्वारा हरे पौधे वायुमंडल की कार्बन डाइऑक्साइड को ले लेते हैं। इस क्रिया द्वारा प्रतिवर्ष यौगिकीकृत कार्बन की मात्रा 4 से 9×10^{13} किलोग्राम तक हो जाती है।

उत्पादकों और उपभोक्ताओं की श्वसन क्रिया के फलस्वरूप CO_2 के रूप में कार्बन की पर्याप्त मात्रा वायुमंडल को लौटा दी जाती है। सबसे अधिक वापसी तो अपघटन जीवों के कार्यकलापों से होती है, जो अपशिष्ट पदार्थों और पोषण स्तर के मृत अवशेषों पर क्रिया करते हैं।

वायुमंडल में CO_2 के विमोचन के मानव निर्मित अतिरिक्त स्रोत हैं लकड़ी जलाना, वनों में आग लगाना और जैव पदार्थों का जलाया जाना।

कार्बन के विमोचन की दर वातावरण की अवस्थाओं से प्रभावित होती है, जैसे मिट्टी, नमी, तापमान और वर्षण। ऊष्णकटिबंधी वनों में पादप अवशेषों का अधिकांश कार्बन बहुत जल्दी ही चक्र में पुनः चला जाता है क्योंकि यह मिट्टी में बहुत कम मात्रा में जमा हो पाता है। ऊष्णकटिबंधी वन में वायुमंडलीय कार्बन के **टर्नओवर** की दर लगभग 0.8 वर्ष है। घासस्थल जैसे शुष्कतर प्रदेशों में कार्बन का ह्यूमस के रूप में संग्रह हो जाता है। दलदलों और कच्छों में मृत पदार्थ जल में गिर जाते हैं और पूरी तरह सड़गल नहीं पाते। वहां कार्बन ह्यूमस और पीट के रूप में संगृहीत हो जाता है और उसका परिसंचरण मन्द गति से होता है। यहां पर टर्नओवर की दर 3-5 वर्ष ही होती है।

किसी तंत्र से जाति या पदार्थ की क्षति की पूर्ति जिस दर से होती है, उसे टर्नओवर की दर कहते हैं।

भू-पर्पटी पर निक्षिप्त कुल कार्बन 99 प्रतिशत से अधिक कोयला, पेट्रोलियम, पीट और चूना पत्थर रूपों में होता है। जैसा आपको मालूम है, ये सारे तो पादप और जन्तु अवशेषों के निक्षेप हैं। कार्बोनेट शैलों के अपक्षय, पुरा-निर्मित ईंधनों के जलाने तथा ज्वालामुखीय क्रियाओं के द्वारा बद्ध कार्बन को वायुमंडलीय और जलीय भंडारों में वापिस लौटा दिया जाता है।

जलीय परिवेश में पादपप्लवक उस CO_2 का सदुपयोग करते हैं जोकि जल में घुली होती है या बाईकार्बोनेटों और कार्बोनेटों के रूप में विद्यमान होती है। इन्हें पादपप्लवकीय बायोमास (जैव भार) के रूप में बदल दिया जाता है। जलीय आहार शृंखला द्वारा इस पादपप्लवक का भोजन रूप में प्रयोग होता है। श्वसन द्वारा उत्पादित CO_2 को पादपप्लवक पुनः काम में लाकर अतिरिक्त जैव भार उत्पन्न कर देते हैं। घोंघों और फोरेमिनिफरों के कवचों में कार्बोनेट रूप में बद्ध कार्बन इन जानवरों के मरने पर अवसादों में निक्षिप्त हो जाता है। इस प्रकार कार्बन का एक महत्वपूर्ण अंश अवसादों में गढ़कर परिसंचरण से अलग हो जाता है। हो सकता है, यह बाद में चूना पत्थर के चट्टान या प्रवाल भित्ति के रूप में ऊपर तल पर निकल आए।

क्षारीय जलों में उगने वाले कई जलीय पादप प्रकाश संश्लेषण के उपोत्पाद के रूप में कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCO_3$) का विमोचन करते हैं। उदाहरण के लिए *इलोडिया कैनेडेन्सिस (Elodea canadensis)* की 100 किलोग्राम की मात्रा प्राकृतिक अवस्थाओं में, सूर्य के प्रकाश में 10 घंटे की अवधि में 2 किलोग्राम $CaCO_3$ का अवक्षेपण करती है। यह विशुद्ध $CaCO_3$, मृत्तिका से मिलकर कई वर्षों में चूना पत्थर का निर्माण कर देता है।

वायुमंडल के गैसीय CO_2 और समुद्रों में घुले हुए CO_2 के बीच एक गतिशील साम्यावस्था होती है। इन दो प्रावस्थाओं के बीच आदान-प्रदान विसरण द्वारा होता है। विसरण की दिशा कार्बन डाइऑक्साइड के आपेक्षिक सांद्रण पर निर्भर रहती है। कार्बन डाइऑक्साइड आसानी से जल में घुल जाता है और इसका कुछ भाग वर्षा आदि के द्वारा वायुमंडल से जलीय प्रावस्था में जा पहुंचता है। एक लीटर वर्षा जल में लगभग 0.3 मिलीलीटर गैसीय CO_2 होती है। जल, मिट्टी या समुद्रों में घुली CO_2 कार्बोनिक अम्ल (H_2CO_3) का निर्माण करती है। कार्बोनिक अम्ल विसंयोजित होकर फिर हाइड्रोजन और कार्बोनेट के आयन (H^+ और HCO_3^-) बना सकता है। ये सारे चरण पूरी तरह उल्टे किए जा सकते हैं, जैसा कि नीचे के समीकरण में दिखलाया गया है:

$$\text{घुली } CO_2 + H_2O \rightleftharpoons H_2CO_3 \rightleftharpoons H^+ + HCO_3^- \rightleftharpoons H^+ + CO_3^{-2}$$
वायुमंडलीय CO_2.

अभिक्रिया की दिशा क्रांतिक घटक के सांद्रण पर निर्भर होती है। उदाहरण के लिए यदि किसी विशेष स्थान पर CO_2 की कमी हो जाए तो CO_2 घोल वाली प्रावस्था से वायुमंडल में चला जाएगा। इसी प्रकार, जलीय पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के द्वारा बाइकार्बोनेट आयनों का स्वांगीकरण, साम्यावस्था को दूसरी दिशा में जाने को प्रेरित करेगा। साम्यावस्था का तंत्र उतना सरल नहीं है जितना कि लगता है। यह कई कारकों पर निर्भर है जिसमें से एक है जल का pH. pH के उच्चतर मानों पर अर्थात् क्षारीय अवस्थाओं में अधिकतर कार्बन कार्बोनेट रूप में विद्यमान रहता है, जबकि अम्लीय अवस्थाओं में अधिक कार्बन घुली हुई प्रावस्था में होता है।

अब यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि सरल-सा लगने वाला चक्र वास्तव में काफी जटिल है और यह जानना महत्वपूर्ण है कि कार्बन के उपयोग में आने के मार्ग तो सीमित हैं और उसके वायुमंडल में पुनःस्थापित होने के मार्ग काफी अधिक संख्या में हैं।

कार्बन चक्र पर मानवी प्रभाव

मानव के कार्यकलापों ने कार्बन चक्र के ऊपर बहुत अधिक प्रभाव डाले हैं। जीवाश्म ईंधनों को जलाने तथा वनों के विनाश से वायुमंडल में विमोचित होने वाली कार्बन डाइऑक्साइड गैस की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है। औद्योगिक क्रांति के आरंभ में सन् 1800 के आसपास यह विश्वास किया जाता था कि वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस का सांद्रण 290 ppm (प्रति दस लाख में एक भाग) था, जोकि 0.29 प्रतिशत के बराबर होता है। 1958 में जबकि पहले पहल इसको सही ढंग से मापा गया तो सांद्रण 315 ppm तो हो ही चुका था, फिर 1988 में यह बढ़कर 350 ppm हो गया। वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के सांद्रण की बढ़ोत्तरी से जो मुख्य चिंता उत्पन्न होती है वह है विश्व के औसत परिवेशी तापमान (average ambient temperature) पर इसका संभाव्य प्रभाव। कार्बन डाइऑक्साइड उन गैसों में से एक गैस है जो "पौध घर प्रभाव" अर्थात ग्रीन हाउस इफैक्ट (एफ.एस.टी.-1 खंड-4 इकाई-16 देखिए) उत्पन्न करती है। विश्व के परिवेशी तापमान की वृद्धि के विशाल पारिस्थितिकीय प्रभाव होंगे। गरमी से हिम आवरण पिघल जाएंगे और समुद्र तल उठ जाएगा जिसके फलस्वरूप महाद्वीपों के तटीय क्षेत्रों में बाढ़ आ जाएगी। तापमान की वृद्धि से वर्षा और वनस्पति के नमूने भी बदल जाएंगे जिस कारण कृषि उत्पादन में गड़बड़ी पैदा होगी। इस बात का पुष्टिकरण कम्प्यूटर मॉडलिंग अध्ययनों से होता है क्योंकि कंप्यूटर मॉडलिंग के माध्यम से की गई भूतकालीन जलवायु नमूनों संबंधी सूचना का भविष्यवाणियों के साथ तुलना करके इस बात का सत्यापन किया जा चुका है।

बोध प्रश्न 2

क) कार्बन चक्रण में इनमें से किसका योगदान है:

i) श्वसन

ii) प्रकाश संश्लेषण

iii) पुरानिर्मित ईंधनों को जलाना

iv) ऊपर लिखे सभी।

ख) रिक्त स्थानों को भरिए

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड के सांद्रण से .... बढ़ जाएगा क्योंकि कार्बन डाइऑक्साइड गैस .... गैसों में से एक है। इस वृद्धि से .... पिघलेगा जिसके फलस्वरूप .... में बाढ़ आ जाएगी।

6.4 नाइट्रोजन चक्र

आप पढ़ ही चुके हैं कि नाइट्रोजन प्रोटीनों का एक आवश्यक या अपरिहार्य अवयव है और प्रोटीन ही सारी जीवित कोशिकाओं की निर्माण-शिलाएं हैं। वायु-मंडल का भी नाइट्रोजन एक प्रमुख घटक है (79 प्रतिशत)। जीव वायुमंडल में रहते हैं जो कि गैसीय नाइट्रोजन का एक प्रचुर भंडार है, फिर भी जीव इस नाइट्रोजन का उपयोग नहीं कर सकते। इसका उपयोग तभी हो सकता है जबकि गैसीय नाइट्रोजन का किसी रासायनिकतः काम आने लायक रूप में यौगिकीयकरण हो जाए। यही रूपांतरण जोकि अणु-रूपी नाइट्रोजन को विविध नाइट्रोजन-यौगिकों में बदलकर पुनः वायुमंडल में विमोचित कर देता है, वास्तव में नाइट्रोजन चक्र (चित्र 6.3) है। नाइट्रोजन का विशालतम भंडार तो वायुमंडल है, किन्तु क्रांतिक भंडारों का प्रतिनिधित्व करते हैं इसके कार्बनिक और अकार्बनिक रूप, जो पादपों और जंतुओं द्वारा उपयोग में लाए जा सकते हैं।

नाइट्रोजन यौगिकीकरण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पौधे और जानवर वायुमंडल के नाइट्रोजन का उपयोग नहीं कर सकते। इसके लिए नाइट्रोजन को यौगिक रूप में परिवर्तित करना आवश्यक है। "नाइट्रोजन यौगिकीकरण" शब्द से बोध होता है उन उपचय (oxidation) और अपचय (reduction) की क्रियाओं का जो कि वायुमंडलीय नाइट्रोजन को नाइट्रेटों (NO_3^-) और अमोनिया (NH_3) में परिवर्तित कर देती हैं–जिन रूपों में ही जीव इनका उपयोग कर सकते हैं। प्रकृति में इन यौगिकों के रूप में नाइट्रोजन यौगिकीकरण मुख्यतः दो विधियों से होता है:

i) **उच्च ऊर्जा यौगिकीकरणः** यह ब्रह्मांडीय विकिरणों, तड़ित, ज्वालामुखीय क्रियाओं तथा उल्का के पश्च प्रभावों के द्वारा होता है, जो वायुमंडल के नाइट्रोजन को जल के हाइड्रोजन और ऑक्सीज़न के साथ जोड़ने के लिए अपेक्षित उच्च ऊर्जा प्रदान करते हैं। इस प्रकार अमोनिया और नाइट्रेट वर्षा के पानी के साथ घुल कर ज़मीन पर आ जाते हैं।

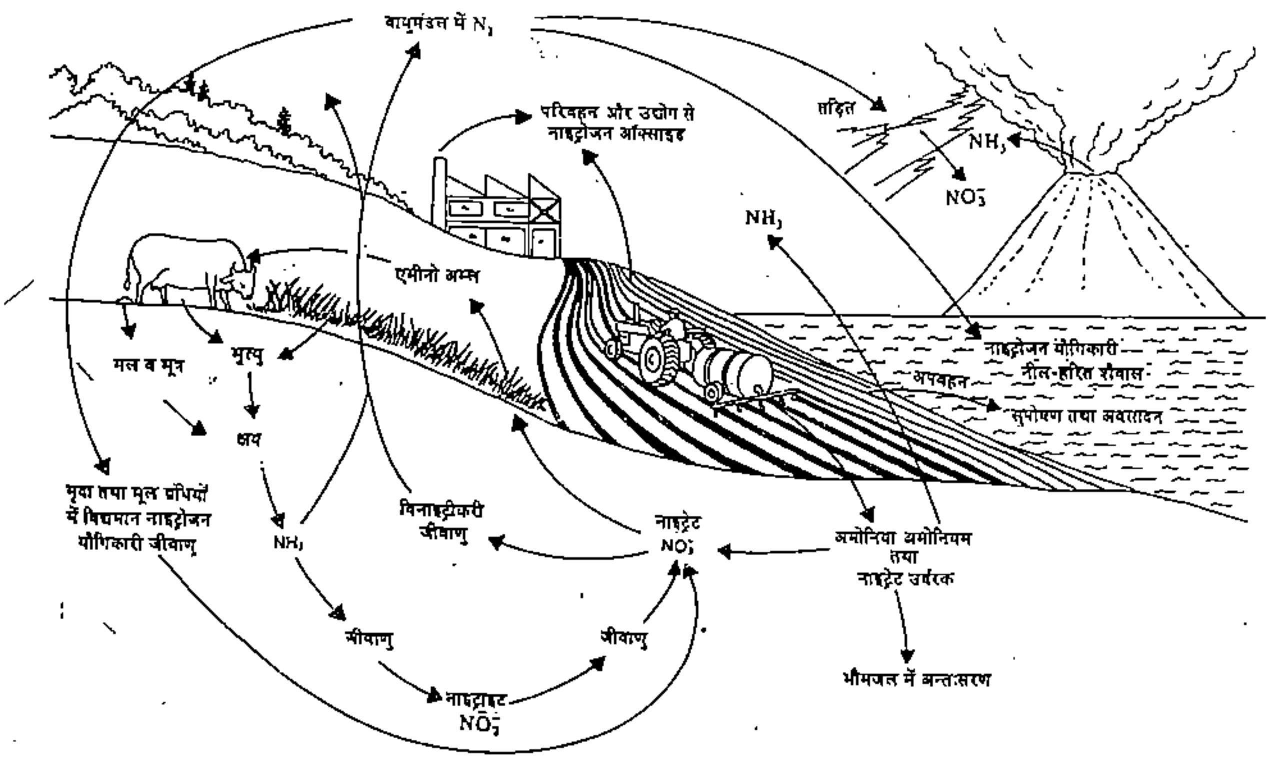

चित्र 6.3 : नाइट्रोजन चक्र। विविध जीवों तथा अकार्बनिक और कार्बनिक नाइट्रोजन के विभिन्न रूपों के योगदान से होने वाले नाइट्रोजनी परिसंचरण के मुख्य चरणों को दर्शाने वाला एक सरल आरेख।

ii) **जैव यौगिकीकरण:** सारे यौगिकीकृत नाइट्रोजन का लगभग 63 प्रतिशत जैव यौगिकीकरण द्वारा होता है। नाइट्रोजन यौगिकीकरण के लिए उत्तरदायी जीव मुख्यतः प्रोकैरियोट (procaryote) अर्थात जीवाणु और नील-हरित शैवाल होते हैं। नाइट्रोजन यौगिकीकरण के लिए यह आवश्यक होता है कि आण्विक नाइट्रोजन के विघटन द्वारा सक्रिय बनाकर उसके दो परमाणुओं को मुक्त कर दिया जाए। $N_2 \rightarrow 2N$ इस चरण के संपादन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो जैव यौगिकीकरण में 160 किलो कैलोरी प्रति मोल होनी चाहिए। यौगिकीकरण के वास्तविक चरण में, जिसमें नाइट्रोजन के दो परमाणु हाइड्रोजन के तीन अणुओं से मिलकर अमोनिया (NH_3) बनाते हैं, जिससे 13 किलो कैलोरी प्रति मोल ऊर्जा का मोचन होता है। इसलिए नाइट्रोजन यौगिकीकरण के लिए आवश्यक निवल ऊर्जा 147 किलो कैलोरी प्रति मोल है।

तालिका 6.3 : नाइट्रोजन यौगिकीकारी सहजीवी और मुक्तजीवी जीवों के उदाहरण

सहजीवी	
पोषी पौधे	नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीव
फलीदार (मटर, एल्फाल्फा, दालें जैसे अरहर, सेम, क्लोवर (तिपतिया) आदि)	राइज़ोबियम *(Rhizobium)*
गैर फलीदार *एल्नस (Alnus)*, *मिरीसिया (Myricia)*, *कैसुएराइना (Casuarina)*, *हिप्पोफी (Hippophae)*, *इलीग्नस (Eleagnus)*, *कोरिएरिया (Coriaria)* आदि	एक्टिनोमाइसिटीज (Actinomycetes)
उष्ण कटिबंधी घासें (*पैस्पैलम (Paspalum)*, *डिजिटेरिया (Digitaria)*, मक्का, सौरघम)	*एज़ोटोबैक्टर (Azotobacter)*, *स्पिरिलम (Spirillum)*, *क्लेबसिएला (Klebsiella)*
साइकस आदि,	नील-हरित शैवाल
पर्णांग *(एज़ोला Azolla)*	नील-हरित शैवाल *(ऐनाबीना Anabaena)*
लाइकेन	नील-हरित शैवाल
मुक्त जीवी	
वायुजीवी जीवाणु-	ऐज़ोटोबैक्टर *(Azotobacter)*
अवायुजीवी जीवाणु	क्लोस्ट्रीडियम *(Clostridium)*
अवायुजीवी-प्रकाश संश्लेषी जीवाणु	*क्रोमैशियम (Chromatium)*, *रोडोस्पिरिलम (Rhodospirillum)* *क्लोरोबियम (Chlorobium)*
नील-हरित शैवाल	*नॉस्टॉक (Nostoc)*

प्रकाश संश्लेषी नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवों के अतिरिक्त बाकी सभी नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवों को कार्वनी यौगिकों के एक बाहरी स्रोत की आवश्यकता होती है, जो इस उष्मोशोषी अभिक्रिया के लिए ऊष्मा की व्यवस्था कर सके। यह एक रुचिकर बात है कि प्रकृति में नाइट्रोजनेस और हाइड्रोजनेस नामक दो एन्ज़ाइमों द्वारा नियमित नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया को कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत, औद्योगिक नाइट्रोज़न यौगिकीकरण में उच्च तापमान (400°C) और दाब 2×10^7 पास्कल की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन यौगिकीकरण में सक्षम जाने गए जीवों के प्रकार तालिका 6.3 में चित्रित किए गए हैं। सहजीवी नाइट्रोजन योगिकीकरण अधिकांशतः भूमि में होता है, जबकि मुक्तजीवी जीवों द्वारा यौगिकीकरण भूमि और जल दोनों में होता है।

i) सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकारी

सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवाणुओं में *राइज़ोवियम* की जातियाँ फलीदार पौधों की जड़ों में ग्रंथिकाएँ बनाती हैं। इन नाइट्रोजन यौगिकीकारियों पर सबसे अधिक अध्ययन हो चुका है और इन्हें सबसे अच्छी तरह समझा जा चुका है। *राइज़ोवियम* की जातियों के अपने-अपने विशेष चुनिन्दा पोषक होते हैं, जो फलीदार पौधों की विशिष्ट जातियाँ होती हैं। ये *राइज़ोवियम* मूल रोम को वेधते हैं और एक बार मूल के अंदर पहुँच गए तो जल्दी-जल्दी गुणन करके फलीदार पौधों की जड़ों में फूले हुए नियमित आकार के पिंड बनाते हैं।

कुछ गैर-फलीदर काष्ठिल पौधों में भी मूल ग्रंथियाँ होती हैं और ये भी सहजीवी रूप से नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करती हैं। वे जीव जो ग्रंथियां बनाकर नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं एक्टिनोमाइसिटीज के सदस्य हैं। ऐसे गैर-फलीदार पौधों के उदाहरण हैं : *ऐल्नस, इलीग्नस, मीरिका, एरौकेरिया, गिंक्गो, कैसुऐराइना* की जातियाँ। फलीदार पौधों का उद्गम स्थान उष्णकटिवंध है किन्तु ये अन्य नाइट्रोजन यौगिकीकारी पौधे शीतोष्ण प्रदेशों में उत्पन्न होते हैं।

नील-हरित शैवालों या साइनोवैक्टीरिया (cynobacteria) द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण मुक्त जीवी रूप से भी हो सकता है और कवकों के साथ सहजीवी होकर भी जैसे कुछ लाइकेन, मॉस, पर्णांग और कम से कम एक वीजी-पादप के साथ। मुक्त रूप से तैरनें वाले पर्णांग, *ऐजोला* के पर्णागपर्ण में छोटे-छोटे रंध्र होते हैं, जो कि सहजीवी नील-हरित शैवाल *ऐनावीना* से भरे होते हैं। ये ही सक्रिय रूप से नाइट्रोजन यौगिकीकरण करते हैं। चीन में चावल के खेतों में शताब्दियों से इस पर्णांग ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। रोपाई से पूर्व पानी भरे धान के खेतों को इन जलीय पर्णांगों से भर दिया जाता है, जो कि फसल के पकने के लिए पर्याप्त नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर देते हैं। इस प्रथा से बिना अतिरिक्त उर्वरक डाले ही धान को उगाया जा सकता है।

मुक्तजीवी की अपेक्षा सहजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकारी अधिक दक्ष होते हैं।

2) मुक्तजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकारी

वायुजीवी और अवायुजीवी जीवाणुओं के कुछ समूह और नीलहरित शैवाल नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीव हैं। वायुजीवी नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवाणु जैसे *एज़ोटोवैक्टर* और अवायुजीवी जैसे *क्लोस्टेरिडियम* मृदा में तथा मीठे और खारे पानी में सुवितरित हैं। वस्तुतः ऐसे प्रमाण भी मिल रहे हैं कि मृदा और जल के कई जीवाणु नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने में समर्थ हैं और चूँकि इनकी मात्रा प्रचुर है इसलिए इनके द्वारा यौगिकीकृत होने वाले नाइट्रोजन की मात्रा भी प्रचुर होती है।

मृदा और मूल ग्रंथियों में यौगिकीकृत नाइट्रोजन (N_2) का पौधे द्वारा उपयोग होकर अनेक नाइट्रोजनी यौगिक (मुख्यतः प्रोटीन) बनते हैं जो कि फिर आहार शृंखला में प्रवेश कर जाते हैं। खाद, मृत पादप तथा जंतु एवं अणुजीवों के माध्यम से कार्वनिक यौगिकों के रूप में नाइट्रोजन की मृदा में वापसी हो जाती है। किन्तु इस नाइट्रोजन का अधिकांश अघुलनशील होता है और पौधे के उपयोग के लिए तुरंत उपलब्ध नहीं हो पाता।

धनात्मक आवेश होने के कारण एमोनियम आयन बनते ही ऋणात्मक आवेश वाले मृत्तिका कणों पर चिपक जाने की प्रवृत्ति रखता है, जो तब तक बनी रहती है, जब तक कि इसका ऑक्सीकरण न हो जाए। ऋणात्मक आवेश वाला नाइट्रेट आयन मृदा में मुक्त विचरण करता है और आसानी से नीचे जड़ों तक जा पहुँचता है।

अमोनियाकरण

मृदा और जल के कई परपोषित जीवाणु, ऐक्टिनोमाइसिटीज और कवक कार्वनिक नाइट्रोजन का उपापचयन करते हैं और अमोनिया के अकार्वनिक रूप में उसका मोचन कर देते हैं। इस प्रक्रिया को अमोनियाकरण या खनिजीकरण कहते हैं। यह एक ऊर्जा मोची अभिक्रिया है। उदाहरण के लिए ग्लाइसीन आधारित प्रोटीन 176 किलो कैलोरी प्रति मोल का मोचन करता है। इस ऊर्जा का उपयोग उस जीव की जीवन क्रियाओं के संपादन के लिए होता है, जो इस रूपांतरण के लिए उत्तरदायी होता है।

नाइट्रीकरण

नाइट्रीकरण वह क्रिया है जिसके द्वारा अमोनिया और अमोनियम लवण नाइट्रेटों में परिवर्तित होते हैं ताकि वे अधिकांश स्वपोषित और परपोषित जीवों के काम आ सकें। यह प्रक्रिया गरम, नम और उदासीन के निकट के pH वाली मिट्टी में होती है। इस प्रक्रिया के दो चरण होते हैं :

i) अमोनिया या अमोनिया-लवण का आक्सीकरण होता है और वे नाइट्राइटों में *नाइट्रोमोनास (Nitromonas)* द्वारा परिवर्तित किया जाता है :

$2NH_3 + 3O_2 \rightarrow 2NO_2^- + 2H^+ + 2H_2O$ 65 किलो कैलौरी/मोल
(अमोनिया) (नाइट्राइट)

ii) नाइट्राइट का पुनः ऑक्सीकरण होता है और वह *नाइट्रोबैक्टर (Nitrobacter)* द्वारा नाइट्रेटों में परिवर्तित किया जाता है :

$2NO_2^- + O_2 \rightarrow 2NO_3^-$ 17 किलो कैलोरी प्रति मोल
(नाइट्राइट) (नाइट्रेट)

अतः ऑक्सीकारी प्रक्रिया से ये नाइट्रीकारी जीवाणु अपनी ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

विनाइट्रीकरण

नाइट्रेटों का मृदा से आसानी से निक्षालन हो जाता है। साथ ही विनाइट्रीकरण नामक प्रक्रिया से भी ये निकल जाते हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसमें जीवाणु जैसे *स्यूडोमोनास (Pseudomonas)* और कवकों द्वारा NO_3 से आण्विक या गैसीय नाइट्रोजन (N_2) तथा नाइट्रस ऑक्साइड (NO_2) नाइट्रिक ऑक्साइड (N_2O) और नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) बनते हैं। ये जीवाणु और कवक ग्लूकोस और फ़ॉस्फेट की उपस्थिति में ऑक्सीज़न के स्रोत के रूप में नाइट्रेट का प्रयोग करते हैं। विनाइट्रीकारी जीवाणुओं के पसंद के आवास हैं अवायुजीवी या अंशतः अवायुजीवी आवास जैसे नदमुख, पंक, झीलों के पेंदे, और जलाप्लावित मृदाएँ। जीवाणु नाइट्रटों का नाइट्राइट रूप में अपचयन कर देते हैं, जो कि अंत में मुक्त नाइट्रोजन में वदल जाते हैं।

चित्र 6.4 में वे प्रक्रम दर्शाए गए हैं जिनका नाइट्रोजन चक्र में योगदान है, जैसे यौगिकीकरण, स्वांगीकरण.

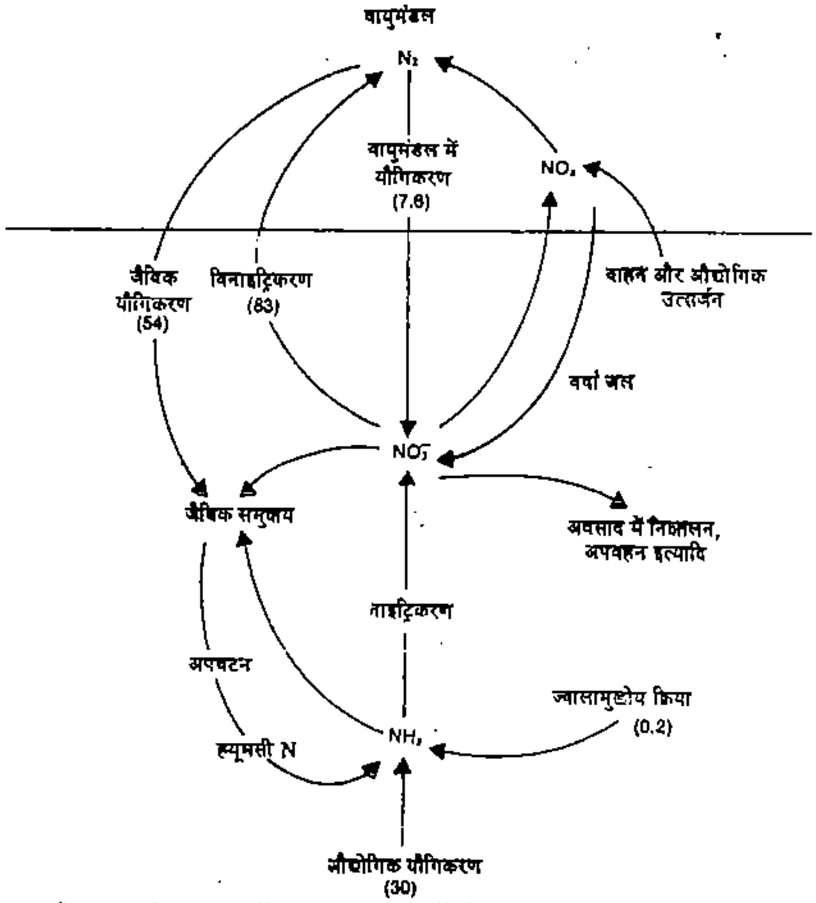

चित्र 6.4 : नाइट्रोजन चक्र के प्रधान प्रवाहों का आंकलन। कोष्ठकों की संख्याएँ 10^6 मेट्रिक टन प्रति वर्ष है (ऑकड़े डेलविच 1970, साइन्टिफिक अमेरिकन से)

विनाइट्रीकरण, अपघटन, निक्षालन, वर्षा जल द्वारा अपवहन इत्यादि। साथ ही वार्षिक विश्वव्यापी गतिविधियों के कुछ अनुमान भी दिए गए हैं। साथ ही मानवी कार्यकलापों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध दो प्रवाहों के आयाम भी दर्शाए गए हैं। ये दो प्रवाह हैं–वायुमंडल में उत्सर्जन तथा औद्योगिक यौगिकीकरण, जिसका अधिकांश नाइट्रोजन नाइट्रोजनी उर्वरकों के रूप में खेतों में डाल दिया जाता है।

कुल वार्षिक नाइट्रोजन यौगिकीकरण का आकलन 92×10^6 मेट्रिक टन किया गया है, जबकि विनाइट्रीकरण द्वारा वायुमंडल में लौटाई गई कुल राशि 83×10^6 मैट्रिक टन है। इस प्रकार जैव मंडल में लगभग 9×10^6 मैट्रिक टन अतिरिक्त नाइट्रोजन प्रति वर्ष आ रही है। यह संतुलन को बिगाड़ देती है और इसका अधिकांश भौम जल, जलाशयों, नदियों, झीलों और समुद्रों में संग्रहीत रहता है।

यदि हम एक विशाल क्षेत्र या समग्र रूप से जैवमंडल पर विचार करते हैं तब जैसा कि चित्र 6.4 में दिखाया गया है, स्वतः नियामक पुनर्भरण की क्रिया नाइट्रोजन चक्र को अपेक्षाकृत पूर्ण बना डालती है। समुद्र के अवसादों में जा पड़ने से परिसंचरण से बाहर हो जाने के कारण कुछ नाइट्रोजन की हानि तो होती ही है, किन्तु ज्वालामुखीय गैसों के वायु में प्रवेश कर जाने से इसकी क्षतिपूर्ति हो जाती है।

नाइट्रोजन चक्र पर मानवी प्रभाव

प्रकृति में नाइट्रोजन के चक्रण को मानवी कार्यकलाप गंभीर रूप से प्रभावित कर रहे हैं। 30×10^6 मेट्रिक टन/वर्ष से अधिक नाइट्रोजन उर्वरकों के औद्योगिक उत्पादन में यौगिकीकृत किया जा रहा है। यह राशि लगभग उतनी ही है जितनी कि जैविक कारकों से यौगिकीकृत हो रही है। नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग पृथ्वी पर नाइट्रोजन के वितरण को प्रभावित कर रहा है। कटी फसलों का अधिकांश नाइट्रोजन मानव और जानवरों के अपशिष्ट पदार्थ बनकर गंदी नालियों से होकर बहाव तथा निक्षालन से जलीय पारितंत्र में प्रवेश कर जाता है। निक्षालन से भूमिगत जल में पहुँचे नाइट्रोजनी यौगिक सिंचाई और पीने के पानी में बहुतायत से आकर स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न कर देते हैं। झीलों में जा पहुँचने वाले नाइट्रोजनी यौगिकों का उर्वरकी प्रभाव होता है, जिसके फलस्वरूप शैवाली प्रस्फुटन और **संवर्धनी सुपोषण** (cultural eutrophication) को बढ़ावा मिलता है। सुपोषण का क्या अर्थ है? यह आप एफ.एस.टी.-1 के खंड-4 की इकाई 16 से जान ही चुके हैं। सुपोषित झीलों में पादपप्लवक की अत्यधिक वृद्धि जैवभार (बायोमास) की विशाल राशि का उत्पादन करती है और अंत में पोषकों की समाप्ति पर स्वयं खत्म हो जाती है। मृत जीवों को अपरद-आहारी खा जाते हैं जो कि पानी में ऑक्सीजन की सप्लाई को भी समाप्त कर देते हैं। संवर्धनी सुपोषण की समस्या नाइट्रोजन के बजाय फॉस्फोरस की वृद्धि से अधिक गंभीर हो जाती है। जीवाश्मी ईंधन के दहन से वायुमंडल में नाइट्रोजनी यौगिकों की मात्रा बढ़ जाती है। नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO) की विशाल राशि वाहनों से विमोचित होती है और वायुमंडल के ओज़ोन से मिलकर NO_2 में परिवर्तित हो जाती है। नाइट्रोजन ऑक्साइड मानव के लिए एक विषैली गैस है और धूमकुहरा (smog) उत्पन्न करती है। जल से मिलकर यह नाइट्रिक अम्ल HNO_3 उत्पन्न करती है, जो कि अम्ल वर्षा के तीव्र अम्लों का 30 प्रतिशत भाग होता है। अम्ल वर्षा के विषय में आप भाग 6.5 में पढ़ेंगे।

आप उन जैव भूरासायनिक चक्रों के विषय में पढ़ चुके हैं, जिनमें मुख्य भंडार गैसीय प्रावस्था वाले होते हैं। अब हम दो अवसादी चक्रों पर चर्चा करेंगे, वे हैं : फॉस्फोरस और गन्धक के चक्र। ये पिछले दो गैसीय चक्रों से भिन्न हैं क्योंकि इनमें मुख्य भंडार और इनके रूपांतरण में शामिल प्रमुख अभिक्रियाएँ अवसाद तक ही सीमित हैं।

बोध प्रश्न 3

क) जैवमंडल में नाइट्रोजन का मुख्य भंडार है :

i) वायुमंडल

ii) शैल

iii) समुद्र

iv) जीव

ख) उपयुक्त शब्दों के प्रयोग से रिक्त स्थानों को भरिए :

अपरदाहारियों से उत्पादकों को नाइट्रोजन .... रूप में, नाइट्रोजन यौगिकीकारियों से .... रूप में और नाइट्रीकारी जीवाणुओं से .... रूप में उपलब्ध होता है। उत्पादकों और अपरदहारियों को नाइट्रोजन .... के रूप में मिलती है। विनाइट्रीकारी जीवाणुओं द्वारा निर्मित .... रूप में नाइट्रोजन पारितंत्र में चला जाता है।

6.5 गन्धक चक्र

एक अन्य गैसीय प्रावस्था को छोड़कर, गन्धक चक्र अधिकांशतः अवसादी होता है (चित्र 6.5)। गन्धक का विशाल भंडार तो मिट्टी और अवसाद ही है, जहाँ पर वह कार्बनिक (कोयला, तेल और पीट) तथा अकार्बनिक (पाइराइट शैल और गन्धक) निक्षेपों में बंधा रहता है। शैलों के अपक्षय, अपक्षयी बहाव तथा विघटन से इसका मोचन होता है तथा लवण घोलों के रूप में यह भूमि और जलीय पारितंत्रों में पहुँच जाता है। वायुमंडल भी एक छोटा भंडार है। अपनी गैसीय प्रावस्था के कारण कार्बन, ऑक्सीज़न और नाइट्रोजन के साथ गन्धक का भी विश्वव्यापी परिसंचरण होता है।

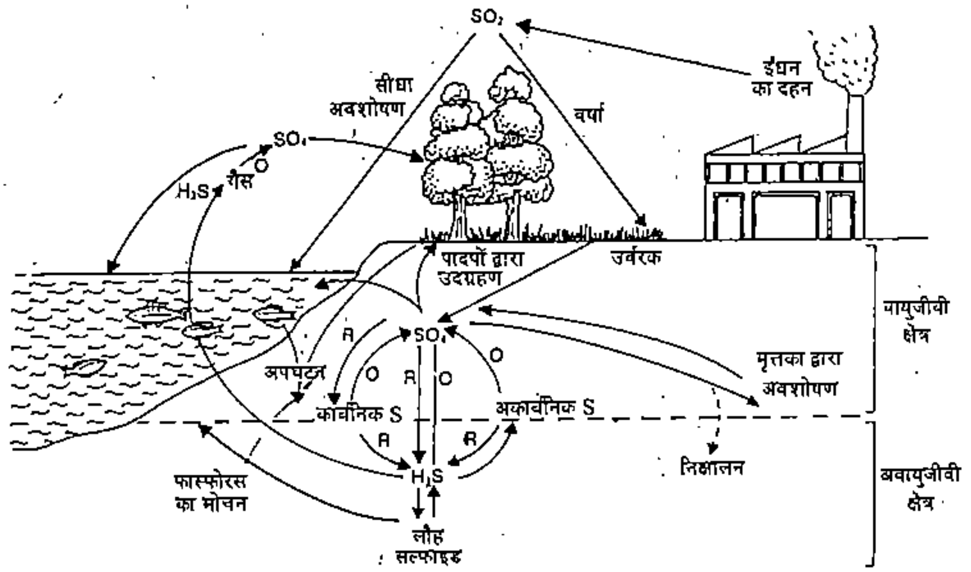

चित्र 6.5 : वायु, जल और मिट्टी से जुड़ा हुआ गंधक चक्र। बीच में बना हुआ वृत्ताकार तीर दिखलाता है उपचयन (O) और अपचयन (R) की अभिक्रियाओं को जो प्राप्य सल्फेट (SO_4) भंडार, कार्बनी गंधक और अवसाद तथा मृदा में गहरे व दबे लौह सल्फाइड के बीच मुख्य रूपांतरण करतीं है।

जीवाश्म ईंधनों के जलने, ज्वालामुखीय उद्गारों, समुद्र तल, अपघटन से मोचित गैसों आदि कई स्रोतों से हाइड्रोजन सल्फाइड या सल्फर डाइऑक्साइड के रूप में ही वायुमंडल में गंधक प्रवेश करता है। हाइड्रोजन सल्फाइड ऑक्सीकृत होकर सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2)भी बन जाता है। वर्षा जल में घुलकर वायुमण्डलीय सल्फर डाइऑक्साइड पुनः भूमि में कमज़ोर गन्धक के तेजाब (H_2SO_4) के रूप में जा पहुँचता है। गन्धक को सल्फेट रूप में पौधे ले लेते हैं और उपापचयी प्रक्रमों के क्रम द्वारा सल्फरधारी एमीनो अम्लों में बदलकर समाविष्ट कर लेते हैं। उत्पादकों से फिर इन एमीनो अम्लों को उपभोक्ता प्राप्त करते हैं।

उत्सर्जनों तथा जीवाणु और कवकों द्वारा मृत जैव पदार्थों के अपघटन से जीवों में बद्ध गन्धक फिर से मृदा और जलाशयों, झीलों तथा समुद्रों के तलों में जा पहुँचता है। उपचयी और अपचयी रूपांतरणों का सारांश तालिका 6.4 में दिया जा रहा है। इनका कार्यान्वयन विशिष्ट जीवाणुओं द्वारा होता है, जो इन्हीं रूपांतरणों से ऊर्जा प्राप्त करते हैं।

तालिका 6.4 : गन्धक चक्र में कुछ सूक्ष्म जीवाणु की भूमिका
(O-उपचयन तथा R-अपचयन की अभिक्रयाओं के संकेत हैं)

अणुजीव	अभिक्रियाएं, रूपांतरण
रंगहीन, हरित (green) तथा बैंगनी (purple)	$H_2S \xrightarrow{O} S \xrightarrow{O} SO_4$
गन्धक-जीवाणु	
डीसल्फ़ोविब्रियो *(Desulphovibrio)* (अवायुजीवी)	$SO_4 \xrightarrow{R} H_2S$
थायोबैसिलस *(Thiobacillus)* (वायुजीवी)	$H_2S \xrightarrow{O} SO_4$
वायुजीवी परपोषी	कार्बनिक $S \xrightarrow{O} SO_4$
अवायुजीवी परपोषी	कार्बनिक $S \xrightarrow{R} H_2S$

चित्र 6.5 को फिर से देखिए। चित्र और तालिका में दिखलाई गई अभिक्रियाओं से आप नाइट्रोजन चक्र और इसमें कुछ समानता देखेंगे। जिस प्रकार विनाइट्रीकारी जीवाणु नाइट्राइट और नाइट्रेट का उपयोग करते हैं उसी प्रकार गन्धक का अपचयन करने वाले परपोषित जीवाणु सल्फेट का हाइड्रोजन ग्राही के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

बेगिआटोआ जैसी रंगहीन गंधकी जीवाणु की जातियाँ हाइड्रोजन सल्फाइड के आक्सीकरण से तत्व रूप में गंधक बना डालती हैं और *थायोबैसिलस* की जातियाँ इसके ऑक्सीकरण से सल्फेट बना देती हैं। आक्सीकरण की प्रक्रियाओं के लिए कुछ जातियों को आक्सीजन की उपस्थिति चाहिए, कुछ अन्य जातियों के लिए यह आवश्यक नहीं है। ये अन्य जातियाँ हैं : रासायनिक संश्लेषण करने वाले स्वपोषित जीव। ये अपना कार्बन, कार्बन के अपचयन से प्राप्त करते हैं।

$$6CO_2 + 12H_2S \longrightarrow C_6H_{12}O_6 + 6H_2O + 12S$$

इन जीवाणुओं की तुलना रसायन-संश्लेषी स्वपोषित नाइट्रीकारी जीवाणुओं से की जा सकती है, जो आक्सीकरण से अमोनियां को नाइट्राइट तथा नाइट्राइट को नाइट्रेट में बदल देते हैं। ऐसा लगता है कि हरित जीवाणु ऑक्सीकरण द्वारा H_2S से तात्विक गंधक S बना डालते हैं और बैंगनी जीवाणु आक्सीकरण से इसे सल्फेट अवस्था तक पहुँचा देते हैं।

$$6CO_2 + 12H_2O + 3H_2S \longrightarrow C_6H_{12}O_6 + 6H_2O + 3SO_4^{-2} + 6H^+$$

सल्फेट या तो पुनः परिसंचारित होकर उत्पादकों को प्राप्त हो जाता है या फिर सल्फेट अपचयी जीवाणुओं द्वारा काम में लाया जाता है। चक्र का अवसादी पहलू है : लौह (Fe) और कैल्शियम (Ca) की उपस्थिति में गन्धक का अवक्षेपण। अवक्षेपण से प्राप्त होते हैं अत्यधिक अघुलनशील फेरस सल्फाइड (FeS) और फेरिक सल्फाइड (Fe_2S_3) जिसे पाइराइट नाम से जाना जाता है, या अपेक्षाकृत अघुलनशील कैल्शियम सल्फेट ($CaSO_4$) प्राप्त होता है। इस प्रकार गन्धक के भंडार की पूर्ति होती है। यहीं से यह अपक्षयण और अपरदन द्वारा चक्र में पहुँचता है। पारितंत्र को उतने गन्धक की आवश्यकता नहीं होती जितनी कि नाइट्रोजन और फ़ॉस्फ़ोरस की। फिर भी, उत्पादन और अपघटन के सामान्य विधान में गन्धक का महत्व है। उदाहरण के लिए जब अवसाद में लौह सल्फाइड बनते हैं तो जैसा चित्र 6.15 में दर्शाया गया है फ़ॉस्फ़ोरस अघुलनशील अवस्था से घुलनशील अवस्था में आ जाता है। फिर जीवों के लिए उपलब्ध भंडार में फ़ॉस्फ़ोरस प्रवेश करता है। किस प्रकार एक चक्र दूसरे चक्र का नियमन करता है, इस बात का यह एक उत्तम उदाहरण है।

गन्धक चक्र पर मानवी प्रभाव

विशाल मात्रा में जीवाश्म ईंधनों के जलाये जाने से सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) का उत्सर्जन होता है। विश्व-भर में प्रति वर्ष लगभग 14.7 करोड़ टन सल्फर डाइऑक्साइड वायुमंडल में डाली जा रही है। सामान्यतः नाइट्रोजन और गन्धक के आक्साइड (NO_2, N_2O, SO_2) अपने-अपने चक्रों में अस्थायी चरणों के रूप में होते हैं और अधिकांश पर्यावरणों में निम्न सांद्रण में उपस्थित रहते हैं। फिर भी जीवाश्म ईंधनों के जलाये जाने से वायु में इन आक्साइडों का संकेन्द्रण बहुत बढ़ गया है, विशेषकर शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में जहाँ पर ऐसी स्थिति आ चुकी है कि जैव घटकों के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) प्रकाश संश्लेषण को क्षति पहुँचाता है। यह सबसे सशक्त पादपआविषालु (Phytotoxic) प्रदूषकों में से एक है। इतना ही नहीं, पानी के वाष्प से मिल जुल कर यह H_2SO_4 बनाता है जो अम्ल वर्षा के रूप में भूमि पर वापिस आ जाता है। अम्ल वर्षा के प्रभावों के विषय में आप एफ.एस.टी.-1, खंड-4 की इकाई-16 में पढ़ चुके हैं। अम्ल वर्षा विविध तरीकों से भूमि, वनस्पति और जलीय तंत्रों को प्रभावित करती है। महत्वपूर्ण पादप पोषक जैसे कैल्शियम, मैग्नीशियम और पोटेशियम मृदा से उत्तरोत्तर निक्षालित होते जाते हैं। यही नहीं, सशक्त विषैले तत्व जैसे ऐल्यूमिनियम और जिंक जमा होते जाते हैं। मिट्टी के लाभदायक अणुजीवों के स्थान पर रोगकारी हानिकारक कवक आ जाते हैं।

सामान्य वर्षा का p.H. 6.5 होता है, जो थूक और दूध से कुछ अधिक अम्लीय होता है। अम्ल वर्षा वास्तव में वह वर्षण है जिसमें वर्षा, हिमपात, सहिम वृष्टि और कोहरे में तनु घोलों में सल्फ्यूरिक और नाइट्रिक अम्ल विद्यमान हों।

आज के दिन अम्ल वर्षा शहरी क्षेत्र की एक स्थानीय समस्या नहीं रह गई है। इसका प्रभाव अधिकतम होता है झीलों, नदी-नालों और उन मृदाओं में जो पहले ही अम्लीय हैं और जिनमें pH बफर जैसे कि कार्बोनेटों, कैल्शियम लवणों और अन्य क्षारकों की कमी होती है।

बोध प्रश्न 4

गंधक चक्र के उपचक्रों को समझाने वाला आरेख (i) और (ii) में रिक्त स्थानों की पूर्ति करिये।

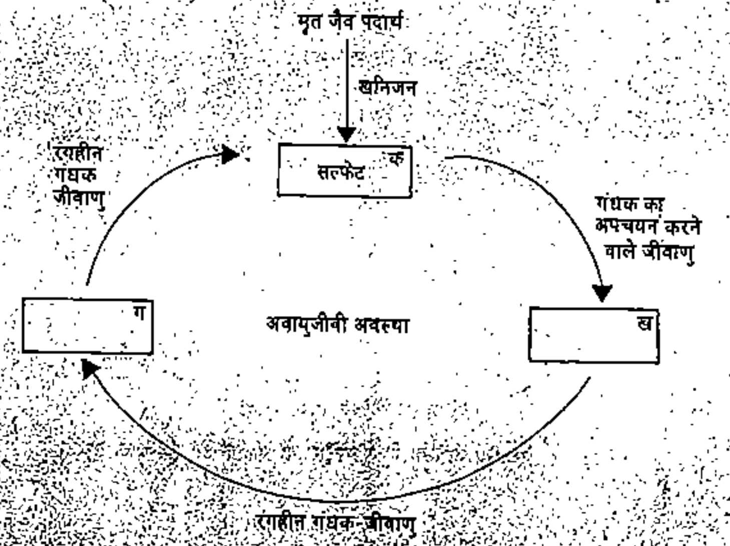

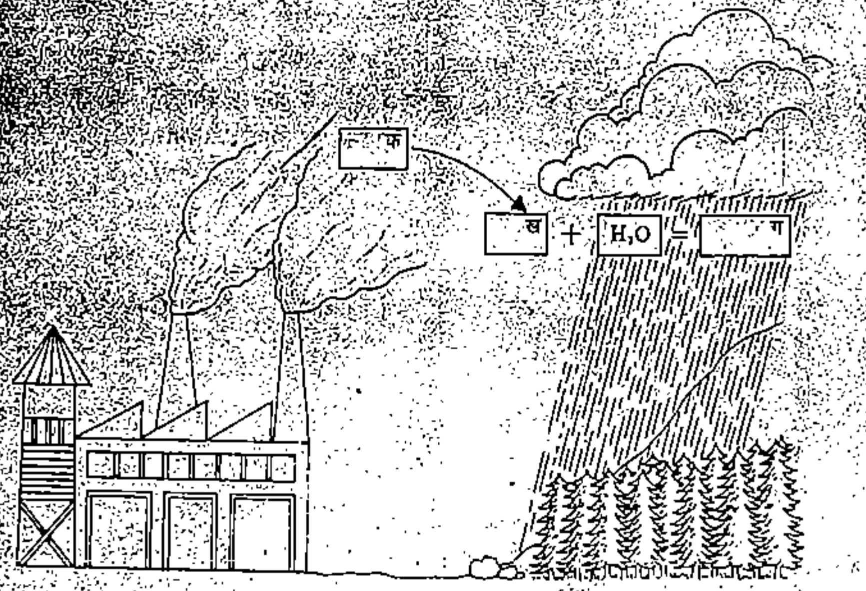

6.6 फॉस्फोरस चक्र

फॉस्फोरस एक अति महत्वपूर्ण पोषक है क्योंकि अपने फॉस्फेट रूप में ऊर्जा के संग्रहण और मोचन करने वाली अभिक्रियाओं में इसकी भूमिका है। पारितंत्र की उत्पादकता में फॉस्फोरस की प्राप्यता अक्सर एक सीमाकारी कारक बन जाती है। फॉस्फोरस का भंडार है क्रिस्टलीय फॉस्फेट शैल और फॉस्फोरस चक्रण के कक्षों में जीव मृदा और उथले समुद्री अवसाद सम्मिलित हैं।

जिस प्राकृतिक रूप में फॉस्फोरस उपलब्ध है वह है अकार्बनिक फॉस्फेट। शैलों के अपक्षय और अपरदन द्वारा अकार्बनिक फॉस्फेट पौधों के लिए प्राप्त होता है। स्थलीय पौधे इसे मृदा से प्राप्त करते हैं और जलीय पौधे जल से। पौधों द्वारा ग्रहण किए जाने पर फॉस्फेट A.T.P. (एडीनोसीन ट्राइफॉस्फेट), न्यूक्लीक अम्ल और अन्य कार्बनिक यौगिकों का अंश बन जाता है। जब पौधे की मृत्यु या अपघटन होता है तो फॉस्फेट मृदा या अवसाद में वापिस जा पहुँचता है। फॉस्फोरस उपभोक्ता के पास भी जा सकता है अथवा अपघटक जीवों के कोशिका काय में भी समाविष्ट हो सकता है।

उपभोक्ता में फॉस्फोरस हड्डियों या दाँतों में समाविष्ट हो सकता है और इस प्रकार लम्बी अवधि के लिए बंधा रह सकता है। इसका कुछ अंश अपशिष्ट पदार्थों के रूप में उत्सर्जित हो जाता है और तुरंत ही अपघटक जीवों को उपलब्ध हो जाता है। एक ओर छोटे पाश (loop) द्वारा यह अकार्बनिक फॉस्फेट में

परिवर्तित हो सकता है और पादपों द्वारा इसका स्वांगीकरण हो सकता है (चित्र 6.8 देखिए)। दूसरी ओर, अघुलनशील यौगिकों के रूप में यह लोहा, ऐल्यूमिनियम और कैल्शियम के साथ दृढ़ता से बंधन स्थापित कर सकता है और फिर वह सकता है या अवसादों में पड़कर खो सकता है।

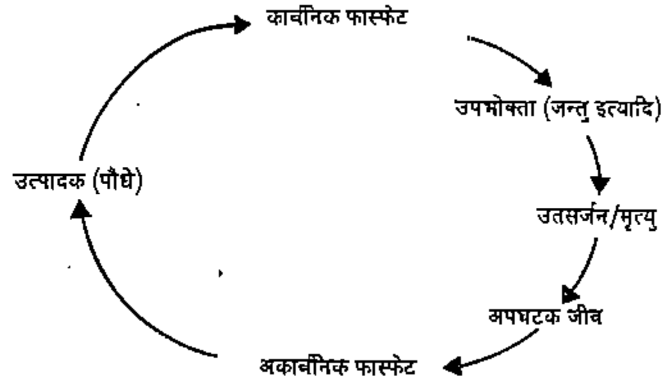

चित्र 6.6 : स्थलीय पारितंत्र में फॉस्फोरस के चक्रण का एक छोटा लूप

खारे और मीठे पानी के पारितंत्रों में फॉस्फोरस चक्र तीन कक्षों से गुज़रता है :

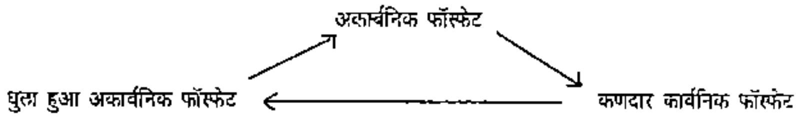

पादप प्लवक (तैरने वाले पौधे) अकार्बनिक फॉस्फेट को शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं। पादप प्लवक को जंतु प्लवक या अपरद-भोजी जीव खा जाते हैं। इसके बाद बारी आती है जन्तु प्लवक की, जो उत्सर्जन क्रिया से रोज़ाना फॉस्फोरस की उतनी राशि उत्सर्जित कर देता है जितनी कि उनकी जीवभार में संगृहीत होती है। उत्सर्जित फॉस्फोरस का आधे से अधिक भाग अकार्बनिक होता है, जिसे पादप प्लवक फिर प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार चक्र चलता रहता है।

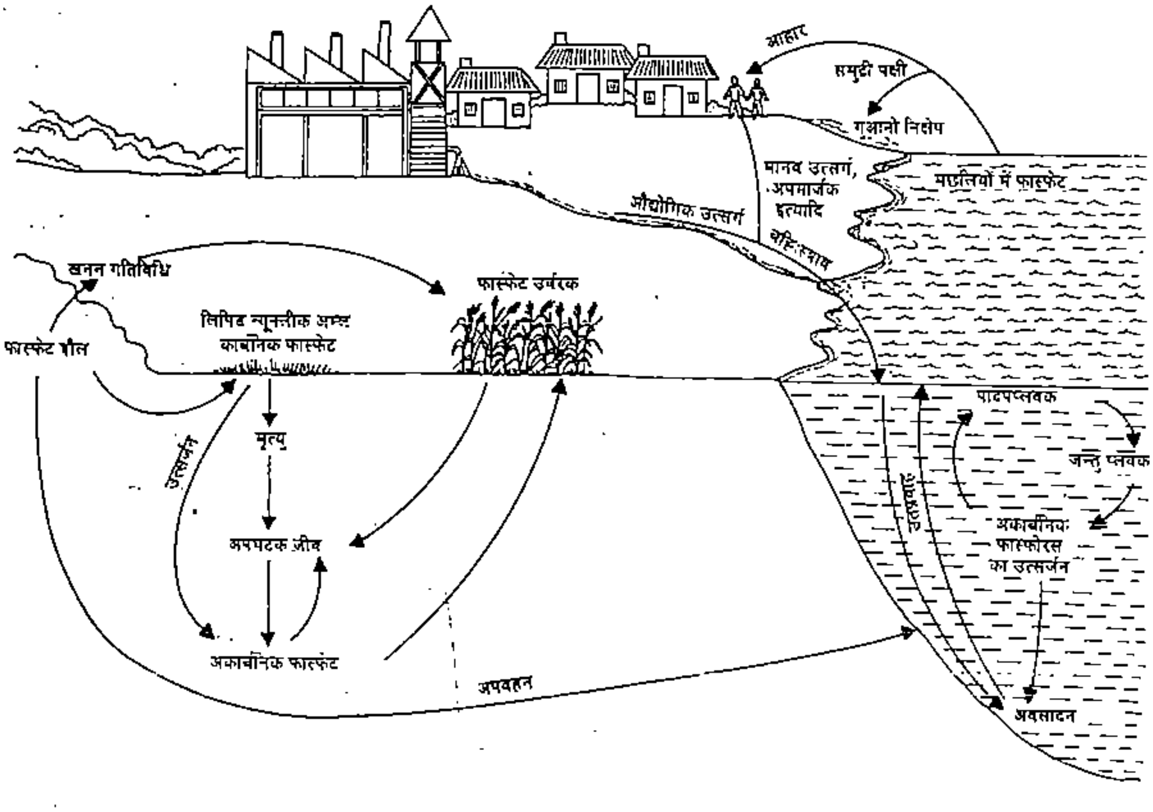

चित्र 6.7 : स्थलीय और जलीय पारितंत्रों में फॉस्फोरस चक्र जीवों की वृद्धि और उनके कार्यकलापों में फॉस्फोरस चक्रण की दर का अत्यधिक महत्व है।

जलीय तंत्र का शेष फॉस्फोरस कार्बनिक फॉस्फेटों के रूप में होता है, जो जीवाणुओं द्वारा इस्तेमाल होता है। इन जीवाणुओं को सुक्ष्मजीव भोजी (microbial grazers) खा जाते हैं और फिर वे इस खाए गए फॉस्फोरस का उत्सर्जन कर देते हैं।

फॉस्फोरस के कुछ अंश का उथले अवसादों में निक्षेप हो जाता है और कुछ का गहरे पानी में क्योंकि फॉस्फोरस का अधिकांशतः अवक्षेपण कैल्शियमी यौगिकों के रूप में होता है। तले के अवसादों में जाकर इसका अधिकांश भाग गतिहीन हो जाता है जहाँ से बाद में उत्प्रवाह क्रिया द्वारा फिर से उसका संचार हो जाता है। चित्र 6.7 में स्थलीय और जलीय पारितंत्रों में फॉस्फोरस के चक्र को दर्शाया गया है।

जलीय तंत्रों में फास्फोरस प्रधान सीमाकारी कारक है। इसके टर्नओवर की दर कई जलीय तंत्रों की उत्पादकता का निर्धारण करती है। उदाहरण के लिए फॉस्फोरस का आधिक्य शैवालों तथा प्रकाश-संश्लेषी जीवाणु समुदायों की आशातीत वृद्धि को प्रोत्साहित करता है, जिस कारण से जलीय पारितंत्रों में गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

फॉस्फोरस चक्र पर मानवी प्रभाव

अन्य जैवभूरासायनिक चक्रों की तरह मानव के कार्यकलापों ने फॉस्फोरस चक्र में भी परिवर्तन ला दिए हैं। उर्वरकों, अपमार्जकों (detergent), जन्तु-आहार, औषधियों, कीटनाशियों तथा अनेकों अन्य पदार्थों के उत्पादन के लिए फास्फेट उपलब्ध कराने के लिए मानव फॉस्फेट शैलों तथा गुआनो निक्षेपों (guano deposits) का खनन करते हैं। इस खनन क्रिया द्वारा लाखों वर्षों में बने फॉस्फेट के निक्षेप अनावृत हो जाते हैं।

पौधों की कटाई द्वारा फॉस्फेट मृदा से निकल जाते हैं और इसकी वापसी के लिए फॉस्फोरसी उर्वरकों को डालना पड़ता है। मृदा में कैल्शियम, लौह और ऐल्यूमिनियम की प्रचुरता के कारण अधिकांश फॉस्फोरस अघुलनशील लवण बनकर गतिहीन हो जाता है। इस कारण और अधिक उर्वरक डालना पड़ जाता है। फलस्वरूप कृषि के जलप्रवाहों में फॉस्फोरस का सांद्रण उच्च हो जाता है। इसी प्रकार अपमार्जकों, खाद्य संसाधन के अपशिष्ट पदार्थों, पादप एवं जन्तुओं की आहार-राशि तथा मलजल आदि में फॉस्फोरस के जमाव से प्राकृतिक जलों में फॉस्फोरस की पर्याप्त राशि बह जाती है। शहरी क्षेत्रों में इस समस्या ने गंभीर रूप ले लिया है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, जलीय पारितंत्रों में वनस्पति फॉस्फोरस को अतिशीघ्र ग्रहण कर लेती है जिसके फलस्वरूप शैवालों की त्वरित वृद्धि हो पड़ती है। नाइट्रोजन की भाँति इससे भी जल काय का **संवर्धनी सुपोषण** हो जाता है। उत्पादक जल को धूमिल कर डालते हैं और सतह पर एक पपड़ी-सी जमा देते हैं, जिससे निमज्जित पादपों तक धूप नहीं पहुँच पाती है। पोषक चक्र की किसी एक अवस्था में पोषकों के जमा हो जाने के क्या परिणाम हो सकते हैं उसका यह एक उदाहरण है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि इस क्षति की पूर्ति कर सकने के लिए फॉस्फोरस को चक्र में वापिस डालने के साधन अपर्याप्त हैं। फॉस्फोरस को चक्र में वापिस डालने में समुद्री पक्षियों ने परंपरागत रूप से महत्वपूर्ण भूमिका बीट डालकर अदा की है (उदाहरण के लिए पेरू के तट के पास के गुआनो निक्षेप) परन्तु यह भी आज उस दर से नहीं हो रही है जितनी कि पिछले दिनों होती थी।

दुर्भाग्यवश मानव के कार्यकलाप फास्फोरस हानि की दर को बढ़ाने की दिशा में प्रतीत हो रहे हैं और इस प्रकार चक्र की पूर्णता को कम कर दे रहे हैं। हम फॉस्फोरस को काम में लाकर उसे बहाकर नदियों और अंत में समुद्र में डाल रहे हैं, यह वैसा ही है जैसे कि जल्दी से इसे इसके स्रोत से लेकर कुंड (sink) में डाल दें।

बोध प्रश्न 5

फास्फोरस चक्र के चरणों को दर्शाने वाले इस आरेख में रिक्त स्थान भरिये।

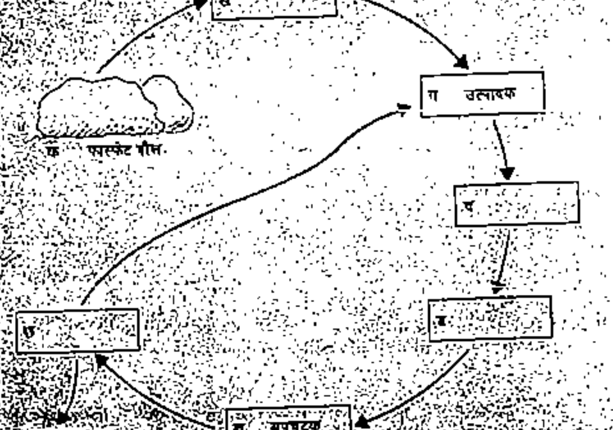

6.7 वनों में पोषक बजट और पोषक चक्रण

इस इकाई में अभी तक हमने व्यक्तिगत पोषकों के गतिक्रम पर विचार किया है और इसके विश्वव्यापी, जैव और रासायनिक पहलुओं पर विशेष बल दिया है। अब हम विशेषकर वनीय पारितंत्र के संदर्भ में निवेश, उत्पादन और पोषकी प्रवाहों के लिहाज से पोषक गतिविज्ञान पर विचार करेंगे। इन सभी क्रियाओं का सामूहिक बोध कराने वाला एक शब्द बना लिया गया है, जो है ''पोषक बजट''।

6.7.1 पोषक बजट

प्राकृतिक और कृत्रिम प्रक्रियाओं (चित्र 6.8 देखिए) द्वारा पोषक निरंतर डाले या घटाये जा रहे हैं। किसी पारितंत्र में उसके घटकों द्वारा पोषकों का आवागमन ही उसका ''पोषक बजट'' है। किसी भी पारितंत्र के पोषक बजट को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

क) **आंतरिक बजट :** इसका संबंध होता है किसी पारितंत्र के जीवीय और अजीवीय कक्षों के बीच पोषक को परिसंचरण अर्थात् वे आदान-प्रदान जो उत्पादक → उपभोक्ता → अपघटक खाद्य शृंखला के बीच तथा वे विनिमय जो भंडार और अवसादी कक्ष के बीच एक ही पारितंत्र में होते हैं।

ख) **बाह्य बजट :** आंतरिक बजट के विपरीत इसमें समूचे पारितंत्र और किसी अन्य पारितंत्र के बीच होने वाले आदान-प्रदान आते हैं। उदाहरण के लिए ज्वालामुखीय उद्गार पदार्थों को वायुमंडल में डाल देते हैं या विस्तृत भूक्षेत्र के ऊपर फैला देते हैं और इस प्रकार एक विशाल क्षेत्र के पोषकों में गड़बड़ी पैदा कर देते हैं। आंधी-पानी भी पोषकों का लम्बी दूरियों तक परिवहन कर देता है और शैल अपक्षयण आदि क्रियाओं के परिणामों का वाहक बन जाता है। इस प्रकार विभिन्न पारितंत्रों के बीच पोषक आते-जाते रहते हैं। जानवर एक पारितंत्र में भोजन प्राप्त कर दूसरे पारितंत्र में मल त्याग करते हैं अथवा मरते हैं और वृक्ष एक तंत्र में पलकर दूसरी जगह जलाए जाते हैं। निस्संदेह मनुष्य इस आंतरिक और बाह्य बजट पर प्रभाव डालने वाला सबसे शक्तिशाली कारक है।

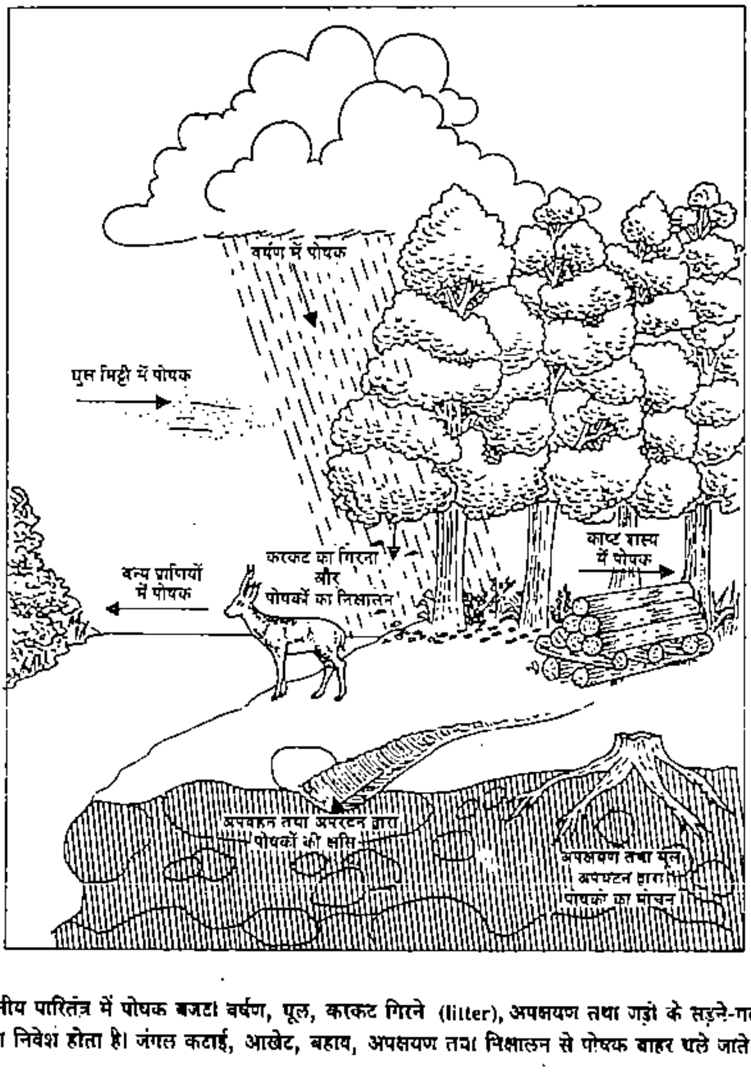

चित्र 6.8 : वनीय पारितंत्र में पोषक बजट। वर्षण, धूल, करकट गिरने (litter), अपक्षयण तथा जड़ों के सड़ने-गलने से पोषकों का निवेश होता है। जंगल कटाई, आखेट, बहाव, अपक्षयण तथा निक्षालन से पोषक बाहर चले जाते हैं।

6.7.2 उष्णकटिबंधी तथा शीतोष्ण वनों में पोषक चक्रण

पोषक चक्र के अध्ययन से आप समझ चुके होंगे कि हरे पौधों और अपघटक जीव के योगदान का क्या महत्व है। भूमि और वायु अजीवीय घटक हैं; इनसे हरे पौधे पोषकों को प्राप्त करते हैं अपघटक जीव पोषकों को फिर से अजीवीय आशयों में डाल देते हैं ताकि पौधों द्वारा ये काम में लाए जा सकें।

उष्णकटिबंधी वनों में कुल पोषकों की एक विशाल प्रतिशत मात्रा तो जीवभार (बायोमास) में स्थित होती है न कि मृदा में, जबकि शीतोष्ण क्षेत्रों में जैव पदार्थों का विशाल अंश और उपलब्ध पोषक सर्वदा मृदा और अवसादों में ही होते हैं। चित्र 6.9 में एक उत्तरी और दूसरे उष्णकटिबंधी वर्षा वन में जैव पदार्थों के वितरण का वैषम्य दर्शाया गया है। रुचिकर बात यह है कि दोनों पारितंत्रों में जैव कार्बन की एक ही मात्रा विद्यमान है किन्तु उष्णकटिबंधी वन में तीन-चौथाई से अधिक वनस्पति में है।

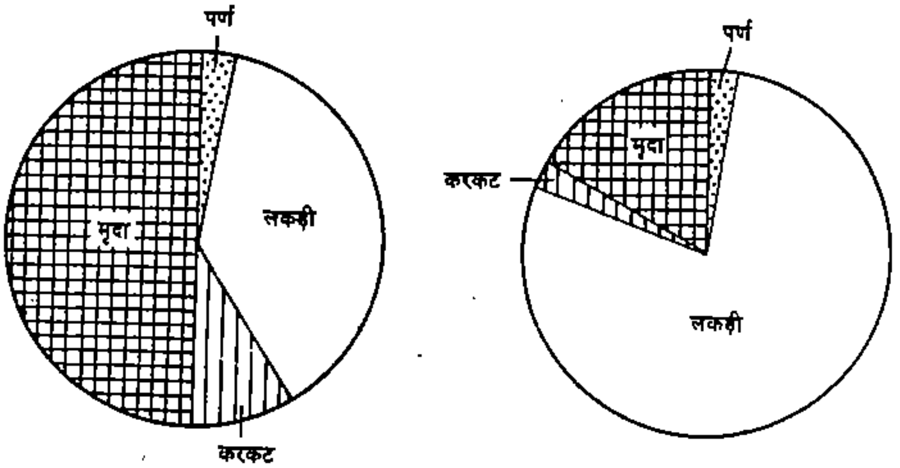

उत्तरी शंकुवृक्षी वन | उष्णकटिबंधी वर्षा वन

चित्र 6.9 : उष्णकटिबंधी और शीतोष्ण वनों के अजीवीय (मृदा और करकट) तथा जीवीय (लकड़ी और पत्ते) घटकों में संचित जैव कार्बन का वितरण। ध्यान रहे कि उष्णकटिबंधी वन में पादप जैवभार में जैव कार्बन की मात्रा बहुत अधिक है।

उष्णकटिबंधी वनों की जैव संरचना में पोषकों के पुनः चक्रण में कई पोषक संरक्षी जैव अनुकूलन सहायता प्रदान करते हैं। ये अनुकूलन क्षेत्र की भूस्थिति तथा मूल उर्वरता पर निर्भर करते हैं। ऊष्ण कटिबंधी वनों में विशेषतया सुविकसित कुछ युक्तियाँ इस प्रकार हैं :

जैव संरचना के अंदर "पोषकों का पुनः चक्रण" का अर्थ है पौधे की पत्तियों और काष्ठिल ऊतकों में पोषकों का आवागमन। जो कोई भी पोषक पत्तियों से वायु या जल द्वारा बहाए जाते हैं या फिर कूड़ा-करकट बनकर गिर पड़ते हैं, उनको शीघ्र ही पौधा फिर से प्राप्त कर लेता है, जिसके फलस्वरूप मृदा में बहुत ही कम मात्रा में पोषक बचे रह पाते हैं।

1. चटाईदार जड़ें (root mats)–इनमें भोजन प्राप्त करने वाली महीन जड़ें होती हैं जो कूड़े-करकट की सतह को वेधकर नीचे गिरे पत्तों और वर्षा जल से उनके निक्षालित होने से पूर्व ही तुरंत पोषक प्राप्त कर लेती है। चटाईदार जड़ें विनाइट्रीकारी जीवाणुओं की क्रिया का विरोध भी करती हैं और इस प्रकार नाइट्रोजन हानि को रोकती हैं।
2. कवकमूलीय कवक (mycorrhizal fungi)–ये मूल तंत्र से सम्बद्ध होकर पोषकों के पाश बनकर उनके बने रहने और उनकी पुनः प्राप्ति में सहायक होते हैं। इस प्रकार का सहजीवन उन शीतोष्ण वनों में भी पाया जाता है, जो मूलतः कम पोषक वाले स्थानों में होते हैं।
3. सदाहरित पत्तियाँ–इनकी उपत्वचा (क्यूटिकल) के ऊपर मोम की मोटी परत होती है जो जल और पोषकों की हानि को रोकती है, साथ ही पत्तियों के अग्र नुकीले या टपकनदार होते हैं जो जल को शीघ्र ही बहा डालते हैं और पोषक के निक्षालन को रोकते हैं।
4. शैवाल और लाइकेन–ये पत्तियों की सतह पर छा जाते हैं और वर्षा जल के पोषकों को ग्रहण कर लेते हैं, जिनका एक अंश तुरन्त पत्तियों के लिए उपलब्ध हो जाता है। लाइकेन भी नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं।
5. मोटी छाल–यह फ्लोएम से पोषकों के विसरण का निरोध करती है और तने से पानी के नीचे को निथरने को रोकती है।

यद्यपि उष्णकटिबंधी वनों की मृदा में पोषकों की मात्रा कम होती है फिर भी इन पोषकों संरक्षी विधियों द्वारा ये प्राकृतिक अवस्थाओं में उच्च उत्पादकता को बनाए रखने में समर्थ होते हैं। इन विधियों द्वारा चक्रण एक पौधे से दूसरे पौधे के बीच स्थापित हो जाता है और मृदा बीच में आती ही नहीं। जब खेती करने के लिए

इन वनों की कटाई की जाती है तो इन विधियों का नाश हो जाता है और उत्पादकता में शीघ्र ही कमी आ जाती है। वनों के उन्मूलन से भूमि की पोषकों को थामे रहने की क्षमता नष्ट हो जाती है, साथ ही वर्ष-भर उच्च तापमान रहने के कारण उत्पन्न कीट रोगों से लड़ने की क्षमता का भी विनाश हो जाता है। फसल की पैदावार कम हो जाती है और कुछ ही वर्षों में भूमि का परित्याग कर देना पड़ता है।

शीतोष्ण वनों की मृदा में अपेक्षाकृत विशाल पोषक भंडार होते हैं और इन वनों को जब काटा जाता है तो मृदा में पोषक बने ही रहते हैं। वर्ष में एक या अधिक बार हल चलाकर, अल्प अवधि में पनपने वाले वार्षिक पौधों को उगाकर तथा अकार्बनिक उर्वरकों को डालकर कई वर्षों तक खेती की जा सकती है। जाड़ों में हिमकारी ताप (freezing temperature) पोषकों के टिके रहने और रोगों तथा कीटों से लड़ने में सहायक होता है।

यही कारण है कि शीतोष्ण क्षेत्रों में जो कृषि की प्रथाएं उपयुक्त हैं वे उष्णकटिबंधी क्षेत्रों के लिए अनुपयुक्त हो जाती हैं। इसीलिए उपयुक्त परिवर्तन किये बिना इन प्रथाओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

6.8 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि :

- पर्यावरण से जीव और फिर जीव से पर्यावरण पोषकों का परिसंचरण होता रहता है। निरंतर चलते रहने वाले इस क्रम को जैवभूरासायनिक चक्र या पोषक चक्र कहते हैं। इन चक्रों के दो प्रकार हैं : गैसीय जिनमें मुख्य भंडार वायुमंडल होता है; इनके उदाहरण हैं कार्बन और नाइट्रोजन चक्र तथा अवसादी जिनमें मुख्य भंडार होता है भूमि पर्पट, इनके उदाहरण हैं गन्धक और फॉस्फोरस चक्र।
- कार्बन चक्र में शामिल पौधों द्वारा श्वसन और स्वांगीकरण क्रियाओं में कार्बन डाइऑक्साइड का ग्रहण, कार्बोहाइड्रेट रूप में पौधों और जानवरों के ऊतकों में इसका उपयोग तथा श्वसन, अपघटन और दहन क्रियाओं के माध्यम से कार्बन डाइऑक्साइड का विमोचन। दीर्घकालीन भंडारों के रूप में परिरक्षित होकर कार्बन इस चक्र के बाहर भी चला जाता है। लकड़ी और जीवाश्म ईंधनों के जलाएं जाने से जो कार्बन डाइऑक्साइड का त्वरित विमोचन हो रहा है उससे समुद्र, वायुमंडल और भूमि के बीच के कार्बन डाइऑक्साइड के संतुलन में गड़बड़ी पैदा हो रही है। वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा की वृद्धि से परिवात तापमान की विश्वव्यापी वृद्धि की भी संभावना है, जिसके गंभीर पारिस्थितिकीय दुष्परिणाम हो सकते हैं।
- नाइट्रोजन चक्र का मुख्य अंग है नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवों तथा औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण तथा पादपों द्वारा नाइट्रेट और अमोनिया के आयनों के रूप में इसका स्वांगीकरण। नाइट्रोजन चक्र में शामिल हैं अमोनीकरण, नाइट्रीकरण तथा विनाइट्रीकरण की प्रक्रियाएं। नाइट्रोजन चक्र में मानवी हस्तक्षेप का परिणाम होता है वायुमंडल में नाइट्रोजन के ऑक्साइडों का विमोचन जिससे वायु प्रदूषण तथा धूमकुहरा उत्पन्न हो जाता है। जलीय पारितंत्र में अत्यधिक मात्रा में नाइट्रेटों के चले जाने से संवर्धनी सुपोषण हो जाता है।
- सल्फर चक्र गैसीय और अवसादी चक्रों का संयोजन है। इसमें एक दीर्घकालीन अवसादी प्रावस्था होती है जिसमें कार्बनिक और अकार्बनिक निक्षेपों में गन्धक बंध जाता है जहाँ से अपक्षेपण और अपघटन द्वारा इसका विमोचन होता है तथा पादपों द्वारा अकार्बनिक सल्फेटों के रूप में ग्रहण किया जाता है। जीवाश्म ईंधनों को जलाने से विमोचित SO_2 और अपघटन द्वारा विमोचित H_2S द्वारा इसका वायुमंडल में पुनः प्रवेश होता है। जल में घुलनशील सल्फर डाइऑक्साइड अम्ल वर्षा के द्वारा गंधक के तेजाब के रूप में भूमि में जा पहुँचता है।
- फॉस्फोरस चक्र पूर्णतः अवसादी है। इसके मुख्य आगार फॉस्फेट शैल होते हैं। अपक्षयण द्वारा इसका विमोचन होता है और अकार्बनिक फॉस्फेटों के रूप में पादप इसका ग्रहण करते हैं। उर्वरक रूप में डाले गए फॉस्फेट का मुख्य भाग मृदा में जाकर गतिहीन हो जाता है और अपमार्जकों के रूप में प्रयुक्त या मल रूप में उत्सर्जित फॉस्फेट गंदे पानी की नालियों में बह जाता है। अंत में यह सब समुद्र के उथले अवसादों का अंश बन जाता है और इसका अधिकांश नितल अवसादों में पहुँच कर खोया जाता है। मत्स्य चूर्ण तथा पक्षियों के माध्यम से फॉस्फोरस पारितंत्र में वापस तो आ जाता है, किन्तु इसकी जो मात्रा वापिस आती है, वह क्षतिपूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है।
- पोषक चक्रण में हरे पौधे और अपघटक जीव प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। हरे पौधे पोषकों को ग्रहण करते हैं और अपघटक जीव पुनः उपयोग के लिए उनका विमोचन करते हैं। पारितंत्रों में पोषक निरंतर डाले भी जा रहे हैं और इनसे निकाले भी जा रहे हैं। इस आदान-प्रदान का लेखा-जोखा ही किसी पारितंत्र का पोषक बजट होता है।

- उष्णकटिबंधी वनों में पोषकों का विशाल अंश जीवभार में थमा रहता है; न कि मृदा में। इसका कारण यह है कि पोषकों का पुनः चक्रण एक पादप से दूसरे पादप के बीच होता है और अनेक पोषक संरक्षी जैव अनुकूलन इसमें सहायक होते हैं। इसीलिए जब उष्णकटिबंधी वनों की कटाई की जाती है तो पोषक को थामे रहने की मृदा की क्षमता खोयी जाती है, जिस कारण वह दीर्घ अवधि तक कृषि करने योग्य नहीं रह पाती।
- शीतोष्ण वनों में पोषकों का विशाल अंश मृदा में होता है न कि पादप जैवभार में। इसलिए जब इन वनों की कटाई होती है तो मृदा में पोषक बने रहते हैं और कई वर्षों तक इनमें कृषि हो सकती है।

6.9 अंत में कुछ प्रश्न

1) दो प्रकार के जैवभूरासायनिक चक्र कौन से हैं और इनमें भेद करने वाले लक्षण क्या हैं?

....

....

....

....

....

2) उन तीन मार्गों का वर्णन कीजिए जिनसे वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों के उपयोग के योग्य यौगिक रूपों में परिवर्तित किया जाता है।

....

....

....

....

....

3) संक्षेप में बतलाइए कि कार्बन और गन्धक के चक्रों में मानव के कार्यकलापों का किस प्रकार प्रभाव पड़ता है?

....

....

....

....

4) क) फॉस्फोरस को अपूर्ण चक्र का उदाहरण क्यों माना जाता है?

....

....

....

....

ख) फॉस्फोरस बहुधा जलीय पारितंत्रों में सीमाकारी कारकों में से एक होता है, फिर भी किसी साफ झील में फॉस्फोरस की अत्यधिक मात्रा के विसर्जन से उस झील का नाश हो जाता है। इस पर टिप्पणी करें।

....

....

....

....

5. ऊष्ण कटिबंधी वनों की कटाई के बाद बची भूमि की कृषि कार्य के लिए क्षमता अच्छी नहीं होती, समझाइए।

....

6.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1) ii) कक्ष iii) भंडार iv) जैव-भूरासायनिक चक्र

2) क) (iv)
   ख) परिवेशी सार्वत्रिक तापमान; पौध घर गैसें; हिमावरण, महाद्वीपीय तटरेखाएं

3) क) (i)
   ख) अमोनियम (आयन)
   अमोनियम (आयन)
   नाइट्रेट
   ऐमीनो अम्ल
   डाइ नाइट्रोजन (N_2)

4) i) (ख) H_2S (ग) S
   ii) (क) SO_2, (ख) SO_3^-, (ग) H_2SO_4

5) i) (क) अपक्षयण (घ) कार्वनिक फास्फेट
   (च) उपभोक्ता (छ) अकार्वनिक फास्फेट

अंत में कुछ प्रश्न

1) क) गैसीय चक्र–इनमें जहां तक जीवों का सम्बन्ध है, प्राथमिक भंडार वायुमंडल है, उदाहरण कार्वन और नाइट्रोजन
   ख) अवसादी चक्र–इसमें प्राथमिक भंडार भूपर्पट में होता है जो अपक्षयण, खनन और अपरदन से विमोचित् होता है। उदाहरण हैं फास्फोरस और गन्धक।

2) वायुमंडलीय नाइट्रोजन का अमोनियम रूप में यौगिकीकरण किया जाता है:
   i) नाइट्रोजन यौगिकीकारी जीवाणुओं और नील-हरित शैवालों से जैव यौगिकीकरण के द्वारा,
   ii) तड़ित से नाइट्रेटों के रूप में प्रकाश रासायनिक यौगिकीकरण के द्वारा,
   iii) नाइट्रेटों और अमोनियम उर्वरकों के रूप में औद्योगिक यौगिकीकरण के द्वारा।

   नाइट्रेटों के विनाइट्रीकरण की प्रक्रियाओं द्वारा नाइट्रोजन रूप में तथा स्वचालित यानों के एक्सहॉस्ट तथा औद्योगिक दहन में नाइट्रोजन के ऑक्साइडों के रूप में नाइट्रोजन की वायुमंडल को वापसी हो जाती है।

3) **संकेतः**
   i) लकड़ी और जीवाश्म ईंधनों (कोयला, तेल, गैस) को जलाने से वायुमंडल में अधिक कार्वन डाइऑक्साइड आ जाती है जिससे विश्व का तापमान वढ़ सकता है, उच्चतर तापमान के कारण ध्रुवीय हिम गल सकता है, शिशिर ऋतु मृदु हो सकता है और वर्षा के स्वरूप वदल सकता है।
   ii) वनों की कटाई से कार्वन के कुंड हटाए जाते हैं।
   iii) जीवाश्म ईंधनों के जलाये जाने से तथा भारी उद्योग से वायुमंडल में अधिक SO_2 का विमोचन होता है। धूमकुहरे का SO_2 एक विषैला घटक और H_2SO_4 वनकर अम्ल वर्षा के द्वारा भूमि पर गिरता है।

4) क) क्योंकि चक्र के मुकावले में नितलअवसाद में अधिक फास्फोरस चला जाता है और चक्र मे इसकी वापसी, इसकी तुलना में कम होती है।
   ख) झीलों में फास्फेट की मात्रा वढ़ जाने से संवर्धनी सुपोषण अर्थात् शैवाल प्रस्फुटन हो जाता है तथा ऑक्सीजन की अपेक्षा करने वाले अधिकांश जीव मर जाते हैं क्योंकि अपरदाहारियों द्वारा अपघटन की क्रिया में जल का आक्सीजन काम में आ जाता है।

5) **संकेतः**
   i) मृदा में पड़े रहने के वजाय पोषकों का हर समय जीव भार में परिसंचरण होता रहता है।
   ii) उष्णकटिवंधी पादपों के विविध जैव अनुकूलन पोषकों को पादकों में ही संरक्षित रखते हैं।

यूनिट 7 पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार : 1. स्थलीय पारितंत्र

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
    उद्देश्य
7.2 विश्व के जीवोम
7.3 वन
    वनों के प्रकार
    वनों का महत्व
    वनोन्मूलन तथा उसके कारण
    वनोन्मूलन के परिणाम
    सामाजिक वन-विद्या तथा वन-संरक्षण
7.4 घास-स्थल
    घास-स्थलों के प्रकार
    आर्थिक महत्व
7.5 मरुस्थल
    मरुस्थलीकरण
    भारत के मरुस्थल
7.6 सारांश
7.7 अंत में कुछ प्रश्न
7.8 उत्तर

7.1 प्रस्तावना

पिछली यूनिट में आपने पढ़ा था कि हमारा पारिस्थितिक तंत्र (पारितंत्र) क्या है और इस तंत्र का गठन कैसे हुआ है। जैसा कि आप जानते हैं, विश्व स्वयं में बहुत विशाल है और वह एक विशाल पारितंत्र का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे जीव-मंडल कहते हैं। एक पारितंत्र में जीवित प्राणियों और अजीवित पदार्थों के बीच लगातार पारस्परिक कार्य संबंधी क्रियाएं चलती रहती हैं। यद्यपि ज़मीन पर प्राणियों और पर्यावरण के बीच सह-संबंधों को हम स्थलीय पारिस्थितिकी में शामिल कर सकते हैं। तथापि स्थलाकृतिक लक्षणों में विविधता के कारण, घाटियों, पहाड़ों तथा ढलानों में कुछ भिन्नता होना स्वाभाविक है। ये भिन्नताएँ पदार्थ-संबंधी तथा जीव-संबंधी दोनों प्रकार की विविधताओं में हो सकती है। तुंगीय तथा अक्षांसीय विभिन्नताएँ जलवायु-संबंधी प्रतिरूपों में स्थानांतरण तथा भेद पैदा कर देती हैं। विविधतापूर्ण जलवायु के कारण पौधों और जंतुओं के जो रूप विभिन्न स्थलीय क्षेत्रों में मिलते हैं उनमें विविधता आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप जीवोमो में वृहत् जीव-मंडल के भीतर खंडों के रूप में विभेदन हो जाता है। इस इकाई में हम विभिन्न प्रकार के जीवोमों की चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप

- जीवोम की संकल्पना को समझ सकेंगे और विश्व के विभिन्न जीवोमों को पहचान सकेंगे
- प्रमुख प्रकार के स्थलीयपारितंत्रों जैसे घास-स्थलों, वनों और मरुस्थलों– के बीच अंतर बता सकेंगे
- मानव-कल्याण में वनों के महत्व को बता सकेंगे
- वनोन्मूलन के कारणों और परिणामों को बता सकेंगे
- सामाजिक वन-विद्या की संकल्पना और चिपको-आंदोलन का वर्णन कर सकेंगे
- भारत के घास-स्थलों के वितरण उनके वर्गीकरण तथा घास स्थलों के आर्थिक महत्व, पारिस्थितिक महत्व तथा भारत के घास-स्थलों के पारिस्थितिक गुणों का वर्णन कर सकेंगे और मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया को समझा सकेंगे
- व्यर्थ भूमि की संकल्पना और उसके पुनर्वास की विधियों को जान सकेंगे

7.2 विश्व के बायोम (Biomes of the World)

जैसा कि आप जानते हैं, कि हमारे ग्रह का एक चौथाई भाग भूमि है। जलवायु तथा मृदा-संबंधी (edaphic) विविधताओं के कारण व्यापक विविधता वाले पौधों और जंतुओं का साम्राज्य विकसित हो गया है।

यदि पौधों और जंतुओं के वितरण को मिला कर एक तंत्र में रखने का प्रयत्न करें तो जो वर्गीकरण पहले किए गए थे वे काम के नहीं रहते क्योंकि पौधों और जंतुओं के वितरण मेल नहीं खाते। एक और पद्धति यह बताई गई है कि पौधों के रूपों को जीवीय इकाइयाँ मान लें और जंतुओं को पौधों से मिलाने का प्रयत्न करें। यह पद्धति काफ़ी कार्यसाधक पाई जाती है क्योंकि जंतुओं का जीवन पौधों पर निर्भर रहता है। मोटे तौर पर समेकित इन प्राकृतिक जीवीय इकाइयों को **जीवोम** (biomes) कहते हैं। अतः जीवोम एक बड़ी सामुदायिक इकाई है जिसकी विशेषता इसमें सम्मिलित पौधों और जंतुओं की किस्मों पर आधारित हैं। प्रत्येक जीवोम में पौधों और जंतुओं की स्पीशीजों की पृथक् रचना पाई जाती है और प्रत्येक के शीर्षस्थ समुदायों में समान वानस्पतिक जीव-रूप देखे जाते हैं, जैसे घास अथवा शंक्वाकार वृक्ष। इसमें वे सभी अवस्थाएँ भी शामिल की जाती हैं जो समुदाय के अंतिम रूप ग्रहण करने की प्रक्रिया में आती है। जिस पर हो सकता है कि अन्य जीव-रूप प्रभावी हों।

स्थानीय तथा क्षेत्रीय पैमाने पर समुदायों को प्रवणताओं के रूप में माना जा सकता है, जिनमें स्पीशीजों के संयोजन में विभिन्नता पाई जाती है, क्योंकि अलग-अलग स्पीशीजें वातावरण की प्रवणताओं के प्रति अनुक्रिया करती हैं। बड़े मैमाने पर हम स्थलीय और यहाँ तक कि कुछ जलीय पारितंत्रों को विश्व के पैमाने पर समुदायों और वातावरणों की प्रवणताओं के रूप में मान सकते हैं। पारितंत्रों की ऐसी प्रवणताओं को **पारिस्थितिक प्रवणता** (ecolines) कहते हैं।

वनस्पति में धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तनों के अलावा अन्य पारितंत्र भी काफ़ी बदलते हैं। जैसे-जैसे हम अत्यधिक मेसिक (mesic) और गर्म तापमानों से ज़ेरिक (xeric) परिस्थितियों अथवा ठंडे तापमानों की ओर जाते हैं वैसे-वैसे उत्पादकता, स्पीशीज़ी विविधता और जीवों की मात्रा घटती जाती है। तदनुसार जटिलता और पारितंत्रों के संगठन में, पौधों के आकार और वृद्धि रूपों तथा वनस्पति के लिए स्तरों की संख्या में ह्रास हो जाता है।

पारिस्थितिकीविदों (ecologists) ने निम्नलिखित तीन प्रमुख जीवोमों का उल्लेख किया है: **वन**, **घास-स्थल** और **मरुस्थल**, जो विश्व के चारों ओर पट्टियों के रूप में पाए जाते हैं (चित्र 7.1)।

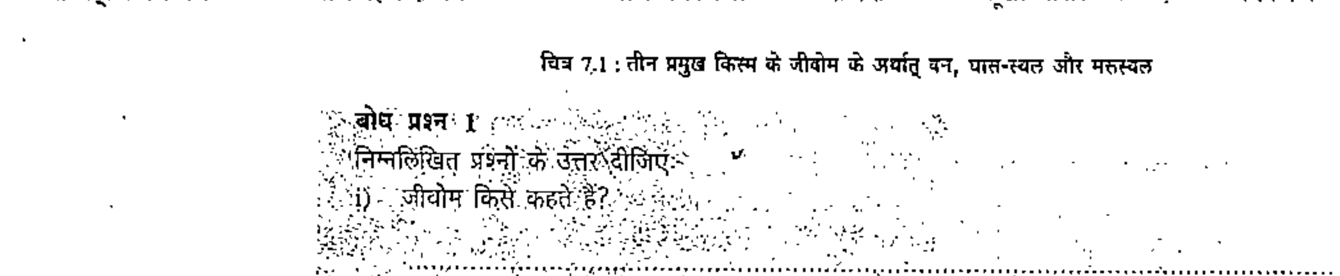

चित्र 7.1 : तीन प्रमुख किस्म के जीवोम के अर्थात् वन, घास-स्थल और मरुस्थल

बोध प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

i) जीवोम किसे कहते हैं?

....

ii) पारिस्थितिक प्रवणता किसे कहते हैं?

....

iii) प्रमुख किस्म के जीवोमों के नाम बताइए।

....

7.3 वन (Forests)

अब हम देखते हैं कि वन क्या होते हैं। **वन** शब्द की व्युत्पत्ति लतीनी शब्द **फोरिस** (foris) से हुई है जिसका अर्थ है बाहर। इसका संदर्भ गाँव के बाहर की सीमा पर लगी बाड़ से है और इसमें वे सभी ज़मीन शामिल की जाती हैं जो जोती नहीं जाती और जहां कोई नहीं रहता है। आज वन उस ज़मीन को कहते हैं जिसकी देखभाल वन-विद्या के विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है चाहे वह ज़मीन वृक्षों, पहाड़ियों और आरोही पौधों इत्यादि से ढकी हो या नहीं। वन जीवोमों में जीवीय समुदायों की विभिन्न किस्मों का जटिल समुच्चय शामिल होता है। ताप और ज़मीन की नमी की इष्टतम दशाएँ वन-समुदायों को स्थापित करने में काफ़ी योग देती है–क्योंकि वृक्षों की वृद्धि के लिए आवश्यक होती है–मृदा की किस्म, जलवायु तथा स्थानीय स्थलाकृति वृक्षों के वितरण और वन की वनस्पति में उनकी अधिकता अथवा न्यूनता को निर्धारित करती है। वन सदा-बहार (सदैव हरे-भरे) हो सकते हैं या **पर्णपाती** (deciduous) हो सकते हैं। शीतोष्ण क्षेत्रों में ये पत्तियों की शक्ल के आधार पर, चौड़ी पत्ती वाले या सुई जैसी पत्तियों वाले शंकुवृक्षी वनों में विभेदित किए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के वनों की विशेषताओं का आगे वर्णन किया जा रहा है।

7.3.1 वनों के प्रकार (Types of Forests)

विश्व के वन-बायोमों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है: **शंकुवृक्षी वन** (coniferous forest) **उष्णकटिबंधीय वन** (tropical forest) और **शीतोष्ण वन** (temperate forest) (चित्र 7.2)। ये सभी वन-बायोम सामान्यतः उत्तर से दक्षिण अथवा ऊँची से नीची तुंगता तक प्रवणता के अनुसार व्यवस्थित रहते हैं।

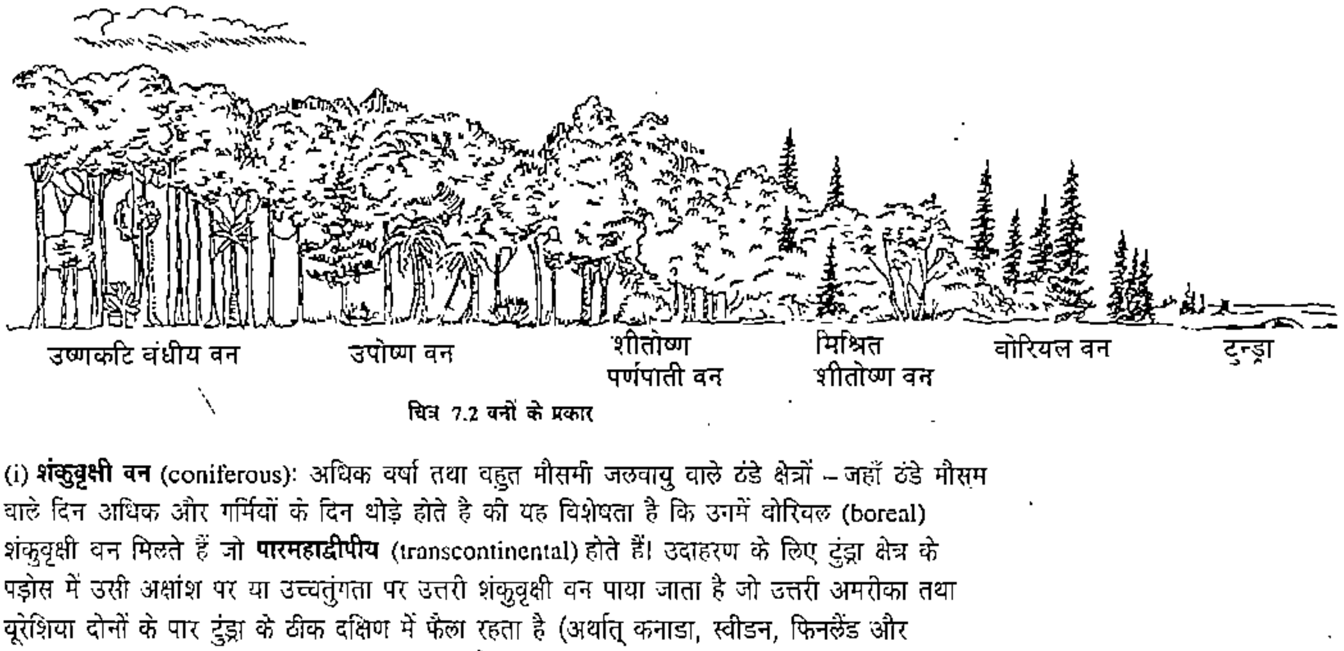

चित्र 7.2 वनों के प्रकार

(i) **शंकुवृक्षी वन** (coniferous): अधिक वर्षा तथा बहुत मौसमी जलवायु वाले ठंडे क्षेत्रों – जहाँ ठंडे मौसम वाले दिन अधिक और गर्मियों के दिन थोड़े होते है की यह विशेषता है कि उनमें बोरियल (boreal) शंकुवृक्षी वन मिलते हैं जो **पारमहाद्वीपीय** (transcontinental) होते हैं। उदाहरण के लिए टुंड्रा क्षेत्र के पड़ोस में उसी अक्षांश पर या उच्चतुंगता पर उत्तरी शंकुवृक्षी वन पाया जाता है जो उत्तरी अमरीका तथा यूरेशिया दोनों के पार टुंड्रा के ठीक दक्षिण में फैला रहता है (अर्थात् कनाडा, स्वीडन, फिनलैंड और साइबेरिया में)। शंकुवृक्षी वनों के उत्तरी परिसर को **टैगा** (taiga) कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि यहाँ पौधों की सदाबहार स्पीशीजें मिलती हैं, जैसे **स्प्रूश (पिसिया ग्लॉका,** *Picea glauca*) **फ़र (एबियस बालसैमिया,** *Abies balsamia*) और चीड़ के वृक्ष (**पाइनस रेसिनोसा,** *Pinus resinosa* **पाइनस स्ट्रोबस,** *Pinus strobus* और जंतु मिलते हैं, जैसे **स्नोशू** (snow shoe) लिंक्स, भेड़िया,रीछ, लाल लोमड़ी, पोर्क्यूपाइन, गिलहरियाँ, उभयचर प्राणी, जैसे **हाइला,** *(Hyla)* **राना** *(Rana)* इत्यादि।

बोरियल वनों की मृदाएँ पतली **पोडोज़ोल** (podozols) होती है और ठंडे वातावरण में चट्टानों के धीमे-धीमे अपक्षय (weathering) होने, शंकुवृक्षों की सुइयों से व्युत्पन्न करकट के बहुत ही धीरे-धीरे विच्छिन्न होने और उसमें पोषण पदार्थों की मात्रा अधिक न होने के कारण यहाँ की मृदा कमज़ोर होती है। ये मृदाएँ, अम्लीय होती हैं तथा इनमें खनिज़ों की कमी होती है, इसका कारण मिट्टी पर होकर बड़ी मात्रा में पानी का बहना होता है, इसके साथ ही वाष्पीकरण का ऊपर की ओर प्रतिसंचलन (counter upward movement) न होने से घुलनशील अनिवार्य पोषक पदार्थ, जैसे कैल्सियम, नाइट्रोजन और पोटेशियम, इतने निक्षालित हो जाते हैं कि जड़ों तक नहीं पहुँच पाते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप क्षारीय रूप में क्रियाशील ऋणायनों का पूर्णतः अभाव रहता है जो इकट्ठे हुए करकट के कार्बनिक अम्लों के विरुद्ध कार्य करते हैं। बोरियल वनों की उत्पादनशीलता तथा सामुदायिक स्थायित्व अन्य किसी जीवोम की तुलना में कम होता है।

(ii) **शीतोष्ण पर्णपाती वन** (temperate deciduous forests): शीतोष्ण वनों की विशेषता यह है कि यहाँ मध्यम दर्जे की जलवायु पाई जाती है और चौड़ी पत्ती वाले पर्णपाती (deciduous) वृक्ष होते हैं जो पतझड़ के समय अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं, सर्दियों में बिना पत्ती के रहते हैं और वसंत के आगमन पर नई पत्तियों को जन्म देते हैं। ये वन उत्तरी अमरीका, यूरोप, पूर्वी एशिया, चिली, ऑस्ट्रेलिया के कुछ भाग और जापान में पाए जाते हैं जहाँ शरद ऋतु ज्यादा पड़ती है और वार्षिक वर्षा 75 से 150 से.मी. तक होती है तथा ताप 10°से 20°C के बीच रहता है। यहाँ साल भर लगभग एक जैसी वर्षा होती रहती है। भारत में 2743 से लेकर 3658 मीटर ऊँचाई तक के हिमालय पर्वत के क्षेत्र में शीतोष्ण वनस्पति पाई जाती है जिसमें चीड़, फ़र और जूनिपर *(Juniper)* वृक्ष मिलते हैं और उनके नीचे कुंठित रोडोडेन्ड्रॉन (scrubby rhododendrons) उगे रहते हैं।

ये वृक्ष काफ़ी लंबे तथा लगभग 40 से 50 मीटर ऊँचे होते हैं और इनकी पत्तियाँ पतली और चौड़ी होती हैं। इस जीवोम के प्रमुख जीनसों में मेपल (*Acer*, ऐसर), बीच (*Fagus*, फैगस), ओक (*Quercus* क्वर्कस), हिकोरी (*Carya*, कर्या), वासवुड (*Tilia*, तिलिया) चेस्टनट (*Castnea*, कैस्टनिया) और कॉटनवुड (*Populus*, पोपुलस) शामिल हैं। कुछ स्थानों पर शुंकुवृक्षी वनस्पति भी प्रमुख रूप से मिल सकती है और उसमें सफ़ेद चीड़ (पाइनस स्ट्रोवस) तथा विलो (सेलिक्स) नामक वृक्ष होते हैं। शीतोष्ण वनों की मृदाएँ पोडोज़ोलीय (podozolic) और काफ़ी गहरी होती हैं।

शीतोष्ण वनों में रहने वाले जंतुओं में हिरन, भालू, गिलहरियाँ, धूसर लोमड़ियाँ, बॉबकैट, (bobcats) जंगली पीरू पक्षी (wild Turkey) और कठफोड़े (woodpeckers) मुख्य हैं। सामान्यतः पाए जाने वाले अकशेरुकियों में केचुए, घोंघे, मिलीपीड, कोलिओप्टेरा तथा आर्थोप्टेरा कीट तथा कशेरुकियों में उभयचर प्राणी जैसे टोड, सालामेंडर, क्रिकेट मेंढक और सरीसृप, जैसे कछुए, छिपकलियाँ, साँप तथा स्तनधारी, जैसे रैकून, अपोसम, सुअर, पहाड़ी शेर इत्यादि और पक्षियों में शृंगी उल्लू हॉक (बाज़) इत्यादि शामिल हैं। जंतुओं के आकार और उनकी अनुकूलताओं का परिसर काफ़ी व्यापक होता है। बड़े जंतुओं में हिरन तथा काले हिरन शामिल हैं। प्रमुख मांसभक्षी भी आकार में बड़े होते हैं जिनमें भेड़िया और पहाड़ी शेर शामिल हैं यद्यपि लोमड़ी और स्कंक (skunk) जैसे छोटे मांसभक्षी भी सामान्य रूप से मिलते हैं। ऋतु के अनुसार शीतोष्ण वन के पौधों और जंतुओं के व्यवहार में व्यापकता पाई जाती है, यहाँ तक कि कुछ जंतु सर्दियों भर शीतनिद्रा (hibernation) में पड़े रहते हैं।

(iii) **शीतोष्ण सदाबहार वन** (temperate evergreen forest): विश्व के कई भागों में भूमध्यसागरीय क़िस्म की जलवायु पाई जाती है जिसकी विशेषता उष्ण-शुष्क ग्रीष्म और ठंडा नम शीतकाल है। इनमें सामान्यतः कम ऊँचाई वाले सदाबहार वृक्ष पाए जाते हैं जिनकी पत्तियाँ चौड़ी होती है अरण्य भूमि में वृक्ष नहीं होते, यद्यपि झाड़ियाँ 3-4 मीटर ऊंची होती हैं। आग लगना इस प्रकार के पारितंत्र का महत्वपूर्ण कारक होता है और इसी वजह से पौधे इस रूप में अनुकूलित होते हैं कि वे जलने के बाद शीघ्र ही पुनर्विकसित हो सकें। शीतोष्ण सदाबहार अरण्य बाज वनों (temperate evergreen woodland chaparral) में पाए जाने वाले विशेष प्रकार के जंतुओं में खच्चर, हिरन ब्रुश खरगोश, काष्ठ चूहा, चिप्पमक, छिपकली इत्यादि हैं।

(iv) **शीतोष्ण वर्षा-प्रचुर वन** (temperate rain forests) : शीतोष्ण वर्षा प्रचुर वन किसी अन्य वर्षा-प्रचुर वन से अधिक ठंडे होते हैं और ऋतुओं के अनुसार इनके ताप और वर्षा में स्पष्ट अंतर होता है। यहाँ वर्षा अधिक होती है परन्तु कोहरा बहुत ही अधिक पड़ता है जो स्वयं वर्षा की तुलना में पानी का अधिक महत्वपूर्ण स्रोत होता है। यद्यपि शीतोष्ण वनों की जीवीय विविधता शीतोष्ण वन की तुलना में अधिक होती है। तथापि पौधों और जंतुओं की विविधता अपेक्षाकृत अधिक गर्म स्थानों की अपेक्षा काफ़ी कम होती है। शीतोष्ण वर्षा प्रचुर वनों में पाए जाने वाले जंतु पर्णपाती वनों के जंतुओं के सामन होते हैं परन्तु उनमें विविधता अधिक होती है।

(v) **उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वन** (tropical rain forest) : उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वन भूमध्यरेखा के पास पाए जाते हैं। ये वन पृथ्वी पर पाए जाने वाले सबसे अधिक विविध समुदायों में गिने जाते हैं। यहाँ ताप और आर्द्रता दोनों ही उच्च रहते हैं और वर्षभर लगभग एक जैसे रहते हैं। वार्षिक वर्षा 200 से 225 से.मी. से भी अधिक होती है और यह सामान्य रूप से वर्ष भर होती रहती है।

इन वनों की वनस्पतियाँ अत्यधिक विविध होती हैं: एक वर्ग किलो मीटर में 300 भिन्न प्रकार के वृक्ष हो सकते हैं। इस विविधता की किसी भी जीवोम से सामंतरता नहीं पाई जाती। उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वनों की अत्यधिक घनी वनस्पतियाँ उर्ध्वाधर रूप में स्तरों में बँटी रहती हैं जिसमें ऊँचे वृक्ष अकसर बेलों, विसर्पियों, लायनाओं (lianas) अधिपादपीय ऑर्किडों (epiphytic orchids) और ब्रोमीलिएडों (bromeliads) से ढके रहते हैं। ऊँचे वृक्षों के नीचे सदाबहार वनस्पतियों की, प्रविच्छिन्न दरी-सी पाई जाती है और कैनोपी परत (canopy layer) पाई जाती है जिसकी ऊँचाई 25 से 35 मीटर होती है। सबसे निचली

परत वृक्षों, झाड़ियों, शाकीय पौधों, जैसे फर्नों तथा पामों (palms) की परत होती है, यह परत उन सभी स्थानों पर घनी होती है जहाँ कैनोपी में कोई खाली स्थान रह जाता है। उष्ण कटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वनों की मृदा लाल लाटोसोल (latosols) होती हैं और इनकी मोटाई बहुत अधिक होती है। निक्षालन (leaching) की दर ऊँची होने के कारण ये मृदाएँ कृषि के लिए तो बिल्कुल बेकार होती हैं परन्तु यदि इनका उपयोग न किया जाए तो कचरे की परत में पोषक तत्वों का बहुत ही तेज़ी से चक्र चलता है। कचरे की परत अपघटन (decomposition) के कारण बनती है और यह मृदा की प्राकृतिक कमज़ोरी की क्षतिपूर्ति कर सकती है।

उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वनों में पाए जाने वाले सामान्य कशेरुकियों में वृक्षवासी उभयचर रेकोफोरस, मलाबेरिकस *(Rhacophorus malabaricus)*, जलीय सरीसृप (aquatic reptiles), कैमीलियन, ऐगैमिड, करेल छिपकलियाँ और साँपों की कई स्पीशीजें, पक्षियों की कई स्पीशीज़ों जिनमें सामाजिक पक्षी प्रमुख रूप से होते हैं और कई प्रकार के स्तनधारी शामिल हैं। अनेक स्तनधारियों में रात्रिचर (nocturnal) तथा वृक्षवासी स्वभाव अत्यन्त सामान्य रूप से पाया जाता है, जैसे कीटभोजियों, तेंदुओं, जंगली बिल्लियों, ऐंटईटरों (anteaters), विशालकाय उड़न गिलहरियों, बंदरों और स्लौथों में।

(vi) **उष्णकटिबंधीय मौसमी वन (tropical seasonal forests) :** उष्णकटिबंधीय मौसमी वन उन क्षेत्रों में मिलते हैं जहाँ वर्षा कुल वर्षा की बहुत अधिक होती है परन्तु यह शुष्क तथा नम कालों में बँटी रहती है। इस प्रकार के वन दक्षिण पूर्वी एशिया, सेंट्रल तथा दक्षिणी अमरीका, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया, पश्चिमी अफ्रीका और प्रशान्त महासागर के उष्णकटिबंधीय द्वीपों और इसके साथ भारत तथा दक्षिण पूर्वी एशिया में पाए जाते हैं। अत्यधिक नम उष्णकटिबंधीय मौसमी वनों में वार्षिक वर्षा उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वनों से कई गुना होती है जिन्हें सामान्यतः मानसूनी वन (monsoon forests) कहा जाता है। भारत (सेंट्रल इंडिया) तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के सर्वाधिक ज्ञात उष्णकटिबंधीय मौसमी वनों में अकसर बड़े वृक्ष टीक के होते हैं। इन क्षेत्रों में बाँस भी एक महत्वपूर्ण चरम झाड़ी के रूप में पाए जाते हैं।

(vii) **उपोष्णीय वर्षा-प्रचुर वन (sub-tropical rain forests) :** काफ़ी ज्यादा वर्षा वाले क्षेत्रों में, जहाँ सर्दी और गर्मी के दिनों के ताप में भिन्नताएँ कम स्पष्ट होती हैं, चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार उपोष्णीय जीवोम पाए जाते हैं। यहाँ की वनस्पतियों में महोगनी, गुम्बोलिंबो, बेस, पाम, ओक, मैंगोलिया, इमली, सभी अधिपादपों (पाइनएपल तथा ऑर्किड कुलों के अधिपादपों से ढके हुए वृक्ष, फर्न, अंगूर की बेलें और स्ट्रैंग्लर अंजीर (**फ़ाइकस ऑरियस**)। उपोष्णीय वन के जंतुओं का जीवन उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वनों के जंतुओं से बहुत मिलता-जुलता होता है।

7.3.2 वनों की महत्ता (importance of forests)

एफ.एस.टी.-I की 17वीं और 18वीं इकाई (खंड IV) में आप पढ़ चुके हैं कि वन नवीकरणीय साधन होते हैं जो हमें विविध प्रकार के पदार्थ प्रदान करते हैं। मनुष्यों के लिए वन मनोरंजन के स्रोत तथा उसकी संस्कृति और सभ्यता के स्रोत रहे हैं। जलाने की लकड़ी के स्रोत होने के अतिरिक्त ये विभिन्न काष्ठीय उद्योगों, जैसे लुगदी (pulp) और कागज़, संयुक्त काष्ठ (composite wood), रेयन और अन्य मानव निर्मित सूत्रों, माचिसों, फर्नीचर, शटल और खेलकूद के सामानों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं। भारतीय वन बहुत से अन्य उत्पाद भी प्रदान करते हैं, जैसे वाष्पशील तेल, औषधि प्रदान करने वाले पौधे, राल (resins) और तारपीन का तेल, लाख और कत्था (katha) तथा खैर (catechu), बीड़ी के खोल, टसर सिल्क इत्यादि।

भारत तथा अन्य उष्णकटिबंधीय देशों में इमारती लकड़ी और हार्टवुड के साधनों की खास तौर से प्रचुरता होती है। इमारती लकड़ी ज़मीन पर उत्पन्न होने वाले समस्त प्रकाश-संश्लेषी पदार्थों का 25% और वन द्वारा उत्पन्न संपूर्ण जीव-संहति (biomass) का लगभग आधा भाग होती है। वनों का एक बहुत बड़ा जीव वैज्ञानिक महत्व यह भी है कि ये आनुवंशिक विविधता के संग्रह-स्थल होते हैं और पृथ्वी की जलवायु को नियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

वन आवास स्थल खाद्य-पदार्थ भी उपलब्ध कराते हैं। साथ ही ये जलवायु की चरम स्थितियों, ठंड और गर्मी के दिनों तथा शुष्क हवाओं के प्रति वन्य प्राणियों की अनेक स्पीशीज़ों को सुरक्षा प्रदान करते हैं और उन्हें प्रखर सौर्य विकिरणों से बचाते हैं। यही नहीं ये वातावरण में कार्बनडाइऑक्साइड और ऑक्सीजन को संतुलित रखने में मदद देते हैं। वन स्थानीय वर्षा की मात्रा और मृदा की जल-धारण क्षमता को बढ़ाते तथा जल-चक्र का नियमन करते हैं। मृदा की उर्वरता को बनाए रखने के लिए ये करकट के ज़रिए भूमि में पोषक पदार्थ वापस डालते रहते हैं। वन **मृदा-अपरदन** (soil erosion) यानी मिट्टी के कटाव तथा **भूस्खलन** (landslides) को रोकते हैं और बाढ़ तथा सूखे की उग्रता को कम करते हैं। वनों में जंगली जीव रहते हैं,

जो समाज के लिए सौंदर्य (aesthetics), पर्यटन (touristic) की दृष्टि से महत्वपूर्ण तथा सांस्कृतिक दृष्टि से मूल्यवान होते हैं।

कुछ ही समय पूर्व गाँव में रहने वालों ने एक आंदोलन चलाया था जिसे **चिपको आंदोलन** (Chipko Movement) कहा जाता है जो कि वृक्षों को काटने से बचाने के लिए चलाया गया था। चिपको-आंदोलन वृक्षों को गले लगाने के लिए चलाया गया आंदोलन था और यह संभवतः विश्व का सुविख्यात ग्रामीण पारिस्थितिक विकास आंदोलन है। चिपको-आंदोलन की उत्पत्ति का आधार पारिस्थितिक और आर्थिक दोनों है। इस आंदोलन ने अलकनन्दा घाटी में जन्म लिया था, जो 1970 में अभूतपूर्व बाढ़ का स्थान था। इस बाढ़ की विभीषिका ने पहाड़ी लोगों के मन पर गहरी छाप छोड़ी और शीघ्र ही इसके परिणामस्वरूप उन्होंने वनों की उस महत्वपूर्ण पारिस्थितिक भूमिका को स्वीकार किया जो उनके जीवन के संबंध में महत्वपूर्ण होती है।

अहिंसात्मक और कार्यपरक चिपको आंदोलन ने लोगों को एक-दूसरों से जोड़ने में भारी मदद की है और वन-संबंधी साधनों के दुष्प्रबंधन की ओर ध्यान आकर्षित किया है। हिंसा का सहारा लिए बिना सुरक्षा वाले गाँधी जी के दृष्टिकोण ने इस आंदोलन के प्रति काफ़ी सहानुभूति जागृत की है। चिपको-आंदोलन न केवल हमारे जीवमंडल (biosphere) को बनाए रखने में मदद की है वरन् यह महिलाओं और साथ ही पुरुष वर्ग में भी सामाजिक तथा राजनीतिक जागरुकता पैदा करता है।

लगातार **वनोन्मूलन** (deforestation) के कारण हम कठिन पारिस्थितिक तथा सामाजिक-आर्थिक संकट के दौर से गुज़र रहे हैं। वनोन्मूलन की इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए मई 1985 में **राष्ट्रीय बंजरभूमि विकास मंडल** (National Wastelands Development Board) की स्थापना की गई थी जिसका उद्देश्य वनरोपण (afforestation) तथा वृक्षारोपण (tree planting) के विशाल एवं व्यापक कार्यक्रम के ज़रिए देश में बंजरभूमि को उत्पादक प्रयोग के अंतर्गत ले आना था। ऐसा करते समय यह उद्देश्य सामने रखा गया था कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर प्रदान किए जाएं। यह भी विचार किया गया था कि इससे वनरोपण आंदोलन का विकास होगा। आरंभ में इस कार्यक्रम के पीछे यह उद्देश्य था कि प्रति वर्ष 50 लाख हैक्टेअर भूमि में जलाने की लकड़ी और चारा उगाया जाए।

जलाने की लकड़ी का प्रमुख प्रथम स्रोत हमारे फार्म की ज़मीन होती है और दूसरा प्रमुख स्रोत करीबन 800 लाख हैक्टेअर बंजर और बेकार भूमि का विशाल क्षेत्र है जो अभी तो बेकार पड़ा है पर उसमें से लगभग 10 लाख हैक्टेअर भूमि हमारे शहरों की सड़कों, रेल लाइनों, नहरों और नालियों में इस्तेमाल कर लिया गया है। यह संपूर्ण भूमि वृक्षारोपण के लिए उपलब्ध नहीं होगी क्योंकि विभिन्न अन्य कार्यों के लिए इसके बड़े क्षेत्र को काम में ले लिया गया है। यदि देश की बंजर और बेकार भूमि के 15 फ़ीसदी में ही जलाने की लकड़ी प्रदान करने वाले स्पीशीजों के वृक्षों को लगा दिया जाए तो जलाने की लकड़ी उगाने में 120 लाख हैक्टेअर भूमि इस्तेमाल हो जाएगी। इन भूमियों से प्रति वर्ष 960 लाख टन जलाने की लकड़ी उत्पन्न होगी बशर्ते कि हम यह मान लें कि प्रति हैक्टेअर 8 टन लकड़ी प्रति वर्ष मिलेगी।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा दो जीवसंहति अनुसंधान केंद्र स्थापित किए गए हैं, जिनमें एक **राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान लखनऊ** में तथा दूसरा **कामराज विश्वविद्यालय मदुरै** में है, जो ऐसी स्पीशीजों का पता लगा रहे हैं जो खारी और क्षारीय ज़मीनों में उच्च उत्पादन दे सकते हैं। उदाहरण के लिए गुजरात के कच्छ ज़िले में कुल मिलाकर 32 लाख हैक्टेअर बंजर और अकृष्य ज़मीन है, जिसमें **प्रोसोपिस** तथा अन्य स्पीशीज़ें आसानी से उगाई जा सकती हैं।

व्यापार के उद्देश्य से तथा भोजन और चारा प्राप्त करने के उद्देश्य से हमारे वनों का शोषण पूरी तरह नहीं रोका जा सकता क्योंकि वनों और मानव मात्र के बीच सहजीवी संबंध है। तथापि, व्यापारिक शोषण को कम किया जा सकता है और वन-संपदा की अवैधानिक तस्करी को रोका जा सकता है। इस संबंध में प्रभावी नियम बना कर इसे समाप्त किया जा सकता है।

आरंभिक वन-संबंधी क़ानून "वन अधिनियम 1927" का लक्ष्य **वनों का परिरक्षण** (preservation) और **पारिस्थितिक संतुलन** प्राप्त करना था। यह क़ानून–जिसका उद्भव प्राचीन ब्रिटिश उपनिवेशीकाल में हुआ था–वन को राजस्व के स्रोत के रूप में मानता था न कि वातावरण के परिरक्षण के एक निर्णायक तत्व के रूप में। "जंगली जीव (संरक्षण) अधिनियम 1972" और "वन (संरक्षण) अधिनियम 1980" इसी दिशा में उठाए गए कदम हैं। इस अधिनियम का उद्देश्य ग़ैर वन्य उद्देश्य के लिए वन के प्रयोग को रोकना है जिससे यह स्पष्ट होता है कि क़ानून केवल नियमित करता है ना कि वनों को नष्ट होने से पूरी तरह रोकता है।

वनों के महत्व से संबंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन कर लेने के बाद हम वनों पर मनुष्य के दबाव और वनोन्मूलन (deforestation) की विस्तार से चर्चा करेंगे।

7.3.3 वनोन्मूलन तथा उसके कारण

शहरीकरण, उद्योगीकरण, खनन कार्यों और घरेलू तथा अन्य उद्देश्यों के लिए लकड़ी का इस्तेमाल किए जाने के कारण वृक्षों को अव्यवस्थित रूप में काटा जाता है, जिससे वनों में भारी कमी आई है जैसा कि तालिका 7.1 में दिखाया गया है। अकेले भारत ही में हर वर्ष 15 लाख हैक्टेअर भूमि में लगे वन समाप्त हो रहे हैं। यदि इस प्रकार होने वाली कमी को रोका नहीं गया तो आने वाले लगभग 20 वर्षों में ही भारत शून्य वन वाली भयंकर स्थिति में आ जाएगा। साथ ही विश्व के समस्त उष्णकटिबंधीय वन अगले 50 से 75 वर्ष में संभवतः लुप्त हो जाएँगे।

तालिका 7.1 : वन-भूमि का ग़ैर वन-उद्देश्यों के लिए काम में लिया जाना

वर्ष	वन-भूमि की हानि (हैक्टेअरों में)
1980	शून्य
1981	2,672.04
1982	3,246.54
1983	5,702.01
1984	7,837.59
1985	10,608.07
1986	11,963.11
1987	72,780.50
1988	18,765.35
1989	20,365.05

भारत में वन बहुत ही तेज़ी से कम होते जा रहे हैं। 1984 के मध्य में नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी (NRSA) द्वारा जारी किए गए आँकड़ों से यह सिद्ध होता है कि 1972-75 से लेकर 1980-82 तक के लगभग सात वर्षों में भारत के 13 लाख हैक्टेअर वन प्रति वर्ष की दर से खत्म हुए हैं।

एन आर एस ए अध्ययन में वनों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है (तालिका 7.2) : **बंद वन** (closed forests), **खुले वन** (open forests) या **निम्नीकृत वन** (degraded) तथा **मैंग्रोव वन** (mangrove)। बंद वन 14.12 प्रतिशत से घटकर 10.96 प्रतिशत रह गए हैं, निम्नीकृत वनों की प्रतिशतता 2.67 से बढ़ कर 3.06 प्रतिशत हो गई है और मैंग्रोव वनों की प्रतिशतता 0.099 से घट कर 0.081 प्रतिशत रह गई है। अतः इन दो कालों में भारत ने 104 लाख हैक्टेअर बंद वन खो दिए हैं और 63,000 हैक्टेअर मैंग्रोव वन तथा 12.9 लाख हैक्टेअर बंद वन बढ़कर निम्नीकृत वनों की श्रेणी में आ गए हैं।

तालिका 7.2 : महत्वपूर्ण वन-सांख्यिकी

वनों की क़िस्म	1972-75	1980-82
वनों से ढकी भूमि, (लाख हैक्टेअरों में)	555.20	463.50
बंद वन (लाख हैक्टेअरों में)	464.20	360.20
खुले वन (लाख, हैक्टेअरों में)	87.70	100.60
मैंग्रोव वन (लाख हैक्टअरों में)	3.30	2.60
वनों से ढकी भूमि (कुल भूमि के क्षेत्रफल का प्रतिशत)	168.90	141.00

देश के सामने आई वनोन्मूलन की समस्या प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं में से एक है। वनोन्मूलन की इस घटना के लिए बहुत से कारण बताए गए हैं। कृषि-पद्धितियों, भूमि-खनन, सड़क निर्माण इत्यादि द्वारा अव्यवस्थित रूप में वनोन्मूलन के परिणामस्वरूप न केवल भूमिगत जल का स्तर तुरंत नीचे चला जाएगा वरन् भविष्य में वर्षा भी कम हो जाएगी। वन, वाष्पीकरण द्वारा नमी को फिर से उनके निकटवर्ती वायुमण्डल को लौटा देते हैं जहाँ यह वर्षा के रूप में अवक्षेपित होती है। वनोन्मूलन की वजह से प्राकृतिक रूप में चलने वाले जल पुनः उपयोग का वह चक्र टूट जाता है और जल तेज़ी से बहकर ख़त्म हो जाता है। वन, बाढ़ों तथा मृदा अपरदन को रोकने के लिए भी ज़रूरी हैं और जंगली जीवों, मानव मनोरंजन, ताज़ी हवा तथा पानी रोकने वाले स्थानों के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

भारत में अधिकांश खनन-कार्य वन-क्षेत्रों में किया जाता है। इसका सीधा परिणाम वनोन्मूलन और अपरदन है। भूमिगत खनन भी बहुत हद तक वनों को ख़त्म करता है क्योंकि खानों की गैलरियों की छतों को साधे रखने के लिए लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता है। गोआ में वनों के कुल क्षेत्र का 43 प्रतिशत भाग खनन के लिए पट्टे पर दिया जा चुका है। खानों के मालिकों के साथ खनन-पट्टे की शर्तों में मृदा-संरक्षण उपायों के किए जाने से संबंधित कोई बंधन नहीं होता या खानों को फिर से भरने के लिए कोई अनिवार्यता नहीं होती, इसलिए अब बहुत सारी खानें बड़ी ख़राब हालत में हैं और वहाँ व्यापक रूप से अपरदन द्वारा नालियाँ बन गई हैं।

7.3.4 वनोन्मूलन के परिणाम (Consequences of deforestation)

प्राकृतिक वनस्पतिक संपदा को नष्ट कर देने से उपरिमृदा (top soil) खत्म हो जाती है। यह क्षति वास्तव में अप्रतिस्थापनीय होती है और प्रकृति को 2.5 मीटर उपरिमृदा को बनाने में ही हज़ार साल लग जाते हैं। भारत में हर वर्ष नदियों द्वारा 1,20,000 लाख टन उपरिमृदा बहा कर ले जाई जाती है, वनोन्मूलन द्वारा 1,000 लाख हेक्टेअर भूमि की 15 से.मी. मोटी परत हट जाती है और बह कर चली जाती है। मृदा-अपरदन के परिणामस्वरूप हमारे देश में हर वर्ष 300 से 500 लाख टन अनाज़ की हानि होती है। इस समय संपूर्ण हिमालयी पारितंत्र संकट और गंभीर असंतुलन की स्थिति में है क्योंकि वर्फ़ की परत पतली हो गई है और अनवरत बहने वाले झरने सूख गए हैं। राजस्थान की ज़मीन वैसे ही कमज़ोर है, वह और भी क्षीण होती जा रही है, जिसकी वजह से सज्य का बड़ा भाग बंजर भूमि में बदल गया है। तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश में लगातार सूखे की दशाएँ देखी जा रही हैं, जबकि वहाँ ऐसी दशाओं के बारे में हमने सुना नहीं था।

वनोन्मूलन के परिणामस्वरूप न केवल भूमिगत जल-स्तर तुरंत नीचे हो जाता है वरन् आगे चलकर वर्षा भी कम हो जाती है। वाष्पीकरण द्वारा वन अपने पास के वायुमण्डल में नमी को फिर से भूमि को दे देते हैं जहाँ यह वर्षा के रूप में गिरती है। वनोन्मूलन के कारण यह प्राकृतिक पुर्नप्रयोग चक्र टूट जाता है और पानी तेज़ी से बहकर बेकार चला जाता है। बाढ़-नियंत्रण और मृदा-अपरदन को रोकने के लिए भी वनों की आवश्यकता होती है जो उनके जंगली जीवों को आश्रय देने, मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराने तथा पर्यटन के स्थान उपलब्ध कराने के महत्त्व के अतिरिक्त हैं।

7.3.5 सामाजिक वन-विद्या (Social forestry) तथा वन-संरक्षण (Forest Conservation)

सामाजिक वन-विद्या शब्द का प्रयोग "राष्ट्रीय कृषि आयोग" द्वारा वृक्ष-उत्पादन कार्यक्रम के लिए किया गया था जिससे ईंधन की लकड़ी, चारा, छोटे आकार की इमारती लकड़ी तथा थोड़ी मात्राओं में ग्रामीण जनता को वन से मिलने वाली वस्तुएँ प्राप्त हो सकें। सामाजिक वन-विद्या कार्यक्रमों को मुख्य रूप से तीन घटकों में बाँटा गया है : (क) **फार्म-वन-विद्या** , इसके अंतर्गत निःशुल्क अथवा घटाई हुई दरों पर पौद वितरित करके कृषकों को अपने फार्मों में वृक्ष लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। (ख) समुदाय की ज़रूरत के लिए वन-विभागों द्वारा वृक्ष-क्षेत्रों को तैयार किया जाता है। ये वृक्ष ख़ास तौर से सड़क के किनारे, नहरों के किनारे तथा अन्य ऐसी ही सार्वजनिक भूमि में लगाए जाते हैं। (ग) सामुदायिक वन-क्षेत्रों को स्वयं समुदाय द्वारा समुदाय की ही भूमि पर तैयार किया जाता है और उसके लाभ में उनकी बराबर की हिस्सेदारी होती है।

सामाजिक वन-विद्या कार्यक्रम कई राज्यों में शुरू किए गए हैं जिससे विशेषतः उन ग़ैर वन-भूमियों अर्थात् निजी फार्मों और ग्रामसमुदाय की भूमियों पर वनरोपण किया जा सके। हमारे देश में अनेक राज्य सरकारों ने अपनी ओर से वनरोपण कार्यवाहियाँ तेज़ी से आरंभ कर दी हैं, इसके लिए बेकार पड़ी हुई सरकारी वनभूमियों के बड़े क्षेत्रों को वन-रोपण के लिए औद्योगिक संस्थानों को देने की योजना भी बना रही है।

सामाजिक वन-विद्या कार्यक्रम बस्तर, मध्यप्रदेश में शुरू किए जा चुके हैं। गाँवों के नज़दीक वनों की त्यक्त भूमियों को अब फलों और अन्य आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान स्पीशीज़ों के वृक्ष लगाकर उन्हें पुनः उपयोगी बनाया जा रहा है। 1983 में बस्तर और मध्य प्रदेश के अन्य भागों में सामाजिक वन-विद्या की नई पद्धति शुरू की गई। इस **हितग्राही योजना** (Hitgrahi scheme) के अंतर्गत एक गाँव के सबसे ग़रीब 60 परिवारों को चुना गया है और प्रत्येक को फल के वृक्ष लगाने के लिए 1 हैक्टेअर तक बेकार पड़ी हुई भूमि दी गई है। वन-विभाग उन्हें पाड़ लगाने के लिए सामान, पौद तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराता है। इस प्रकार भूमिहीन कृषकों को वन-विभाग द्वारा दिए गए प्रोत्साहन ने सामाजिक वन-विद्या संबंधी कार्यवाहियों को बड़े पैमाने पर बढ़ाया है।

वनों को बनाए रखने के लिए विशेष वन-संरक्षण तथा प्रबंधन प्रक्रियाएँ इस्तेमाल में ली जानी चाहिए। वांछित

क़िस्म की इमारती लकड़ी अथवा कागज़ उद्योग के लिए लुगदी उपलब्ध कराने के लिए, ख़ास प्रकार के शंकुवृक्ष, टीक और यूकेलिप्टस के तेज़ी से बढ़ने वाले वृक्षों को एकधान्य (monoculture) कृषि वनों में मनुष्य ने उगाया है। मौजूदा वनों से वांछित लाभों को प्राप्त करने के लिए उनमें कड़ाई से फ़ेरबदल किया जाता है। इसमें वृक्षों को निकाल बाहर करना, वृक्षों के बीच फासला बढ़ाना (एक ही स्पीशीज़ के वृक्षों को निकाल बाहर करना) और छाँटना (विशेषकर शंकुवृक्षों में पर्णरहित निचली शाखाओं को निकाल देना), शामिल है। जो वांछित स्पीशीज़ों की पौद के साथ-साथ बढ़ने का प्रयत्न कर सकते हैं। वन-विद्या में रसायन प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करना चाहिए जिससे **कीट-परजिवों** (insect parasites) और **रोगजनक कवक** (pathogenic fungi) के प्रभाव को रोका जा सके। वन-प्रवंधन (Forest Management) में वनों में लगने वाली आग को नियंत्रित करना भी शामिल है। वन की ही एक शाखा है **वन-वर्धन** (silviculture) जिसका संबंध टीक, साल, शीशम और कैल जैसी मूल्यवान् इमारती लकड़ी के वृक्षों को लगाने, विकसित करने, उनकी देखभाल करने और एकधान्य कृषि के पुनर्जनन से है।

बोध प्रश्न 2

निम्नलिखित कथनों के रिक्त-स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) वन जीवोम में विभिन्न प्रकार के .... के जटिल समुच्चयन शामिल हैं।

ii) वन सदाबहार हो सकते हैं या .... ।

iii) उष्णकटिबंधीय वर्षा-प्रचुर वन .... के निकट पाए जाते हैं।

iv) चिपको-आंदोलन की उत्पत्ति पारिस्थितिकीय और .... दोनों प्रकार की है।

v) व्यापार, खाद्य तथा चारे के लिए उनका शोषण पूरी तरह से नहीं रोका जा सकता, कारण कि .... के बीच सहजीवी संबंध है।

vi) नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी द्वारा किए गए एक अध्ययन में वनों के क्षेत्रों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जैसे .... ।

vii) वनोन्मूलन के कारण प्राकृतिक जल का पुनः प्रयोग चक्र टूट जाता है और तेज .... द्वारा पानी बेकार चला जाता है।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए?

1) वनोन्मूलन से हमारा क्या नुकसान हो सकता है? नुकसान की क़िस्म बताइए।

....

2) सामाजिक वन-विद्या किसे कहते हैं?

....

7.4 घास-स्थल (Grasslands)

घास-स्थल जीवोम वहाँ पाया जाता है जहाँ वर्षा 25 से 75 से.मी. प्रति वर्ष के लगभग होती है। जो वनों के लिए पार्याप्त नहीं होती, परंतु वास्तविक मरुस्थल में होने वाली वर्षा से अधिक होती है। प्ररूपी घास-स्थल, वनस्पतियों वाले ऐसे स्थान होते हैं जो शीतोष्ण जलवायु में पाए जाते हैं। भारत में ये मुख्यतः ऊँचे हिमालयी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। शेष भारत के घास-स्थल मुख्यतः स्टेपीज़ (steppes) और सवन्ना (savannas) क़िस्म के होते हैं। स्टेपी घास-स्थल पश्चिमी राजस्थान के बालुई और खारी मिट्टी वाले विशाल क्षेत्रों में फैले हुए हैं जहाँ की जलवायु अर्धशुष्क (semi-arid) है और औसत वर्षा प्रतिवर्ष 200 मि.मी से भी कम होती है। यहाँ शुष्क मौसम 10 से 11 मास रहता है और वर्षा में बड़ी विभिन्नता पाई जाती है। मिट्टी सदैव अनावृत रहती है और कभी-कभी पथरीली होती है परंतु अक्सर यह बालुई होती है जिसमें स्थिर अथवा चल टिब्ब (dunes) होते हैं। केवल नम मौसम में ही अल्पकालिक चारा उपलब्ध होता है। घास की परत विरल होती है और उसमें मुख्यतः एकवर्षीय घास की स्पीशीज़ें ही होती हैं।

राजस्थान के केंद्रीय तथा पूर्वी भागों में–जहाँ वर्षा लगभग 500 मि.मी प्रति वर्ष से ज़्यादा नहीं होती और शुष्क मौसम 6 से 8 मास का होता है–शुष्क **सवन्ना चारण** (grazing) **परितंत्र** विकसित है। विरल वृक्षों, जैसे **प्रोसोपिस सिननेरिया** *(Prosopis cineraria)* द्वारा दी गई हल्की छाँह घास को उत्पन्न

होने में सहायक होती है जो सबसे अधिक जल वाले क्षेत्रों में 100 से.मी. से 120 से.मी. तक ऊँची हो सकती है।

स्टेपीज़ और सवन्ना में मुख्य भेद यह है कि जहाँ स्टेपीज़ में सारा चारा केवल संक्षिप्त नम मौसम में ही उत्पन्न होता है वहाँ सवन्ना में चारा अधिकतर घासों से प्राप्त होता है जो न केवल नमी वाले मौसम में ही उगती हैं बल्कि शुष्क मौसम में भी थोड़ी-थोड़ी उगती रहती हैं।

पशुओं के चरने के अधिक दबाव के कारण घास-स्थलों की क़िस्म में भी तेजी से गिरावट आ जाती है। शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में जून या जुलाई के शुरू के दौरान मानसून के आने से हर वर्ष वनस्पति की सक्रिय रूप में वृद्धि होने लगती है। जीवसंहति सितंबर से अक्टूबर तक अपनी चरम स्थिति तक वृद्धि कर लेता है। फलोत्पादन सितंबर तक पूरा हो जाता है और उसके बाद पौधे सूख जाते हैं। उत्तरी भारत के उपोष्ण भागों में—जहाँ सर्दियों में वर्षा होती है—आम तौर पर दिसंबर और जनवरी में दूसरी बार वनस्पतियों की वृद्धि होती है।

7.4.1 घास-स्थलों की क़िस्में (Types of Grasslands)

घास-स्थल, शीतोष्ण तथा उष्णकटिबंधीय दोनों ही क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जहाँ वर्षा अपेक्षाकृत कम अथवा एकसार नहीं होती है। जलवायु की दशाओं पर आधारित कई प्रकार के घास-स्थल भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में पाए जाते हैं (चित्र 7.3)।

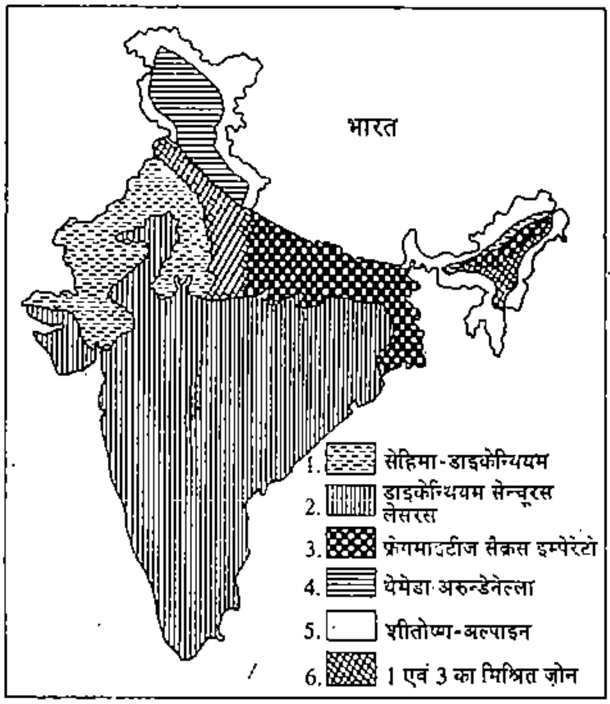

चित्र 7.3 : चारण भूमि की क़िस्में

1. **सेहिमा डाइकैंथियम (Sehima Dichanthium) किस्म :** सारे प्रायद्वीपीय भारत में (शुष्क अर्ध आर्द्र क्षेत्र में, नीलगिरि को छोड़कर) पाई जाती है। सवन्ना परिसर की भूमि की काँटेदार झाड़ियों में **अकेसिया कटेचू, माइमोसा रूबिकौलिस, जिज़िफस** और कभी-कभी गूदेदार **यूफोर्बिया** क़िस्में पाई जाती हैं जो कम ऊँचे वृक्षों के साथ-साथ पाई जाती हैं, जैसे **एनोक्वीसस लैटिफोलिया, सोयमिडा फैब्रीफूगा** और अन्य पर्णपाती (deciduous) स्पीशीज़ें फूल वाले पौधों की सूची में 24 बहुवर्षी घासें तथा 129 अन्य शाकीय स्पीशीज़ शामिल की जाती हैं जिनमें 56 लेग्यूम क़िस्में हैं। **सेहिमा** झाड़ियाँ कंकरीली जगहों पर ज़्यादा होती हैं और उनसे 27% भूमि ढ़की रहती है। **डाइकैंथियम** झाड़ियाँ अधिकतम समतल भूमियों पर पनपती हैं और ज़मीन के 90 प्रतिशत भाग को घेरे रहती हैं।

2. **डाइकैंथियम-सेन्क्रस-लेसियूरस** गुजरात के उत्तरी भाग, राजस्थान (अरावली पहाड़ियों को छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली और पंजाब जैसे जो यह किस्म अर्धशुष्क क्षेत्र में मिलती हैं। पहाड़ी चोटियों और बालू के टिब्बों के कारण **स्थलाकृति** (topography) बदल जाती है। ग्यारह क़िस्म की बहुवर्षी घासें, 45 क़िस्म की शाकाहारी स्पीशीज़ें (जिनमें लेग्यूमिनोसी की 19 स्पीशीजें शामिल हैं) इन स्थानों पर पाई जाती हैं। इस सूची में **अकेशिया सेनीगल, कैलोट्रोपिस गाइमेन्टिर, केसिया ऑरिकुलेटा, प्रोसोपिस सिनेरेरिया, साल्वेडोरा आलोइडीज़** और **ज़िज़िफ्स न्युमुलेरिया** को भी जोड़ा जा सकता है जिससे सवन्ना परिसर की भूमि कुंज (स्क्रब) जैसी लगती है।

3. **फ्रैग्माइटीज़-सैकरम-इम्पेरेटा** किस्में (नम अर्ध आर्द्र क्षेत्र) उत्तरी भारत के गंगा जलोढ़ मैदान में पाई जाती हैं। स्थलाकृति की विशेषता यह है कि यह समतल, निचली भूमि होता है जहाँ पानी निकलने के लिए स्थान नहीं होता। इस क़िस्म के घास-स्थल में घास की प्रमुख 19 स्पीशीज़ें तथा 56 अन्य शाकीय क़िस्में पाई जाती हैं जिनमें 16 लेग्यूम क़िस्में हैं। संक्रमण क्षेत्रों में **बोथ्रियोकलोआ पर्टूसा, साइलोडॉन डेक्टिलॉन** और **डाइकैंथियम एनुलेटम** पाई जाती हैं। आम तौर पर पाए जाने वाले वृक्षों और झाड़ियों में **अकेसिया अरेबिका, एनोगीसस लेटिफोलिया, ब्यूटिया मोनोस्पर्मा, फोनिक सिल्वेस्ट्रिस** और **ज़िज़िफ्स नुमुलेरिया** शामिल हैं। इनमें से कुछ के स्थान पर पाम सवानाओं में--खास तौर से सुंदरवन के निकट--**बोरेसस** की स्पीशीज़ों को लगा दिया गया है।

4. **थीमेडा अरुनडिनेला** घास आर्द्र मोन्टेन क्षेत्रों (montane regions) और आसाम, मणिपुर, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और जम्मू तथा काश्मीर के नम उपार्द्र (subhumid) क्षेत्रों में फैली हुई हैं। सवाना, आर्द्र वनों से व्युत्पन्न होती हैं जिसका कारण वहाँ खेती न करना और भेड़ो का चरना है।

7.4.2 आर्थिक महत्व

भूमि, मनुष्य और पशुओं के बाद **चारण परितंत्र** का दूसरा प्रमुख घटक वनस्पति है। इसकी शाकीय परत और काष्ठीय झाड़ियों और वृक्षों का अकाष्ठीय भाग (nontigreous organs) **चारा** कहलाता है। चारे की उपयोगिता उसके रासायनिक घटकों पर–विशेष रूप से प्रोटीन और खनिज़, जैसे फॉस्फोरस, पोटैशियम और कैल्सियम पर—निर्भर करती है और लिग्निन, सिलिका और पॉलीफीनोल उसकी गुणवत्ता को कम कर देते हैं। घासों के हरे-हरे गुद्दे‌दार प्ररोह (shoots) और लेग्यूमिनोसी कुल के पौधों के तृणों को छोड़कर अन्य भाग–जो ज़मीन का आवरण बनाते हैं या चारण भूमि के निचले स्तर का निर्माण करते हैं–चारण के लिए सबसे अधिक पसंद किए जाते हैं।

भारत में लकड़ी तक को चबा लेने वाले भैंसों से लेकर सदैव डरपोक बनी रहने वाली भेड़ों तक सभी शक्लों और आकारों के जंतु पाए जाते हैं और इनकी तादाद लाखों में है। यद्यपि भारत का क्षेत्रफल कुल ज़मीन के क्षेत्रफल का 40वाँ हिस्सा है परंतु वह भू-भाग विश्व भर में पाई जाने वाली भैंसों के आधे से अधिक को, पशुओं के 15 प्रतिशत को; बकरियों के 15% को और भेडों के 4% को जीवित रखने में सहायक है। पशुधन के रूप में यह संपत्ति भारत के निवासियों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह पशुधन हमें जलाने के लिए ईंधन, खाने के लिए पोषक पदार्थ और उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराता है। परंतु इस विशाल पशुधन संहति को जीवित रहने के लिए चारे की आवश्यकता होती है जब कि यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। भारत की भूमि का लगभग 1 करोड़ 34 लाख हेक्टेअर भाग ही स्थायी रूप से चारण भूमि के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यह भूमि पर्याप्त नहीं है और चूँकि यह बहुत ही ख़राब स्थिति में है इसलिए इन जानवरों ने लाखों हेक्टेअर परती भूमि, काश्त के रूप में इस्तेमाल न की जाने वाली भूमि, कृषि के लिए अयोग्य बंजर भूमि तथा 3 करोड़ 60 लाख हेक्टेअर उष्णकटिबंधीय वन-भूमि पर अपना अधिकार जमा लिया है। कुल मिलाकर देश की पूरी ज़मीन के लगभग आधे से ज़्यादा भाग में से जो भी वनस्पति इनकी पहुँच में आ जाती है, उन सभी पर पशु चरते रहते हैं और अखाद्य अपतृणों को छोड़कर लगभग सभी का ये सफ़ाया कर देते हैं।

अनेक पालतू और जंगली शाकाहारी जंतुओं, जैसे घोड़े, खच्चर, गधे, गाय, सुअर, भेड़, बकरी, भैंसें, ऊँट, हिरन, ज़ेब्रा इत्यादि को बड़ी संख्या को जीवित रखने के लिए घास-स्थल जीवोम महत्वपूर्ण है जो मनुष्य को भोजन, दूध, ऊन, चमड़ा या परिवहन का साधन इत्यादि प्रदान करता है।

भारत में अधिकाँश घास-स्थल क्रमोत्तर स्थितियों में कम पाए जाते हैं। यदि इन्हें चारण और आग से बचाया नहीं जाए तो ये स्थल वन-समुदायों में विकसित हो जाएँगे। **भारत के घास-स्थल और चारा अनुसंधान संस्थान**, झाँसी और **केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान**, जोधपुर के वैज्ञानिकों के एक दल को मुख्यतः यह ज़िम्मेदारी सौंपी गई है कि वे इन्हें बचाने के उपाय सुझाएँ। घासों की कुछ स्पीशीज़ें पशुओं के लिए अधिक

खाने योग्य होती हैं अतः वे चारण के लिए बहुत ही आकर्षक होती हैं और यदि अधिक पशु वहाँ चरने लगें तो उस क्षेत्र से घास लुप्त हो जाएगी और वहाँ कुछ अखाद्य अपतृण तथा झाड़ियाँ उगनी शुरू हो जाएँगी और यह क्षेत्र मानव निर्मित मरुस्थल में बदल जाएगा।

अतिचारण (overgrazing) के खास क़िस्म के अन्य पारिस्थितिकीय प्रभाव भी होते हैं, जैसे भूमि के ऊपर पलवार आवरण (mulch cover) घट जाता है। सूक्ष्म जलवायु अधिक शुष्क हो जाती है और इस भूमि पर मरुद्भिदी पौधे आसानी से उग आते हैं। **ह्यूमस आवरण** (humus cover) की अनुपस्थिति में खनिज युक्त मृदा-सतह उस दशा में बहुत अधिक नष्ट हो जाती है जब सतही परत नमी के कारण आलोडित (puddling) हो जाती है। यह सतही परत पानी को मिट्टी में जाने से रोकती है तथा उसके बह जाने को बढ़ावा देती है जिसकी वजह से सुखा पड़ता है। ये परिवर्तन ऊर्जा के बहाव की दर को कम करने में योग देते हैं। स्तरीकरण के भंग होने और प्राथमिक उत्पादकों की सर्वाधिकता के कारण जल, कार्बन और नाइट्रोजन के जैव भूरासायनिक चक्र (biogeochemical cycles) टूट जाते हैं। जल और वायु द्वारा अपरदन के फलस्वरूप घास-स्थल की अत्यंत शुष्क किस्म की सूक्ष्म जलवायु पूरी तरह से भंग हो जाती है। यही नहीं, अत्यधिक चारण के परिणामस्वरूप बेकार भूमि का क्षेत्र बढ़ जाता है जिससे बिलकारी जंतुओं, जैसे चूहों, जैक-खरगोशों, गोफरों, प्रेरी कुत्तों और टिड्डियों इत्यादि के लिए एक नया आवास स्थल तैयार हो जाता है, जो चारे वाली भूमि के बड़े क्षेत्र को अनुर्वर बना देते हैं।

घास-स्थलों के प्रबंध में आग की भूमिका महत्वपूर्ण है। नमी की दशाओं में आग वृक्षों की तुलना में घास को अधिक जलाती है जब कि शुष्क दशाओं में घास-स्थलों को बनाए रखने के लिए आग की अक्सर आवश्यकता होती है जिससे कि मरुभूमि में उगने वाली झाड़ियों का वहाँ फैलाव न हो जाए। **साइनोडॉन डैक्टिलॉन** को जला देने से चारे की उत्पादकता बढ़ जाती है।

अब आप घास-स्थल के महत्व को समझ गए होंगे और इस जीवोम का अध्ययन कर लेने के बाद आप यह जानने के इच्छुक होंगे कि मरुस्थल जीवोम क्या है और यह कहाँ पाया जाता है? परन्तु इसके पहले एक बोध प्रश्न करें।

बोध प्रश्न 4

दिए गए स्थान में निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए :

1) घास-स्थल जीवोम कहाँ पाया जाता है?

....

2) शुष्क सवाना चारण पारितंत्र कहाँ विकसित होता है?

....

3) स्टेपीज़ और सवाना में भेद बताइए?

....

4) अति चारण से उस क्षेत्र की पारिस्थतिकी किस प्रकार प्रभावित होती है?

....

7.5 मरुस्थल (Deserts)

मरुस्थल उन क्षेत्रों में बनते हैं जहाँ की वार्षिक वर्षा 25 से.मी. से कम होती है या कभी-कभी ये उन गर्म क्षेत्रों में भी उत्पन्न होते हैं जहां वर्षा अधिक होती है परंतु वर्षा वर्ष भर असमान रूप से वितरित रहती है। मध्य अक्षांश में अक्सर स्थायी रूप से उच्च दाब के क्षेत्र बने रहते हैं इसलिए वर्षा नहीं होती है। शीतोष्ण क्षेत्रों में अक्सर "वृष्टि-छाया" (rain shadows) वाले स्थानों में मरुस्थल बन जाते हैं अर्थात् उन स्थानों पर जहाँ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ समुद्रों से आने वाली नमी को आने नहीं देते। अतः इन क्षेत्रों में बहुत ही कम वर्षा होती है। कम वर्षा के साथ-साथ ताप में भी उतार-चढ़ाव होता रहता है। इन जीवोमों की जलवायु तुंगता (altitude ऊँचाई) और अक्षांश (latitude) द्वारा बदल जाती है। उच्च तुंगताओं और भूमध्य रेखा से काफ़ी दूरी पर मरुस्थल ठंडे और गर्म होते हैं जिस प्रकार वे अन्य स्थानों पर होते हैं। मरुस्थल, ऑस्ट्रेलिया, अरब, तुर्किस्तान तथा अर्जेन्टिना में पाए जाते हैं। पश्चिमी भारत और पाकिस्तान में **थार मरुस्थल** (Thar Desert), मंगोलिया दक्षिण अफ्रीका, ईरान में **गोबी मरुस्थल** जाने-पहचाने मरुस्थल हैं।

चिरस्थायी पौधों की स्पीशीजें, जैसे क्रियोसोट झाड़ी **(कोविलिया) इनएस्क्वाइट ऑर्गन कैक्टस** (inesquite organ cactus) **फेरोकैक्टस** (Ferrocactus) मरुस्थली जीवोम में सभी जगह फैले रहते हैं। नमक के विक्षेप वाले (Sarcobatus) उथले व नीचे दबे हुए क्षेत्रों में गीज़वुड, सोपवुड और लवणयुक्त घासें सामान्य रूप में मिलती हैं। वार्षिक पौधे जहाँ भी मौजूद होते हैं वे केवल अल्पावधिक वर्षा के मौसम में ही अंकुरित होते हैं तथा फलते और जनन करते हैं ये गर्मियों और सर्दियों में अंकुरित नहीं होते। यह मरुस्थल दशा का अनुकलन है।

सरीसृप और कुछ कीट जैसे जंतु मरुस्थलों के लिए अनुकूलित होते हैं क्योंकि उनके अध्यावरण (integuments) अप्रवेश्य होते हैं और उनके शुष्क उत्सर्जन उन्हें थोड़े से पानी पर ही निर्भर रहने के योग्य बनाते हैं। एक वर्ग के रूप में स्तनधारी, (mammals) मरुस्थलों के लिए कम अनुकूलित होते हैं परन्तु इनकी कुछ स्पीशीजें गौण रूप में अनुकूलित हो गई हैं। उदाहरण के लिए रात्रिचर रोडेन्टों (कृंतकों) की कुछ स्पीशीज़ें बहुत ही सांद्रित मूत्र का उत्सर्जन करती है और ताप-नियमन के लिए पानी का उपयोग नहीं करतीं तथा बग़ैर पानी पिए मरुस्थल में रह सकती हैं। अन्य जंतुओं, जैसे ऊँट को समय-समय पर पानी पीना चाहिए परन्तु वे काफ़ी लंबे अरसे तक ऊतक निर्जलीकरण (tissue dehydration) को सहन करने के लिए कार्यकीय रूप में अनुकूलित होते हैं।

जल चूँकि प्रभावी सीमाकारी कारक (limiting factor) होता है इसलिए किसी मरुस्थल की उत्पादकता लगभग प्रत्यक्ष रूप से वर्षा पर निर्भर करती है। जहाँ की मृदाएँ उपयुक्त होती हैं वहाँ सिंचाई से मरुस्थलों को हमारी कुछ सबसे अधिक उत्पादक कृषि भूमि में बदला जा सकता है। किसी स्थान की उत्पादकता लगातार एक सी है या उसका केवल अस्थायी फैलाव हुआ है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य कितनी अच्छी तरह से जैव भूरासायनिक चक्रों (biogeochemical cycles) को और सिंचाई को बढ़ाकर ऊर्जा प्रवाह को स्थिर कर पाया है। सिंचाई व्यवस्था के ज़रिए जब बड़ी मात्रा में पानी कहीं से गुज़रता है तब लवण पीछे रह जाते हैं यदि इस कठिनाई से बचने के कोई उपाय न निकाल लिए जाएँ। तो ये लवण वर्षों में धीरे-धीरे इकट्ठा होकर सीमाकारी स्थिति में पहुँच सकते हैं।

7.5.1 मरुस्थलीकरण (Desertification)

मरुस्थलीकरण किसे कहते हैं? भूमि की जैविक शक्ति के घटने या नष्ट होने के परिणामस्वरूप मरुस्थल जैसी दशाएँ उत्पन्न हो जाती है। शुष्क तथा अर्ध शुष्क क्षेत्रों में–जहाँ भंगुर पारितंत्र का पुनः स्थापन बहुत ही धीरे-धीरे होता है, वहाँ खनन (mining) से मरुस्थलीकरण की दशाओं में उल्लेखनीय योग होता है।

सात हज़ार वर्ष पहले थार मरुस्थल में प्रचुर मात्रा में वर्षा हुआ करती थी और वहाँ झाड़ियाँ और वृक्ष होते थे जिनमें जामुन के वृक्ष शामिल थे। इन क्षेत्रों में नदियाँ और झीलें होती थीं और यह प्रगतिशील सभ्यता का स्थान था। परन्तु आज यह ऊसर मरुस्थल है। यह भी आशंका व्यक्त की जाती है कि थार मरुस्थल फैल रहा है किन्तु यह मरुस्थल क्षेत्र जो राजस्थान, गुजरात, पंजाब और हरियाणा प्रदेशों के कुछ हिस्सों में फैला हुआ है उन स्थानों की मुख्य समस्या मरुस्थलीकरण है जहाँ कुछ वनस्पतियाँ होती थीं।

संपूर्ण विश्व के लिए यह एक वातावरणीय समस्या है कि मरुस्थलीकरण से विश्व के लगभग 6280 लाख लोगों का भविष्य खतरे में आ गया है। कनाडा के आकार से दुगुना बड़ा यानी 200 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के निकट भविष्य में मरुस्थल में परिवर्तित हो जाने का खतरा हो गया है।

इस प्रक्रिया का कारण जलवायु-संबंधी परिवर्तन तथा सूखा इत्यादि नहीं है बल्कि मनुष्यों के अपने कार्य हैं। जनसंख्या वृद्धि तथा विकल्पी रोज़गार के अवसरों के न होने से थार मरुस्थल में रहने वाले लोगों के पास इसका कोई और विकल्प नहीं है कि वे अपने पशुओं को उसकी ऊसर परिस्थितियों में भी चरने के लिए ले जाते हैं। पिछले 70 वर्षों में थार मरुस्थल में रहने वालों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है यानी यहाँ की जनसंख्या 1901 में 35.7 लाख से बढ़कर 1971 में 102.4 लाख हो गई है। इसी के अनुरूप पशुओं की संख्या में वृद्धि ने वहाँ के सीमित चारण क्षेत्र पर असहनीय दबाव डाला हुआ है। पिछले 20 साल में तो पशुओं की संख्या– जो 1959 में 102.2 लाख थी बढ़कर 1971 में 164.4 लाख हो गई है। इसके अतिरिक्त खेती के काम में लिए जाने वाले क्षेत्र में भी वृद्धि हो गई है जो 1951 से 1971 के बीच 25.3 प्रतिशत बढ़ा है। जिसकी वजह से चारण भूमि घट गई है। विकास कार्यों के फलस्वरूप सड़क-निर्माण, शहरीकरण के लिए आवश्यक नहर और रेल मार्ग का निर्माण, हो जाने से शहर बढ़ते जा रहे हैं और मरुस्थल बढ़ता जा रहा है। निर्वनीकरण, ने भी कुल मिलाकर मरुस्थल के फैलाव में योग दिया है। जिसका संबंध ईंधन के लिए प्रयोग में लिए जा सकने वाले कुछ वृक्षों को काट देने से है।

केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (सेंट्रल एरिड ज़ोन रिसर्च इस्टीट्यूट - CAZRI) द्वारा जोधपुर में किए

गए अध्ययन के अनुसार पश्चिमी राजस्थान का 9290 वर्ग किलोमीटर अथवा 4.35% भाग पिछले वर्ष मरुस्थल में बदल चुका है, और 76.15% भाग अथवा 1,62,900 वर्ग किलोमीटर भाग मरुस्थलीकरण की चपेट में आ सकता है। थार मरुस्थल 3,17,000 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है, जहाँ 190 लाख जनता रहती है, यानी वहाँ की आबादी का घनत्व 61 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है जब कि संसार के अन्य स्थानों के शुष्क क्षेत्रों में प्रति वर्ग किलोमीटर तीन व्यक्ति ही रहते हैं– इसके कारण संभवतः यह विश्व का सबसे अधिक आबादी वाला मरुस्थल है।

यदि तेज़ी से संरक्षणात्मक उपाय नहीं किए गए और स्थानीय लोगों के लिए रोज़गार के अवसर उपलब्ध नहीं कराए गए तो इस मरुस्थल में मनुष्यों और पशुओं की आबादी की बढ़ती हुई सघनता अनमनीय रूप में और आगे मरुस्थलीकरण की ओर अग्रसर होगी।

7.5.2 भारत के मरुस्थल

भारत का मरुस्थल विश्व के उस सबसे बड़े मरुस्थली ज़िले का पूर्वी भाग है, जो अफ्रीका के अटलांटिक समुद्र तट से यहाँ तक फैला हुआ है। इसमें सहारा, अरब का भाग, दक्षिणी फ़ारस और बलूचिस्तान शामिल हैं। इस क्षेत्र की जलवायु की यह विशेषता है कि यहाँ अत्यधिक सूखा पड़ता है, वर्षा बहुत कम और अव्यवस्थित होती है। उत्तरी भारत की शरदकालीन वर्षा कभी भी इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाती है , मनासून के आगमन पर ही यहाँ केवल वर्षा ऋतु में ही वर्षा हो पाती है। दक्षिण-पश्चिम ठंड का मौसम लगभग मध्य नवंबर से शुरू होकर मध्य मार्च तक रहता है। इस मौसम की विशेषता यह है कि यहाँ ताप में अत्यधिक विविधता होती है और रात में ताप बहुधा हिमांक से भी नीचे चला जाता है। अप्रैल, मई और जून में गर्मी बहुत कष्टकर, तेज और झुलसाने वाली होती है, बहुधा गर्म हवाएँ चलती रहती हैं जो बहुत ही सुखा देने वाली होती हैं। वायुमंडल की सापेक्ष आर्द्रता सदैव निम्न होती है।

पश्चिमी राजस्थान का काफ़ी बड़ा भाग उड़कर आई बालू से ढक जाता है जिसमें मुख्यतः अच्छी तरह पिसे हुए क्वार्ट्ज़ कण होते हैं और साथ ही इसमें हॉर्न ब्लॉनडी (horn blondc) और फेलस्पार (Felspar) के भी पत्रक (फ्लेक) तथा स्थानीय चट्टानो के बारीक कण होते हैं। इसके अलावा कैल्सियम कार्बोनेट के कण भी पाए गए हैं जिनमें से कुछ कण फ़ोरामिनिफेरा नामक सूक्ष्म जीव के ऊपरी खोल होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि कम से कम कुछ बालू सुदूर पहाड़ी वाले कच्छ (kutch) क्षेत्र से हवाओं द्वारा लाए गए हैं। बालू पर हवा की क्रिया के फलस्वरूप विभिन्न शक्लों के टिब्बों (dunes) का निर्माण होता है (चित्र 7.4)। जहाँ टिब्बा बढ़ रहा होता है, वहाँ उसके लीवाड ढलान (leeward stopes) अपरिवर्ती रूप में खड़े ढाल होते हैं और वहाँ वनस्पति नहीं होती, यदि हवा की गति काफ़ी तेज़ होती है। हवा की एक और विशेषता यह है कि बालू की सतह पर इसकी क्रिया बालुई कणों की छँटाई करने की होती है, जिसके कारण हवा की लहरें (wind ripples) बन जाती हैं। जहाँ ये लहरें बनती हैं, हवा के काफ़ी तेज़ होने पर लगातार आगे की ओर बढ़ती रहती हैं। इन परिस्थितियों में बीजों का अंकुरण (germination) असंभव होता है।

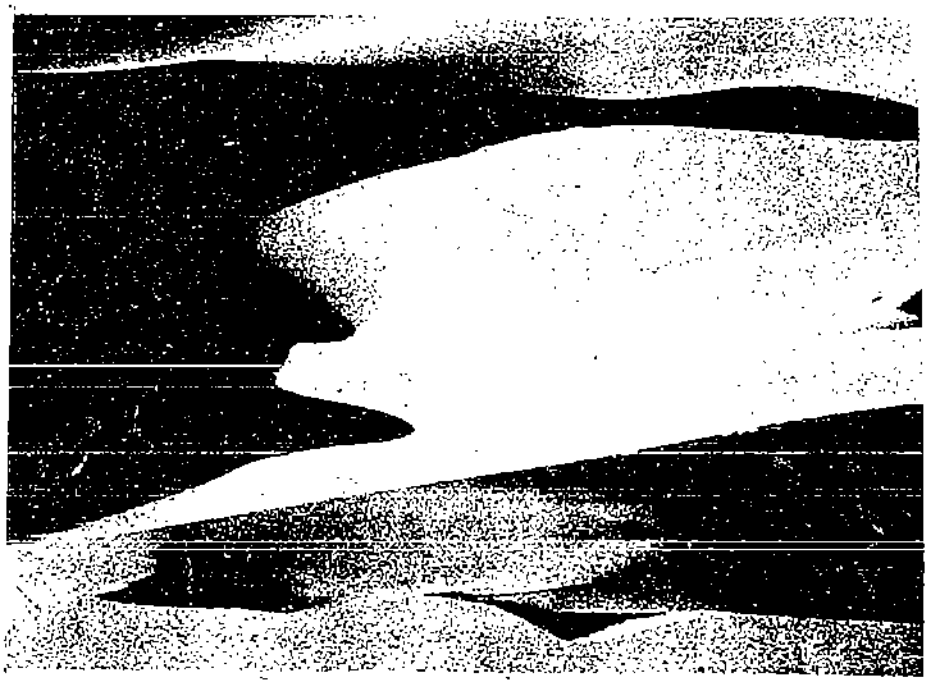

चित्र 7.4 : विभिन्न शक्लों के बालू रेत के टिब्बों का निर्माण

अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि भारत के मरुस्थल की जलवायु सभी प्रकार की वनस्पतियों के लिए प्रतिकूल है, केवल विशेष अनुकूलनों वाले पौधे ही स्वयं को स्थापित रख पाते हैं। ये अनुकूलन सामान्यतः दो किस्म के होते हैं जिनके दो सुस्पष्ट उद्देश्य हैं पहला पौधे को पानी प्राप्त करने योग्य बनाना और दूसरा जब पानी मिल जाए तो उसे बचा कर रखना। वनस्पतियों की बड़ी मात्रा झाड़ियों और बहु-वर्षीय शाकीय पौधों से बनी होती है जो अत्यधिक सूखे का सामना कर सकती हैं। वृक्ष बहुत ही थोड़े होते हैं और ये स्तंभित (stunted) होते हैं। तथा सामान्यतः काँटेदार या कँटीले होते हैं। इस प्रकार वे स्वयं को पौधों से आहार प्राप्त करने वाले जंतुओं से बचाते हैं। पौधों को खाने वाले इन जंतुओं में ऊँटों, पशुओं, भेड़ों और बकरियों के विशाल झुंड आते हैं जो ग्रामीण आबादी की मुख्य संपदा होती है और रेगिस्तान की शुष्क प्रकृति के बावजूद जीवित दिखाई पड़ते हैं।

वास्तविक रेगिस्तानी पौधों को दो मुख्य वर्गों में बाँट सकते हैं: पहले वे जो सीधे ही वर्षा पर निर्भर रहते हैं और दूसरे वे जो अंतःभूमिका (subterranean) जल पर निर्भर रहते है।

पहले वर्ग में दो किस्में आती हैं पहली **अल्पकालिक** (ephemerals) और दूसरी वर्षा-बहुवर्षी (rain perennials) अल्पकालिक में कोमल वार्षिक पौधे आते हैं जो आभाषी रूप में किसी प्रकार के मरुद्भिदी अनुकूलनों से मुक्त होते हैं और इनके तने तथा जड़ें पतली और फल अक्सर बड़े होते हैं। ये वर्षा के लगभग तुरंत बाद ही दिखाई देते हैं, उनपर बहुत ही थोड़े समय में फूल और फल आते हैं और मृदा के सतही स्तर के सूखते ही ये मर जाते हैं। वर्षा वाले बहुवर्षी पौधे ज़मीन के ऊपर केवल वर्षा ऋतु में ही दिखाई देते हैं परन्तु उनके चिरस्थाई तने भूमिगत रहते हैं। एक दलीय कंदीय पौधे–जिनमें इस क्षेत्र का प्रतिनिधि **डिपकैदी एरीथ्रियम** *(Dipcadi erythroeem)* है–भी लीइप्रेसी कुल के विभिन्न पौधे होते हैं। सबसे बड़ी संख्या में देशीय पौधे अपने सुविकसित मूल-तंत्र (root system) के ज़रिए भूमि की सतह से काफ़ी गहराई से पानी का अवशोषण कर सकते हैं इस मूल तंत्र का मुख्य भाग पतला, काष्ठमय मूसला जड़ (woody taproot) के रूप में असाधारण लंबाई का होता है। सामान्यतः विभिन्न प्रकार के अन्य मरुद्भिदी अनुकूलन भी पैदा हो जाते हैं, जैसे छोटे आकार की पत्तियाँ, सघन रोम-वृद्धि, गूदेदार तना, मोम का आवरण, मोटी क्यूटिकल और संरक्षित स्टोमेटा इत्यादि जिनका केवल एक उद्देश्य है कि वाष्पीकरण कम हो जाए। इस वर्ग के पौधे मुख्यतः काष्ठमय बहुवर्षी पौधे होते हैं, तथापि थोड़े से वार्षिक पौधे हो सकते हैं, जैसे दुर्लभ क़िस्म **मोन्सोनिया हीलियोट्रोपिओडीस** *(Monsonia halistropiodes)*

सरीसृपों में टेस्टुडीनों **(लोरिकेटा)** की दो स्पीशीज़ें, छिपकलियों की 18 स्पीशीज़ें और साँपों की 18 स्पीशीजें पाई जाती हैं। छिपकलियों की कुछ स्पीशीजें, जैसे **कैलोटिस वर्सिकलर, यूरोमैस्टिक डार्डविकाई** नामक उन रेगिस्तानी टिड्डियों की परभक्षी होती हैं जो थार मरुस्थल के स्थानीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं। प्रमुख परभक्षी (predatory) पक्षियों में गिद्धों की दो स्पीशीजें मिलती हैं जिनके नाम हैं **जिप्स बेंगालेन्सिस** *(Gyps bangalenses* और सफ़ेद गिद्ध **नियोफ्रोन** *(Neophron)*।

भारत के रेगिस्तानों में मिलने वाले स्तनधारी प्राणियों में कई स्पीशीजें शामिल हैं जिनमें चूहे जैसी पूँछ वाला चमगादड़, लंबोतरा झाऊचूहा, भारत का रोमयुक्त पैरों वाला जरबिल, जंगली शूकर, जंगली बिल्लियां, पैंथर इत्यादि आते हैं।

बोध प्रश्न 5

सही उत्तर पर टिक (√) का निशान लगाइए।

1) कौन सा जंतु आवधिक रूप में पानी पीता है और शरीर क्रियात्मक रूप में लंबे अरसे तक ऊतक निर्जलीकरण को सह सकता है।
   (क) शेर (ख) चीता (ग) ऊँट (घ) हाथी

2) किस जीवोम में अप्रैल से जून के दौरान तेज़ गर्मी और झुलसाने वाली हवाएँ चलती हैं जिससे जल-शुष्कन क्रिया बहुत अधिक होती है।
   (क) टूंड्रा जीवोम (ख) मरुस्थल जीवोम (ग) वन जीवोम (घ) घास-स्थल जीवोम

3) थार रेगिस्तान .... वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है।
   (क) 5,17,000 वर्ग कि.मी. (ख) 6,00,150 वर्ग कि.मी. (ग) 2,50,000 वर्ग कि.मी.
   (घ) 3,17,000 वर्ग कि.मी.

4) थार रेगिस्तान में झाड़ियाँ और जामुन के वृक्ष हुआ करते थे:
   (क) 10,000 वर्ष पहले (ख) 8,000 वर्ष पहले (ग) 7,000 वर्ष पहले (घ) 5,000 वर्ष पहले

5) थार रेगिस्तान में **कैलोटीस** और **यूरोमेस्टिक्स** किन जंतुओं के परभक्षी हैं:
   (क) रेगिस्तानी टिड्डी (ख) रेगिस्तानी जरबिल (ग) रेगिस्तानी ड्रेगन फ्लाई (घ) रेगिस्तानी साँप

7.6 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा है कि

- जीवोम सामुदायिक इकाइयों के रूप में पहचाने जा सकते हैं, जो क्षेत्रीय-जलवायु के क्षेत्रीय सबस्ट्रेट के साथ अंतक्रिया के फलस्वरूप बनते हैं। कुछ जीविमों को वनजीवोम, मरुस्थली जीवोम, घास-स्थल जीवोम के रूप में पहचाना गया है।
- घास-स्थल जीवोम उस क्षेत्र में पाया जाता है जहाँ हर वर्ष 25 से 75 से.मी. वर्षा होती है। घास-स्थल जीवोम अनेक पालतू तथा जंगली शाकाहारियों जैसे घोड़े, भैंस, ऊँट, हिरन, ज़ेब्रा को बढ़ने देने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं और जो मनुष्य को दूध, भोजन, ऊन, चमड़ा और परिवहन के साधन उपलब्ध कराते हैं।
- वनों से ज़मीन का लगभग 40% भाग ढका हुआ है। वन जीवोमों को शुंकवृक्षी वन, शीतोष्ण पतझड़ वाले वन, शीतोष्ण सदाबहार वनस्थली वन, शीतोष्ण वर्षा वन, उष्णकटिबंधीय वर्षा वन, उष्ण कटिबंधीय मौसमी वन, उपोष्णकटिबंधीय वन इत्यादि में वर्गीकृत किया जा सकता है।
- एन.आर.एस.ए. द्वारा 1989 में दिए गए आँकड़ों के अनुसार भारत में हर वर्ष 13 लाख हैक्टेअर भूमि पर लगे वन समाप्त हो जाते हैं।
- सामाजिक वन-विद्या वृक्ष उगाने का कार्यक्रम है, जिससे ग्रामीण आबादी को जलाने की लकड़ी, चारा, छोटे आकार की इमारती लकड़ी और छोटे वन उत्पाद मिलते हैं।
- चिपको आंदोलन–जिस आंदोलन का ध्येय वृक्षों को अपनाना है–बुनियादी पारिस्थितिक विकास आंदोलन है।
- मरुस्थल जीवोम ज़मीन के 17 प्रतिशत भाग में फैला हुआ है और उन-क्षेत्रों में पाया जाता है जहाँ वार्षिक वर्षा 25 से.मी. से भी कम होती है।
- मरुस्थलीकरण भूमि की जैविक शक्ति के घटने या नष्ट होने की प्रक्रिया है, जो अंततः मरुस्थल जैसी परिस्थितियाँ पैदा कर देती हैं।

7.7 अन्त में कुछ प्रश्न

1) जीवोम का वर्णन कीजिए और बताइए कि पृथ्वी की पारिस्थितिकी में वन जीवोम के नष्ट होने से क्या परिवर्तन होंगे।

....

....

....

....

....

2) सामाजिक वन-विद्या ग्रामीण लोगों को किस प्रकार लाभ पहुँचाती है; समझाइए।

....

....

....

....

....

3) निर्वनीकरण को रोकने के तरीकों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

4) चिपको-आंदोलन से आप क्या समझते हैं? इससे वृक्षों के गिराए जाने को रोक पाने में क्या सहयोग मिला है, इस पर अपनी राय लिखिए?

....

....

....

....

....

....

5) हमारे देश में घास-स्थल जीवोम को बनाए रखने की क्यों ज़रूरत है, बताइए?

....

....

....

....

....

....

6) थार-मरुस्थल कैसे बने, वर्णन कीजिए?

....

....

....

....

....

....

7.8 उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) जीवोम एक बड़ी समुदायिक इकाई होती है जिसकी विशेषता उसमें पाए जाने वाले पौधों और जंतुओं की किस्म पर आधारित होती है।

ii) बड़े पैमाने पर स्थलीय और यहाँ तक कि कुछ जलीय पारितंत्रों को विश्व के पैमाने पर समुदायों और वातावरणों की प्रवणताओं के रूप में माना जाता है। पारितंत्रों की ऐसी प्रवणताओं को **पारिस्थितिक प्रवणताएँ** (ecolines) कहा जाता है।

iii) जीवोमों की प्रमुख क़िस्में तीन हैं, जैसे वन, घास-स्थल और मरुस्थल।

बोध प्रश्न 2

(i) जीवीय समुदाय (ii) पर्णपाती (iii) विषुवत् रेखा (iv) आर्थिक आधार, (v) वन और मानवमात्र (vi) बंद वन, खुले वन या निम्न कोटिकृत वन और मैंग्रूव वन (vii) बह जाना।

बोध प्रश्न 3

(i) वन-आवरण के नष्ट होने से (क) ऊपरी मृदा हट जाती है (ख) मृदा-अपरदन होती है (ग) स्थायी सोते सूख जाते हैं (घ) लंबे अरसे तक शुष्कन की दशाएँ बनी रहती हैं (ङ) भूमिगत जल का स्तर नीचा हो जाता है और आगे चल कर वर्षा कम हो जाती है (च) प्राकृतिक चक्र खंडित हो जाता है (छ) बाढ़ इत्यादि आ जाती है।

(ii) सामाजिक वन-विद्या वृक्षों को लगाने का कार्यक्रम होता है जिससे ग्रामीण जनता को [illegible] के लिए लकड़ी, पशुओं के लिए चारा, छोटे आकार की इमारती लकड़ी और छोटे वन-उत्पाद मिल सके।

बोध प्रश्न 4

1) घास-स्थल जीवोम वहाँ पाया जाता है जहाँ वर्षा लगभग 25 से 75 से.मी. प्रतिवर्ष होती है जो वन के बने रहने के लिए पर्याप्त नहीं होती।

2) जिन स्थानों पर वर्षा लगभग 50 से.मी. प्रतिवर्ष होती है और शुष्क मौसम 6 से 8 मास का होता है वहाँ शुष्क सवाना चारण पारितंत्र विकसित हो जाता है।

3) स्टेपीज़ और सवाना में मुख्य भेद यह है कि स्टेपीज़ में समस्त चारा केवल अल्प अवधि के नम मौसम में ही उपलब्ध होता है जब कि सवाना में चारा अधिकतर घासों से प्राप्त होता है जो केवल नम मौसम के दौरान उगती हैं परन्तु शुष्क मौसम में भी उनकी थोड़ी सी पुनर्वृद्धि भी होती है।

4) अतिचारण की वजह से **पलवार आवरण** (mulch cover) घट जाता है, सूक्ष्म-जलवायु शुष्क हो जाती है और वहाँ आसानी से मरुद्भिद पौधे उग आते हैं। आर्द्र आवरण की अनुपस्थिति के अलावा जड़ों द्वारा सतही स्तर के आलोडन से खनिज़युक्त ज़मीन बहुत अधिक दब जाती है और इस कारण ज़मीन में पानी का निस्पंदन घट जाता है तथा पानी के बह जाने की क्रिया तेज़ हो जाती है, फलस्वरूप सूखा पड़ जाता है।

बोध प्रश्न 5

(i) ग (ii) ख (iii) घ (iv) ग (v) क

अंतिम प्रश्नों के उत्तर

1) जीवोम के लिए बोध प्रश्न 1 के उत्तर 1 को देखिए। प्राकृतिक आवरण के नष्ट हो जाने से ऊपरी मृदा की हानि होती है। संपूर्ण हिमालयी पारितंत्र हिम परतों के पतले हो जाने और झरनों के सूख जाने के कारण खतरे में पड़ जाता है। निर्वनीकरण के कारण प्राकृतिक पुनप्रयोग चक्र भंग हो जाता है और पानी बह जाने के कारण नष्ट हो जाता है। निर्वनीकरण से बाढ़ें आती हैं, मृदा-अपरदन होता है और जलवायु में बदलाव आता है। इस प्रकार निर्वनीकरण विश्व पारिस्थितिकी को बदल सकता है।

2) सामाजिक वन-विद्या का मुख्य ध्येय ग्रामीण लोगों के लिए जलाने की लकड़ी, चारा, छोटे आकार की इमारती लकड़ी और वनों के छोटे-छोटे उत्पाद उपलब्ध कराना है। सामाजिक वन-विद्या कार्यक्रमों के मुख्य रूप से तीन घटक होते हैं (क) फार्मवन-विद्या जिससे कि किसान अपने फार्मों में वृक्ष उगा सकें (ख) वन विभाग द्वारा ख़ासतौर से सड़कों के किनारे और नहरों के किनारे तथा अन्य ऐसी ज़मीन पर लगाए गए वन जो समुदाय की ज़रूरतों को पूरा कर सकें। (ग) सामुदायिक वन-क्षेत्र जो समुदाय द्वारा स्वयं समुदाय की ज़मीन पर ही लगाए जाते हैं और उसमें समुदाय के लोगों का बराबर का हिस्सा होता है।

3) निर्वनीकरण को प्रभावी कानून बनाकर और जन-समुदाय में जागरुकता पैदा करके रोका जा सकता है। चिपको आंदोलन जन-समुदाय का वातावरण के प्रति जागरुकता का ही परिणाम है।

4) वृक्षों को अपनाने संबंधी आंदोलन पारिस्थितिक विकास का मूलभूत आंदोलन है। अपनी राय लिखिए कि इस आंदोलन से निर्वनीकरण काफ़ी रुका है या यह केवल नारेबाज़ी है।

5) भारत में जानवरों की संख्या बहुत बड़ी है। हमारे जीवन में पशुधन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परन्तु इस विशाल पशुधन को जीवित रहने के लिए चारे की आवश्यकता होती है। इसलिए घास-स्थल जीवोम अनेक पालतू और जंगली शाकाहारी जानवरों को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण होता है, जैसे घोड़ा, खच्चर, गधा, गाय, भेंड़ बकरी, भैंस और ऊँट इत्यादि। अतिचारण के कारण सूक्ष्म जलवायु शुष्क हो जाती है, ज़मीन में पानी का निस्पंदन घट जाता है, और पानी तेज़ी से बह जाता है जिससे सूखे की स्थिति आ जाती है।

6) सात हज़ार वर्ष पूर्व थार मरुस्थल में प्रचुर मात्रा में वर्षा होती थी और वहाँ जामुन समेत अनेक वृक्ष तथा झाड़ियाँ पैदा हो जाती थीं। साथ ही वहाँ नदियों और झीलों की बहुतायत थी। आज यह एक वनस्पति विहीन रेगिस्तान है। इस मरुस्थलीकरण का कारण जलवायु संबंधी कारक जैसे सूखा इत्यादि नहीं है बल्कि स्वयं मानव के कार्य हैं जिनमें निर्वनीकरण तथा पशुओं द्वारा, प्रतिचारण इत्यादि हैं।

इकाई 8 पारितंत्र के प्रकार : 2. जलीय पारितंत्र

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
8.2 जलीय पारितंत्र
जलीय जीवों का वर्गीकरण
जलीय आवासों की उत्पादकता को सीमित करने वाले कारक
जलीय पारितंत्रों का वर्गीकरण
8.3 सरो पारितंत्र
झीलें, रुद्धजलागार और गीली भूमियां
झील पारितंत्र के अभिलक्षण
झीलों के जीवजात
झीलों के प्रकार
8.4 सरित पारितंत्र–नदियाँ
नदी तंत्रों के अभिलक्षण
नदियों के जीवजात
8.5 समुद्री पारितंत्र
समुद्री पारितंत्र के मुख्य लक्षण
महासागर के जीवन मंडल
महासागर के जीवजात
8.6 ज्वारनदमुख
ज्वारनदमुखों के लक्षण
ज्वारनदमुखों के जीवजात
8.7 सारांश
8.8 अंत में कुछ प्रश्न
8.9 उत्तर

8.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में आपने सीखा है कि पारितंत्रों को स्थलीय और जलीय पारितंत्रों में वर्गीकृत किया गया है। पिछली इकाई में आपने विभिन्न स्थलीय पारितंत्रों के अभिलक्षणों को विस्तारपूर्वक पढ़ा। इस इकाई में हम जलीय पारितंत्रों की चर्चा करेंगे।

पिछली इकाइयों मे आप सभी पारितंत्रों की सामान्य संरचना और प्रकार्यो के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। आप यह भी पढ़ चुके हैं कि जीवमंडल (biosphere) में आत्म-निर्भर परस्पर क्रियाशील तंत्रों के रूप में पारितंत्र किस प्रकार संक्रिया करते हैं। हमें धरातल पर उन निश्चित रूप से सीमित क्षेत्रों को जांचने की जरूरत है, जो गहरे संबंधों पर विषय का अध्ययन करना और समझना संभव तथा व्यावहारिक बनाते हैं। ऐसे पारितंत्र जिनमें जल प्रधान कारक होता है जलीय पारितंत्र कहलाते हैं। जलीय पारितंत्र तीन प्रकार के होते हैं। अलवण जल, समुद्री जल एवं खारा जल पारितंत्र। अलवण जलीय पारितंत्र भी दो प्रकार के होते हैं: सरो जलीय पारितंत्र एवं सरित जलीय पारितंत्र। आगे के खण्डों में हम इन्हीं को विस्तार से पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- जलीय पारितंत्रों के सामान्य पारिस्थितिकीय लक्षणों और उनकी विभक्तियों का वर्णन कर सकेंगे
- वसन्त और शरद् पर्यास (spring and fall overturn) के प्रक्रम की व्याख्या कर सकेंगे
- अल्पपोषित, (oligotrophic), मध्यपोषित (mesotrophic) और अतिपोषित (eutrophic) झीलों की तुलना कर सकेंगे तथा रुद्धजलागारों एवं झीलों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे
- सरो (lentic) और सरित (lotic) पारितंत्रों के बीच अंतर कर सकेंगे
- गीली भूमियों की परिभाषा दे सकेंगे और समुद्री पारितंत्रों तथा ज्वारनदमुखों (estuaries) के बीच अंतर स्पष्ट कर सकेंगे;

- झीलों, नदियों, ज्वारनदमुखों और समुद्री पारितंत्रों के जीवजात (biota) के बीच पाए जाने वाले अंतर को बता सकेंगे

8.2 जलीय पारितंत्र

भूमंडलीय जलराशियों ने धरातल के लगभग तीन-चौथाई भाग को अलवण जल तथा लवण जल या खारे पानी के रूप में ढक रखा है। अलवण जल में नमक का अंश 0.5 प्रतिशत से कम, लवण जल में 3.5 प्रतिशत से अधिक और खारे पानी में अलवण जल और लवण जल के बीच में होता है। जलीय पारितंत्रों को उनमें मौजूद नमक के अंश के आधार पर लवण जल और अलवण जल में बांटा जा सकता है। अलवण जलराशियों में नमक का अंश बहुत कम होता है। हमेशा 5 ppt (भाग प्रति हज़ार part per thousand), या उससे भी कम। इसके मुकाबले जिन जल राशियों की नमक सांद्रता समुद्र जल (यानि 35 ppt या उससे ऊपर) के बराबर या उससे ऊपर हैं वे लवण जल राशियां या समुद्री जल राशियां कहलाती हैं। विश्व के सागर (समुद्र) और महा-सागर इस श्रेणी में आते हैं। ज्वारनदमुख और खारे पानी की राशियों में नमक का अंश 5 से 35 ppt के बीच होता है। ज्वारनदमुखों और महासागरों के अपने-अपने लवण अंश होते हैं। इसलिए इनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव होते हैं, जिनके बारे में भाग 8.5 और 8.6 के अंतर्गत अलग से चर्चा की जाएगी। इसी आधार पर जलीय पारितंत्रों को तीन श्रेणियों में रखा गया है: (1) **अलवण जल पारितंत्र**–झील, ताल, अनूप (swamps) कुंड (pools) सरिताएं (streams) और नदियां (2) **समुद्री पारितंत्र**–उथले समुद्र और खुले महासागर (3) **खारा जल पारितंत्र**–ज्वारनदमुख, लवणकच्छ, (marshes) मेंग्रोव अनूपें (mangrove swamps) और वन।

8.2.1 जलीय जीवों का वर्गीकरण

प्रस्तुत खण्ड में विभिन्न जलीय पारितन्त्रों में पायी जाने वाली जीवजातियों की विविधता के छोटे से नमूने का उदाहरणों सहित वर्णन किया जाएगा। जलाचारी जीवों की मुख्य विभक्तियां इस आधार पर की जाती हैं कि वे जलाशय के किस अनुक्षेत्र में रहते हैं और उनमें एक क्षेत्र को पार कर दूसरे में जाने की कितनी क्षमता है।

सामान्य प्रकार के जलीय पारितंत्रों की चर्चा के बाद आइए अब हम जलीय जीवों के पारिस्थितिकीय वर्गीकरण का संक्षेप में अध्ययन करें।

जलीय पारितंत्र में जीव असामान्य रूप से वितरित हैं लेकिन उनके जीवन रूप के या स्थिति के आधार पर उन्हें पांच समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। चित्र 8.1 में जलीय जीवों के पांच समूह दिखाए गए हैं:

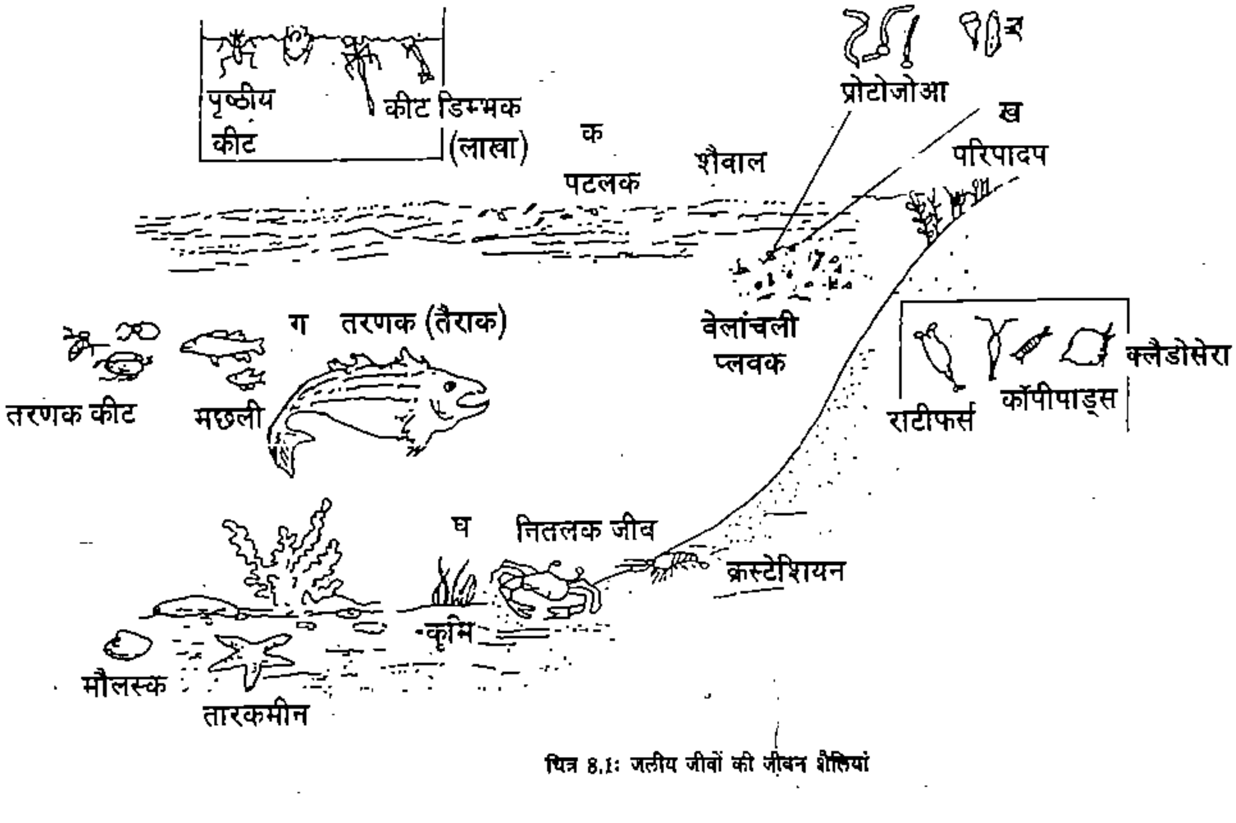

चित्र 8.1: जलीय जीवों की जीवन शैलियां

I. **पटलक** (Neuston) : वे असंलग्न जीव हैं जो वायु-जल अंतरापृष्ठ (inter-face) पर रहते है जैसे कि प्लवमान (floating) पौधों और कई प्रकार के प्राणियों को (देखिए चित्र 8.1)। कुछ अपना अधिकांश जीवन वायु-जल अंतरापृष्ठ की चोटी पर बिताते हैं। जैसे कि जल द्रुतकग (striders) जबकि दूसरे अपना अधिकांश समय वायु-जल अंतरापृष्ठ के एकदम नीचे बिताते हैं और अपना अधिकतर खाना पानी में से प्राप्त करते हैं उदाहरणार्थ, भृंग (beetles) और पृष्ठ तरणक (back swimmers)।

II. **परिपादप (Periphyton)** : ये ऐसे जीव हैं जो तली पंक के ऊपर निकले पदार्थों या जड़ जमाए पौधों के तनों और पत्तियों पर संलग्न या चिपके रहते हैं (देखिए चित्र 8.1)। आम तौर पर स्थानबद्ध (sessile) शैवाल (algae) और उनके सम्बद्ध प्राणियों के समूह इस वर्ग में आते हैं।

III. **प्लवक (Plankton)** : इस वर्ग में तेजी से बहती हुई कुछ जल राशियों को छोड़कर सभी जलीय पारितंत्रों में पाए जाने वाले सूक्ष्म पौधे (पादप प्लवक) और प्राणि (प्राणिप्लवक) दोनो शामिल हैं (देखिए चित्र 8.1)। प्लवकों की चलन शक्ति सीमित है इसलिए जलीय पारितंत्रों में इनका वितरण मोटे तौर पर धाराओं द्वारा नियंत्रित रहता है। प्लवकों को दो भागों में बांटा जाता है:

1. पौधे (मुख्य रूप से शैवाल) जो **पादपप्लवक** कहलाते हैं, और

2. प्राणि (मुख्य रूप से क्रस्टेशियाई और प्रोटोजोआ) जो **प्राणिप्लवक** के रूप मे जाने जाते हैं।

लेकिन अधिकतर पादपप्लवकों और प्राणिप्लवकों में कम से कम थोड़ी-सी गति कर सकने की क्षमता होती है। कुछ प्राणिप्लवकों की छोटी साइज को देखते हुए कह सकते हैं, कि वे अत्यधिक सक्रिय हैं और अपेक्षाकृत लम्बी दूरियां तय कर लेते हैं लेकिन वे इतने छोटे हैं कि उनकी परास अभी भी मोटे तौर पर धाराओं से नियंत्रित की जाती है।

IV. **तरणक** (Nekton): इस वर्ग में वे प्राणि आते हैं जो तैराक हैं। तरणकों को जल धाराओं पर विजय पानी होती है इसीलिए वे अपेक्षाकृत बड़े होते हैं (देखिए चित्र 8.1)। इन प्राणियों की साइज तरणक कीटों जो मात्र 2 मिमी लम्बे हो सकते हैं, से लेकर पृथ्वी पर रहने वाले सबसे बड़े प्राणियों तक हो सकती है जैसे कि नीली व्हेल।

V. **नितलक** (Benthos): नितलक या नितलस्थ जीव (benthic organism) वे प्राणी हैं जो जलराशि की तली या नितलस्थ क्षेत्र में या उस पर पाए जाते हैं (देखिए चित्र 8.1)। इनमें पर्यावरण के प्रति पर्याप्त अनुकूलन होता है। इसका कारण यह है कि खुले जल अथवा सतह (पृष्ठ) की अपेक्षा तली अधिक विविध (heterogeneous) आवास है और यह विविधता जीवों में प्रतिबिंबित होती है। व्यावहारिक रूप से प्रत्येक पारितंत्र में सुविकसित नितलक होते हैं। नितलस्थ समुदाय में जीवों का अनुकूलन तली के संघटक, इसके स्थायित्व या स्थान बदलने की प्रवृत्ति और इसकी गहराई प्रतिबिंबित करती है।

फिर भी, आपको ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक तंत्र के कुछ अनन्य अभिलक्षण हैं। सभी जलीय पारितंत्रों में पानी और इसी तरह के सीमाकारी कारकों और जीवन रूपों जैसे एक जैसे कारक के बावजूद तीन प्रकार के जलीय पारितंत्र अर्थात् अलवण जलीय, समुद्री एवं ज्वारनदमुख पहचाने जा सकते हैं। सभी जलीय पारितंत्र आमाप, गहराई, प्रकाश वेधन (penetration) की प्रवणता (gradient), तापमान, घुली हुई ऑक्सीजन आदि में भिन्न-भिन्न होते हैं। ये सभी एक विशेष प्रकार के पर्यावरण और जीवजात के लिए तथा इसीलिए एक विशिष्ट प्रकार के पारितंत्र के लिए उत्तरदायी हैं।

8.2.2 जलीय आवासों की उपादेयता को सीमित करने वाले कारक

धूप और ऑक्सीजन जलीय पारितंत्रों के दो सबसे अधिक महत्वपूर्ण सीमाकारी कारक हैं। यह लक्षण इन तंत्रों को स्थलीय पारितंत्रों से अलग करता है जहाँ कि नमी और तापमान मुख्य सीमाकारी कारक हैं। अब हम जलीय पारितंत्रों की उत्पादकता पर नियंत्रणकारी प्रभाव डालने वाले कुछ महत्वपूर्ण सीमाकारी कारकों की चर्चा करेंगे, जैसे कि धूप, पारदर्शिता (transparency), तापमान और ऑक्सीजन।

I. धूप

जल स्तंभ से नीचे की ओर गुजरते हुए प्रकाश के तेजी से कम होते जाने के फलस्वरूप धूप, जल राशियों के लिए एक प्रमुख सीमाकारी कारक है। जलीय पारितंत्र की अपनी परतें जिन तक प्रकाश घुस पाता है और जिनके भीतर तक प्रकाश संश्लेपण मंडल की गहराई पानी की पारदर्शिता पर निर्भर करती है।

II. पारदर्शिता

जैसा कि आप जानते हैं, पारदर्शिता प्रकाश के घुस सकने की पहुँच को प्रभावित करती है। यह अप्रत्यक्ष रूप

से पंकिलता या आविलता (turbidity) से संबंधित है। चिकनी मिट्टी, गाद (सिल्ट) और पादपप्लवक जैसे निलम्बित कणिकीय (particulate) पदार्थ पानी को पंकिल या आविल बना देते हैं जिसके फलस्वरूप प्रकाश घुसने की दूरी सीमित बना देते हैं और इस प्रकार प्रकाश संश्लेषी गतिविधि को महत्वपूर्ण तरीके से सीमित कर देते हैं।

III. तापमान

आप जानते ही हैं कि हवा के तापमान की अपेक्षा पानी का तापमान कम तेजी से बदलता है क्योंकि हवा की अपेक्षा पानी की विशिष्ट ऊष्मा यथेष्ट रूप से ऊच्च होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि पानी का तापमान बढ़ाने या कम करने के लिए पानी में ऊष्मा ऊर्जा की बड़ी मात्रा डाली जाए या उसमें से निकाली जाए। पानी के तापमान में परिवर्तन कम होने के कारण जलीय जीवों में तापमान के प्रति सहनशीलता कम होती है। फलस्वरूप जल तापमानों में छोटे परिवर्तनों से भी जलीय जीवों के जीवित बने रहने के लिए भारी खतरा हो जाता है जबकि स्थलीय जीवों को हवा के तापमानों में होने वाले परिवर्तनों से ऐसा खतरा नहीं होता।

IV. घुली हुई ऑक्सीजन

स्थलीय पारितंत्रों में ऑक्सीजन वायुमंडल में दूसरी गैसों के समानुरूप एक निश्चित सांद्रता (concentration) में पाई जाती है लेकिन जलीय पारितंत्रों में यह पानी में घुली हुई होती है, जहाँ इसकी सांद्रता लगातार बदलती रहती है। यह परिवर्तन पानी में ऑक्सीजन की आगत और निर्गत को प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करता है। अलवण जल में घुली हुई ऑक्सीजन की औसत सांद्रता भार की 0.001 प्रतिशत है (10 भाग प्रति दस लाख अथवा 10 ppm के रूप में व्यक्त की जाती है), जो कि वायु के समतुल्य आयतन में ऑक्सीजन की सांद्रता से 150 गुना कम है।

पानी में ऑक्सीजन घुले हुए रूप में मिलती है। जलीय पारितंत्रों में यह वायु जल अंतरापृष्ठ (interface) के माध्यम से और जलीय पौधों की प्रकाश संश्लेषी सक्रियता द्वारा घुसती है। इसलिए, पारितंत्र में मौजूद घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा ये दो प्रक्रम जिस दर पर होते हैं उस पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, जल-प्रपातों (झरनों) में होने वाला प्रक्षोभ (turbulance) और खुले पानी में होने वाली तरंग सक्रियता हवा से पानी में होने वाले ऑक्सीजन विनिमय की दर को बढ़ा देती है। बशर्ते कि पानी पहले से ही ऑक्सीजन से संतृप्त (saturated) न हो)। ऑक्सीजन का स्थानांतर जलमार्ग के सतह क्षेत्र से भी प्रभावित होता है। नदी के संकरे गहरे टुकड़े की बजाय चौड़े उथले भाग में ऑक्सीजन स्थानांतण का सतह क्षेत्र अधिक बड़ा होता है। इसके अलावा, प्रकाश संश्लेषण के कारण प्रति इकाई क्षेत्रफल पैदा होने वाली ऑक्सीजन की मात्रा पानी में मौजूद जलीय पौधों के घनत्व के समानुपाती है।

पानी में घुली हुई ऑक्सीजन वायु-जल अंतरापृष्ठ से और जीवों (मछली, अपघटकों (decomposers), प्राणिप्लवकों आदि) के श्वसन से बाहर निकलती है। पानी में बची रहने वाली ऑक्सीजन भी तापमान से प्रभावित होती है, क्योंकि उष्ण पानी में ऑक्सीजन कम घुलती है। उष्ण जल अपघटनकारी जीवों की सक्रियता भी बढ़ा देता है। इसलिए किसी जलराशि का तापमान बढ़ा देने से पानी से ऑक्सीजन के अपक्षय (depletion) होने की दर बढ़ जाती है।

कुछ दृष्टांतों में, अपघटकों की बड़ी संख्या श्वसन द्वारा पृष्ठ जल (जैसे कि झीलों, सरिताओं और नदियों के पानी) में घुली हुई लगभग सारी ऑक्सीजन को हटा देती है। ऐसी स्थितियों की संभावना गर्मियों के पिछले भाग के दौरान अधिक होती है, जब धारा का हल्का बहाव और उच्च जल तापमान घुली हुई ऑक्सीजन के स्तर को और भी कम कर देता है। जब घुली हुई ऑक्सीजन का स्तर 3-5 ppm से नीचे गिर जाता है तब बहुत से जलीय जीवों के मर जाने की संभावना भी पैदा हो जाती है।

यहाँ जिन सीमाकारी कारकों की चर्चा की गई है, वे सामान्य तौर पर सभी जलीय पारितंत्रों—झीलों, तालाबों, नदियों, सरिताओं, ज्वारनदमुखों, महासागरों और समुद्रों पर लागू होते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) नीचे दिए गए वाक्य सही हैं या गलत, बताइए :

क) जलीय पारितंत्रों में तापमान के परिवर्तन बहुत तेज नहीं होते हैं। स्थलीय पारितंत्रों में ऐसा नहीं है।

ख) जलीय पारितंत्र में रहने वाले जीव तापमान में होने वाले भारी परिवर्तन के प्रति अनुकूलित नहीं हैं।

ग) जलीय पारितंत्रों में ऑक्सीजन घुले हुए रूप में होती है।

घ) जलीय पारितंत्रों में प्रकाश एक मुख्य सीमाकारी कारक है।

2) कॉलम "क" में जलीय जीवों के वर्गों को परिभाषित करने के लिए काम में लाए गए शब्दों को कॉलम "ख" में दी गई उन समूहों की परिभाषाओं से मिलान कीजिए।

कॉलम क	कॉलम ख
क) पटलक (न्यूस्टॉन)	क) पौधों और प्राणियों का समूह, जो जलीय पारितंत्र की तली में या तली पर पाए जाते हैं।
ख) तरणक (नेक्टॉन)	ख) पौधे या प्राणि, पंक से ऊपर-ऊपर जलीय पौधों से चिपके रहते हैं।
ग) नितलक (वेन्थॉस)	ग) सूक्ष्म आकार के प्राणि और पौधे, जो जलीय पारितन्त्रों जैसे कि समुद्र, नदियों, तालावों और झीलों में प्लवन (float) करते रहते हैं। यह जीव स्वतंत्र रूप से गति कर सकने में असमर्थ हैं और गति के लिए जल धाराओं पर निर्भर हैं।
घ) प्लवक	घ) जलीय प्राणी जो कुशलता से तैरते हैं और पानी की धाराओं पर काबू पाने में समर्थ हैं।
च) परिपादप ___	च) पानी की पृष्ठ फिल्म में पाये जाने वाले जीव।

8.2.3 अलवण जलीय पारितंत्रों का वर्गीकरण

अलवण जल पारितंत्र कार्बनिक (organic) और अकार्बनिक (inorganic) पदार्थों की आमद के लिए स्थलीय पारितंत्रों पर निर्भर करते हैं। यह पदार्थ जलीय पारितंत्रों के पास की ज़मीन पर पनप रहे समुदायों द्वारा इन पारितंत्रों में लगातार डाले जाते हैं।

अलवण जल पारितंत्रों को दो भागों **सरो** एवं **सरित** पारितन्त्रों में बाँटा जा सकता है :

1) सरो (lentic) ("लेनिस" शब्द से बना है, जिसका अर्थ है शांत) या स्थिर या फ़िर बेसिन श्रेणी पारितंत्र। झीलें, तालाब, कुंड, अनूप, कच्छ आदि इस भाग के उदाहरण हैं।

2) सरित (lotic) ("लोटूस" शब्द से बना है, जिसका अर्थ है बहाकर ले जाया गया) या बहते हुए या प्रणाल (चैनल) श्रेणी पारितंत्र। नदियाँ, सरिताएँ, सोते आदि इस भाग के उदाहरण हैं।

इन दोनों पारितंत्रों का नीचे विस्तार से वर्णन किया गया है। देखिए खंड 8.3 व 8.4।

8.3 सरो पारितंत्र (Lentic Ecosystems)

झीलें उन अंतःस्थलीय गर्तों यानी गड्ढ़ों को कहते हैं जिनमें ठहरा हुआ पानी भरा रहता है। क्षेत्रफल और गहराई में झीलों में बहुत विभिन्नता है। उत्तरी अमरीका में सुपीरियर नाम की झील दुनिया की सबसे बड़ी झील है। इसका पृष्ठ (सतह) क्षेत्रफल 83,000 वर्ग किलोमीटर है और गहराई 307 मीटर (5,000 फीट) है। दुनिया की सबसे गहरी झील साइबेरिया में स्थित बैकल झील है, जिसका क्षेत्रफल 31,500 वर्ग किलोमीटर है जो कि सुपीरियर झील के क्षेत्रफल की तुलना में आधे से भी कम है लेकिन गहराई की दृष्टि से उस झील से दुगने से भी अधिक (706 मीटर) है।

पृथ्वी की अलवण झीलों में 125×10^3 कि.मी^{3}. पानी भरा हुआ है और अंतर्वाह (inflow) तथा बहिर्वाह (outflow) भी होता रहता है। इसके अतिरिक्त उनकी परिसीमाओं के भीतर ही परिसंचरण के विभिन्न प्रतिरूप भी होते हैं और इसलिए इनका पानी पूरी तरह से स्थिर नहीं है। फिर भी, इनमें नदियों की तरह सतत या लगातार रेखीय या प्रक्षोभी (turbulent) बहाव नहीं होता।

8.3.1 झीलें, रुद्धजलागार और गीली भूमियाँ

सरो पारितन्त्रों में झीलें, रुद्धजलागार एवं गीली भूमियाँ तीनों प्रकार के पारितन्त्र आ जाते हैं। आइये देखें ये एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं।

झीलें

अधिकांश झीलें वहाँ पाई जाती हैं जहाँ हाल ही में भूमि के स्वरूप में (geological) परिवर्तन हुए हैं; पिछले 20,000 वर्षों के भीतर हुए परिवर्तन इस श्रेणी में आते हैं। फिर भी, रूस में बैकल और अफ्रीका में तंगन्यानितिया (Tanganyanitia) जैसी कुछ झीलों के बारे में अनुमान लगाया गया है कि ये 2 करोड़ साल पहले बनी थीं।

झीलें कई तरह से बनती हैं। कुछ झीलें पृथ्वी की पपड़ी के आवलन (warping) और भ्रंशन (faulting) जैसी भूविज्ञानीय गतिविधियों से बने बेसिनों में बन जाती हैं। विवर्तनिक (tectonic) झीलें इसकी उदाहरण हैं। हिमालय की अधिकतर झीलें विवर्तनिक तरीके से बनी हैं। कुछ विलुप्त ज्वालामुखियों के क्रेटर गर्तों (depressions) में बनी हैं और क्रेटर झील कहलाती हैं। कश्मीर में कौन्शरनाग झील इसका उदाहरण है। कुछ झीलें हिमानी (glacial) सक्रियता के फलस्वरूप बनती हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी अमरीका की अधिकतर झीलें हिमानी अपरदन (erosion) और निक्षेपण (deposition) के कारण अस्तित्व में आईं। इस क्रिया में ऊँचे पहाड़ों में ढलानों के हिमानी अपघर्षण (abrasion) से बेसिन खुद गए जो बाद में पिघलती हुई बर्फ और बारिश से भर गए। कुछ और भी झीलें होती हैं जो धीमी गति से बहने वाली सरिताओं के तल में गाद के निक्षेपण, अपवाहित (drift) लकड़ी और दूसरे मलबे से बनी हैं। भूस्खलन से सरिताओं और घाटियों के अवरुद्ध हो जाने से भी झीलें बन सकती हैं।

आपको इस बात का पता होना चाहिए कि झीलें पृथ्वी पर समान रूप से बँटी हुई नहीं हैं बल्कि कुछ क्षेत्रों में सामूहिक रूप से पाई जाती हैं। इन क्षेत्रों को "झील ज़िले" कहते हैं। फिर भी किसी एक क्षेत्र में सभी प्राकृतिक झीलों का समान पारिस्थितिकीय स्रोत और समान अभिलक्षण हैं हालांकि यह संभव है कि उत्पत्ति के समय झीलों की विविध गहराइयों के कारण वे अनुक्रमण (succession) की अनेक अवस्थाओं का निरुपण करती हैं।

रुद्धजलागार (Impoundments)

अभी तक हमने प्राकृतिक झीलों की चर्चा की है। इनके अलावा, मनुष्य द्वारा कृत्रिम रूप से बनाई गई छोटी और बड़ी, दोनों ही प्रकार की अनेक झीलें हैं जो जलाशय या रुद्धजलागार कहलाती हैं (चित्र 8.2)। ये विशेष प्रकार की जरूरतों को पूरा करने के लिए बनाई जाती हैं। जल-विद्युत शक्ति पैदा करना, मछली, पालन, पानी की सप्लाई, सिंचाई, उद्योगों के लिए पानी, मनोरंजन, बाढ़ का नियंत्रण आदि कुछ ऐसी ही जरूरतें हैं।

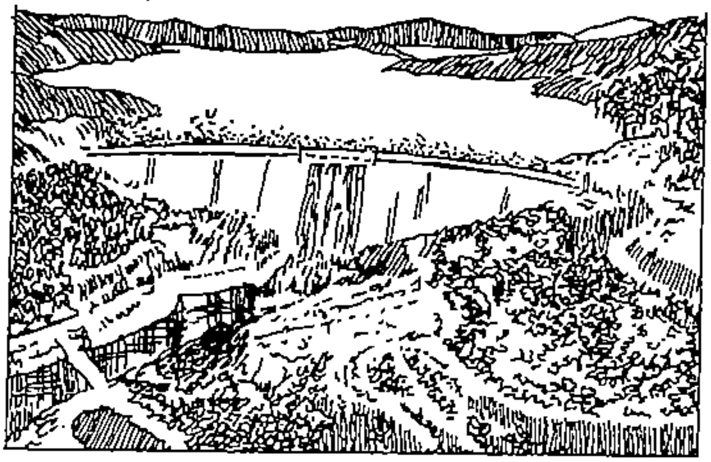

चित्र 8.2 : शास्त्री झील के पीछे बनाया गया एक जलाशय, जो रुद्धजलागार से पानी निकालने के दो संभावित साधनों को दर्शाता है।

रुद्धजलागारों की उत्पत्ति के आधार पर उन्हें ऑफस्टेम (offstem) या ऑनस्टेम (onstem) कहा जाता है। ऑनस्टेम जलाशय उच्च भूमि (upland) क्षेत्रों में स्थित हैं और किसी उपयुक्त नदी घाटी में नदी या नाले के रास्ते पर बाँध बनाकर बनाए जाते हैं। भारत में केवल ऑनस्टेम रुद्धजलागार ही पाए जाते हैं। ऑफस्टेम जलाशय किसी नदी से या भूमिगत स्रोत से कुछ दूर तक पानी को पम्प करके निम्न भूमि (low land) वाले क्षेत्रों में बनाए हुए जलाशयों को कहते हैं।

गीली भूमियाँ

गीली भूमियाँ स्थायी रूप से या समय-समय पर पानी से ढके रहने वाले क्षेत्र हैं। इन्हें छह मीटर की गहराई तक कृत्रिम रूप से या प्राकृतिक रूप से, समय-समय पर या स्थायी रूप से पानी से निमग्न (submerged) या संतृप्त (saturated) भूमियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह पानी खारा या नमकीन हो सकता है।

इन गीली भूमियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

अंतःस्थलीय गीली भूमियाँ : जोकि अंतःस्थलीय अर्थात् समुद्र से दूर स्थित होतीं हैं और जिनमें अलवणजल भरा रहता है जैसे कि दलदल (bogs), अनूप आदि।

तटीय गीली भूमियाँ : ये तट के पास होती हैं और इनमें लवण जल या खारा पानी भरा रहता है, जैसे कि मैंग्रोव, अनूप, मैंग्रोव वन। इनके बारे में आप भाग 8.6 में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

8.3.2 झील पारितंत्रों के अभिलक्षण

झीलों और तालाबों के स्थिर जल का पर्यावरण सरित पारितंत्रों से एकदम अलग है। झीलों में प्रकाश का वेधन (penetration) आम तौर पर एक गहराई तक ही होता है। आप जानते ही हैं कि यह वेधन आविलता (turbidity) से प्रभावित होता है। तापमान और घुली हुई ऑक्सीजन भी गहराई के साथ-साथ बदलती रहती है। सरितजीवी तंत्र की तुलना में रुके हुए पानी में घुली हुई ऑक्सीजन आम तौर पर कम होती है। इसका कारण यह है कि मुख्य जलराशि की अपेक्षाकृत छोटी सी सतह का ही हवा से सीधा संपर्क होता है। कार्बनिक पदार्थों का अपघटन प्रायः झील की तली पर होता है। ऑक्सीजन की मात्रा गहराई के साथ-साथ घटती जाती है। तापमान, धूप और ऑक्सीजन की विभिन्न श्रेणियाँ झील में होने वाली **उदग्र अनुक्षेत्र वर्गीकरण** (vertical zonation) या स्तरण (stratification) के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हैं। वे अप्रत्यक्ष रूप से झीलों के **क्षैतिज अनुक्षेत्र वर्गीकरण** (horizontal zonation) के लिए भी उत्तरदायी है क्योंकि ये झील में उपस्थित मुख्य जीवों के वितरण को बहुत ही ज्यादा प्रभावित करते हैं।

क) तापीय स्तरण

उथली झीलें कोई तापीय स्तरण नहीं दर्शातीं। इसका कारण यह है कि उनका पानी अच्छी तरह मिश्रित होता रहता है जिसकी वजह से सब जगह तापमान एक-समान रहता है। लेकिन 15 मीटर से अधिक गहराई वाली झीलों में तापमान स्तरण खासा सुनिश्चित बन जाता है।

क) **ग्रीष्म स्तरण (Summer Stratification)** : शीतोष्ण (temperate) प्रदेशों की अधिकतर झीलों में ग्रीष्म ऋतु के दौरान तापीय स्तरण खासा सुस्पष्ट है। उष्णकटिबन्धीय (tropical) और उपोष्ण कटिबंधीय (subtropical) प्रदेशों में यह स्तरण विरल है। वहाँ यह स्तरण केवल बहुत गहरी झीलों में पाया जाता है। ऐसा उष्णकटिबंधीय झीलों में परतों के मिश्रित होने की दर बहुत तेज होने के कारण है। इसके विपरीत, शीतोष्ण झीलें सुपरिभाषित परतों को बरकरार रखती हैं। ये परतें जल्दी से मिश्रित नहीं होतीं इसलिए ये झीलें तापमान की दृष्टि से स्पष्ट स्तरण दर्शाती हैं।

आइए हम यह जान लें कि जलराशियों में तापीय स्तरण किस प्रकार होता है और ग्रीष्म ऋतुओं के दौरान यह परिघटना क्यों होता है। झीलों में ऊपर की एक मीटर की पानी की सतह इस पर पड़ने वाले कुल सौर विकिरण (solar radiation) का लगभग 90 प्रतिशत सीधे ही अवशोषित कर लेती है यानी सोख लेती है और इस प्रक्रिया में यह सतह पर्याप्त रूप से गरम हो जाती है। इसके फलस्वरूप नीचे वाली उप-पृष्ठ परतों को क्रमशः कम विकिरण मिलता है और यह सतह अपेक्षाकृत ठंडी रहती है। इस प्रकार, झील तापीय रूप से स्तरित हो जाती है। तापमान के अंतर अथवा तापीय प्रवणों (thermal gradients) के कारण इसके पानी में परतें बन जाती हैं।

तापीय स्तरण ग्रीष्म ऋतु में अधिकतया होता है। इसके दो मुख्य कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि इस अवधि में सौर तीव्रता बढ़ जाती है और इससे पृष्ठ परत बहुत ज्यादा गर्म हो जाती है, जबकि नीचे की परतें अपेक्षाकृत ठंडी बनी रहती हैं। दूसरा कारण यह है कि तापीय रूप से स्तरित परतें हवा द्वारा मिश्रित होने का प्रतिरोध करती हैं। गर्मियों में विकसित झीलों का काफी सुस्पष्ट स्तरण ग्रीष्म स्तरण या प्रगतिरोध (stagnation) कहलाता है। इसके परिणामस्वरूप (चित्र 8.3) बनने वाली विभिन्न स्तरीय परतों को निम्न प्रकार से (चित्र 8.3 क, ख) चित्रित किया जा सकता है।

चित्र 8.3 में शीतोष्ण झील में तापमान और ऑक्सीजन का ऋतनिष्ठ (मौसमी) स्तरण और जलीय जीवन का वितरण भी दिखाया गया है। झील में तापमान और ऑक्सीजन का वितरण दूसरे जलीय जीवों के वितरण पर भी प्रभाव डालता है। संकरी मछली वाली रूपरेखा ठंडे पानी की जाति-ट्राउट-को दर्शाती है। चौड़ी रूपरेखा कोष्ण जलीय जातियों को दर्शाती है, जैसे कि बास मछली।

क) में ग्रीष्म स्तरण के कारण बनने वाली तीन सुस्पष्ट परतें दिखाई गई हैं। ये परतें हैं : अधिसर (epilimnion), मध्यसर (metalimnion) तापप्रवणस्तर (thermocline) और अधःसर (hypolimnion)।

ख) में जाड़ों में ऋतुनिष्ठ स्तरण दिखाया गया है।

ग) और घ) में क्रमशः उस समय का वसंत और शरद् पर्यास (overturns) दिखाया गया है जब स्तरण नष्ट हो जाता है और मछलियाँ लगभग सभी गहराइयों में बराबर रुप से वितरित मिलती हैं।

(i) **अधिसर :** यह झील की ऊपरी परत है जिसका पानी कोष्ण (गुनगुना) होता है और मुक्त रूप से परिसंचारित होता रहता है। इस परत में प्रकाश काफी रहता है लेकिन पोषकों की कमी रहती है। अधिसर में पौधे प्रकाश संश्लेषी ऑक्सीजन पैदा करते हैं और हवा से पानी मिश्रित होता रहता है। इन दो कारणों से अधिसर अच्छी तरह से वातित (aerated) होता है और अधिकांश पादपप्लवक इसमें पनपते हैं।

(ii) **मध्यसर :** यह क्षेत्र अधिसर के नीचे और अधःसर के ऊपर यानी इन दोनों के बीच में स्थित है। बीच की यह परत असंचारी है। गहराई बढ़ने के साथ-साथ मध्यसर में पानी का तापमान अत्यधिक और तेजी से गिरता है। यही इस परत का लक्षण है। मध्यसर के अंदर ही "तापप्रवण" स्तर होता है। यही वह तल है, जहाँ तापमान सबसे तेजी से गिरता है। गहराई के हर मीटर पर कम से कम एक सेल्शियस गिरता है।

(iii) **अधःसर :** यह तली परत वाला क्षेत्र है, जो गहरा, ठंडा और परिसंचरण रहित है। अधःसर आम तौर पर पोषकों से भरपूर होता है, जबकि इसमें ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है। इस कमी का कारण यह है कि अपघटन प्रक्रम (decomposition process) में ऑक्सीजन काम आ जाती है। आप जानते हैं कि अपघटन प्रायः यहीं होता है और उसमें ऑक्सीजन काम आती है। यहाँ तापमान धीरे-धीरे गिरता है।

कुछ शीतोष्ण झीलों का स्तरण ग्रीष्म ऋतु तक ही सीमित नहीं है। इनमें सर्दियों में भी स्तरण होता है, जो शीत स्तरण या प्रगतिरोध (stagnation) कहलाता है। (चित्र 8.3 क, ख)

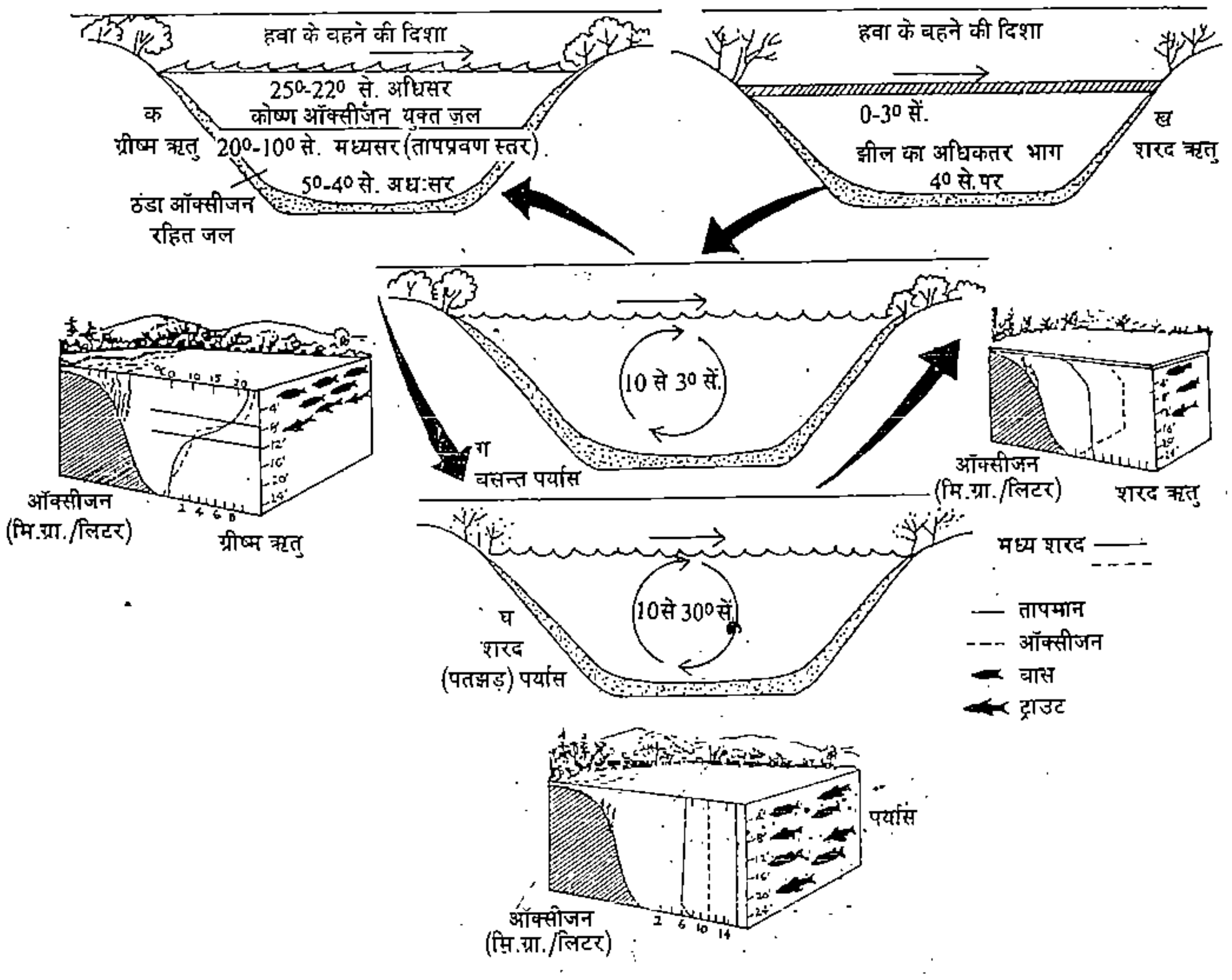

चित्र 8.3 : झीलों में तापीय स्तरण

ख) **शीत स्तरण (Winter Stratification) :** चरम सर्दी के दौरान झील की पृष्ठ परत जम जाती है या उसका तापमान 0° सेल्शियस के नज़दीक पहुँच जाता है। इन परिस्थितियों में व्युत्क्रम (inverse) स्तरण हो जाता है। बर्फ के नीचे का पानी बर्फ में ही गुजर कर आने वाले विकिरण (radiation) को सोख लेता है और इसलिए अपेक्षाकृत कोष्ण रहता है। इस कोष्ण जल का तापमान जब 4° से. पर पहुँच जाता है तो यह घना हो जाता है और इसके फलस्वरूप अधिक भारी होकर यह तली में बैठ जाता है, जहाँ यह झील के तली वाले पानी से मिश्रित हो जाता है। यह पानी तली के पंक (कीचड़) से संवहित ऊष्मा से कोष्ण हो जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि तल का तापमान उच्चतर हो जाता है हालांकि कुल मिलाकर पानी का स्थायित्व शांत बना रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कम घना पृष्ठ जल बर्फ के रूप में या 0° से. पर कोष्ण, अधिक भारी जल की चोटी पर तैरता है। यह कोष्ण जल 4° से. के उपयुक्त तापमान पर रहता है। ये दोनों परतें स्तरित रहती हैं और शीत ऋतु में मिश्रित नहीं होतीं। इसलिए कहा जाता है कि झील में शीत प्रगतिरोध या स्तरण हो जाता है।

उलटना (Overturn) : ग्रीष्म और शीत स्तरण मौसमी परिघटनाएं हैं। झील के पानी का परिसंचरण पर्यास कहलाने वाले प्रक्रम से होता है। यह परिसंचरण साल में दो बार, वसंत और शरद् (पतझड़) ऋतुओं में होता है। जिन झीलों में स्तरण होता है, उनमें यह स्तरण बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे झील के भीतर ही ऑक्सीजन, पादपप्लवक और पोषकों का अच्छी तरह मिश्रण हो जाता है। आइए अब हम वसंत और शरद्, दोनों ही ऋतुओं के पर्यास प्रक्रम को समझें।

बसंत पर्यास : वसंत और प्रारंभिक ग्रीष्म ऋतु में बढ़े हुए सौर विकिरण से बर्फ का आवरण पिघल जाता है। जब यह आवरण 4° सेल्शियस तापमान पर पहुंच जाता है तब यह घना और भारी हो जाता है तथा नीचे वाले कोष्ण पानी को हटाते हुए, जिसे विस्थापित करना कहते हैं, तली में बैठ जाता है या डूब जाता है। इससे नीचे वाला पानी ऊपर उठ जाता है। उस समय चलने वाली ग्रीष्म पवनें पानी के इस परिसंचरण में और भी मदद करती हैं और यह वसंत पर्यास कहलाता है (चित्र 8.3 ग, घ)।

शरद् (पतझड़) पर्यास : शरद् या आरंभिक शीत ऋतु में हवा का तापमान गिर जाता है। इसके फलस्वरूप पृष्ठ जल ठंडा हो जाता है। जब पृष्ठ जल 4° से. तक ठंडा हो जाता है तो यह घना तथा भारी हो जाता है और तली के कोष्ण जल को विस्थापित करते हुए तली में बैठ जाता है। तली का पानी पृष्ठ या सतह पर उठ जाता है। तेज शीत पवनों से पृष्ठ और तल की परतों का यह मिश्रण और सुगमतापूर्वक होने लगता है। इसे पतझड़ पर्यास कहते हैं (चित्र 8.3 ग और घ)।

ख) **प्रकाश स्तरण**

जैसा कि पहले ही पढ़ चुके हैं, जलराशियों में रोशनी का वेधन सीमित है। यह पानी की पारदर्शिता और प्रकाश को सोखने की इसकी क्षमता पर निर्भर है। प्रकाश वेधन के आधार पर झीलें उदग्र रूप से दो मूलभूत परतों में स्तरित हो जाती हैं (1) ऊपरी पोषजन क्षेत्र (trophogenic zone)। यह मोटे तौर पर प्रकाश (photic) क्षेत्र के अनुरूप या संगत है, जिसके बारे में आप भाग 8.2.1 में पढ़ चुके हैं, जिसमें प्रकाश संश्लेषण प्रमुख है। निचले परत (2) पोषलयी क्षेत्र (tropholytic zone) जहां अपघटन सबसे ज्यादा सक्रिय है और जो अप्रकाशी क्षेत्र (aphotic zone) के संगत है (चित्र 8.3)।

इन दो क्षेत्रों के बीच **क्षतिपूर्ति गहराई** है–गहराई जिस तक प्रकाश तीव्रता इतनी है कि जहां ऑकसीजन का प्रकाश संश्लेषी उत्पादन इतना भर होता है कि जल में उपस्थित सभी जीवधारियों की श्वसन (respiratory) हानियों को संतुलित कर सके। इस गहराई से परे प्रकाश वेधन इतना कम है कि यह प्रभावी नहीं रहता। आम तौर पर क्षतिपूर्ति गहराई वहाँ होती है, जहाँ प्रकाश तीव्रता लगभग 100 फुट कैन्डल है या पृष्ठ (surface) पर भरी दोपहरी में आपतित (incident) धूप का लगभग एक प्रतिशत है।

ग) **ऑक्सीजन स्तरण**

अधिकतर झीलों में ऑक्सीजन स्तरण ग्रीष्म ऋतु के दौरान तापक्रम के लगभग समानांतर है (चित्र 8.3 क) सभी सतहों पर ऑक्सीजन की मात्रा सबसे ज्यादा है और गहराई के साथ-साथ यह मात्रा कम होती जाती है। दो मुख्य कारणों से सतह परत पर अधिकतम ऑक्सीजन मात्रा होती है। पहला कारण तो यह है कि अच्छी तरह से प्रकाश युक्त होने से यहाँ अधिकतम प्रकाश संश्लेषी ऑक्सीजन पैदा होती है। दूसरा कारण यह है कि इस सतह परत का वायुमंडल से नज़दीकी संपर्क होता है जिससे वायु से इसमें ऑक्सीजन का मुक्त विसरण (free diffusion) होता है। सतह जल के नीचे वाली परतों में ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है क्योंकि ऑक्सीज़न के दोनों ही स्रोत विलुप्त हो जाते हैं। तली पर ऑक्सीजन की मात्रा और भी घट जाती है, क्योंकि वहां पर रहने वाले अपघटकों द्वारा ऑक्सीजन काम में ले ली जाती है।

8.3.3 झीलों के जीवजात

झीलें जीवन के उत्कृष्ट क्षेत्रों को दर्शाती हैं। अभी तक आप झीलों के उदग्र अनुक्षेत्रवर्गीकरण के बारे में पढ़ते रहे हैं। झीलों को क्षैतिज क्षेत्रों में भी बाँटा जा सकता है। यह बाँटना झीलों में मौजूद जीवन रूपों पर आधारित होता है। झील में धूप का वेधन धूप की उदग्र प्रवणता, तापमान और ऑक्सीजन को प्रभावित करता है। झीलों का क्षैतिज कोटि में बाँटा जाना जलराशियों में जीवों के वितरण द्वारा प्रभावित होता है। निश्चित क्षेत्रों में पाये जाने वाले प्रमुख वर्ग चित्र 8.4 में दिखाए गए हैं। इनमें से प्रत्येक का वर्णन इस प्रकार है :

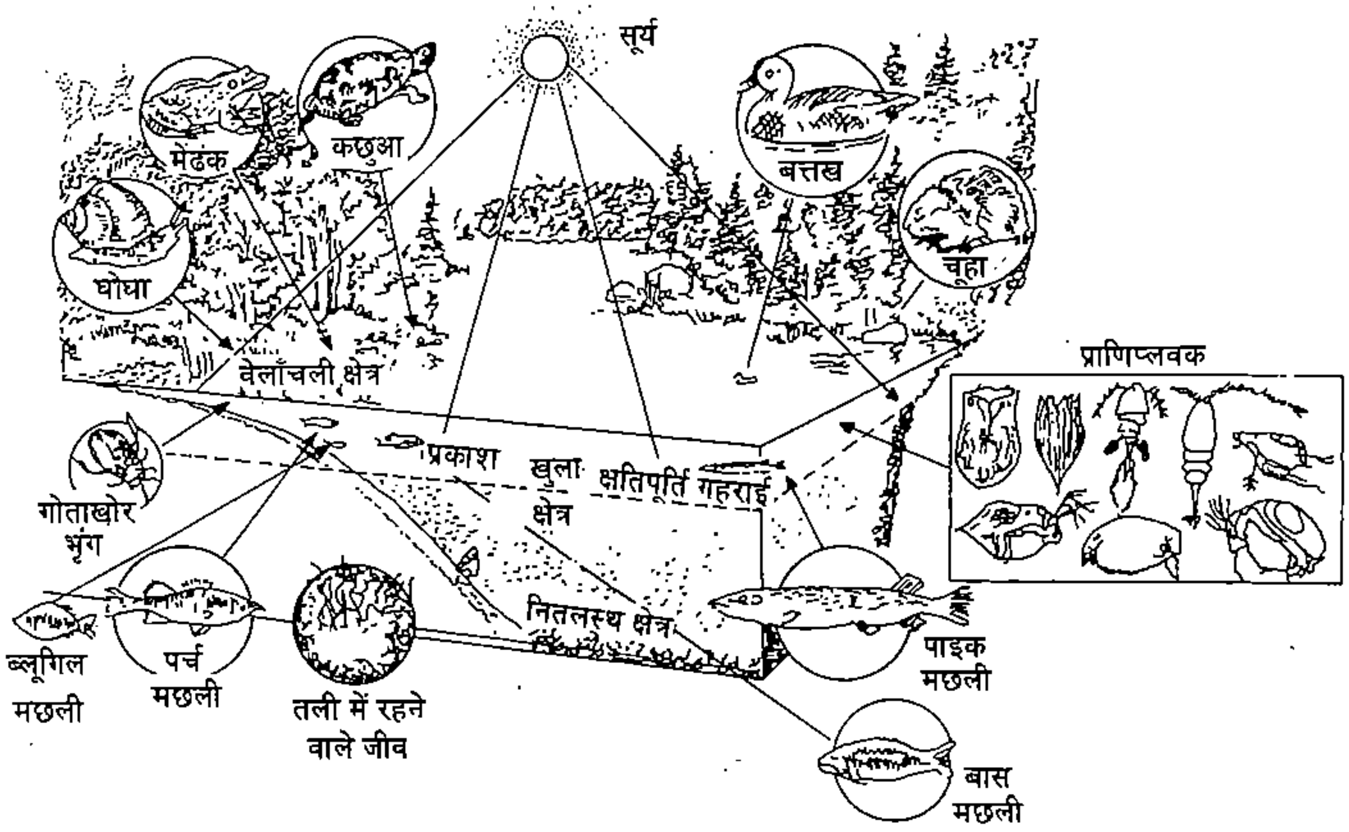

चित्र 8.4 : गर्मी में एक झील में चार मुख्य जीवन क्षेत्र जो हर क्षेत्र में प्रतिनिधि प्राणियों को दर्शाते हैं।

i) **वेलांचली क्षेत्र (Littoral Zone) :** यह तट के नज़दीक उथला जल क्षेत्र है, जहाँ प्रकाश तली तक घुसता है। जड़ जमाने वाले पौधे केवल इस क्षेत्र में उगते हैं।

ii) **खुला जल क्षेत्र :** यह वेलांचली क्षेत्र से परे तक फैला होता है। यह इतना गहरा होता है कि प्रकाश वहाँ तक नहीं घुस पाता और तली में जड़ वाले पौधे नहीं उग सकते। प्रकाश वेधन और जीवों के वितरण के आधार पर यह क्षेत्र नीचे दिए गए दो भागों में बाँटा जाता है :

क) सरोवरी क्षेत्र, जो प्रकाशी है।

ख) गंभीर क्षेत्र यानि गहरा क्षेत्र, जो अप्रकाशी है।

iii) **नितलस्थ क्षेत्र (Benthic Zone) :** यह झील का अधस्तल (फर्श) है और वेलांचली तथा सरोवरी जीव क्षेत्र के नीचे है।

आइए अब हम यह देखें कि विभिन्न क्षैतिज क्षेत्रों में पाए जाने वाले पौधों और प्राणियों को किस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है।

वेलांचली क्षेत्र के पौधे

यहाँ दो प्रकार के पौधे होते हैं :

i) बिना जड़ जमाए पादपप्लवक जिसमें वे तमाम तरह के शैवाल पाए जाते हैं, जो सरोवरों में होते हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो केवल इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं। हरे शैवाल, नीले शैवाल और डायटमों की कुछ जातियाँ पौधों की सतहों से चिपकी रहती हैं और मिलकर परिपादप (phytoplankton) कहलाती हैं। (देखिए चित्र 8.7)

ii) अधस्तल से संलग्न सभी जड़ वाले या नितलस्थ (बेन्थिक) पुष्पी पौधे जो वेलांचली क्षेत्र के भीतर संकेन्द्री क्षेत्रों में पाए जाते हैं। उथले से लेकर अधिक गहरे झील क्षेत्र में पाए जाने वाले प्रतिनिधि पादप विन्यास में, निम्नलिखित तीन उप-क्षेत्र (चित्र 8.5) शामिल हैं :

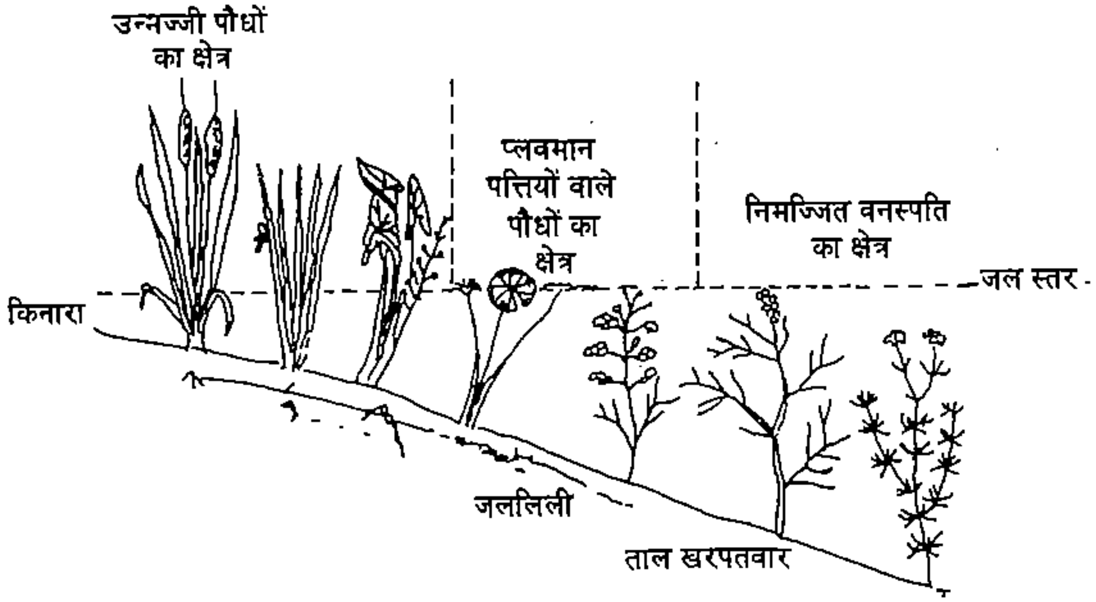

चित्र 8.5 : वेलांचली क्षेत्र के कुछ उत्पादक : स्पष्ट अनुक्षेत्र वर्गीकरण दिखाने वाले जड़ वाले पौधे

क) **उन्मज्जी (emergent) पौधों का क्षेत्र :** इस क्षेत्र में वे पौधे शामिल हैं जिनकी जड़ें और तने पानी में निमग्न (डूबे) रहते हैं और जिनकी ऊपरी पत्तियाँ और तने पानी की सतह से ऊपर निकले रहते हैं जैसे कि कैटटेल्स, एरोहैड्स आदि। इसके बाद आता है :

ख) **प्लवमान पत्तियों वाले पौधों का क्षेत्र :** इसमें वे पौधे शामिल हैं जो पारिस्थितिक रूप से पहली प्रकार के हैं, हालांकि इन पौधों का प्रकाश संश्लेषी क्षेत्र कहीं ज्यादा है। जल शील्ड और जल तिली इस क्षेत्र में भरपूर पाये जाते हैं।

ग) **निमज्जित (Submerged) वनस्पति का क्षेत्र :** इसमें वे पौधे शामिल हैं जो पूरी तरह से यहाँ जिनका अधिकांश भाग पानी में निमज्जित रहता है। इस क्षेत्र के पौधों की पत्तियाँ विभाजित हुई होती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि पानी की तेज धाराओं से पत्तियाँ फटने से बच सकें। दूसरा कारण यह भी है कि इन पौधों की जड़ें बहुत कम विकसित होती हैं और पोषकों का अधिकतम अवशोषण पत्तियाँ ही करती हैं। इस क्षेत्र में प्रायः ताल खरपतवार मुख्य हैं।

ख) वेलांचली क्षेत्र के प्राणी

इस क्षेत्र के प्राणी शाकाहारी, मांसाहारी या अपरद (deritus) भोजी हो सकते हैं। ये भी पौधों की तरह विविध हैं (चित्र 8.6)।

इनमें से अधिकतर जैसे कि रॉटीफर्स, प्रोटोजोयाई, कीट डिम्भक (insect larvae) हाइड्रा और ब्रायोजोआ आदि पटलक है क्योंकि ये अपना जीवन जड़ जमाए हुए पौधों के तने या पत्तियों से संलग्न रह कर बिताते हैं। कुछ और प्राणी जैसे कि घोंघे, चिपिटकृमि (flat worms) और कई प्रकार के कीट अर्भक (nymph) तथा डिम्भक अपना जीवन पौधों के चारों ओर घूमते हुए बिताते हैं। इस क्षेत्र के प्राणिप्लवक में वे जातियाँ भी शामिल हैं जो सरोवरी (limnetic) हैं और जो सरोवरी नहीं हैं। जो प्राणी सरोवरी नहीं हैं उसमें वे बड़े आकार के प्राणी भी शामिल हैं जो जब सक्रिय रूप से नहीं तैर रहे होते तब जड़ों वाली वनस्पति पर आराम करते हैं। यहाँ के तरणक में छोटे तैरने वाले कीट भरे रहते हैं। विशेष रूप से गोता लगाने वाले भृंग (beetles), पृष्ठ तरणक (back swimmers), जल नाविक (waterboatman) आदि। इनमें से बहुत से

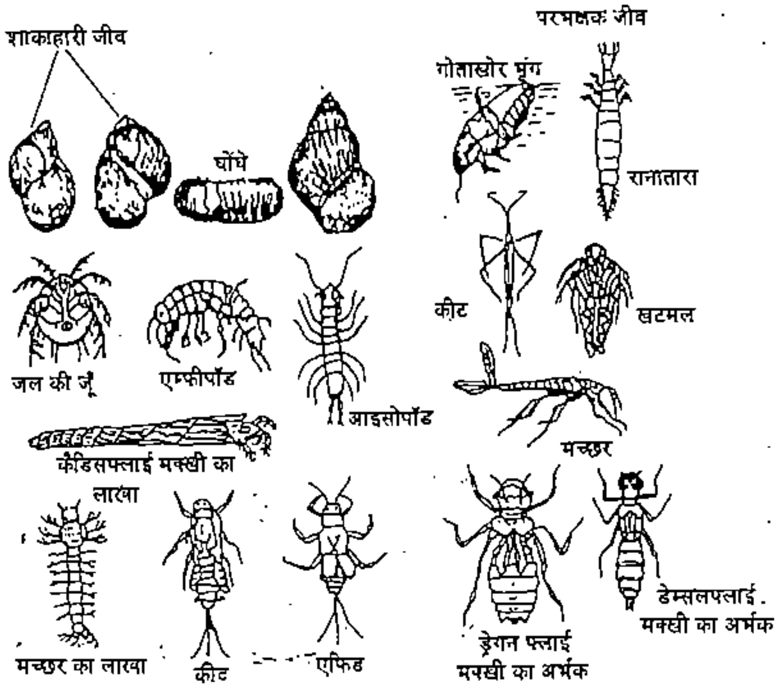

चित्र 8.6 : वेलांचली क्षेत्र के कुछ प्रतिनिधि अकशेरुकी प्राणी

सरिताओं में भी पाए जाते हैं। मछलियों की बहुत-सी जातियाँ जैसे कि मिरोज़, सनफिश और उत्तरी पीहि केवल इसी क्षेत्र तक सीमित हैं, जबकि दूसरी जातियाँ इस क्षेत्र और खुले जल क्षेत्र के बीच मुक्त रूप से घूमती रहती हैं। झील के किनारे पर रहने वाले कशेरुकी यहाँ पाए जाते हैं और इनमें उभयचर (amphibians) सरीसृप (reptiles) और स्तनी (mammals) शामिल हैं। उभयचर का उदाहरण है मेंढक, सरीसृपों में कछुए और साँप और स्तनियों में बीवर (beavers) और कस्तूरी उन्दूर (musk rat) यानी चूहे आते हैं। वेलांचली क्षेत्र के नीचे वाले तल में या तल के ऊपर पाए जाने वाले नितलक बहुत विविध हैं। इनमें से अधिकांश अपरद भोजी हैं हालांकि कुछ मांसभोजी भी हैं।

क) **खुले जल मंडल के पौधे**

इस मंडल में पौधे सरोवरी क्षेत्र तक सीमित रहते हैं और सामान्यतया इसमें पादपप्लवक होते हैं जो वेलाचली क्षेत्र में पाये जाने वाले पादप्लवकों के समरुप होते हैं (चित्र 8.7)। उदाहरण है डाइनोफ्लैजेलेट्स, नीले-हरे शैवाल और हरे शैवाल। इनमें से एक कोशिकीय प्लवकीय शैवाल पूरी झील के लिए मुख्य उत्पादक हैं।

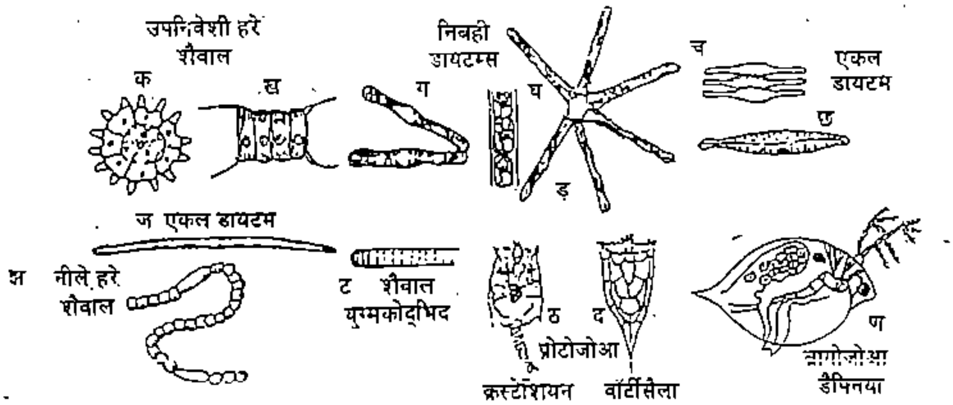

चित्र 8.7 : खुले जल वाली झीलों के सरोवरी क्षेत्र के प्लवक : (क, ख) उपनिवेशी हरे शैवाल, (ग, घ, ङ, च) निवही डायटम्स (छ, ज) एकल डायटम्स, (झ, ट) नीले हरे शैवाल, (ठ, ढ, ड) प्रोटोजोआ, (ण) क्रायोजोआ

खुले जल मंडल के गंभीर (profoundal) क्षेत्र में हरित पौधे नहीं होते क्योंकि अंधेरा होने के कारण यहाँ प्रकाश संश्लेषण नहीं हो सकता।

ख) **खुले जल मंडल के प्राणी**

इस मंडल के सरोवरी क्षेत्र में कुछ मछलियाँ और रॉटिफर्स, प्राणीप्लवक भी होते हैं जैसे कि क्रस्टेशियाई और

प्रोटोजोआई (चित्र 8.6)। गंभीर मंडल में रसायनसंश्लेषी (chemosynthetic), और स्वपोषी (autotrophs) जीवों के अलावा विषमपोषी (heterotrophs) भी होते हैं। विषमपोषी जीव मांसाहारी या अपरदन भोजी भी हो सकते हैं। इनमें से अधिकतर प्राणी मछलियाँ होती हैं। मछलियाँ केवल खुले जल मंण्डल में ही पायी जाती हैं। इसके अलावा यहाँ अपरद भोजी जीवों की कई किस्में भी देखने को मिलती हैं।

ग) नितलस्थ क्षेत्र

खुले जल मंडल के नीचे तल में नितलक होते हैं, जिनकी विविधता कम है। नितलस्थ प्राणियों के रूप में यहाँ अनेक कीट जातियों के डिम्भक (लार्वा) पाए जाते हैं जैसे कि मशकाभ (midges) और विलंकारी मक्खियाँ। इसके अलावा क्लैम्स (सीपी), घोंघे, नालकृमि (tubeworms) और अपघटक भी मिलते हैं (चित्र 8.8)।

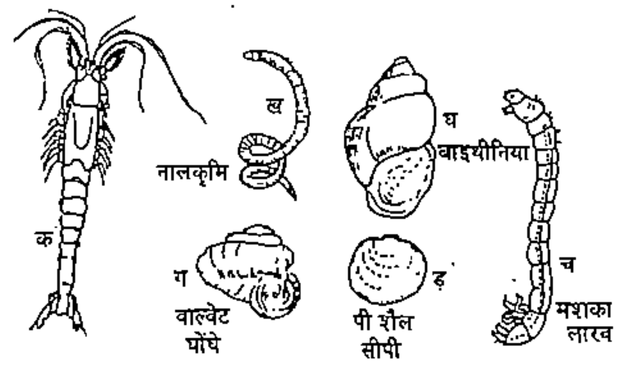

चित्र 8.8 : झीलों के गंभीर क्षेत्र में पाए जाने वाले नितलस्थ अकशेरुक प्राणियों के प्रतिनिधि

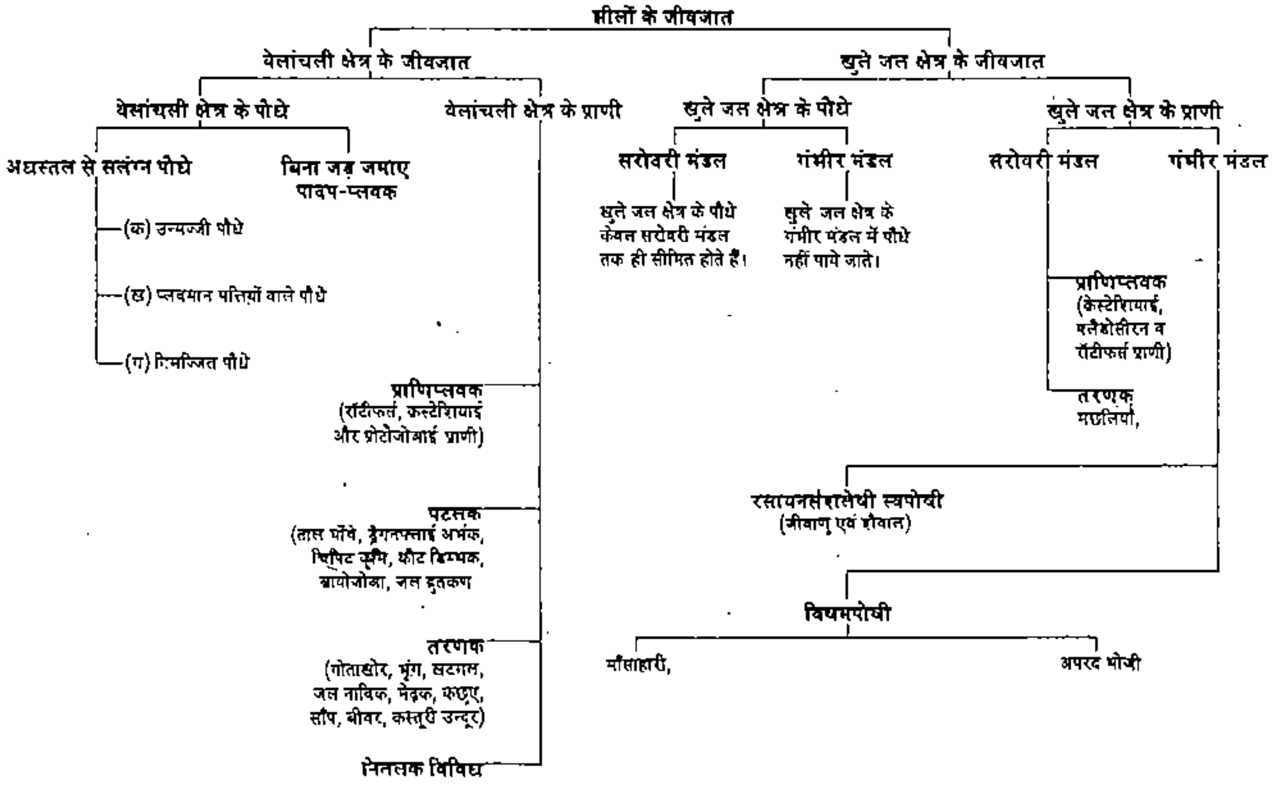

चित्र 8.9 : झीलों के जीवजात का सारांश और वे मंडल जहाँ वे पाए जाते हैं

8.3.4 झीलों के प्रकार

दुनिया की झीलों के आकार, साइज और गुणों में भरपूर विविधता पायी जाती है। फिर भी पोषक स्थिति और प्राथमिक उत्पादकता के आधार पर उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

1) **अल्पपोषित (Oligotrophic)** (कम पोषक) झीलें (चित्र 8.10 क)
2) **अति पोषित (Eutrophic)** (भरपूर पोषक) झीलें (चित्र 8.10 ख)
3) **मध्यपोषित (Mesotrophic)** (बीच की पोषक) झीलें

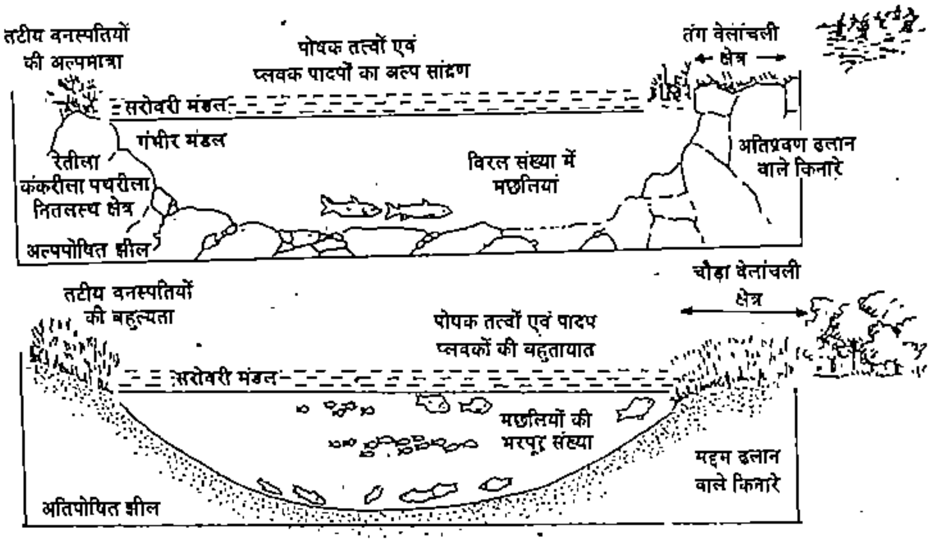

चित्र 8.10: पोषक स्थिति के आधार पर झीलों की तुलना

तालिका 8.1 : अल्पपोषित और अति पोषित झीलों की तुलना

	कसौटी	अल्पपोषित	अतिपोषित	मध्यपोषित
1.	गहराई पृष्ठ क्षेत्रफल अनुपात	अल्पपोषित झीलें गहरी होती हैं, बगलें प्रायः अतिप्रवण (steep) होती हैं। उनका पृष्ठ से आयतन अनुपात कम होता है (गहराई की तुलना में पृष्ठ क्षेत्रफल छोटा है)	अतिपोषित झीलें उथली होती हैं और उनका पृष्ठ से आयतन का अनुपात अधिक होता है (गहराई की अपेक्षा पृष्ठ क्षेत्रफल बड़ा है)	मध्यपोषित झीलें अल्पपोषित और सुपोषित झीलों के बीच की हैं (पृष्ठ क्षेत्रफल और गहराई आनुपातिक है)
2.	पोषक स्थिति	इन झीलों में पोषक-विशेष रूप से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और कार्बनिक पदार्थ-कम होते हैं।	इन झीलों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और कार्बनिक पदार्थ जैसे पोषक भरपूर पाए जाते हैं।	ये थोड़ी-सी सुपोषी हैं। इनके विशिष्ट लक्षण अल्पपोषी तथा सुपोषी के बीच के हैं।
3.	प्राथमिक उत्पादन	इन झीलों में प्राथमिक उत्पादकता कम है।	अत्यधिक पोषक होने के कारण इन झीलों में प्राथमिक उत्पादकता ऊँची है।	इनमें पोषकों की मध्यम मात्रा होती है और मध्यम प्राथमिक उत्पादकता होती है।
4.	जाति विविधता	यहाँ पाए जाने वाले जीवों की संख्या कम है, हालांकि उनकी जाति विविधता ज्यादा है।	जीवों की संख्या अर्थात् जैवभार (biomass) ज्यादा है, हालांकि जाति विविधता कम है।	—
5.	ऑक्सीज़न मात्रा	ऐसी झीलों में ऑक्सीज़न की मात्रा ज्यादा होती है और तली तक फैली रहती है।	यहाँ ऑक्सीज़न की मात्रा कुल मिलाकर कम ही होती है। या तो मौसम के हिसाब से अन्यथा सारे साल ही ऑक्सीज़न विशेष रूप से तली परतों में कम होती है। कुछ मामलों में झील की तली परतों में अवायवीय (anaerobic) स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप वायुजीवी (aerobic) विशेष रूप से मछलियाँ खत्म हो जाती हैं।	ऑक्सीज़न मात्रा मध्यम होती है।
6.	जलराशि की पारदर्शिता	अल्पपोषी झीलों का पानी पारदर्शी होता है। यह धूप में नीले से लेकर हरा दिखाई देता है।	अतिपोषी झीलों का जल अत्यधिक शैवालीय और पौधों के उगने से गंदला होता है। ग्रीष्म ऋतु में शैवालीय वृद्धि बढ़ जाती है इसलिए झील का पानी मटर के सूप या हरे रंग का हो जाता है।	आविलता (turbidity) मध्यम

अतिपोषण (Eutrophication)

इस प्रकार झीलों की पोषक मात्रा जीवों के लिए सीमाकारी कारक बन जाते हैं क्योंकि किसी झील में जीवों की मात्रा और विविधता झील में पोषकों की चक्रण दर पर निर्भर करती है (विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम के खंड-4 की इकाई संख्या-16 के भाग 16.2.2 को देखिए)। कुछ झीलें अपने बनने के

समय से ही सुपोषित हैं लेकिन अधिकतर झीलें मूल रूप से अल्पपोषी थीं और हज़ारों सालों में प्राकृतिक रूप से अतिपोषी बन गई हैं। पोषकों की मात्रा भरपूर हो जाने के कारण झीलों के कालप्रभावन का प्रक्रम "अतिपोषण" कहलाता है। मानव हस्तक्षेप के कारण आज बहुत-सी झीलों में बड़ी तेज रफ्तार से अतिपोषण हो रहा है। औद्योगीकरण, गहन कृषि आदि जैसी गतिविधियों के फलस्वरूप कृषि अपवाह (runoff), सीवेज नालियों और औद्योगिकीय बहिःस्रावों (effluents) से नाइट्रोजन, फास्फोरस आदि जैसे पोषक तेजी से झीलों में गिर रहे हैं। सांस्कृतिक गतिविधियों के कारण होने वाला यह अतिपोषण "सांस्कृतिक अतिपोषण" कहलाता है।

बोध प्रश्न 2

I) उपयुक्त शब्द प्रयोग में लाते हुए रिक्त स्थान को भरिए :

क) ग्रीष्म ऋतुओं के दौरान शीतोष्ण झीलों में तापीय स्तरण के आधार पर झीलें तीन मंडलों या क्षेत्रों में बाँटी गई हैं :

(i) .... (ii) .... और (iii) ....

ख) पोषजन क्षेत्र और पोषलयी क्षेत्र के बीच किसी भी झील में एक पतली सतह या पतला पृष्ठ होता है, जहाँ प्रकाश तीव्रता ऐसी है कि प्रकाश संश्लेषी उत्पादन इतना भर होता है जो श्वसन के कारण होने वाली हानियों को संतुलित कर सके। जिस गहराई पर बह क्षेत्र स्थित है, वह .... कहलाता है।

ग) विभिन्न झीलों में पाए जाने वाले जीवीय रूपों के आधार पर झीलों को तीन क्षैतिज क्षेत्रों में बाँटा गया है :

(i) .... (ii) .... और (iii) ....

घ) किसी भी क्षेत्र को गीली भूमि कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह क्षेत्र कम से कम ....मीटर तक पानी से भरा हो। यह पानी अलवणीय, खारा या लवणीय हो सकता है।

ङ) झीलों का खुला जल मंडल दो क्षेत्रों में बाँटा गया है :

(i) .... और (ii) ....

(वेलांचली, अधःसर, छह, खुला जल, अधिसर, नितलस्थ, क्षतिपूर्ति गहराई, सरोवरी, अधिसर).

II) नीचे दिए गए कथन सही हैं या गलत, बताइए :

क) झील के खुले जल मंडल के गंभीर क्षेत्रों में प्रकाश संश्लेषी हरे पौधे नहीं होते।

ख) कृत्रिम रूप से बनाई गई झीलों को रुद्धजलागार कहते हैं।

ग) अल्पपोषित झीलों की अपेक्षा अतिपोषित झीलें ज्यादा उथली तथा ज्यादा कोष्ण होती हैं।

घ) ग्रीष्म और शीत स्तरण मौसमी परिघटनाएँ हैं और साल में दो बार पर्यास होता है।

8.4 सरित पारितंत्र-नदियां

सरित या बहते हुए पानी के आवासों में नदियां, नाले, छोटी नदियां या नालियां शामिल हैं। लगातार बहता पानी इन आवासों के सबसे असाधारण लक्ष्य हैं। यह पानी तल के अभिलक्षणों या विशेषताओं को बदल देता है और इसके भीतर जीवों के वितरण को प्रभावित करता है।

सरोवर और सरित आवासों के बीच अंतर करने के लिए आइए यह देखें कि झीलों से, जो कि सरोवरी आवास को दर्शाती हैं, नदियों अर्थात् सरित आवासों से किस प्रकार भिन्न हैं।

- नदियों का प्रवाह लगातार होता है और एक दिशा में होता है। पानी का सारा आयतन एकदिशीय रूप में बहता है। बड़ी नदियों के मामलों में यह संभव है कि प्रवाह एक जलवायु मंडल से दूसरे जलवायु मंडल में हो।
- नदी के पानी का आयतन बदलता रहता है, जिसकी वजह से इसके वेग में परिवर्तन होता रहता है।
- नदियों का जल-स्तर उतार-चढ़ावों की व्यापक परास दर्शाते हैं।

- सामान्य रूप से यह नियम है कि झीलों की तुलना में नदियों की गहराई कम होती है।
- नदियों का पानी आम तौर पर सकरे जलमार्ग से बहता है, हालांकि कभी-कभार उनके जलमार्ग फैल जाते हैं और नदी झीलें बन जाती हैं।
- नदी की भौतिक, रासायनिक और जैविक परिस्थितियाँ एक निश्चित दिशा में मुख्य मार्ग पर दूरी के साथ-साथ बदल जाती हैं।
- नदियों द्वारा किसी भी स्थल पर वाहित या अपरदनित पदार्थ बहाव के साथ उसी दिशा में वाहित होता है। ऐसे पदार्थ का लौटने के लिए कोई सहारा नहीं होता और इस प्रकार वे स्थायी रूप से हटा दिए जाते हैं।
- नदियों में लम्बे समय तक प्रगतिरोध या गतिहीनता नहीं होती। झीलों की तुलना में नदियां पोषकों के लिए अपने आसपास की ज़मीन पर अधिक निर्भर हैं। ये स्वयं थोड़ा-सा मूलभूत खाद्य पदार्थ का निर्माण करती हैं।

दो सबसे महत्वपूर्ण बातें यह हैं कि:

1) नदियाँ खुली, विवृत या विषमपोषी तंत्र हैं, जबकि झीलें अंतर्वाही अथवा बहिर्वाही नालों से होने वाले कुछ आगतों और निर्गतों को छोड़कर बंद, संवृत या स्वतः पूर्ण तंत्र हैं।

2) झील में पोषकों को कई बार काम में लाया जा सकता है, जबकि नदियों में किसी स्थल पर पौधों और प्राणियों के लिए अस्थायी रूप से उपलब्ध पोषकों को काम में लाना आवश्यक है।

8.4.1 नदी तंत्र के अभिलक्षण

नदियों का मूलभूत कार्य बारिश के फालतू पानी को ज़मीन से समुद्र तक पहुंचाना है। नदियाँ हर साल वर्षा के 25 से.मी. के बराबर अलवण जल ले जाती हैं। वह पूरे धरातल पर बराबर-बराबर वितरित रहता है।

नदी का उदगम स्थल ही "स्रोत" है। जो रास्ता यह अपनाती है वही इसका "दिशामार्ग" है। जो नाले इसके मार्ग के साथ-साथ मिलते हैं, वे "सहायक नदियां" हैं और वह प्रणाल (channels)जिसके भीतर यह बह कर मिलती है "तल" (bed) है। समुद्र या झील या ज्वारनदमुख में घुसने वाला स्थल इसका मुहाना कहलाता है (चित्र 8.11)।

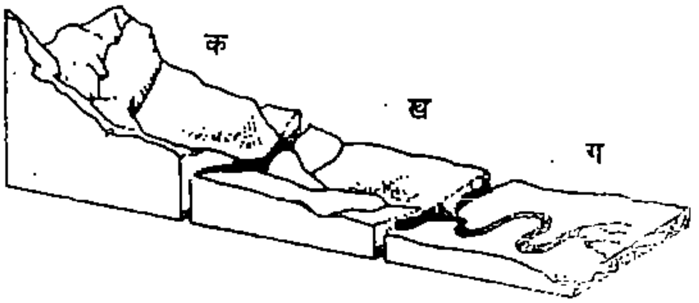

चित्र 8.11 : जल उतार के बहाव में तीन अवस्थाएं। (क) पर्वत नदीशीर्ष धारा से कम उच्चता पर अधिक चौड़े नालों तक। (ख) इन नालों से नदियों तक। (ग) नदियों से समुद्र तट तक, जहाँ उनका पानी गिरता है।

नदी मंडलों का वर्गीकरण

किसी नदी का मार्ग दो तरह से वर्गीकृत हो सकता है (क) इसके भौतिक अभिलक्षणों से, और (ख) मीन जातियों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति से। मीन अर्थात् मछलियों की जातियाँ नदी के बदलते भौतिक, रासायनिक और जैविक लक्षण दर्शाती हैं।

(क) भौतिक अभिलक्षणों के आधार पर नदी मार्ग का वर्गीकरण

नदी को तीन भागों में बांटा जाता है (चित्र 8.11):

i) **ऊपरी अथवा पर्वत मार्ग :** यहां पानी तेज बहाव वाला होता है और "वी" ("V") आकार वाली घाटी से गुजरता है। इसके किनारे अस्थायी होते हैं। तेजी से बहने वाले पानी में अपरदन करने की बहुत अधिक शक्ति होती है। वर्षा के बाद यह शक्ति विशेष रूप से बढ़ जाती है। उस समय पानी बड़े-बड़े पत्थरों को खिसका कर अपने साथ लुढ़काता ले चलता है। कोणीय यानी अनेक कोण वाले पत्थर नदी में बह आते हैं और एक-दूसरे से रगड़-रगड़कर गोल गुटिकाएं बन जाते हैं।

ii) **बीच वाला मार्गः** नदी का मध्य मार्ग गिरिप्राद (foothill) कटिबंध पर होता है, जहां पानी का वेग अपेक्षाकृत कम है और जो कुछ धीरे-धीरे बहता है। फिर भी पानी का बहाव मिट्टी, गाद और कीचड़ को निलम्बन अवस्था में वाहित करने के लिए काफी तेज है। नदी मार्ग के इस भाग में घाटी चौड़ी और किनारे स्थायी होते हैं इसलिए नदी ज़मीन का उतना अपरदन नहीं कर सकती जितना कि पर्वत मार्ग पर करती है। गाद का अधिकतर वहन नदी के इसी भाग द्वारा किया जाता है।

iii) **निचला मार्गः** नदी का निचला मार्ग मैदानों में से होकर गुजरता है, जहां यह रेंगती है या टेढ़े-मेढ़े रास्तों से धीरे-धीरे बहती है। यहां नदी का बहुत-सा वेग खत्म हो जाता है और इस तरह निलम्बन अवस्था में भारी मिट्टी तथा गाद को वहा ले जाने की नदी की क्षमता भी बहुत हद तक घट जाती है। इसलिए यह अपने गाद भार का एक अंश रेतीले तटों या शिंगल पुलिनों के रूप में निक्षेपित अर्थात् जमा कर देती है और एक व्यापक बाढ़ मैदान या डेल्टा के ऊपर गाद फैलाकर बड़े-बड़े सपाट मैदान बना देती है।

(ख) कुछ मीन जातियों की उपस्थिति के आधार पर नदी मंडलों का वर्गीकरण

इस विधि से नदी को चार मंडलों में वर्गीकृत किया गया है (चित्र 8.12)।

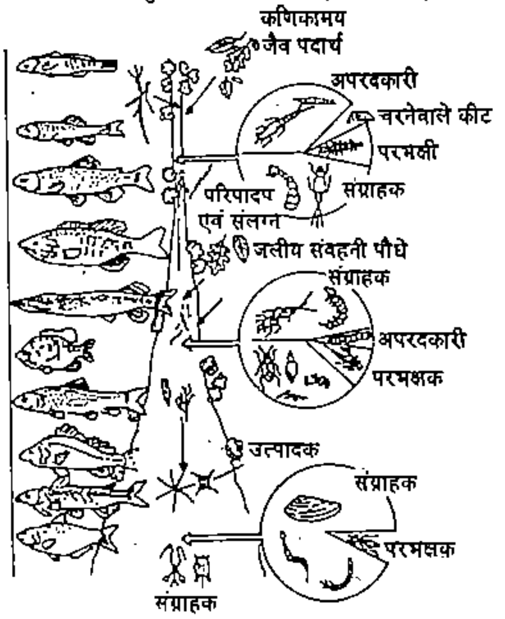

चित्र 8.1 2 : विभिन्न मंडलों में पाई जाने वाली मीन जातियों के आधार पर वर्गीकृत सरित परितंत्र।

i) मुख्य सरिता अथवा पहाड़ी लघुसरिता मंडल

यह अनेक छोटे नालों से मिलकर बनता है, जो कच्छ, सोते या हिमनद स निकलते हैं। यह छोटा, उथला और अनियमित मार्ग वाला होता है। यह मूसलाधार वर्षा के बाद जोर से बहता है। इसमें कुंड नहीं होते और पानी का तापमान कम होता है। इसमें पौधों के नाम पर केवल मॉस और लिवरवर्ट होते हैं। इस मंडल में मछलियां नहीं होती।

ii) **ट्राउट नाला मंडलः** यह मुख्य सरिता से बड़ा और अधिक नियत अर्थात् स्थिर है वेग प्रवाही पानी की अधिकाधिक मात्रा खुली आधारशिला में प्रणाल बना लेती है। मुख्य सरिता की तुलना में पानी गहरा और धारा अधिक तेज होती है। यह निलम्बन में पदार्थ ले जाने में समर्थ है। एक प्ररूपी ट्राउट नाले की प्रवणता सीधी ढलान वाली होती है और इसकी बगलों में गुटिकाएँ और खुरदरे गोलाश्म चिने रहते हैं। परिरक्षित (gradient) में यह गर्ट जमा करता है जहां इसका प्रवाह कम है। ट्राउट नाला मंडल में बहुत कम पौधे उगते हैं। इसका कारण यहां की तेज धारा और चट्टानी परिस्थितियां हैं। इस मंडल का पानी ऑक्सीजन-संतृप्त और ठंडा होता है। तेज पानी के क्षेत्र में एक के बाद एक अनियमित कुंड होते हैं। यहां शक्तिशाली तैराक भूरी ट्राउट, मिलर-थम और स्टोन लोच नामक मछलियाँ मिलती हैं।

iii) **मिरो रीच या ग्रेलिंग मंडलः** ट्राउट नाले की बजाय इस मंडल की प्रवणता कम खड़ी होती है। यहां नदी अभी भी तेजी से बहती है, हालांकि धारा तेज नहीं होती और परिस्थितियाँ वेग प्रवाही नहीं है। इस तरह अपरदन अपेक्षाकृत कम होता है। धीमे बहने वाले क्षेत्रों में कुछ गाद जमा हो सकती है। मामूली धाराओं वाले क्षेत्रों में गर्मियों में तंतुमय शैवाल उग सकते हैं। जहां गाद जमा होती है, वहां दूसरे पौधे जड़ें जमा सकते हैं और उनकी जड़ों पर और भी ज्यादा गाद जमा हो सकती है। जल पौधों सहित इन शांत क्षेत्रों की उपस्थिति इस रीच का अभिलक्षण है। पानी अभी भी अच्छी तरह ऑक्सीजनित होता है, हालांकि इसका तापमान अधिक परिवर्तनीय होता है। तेज बहाव वाले पानी या अवरवातिकाओं वाले क्षेत्र अब लम्बे कुंडों

सहित ज्यादा नियमित रूप से एक के वाद एक आते हैं। इस क्षेत्र के मीन अभिलक्षण मिरो हैं और कुछ क्षेत्रों में ग्रेलिंग हैं। ट्राउट नाला मंडल की मछलियां भी यहां पाई जाती हैं और इसी तरह सर्पमीन भी पाई जाती है तथा कुछ नदियों में सामन की युवा सतंति।

iv) **स्थूल मीन रीच या निम्न भूमि मार्ग मंडलः** यह मंडल नदी के निचले मार्ग से संबंधित है। यहां नदी गहरी और धीमी गति से वहती है। इसके मंद प्रवाह से गाद का निक्षेपण होता है अर्थात् गाद जमा होती है जिससे पंकिल नली बनती है, जिस पर अनेक जलपादप उग सकते हैं। दूसरे मंडलों की तुलना में इस मंडल में ऑक्सीजन की मात्रा कम है और तापमान अधिक परिवर्तनीय है। हालांकि वे मछलियां जो कि नदी की ऊपरी मंडल यानि रीच में विशेषतया पायी जाती है इस मंडल में भी मौजूद हो सकती है, फिर भी उनके लिए यहां अपना जीवन-चक्र सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं। उदाहरण के लिए, सामन और ट्राउट मछलियों को अपने अंडे देने के लिए गाद रहित बजरी चाहिए और उनकी नव संतति के लिए ठंडा ऑक्सीजनित पानी चाहिए। अब परिस्थितियां दूसरी मछलियों के लिए अधिक उपयुक्त हैं जैसे कि साइप्रिनिड, रोच, छव और ब्रीम। ये मछलियां घुली हुई ऑक्सीजन की कम सांद्रता और अधिक जल तापमान सह सकती हैं। इन्हें अपने अंडे देने के लिए जल पौधे चाहिए। नदी के सबसे निचले रीच में जहां वह ज्वारनदमुख में वहती है, गर्मियों के महीनों में समुद्र नीचे वहता हुआ मिलता है।

ऊपर जिन मार्गों का वर्णन किया गया है, वे सभी मार्ग सभी नदियों में नहीं होते। सपष्ट है कि पहला मंडल काफी ऊंची पहाड़ियों के अस्तित्व पर निर्भर है। जो पानी के लिए पारगम्य नहीं है जैसे कि चाक पहाड़ियां। कई नदियों में वाद के मंडल नहीं भी होते और वेगप्रवाही मंडल धारा के मंद पड़े विना ही समुद्र में गिर सकता है।

8.4.2 नदियों के जीवजात

I. तेज वहने वाले पानी के जीवजात

नदी के तेजी से वहने वाले भाग में जल धारा एक प्रभावी लक्षण है। जो भी चीज़ संलग्न या भारी नहीं है, वह जाती है। इसमें जीव और तलछट, दोनों शामिल हैं। अधःस्तर या तो बजरी वाला होता है या फिर चट्टान वाला जिसके खंड या टुकड़े पानी द्वारा चिकने और गोल बना दिए जाते हैं। यहां विभिन्न सूक्ष्म आवास होने के कारण आवास ही विविध होता है। तीन प्रकार के आवास नीचे दिए गए हैं:

क) चट्टान की सतह पर
ख) चट्टान खंडों के वीच में, और
ग) चट्टान खंडों के नीचे।

सूक्ष्म आवासों में यह भिन्नता इनमें से प्रत्येक में जल धारा के वल में अंतर के कारण है। इसका परिणाम यह है कि प्रत्येक सूक्ष्म आवास में अलग-अलग प्रकार के जीव रहते हैं।

क) **प्राणीः** खुली पड़ी रहने वाली चट्टान की सतह के आवास में केवल वे जीव पाए जाते हैं जिनमें एक ही जगह ठहरे रहने के लिए दक्ष साधन हैं। वास्तव में ठहरे रहने के लिए अनुकूलन के वावजूद जीवों में से अनेक वहा ही लिए जाते हैं। यहां पाए जाने वाले प्राणियों (चित्र 8.13) में अलवणजल लिम्पेट, डिम्भक (लार्वा) या अलवणजल पेनी (रिफल भृंग), अलवणजल स्पंज और कैडिस मक्खी शामिल हैं। ये सभी इस पर्यावेष के लिए विशेष रूप से अनुकूलित हैं।

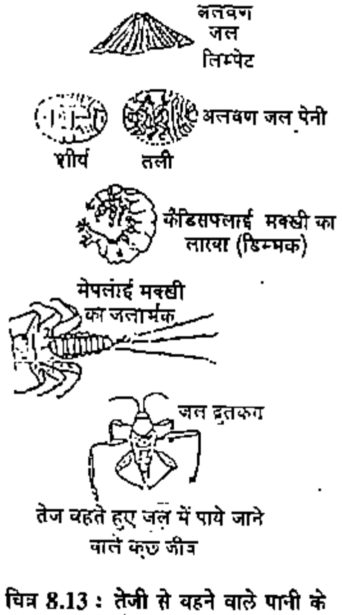

चित्र 8.13 : तेजी से वहने वाले पानी के कुछ प्राणी

चट्टान खंडों के वीच में पाई जाने वाली खाली जगहों यानी अवकाशों में वनने वाला सूक्ष्मआवास थोड़ा-थोड़ा रक्षित है। यहां पाषाण मक्खी और ड्रैगनफ्लाई होती है। दोनों ही चिपटी होती हैं और उन्हें यथास्थान वनाए रखने के लिए उनमें व्यावहारिक अनुकूलन होते हैं (जैसे कि सख्त सतह पर चिपके रहने की प्रवृत्ति और अपने आपको धारा के साथ-साथ अभिविन्यस्त करते रहना)। उदाहरण के लिए, यहां हेलिग्रोमाइट कीट का डिम्भक पाया जाता है जो वड़ा और कांटों में ढका हुआ होने के कारण अपने आपको वह जाने से वचा लेता है।

चट्टानों के नीचे सूक्ष्मआवासों में जहां धारा कमजोर होती है ऐसे प्राणी होते हैं जिनमें हालांकि तेज वह रहे पानी में रुके रहने के मूल अनुकूलन होते हैं फिर भी वे पहिले वताए गए दो सूक्ष्मआवासों के प्राणियों की तरह वहुत ज्यादा अनुकूलित नहीं होते। यहां पाए जाने वाले प्राणियों में एनेलिड्स, चिपिटकृमि, क्लैम, कुछ घोंघा जातियों और अन्य कीट डिम्भक हैं।

तेजी से वहाव वाले आवास में तरणक केवल उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहां धारा ज्यादा शक्तिशाली नहीं है और इसमें ठंडे पानी की मछलियां पाई जाती हैं जैसे कि ट्रॉउट या सामन। जिन क्षेत्रों में धारा वहुत शक्तिशाली है, तरणक नहीं होते और एसे मामलों में वहुत से और तरह-तरह के नितलक हो सकते हैं और इनसे पूरा समुदाय वन सकता है।

ख) **पौधेः** पौधों में यहां केवल अच्छी तरह संलग्न रूप ही जीवित वच सकते हैं जैसे कि स्थानवद्ध शैवाल। इस प्रकार केवल कुछ पौधों की उपस्थिति के ही कारण यहां प्राणियों के लिए पोषक आधार-कार्वनिक अपरद है, जो अपवाह क्षेत्रों से वहाकर नदियों में लाया जाता है।

II. मंद गति से बहने वाले पानी के जीवजात

नदी के धीमी गति से वहने वाले भाग का आवास, अभी-अभी जिस आवास का वर्णन किया गया है, उससे वहुत भिन्न है। यहां पानी का वहाव अपेक्षाकृत मंद है और इसलिए धारा कम है। इसके फलस्वरूप पानी की अपरदन शक्ति वहुत ज्यादा घट जाती है जिसकी वजह से अधिक छोटे तलछट सरिताओं द्वारा वहा लिए जाने की वजाय तली में जमा हो जाते हैं। वदले हुए आवास के यहां पाए जाने वाले जीव भिन्न (चित्र 8.14) हैं और निम्न प्रकार के हैं।

क) **प्राणीः** यहां प्राणिप्लवक पाये जाते हैं और इनमें प्रोटोजोआ तथा छोटे-छोटे क्रस्टेशियाई जैसे कि जल मक्खियां और कॉपीपोड शामिल हैं। यहां पाए जाने वाले पटलक में अनेक कीट शामिल हैं जैसे कि जल द्रुतक्रम, जलनाविक (water boatman) पृष्ठतरक और परभक्षी गोताखोर भृंग (diving beetle)। ये सभी अपना अधिकांश जीवन सरिता की सतह पर विताते हैं। तरणक अनेक हैं और इनमें वड़े-वड़े क्रस्टेशियाई शामिल हैं जैसे कि अलवणजल शिम्पा और अनेक प्रकार के कीट तथा मछलियां जैसे कि कार्प और कैटफिश। ये सभी जातियां तेज जल वाले क्षेत्रों की जातियों से भिन्न हैं। वहां के नितलक में हिमखटमल (snowbug) में-फ्लाई (may fly) मक्खी और डैम्सल फ्लाई रेड्स शामिल हैं जो नितलस्थ क्षेत्र की सतह पर पाए जाते हैं। इसके अलावा नालकृमि, विलकारी मेफ्लाईमक्खियों के जलार्भक, अर्भक (naidds) और रॉटिफर्स पाए जाते है; जो इसमें छिपे रहते हैं।

ख) **पौधेः** इस आवास में पौधे काफी होते हैं और इनमें जड़ जमाए हुए संवहनी पौधे जैसे तालाव, खरपतवार और घासें, मज़वूती से संलग्न जलीय मॉस और वहु-कोशिकीय तंतुमय शैवाल शामिल हैं। धीमे वह रही सरिताओं, विशेष रूप से सवसे धीमे पश्चजल, में डक्वीड जैसे सूक्ष्म प्लवमान पौधे पानी की अधिकांश सतह को ढके रहते हैं। खुले पानी में डायटम जैसे गतिशील शैवाल और फ़्लैजिलेट्स वहुतायत से मिलते हैं।

इस आवास में पादप जीव अधिक होने के कारण तेज प्रवाह वाले पानी की अपेक्षा उत्पादकता अधिक होती है और इसलिए यहां का समुदाय वाहर से मिलने वाले पोषकों पर अपेक्षाकृत कम निर्भर है।

अलवणजल सरिताओं में महत्वपूर्ण नियंत्रणकारी कारक धारा प्रवाह की गति है, लेकिन मंद-जल सरिताओं में मुख्य सीमाकारी कारक घुली हुई आक्सीजन की सांद्रता है। इस पारितंत्र में प्राणी सक्रियता का ऊंचा स्तर और साथ में सक्रिय अपरदक खाद्य श्रृंखला मिलकर ऑक्सीजन की भारी मात्रा खत्म हो जाती है। इसके साथ-साथ प्रक्षोभ के निम्न स्तर का अर्थ यह है कि सतह पर पानी में कम ऑक्सीजन समाविष्ट की जाती है। इस तरह, धीमे वहने वाली सरिता में घुली हुई ऑक्सीजन की सांद्रता, संतृप्ता से पर्याप्त रूप से कम हो सकती है और इसलिए समुदाय का कम ऑक्सीजन वाली परिस्थितियों के प्रति सहनशील होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए तेज पानी में पाई जाने वाली ट्राउट और सामन को उच्च ऑक्सीजन स्तर की आवश्यकता होती है, जवकि धीमे पानी की अधिकांश मछलियों की जातियाँ प्रायः कम ऑक्सीजन सह्य होती हैं जैसे कि कार्प और कैटफिश।

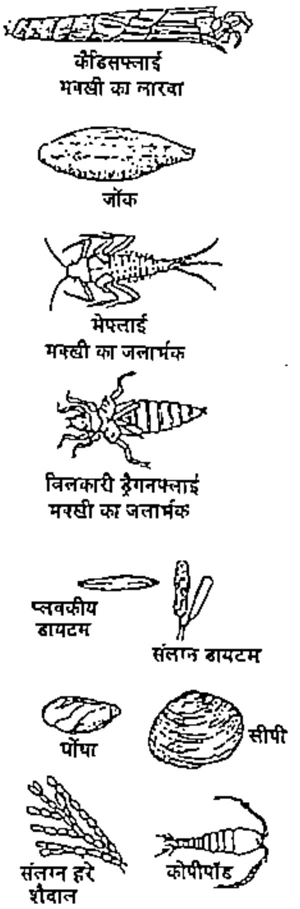

चित्र 8.14 : मंद गति से बहने वाली नदियों में पाए जाने वाले जीव। इनमें से अनेक झीलों और तालाबों में भी पाए जाते हैं।

बोध प्रश्न 3

I) सही कथनों पर सही (√) का निशान और जो कथन सही नहीं है उन पर (×) का निशान लगाइए:

क) तेज वहाव वाले पानी में वे प्राणी पाए जाते हैं जिनके पास ठहरे रहने के लिए दक्ष साधन होते हैं।

ख) तेजी से वहने वाले पानी की अपेक्षा मंद गति से वहने वाले पानी में पटलक और तरणकों की विविधता वहुत ज्यादा होती है।

ग) धीमे वहाव वाले झरनों में जीवों की वृद्धि को सीमित करने वाला मुख्य कारक घुली हुई ऑक्सीजन की सांद्रता है।

घ) नदियों का मूल प्रकार्य फालतू वर्षा जल को जमीन से समुद्र में ले जाना है।

II) उपयुक्त शब्द काम में लाते हुए रिक्त स्थान भरिए:

क) कुछ **मीन जातियों** की उपस्थिति के आधार पर नदी पारितंत्रों को .... मंडलों (क्षेत्रों) में वर्गीकृत किया गया है। उनके **भौतिक अभिलक्षणों** के आधार पर नदी पारितंत्रों को .... मार्गों में बांटा गया है।

ख) तेजी से बहने वाले पानी में जल .... की चाल सीमाकारी कारक है।

ग) स्थिर जलराशियों की तुलना में नदियों का जल-स्तर उतार-चढ़ाव की .... परास दर्शाता है।

घ) झीलों की तुलना में नदियां पोषकों को लिए आसपास की .... पर ज्यादा निर्भर हैं।

8.5 समुद्र पारितंत्र

समुद्र पारितंत्र पृथ्वी की सतह (धरातल) का 70 प्रतिशत भाग ढके रहते हैं और इनकी औसत गहराई 3750 मी होती है (मैरियानास ट्रैन्च में 10750 मीटर की गहराई ज्ञात गहराइयों में सबसे ज्यादा है)। जैसा कि आप जानते हैं, समुद्र पारितंत्र पानी, जीवधारियों और अत्यावश्यक पोषकों का सबसे बड़ा आशय या आगार है। समुद्री और स्थलीय, दोनों ही प्रकार के जीवों को इनकी-पानी, जीवित वस्तु एवं पोषक-जरूरत पड़ती है। समुद्री पारितंत्रों का कुल जीवभार अलवणजल पारितंत्रों के कुल जीव भार से कहीं ज्यादा होता है।

8.5.1 समुद्र पारितंत्रों के विशेष लक्षण

समुद्र पारितंत्रों का बहुत पारिस्थितिकीय महत्व है और इनके कुछ विशेष लक्षण हैं; जिनका हमने नीचे संक्षेप में वर्णन किया है।

भौतिक-रासायनिक कारक

- **लवणताः** समुद्र नमकीन है और इसकी लवणता नियत है। लवणता का औसत लगभग 3.5 प्रतिशत है, जिसे आम तौर पर 35 (भाग प्रति हज़ार) के रूप में लिखा जाता है। सोडियम क्लोराइड मुख्य नमक है, जिसका प्रतिशत 27 है, जबकि शेष कैल्शियम, पोटैशियम और मैग्नीशियम लवण है। ओडम, एक वैज्ञानिक, (1971) द्वारा दिया गया प्रतिशत (हज़ार भाग/कि.ग्रा.) नीचे तालिका में दिखाया गया है।

तालिका 8.1 : समुद्र जल का रसायन

धनात्मक आयन	(कैटायन)	ऋणात्मक आयन	(अनायन)
सोडियम	10.7	क्लोरीन	19.3
मैग्नीशियम	1.3	गंधक (सल्फर)	2.7
कैल्शियम	0.4	बाइकार्बोनेट	0.1
पोटैशियम	1.0	कार्बोनेट	0.007
		ब्रोमाइट	0.07

- **प्रकाशः** कार्बनिक उत्पादन और समुद्री जीवन के वितरण में महत्वपूर्ण योगदान देने के कारण यह महासागर में एक सीमाकारी कारक है। प्रकाश वेधन के आधार पर महासागर को दो क्षैतिज मंडलों में बांटा जा सकता है जैसा कि चित्र 8.16 में दिखाया गया है। ये मंडल हैं:

   i) प्रकाशयुक्त **प्रकाशी** अथवा सुप्रकाशी मंडल, जो समुद्र पृष्ठ से 200 मीटर की गहराई तक फैला हुआ है, जहां कि प्रकाश संश्लेषण को चलाने के लिए पर्याप्त रोशनी पहुंचती है। तेज प्रवणता या प्रकाश, तापमान और लवणता इस प्रकाशी मंडल के लक्षण हैं। इसे अधिवेलापवर्ती मंडल भी कहते हैं। इस मंडल के निम्न स्तर तक पहुंचने वाले प्रकाश की मात्रा पृष्ठ पर प्राप्त मात्रा के 0.0001 प्रतिशत से विरले ही अधिक होती है। इस मंडल के नीचे है:

   ii) **अप्रकाशी** या प्रकाशहीन मंडल, जो आगे भी तीन उप-मंडलों में बांटा जा सकता है:

      i) मध्यवेलापवर्ती, जो 200 मीटर से 1000 मीटर तक होता है। बहुत कम प्रकाश इस मंडल को भेद सकता है इसलिए यह मंडल अर्ध-अंधकार में आता है। यहां तापमान प्रवणता मध्यम है जिसमें मौसमी परिवर्तन ज्यादा नहीं होता। इसके अलावा, इस मंडल में न्यूनतम ऑक्सीजन और अधिकतम नाइट्रेट और फास्फेट होते हैं। इसके बाद आता है

      ii) गभीरवेलापवर्ती मंडल, जो 1000 से 2000 मीटर तक होता है और जहां मानव के लिए अंधेरा ही अंधेरा है, हालांकि कुछ मछलियां और क्रस्टेशियाई मंद रोशनी के प्रति भी अनुक्रिया दिखाते हैं। तीसरा और सबसे निचला मंडल

      iii) वितलवेलापवर्ती है जहां स्थायी अंधेरा छाया रहता है और जहां तापमान 3° से. पर एक समान है तथा ढेर सारा द्रवस्थैतिक दाब है।

- **तापमानः** भूमि या स्थलीय पारितंत्रों के विपरीत महासागरों में लवणता की तरह तापमान भी लगभग स्थिर रहता है। यह ध्रुवीय समुद्रों में लगभग 2° से. से लेकर उष्णकटिबंधों में 32° से. तक होता है। समुद्र के किसी भी भाग में तापमान में परिवर्तन प्रायः 6° से. से अधिक नहीं होता।
- **पोषकों की सांद्रताः** समुद्री पर्यावरण में घुले हुए पोषकों की सांद्रता कम है। यह सांद्रता बहुत कम मात्रा में होने के कारण यह भाग प्रति अरब (ppb) में मापी जाती है, जबकि लवण, जैसे कि सोडियम क्लोराइड, भाग प्रति हज़ार (ppt) में मापे जाते हैं। पोषकों की यह अल्प-मात्रा समुद्री प्राणियों की आबादी को निर्धारित करने में प्रमुख सीमाकारी कारक के रूप में काम करती है (देखिए तालिका 8.1)।
- **घुली हुई गैसेंः** समुद्री परितन्त्र घुली हुई ऑक्सीजन और कार्बन डाइऑक्साइड के विशाल भण्डारों के रूप में कार्य करते हैं, जो क्रमशः जिस हवा में हम सांस लेते हैं उसके और वायुमंडल के तापमान के संघटन को निरंतर नियमित करने में सहायता करते हैं।
- **क्षारता** (Alkalinity) : धनायनों का वियोजन बल (dissociation force) ऋणायनों के वियोजन बल से कहीं ज्यादा होने के कारण समुद्र क्षारीय होता है। इसके अलावा, यह उभयप्रतिरोधित (buffered) होता है और सामान्यतया इसकी pH 8.2 होती है और इसलिए यह pH में परिवर्तनों का प्रतिरोध करता है।
- **दाबः** गहराई के साथ-साथ जलदाब बढ़ता है जो पृष्ठ पर एक वायुमंडल से लेकर सबसे अधिक गहराई पर 1000 वायुमंडल तक होता है। ज़मीन की अपेक्षा समुद्र में होने वाले दाब परिवर्तन कई गुणा ज्यादा हैं और इसलिए इनका जीवन के वितरण पर भारी-प्रभाव पड़ता है। पृष्ठ जल का दाब ज्यादा नहीं होने के कारण जीव वहीं तक सीमित हैं। दूसरे जीव अधिक गहराइयों के लिए अनुकूलित हैं।
- **सांतत्य या अविच्छिन्नताः** समुद्र एक सांतत्य जलराशि है। सभी महासागर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। ये महासागर हैं: प्रशांत महासागर, हिन्द महासागर, उत्तर ध्रुवीय और दक्षिण ध्रुवीय महासागर। फिर भी ऐसा लगता है कि तापमान, लवणता और गहराई समुद्री जीवों की मुक्त गति के बाधक सिद्ध होते हैं।
- **गहराईः** समुद्र बहुत गहरा है। विभिन्न क्षेत्रों में इसकी गहराई बदलती रहती है। आम तौर पर जीवनधारी सभी गहराइयों पर मिलते हैं, लेकिन महाद्वीपीय शैल्फ और द्वीपों पर अधिक सीमित है।
- **धाराएंः** धाराओं के जरिए समुद्र लगातार परिसंचरण करता है। वे पवन-चालित पृष्ठ धाराएं हो सकती हैं या अधिक गहरी धाराएं भी हो सकती हैं जो तापमान लवणता में परिवर्तनों का नतीजा है।
- **तरंगें और ज्वारः** समुद्र कई प्रकार की तरंगों और ज्वार-भाटों से प्रभावित है। ये ज्वार-भाटे सूर्य और चन्द्र के खिंचाव से पैदा होते हैं।
- **तटीय मंडल में पोषकों का परिसंचरणः** तटीय क्षेत्रों में समुद्र तली से ऊपरी सतह को पोषकों का परिसंचरण दो प्रक्रमों से होता है
  - (i) उत्प्रवाह–जहां पवनें पृष्ठ-जल को अपतट की ओर ले जाती हैं। हटाए हुए पृष्ठ-जल की जगह लेने के लिए गहराई से पोषकों से भरपूर ठंडा पानी आ जाता है (चित्र 8.15)
  - (ii) बहिःप्रवाह–जहां समुद्र ज्वारनदमुख से आ रहे पोषण से भरपूर पानी से समृद्ध होता है।

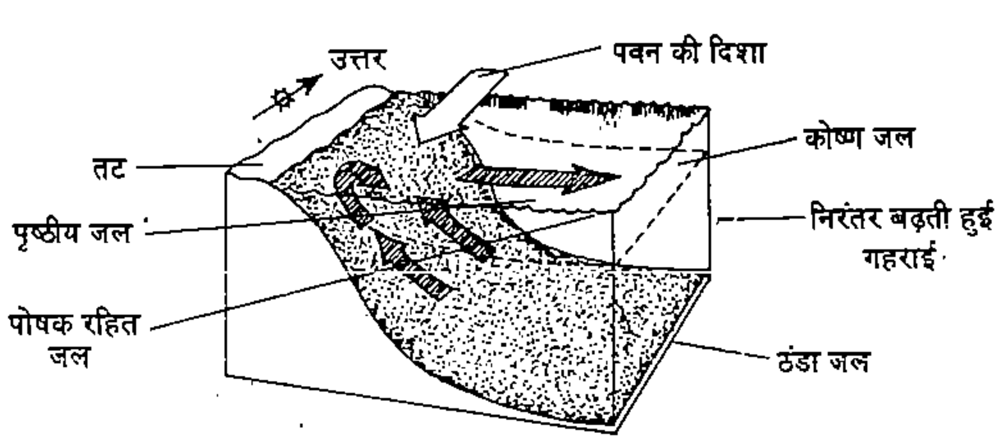

चित्र 8.15 : उत्तरी गोलार्ध में तटीय उत्प्रवाह। उत्प्रवाह के दौरान पोषक समृद्ध पानी ऊपरी पृष्ठ जल की ओर जाता है, जो कि अल्प-पोषकों वाला है। तट के साथ-साथ पोषकों का परिसंचरण उत्पादकों की और फिर उपभोक्ताओं की संख्या वृद्धि के लिए नाटकीय रूप से अनुकूल है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम के खंड 4 की इकाई 15 में आपने पढ़ा कि झीलों की तरह महासमुद्र अनुक्षेत्र वर्गीकरण दर्शाते हैं। पहले हम महासागरों के विभिन्न मंडलों और क्षेत्रों का वर्णन करेंगे और फिर उनमें मिलने वाले जीवजात के बारे में बताएंगे।

8.5.2 महासागर के जीवन मण्डल

समुद्री आवास दो भिन्न मंडलों में पहचाना जा सकता है (1) नितलस्थ मंडल–जिससे महासागर का विभिन्न गहराइयों वाला बेसिन बनता है भले ही गहराई कुछ भी हो (2) वेलापवर्ती मंडल–जो मुक्त जल मंडल को दर्शाता है, बेसिन को भरता है (देखिए चित्र 8.16)।

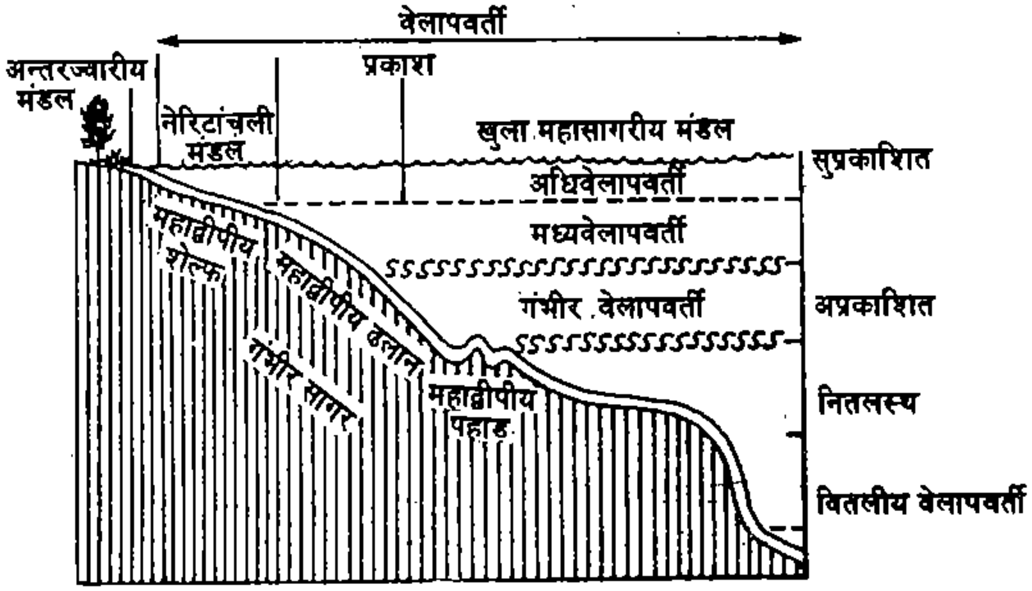

चित्र 8.16 : समुद्री पारितन्त्र का संगठन

I) नितलस्थ मंडल

नितलस्थ मंडल को क्षैतिज रूप से दो उप-मंडलों में बांटा गया है। इन्हें चित्र 8.17 में महाद्वीप से लगे हुए समुद्री आवास के एक अनुप्रस्थ काट के भाग में दिखाया गया है।

नितलस्थ मंडल का आकार मोटे तौर पर एक उल्टे हैट की तरह होता है। सबसे ऊपरी (i) अतिवेलांचली मंडल कहलाता है। यह पुलिन (बीच) से महासागर की कोर तक का भाग है। इससे पीछे (ii) वेलांचली मंडल है, जो ऊच्च और निम्न ज्वार स्तरों के बीच का क्षेत्र है और इसलिए जिसे अंतर्राज्वारीय मंडल भी कहते हैं। वेलांचली मंडल महासागर का तट है। इसके बाद (iii) उप-वेलांचली या महाद्वीपीय शेल्फ है, जो वेलांचली मंडल से लेकर महाद्वीपीय ढाल शुरू होने तक फैला हुआ है। महाद्वीपीय शेल्फ पानी के अंदर महाद्वीप का ही विस्तार है और 125 से 200 मीटर की गहराई तक है। महाद्वीपीय शेल्फ के बाद एक तेज उतराई आती है और यह (iv) महाद्वीपीय ढलान कहलाती है, जो कि भूवैज्ञानिक रूप से अस्थिर हो सकती है। इस क्षेत्र में गहरे खड्ड और खाइयाँ हैं जो अंतर्वलीय उदभेदनों और एवलांशों से बनती हैं। गभीर सागरी मंडल 200 मीटर गहरा होता है और 3000 या 4000 मीटर की गहराई तक तेजी से ढलता है। इस मंडल से तली और भी कई हज़ार मीटर तक जाती है और लगभग 6000 मीटर पर बराबर होकर चौड़ा सपाट मैदान बना देती है, जो (v) वितलीय मैदान हैं, जहां तापमान कभी भी 4° से. से ऊपर नहीं होता।

II) वेलापवर्ती मंडल

समुद्र बेसिन में भरा पानी वेलापवर्ती मंडल बनाता है, जो दो मंडलों में बांटा गया है। (i) नेरिटांचली मंडल, जो उपवेलांचली या महाद्वीपीय शेल्फ के ऊपर स्थित है। यह वेलांचली समुद्र की ओर से शुरू होता है और 200 मी. की गहराई तक महाद्वीपीय शेल्फ की कोर तक जाता है। इसके बाद (ii) गहरा खुला समुद्र या महासागरीय मंडल है, जो प्रकाश वेधन की गहराई के आधार पर बांटा गया है, जैसी कि पहले भागों में महासागरों के प्रकाश के भौतिक-रासायनिक गुण बताते समय चर्चा की गई थी।

खुले महासागर का ऊपरी प्रदीप्त मंडल अधिवेलापवर्ती मंडल भी कहलाता है। इस प्रकार सुप्रकाशी वेलापवर्ती महासागर का नाम अधिवेलापवर्ती पड़ा। अप्रकाशी वेलापवर्ती मंडल निम्नलिखित तीन क्षैतिज मंडलों में बांटा गया है: मध्यवेलापवर्ती, गभीरवेलापवर्ती और वितलवेलापवर्ती मंडल। गभीरवेलापवर्ती और वितलवेलापवर्ती मंडलों में रोशनी नहीं होती। मध्यवेलापवर्ती अपेक्षाकृत कम अंधकार वाला है, लेकिन प्रकाश संश्लेषण के लिए यह रोशनी पर्याप्त नहीं होती।

8.5.3 महासागर के जीवजात

संमुद्र में जीवन विशेषतया प्रचुर नहीं है, हालांकि जीवों की विविधता वहुत ज्यादा है (चित्र 8.17)। प्राणियों का लगभग प्रत्येक प्रमुख वर्ग और शैवाल का प्रत्येक प्रमुख वर्ग महासागर में कहीं न कहीं पाए जाते हैं। संवहनी पौधे और कीट इसके अपवाद हैं। इन दोनों के समुद्री प्रतिनिधि थोड़े से ही है, हालांकि ज्वारनदमुखों में यह खूव पाये जाते हैं। जीवन रूपों में गहराई के हिसाब से मिलने वाले अंतर के आधार पर समुद्री पारितंत्रों के विस्तार को वेलांचली, नेरिटांचली, वेलापवर्ती और नितलस्थ मंडलों में वांटा गया है।

I) वेलांचली मंडल के जीवजातः यह मंडल समुद्री पारितंत्रों का तटीय क्षेत्र है और इसे तरंगों तथा ज्वारभाटों की प्रचण्डता, जल-स्तर के उतार-चढ़ाव और तापमान, प्रकाश, लवणता तथा आर्द्रता यानी नमी की परिवर्तनशीलता झेलनी पड़ती है। आम वोल-चाल की भाषा में अतिवेलांचली मंडल को पुलिन (वीच) कहते हैं। इस मंडल की तली में पर्याप्त प्रकाश घुस जाता है। ज्वार तालों को छोड़कर, यह क्षेत्र दिन में दो वार खुला और निमग्न रहता है। इस प्रकार यहां रहने वाले प्राणी एक कठिन पर्यावरण में रहते हैं और इसलिए यह जरूरी है कि या तो आवर्ती शुष्कन (सूखने) के प्रतिरोधी रहें अथवा जल स्तर तक विल वना सकने में समर्थ हो। इसलिए यह मंडल अंतराज्वारीय मंडल भी कहलाता है।

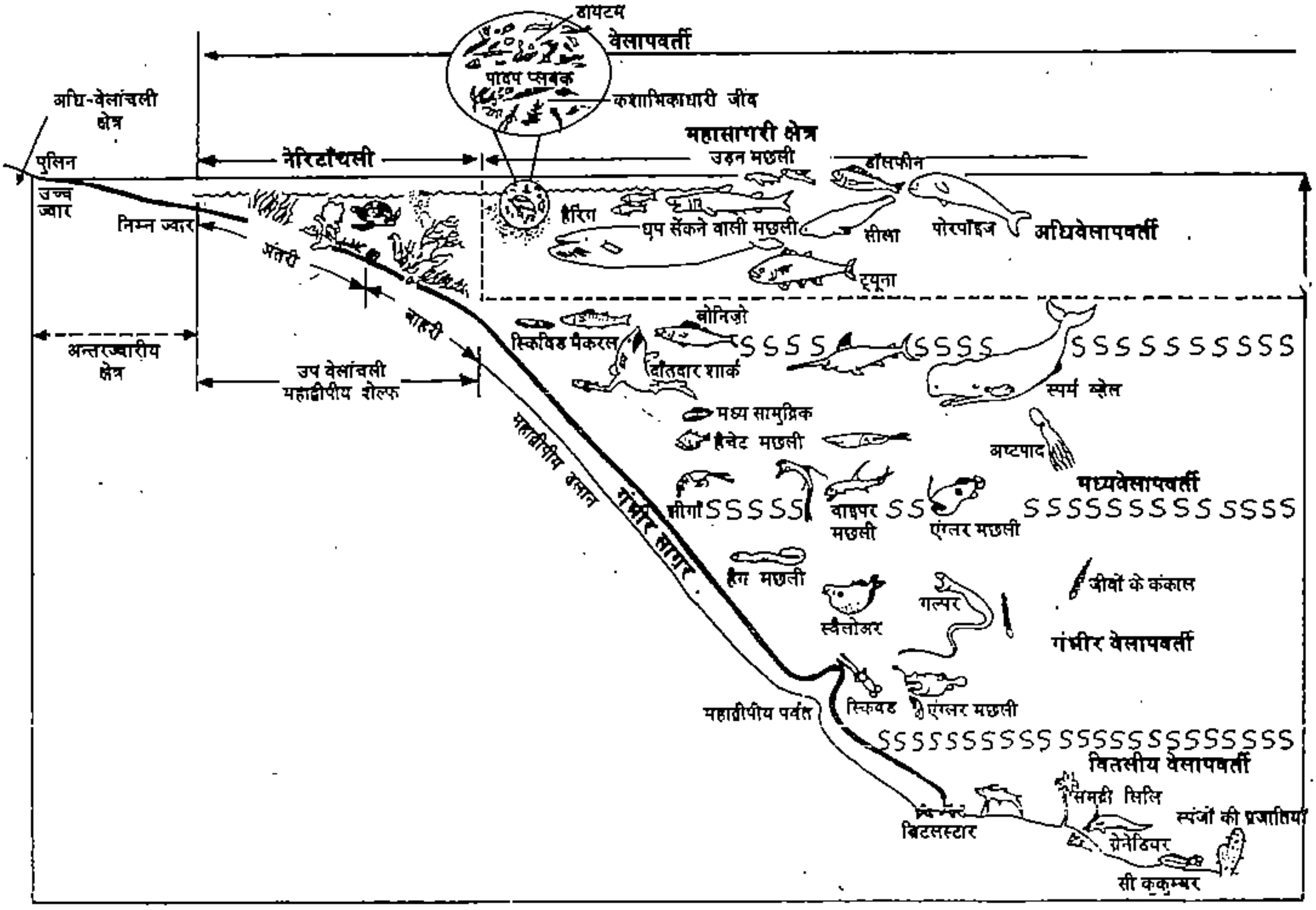

चित्र 8.17 : प्रत्येक मंडल या क्षेत्र में पाए जाने वाले समुद्री पारितंत्र के प्रतिनिधि जीवजात (जीव मापक्रम के अनुसार नहीं बनाए ग।

यह अंतराज्वारीय या वेलांचली मंडल एक उच्च उत्पादकता वाला क्षेत्र है। इसका समृद्ध समुदाय है जिसके सदस्य अत्यंत प्रचुर हो सकते हैं।

प्ररूपी वेलांचली मंडल नाम की कोई चीज़ नहीं है। दो तरह के पुलिन होते हैं। चट्टानी अंतराज्वारीय पुलिन रेतीले पुलिन या पंक मैदान से भिन्न होता है। फिर भी सभी में कुछ बातें समान हैं। समुद्र में किसी भी दूसरी जगह की बजाय यहां तरंग क्रिया जोरदार है। आविलता अधिक होती है और अवस्तर का तेजी से अपरदन होता है। पौधों की थोड़ी-सी जातियां हैं। जो हैं वे सुरक्षापूर्वक अवस्तर से संलग्न रहती हैं और उनकी संख्या बड़ी हो सकती है। यहां का प्राणी समुदाय अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तरंगों द्वारा बहाकर लाए गए अपरद की बड़ी मात्रा पर निर्भर है। यहां पाए जाने वाले सामान्य प्राणी घोंघे, क्लैम (सीपी), वार्नेकल, क्रस्टेशियाई, एनेलिड्स, समुद्री ऐनीमोन और समुद्र अर्चिन हैं। यहां के प्राणी ज्वारभाटों के अनुरूप अनुक्षेत्र वर्गीकरण दर्शाते हैं। शुष्कन (सूखे) के प्रति कम प्रतिरोधी प्राणियों की अपेक्षा अधिक प्रतिरोधी प्राणी प्रायः उच्च स्तर पर मिलते हैं।

II) नेरिटांचली महासागरीय मंडल का जीवजात

यह मंडल महासागर के कुल क्षेत्रफल का 75 प्रतिशत है। इस मंडल में प्रकाश काफी गहराई तक वेधन करता है और यहां पोषकों की सांद्रता ज्यादा है। इन दो कारणों से इस क्षेत्र में जातियां अपेक्षाकृत अधिक होती हैं और उत्पादकता उच्च है (चित्र 8.17)।

खुले समुद्र की बजाए इस क्षेत्र में समुदाय अधिक समृद्ध और अधिक विविध है (चित्र 8.17)। संसार के किसी दूसरे क्षेत्र में जीवन की ऐसी किस्में उपलब्ध नहीं हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों तक में नहीं है। डायनोफ्लेजिलेट्स और डायटम सबसे अधिक उत्पादक पादपप्लवक हैं, हालांकि उथले क्षेत्रों में तली से संलग्न भूरे और हरे शैवाल भी महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यहां के प्राणीप्लवक प्रायः वेलापवर्ती मंडल से मिलते-जुलते हैं हालांकि शुद्ध रूप से खुले समुद्र वाली कुछ जातियों का स्थान नेरिटांचली जातियां ले लेती हैं। खुले समुद्र की तुलना में अस्थायी प्राणीप्लवक यहां अधिक पाये जाते हैं।

नेरिटांचली मंडल अथवा महाद्वीपीय शेल्फ के ऊपर के महासागर में तरणक विविध हैं। अनेक ऐसे हैं जिनकी जानकारी आम है क्योंकि इनमें लगभग सभी व्यापारिक जातियां और व्हेल, सील, समुद्री ऊदबिलाव, समुद्री सांप और बड़े स्क्विड भी शामिल हैं। मछलियां बहुत हैं और इनमें शार्क की अनेक जातियां तथा हैरिंग-जैसी जातियां (सार्डीन, हरिंग), कॉड और उनके संबंधी (हैडॉक और पोलेक), समुद्र कछुए और सामन, चिपिट, मीन (सोल, हैलिबट) और बांगडा सहित टूना तथा बोनिटो भी शामिल हैं।

नेरिटांचली मंडल का नितलस्थ भाग उपवेलांचली क्षेत्र कहलाता है। इसमें प्राणियों की ढेरों किस्में हैं जिसमें सीपी (क्लैम), श्रिम्प, घोंघे महाचिंगट (लॉब्स्टर), केकड़े (क्रैब), समुद्री कर्कटी (कुकम्बर), तारामीन (स्टारफिश), भंगुरतारा (ब्रिटल स्टार), ऐनीमोन, स्पंज, ब्रायोजोआ, एनिलिड और फोरामिनिफेरा आदि शामिल हैं। यहां भौतिक कारक अधिक परिवर्तनीय हैं इसलिए अधिक गहरे पानी की तुलना में ये प्राणी अधिक विविधता दर्शाते हैं। तली चट्टानी, रेतीली या पंकिल हो सकती है। इस क्षेत्र के उपवेलांचली मंडल में तापमान का अंतर अधिक गहरे पारितंत्रों की तुलना में अधिक होता है। भौतिक पर्यावरण में अंतर वहां पाए जाने वाले नितलस्थ समुदाय में प्रतिबिंबित होते हैं।

III) वेलापवर्ती मंडल के जीवजात

कुल समुद्र पृष्ठ का 90 प्रतिशत वेलापवर्ती क्षेत्र है। इससे पहले जिन दो क्षेत्रों की चर्चा की गई है, उसकी अपेक्षा इस क्षेत्र में जातियां कम हैं और जीवों की संख्या भी कम है (चित्र 8.17)। इस मंडल की जातियां विशिष्ट हैं। समुद्र की अविच्छिन्नता या निरंतरता के कारण यहां पाए जाने वाले जीवों के लिए पर्यावरण एक समान और स्थायी है।

सबसे प्रचुरता में पाए जाने वाले वेलापवर्ती पादपप्लवक केवल डायनोफ्लैजिलेट और डायटम हैं, जो मुख्य प्रकाश संश्लेषी भरक हैं, दूसरे मांसभोजी हैं। अपरदभोजी जैसे कि समुद्री लिली समुद्र अधरतल (फर्श) से ऊपर उठ आते हैं; जबकि सीपियाँ और नालकृमि पंक में घुसे रहते हैं। समुद्री कुकम्बर और समुद्री अर्चिन अपरद तथा जीवाणु खाते हुए अधस्तल पर रेंगते हैं तथा मांसाहारी भंगुरतारा और केकड़ों का आहार बनते हैं।

बोध प्रश्न 4

I) नीचे दिए गए कथन सही हैं या गलत, बताइए:

क) समुद्री पारितंत्रों का कुल जीवभार सारे अलवणजल पारितंत्रों के कुल जीव-भार से कहीं अधिक है।

ख) अलवणजल परितंत्रों में लवण मात्रा 5 ppt(भाग प्रति हज़ार) है, समुद्री पानी में 35 ppt से ज्यादा और खारे पानी के परितंत्रों में 5 से 35 ppt के बीच है।

ग) समुद्री परितंत्रों में सोडियम क्लोराइड को छोड़कर अन्य पोषक बहुत कम सांद्रता में पाए जाते हैं।

घ) महासागर हवा के मुख्य आशय या भंडार हैं और इस ग्रह पर वायु के संगठन के लिए एकमात्र वे ही उत्तरदायी हैं।

II) उपयुक्त शब्द प्रयोग में लाते हुए रिक्त स्थान भरिए:

क) उल्टे टोप की तरह दिखाई देने वाले नितलस्थ मंडल में छह क्षैतिज भाग इस प्रकार होते हैं, (i) .... मंडल (ii) .... मंडल (iii) .... मंडल या महाद्वीपीय शेल्फ (iv) .... और (v) .... मंडल। दोनों को मिलाकर (vi) .... और (vii) .... मंडल के रूप में वर्गीकृत किया जाता हैं जो 200 मी. की गहराई से शुरू होता है और .... मी. की गहराई तक वड़ी तेजी से ढलता है। इसके वाद एक चपटा चौड़ा मंडल आता है जो (vi) .... कहलाता है जहां तापमान हमेशा 4° से या उससे नीचे रहता है।

ख) महासागरीय मंडल उदग्र रूप से चार मंडलों मे वांटा जाता है, जिनके नाम हैं (i) .... या सुप्रकाशी मंडल, (ii) .... मंडल, (iii) .... मंडल, और (iv) मंडल। (ii), (iii) और (iv) मंडल मिलकर अप्रकाशी मंडल के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं।

III. कॉलम क में दिए गए महासागर मंडलों का कॉलम ख में दिए गए उनके अभिलक्षणों से मिलान कीजिए।

	कॉलम क		कॉलम ख
1.	वेलांचली मंडल	क)	अंधेरे मंडल हैं, जहाँ कभी-कभार संदीप्तिशील मछली से प्रकाश की चौंध होती है। ये मछलियां इस मंडल में नियमित रूप से रहती हैं।
2.	नेरिटांचली मंडल के तरणक	ख)	पादपप्लवक नहीं होते, इससे नीचे रहने वाले प्राणी या तो मांसाहारी अथवा अपरद भोजी होते हैं
3.	वेलापवर्ती मंडल के तरणक	ग)	यह उच्च उत्पादकता वाला सरल समुदाय का क्षेत्र है। इस समुदाय के अनेक सदस्य संख्या में अत्यधिक हो सकते हैं।
4.	वेलापवर्ती मंडल से नीचे	घ)	खुले समुद्र में सवसे वड़े प्राणी होते हैं, जैसे कि अस्थि मीन, शॉर्क, व्हेल।
5.	गभीरवेलापवर्ती और वितलवेलापवर्ती मंडल	ङ)	इसमें मछली उद्योग के लगभग सभी व्यापारिक जातियाँ शामिल हैं।

8.6 ज्वारनदमुख

सभी नदियाँ और झीलें आखिर में समुद्र में जा गिरती हैं। लेकिन, कुछ नदियाँ वास्तविक समुद्र में मिलने से पूर्व अपना वहुत ही विशेष मंडल वना लेती हैं। यह मंडल ज्वारनदमुख कहलाता है। ज्वारनदमुख नदी और समुद्र के वीच एक संक्रमण मंडल है। यह एक ऐसी संक्रमिका (ईकोटोन) का प्रतिनिधित्व करता है, जिसके वेजोड़ पारिस्थितिकीय लक्षण और जीवजात समुदाय हैं। ज्वारनदमुख विश्व के सवसे ज्यादा उत्पादी पारितंत्र हैं। ज्वारनदमुख तटीय महासागर का एक अर्ध-संवृत भाग है जिसमें खारा पानी होता है। यह एक ओर तो समुद्र से मुक्त संवंधित है और दूसरी तरफ नदी के मुहाने से जुड़ा है तथा अलवणजल पाता है। भारत में, केरल के तट के साथ-साथ खूव सारे ज्वारनदमुख देखे जा सकते हैं।

8.6.1 ज्वारनदमुखों के लक्षण

ज्वारनदमुखों के भौतिक-रासायनिक गुणों में अनेक प्राचलों में वहुत विभिन्नताएं हैं और यह कभी-कभी जीवों के लिए एक तनाव-भरा पर्यावरण वन जाता है। यह एक कारण है जिससे इस क्षेत्र में छोटे जीवों की अपेक्षा वड़े जीवों की संख्या कम है।

ज्वारनदमुखीय पर्यावरण का सवसे प्रभावी लक्षण लवणता की घट-वढ़ है। हालांकि ज्वारनदमुख में कभी-कभी

लवणता प्रवणता होती है लेकिन स्थलाकृति के साथ, ज्वार-भाटों के साथ और अलवण जल की मात्रा के साथ प्रवणता के प्रतिरूप भी बदलते रहते हैं।

ज्वारनदमुखों में पंकिल अवस्तर प्रमुख हैं, जो प्रायः बहुत मुलायम हैं। कणों का निक्षेपण यानि जमा होना भी धाराओं और कणों की साइज से नियंत्रित है। अगर शक्तिशाली धाराएं चलती हैं तो अवस्तर स्थूल या मोटा (रेत) होगा, जबकि उस जगह जहां पानी शांत है और धाराएं कमज़ोर हैं महीन गाद जमा होगी। ज्वारनदमुख में इन कणों की उत्पत्ति स्थलीय और समुद्री, दोनों ही गति से उत्पन्न अनेक कार्बनिक पदार्थों से होती है। इसके फलस्वरूप संचित होने वाला अवस्तर बहुत समृद्ध है।

दूसरा महत्वपूर्ण चर, तापमान है, ज्वारनदमुख का तापमान घटता-बढ़ता रहता है। प्रबल वायुमंडलीय परिस्थितियों के अंतर्गत यह ज्यादा तेजी से गरम हो उठता है और ठंडा हो जाता है। इस अन्तर का दूसरा कारण आने वाले अलवणजल की मात्रा है। तापमान भी उदग्र रूप से बदलता है। पृष्ठ की तामपान परास सबसे ज्यादा है और अधिक गहरे पानी की तापमान परास सबसे छोटी है।

सभी कारक यानि कि लवणता, अवस्तर का गठन, तापमान, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा और उपलब्ध ऑक्सीजन तरंग क्रिया तथा धाराओं द्वारा नियंत्रित होते हैं। ज्वारनदमुखों में तरंग क्रिया छोटी होती है। इसके फलस्वरूप बारीक तलछटों का निक्षेपण या जमाव होता है और जड़ जमाए पौधों का विकास होता है।

ज्वारनदमुखों में धाराएँ मुख्य रूप से ज्वार-भाटा क्रिया और नदी प्रवाह से बनती हैं। आम तौर पर धाराएँ प्रणाली (चैनल) तक सीमित रहती हैं लेकिन वेग अनेक नॉट तक हो सकते हैं। मध्य में सबसे ज्यादा वेग होते हैं, जबकि तली और बगल के किनारे पर वेग सबसे कम होता है। ज्वारनदमुखों में अपरदन और निक्षेपण धाराओं के कारण होते हैं, जो एक प्राकृतिक चक्र है। फिर भी, ज्वारनदमुखों में अपरदन से निक्षेपण कहीं ज्यादा होता है इसलिए गाद इकट्ठी हो जाती है। साल के सूखे के समय के दौरान जल की गति भयंकर रूप से कम हो जाती है जिसकी वजह से प्रगतिरोध, ऑक्सीजन की घटी हुई मात्रा, शैवाल प्रस्फुटनों का बनना और मछलियों के मरने की घटनाएँ होती हैं।

ज्वारनदमुखों का पानी आविल होता है। इसका कारण पानी में निलम्बित में कणिकाओं का भारी संख्या में होना है। आविलता मुहाने के पास न्यूनतम है और स्थल की ओर बढ़ती दूरी के साथ-साथ बढ़ती जाती है। आविलता के प्रमुख पारिस्थितिकीय प्रभाव से प्रकाश के भेदन में उल्लेखनीय कमी हो जाती है। इसकी वजह से पादपप्लवक और नितलस्थ पौधों द्वारा किया जाने वाला प्रकाश संश्लेपण कम हो जाता है। इसका नतीजा होता है उत्पादकता में कमी। ज्वारनदमुख-जल एक सबसे महत्वपूर्ण कारकों में ऑक्सीजन भी एक है। तापमान और क्षारता बढ़ने के साथ-साथ पानी में ऑक्सीजन की घुलनशीलता घट जाती है इसलिए पानी में ऑक्सीजन की परिशुद्ध यानि ठीक मात्रा इन प्राचलों के साथ बदलती है। तलछटों की उच्च कार्बनिक मात्रा और उच्च जीवाणवीय संख्या पानी से ऑक्सीजन की भारी माँग बढ़ जाती है। इसलिए ज्वारनदमुखीय तलछटों में जब तक कणों की साइज बड़ी न हो और/या उसमें बिलकारी प्राणी भारी संख्या में न हों वह तलछट पहले कुछ सेंटीमीटरों के नीचे की शेष सभी परतें ऑक्सीजन रहित होती हैं। बिलकारी प्राणियों में घोस्ट श्रिम्प, **कैलिएनासा** और **हेमिकॉर्डेट** कृमि; **बैलेनॉग्लोसस** शामिल हैं, जो अपनी गतिविधियों से निचली तलछट परतों का ऑक्सीजनित करते हैं।

8.6.2 ज्वारनदमुखों के जीवजात

ज्वारनदमुखी समुदाय तीन घटकों का मिश्रण है। ये हैं–समुद्री जल, अलवणजल और खारा पानी। लेकिन कुल मिलाकर ज्वारनदमुखीय विविधता अभी भी नदी या समुद्री समुदाय की विविधता से कम है। इसका कारण ज्वारनदमुख के भौतिक पर्यावरण में बहुत भारी फेर-बदल है। इस प्रकार, ज्वारनदमुखों की भारी उत्पादकता एक संकरे आधार पर बनी है।

ज्वारनदमुख के पौधे चार मूल प्रकार के हैं : पादपप्लवक, उपांत कच्छ वनस्पति, पंक-मैदान शैवाल और उपांत कच्छ वनस्पति पर उगने वाले अधिपादपीय पौधे। पानी में आविलता के कारण पादपप्लवक सामान्यतया आम नहीं है। फिर भी कुछ शैवालों के जात यहाँ प्रचुर पाये जाते हैं। इन शैवालों में **स्पार्टिना** और **सैलिकार्निया** शामिल हैं। अधिकांश ज्वारनदमुखीय शैवालों की उत्पत्ति समुद्री है। आम वंशों (जेनरा) में **उल्वा, एन्टिरोमॉर्फा, कीटोमॉर्फा** ओर **क्लैडोफोरा** शामिल हैं। ये प्रायः ऋतु के अनुसार प्रचुर संख्या में पाए जाते हैं। कुछ ऋतुओं में ये गायब हो जाते हैं।

उपांत और कच्छ वनस्पति प्रत्यक्ष ज्वारनदमुखीय पौधे हैं। इनमें मैंग्रोव और कच्छ घासें तथा कच्छ निगम्न तंतुमय उपनिवेशी हरे शैवाल शामिल हैं। कुछ प्राणी इनको सीधे ही खाते हैं लेकिन एक भारी हिस्से की

अपरद के रूप में खपत होती है। निम्न ज्वार-भाटा पर पंकिल-पंकिल मैदान खुल कर बाहर आ जाते हैं और इस जगह डायटम और तंतुमय नीले-हरे शैवाल द्वारा गहन प्रकाश संश्लेषण होता है। पंक मैदान का भूरा रंग पंक में मौजूद कार्वनिक पदार्थ के कारण तो है ही लेकिन इसकी दूसरी वजह डायटमों की संख्या भी हो सकती है।

ज्यारनदमुखों और कच्छों तथा अनुपों जैसी संबंधित गीली भूमियों के प्राणी न केवल अपने पर्यावरण के निवासियों के नाते अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं बल्कि समुद्री समुदायों और मानव अर्थव्यवस्था में अपनी भूमिका के लिए महत्वपूर्ण हैं। सर्वाधिक प्रसिद्ध ज्यारनदमुखीय प्राणी शुक्ति, सीपी (क्लैम), महाचिंगट और केकड़े आदि हैं, जो अपरदभोजी हैं। अनेक कीट डिम्भक (लार्वा), एनेलिड कृमि और घोंघे अलवण जल से ज्यारनदमुख में आ जाते हैं। ज्यारनदमुख में अधिकांश तट-समीपी प्राणीप्लवक भी पाए जाते हैं। इसके अलावा, अनेक प्रकार के बड़े प्राणी मिलते हैं। इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ज्यारनदमुख चिंगट और केकड़ों से लेकर मछलियाँ तक अनेक समुद्री प्राणियों के नर्सरी स्थल हैं।

ज्यारनदमुखों में उच्च पोषक स्तर की उपस्थिति के कारण अपरद खाद्य शृंखला के भीतर ही बहुत उच्च-स्तरीय उत्पादन होता है। जीवाणुओं द्वारा पोषक पदार्थ बहुत ऊँची दर पर तोड़ा जाता है और घुले हुए रूप में पुनः चक्रित किया जाता है। ज्यारनदमुख में होने वाली लवणता की प्रतिकूल परिस्थितियों के लिए अनुकूलित पौधे उत्पादकता का उच्च स्तर बनाए रखते हैं। पोषक के भरपूर कार्बनिक अपरद की मात्रा से भी अपरदभोजी प्राणियों के लिए उत्पादकता का उच्च स्तर बना रहता है।

ज्यारनदमुखीय पारितंत्र जटिल और महत्वपूर्ण हैं। ज्यारनदमुख नौ-परिवहन अर्थात् जहाजरानी के लिए नाली के रूप में काम आते हैं और मानव इतिहास में शहरों के बसने के काम भी आते रहे हैं। इन दो वजह से ये असुरक्षित भी हैं। ज्यारनदमुखों में ऐसे प्राणी रहते हैं जो परिवर्तनशील पर्यावरण के लिए अनुकूलित हैं लेकिन उनकी अनुकूल स्थिति ने किसी और पारितंत्र की अपेक्षा भौतिक रूप से बड़े-बड़े मानव परिवर्तन किए हैं। बहुत से लोग ज्यारनदमुखों को ऐसे क्षेत्रों के रूप में देखते हैं जिन्हें भरकर उनपर निर्माण किया जा सकता है या जिन्हें कचरा अथवा मलबा, सीवेज और औद्योगिक अपशिष्ट डालने के काम में लाया जाता है। यह सही नहीं है। ज्यारनदमुखों की विशाल उत्पादकता को मनुष्यों के लिए खाद्य स्रोत के रूप में काम में लाया जा सकता है। वास्तविकता यह है कि सुदूर पूर्व में यह उत्पादकता एक अत्यंत महत्वपूर्ण खाद्य स्रोत है। यह भी सही है कि प्रौढ़ मछलियाँ अंडे देने के लिए अर्थात् अंडजनन के लिए ज्यारनदमुखों का ही सहारा लेती हैं इसलिए विश्व के लगभग सभी प्रमुख समुद्री मत्स्य उद्योग बरकरार रहने के लिए पूरी तरह से ज्यारनदमुखों पर निर्भर हैं।

बोध प्रश्न 5

I) नीचे दिए गए कथन सही हैं या गलत, बताइए :

क) ज्यारनदमुखीय आवासों में लवण की मात्रा ऊँची होती है।

ख) ज्यारनदमुखों में बड़े जीव नहीं होते।

ग) ज्यारनदमुख जीवमंडल के सबसे अधिक उत्पादक पारितंत्र हैं।

घ) ज्यारनदमुख कई समुद्री मछलियों के लिए भी नर्सरी स्थल हैं।

II) उपयुक्त शब्द प्रयोग में लाते हुए रिक्त स्थान भरिए :

क) ज्यारनदमुखों में पाए जाने वाले पौधों की चार श्रेणियाँ हैं :
(i)………… (ii)………… (iii)………… और
(iv)………… पौधे।

ख) ज्यारनदमुख एक ………… और जटिल पारितंत्र है क्योंकि उनकी पारिस्थितिकी मानव गतिविधियों द्वारा आसानी से असंतुलित हो सकती है।

8.6 सारांश

- ऐसे पारितंत्र जिनमें पानी मुख्य आवास है जलीय पारितंत्र कहलाते हैं। तीन प्रकार के जलीय पारितंत्र होते हैं–अलवणजल, लवणजल और खारा जल पारितंत्र।
- अलवणजल भी दो प्रकार के होते हैं। स्थिरजल पारितंत्र सरो कहलाते हैं। विभिन्न झीलें, रुद्धजलागार और गीली भूमियाँ इसके उदाहरण हैं। बहता हुआ पानी सरित पारितंत्रों का लक्षण है। नदियाँ इसकी उदाहरण हैं।

- अतिपोषित झीलें प्राचीन झीलें हैं। इनमें भरपूर पोषक मात्रा, कम घुली हुई ऑक्सीजन होती है। यह उथले उपांत होते हैं और इनकी उच्च उत्पादकता होती है। अल्पपोषित झीलें गहरी, कम कोष्ण, ऑक्सीजन की कम मात्रा और कम उत्पादकता वाली होती हैं।
- नदियाँ वे प्रमुख जलमार्ग हैं जो वर्षा के फालतू पानी को ज़मीन से समुद्र में ले जाती हैं। प्रत्येक नदी का एक धीमे बहाव वाला एक तेज बहाव वाला मंडल या क्षेत्र होता है। धीमी गति वाले मंडल में जीवों की वृद्धि को सीमित करने वाला एक प्रमुख कारक घुली हुई ऑक्सीजन की उपलब्धता है। तेज गति वाले पानी में जलधारा की चाल प्राणियों की वृद्धि के लिए मुख्य सीमाकारी कारक बन जाती है।
- लवणीय पारितंत्रों में विश्व के सभी महासागर आते हैं और इसमें पृथ्वी के कुल जीवभार का प्रमुख भाग होता है। महासागर वायुमंडल में हवा और जलवाष्प के मुख्य आशय या भंडार भी हैं।
- ज्वारनदमुख खारे पानी के पारितंत्रों का मुख्य उदाहरण है। उनमें नमक की मात्रा 5 से 35 ppt (भाग प्रति हज़ार) के बीच बदलती रहती है। ये विश्व के सबसे अधिक उत्पादक पारितंत्र भी हैं। ये सबसे बढ़िया तरीके से संतुलित पारिस्थितिकीय तंत्र भी हैं। इसका कारण यह है कि ज्वारनदमुखीय पारितंत्रों के प्रकार्यों को नियंत्रित करने वाले कारक एक-दूसरे पर जटिल रूप से निर्भर हैं। ऐसे पारितंत्रों में मलवा, सीवेज या औद्योगिक अपशिष्ट डालने का निर्णय लेते समय मनुष्य को सावधानी बरतनी चाहिए।

8.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) उष्णकटिबंधीय झीलें ग्रीष्म ऋतु के दौरान सुस्पष्ट तापीय स्तरण क्यों नहीं दर्शातीं?

....

....

....

2) रुद्धजलागार झीलों से किस प्रकार भिन्न हैं? उनमें क्या समानताएँ हैं?

....

....

....

3) सरो और सरित पारितंत्रों में क्या अंतर है?

....

....

....

4) नदी झील से किस तरह भिन्न है?

....

....

....

5) वे छह कौन से लक्षण हैं, जिनके आधार पर अल्पपोषित झीलों की अतिपोषित झीलों से तुलना की जाती है?

....

....

....

6) समुद्री पारितंत्रों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण भौतिक-रासायनिक कारकों के नाम बताइए।

....

....

....

8.9 उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

I) क) सही ख) सही ग) सही घ) सही

II) क) ङ
ख) घ
ग) क
घ) ग
ङ) ख

बोध प्रश्न 2

I) क) अभिसर, मध्यसर, अधःसर
ख) क्षतिपूर्ति बिन्दु या स्थल
ग) वेलांचली, खुला जल और नितलस्थ
घ) छह
ङ) सरोवरी, गंभीर

II) क) सही ख) सही ग) सही घ) सही

बोध प्रश्न 3

I) क) √ ख) √ ग) √ घ) √

II) क) चार, तीन
ख) धारा
ग) व्यापक
घ) भूमि

बोध प्रश्न 4

I) क) सही ख) सही ग) सही घ) सही

II) क) (i) अतिवेलांचली, (ii) वेलांचली, (iii) उपवेलांचली, (iv) महाद्वीपीय ढलान (v) महाद्वीपीय उत्थान, गभीर सागर, 6,000 (vi) वितलीय मैदान

ख) i) अधिवेलापवर्ती
ii) मध्यवेलापवर्ती
iii) गंभीरवेलापवर्ती
iv) वितलवेलापवर्ती

III) 1) ग
2) ङ
3) घ
4) ख
5) क

बोध प्रश्न 5

I) क) सही ख) सही ग) सही घ) सही

II. क) i) पादपप्लवक
ii) उपांत कच्छ वनस्पति
iii) पंक-मैदान शैवाल
iv) अधिपादपीय

ख) असुरक्षित

अंत में दिए गए प्रश्नों के उत्तर

1) तापीय स्तरण का अर्थ तापीय प्रवणता के संदर्भ में पानी की परतों का वितरण है। लेकिन अगर किसी तरह भिन्न तापमान वाली परतें मिश्रित हो जाएँ यानी मिल जाएँ तो पानी में कोई प्रवणता नहीं रहेगी। उष्णकटिबंधीय झीलों में, बहुत गहरी झीलों को छोड़कर, परतों की मिश्रण दर बहुत तेज है।

2) रुद्धजलागार मनुष्य द्वारा कृत्रिम रूप से बनाए गए छोटे या बड़े जलाशय हैं। झीलें वे जलराशियाँ हैं जो चट्टानों में आवलनों या वलनों जैसे प्राकृतिक कारणों से बनी हैं।

3) सरो और सरित दोनों ही तंत्र जलीय पारितंत्र हैं। ठहरे हुए या स्थिर जल तंत्रों को सरों या सरोवरी पारितंत्र कहते हैं। झीलें इस तंत्र की उदाहरण हैं। बहते जल तंत्रों को सरित पारितंत्र कहते हैं। इसका उदाहरण नदियाँ हैं।

4) नदियाँ विवृत (अर्थात् खुले) विषमपोषी तंत्र हैं, जबकि झीलें संवृत (अर्थात् बंद) आत्म-निर्भर तंत्र हैं। झीलों के पोषकों का कई बार पुनः उपयोग किया जा सकता है, जबकि नदी के पौधों और प्राणियों को अस्थायी रूप से उपलब्ध पोषकों को काम में लाना आवश्यक है। इन पोषकों की केवल एक ही बार काम में लाये जाने की संभावना है।

5) जिन छह लक्षणों के आधार पर अल्पपोषित झीलों की अति पोषित झीलों से तुलना की जाती है, वे हैं : गहराई/पृष्ठ-क्षेत्रफल अनुपात, पोषकों का स्तर, प्राथमिक उत्पादन, जाति विविधता, ऑक्सीजन मात्रा और जलराशि की पारदर्शिता।

6) समुद्री पारितंत्रों पर असर डालने वाले बारह भौतिक-रासायनिक कारण इस प्रकार हैं :

लवणता, प्रकाश, तापमान, पोषकों की सांद्रता, घुली हुई गैसें, क्षारता, दाब, महासागरों का सांतत्य या निरंतरता, समुद्र की गहराई, समुद्र धाराएँ, ज्वारभाटा तरंगें और तटीय क्षेत्रों में पोषकों का परिसंचरण।

शब्दावली

वितल (abyssal) : गहरा पानी लगभग 1,000 मीटर नीचे

जलोढ़क (alluvium) : बाढ़ आने के बाद विछिन्न पदार्थों जैसे बजरी, गाद और कंकड का जमाव

नितलस्थ (benthic) : सागर अथवा झील के ऊपरी भाग

जैवभार (biomass) : जीवित पदार्थों का भार

जीवजात (biota) : एक क्षेत्र के जीव जन्तु तथा पेड़ पौधे एक साथ

केलौरी (caloric) : 1 ग्रा. जल का 1 सेल्सियस तापमान बढ़ाने के अपेक्षित उष्णता की मात्रा

मांसाहारी (carnivore) : वह जानवर जो भोजन के रूप में दूसरे जानवरों को खाता है।

आरोही, लता (climbers) : वृक्ष की शाखा आदि के सहारे ऊपर चढ़ने वाले पौधे

अपघटक जीव (decomposer) : बैक्टीरिया, शैवाल, कीड़े इत्यादि जीव जो मृत कार्बनिक पदार्थ के अपघटन से ऊर्जा प्राप्त कर उसे और अधिक सरल पदार्थों में बदल देते हैं।

वनोन्मूलन (deforestation) : वनों का काटा जाना

अपरद (detritus) : पौधों और जन्तुओं का ताजा अथवा विकारी (गला हुआ) कार्बनिक पदार्थ

टिब्बा (dunes) हवा के कारण बने हुए रेत के टीले

पारिस्थितिकीय पिरामिड (ecological pyramid) : एक त्रिकोणीय चित्र जो पारिस्थितिकी तंत्र में प्राणियों की संख्या, जैवभार या क्रमानुसार पोषक स्तरों पर उपलब्ध ऊर्जा को दर्शाता है

इकोटोन (ecotone) : पारिस्थितिक समुदायों को मिलाने वाला क्षेत्र

आहार जाल (food web) : समुदाय में आहार श्रृंखला का जटिल जालक नमूना।

ग्रिट (grit) : दानेदार रेत का कण

सकल प्राथमिक उत्पादन (gross primary production) : सौर ऊर्जा की कुल मात्रा जो प्रकाश संश्लेषण से पौधों द्वारा प्रति क्षेत्र आयतन और समय पर नियत की जाती है।

शाकाहारी (herbivore) : वह जीव जो पौधों (वनस्पति) को भोजन के रूप में खाते हैं।

परपोषी (heterotroph) : वह जीव जो स्वयं भोजन न बना कर, ऊर्जा के स्रोत के रूप में भोजन के लिए कार्बनिक पदार्थ पर निर्भर करते हैं।

समस्थापन (homeostasis): प्राकृतिक विकार के कारण हुए परिवर्तनों का प्रतिरोध या पुनः संतुलित स्थिति में लाने की पारिस्थितिक तंत्र की क्षमता

ह्यूमस (humus): कार्बनिक अविशेष/मलवे के आंशिक क्षय से उत्पन्न गहरे आकारहीन कोलॉयड पदार्थ

पोषक तत्व (nutrient) : वह रासायनिक पदार्थ जो जीवों की वृद्धि में सहायक होता है

प्रअरी (prairie) : स्तरभूमि का वह विस्तृत क्षेत्र जहाँ घास तो होती है परन्तु पेड़ कम ही होते हैं

प्राथमिक उत्पादन (primary production) : प्रकाश संश्लेषण से पौधों द्वारा ऊर्जा संचयित व संग्रहित की जाती है

उत्पादकता (productivity) : समुदाय में प्रति इकाई क्षेत्र के अनुसार कार्बनिक पदार्थों की उत्पादन दर

उर्मिका (riffle) : जल मार्ग में विशेष नालियों का बनना

सवाना (savanna) : कटिबंधीय या उप कटिबंधीय क्षेत्रों में घास का मैदान जहाँ वृक्ष कम अथवा बिल्कुल नहीं होते

खड़ी फसल (standing crop) : एक निर्धारित समय में नियत क्षेत्र में जैवभार

स्टेप (steppes) : घास का समतल मैदान

पोषक स्तर (trophic level) : पोषक स्तर के आधार पर जीवों का वर्गीकरण जो प्रथम पोषक स्तर से क्रमानुसार इस प्रकार है—उत्पादक, शाकाहारी, मांसाहारी, उच्च मांसाहारी इत्यादि।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. *A Textbook of Plant Ecology*, R.S. Ambasht, Dev Jyoti Press, Varanasi, 1976.
2. *Basic Ecology*, E.P. Odum, Holt-Sauders, Japan, 1983.
3. *Communities and Ecosystem*, R.H. Whittaker, Macmillan, New York, 1975.
4. *Concept of Ecology* (third edition), E.J. Kormondy, Prentice-Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 1986.
5. *Ecology* (Modern Biology Series–Holt, Rinehart and Winston Inc.), 2nd Indian Edition, E.P. Odum, Mohan Primlani, Oxford and IBM Publishing Company, New Delhi, 1975.
6. *Principles of Environmental Biology*, P.K.G. Nair, Himalaya Publishing House, New Delhi, 1990.

प्रिय छात्र/छात्रा

इस पाठ्यक्रम के बारे में आपकी राय जानने के लिए हमने यह प्रश्नावली तैयार की है, जो इसी खंड के लिए है। आप के उत्तर हमें पाठ्यक्रम को सुधारने में मदद करेंगे।

कृपया इसे भरकर हमें शीघ्र भेज दें।

प्रश्नावली

एल. एस. ई. -02

खंड

नामांकन सं·

1. इकाइयों को पढ़ने में आपको कितने घंटे लगे ?

इकाई सं·					
कुल घंटे					

2. इस खंड से संबधित कार्य को करने के लिए आपको (लगभग) कितने घंटे लगे ?

सत्रीय कार्य सं·	टी. एम. ए.	सी. एम. ए.
कुल घंटे		

3. हमारे विचार से आपके सामने 4 प्रकार की कठिनाइयाँ आई होंगी, उन्हें निम्नलिखित तालिका में दिया गया है। उपयुक्त कालमों में कृपया अपनी कठिनाई पर (√) का निशान लगाइए और सही पृष्ठ संख्या लिखिए।

पृष्ठ सं·	कठिनाइयों के प्रकार			
	प्रस्तुतीकरण स्पष्ट नहीं है	भाषा कठिन है	चित्र स्पष्ट नहीं है	शब्दावली समझाई नहीं गई है

4. हमारा विचार है कि बोध प्रश्नों और अंत में दिये गये प्रश्नों में आपको कुछ कठिनाई हुई होगी। निम्नलिखित तालिका में हमने संभावित कठिनाईयाँ दी हैं। उपयुक्त कालमों से संबंधित इकाइयाँ और प्रश्न संख्या देते हुए अपनी कठिनाईयों पर निशान लगाइए।

इकाई संख्या	बोध प्रश्न संख्या	अंत में दी गई प्रश्न संख्या	कठिनाई का प्रकार			
			प्रश्न स्पष्ट नहीं है	दी गई जानकारी के आधार पर उत्तर नहीं दिया जा सकता	इकाई के अंत में दिया गया उत्तर स्पष्ट नहीं है	दिया गया उत्तर पर्याप्त नहीं है

5. (क) क्या खंड के अंत में दी गई शब्दावली उपयोगी रही ?

(ख) यदि नहीं, तो निम्न स्थान में कठिन शब्द लिखें

6. अन्य सुझाव

Affix
Postage
Stamp

सेवा में,

पाठ्यक्रम संयोजक, एल.एस.ई.-02, पारिस्थितिकी
विज्ञान विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी
नई दिल्ली - 110 068

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY/BY-06
पारिस्थितिकी

खंड
3
समुदाय पारिस्थितिकी

इकाई 9

समुदाय की प्रकृति और संरचना 5

इकाई 10

समुदाय परिवर्तन 26

इकाई 11

सामुदायिक संगठन और जीवों के बीच पारस्परिक क्रिया 46

इकाई 12

समष्टि प्राचल एवं नियमन 66

खंड 3 समुदाय पारिस्थितिकी

हम यह जान चुके हैं कि पारिस्थितिकी में जीवों के बीच आपसी संबंध और पर्यावरण के साथ संबंधों का अध्ययन किया जाता है। इन संबंधों के बारे में मुख्य रूप से दो दृष्टिकोणों से विचार किया जा सकता है। पहले दृष्टिकोण के अंतर्गत पर्यावरण के संदर्भ में अलग-अलग जातियों की पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जाता है। इसे स्वपारिस्थितिकी (autecology) कहते हैं। दूसरी स्थिति में इन संबंधों को विभिन्न जीवों के समुदाय में या समग्र रूप में देखा जाता है। इस दृष्टि से हम विभिन्न जैव समूहों या समुदाय का अध्ययन उनके पर्यावरण के संदर्भ में करते हैं। इसे संपारिस्थितिकी (synecology) कहते हैं। इस खंड में हमारा दृष्टिकोण संपारिस्थितिकी का होगा। मुख्य रूप से हम जीवों के परस्पर संबंध तथा इन संबंधों के जटिल तत्रों द्वारा स्थापित जीव समुदायों के विषय में चर्चा करेंगे।

चार इकाइयों के इस खंड में हम समुदाय पारिस्थितिकी के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। इसमें हम पारिस्थितिकी से संबंधित संकल्पनाओं और सूचनाओं पर अधिक महत्व देंगे। इस खंड को पढ़ने के बाद आप इन संकल्पनाओं को समझकर उनका अपने रोज़मर्रा के जीवन में उपयोग कर सकेंगे।

इकाई 9 में इस बात की व्याख्या की गई है कि किसी स्थान में एक ही समय में रहने वाले विभिन्न जीवों से एक जैव-समुदाय का निर्माण होता है। किसी समुदाय की प्रकृति और संरचना इस बात पर निर्भर करती है कि वहां की भौतिक परिस्थितियां कैसी हैं और उस समुदाय के सदस्यों में परस्पर अंतर्क्रियाओं की क्या स्थिति है। विभिन्न समुदायों का विश्लेषण और उनकी तुलना, उनमें पाई जाने वाली विविधता, जीवन-रूपों, जैवभार और ऐसी ही अन्य बहुत-सी विशेषताओं के आधार पर की जाती है। इस इकाई में हम किसी समुदाय के अध्ययन में इस्तेमाल होने वाले कुछ महत्वपूर्ण प्राचलों की चर्चा करेंगे।

इकाई 10 में आप समुदाय में छोटे और बड़े पैमाने पर होने वाले परिवर्तनों के बारे में पढ़ेंगे। इसमें बड़े पैमाने पर होने वाले परिवर्तनों जिन्हें पारिस्थितिक अनुक्रमण भी कहते हैं, की विस्तार से चर्चा की गई है। इस इकाई में इन परिवर्तनों की प्रक्रियाओं, पद्धतियों और विभिन्न प्रकार के अनुक्रमणों का वर्णन किया गया है। विशिष्ट परिवर्तनों और अनुक्रमणों की प्रवृत्ति पर भी चर्चा की गई है।

इकाई 11 में समुदाय के संगठन और समुदाय का निर्माण करने वाले घटकों के बीच होने वाली अंतःक्रियाओं के विभिन्न प्रकारों के बारे में चर्चा की गई है और समुदाय पारिस्थितिकी की आवास स्थल और निकेत नामक दो महत्वपूर्ण संकल्पनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें जीवों के बीच विभिन्न श्रेणीओं की परस्पर क्रियाओं और अंततः इन क्रियाओं के परिणामों की संक्षेप में व्याख्या की गई है। स्पर्धा, परभक्षण और शाकाहारिता आदि अंतःक्रियाओं की विस्तार से व्याख्या की गई है क्योंकि ये समुदाय को समग्र रूप में संगठित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

इकाई 12 में आप समष्टि-प्राचल और नियमन के बारे में पढ़ेंगे। सघनता, जन्म-दर, मृत्यु-दर, आयु वितरण, जीवीय विभव, बंटन और वृद्धि आदि समष्टियों के विशिष्ट गुण हैं। ये गुण किसी समूह की विशिष्ट धरोहर होते हैं पर उस समूह के व्यष्टियों के नहीं। संख्या की वृद्धि पर्यावरण की वहन क्षमता द्वारा नियंत्रित होती है। सभी समष्टियों में वृद्धि की सहज प्रवृत्ति होती है, जिसे सघनता निर्भर और सघनता निरपेक्ष कारक नियमित करते हैं। किसी समष्टि में अनुवांशिक विभिन्नता और विकास संबंधी परिणामों के बारे में भी इस इकाई में बताया गया है।

इस खंड को पढ़ने के बाद आप :

- जैव समुदाय की परिभाषा कर सकेंगे तथा समुदाय की प्रकृति और संरचना के मूल्यांकन के लिए विभिन्न विशिष्ट लक्षणों का प्रयोग कर सकेंगे
- अनुक्रमण के विभिन्न चरणों और समुदाय में इसकी प्रवृत्ति को पहचान कर उसका विवरण दे सकेंगे
- समुदाय संगठन और जीवों के बीच विभिन्न अंतःक्रियाओं का वर्णन कर सकेंगे
- समष्टि प्राचल और ऐसे कारकों के बारे में चर्चा कर सकेंगे, जो समष्टि के आकार को सीमित और नियमित भी करते हैं
- अनुवांशिक विभिन्नता के महत्व और समष्टि में विकास संबंधी परिणामों को समझ सकेंगे।

अध्ययन के लिए मार्गदर्शन

इस खंड में जिन पारिस्थितिक संकल्पनाओं पर विचार किया गया है, उनके सार्थक अध्ययन के लिए आपको उन्हें अपने आसपास के वातावरण से जोड़कर उनका वास्तविक जीवन में उपयोग करना चाहिए। यह और भी उपयोगी होगा, यदि आप अपने पर्यवेक्षणों को अपनी डायरी में लिखते जाएं। आप इस संबंध में उपलब्ध सामग्री तथा आंकड़ों आदि को अपनी कापी में नोट कर लें और जहां संभव हो चित्र आदि भी बनाएं। इस तरह, आपने अब तक जो कुछ पढ़ा है, उसका स्पष्ट चित्र आपके सामने रहेगा।

इस खंड को पढ़ते समय अगर आप किसी आधारभूत संकल्पना को न समझ पाएं तो हमारी आपको सलाह है कि आप राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की पाठ्य-पुस्तक से और अधिक जानकारी प्राप्त करें। यदि आप इन विषयों में और अधिक विस्तार से पढ़ना चाहें तो इस खंड के अंत में दी गई उपयोगी पुस्तकों को पढ़ें।

पिछले दो खंडों की तरह इस खंड के अंत में भी पठित सामग्री की पुष्टि के लिए प्रश्नावली दी गई है। हम आशा करते हैं कि आप इसे भर कर हमारे पास भेजेंगे ताकि हमें इस खंड के बारे में आपकी सम्मति और सुझाव प्राप्त हो सकें।

आभार

श्री लक्ष्मण शर्मा : पांडुलिपि का शब्द-संसाधन

इकाई 9 समुदाय की प्रकृति और संरचना

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
 उद्देश्य
9.2 समुदाय क्या है?
9.3 समुदाय प्रवणताएं और सीमाएं
9.4 विश्लेषिक गुण
9.5 संश्लेषी गुण
9.6 सारांश
9.7 अंत में कुछ प्रश्न
9.8 उत्तर

9.1 प्रस्तावना

पृथ्वी की हर जगह पर चाहे वह जगह घास-स्थल, वन, तालाब, नदी के कगार या समुद्र हो, सहअस्तित्व वाले जीव पाये जाते हैं। अनेकों पौधे, प्राणी और सूक्ष्मजीव जोकि साथ-साथ रहते हैं, अपने भरण संबंधों और अनेकों दूसरी आपसी क्रियाओं से एक दूसरे से संबंधित होते हैं। इन सबसे मिलकर एक समुदाय बनता है, जो आमतौर पर जैव समुदाय (biological community) कहलाता है। किसी समुदाय में जीवों के बीच पारस्परिक संबंध पारितंत्र के अनेक कार्यात्मक गुणों को तय करते हैं, जैसे कि ऊर्जा का प्रवाह और तत्वों का चक्रण (nutrient cycling)। इसलिए पारितंत्र को अच्छी तरह से समझने के लिए हमें समुदाय की प्रकृति और संरचना का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। इसलिए हम इस इकाई में समुदायिक स्तर संगठन के मुख्य लक्षणों तथा कुछ महत्वपूर्ण सामुदायिक गुणों की चर्चा करेंगे। भाग 9.2 को पढ़ने के बाद आप व्यष्टियों (individuals), समष्टियों (populations), समुदाय और खड़ (stands) जैसे शब्दों को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे तथा समुदाय एवं पारितंत्र में फर्क कर सकेंगे। इन शब्दों को समझने के बाद आपको बाकी भागों को पढ़ने में आसानी होगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जीवीय (biotic) समुदायों के बारे में अध्ययन करने के लिए विभिन्न शब्दों और संकल्पनाओं को समझने योग्य हो सकेंगे। इस इकाई का धीरे-धीरे तथा समझ कर अध्ययन कीजिए और इसमें से प्रत्येक संकल्पना का अपने परिवेश से संबंध भी जोड़िए। इससे आपको जीवीय समुदाय को स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिलेगी।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- जैव समुदाय की संकल्पना की व्याख्या कर सकेंगे
- जीवीय समुदाय के मुख्य गुणों का वर्णन कर सकेंगे
- जीवीय समुदाय के अध्ययन में काम आने वाले विभिन्न विश्लेषिक गुणों के महत्व जान सकेंगे, उन्हें परिभाषित कर सकेंगे और उनकी व्याख्या कर सकेंगे
- जीवीय समुदाय के अध्ययन में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न संश्लेषी गुणों को जान सकेंगे

9.2 समुदाय क्या है?

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के जीव एक ही आवास (habitat) में साझेदारी करते हुए एक-दूसरे के साहचर्य में पाए जाते हैं। इस बात को बताने के लिए हम एक खेत का उदाहरण लेते हैं। खेत में विभिन्न प्रकार की घास, कीट (insects), कृमि (worms), पक्षी और स्तनी (mammals) अनेक तरह से पारस्परिक क्रिया करते हैं। विभिन्न प्रकार की घास कुछेक कीटों का भोजन है, कीट भोजन हैं पक्षियों के, पक्षी छोटे स्तनियों और कृमियों का शिकार करते हैं। इस प्रकार, इस खेत में विभिन्न प्रकार के जीव एक समुदाय बनाते हैं, जिसे खेत समुदाय भी कहते हैं। इसी प्रकार वन, रेगिस्तान, तालाब, कच्छ (marsh) और नदी (streams) प्राकृतिक समुदायों के उदाहरण हैं।

समुदाय क्या है, इस पर संक्षेप में चर्चा करने के बाद अब हम समुदाय के छह मुख्य लक्षणों पर विचार करेंगे।

समुदाय पारिस्थितिकी

पर्यावरण का अजीवित भाग + समुदाय = पारितंत्र

पहला, समुदाय पारितंत्र के जीवीय घटक को दर्शाता है। यदि हम अजीवित घटकों एवं जीवित घटकों पर विचार करते हैं तो इसका अर्थ है कि हम एक समुदाय की बजाय एक पारितंत्र पर विचार कर रहे हैं।

दूसरा, कार्यात्मक पहलू पर विचार करें तो समुदाय परस्पर-गुंथी खाद्य शृंखला वाले जीवों से बने हैं और समुदाय में प्रत्येक जाति (species) दूसरी अनेक जातियों पर निर्भर है, जो वर्गिकीय रूप से (taxonomically) असम्बद्ध है। किसी एक खाद्य जाल (foodweb) को याद करने की कोशिश कीजिए। इससे आपको इस संकल्पना को अधिक स्पष्ट ढंग से समझने में मदद मिलेगी। खाद्य जाल पारितंत्र में पाई जाने वाली विभिन्न जीवीय घटकों के बीच खाद्य संबंध का एक चित्रण है और जैसा कि आप जानते हैं, इन जीवीय घटकों से एक समुदाय बनता है। संभवतः एक समुदाय में एक जाति दूसरी हर जाति से प्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध न हो फिर भी वे सभी अप्रत्यक्ष रूप से परस्पर संबंधित हैं। इस स्थिति की तुलना एक इंजन से की जा सकती है, जिसमें विभिन्न घटक परस्पर संबंधित हैं और सब मिलकर इंजन के कार्य को संभव बनाते हैं।

चित्र 9.1 : एक देवदार वृक्ष (सिड्रस देओदार – Cedrus deodara)

तीसरा, समुदाय किसी भी आकार का हो सकता है। देवदार के पेड़ों का एक शीतोष्ण (temperate) वन बड़े समुदाय का एक उदाहरण है (चित्र 9.1 में एक देवदार वृक्ष दिखाया गया है)। इसकी तुलना में कीटों और कृमियों को आश्रय देने वाला एक गल रहा लकड़ी का लट्ठा एक छोटे समुदाय को दर्शाता है। इस प्रकार आपने देखा कि समुदाय का आकार व्यापक रूप से अलग-अलग होता है।

चौथा, पारितंत्र की संकल्पना की तरह ही समुदाय की संकल्पना को भी किसी भी पैमाने पर लागू किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सारी पृथ्वी को एक बड़े पारितंत्र के रूप में माना जा सकता है, जबकि दूसरी तरफ अनेक जीवों से भरे पानी के एक जग को एक छोटा पारितंत्र कहा जा सकता है। इसी प्रकार, एक वन एक समुदाय है और उस वन में सड़ रहा लट्ठा भी एक समुदाय ही है। इस लट्ठे में फफूंदी (fungus) और कीट जैसे कि दीमक, तथा चूहे तक भी हो सकते हैं। इसी प्रकार, दीमक की आंत के भीतर ढेर सारे सूक्ष्मजीव (microorganisms) भी एक समुदाय बनाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि एक समुदाय के भीतर भी एक समुदाय है। यह स्थिति चित्र 9.2 में दिखाए गए खिलौनों जैसी है।

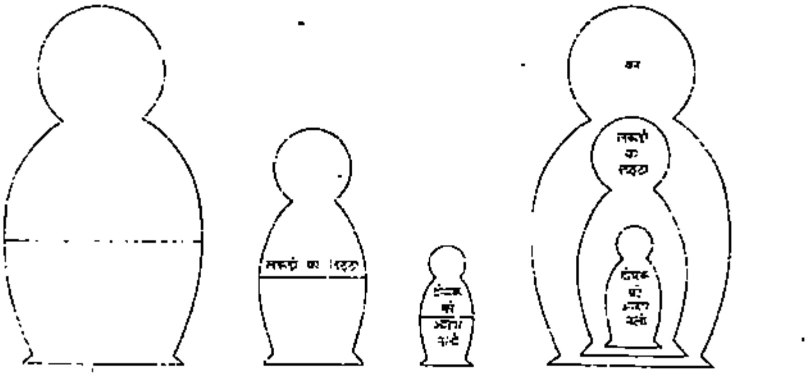

चित्र 9.2 : समुदाय के भीतर समुदाय की संकल्पना इन लकड़ी के खिलौनों से स्पष्ट रूप में समझी जा सकती है।

पांचवें तौर पर, कुछ समुदाय इस रूप में स्वपोषित (autotrophic) हो सकते हैं, क्योंकि उनमें प्रकाश संश्लेषी (photosynthetic) पौधे होते हैं जो अपनी ऊर्जा सूर्य से प्राप्त करते हैं। झरनों और गुफाओं में पाए जाने वाले कुछ समुदाय परपोषित (heterotrophic) होते हैं, क्योंकि ऊर्जा के स्रोत के रूप में वे अपरद (detritus) जैसे जैव पदार्थ (organic matter) पर निर्भर हैं।

छठे तौर पर, खड़ (stand) का विचार समुदाय (community) के विचार से परस्पर तौर पर संबंधित है। कुछ परिस्थितियों में इन दो शब्दों के भिन्न अर्थ हैं। और दूसरी परिस्थितियों में इन दो शब्दों का अर्थ एक ही वस्तु से है और इन्हें आपस में एक-दूसरे की जगह रखा जा सकता है। इन दो शब्दों के प्रयोग में भ्रम से बचने के लिए हम इन दो परिस्थितियों को दो उदाहरणों की सहायता से दर्शाएंगे। इन उदाहरणों की चर्चा नीचे की गई है।

पहला उदाहरण एक शीतोष्ण वन का है, जिसमें देवदार, चीड़ और रोडोडेन्ड्रॉन के पेड़ हैं (देखिए चित्र 9.3)। क्या आपने ध्यान दिया है कि चित्र में जगह-जगह एक विशेष जाति के पौधे समूह बना रहे हैं। चित्र में ये समूह बिन्दु वाली रेखाओं के क्षेत्रों में दर्शाए गए हैं। इस प्रकार, इस क्षेत्र का प्रत्येक वह भाग जिसमें उसी जाति के, और लगभग उसी आयु के पौधे

शामिल हैं, *खड़* कहलाता है। आप चित्र में भी यह देख सकते हैं कि जहां तक संख्या का सवाल है, देवदार पेड़ों के क, ख और ग खड़ एक-दूसरे से भिन्न हैं। खड़ शब्द एक-समान पेड़-पौधों वाले क्षेत्रों के लिए प्रयोग किया जाता है। एक समुदाय का अध्ययन करते समय जब हम खड़ की बात करते हैं तो इसका अर्थ यह होता है कि हम उस समुदाय में पौधों की विशेष जाति के समूहों के बारे में बात कर रहे हैं। इस उदाहरण को पढ़ने के बाद आपने देखा होगा कि यहां समुदाय और खड़, अलग-अलग वस्तुओं के संदर्भ में प्रयोग किए गए हैं।

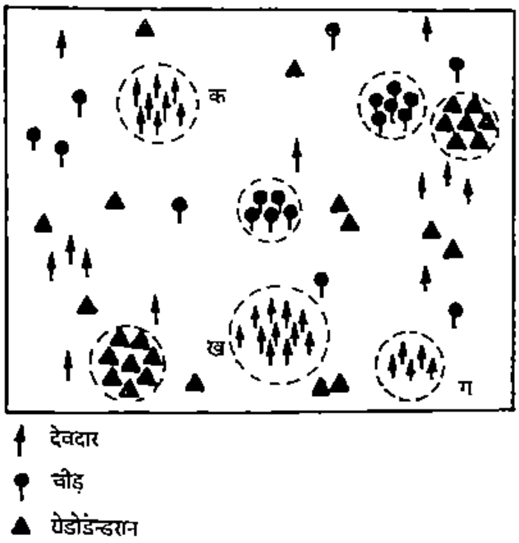

चित्र 9.3 : शीतोष्ण वन का आरेखी निरूपण

दूसरा उदाहरण एक काश्त किए गए गेहूं के खेत का है। यह खेत समुदाय में गेहूं के पौधों से बना है। इस खेत में एक-समान वनस्पति होने के कारण और पौधों की लगभग एक ही उम्र होने के कारण इसे गेहूं का एक खड़ भी कहा जा सकता है। यह उदाहरण उन परिस्थितियों में से एक परिस्थिति को दर्शाता है जिसमें खड़ और समुदाय शब्द का अर्थ एक ही है और इन्हें एक-दूसरे के बदले उपयोग में लाया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

1) एक जीवीय समुदाय निम्नलिखित में से किसका संग्रह है?
   क) खाद्य जालों
   ख) परस्पर क्रिया करने वाली समष्टियां
   ग) घनिष्ठ रूप से संबंधित जातियां
   घ) पारितंत्र
   (सही उत्तर पर सही (√) का निशान लगाइए)

2) उपयुक्त शब्द/शब्दों को प्रयुक्त करके प्रश्न-चिह्न वाले खाली स्थान भरिए :

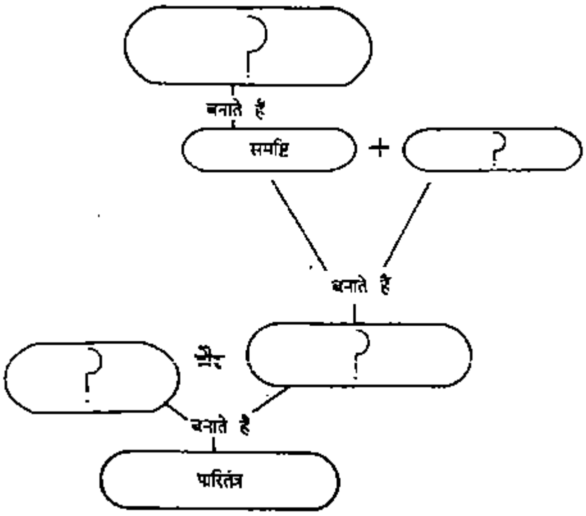

3) समुदाय के प्रमुख लक्षण क्या हैं?

....

....

....

....

....

9.3 समुदाय प्रवणताएं और सीमाएं

यह तय करना प्रायः कठिन या असंभव है कि कहां एक समुदाय समाप्त होता है और दूसरा शुरू होता है। दरअसल बहुत से समुदाय बिना स्पष्ट सीमाओं के एक-दूसरे में लगातार मिले से रहते हैं। उदाहरण के लिए अगर चीड़ (pine) और स्प्रूस (spruce) के दो वन पास-पास हैं, तो देखने वालों को उन दो वनों के बीच स्पष्ट सीमा नहीं दिखाई पड़ती। लेकिन अगर कोई चीड़ वन के एक सिरे से स्प्रूस वन के दूसरे छोर की ओर चलता है तो उसे उन दोनों के बीच जातियों के गठन में अंतर दिखाई देगा। इतने पर भी कोई व्यक्ति इन दो समुदायों के बीच स्पष्ट सीमा रेखा नहीं खींच सकता। फिर भी, ऐसे उदाहरण भी हैं जहां दो समुदायों के बीच स्पष्ट सीमाएं देखी जाती हैं, विशेष रूप में वहां जहां पर भौतिक पर्यावरण अचानक बदल जाता है। उदाहरण के लिए जलीय और स्थलीय आवासों के बीच, मिट्टी की अलग-अलग किस्मों के बीच या पहाड़ के उत्तर की ओर वाली तथा दक्षिण की ओर वाली ढलानों के बीच संक्रमण (transition) स्थल पर।

ईकोटोन (Ecotone) : दो भिन्न प्रकार के समुदायों को अलग करने वाला वनस्पति का क्षेत्र ईकोटोन कहलाता है। इसे संक्रमण क्षेत्र (transition zone) भी कहते हैं। वन और घासस्थल के बीच सीमांत, किसी शाद्वल (meadow) के बीच बह रही सरिता के तट, ईकोटोन के उदाहरण हैं।

ईकोटोन एक ऐसा क्षेत्र है, जहां पर्यावरण के दो भिन्न प्रतिरूपों (pattern) के प्रभाव साथ-साथ कार्य करते हैं और इसलिए ईकोटोनों की वनस्पति अत्यधिक विशिष्ट होती हैं। ईकोटोन सकरा या चौड़ा हो सकता है। उदाहरण के लिए अगल बगल वाले दो भूखंडों के बीच का ईकोटोन। ऐसे भूखंड जिसमें एक भूखंड बाड़ वाला और चराई से रक्षित है, जबकि दूसरा भूखंड बिना बाड़ वाला और चराई के लिए खुला हुआ है। इन भूखंडों के बीच का ईकोटोन बहुत स्पष्ट और सकरा होता है। इसी प्रकार, एक तालाब और उसके साथ लगी उपरिभूमि (upland) के बीच भी ईकोटोन बहुत स्पष्ट और सकरा होता है। दूसरी ओर, समुदायों के बहुत से दूसरे प्रकारों में ईकोटोन बहुत चौड़े होते हैं और समुदाय सीमांत का पता लगाना आसान नहीं होता।

संक्रमिका का एक सामान्य अभिलक्षण यह है कि इसमें जातियों की संख्या अधिक होती है और कभी-कभी अधिकांश जातियों की विविधता पड़ोसी समुदायों की अपेक्षा अधिक होती है (चित्र 9.4 भी देखिए)

सीमांत पर पौधों की किस्म में बढ़ोतरी की परिघटना को कोर प्रभाव (edge effect) कहते हैं और इसका अत्यावश्यक कारण उपयुक्त पर्यावरणीय परिस्थिति की व्यापक परास (range) है। ईकोटोन क्षेत्र में दोनों ही सटे हुए समुदायों के जीवों के अलावा वे जीव भी हैं, जो ईकोटोन तक ही सीमित हैं और वहां की विशेष परिस्थितियों का उपयोग कर सकते हैं।

कुछ पारिस्थितिकीविज्ञों ने सांतत्यक (continuum) संकल्पना को सामने रखा है, जिसका अर्थ यह है कि सुपरिभाषित सीमाओं वाले कोई अलग समुदाय नहीं हैं, लेकिन प्रवणता (gradient) के साथ-साथ दिक्काल (space and time) में एक क्रमिक परिवर्तन होता है। यह प्रवणता नमी, तापमान, मिट्टी की किस्म, ऊंचाई या किन्हीं दो के संयोग वाली हो सकती है। सांतत्यक संकल्पना के अनुसार ईकोटोन क्षेत्रों में जातियों के संघटन (composition) में स्पष्ट सीमांत या परिवर्तन जैसी कोई चीज नहीं है।

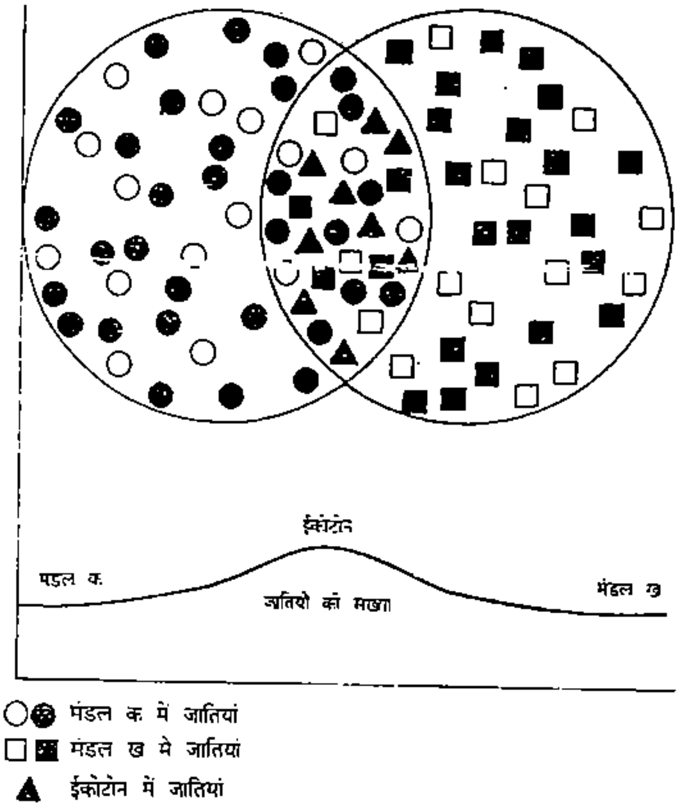

चित्र 9.4 : ईकोटोन–जहां दो समुदाय प्रकार साथ-साथ होते हैं। जैसेकि वन और खेत। इनके बीच के क्षेत्र की जातियों में वन और खेत, दोनों की ही जातियां, और वन या खेत में से कहीं भी न मिलने वाली कुछ अतिरिक्त जातियां भी शामिल हैं।

9.4 विश्लेषिक गुण

जैसा कि आप जानते हैं, समुदाय के अपने अभिलक्षण हैं, जो इसकी एक-एक घटक जाति द्वारा नहीं दर्शाए जाते। इन अभिलक्षणों का केवल संगठन के सामुदायिक स्तर के संदर्भ में अर्थ है और इनकी इस भाग तथा आगामी भागों में चर्चा की गई है।

समुदाय लक्षण मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं : विश्लेषिक और संश्लेषी (analytic and synthetic)। इस भाग में हम विश्लेषिक लक्षणों की चर्चा करेंगे। इन्हें दो श्रेणियों में बांटा जाता है : गुणात्मक (qualitative) और मात्रात्मक (quantitative) गुणात्मक लक्षणों को मापना कठिन है, जबकि मात्रात्मक लक्षणों का मापना आसान है। अब हम इन लक्षणों को एक-एक करके लेते हैं।

9.4.1 गुणात्मक लक्षण (Qualititive Characters)

i) पादपी संघटन (Floristic Composition) समुदाय का एक महत्वपूर्ण गुणात्मक लक्षण इसका पादपी संघटन है। मोटे तौर पर यह समुदाय में पाई जाने वाली जाति प्रकार को बताता है। यहां हम एक बात स्पष्ट करना चाहेंगे कि अधिकांश समुदायों का नाम वहां पाए जाने वाले प्रमुख (dominant) पौधों की जातियों के आधार पर रखा जाता है।

आप शायद सोच रहे होंगे कि अभी तक अधिकांश रूप में केवल पौधों का ही जिक्र क्यों किया गया है, प्राणियों का क्यों नहीं? इसका कारण यह है कि पौधे स्थिर हैं। वे अपने सारे जीवनकाल में एक ही जगह रहते हैं। इसके विपरीत, प्राणी गतिशील हैं और वे लम्बे समय तक एक जगह नहीं ठहरते। इसलिए उन्हें किसी समुदाय के नामकरण के लिए प्रतिनिधि के रूप में नहीं माना जाता।

अब हमारी चर्चा का अगला पहलू यह होगा कि समुदाय के पादपी संघटन का अध्ययन किस प्रकार किया जाए। पहला काम उस विशेष समुदाय की जातियों की सूची बनाना है। कुछ जातियां बहुत ही सूक्ष्म होती हैं। इसलिए प्रत्येक जीव के नाम को सूची में शामिल करना व्यावहारिक रूप से असंभव है। पौधों में प्राय: *संवहनी* (vascular) पौधों को गिना जाता है। पूरी सूची तैयार करने के उद्देश्य से विभिन्न ऋतुओं में होने वाली जातियों को भी शामिल किया जाता है। हालांकि किसी भी समुदाय में सभी जातियां महत्वपूर्ण हैं, लेकिन समुदाय के

हर समुदाय में विविध जातियां होती हैं। ये सभी जातियां समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि कुछेक ही ओवर टॉपिंग जातियां हैं जो अपनी बहुलता और वृद्धि से आवास को रूपांतरित करती हैं और समुदाय में दूसरी जातियों की वृद्धि को नियंत्रित करती हैं और इस प्रकार समुदाय में एक तरह का अभिलक्षणिक कोर बनाती है। अधिकतर समुदायों में आमतौर पर केवल एक जाति ध्यानाकर्षी होने के कारण प्रमुख होती है। ऐसे मामले में समुदाय का नाम उस प्रमुख जाति के नाम पर पड़ जाता है। उदाहरण के लिए, स्प्रूस वन समुदाय। दूसरे समुदायों में एक से अधिक जातियां प्रमुख हो सकती हैं, जैसे कि बाज-हिकरी वन समुदायों के मामले में।

संवहनी पौधे–वे पौधे, जिनमें सुपरिभाषित संचलन तंत्र (Conducting System) होता है। इस तंत्र में जाइलम और फ्लोयम होते हैं।

पारिस्थितिकीय आयाम—यह पर्यावरणीय कारक की वह परास है, जिसे कोई जाति सहन कर सकती है।

नामकरण में केवल एक ही जाति या कुछेक जातियां ही काम में लाई जाती हैं। इसका कारण उस एक जाति या जातियों की प्रचुरता और प्रमुखता है।

दूसरी बात यह उठती है कि इन पादपी सूचियों से व्यक्ति क्या जान सकता है और क्या सीखता है? ये सूचियां निम्नलिखित के बारे में जानकारी देती हैं : एक—खास जाति का पर्यावरण और दूसरी जातियों से संबंध, दो—विभिन्न जातियों का आवास (habitat) तीन—जातियों का पारिस्थितिकीय आयाम (amplitude) और चार-समुदाय की वर्तमान स्थिति तथा भावी प्रवृत्ति।

अब हम इन चारों पहलूओं को एक-एक करके लेंगे। आइए अब हम पहली बात पर गौर करें। इसे हम एक उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। यह उदाहरण *ऐडहाटोडा वैसिका (Adhatoda vasica)* नामक एक शीतकालीन वार्षिक पौधे का है (चित्र : 9.5 क)। यह सामान्य तौर पर *कैपेरिस सेपिएरिया (Capparis sepiaria)* नामक एक सह-प्रमुख झाड़ी के साथ पाया जाता है (चित्र 9.5 ख)। इसलिए जहां तक *ऐडहाटोडा* जाति का पर्यावरण के साथ संबंध का प्रश्न है, यह उस समय बढ़ता है, जब तापमान कम रहता है। इस प्रकार, इस जाति का पर्यावरण और दूसरी जाति से संबंध का पता चलता है। कभी-कभी दो जातियों के बीच साहचर्य इतना घनिष्ट होता है कि एक जाति दूसरी जाति की उपस्थिति को दर्शाती है। इस तरह, कुछ हद तक भविष्यवाणी करना संभव है। अगर किसी क्षेत्र में क जाति पाई जाती है तो यह आशा की जाती है कि ख जाति भी वहां होगी।

क

दूसरी बात यह है कि *ए. वेसिका* पहाड़ी प्रदेशों और चट्टानी क्षेत्रों में होता है। यह इसके आवास का सूचक है।

तीसरी बात यह है कि कुछ पर्यावरणीय परिस्थितियों को सहने की हरेक जाति की अपनी सहनशीलता या सह्यता परास है। कुछ जातियों की प्रचुरता (abundance) या विरलता (sparseness) उन जातियों के पारिस्थितिकीय आयामों के संदर्भ में हावी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों का द्योतक हैं। दो या अधिक जातियों के एक जैसे पारिस्थितिकीय आयाम उन जातियों के साहचर्य का कारण बन सकते हैं।

चौथी बात यह है कि इस प्रकार की पादपी सूचियां न केवल किसी समुदाय में जातियों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति ही बताती हैं, बल्कि वर्तमान परिस्थितियों और भावी प्रवृत्तियों की सूचक भी हैं। उदाहरण के लिए, एक क्षेत्र की तुलना में दूसरे क्षेत्र में किसी जाति की संख्या में कमी उस क्षेत्र में बढ़ती हुई प्रतिकूल परिस्थितियों की सूचक हो सकती है।

ख

चित्र 9.5 : क) *ऐडहाटोडा वैसिका*, और ख) *कैपेरिस सेपिएरिया*

ii) **वनस्पति का स्तरण** (Stratification of Vegetation) : पौधों के समुदाय का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण वनस्पति का स्तरण है। विभिन्न समुदायों में विभिन्न उदग्र (vertical) स्तर हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम-I (एफ.एस.टी.-I) की इकाई 15 के भाग 15.4 के अध्ययन से आपको पहले से ही इसके बारे में कुछ ज्ञान है। उस भाग में हमने एक वन के उदाहरण की इसी संदर्भ में चर्चा की है। आपको याद होगा कि वनों में हमें पौधों की जातियों के अनेक स्तर देखने को मिलते हैं। स्तरण प्राय: इसलिए होता है क्योंकि वृक्ष, क्षुप (झाड़ियां), शाक (बूटियां) और मॉस जैसे जीवन रूपों की प्रकाश तीव्रता, तापमान, मृदा और जीवीय कारकों के संदर्भ में विभिन्न आवश्यकताएं और पारिस्थितिकीय आयाम हैं।

आइए अब हम एक वन की वनस्पति को नजदीक से देखते हैं। एक सुविकसित वन में वनस्पति के चार या पांच स्तर हो सकते हैं (देखिए चित्र 9.6)। ऊपर से नीचे तक ये स्तर इस प्रकार हैं : वितान (canopy), अधःमंज़िल या अधःस्तर, झाड़ियां, शाक अथवा भूमि परत और वन-स्थल (forest floor)।

एक उष्णकटिबंधीय (tropical) वर्षा वन में उदग्र स्तरण बहुत साफ-साफ देखा जा सकता है। ऊपर जिन विभिन्न स्तरों या परतों का वर्णन किया गया है, उनके अलावा काठलताएं (lianas) और आरोहीलताएं (climbers) भी होती हैं, जो वृक्षों से लिपटी रहती हैं। मात्र दो स्तर वाले घास स्थल की तुलना में चार अथवा पांच स्तर वाला वन अधिक विविध जीवन रूपों को सहारा दे सकता है। पौधों के भूमिगत भागों में भी स्तरण देखा गया है, अर्थात् मूल (root) और प्रकंद तंत्र (rhizome system)। विभिन्न पादप जातियों के मूल तंत्र मिट्टी की भिन्न-भिन्न गहराइयों से नमी और पोषक पदार्थ लेते हैं। इस वजह से वे प्रतियोगिता और किसी विशेष मृदा स्तर का अत्यधिक शोषण नहीं करते।

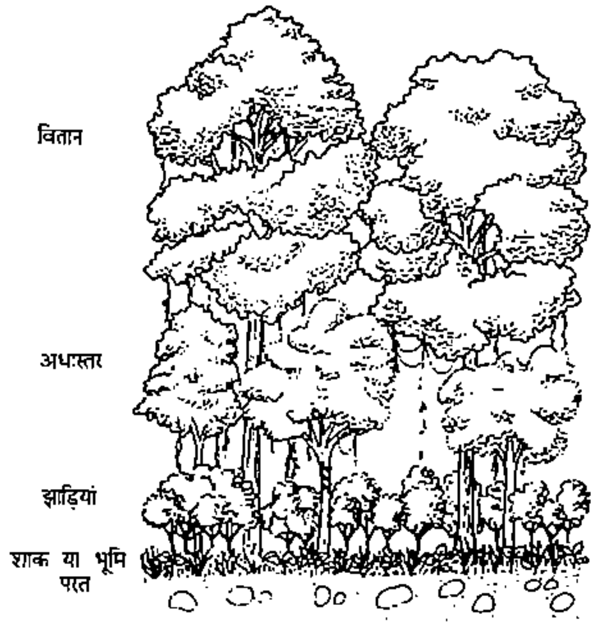

चित्र 9.6 : उदग्र स्तरण को आरेखीय रूप से दर्शाने वाला वन का एक हिस्सा

आइये हम फिर से वनस्पति के भूमि के ऊपर के भागों की ओर ध्यान देते हैं, वितान ऊर्जा यौगिकीकरण (energy fixation) का मूल स्थल है तथा बाकी के वन समुदाय पर भी इसका अधिक प्रभाव होता है। जब पर्याप्त धूप निम्न स्तरों तक पहुंचती है तब वितान को विवृत यानी खुला (open) कहते हैं। इस तरह की परिस्थितियों में झाड़ियां (shrubs) और अधःस्तर वृक्ष स्तर (under story tree strata) सुविकसित होते हैं। बंद (closed) वन में अधिकांश धूप वृक्ष वितानों द्वारा रोक ली जाती है। अधःस्तर पौधों को ज्यादा सीधी धूप नहीं मिल पाती, जिसके फलस्वरूप निम्न स्तर छाया सह्य (shade tolerant) जातियों वाला होता है, जहां शाकीय स्तर की कम वृद्धि होती है। ऐसी परिस्थितियों में वे जातियां नहीं पाई जातीं, जिन्हें तेज धूप की आवश्यकता होती है। अगर तेज धूप में पाई जाने वाली जातियां होती भी हैं तो वे ऐसी खाली जगहों पर फलती-फूलती हैं, जहां शीर्ष वितान वृक्षों (top canopy trees) की मृत्यु के कारण खाली हुई जगह से धूप पहुंचती है।

जलीय पारितंत्रों में भी स्पष्ट स्तरण देखा गया है। झील और महासागर पारितंत्रों में प्रकाश वेधन, तापमान और ऑक्सीजन की सुलभता गहराई के साथ-साथ बदलती रहती है (इस पाठ्यक्रम की इकाई 8 भी देखिए)। ग्रीष्म में, एक सुस्तरित झील में मुक्त रूप में परिसंचारी पृष्ठ (surface) जल परत होती है, जिसका तापमान एक समान रहता है। यह *अधिसर* (epilimnion) कहलाती है। दूसरी परत *मध्यसर* (metalimnion) कहलाती है, जिसकी विशेषता ताप-*प्रवणता* (thermocline) है [तापमान में अतिप्रवर्ण (steep) और तेजी से गिरावट आती है।] तीसरी परत *अधःसर* (hypolimnion) है। यह एक गहरी, घने जल की ठंडी परत है, जहां ऑक्सीजन प्रायः कम होती है और एक तली पंक (bottom mud) की परत होती है। धूप की सुलभता के संदर्भ में जलराशि को दो परतों में बांटा जाता है : एक ऊपरी प्रकाशील मंडल या क्षेत्र जहां पादप प्लवकों (phytoplanktons) की प्रमुखता है और प्रकाश-संश्लेषण (photosynthesis) अधिक होता है। एक निम्न परत होती है, जिसमें अपघटन (decomposition) सबसे ज्यादा सक्रिय होता है। निम्न परत मोटे तौर पर अधःसर और तलीपंक के सदृश है।

आइए अब हम यह देखते हैं कि स्थलीय और जलीय पारितंत्र के बीच समान्य क्या है। दोनों में एक ही प्रकार की पोषी संरचना (trophic structure) होती है। इनमें स्वपोषित स्तर सांद्रता होती है, जहां प्रकाश बहुत सुलभ होता है और वह सूर्य की ऊर्जा और अकार्बनिक पदार्थों से भोजन का निर्माण करता है। वन में यह परत वृक्ष वितानों द्वारा, घासस्थलों में शाकीय वनस्पति द्वारा तथा झीलों और समुद्रों में जल की ऊपरी परत द्वारा दर्शाई जाती है। पारितंत्रो में एक परपोषित (heterotrophic) परत भी होती है, जो स्वपोषितों द्वारा भंडारित भोजन का उपयोग करती है, ऊर्जा का स्थानांतरण करती है और शाकभक्षण (herbivory), परभक्षण (predation) तथा अपघटन के जरिए पदार्थों का परिसंचरण करती है।

अब हम प्राणी जीवन के संदर्भ में उदग्र स्तरण की चर्चा करेंगे। उदग्र स्तरण की मात्रा का समुदाय में प्राणी जीवन की विविधता पर काफी प्रभाव पड़ता है। पर्णसमूह (foliage) ऊंचाई

विविधता तथा पक्षी जाति विविधता के बीच एक प्रबल सह-संबंध है। उदग्र स्तरण में वृद्धि से संसाधनों और जीवित स्थान की सुलभता बढ़ जाती है, जो कुछ अंश तक विशिष्टीकरण के लिए अनुकूल है। दो स्तर वाले घासस्थल में पक्षियों की लगभग 6 से 7 जातियां होती हैं। ये सभी जातियां भूमि पर घोंसला बनाती हैं। पर्णपाती (deciduous) वन विभिन्न स्तरों पर रहने वाली 30 या अधिक जातियों का आश्रय देता है। पंक्षियों की तरह कीट भी वैसा ही स्तरण दर्शाते हैं।

iii) **आवर्तिता** (Periodicity) [**घटना विज्ञान** (Phenology) **छवि विविधता** (Aspection)]: यह समुदाय में ऋतुनिष्ठ यानी मौसमी परिवर्तनों के अध्ययन के बारे में हैं, अर्थात् जीवों की जलवायु के संदर्भ में जीवों की आवर्ती परिघटनाएं। पौधों में आवर्तिता एक महत्त्वपूर्ण तथा स्थिर लक्षण है। पौधों की विभिन्न जातियों में बीज अंकुरण, वनस्पति वृद्धि, पुष्पन (flowering) और फलन (fruiting), पत्ते गिरने, बीज और फल परिक्षेपण (dispersal) तथा बीजों के प्रकीर्णन (dissemination) के भिन्न-भिन्न काल होते हैं। समुदाय में हर जाति के इस तरह के आंकड़ों को रिकार्ड किया जाता है। इन घटनाओं के समय और आंकड़ों के अध्ययन को **घटना विज्ञान** कहते हैं। दूसरे शब्दों में, घटना विज्ञान किसी पौधे के जीवन वृत्त में होने वाली घटनाओं का कैलेंडर है। इस तरह की घटनाओं का आरेखी प्रस्तुतीकरण **घटना-आलेख** (phenogram) कहलाता है। कुछ भारतीय घासों और प्रतृणों (मेजों) के घटना-आलेख चित्र 9.7 में दिखाए गए हैं।

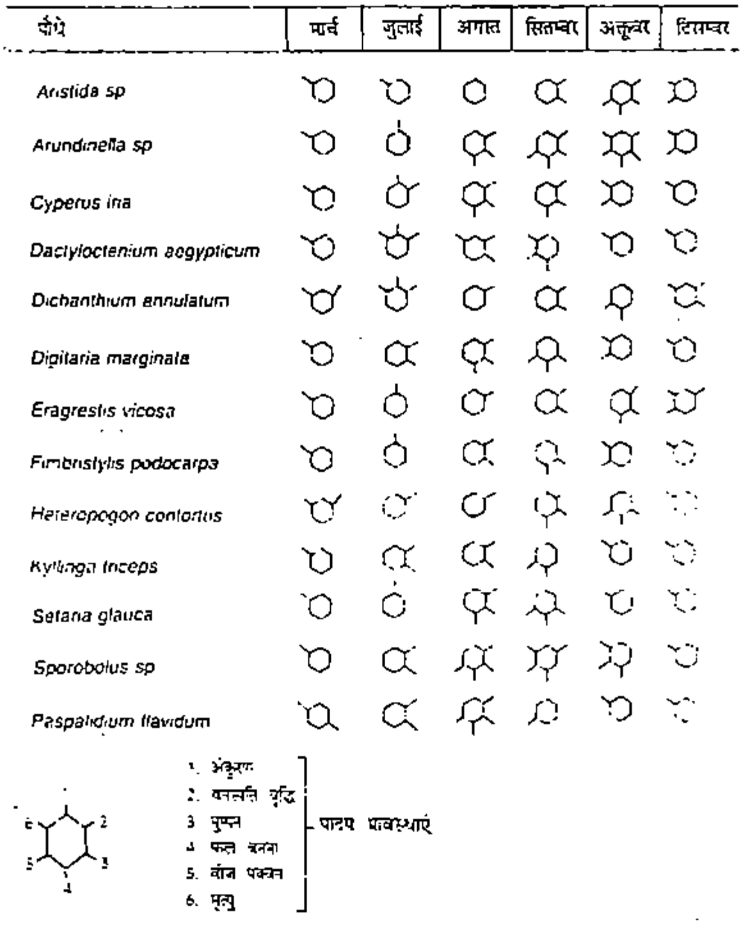

चित्र 9.7 : कुछ भारतीय घासों और प्रतृणों के घटना-आलेख

किसी समुदाय में मौजूद विभिन्न जातियों का घटना विज्ञान एक दूसरे से काफी भिन्न हो सकता है। इस घटना विज्ञानीय परिवर्तनों से ही समुदाय का निश्चित स्वरूप बनता है। छवि-विविधता (aspection) विभिन्न ऋतुओं में पूरे समुदाय के रूप-रंग के बारे में बताता है। आइये हम इस संकल्पना को एक उदाहरण द्वारा और विस्तार से समझें। एक समुदाय है, जिसमें चार विभिन्न पादप जातियां हैं यानी पौधों की 4 जातियां हैं। इन चार घटक जातियों का पुष्पन (flowering) क्रमानुसार जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अगस्त के महीनों में होता है। इसलिए वर्ष के विभिन्न महीनों के दौरान समुदाय का एक विशिष्ट रूप-रंग होता है, और आगामी वर्षों में भी यह प्रतिरूप देखा जा सकता है। लेकिन अब अगर किसी तरह से दूसरी जाति यानी पांचवीं जाति इस समुदाय में आ जाती है और यह जून में पुष्पित होती है अर्थात्

इस जाति में जून में फूल आते हैं तो समुदाय का पूरा दर्शन अब बहुत ज्यादा भिन्न होगा। ऊपर के उदाहरण को पढ़ने के बाद अब आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि दो भिन्न-भिन्न समुदायों का रूप-रंग भिन्न हो सकता है।

तो, समुदाय में ऐसे मौसमी विस्थापनों (seasonal shifts) के अध्ययन से हम क्या सीखते या जान पाते हैं? पहली बात तो यह है कि हमारे पास घटक जातियों के जीवन में विभिन्न घटनाओं का कैलेंडर तैयार हो जाता है। इस कैलेंडर से हम वर्ष के विभिन्न कालों के दौरान समुदाय के स्वरूप के बारे में निष्कर्ष निकाल सकते हैं और समुदाय के रूप-रंग के बारे में भविष्यवाणी कर सकते हैं। हम पादप जीवन की विभिन्न प्रावस्थाओं (phases) के लिए अनुकूल और प्रतिकूल ऋतुओं के बारे में भी जान सकते हैं।

अभी तक हमने केवल पौधों के बारे में बात की है। समुदाय में प्राणी प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से पौधों पर निर्भर हैं। वे भी अपनी गतिविधियों का समय इस ढंग से तय करते हैं कि यह पौधों की अधिकतम गतिविधि से मेल खाता है। उदाहरण के लिए, *ट्राइओज़ा फ्लेचेरी माइनर (Trioza fletcheri minor)* नामक एक सिलिड (psyllid) का *टर्मीनेलिया अर्जुना (Terminalia arjuna)* पेड़ से साहचर्य है। यह कीट इस पेड़ की पत्तियां और फलों पर पिटिकाएं (galls) बनाता है। जब पौधा नई पत्तियां धारण करता है तो उस ऋतु के दौरान सिलिड भी सक्रिय रूप से बढ़ता है। यह पौधे के नए कोमल भागों पर पिटिकाएं बनाता है। इस प्रकार बनाई गई पिटिकाओं में कीट के बच्चे पनपते हैं। यह उदाहरण दर्शाता है कि कीट ने किस प्रकार अपनी जनन प्रावस्था के समय का पौधे की जनन प्रावस्था के साथ तालमेल बैठा लिया है। यह एक पौधे के साथ कीट के साहचर्य को भी दर्शाता है। इसके अलावा प्रकृति में ऐसे उदाहरण हैं, जहां कीटों या अन्य जीवों की एक से अधिक जातियों का पौधे की एक जाति विशेष के साथ साहचर्य है।

iv) जीवन शक्ति और ओज (Vitality and Vigour) : जीवन शक्ति पौधे की स्थिति और अपना जीवन चक्र पूरा करने की उसकी क्षमता से संबंधित है, जबकि ओज किसी विशेष अवस्था (certain stage) में स्वास्थ्य अथवा परिवर्धन (health and development) से संबंधित है। हम कह सकते हैं कि एक नवोद्भिद् (seedling) या एक परिपक्व पौधा ओजपूर्ण है या यह कमज़ोर है या उसका परिवर्धन कम हुआ है। पौधों के ओज निर्धारण में अनेक निकष (criteria) उपयोग होते हैं। उदाहरण के लिए ऊंचाई में वृद्धि की दर और इसकी कुल मात्रा बसंत में या घास कटाई या चराई के बाद वृद्धि, नवीकरण में तेजी; पर्णसमूह (foliage) का क्षेत्र, पत्तियों और तनों के रंग तथा उनकी स्फीति (turgidity), रोगों या कीटों द्वारा पहुंचाई गई क्षति की कोटि, फूल वृंतों (stalk) के प्रकट होने का समय और उनकी संख्या तथा ऊंचाई, मूलतंत्र (root system) की वृद्धि-दर और उसका विस्तार; नए तनों और नई पत्तियों का प्रगटन और परिवर्धन। जीवन क्षमता के वर्गीकरण के लिए डॉबेन्मायर (Daubenmire) द्वारा बताए गए समूह नीचे दिए गए हैं :

वी$_1$ — जिन पौधों के नवोद्भिद् मर जाते हैं
वी$_2$ — नवोद्भिद् उगते हैं पर जनन (reproduction) नहीं कर पाते
वी$_3$ — केवल कायिक जनन होता है
वी$_4$ — लैंगिक रूप से जनन करते हैं, लेकिन यह सामान्य नहीं हैं
वी$_5$ — लैंगिक रूप से जनन करते हैं और इनमें नियमित रूप से वृद्धि होती है

v) जीवन रूप (Life forms) स्थलीय समुदायों के रूप और उनकी संरचना का निर्धारण उसमें पाई जाने वाली वनस्पति की प्रकृति द्वारा किया जाता है। वनस्पति को वृद्धि रूपों (growth form) के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है। पौधे लम्बे या नाटे, शाकीय (herbaceous) या काष्ठिल(woody), सदाबहार (evergreen) या पर्णपाती (deciduous) हो सकते हैं। हम पौधों को पेड़ों, झाड़ियों और शाकों में वर्गीकृत कर सकते हैं तथा इन श्रेणियों को और भी उपभागों में बांट सकते हैं, जैसे कि सुई जैसी पत्तियों वाले सदाबहार (needle-leaved evergreens), चौड़ी पत्तियों (broad-leaved) वाले सदाबहार, चौड़ी पत्ती वाली पर्णपाती झाड़ियां, फर्न, घास इत्यादि।

क्रिस्तन रौन्कीर (Christen Raunkiaer) नामक एक डैनिश वनस्पतिविज्ञ ने 1903 में एक अधिक उपयोगी प्रस्ताव रखा। इस पद्धति में पौधों के वृद्धि रूप (growth form) के बजाय पौधों के जीवन रूप यानि (life form) जमीन से ऊपर की उनकी ऊंचाई का उनके चिरकालिक अंगों (perennating organs) से संबंध को आधार माना गया है। चिरकालिक अंग वह है जो शीत या शुष्क कालों में निष्क्रिय रहकर तथा एक वृद्धि ऋतु से दूसरी वृद्धि ऋतु तक बचा रहता है। चिरकालिक ऊतक कालिकाओं (buds), शल्क कंदों (bulbs) कंदों (tubers), मूलों

और बीजों का भ्रूणीय (embryonic) या मेरिस्टमी ऊतक है। रौन्कीर ने पांच प्रमुख जीवन रूपों को पहचाना, जिनकी हम नीचे चर्चा करेंगे।

पाँच जीवन रूप (देखिए चित्र 9.8) इस प्रकार हैं : क) व्यक्तोद्भिद् (phanerophytes). ख) भूतलोद्भिद् (Chamaephytes), ग) अर्धगूढ़ोद्भिद् (Hemicryptophytes).घ) गूढ़ोद्भिद् (Cryptophytes) और च) ऋतुद्भिद् (Therophytes)। आइये अब हम इन पांच वर्गों के विषय में विस्तार से जानें।

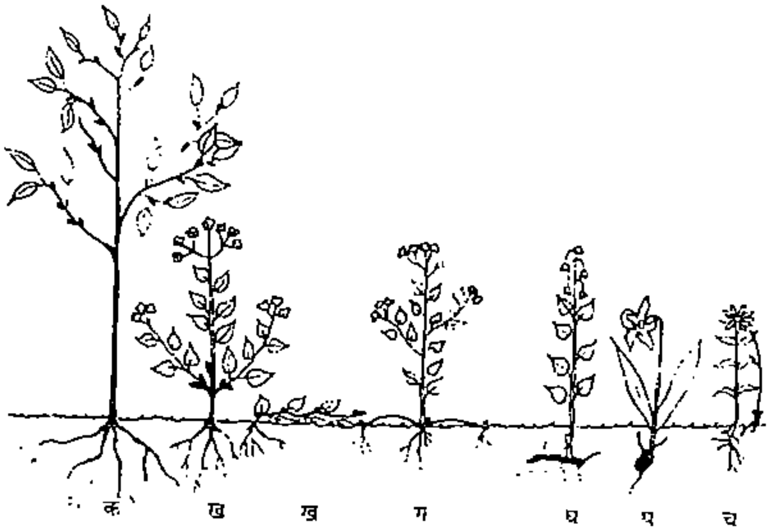

चित्र 9.8 : रौन्कीर द्वारा प्रस्तावित जीवन रूप : क) व्यक्तोद्भिद्, ख) भूतलोद्भिद्, ग) अर्धगूढ़ोद्भिद्, घ) गूढ़ोद्भिद्, और च) ऋतुद्भिद्

क) **व्यक्तोद्भिद्** (ग्रीक शब्द phaneros का अर्थ है "दिखाई देने वाला") इस वर्ग में चिरकालिक कलिकाएं भूमि से काफी ऊपर, सीधे, ऋणात्मक रूप से गुरुत्वानुवर्ती प्ररोहों (geotrophic shoots) पर मौजूद रहती हैं (देखिए चित्र 9.8 क)। ये कलिकायें अनावृत या कम संरक्षित होती हैं और परिवर्तनशील जलवायु परिस्थितियों में खुली रहती हैं। इन जीवन रूपों में पेड़, झाड़ियां और आरोही लताएं शामिल हैं। ये आम तौर पर उष्णकटिबंधीय जलवायु में पाई जाती हैं। जब हम उष्ण-कटिबंधीय प्रदेशों से ध्रुवीय प्रदेशों की ओर चलते हैं तो इनकी संख्या धीरे-धीरे कम होती जाती है।

ख) **भूतलोद्भिद्** (ग्रीक शब्द chamai का अर्थ है "भूमि पर") चिरकालिक कलिकाएं और अंग जमीन से सटे लेकिन जरा-सा ही ऊपर रहने वाले प्ररोहों पर लगती हैं (देखिए चित्र 9.8 ख)। गिरी हुई पत्तियां और बर्फ का आवरण कलिकाओं की रक्षा करता है। इन जीवन रूपों में विसर्पी (creepy), काष्ठीय और शाकीय पौधे शामिल हैं। ये पौधे ठंडी सूखी जलवायु अर्थात् उत्तर ध्रुवीय और अल्पाइन प्रदेशों की विशेषता हैं।

ग) **अर्धगूढ़ोद्भिद्** (ग्रीक शब्द hemi partly का अर्थ है "आंशिक रूप से" और kryptos का अर्थ है "छिपा हुआ" यानी "गूढ़") : इस मामले में चिरकालिक कलिकाएं या अंग मिट्टी की सतह पर स्थित हैं (देखिए चित्र 9.8 ग) जहां उनकी रक्षा मिट्टी तथा गिरी हुई पत्तियों से होती हैं। इनमें स्तव (रोजेट) और गुच्छ (टसक) में उग रहे शाक शामिल हैं। ये पौधे ठंडे शीतोष्ण मंडलों में पाए जाते हैं, जहां प्रतिकूल परिस्थितियां शुरू होते ही वायव (aerial) अंग मर जाते हैं। अधिकांश द्विवर्षी और बहुवर्षी (perennial) शाक इस श्रेणी में आते हैं।

घ) **गूढ़ोद्भिद्** (ग्रीक शब्द kryptos का अर्थ है "छिपा" अथवा "गूढ़"): चिरकालिक कलिकाएं या प्ररोह शीर्ष (shoot apex) मृदा-पृष्ठ (मिट्टी की सतह) में कुछ दूरी तक भूमि में दबे रहते हैं (देखिए चित्र 9.8 घ)। यह दूरी विभिन्न जातियों में भिन्न होती है। कलिकाएं इतनी गहराई में दबी रहती हैं, जहां वे अत्यधिक ठंड या शुष्कन से रक्षित रहती हैं। कंदीय और शल्ककंदीय शाक इसके उदाहरण हैं। इनमें से अनेक जातियां शुष्क प्रदेशों में पाई जाती हैं। जलोद्भिद् (hydrophytes) वे गूढ़ोद्भिद् हैं, जिसकी कलिकाएं जलपृष्ठ के नीचे पाई जाती हैं।

च) **ऋतुद्भिद्** (ग्रीक शब्द theros का अर्थ है "ग्रीष्म") ये ग्रीष्म ऋतु या अनुकूल ऋतु के एकवर्षी पौधे हैं। ये एक ही अनुकूल ऋतु में अपना जीवन चक्र पूरा कर लेते हैं और ठंडे मौसम को बीज के रूप में पार कर लेते हैं (देखिए चित्र 9.8 च)। वर्ष की प्रतिकूल कालावधि

के दौरान इनके बीज प्रसुप्त (dormant) रहते हैं। ऋतुद्भिद् अपना जीवन चक्र केवल कुछ महीनों के अंदर ही पूरा कर लेते हैं और आम तौर पर रेगिस्तानों और घासस्थलों में पाए जाते हैं।

वनस्पति में विभिन्न जीवन रूपों का सापेक्ष अनुपात, हमें भू-जलवायु परिस्थितियों के बारे में बतलाता है। उदाहरण के लिए आर्द्र (नम) उष्णकटिबंधीय प्रदेशों के वनस्पति जात के लगभग 60-90 प्रतिशत में व्यक्तोद्भिद् होते हैं। भूतलोद्भिद् उत्तरध्रुवीय (arctic) और अल्पाइन प्रदेशों की विशेषता है और ठंडे शीतोष्ण प्रदेशों में लगभग 50 प्रतिशत जातियां अर्धगूढ़ोद्भिद् की हैं।

vi) **सामाजिकता/संघचारिता** (Sociability/Gregariousness) : सामाजिकता का तात्पर्य व्यष्टिगत पौधों की समूह बनाने की प्रकृति से है अर्थात् क्या वे अकेले-अकेले, चप्पों में, कालोनियों में अथवा एक समानता से अंतःमिश्रित (intermixed) उगते हैं। यह पौधों के जीवन रूप और ओज, आवास परिस्थितियों तथा व्यष्टियों के बीच प्रतियोगितापूर्ण (competitive) और दूसरे संबंधों पर निर्भर करता है। सामाजिकता जातियों के बीच सहाचर्य के अंश को अभिव्यक्त करती है। नीचे दिए गए पांच सामाजिकता समूहों का उपयोग जातियों की सामाजिकता संनिर्धारण के लिए किया जाता है :

एस$_1$ –पौधे (तने) एक-दूसरे से काफी अलग पाए गए, इस तरह अकेले-अकेले उगते हैं
एस$_2$ – एक स्थान पर 4-6 पौधों का समूह
एस$_3$ – एक जगह पर अनेक छोटे-छोटे समूह
एस$_4$ – एक स्थान पर बहुत से पौधों के अनेक बड़े-बड़े समूह
एस$_5$ – बड़े क्षेत्र को घेरे हुए एक बड़ा समूह

9.4.2 गुणात्मक अभिलक्षण

i) **जनसंख्या घनत्व** : घनत्व एक इकाई क्षेत्र में एक विशेष जाति के व्यष्टियों की औसत संख्या दर्शाता है। दूसरे शब्दों में यह एक समुदाय में एक जाति की संख्यात्मक शक्ति (numerical strength) को प्रस्तुत करता है। घनत्व के अध्ययन से विभिन्न क्षेत्रों के बीच जातियों की **प्रचुरता** (abundance) की सही-सही और प्रत्यक्ष तुलना करना संभव हो जाता है। घनत्व से एक ही जाति के सदस्यों के बीच और एक जाति की दूसरी जाति से प्रतियोगिता के अंश के बारे में भी ज्ञान प्राप्त होता है। इसे नीचे दिए गए तरीके से परिकलित किया जाता है :

$$\text{घनत्व} = \frac{\text{सभी प्रतिचयन इकाइयों (sampling units) में जाति के व्यष्टियों की कुल संख्या}}{\text{अध्ययन की गई प्रतिचयन इकाइयों की कुल संख्या}}$$

इस प्रकार, प्राप्त मान को प्रति इकाई क्षेत्र व्यष्टियों की संख्या के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।

अशोधित घनत्व (crude density) : यह आवास भर में एक जाति के व्यष्टियों का घनत्व है और यह यादृच्छिक प्रतिचयन (random sampling) द्वारा निर्धारित किया जाता है।

पारिस्थितिकीय घनत्व (ecological density): यह एक जाति के व्यष्टियों के घनत्व से संबंधित है। यह उस जगह निर्धारित किया जाता है, जहां वे व्यष्टि समुदाय में वास्तव में पाए जाते हैं।

हम एक उदाहरण से इसे और विस्तार से जानेंगे। ज़मीन के एक छोटे टुकड़े की कल्पना कीजिये, जहां कुछ पानी भरी खाइयां हैं और बाकी सूखी जमीन है। अब अगर हम उस क्षेत्र में मेढ़क का घनत्व निर्धारित करना चाहें तो हम क्षेत्र भर में वितरित कुछेक प्रतिचयन इकाइयों को चुनेंगे और घनत्व का निर्धारण करेंगे। सूखे क्षेत्रों में मेंढकों की संख्या बहुत ही कम होगी या मेढ़क नहीं होंगे। यह अशोधित घनत्व है। यदि हम नम और पानी के नजदीक वाले क्षेत्रों में मेंढकों का घनत्व निधारित करें तो इसे पारिस्थितिकीय घनत्व कहेंगे।

ii) **आवरण** (Cover) **भरे हुए क्षेत्र** : आवरण या विशिष्ट रूप से **शाक आवरण** (herbage cover) का अर्थ भूमि के उस क्षेत्र से है जो ऊपर से देखे जाने वाले पत्तियां, तनों और (inflorescence) अर्थात् पौधों के भू-ऊपरी भागों से घिरा हुआ होता है (देखिए चित्र : 9.9)। अक्सर अतिव्यापन (overlapping) के कारण हर परत या स्तर का अलग-अलग विचार किया जाता है। इस प्रकार विचार करने से लम्बे पौधे का उसके नीचे उगने वाले पौधे से अलग संनिर्धारण होता है। आधारी क्षेत्र (basal cover) का आशय तने द्वारा वास्तविक रूप से वेधित

भूमि से है (देखिए चित्र 9.9)। भूपृष्ठ पर पत्तियों और तनों को कुतर देने पर इसे आसानी से देखा जा सकता है। (देखिए चित्र : 9.9)।

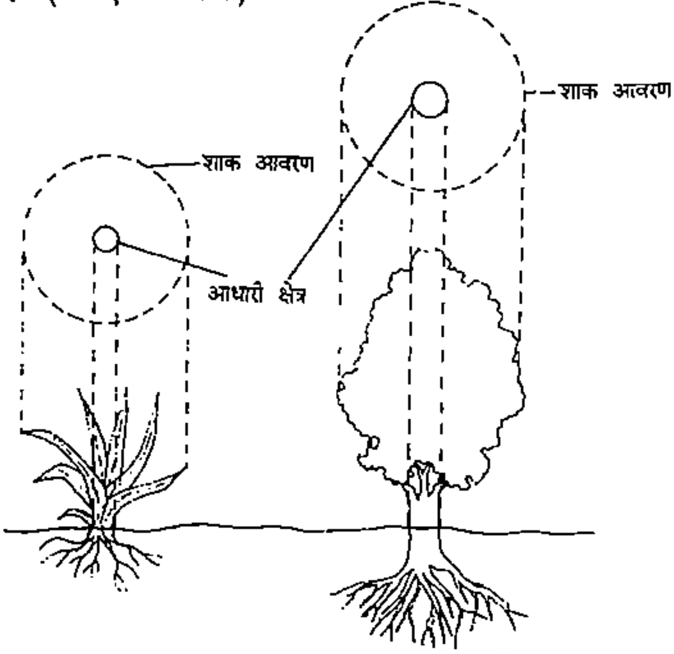

चित्र 9.9 : विभिन्न पौधों में शाक आवरण और आधारी क्षेत्र दर्शाने वाला आरेखीय चित्र

समुदाय की प्रकृति समझने में, विशेष रूप से जातियों के बीच गुणात्मक संबंध का मान निकालने के लिए शाक क्षेत्र तथा वनस्पति आवरण, वनस्पति अध्ययन में एक महत्वपूर्ण पहलू हैं। जब व्यष्टि पौधों के शाक आवरणों का पार्श्व (lateral) संपर्क होता है और वे एक सतत् यानी लगातार आवरण (continuous cover) बनाते हैं तो वनस्पति संवृत या बंद (closed) कहलाती है। जब वनस्पति आवरण में अंतराल होते हैं यानी बीच-बीच में जगह छूटी हुई होती है जिसमें दूसरे व्यष्टि पौधे उगने तथा बढ़ने लगते हैं तो वनस्पति विवृत या खुली (open) कहलाती है। अगर छूटी हुई जगह बहुत ज्यादा होती है और उसमें पाए जाने वाले पौधे कम होते हैं विरल (sparse) शब्द का प्रयोग किया जाता है। समुदाय के परिवर्तनों की प्रकृति और वृति निर्धारण में शाक आवरण के आवर्ती रिकार्ड से काफी सूचना मिलती है। चित्र 9.10 में यह बात बहुत स्पष्ट तौर से दिखाई गई है। इसमें समय परिवर्तनों की पर्याप्त कालावधि में आधारी क्षेत्र दिखाया गया है।

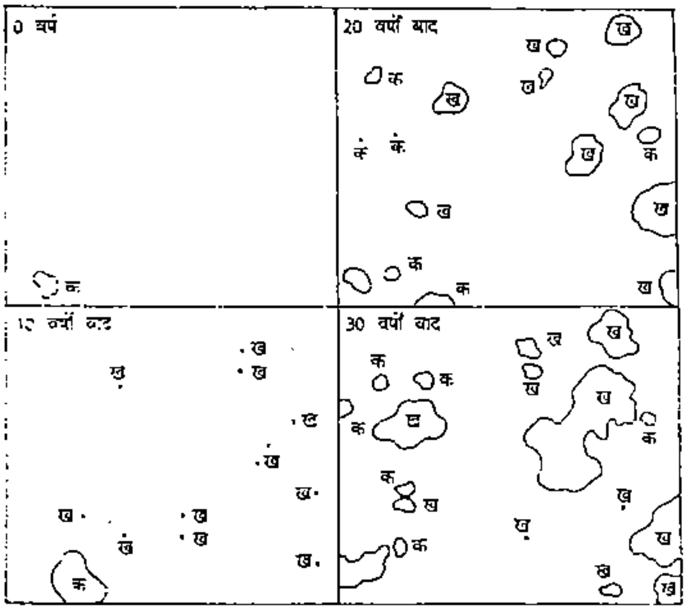

चित्र 9.10 : 30 साल की कालावधि में एक प्रतिचयन इकाई में जाति संघटन और आधारी क्षेत्र में परिवर्तन

iii) **पौधों की ऊंचाई :** पौधे की ऊंचाई उसकी सामान्य क्रिया की सूचक है और इसलिए इसे विभिन्न आवासों में जातियों की सफलता की कसौटी के रूप में काम में लाया जा सकता है। इसे पर्यावरण की अनुकूलता के माप के रूप में भी काम में लाया जा सकता है और

वन-विशेषज्ञ इसे वृक्षों की विभिन्न जातियों के लिए स्थल गुण के सूचकांक के रूप में बहुत काम में आते हैं।

iv) **पौधों का भार :** भार पौधों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण मात्रात्मक विशिष्टता है। मात्रात्मक वृद्धि को शुष्क भार के आधार (dry weight) पर सबसे अच्छी तरह मापा जाता है क्योंकि यह वनस्पति की कुल मात्रा (total mass) या जीव भार (biomass) को अभिव्यक्त करता है।

पौधों के भूमि से ऊपर के भागों के लिए और भूमिगत भागों के लिए जीवभार या पौधों के वजन को अलग-अलग मापा जा सकता है। इन भागों को एक अवन (oven) में 80° सेंटीग्रेड पर सुखाकर मापा जा सकता है। इस तरह के अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों से उस जाति के उत्पादन के बारे में हमें मूल्यवान जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए, भूमि से ऊपर के उपयोगी पादप भागों के मूल्यांकन से हमें चारे (forage) की सुलभता के बारे में एकदम सही जानकारी मिलती है।

बोध प्रश्न 2

नीचे कुछ विश्लेषिक लक्षण दिए गए हैं। हर लक्षण से मिलने वाली जानकारी संक्षेप में लिखिए :

i) पादपी संघटन (Floristic composition)

....

....

ii) स्तरण (Stratification)

....

....

iii) आवर्तिता (Periodicity)

....

....

iv) जीवन क्षमता और ओज (Vitality and vigour)

....

....

v) जीवन रूप (Life form)

....

....

vi) सामाजिकता (Sociability)

....

....

vii) जनसंख्या घनत्व (Population density)

....

....

viii) आवरण (Cover)

....

....

ix) ऊंचाई (Height)

....

....

x) भार (Weight)

....

....

9.5 संश्लेषी गुण

विभिन्न समुदायों के बीच तुलना करने के लिए व्यक्ति को उन समुदायों के संश्लेषी गुणों (synthetic characters) के अध्ययन की जरूरत होती है। ये संश्लेषी लक्षण क्या हैं? अब हम इनकी चर्चा करेंगे।

9.5.1 उपस्थिति और स्थिरता (Presence and Constancy)

उपस्थिति और स्थिरता से यह पता चलता है कि किसी समुदाय में विभिन्न खड़ों की जातियां कितनी एकसमानता (uniformity) से पाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई जाति किसी समुदाय में 20 खड़ों में से 15 में पाई जाती है तो उसकी उपस्थिति या स्थिरता 75 प्रतिशत है।

15/20×100 = 75 प्रतिशत

उपस्थिति और स्थिरता शब्दों का प्रयोग लगभग एक ही अर्थ में किया जाता है, लेकिन फिर भी ये समानार्थक नहीं हैं। स्थिरता शब्द का प्रयोग उस समय किया जाता है जब बराबर, मापे गए नमूना क्षेत्रफलों को अध्ययन के लिए काम में लाया जाता है और उपस्थिति शब्द का प्रयोग उस समय किया जाता है जब प्रतिचयन (नमूना) इकाई का क्षेत्रफल एक खड़ से दूसरे खड़ में बदलता रहता है और विशेष रूप से जब खड़ ठीक-ठीक मापा नहीं जाता। कई बार, वनस्पति की प्रकृति के कारण सभी प्रतिचयन इकाइयों का क्षेत्रफल एक सा नहीं होता। उदाहरण के लिए चट्टान विदरिकाओं (crevices) में छोटे अनियमित खड़ या सरिता के साथ-साथ बालू निक्षेपों पर पाये जाने वाले खड़।

प्रतिचयन इकाइयों या खड़ों में पाए जाने वाले प्रतिशत के आधार पर एक समुदाय में जातियों को पांच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये वर्ग हैं :

वर्ग I — समुदाय की प्रतिचयन इकाइयों का 1-20 प्रतिशत

वर्ग II — समुदाय की प्रतिचयन इकाइयों का 21-40 प्रतिशत

वर्ग III — समुदाय की प्रतिचयन इकाइयों का 41-60 प्रतिशत

वर्ग IV — समुदाय की प्रतिचयन इकाइयों का 61-80 प्रतिशत

वर्ग V — समुदाय की प्रतिचयन इकाइयों का 81-100 प्रतिशत

आपने गौर किया होगा कि वर्ग IV और V में वे जातियां शामिल हैं, जो काफी सारे खड़ों में पाई जाती हैं। 80-90 प्रतिशत या अधिक प्रतिचयन इकाइयों में पाई जाने वाली जातियां स्थिर जातियां (constant species) कहलाती हैं। ये जातियां महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये विभिन्न प्रकार के समुदायों को पहचानने तथा उनका लक्षण वर्णन करने में सहायता करती हैं। वर्ग IV और V की जातियां दो संभावनाएं बताती हैं : i) जातियों का विस्तृत पारिस्थितिकीय आयाम है और इसलिए इनमें विभिन्न सूक्ष्म आवासों में बसने की क्षमता है तथा ii) विभिन्न प्रतिचयन इकाइयाँ पर्यावरणीय परिस्थितियों में बहुत समान हैं, इसलिए सकरे आयाम वाली जातियां इन सभी में उग सकती हैं।

9.5.2 संलग्नता (Fidelity)

संलग्नता का आशय इससे है कि एक जाति की उपस्थिति एक विशेष प्रकार के समुदाय में सीमित अथवा प्रतिबंधित है। कम संलग्नता या वासनिष्ठा वाली जातियां कई भिन्न-भिन्न समुदायों में पाई जाती हैं और उच्च संलग्नता वाली जातियां कुछेक या केवल एक ही समुदाय तक प्रतिबंधित हैं। पांच संलग्नता वर्गों को नीचे दर्शाया गया है :

क) **अभिलाक्षणिक जातियां** (Characteristic, faithful species)

संलग्नता 5 : अनन्यावासी (exclusive), पूर्ण रूप से या लगभग पूर्णतया एक प्रकार के समुदाय तक सीमित

संलग्नता 4 : वरणात्मक (selective), ज्यादातर एक प्रकार के समुदाय में उपस्थित लेकिन दूसरे प्रकार के समुदाय में भी पाई जाती हैं, हालांकि ऐसा दुर्लभ होता है

संलग्नता 3 : अधिमान्य (preferential), ये लगभग अनेक प्रकार के समुदायों में पाई जाती हैं। लेकिन एक प्रकार के समुदाय में जहां जीवन-शक्ति के लिए इष्टतम परिस्थितियां हैं, वहां ये अधिकतर पाई जाती हैं

ख) **सहचर (companion) जातियां**
संलग्नता 2 : निरपेक्ष या उदासीन, किसी भी विशेष प्रकार के समुदाय के लिए स्पष्ट आकर्षण या तरजीह के बिना पाई जाने वाली

ग) **आकस्मिक (accidental) जातियां**
संलग्नता 1: दूसरे समुदाय से आए पराए, दुर्लभ और आकस्मिक घुसपैठिए तथा अनुक्रमण की प्रारंभिक अवस्था से आई अवशिष्ट (relicts) जातियां

आपने देखा कि कुछ जातियां दूसरे समुदायों में नहीं उग सकतीं या नहीं पाई जातीं। इसका कारण यह है कि जातियों का अपना पारिस्थितिकीय आयाम अलग-अलग है या पारिस्थितिकीय परिस्थितियों की व्यापक परास को सहने की उनकी क्षमता भिन्न-भिन्न है। कुछ जातियां दूसरी जातियों से सम्बद्ध हो जाती हैं, जबकि कुछ नहीं हो पातीं।

संलग्नता और स्थिरता आत्मनिर्भर अभिलक्षण है। संलग्नता विभिन्न तरह के समुदाय प्रकारों में जातियों के पाए जाने से संबंधित है, स्थिरता उसी समुदाय में विभिन्न खंडों से संबंधित है। संलग्नता मुख्य रूप से एक सामाजिक गुण है। जिस जाति में उच्च संलग्नता होती है या जो वर्ग 5 में आती है, वह सूचक जाति (indicator species) कहलाती है।

9.5.3 प्रमुखता (Dominance)

यह वनस्पति का एक अभिलक्षण है, जो खड़ में एक या अधिक जातियों के प्रमुख प्रभाव को व्यक्त करता है, जिससे दूसरी जाति या जातियों की आबादी का लगभग दमन हो जाता है या वे संख्या और जीवन-क्षमता में घट जाती हैं। प्रमुख जातियाँ(dominants) वे हैं जो एक विशेष आवास में अत्यधिक सफल रहती हैं। आवरण और जनसंख्या घनत्व दो मुख्य गुण हैं, जो प्रमुखता का निर्धारण करते हैं लेकिन बारंबारता (frequency), ऊंचाई, जीवन रूप और जीवन शक्ति जैसे प्राचलन (पैरामीटर) भी महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख जातियां आवास में नियंत्रणकारी प्रभाव डालती हैं। वे सूक्ष्म आवास (microhabitat) को रूपांतरित करती हैं, जिससे अनेक भिन्न-भिन्न जातियों की वृद्धि होती है अन्यथा ये जातियां प्रमुख जातियों की अनुपस्थिति में जीवित ही न बचतीं।

आइए उदाहरण के रूप में चरागाहों में पाई जाने वाली एक प्रमुख जाति *साइनोडॉन डैक्टाइलॉन* (दूब) पर विचार करें। इसकी सफलता का श्रेय श्रेष्ठ जीवन शक्ति, द्रुत या तेज गुणन और वृद्धि, गहरे वेधी मूल-तंत्र को जाता है। ये सब लक्षण इसे कई घास स्थलों में प्रमुख जाति बना देते हैं।

9.5.4 रूपाकृति और प्रतिरूप (Physiognomy and Pattern)

रूपाकृति वनस्पति का सामान्य रूप-रंग है जो प्रमुख जातियों के वृद्धि रूप से निर्धारित होती हैं। इसे एक संश्लेषी लक्षण माना जा सकता है क्योंकि रूप-रंग अनेक गुणात्मक अभिलक्षणों पर आधारित है। ये अभिलक्षण हैं : प्रमुख जातियों की किस्में, जीवन रूप, जनसंख्या घनत्व, आवरण, ऊंचाई, सामाजिकता, स्तरण, और जातियों का साहचर्य आदि। उदाहरण के लिए अगर हम ऐसे समुदाय पर निगाह डालें जहां लम्बे पेड़ प्रमुख हैं और कुछ झाड़ियां भी मौजूद हैं तो हम फौरन कह देंगे कि यह एक वन है। इसी तरह रूप-रंग के आधार पर व्यक्ति एक समुदाय को घास स्थल या मरुस्थल समुदाय के रूप में पहचान सकता है।

प्रतिरूप का आशय यह है कि क्या वनस्पति, समूह या व्यष्टियों के झुरमुट या किसी दूसरे अयादृच्छिक विन्यास (non-random arrangement) के रूप में पाई जाती है।

9.5.5 बारंबारता (Frequency)

यह शब्द एक क्षेत्र में व्यष्टि जातियों के परिक्षेपण अंश (degree of dispersion) से संबंधित है और इसे प्रायः प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। अनेक स्थानों पर यादृच्छिक या एक अपेक्षित प्रतिरूप में अध्ययन-क्षेत्र के प्रतिचयन द्वारा बारंबारता का अध्ययन किया जा सकता है ताकि स्थान-विशेष पर्याप्त रूप से आच्छादित किया जा सके। हर प्रतिचयन इकाई में पाई जाने वाली जातियों के नाम रिकार्ड कर लिए जाते हैं। आइए अब हम यह देखें कि किसी जाति की बारंबारता कैसे निर्धारित की जाती है।

एक ऐसी जाति पर विचार कीजिए, जो कुल 20 प्रतिशत इकाइयों में से पांच प्रतिचयन इकाइयों में पाई जाती है। इस स्थिति में इसकी बारंबारता (एफ) 25 प्रतिशत है। यह

निम्नलिखित सूत्र से परिकलित की जाती है :

$$\text{एफ} = \frac{\text{उन प्रतिचयन इकाइयों की संख्या जिनमें वह जाति पाई जाती है}}{\text{अध्ययन की गई प्रतिचयन इकाइयों की कुल संख्या}} \times 100$$

जो जाति पूरे क्षेत्र भर में सबसे अधिक प्रचुरता से फैली हुई है, उसकी सभी प्रतिचयन इकाइयों में पाए जाने की संभावना है और इसलिए इसकी बारंबारता 100 प्रतिशत होगी। एक जगह पर बड़ी संख्या में एकत्रित एक कम परिक्षेपित जाति की केवल कुछेक प्रतिचयन इकाइयों में पाए जाने की संभावना है और इसकी बारंबारता कम होगी। इस प्रकार, उच्च बारंबारता मान से जाति के परिक्षेपण की अधिकाधिक समानता का पता चलता है। क्या आपने गौर किया कि बारंबारता निर्धारण के लिए, प्रतिचयन इकाइयों में जाति की उपस्थिति या अनुपस्थिति रिकार्ड की जाती है न कि प्रत्येक जाति के व्यष्टियों की संख्या। इस तरह, आप बारंबारता और घनत्व में अंतर कर सकते हैं। आपको याद होगा कि घनत्व के लिए प्रति इकाई क्षेत्रफल व्यष्टियों की संख्या रिकार्ड की जाती है।

एक समुदाय में एक जाति की दूसरी जाति के सापेक्ष बारंबारता को आपेक्षित बारंबारता (relative frequency) कहते हैं और यह नीचे दिए गए सूत्र से परिकलित की जाती है :

$$\text{आपेक्षिक बारंबारता} = \frac{\text{जाति की बारंबारता}}{\text{सभी जातियों की कुल बारंबारता}} \times 100$$

9.5.6 महत्व मानानुपात (Importance Value Index-IVI)

समुदाय के किसी भी अध्ययन में, बारंबारता, घनत्व और आवरण प्रत्येक के मात्रात्मक मान का काफी महत्व होता है। लेकिन इनमें से किसी भी एक अकेले मान से पारिस्थितिकीय महत्व का संपूर्ण चित्र नहीं मिल सकता। उदाहरण के लिए, बारंबारता से यह पता चलता है कि जाति किसी क्षेत्र में कैसे परिक्षिप्त है लेकिन हमें न तो इसकी संख्या का पता चलता है और न ही इसके द्वारा घेरे गए क्षेत्र का पता चलता है। सामुदायिक संरचना के संदर्भ में किसी जाति के पारिस्थितिकीय महत्व का व्यापक चित्र प्राप्त करने के लिए आपेक्षित बारंबारता, आपेक्षिक घनत्व (relative density) और प्रमुखता (relative dominance) के प्रतिशत मानों को एक साथ जोड़ा जाता है। 300 में से यह मान जाति का महत्व मानानुपात या IVI कहलाता है।

आरेखीय निरूपण द्वारा भी महत्व मानानुपात (IVI) को निम्नलिखित तरीके से निर्धारित किया जा सकता है :

एक वृत्त बनाइए और दो रेखाएं खींचिए, जो एक-दूसरे पर समकोण बनाती हुई केन्द्र से गुजरें। वृत्त को चार बराबर भागों में बांटें (देखिए चित्र 9.11)।

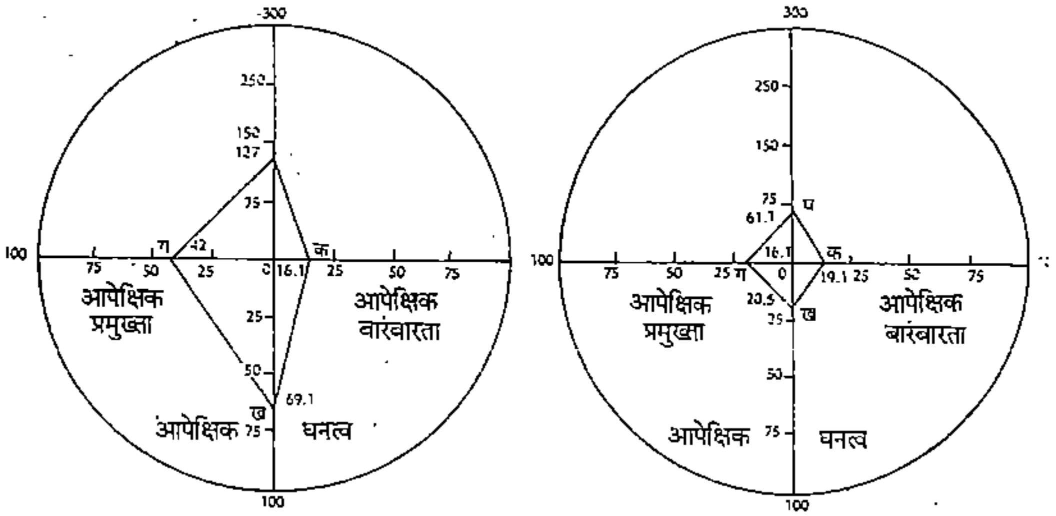

Dichanthium annulatum *Cynodon dactylon*

चित्र 9.11 : व्यष्टिक जातियों के सामाजिक लक्षण बताने की बहुरेखा चित्रीय विधि (ऐम्बष्ठ, आर.एस., 1986 के अनुसार)

तीन त्रिज्याओं को केन्द्र से लेकर परिधि (circumference) तक 100 भागों में विभाजित किया जाता है और चौथी त्रिज्या को 300 भागों में बांटा जाता है। 0-100 पैमाने पर आपेक्षिक

बारंबारता के मान क पर, आपेक्षिक घनत्व के ख पर, आपेक्षिक प्रमुखता के ग पर चिह्नित किए जाते हैं, और IVI मान 0-300 पैमाने के रूप में घ पर चिह्नित किए जाते हैं। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, इन सब बिन्दुओं को मिला दिया जाता है। इस तरह के चित्रण से किसी जाति के सामाजिक लक्षणों और IVI को एक ही नजर में समझने में मदद मिलती है। इस तरह IVI एक समुदाय में किसी जाति की सामाजिक हैसियत का मिला-जुला चित्र पेश करता है।

9.5.7 जाति विविधता (Species Diversity)

यह समुदाय का एक सबसे महत्वपूर्ण और आधारभूत अभिलक्षण है। जाति विविधता को मापने के अनेक तरीके हैं। सबसे सरल ढंग किसी दिए हुए क्षेत्र में जातियों की संख्या की गणना करना है। पौधे और बड़े या स्थानबद्ध प्राणियों के लिए ऐसा करना अपेक्षाकृत आसान है, लेकिन विभिन्न कीट जातियों की ठीक-ठीक गणना करना आमतौर पर कठिन है। वनों, घास स्थलों जैसे बड़े क्षेत्रों के लिए जातियों की संख्या का एक संतुलित आकलन तैयार करने में कई साल लग सकते हैं। जातियों की सूचियों के आधार पर उनकी विविधता का निर्धारण पूरी तरह से संतोषजनक नहीं होता क्योंकि जाति की विस्तृत और सही-सही सूची बनाना एक श्रम-साध्य कार्य है। अगर व्यापक परिश्रम नहीं किया गया तो इस बात की बहुत संभावना है कि कुछ जातियां छूट जाएं। यह संभव है कि किसी नमूने में अनेक जातियां दुर्लभ हों। विविधता मापते समय हमें इस तथ्य की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। उदाहरण के लिए, दो जातियों क और ख के 100 - 100 व्यष्टियों के काल्पनिक नमूनों की तुलना कीजिए। प्रत्येक नमूने की जातियों की संख्या का ब्यौरा सारणी 9.1 में दिखाया गया है।

सारणी 9.1 : दो प्रतिचयन इकाइयों में जातियों की संख्या

नमूना	जातियों की संख्या	
	क	ख
I	50	50
II	99	1

नमूना I में क के 50 और ख के 50 व्यष्टि हैं, लेकिन नमूना II में 99 क हैं और 1 ख है। क्या इन दो नमूनों की विविधता वास्तव में एक ही है? अगर विविधता को प्रत्येक नमूने में मौजूद जातियों की संख्या के रूप में मापना चाहते हैं तो उत्तर हां में होगा, लेकिन अधिकतर पारिस्थितिकीविज्ञ 50 क और 50 ख वाले समुदाय को 99 क और 1 ख वाले समुदाय की तुलना में अधिक विविधता वाला मानते हैं। आइए हम देखें कि ऐसा क्यों है? जाति विविधता को निर्धारित करने के लिए जो सबसे ज्यादा सूचकांक काम में लाया जाता है, वह शैनन विविधता सूचकांक (Shannon's Index of Diversity) (एच 'H') है और इसका परिकलन निम्न प्रकार से किया जाता है :

$$H' = -\sum_{i=1}^{i=s} p_i \log_e p_i$$

H' = जाति विविधता का सूचकांक

S = जातियों की संख्या

P_i = ith जाति (कोटि में) वाले कुछ नमने का अनुपात जो जाति i में व्यष्टियों की संख्या को नमूने में व्यष्टियों की कुल संख्या से भाग देने से निकाला जाता है।

e = प्राकृतिक लागेरिथ्म का आधार ($\log_e p_i = 2.302 \times \log_{10} p_i$)

(याद रखिए कि $\sum_{i=1}^{i=s}$ का अर्थ है कि $i = 1$ से $i = s$ की अभिव्यक्ति के द्वारा आप i के मान निकाल सकते हैं)

एच' का मान जितना बड़ा होगा अगली जाति की भविष्यवाणी के बारे में उतनी ही ज्यादा अनिश्चितता होगी और इसलिए विविधता उतनी ही अधिक होगी। आइए अब हम 100-

100 व्यष्टियों के दो नमूने I और नमूने II की तुलना करें और मालूम करें कि दोनों में से किसी विविधता का सूचकांक ऊंचा है।

नमूना I :

$$H' = -[(0.50 \times \log_e 0.50) + (0.50 \times \log_e 0.50)]$$
$$= -[2\,(0.50 \times -0.69)]$$
$$= 0.69$$

नमूना II :

$$H' = -[(0.99 \times \log_e 0.99) + (0.01 \times \log_e 0.01)]$$
$$= -[(0.99 \times 0.01) + (0.01 \times -4.61)]$$
$$= [(-0.01) + (-0.05)]$$
$$= 0.06$$

नमूना I का विविधता सूचकांक उच्च है।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित संश्लेषी गुणों में से प्रत्येक क्या जानकारी देता है?

i) उपस्थिति और स्थिरता (Presence and Constancy)

....

....

ii) संलग्नता (Fidelity)

....

....

iii) प्रमुखता (Dominance)

....

....

iv) रूपाकृति और प्रतिरूप (Physiognomy and Pattern)

....

....

v) बारंबारता (Frequency)

....

....

vi) महत्व मानानुपात (Important Value Index)

....

....

vii) जाति विविधता (Species diversity)

....

....

9.6 सारांश

इस इकाई में आपने समुदाय की संघटन और संरचना के कुछ मुख्य पहलुओं के बारे में सीखा। अब तक आपने सीखा कि:

- समुदाय जीवों की समष्टियों से बने हैं। जीव एक दिए गए क्षेत्र में रहते हैं और परस्पर क्रिया करते हैं। इनमें पारितंत्र का जीवीय घटक बनता है।
- समुदायों में अनेक समूह अभिलक्षण हैं, जो इनकी व्यष्टियों या समष्टियों दोनों के ही द्वारा नहीं दिखाए जाते।

- समुदाय का आकार बदलता रहता है। पारितंत्र की ही तरह, एक बडे समुदाय को भी छोटे-छोटे समुदायों में प्रविभाजित किया जा सकता है।
- ऊर्जा के स्रोत के आधार पर समुदाय स्वपोषित या परपोषित हो सकता है।
- समुदाय किसी पर्यावरणीय प्रवणता के साथ-साथ एक सांतत्यक बनाने के लिए आपस में सम्मिश्रित होते हैं। इस वजह से विभिन्न समुदायों को विरले ही स्पष्ट रूप से परिसीमित किया जा सकता है। कभी-कभी गंभीर पर्यावरणीय विक्षोभ या विक्षोभों के कारण समुदायों के बीच स्पष्ट सीमाएं देखी जा सकती हैं।
- जिस क्षेत्र में दो समुदाय सम्मिश्रित होते हैं यानी आपस में मिलते हैं उसे ईकोटोन कहते हैं। न केवल साथ-साथ लगे दो समुदायों की जातियों का प्रतिनिधित्व होता है, बल्कि कुछ जातियां जो इस क्षेत्र विशेष में होती हैं, देखी जा सकती हैं।
- किसी जाति का पूरा चित्र प्राप्त करने के लिए, उसके विश्लेषिक और संश्लेषी गुणों का अध्ययन आवश्यक है।
- गुणात्मक विश्लेषी लक्षणों में शामिल हैं : *पादपी संघटन*—समुदाय में उपस्थित जातियों के प्रकार; *स्तरण*— वनस्पति का स्तरण जो प्राणी जीवन की प्रकृति और वितरण पर प्रभाव डालता है; *आवर्तिता*— एक वर्ष में समुदाय में होने वाले आवर्ती परिवर्तन; *जीवन शक्ति और ओज*—वृद्धि की दर और मात्रा; *जीवन रूप*—पौधों में चिरकालिक ऊतकों की स्थिति; *सामाजिकता*—पौधों के समूह बनाने की प्रकृति।

  मात्रात्मक विश्लेषी लक्षणों में शामिल हैं : *जनसंख्या घनत्व*—एक इकाई क्षेत्रफल के अंदर एक जाति के व्यष्टियों की संख्या; *आवास क्षेत्र*—भू-उपरि पौधों के भागों द्वारा ढकी जमीन और भूमि का क्षेत्रफल जो वास्तव में तने द्वारा ढका हुआ(आधारी क्षेत्रफल); *पौधों की ऊंचाई; पौधों का भार*—जीवभार के रूप में मापित।
- संश्लेषी लक्षण हैं : *उपस्थिति और स्थिरता*—समुदाय में विभिन्न खड़ों में जाति की उपस्थिति की एकसमानता; *संलग्नता*—जिस अंश तक जाति एक विशेष समुदाय में प्रतिबंधित रहती है; *प्रमुखता*— समुदाय में जाति की पारिस्थितिकीय सफलता, और समुदाय में दूसरी जातियों की उपस्थिति पर प्रभाव; *रूपाकृति और प्रतिरूप*—अनेक गुणात्मक और मात्रात्मक लक्षणों के आधार पर वनस्पति का सामान्य रंग-रूप; *बारंबारता*—किसी क्षेत्र में जातियों के परिक्षेपण की कोटि; *महत्व मानानुपात*—समुदाय में जातियों की सामाजिक संरचना का संपूर्ण चित्र; *जाति विविधता*—समुदाय में जातियों की संख्या और प्रकार।

9.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) निम्नलिखित कथन पर टिप्पणी कीजिए :
"समुदाय परस्पर क्रियाशील समष्टियों का एक महसंघ है"

....

....

....

....

....

....

2) रिक्त स्थानों को उपयुक्त शब्दों से भरिए

क) जहां दो वनस्पतीय समुदाय सम्मिश्रित होते हैं, उस क्षेत्र .... कहलाता है।

ख) .... का आशय समुदाय के उस भाग से है जहां एक ही प्रकार और आयु की जातियां होती हैं।

ग) ऐसी स्थितियों में जहां दो समुदायों के मध्य पर्यावरणीय परिस्थितियों की व्यापक प्रवणता है .... देखा जाता है।

घ) ······ संकल्पना का अर्थ है कि स्पष्ट सीमाओं वाला कोई विशिष्ट समुदाय नहीं है, लेकिन कुछ पर्यावरणीय प्रवणताओं के साथ-साथ दिक्काल में क्रमिक परिवर्तन होता है।

च) ······· में वनस्पति के चार या पांच स्तर होते हैं और ······ में दो स्तर होते हैं।

छ) समुदाय में पौधों की जाति का ············· केवल तभी बनाया जा सकता है जब हमारे पास उनके जीवन वृत्त की घटना का पूरा कैलेंडर हो।

ज) ··········· पौधों में उच्च संलग्नता अथवा वासनिष्ठा होती है और ये एक विशेष प्रकार के समुदाय में पाए जाते हैं।

झ) जातियों के महत्व सानानुपात निर्धारित करने के लिए आपेक्षिक ·······, ······· ····· ········· ··· और ···················· की आवश्यकता है।

9.8 उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) ख

ii)

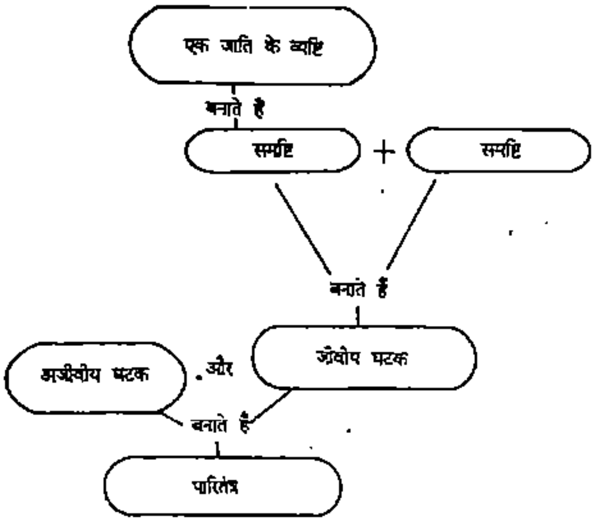

iii) क) पारितंत्र के जीवीय घटकों को दर्शाता है
ख) आपस में गुंथी हुई खाद्य श्रृंखलाओं वाले जीव हैं
ग) आकार में परिवर्तन हो सकता है
घ) संकल्पना किसी भी पैमाने पर लागू की जा सकती है
च) स्वपोषित या परपोषित हो सकती हैं
छ) एक खड या अनेक खड हो सकते हैं

2) i) समुदाय की विभिन्न जातियां
ii) वनस्पति के विभिन्न स्तर और निर्भर प्राणी जीवन
iii) एक वर्ष में वनस्पति में परिवर्तन
iv) वृद्धि की दर और मात्रा
v) चिरकालिक कलिका की स्थिति के आधार पर वनस्पति का प्रकार
vi) पौधों के समूह बनाने की प्रकृति
vii) किसी क्षेत्र में जातियों की संख्यात्मक शक्ति
viii) पौधों द्वारा ढका हुआ भूमि का क्षेत्र और भूमि के ऊपर का क्षेत्र
ix) पौधों की ~~अपने पर्यावरण के~~ प्रति अनुकूलता के बारे में बताता है
x) वनस्पति का कुल जीवभार

3) i) समुदाय में जाति कितनी एकसमानता से पाई जाती है
   ii) किस अंश तक जाति एक समुदाय तक प्रतिबंधित रहती है
   iii) समुदाय में एक या अधिक जातियों का प्रमुख प्रभाव
   iv) समुदाय में जीवों का सामान्य रूप-रंग और वितरण का प्रकार
   v) एक क्षेत्र में व्यैष्टिक जातियों के परिक्षेपण की कोटि
   vi) एक जाति के पारिस्थितिकीय महत्व का पूरा चित्र
   vii) समुदाय में जातियों की संख्या और उनके प्रकार

अंत में कुछ प्रश्न

1) संकेत : समुदाय एक निर्धारित क्षेत्र में जीवों के विभिन्न प्रकारों की समष्टियों का जमघट है। समुदाय पारितंत्र का एक जीवीय घटक है। एक पारितंत्र में भोजन के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के जीव संबंधित है और वे एक खाद्य जाल बनाते हैं। इसलिए समष्टियां न केवल भोजन के लिए एक-दूसरे से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से परस्पर क्रिया करती हैं, बल्कि एक समष्टि दूसरी समष्टि के अस्तित्व पर भी प्रभाव डालती है।

2) क) ईकोटोन
   ख) खंड
   ग) कोर प्रभाव
   घ) सांतत्यक
   च) वन, घासस्थल
   छ) घटना-आरेख
   ज) सूचक
   झ) घनत्व, बारंबारता, प्रमुखता।

इकाई 10 समुदाय परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
10.2 अनुक्रमण किसे कहते हैं?
प्राथमिक और द्वितीयक अनुक्रमण
स्वजनिक और अन्यत्रजनिक अनुक्रमण
स्वपोषित और परपोषित अनुक्रमण
10.3 अनुक्रमण की प्रक्रियाएं
न्यूडेशन
इनवेज़न या अभिगमन
आस्थापना
समुच्चयन
प्रतियोगिता
अभिक्रिया
स्थायीकरण-चरमावस्था
10.4 अनुक्रमण के प्रकार
जलारंभी
शुष्कतारंभी
10.5 अनुक्रमण के मॉडल
सुगमीकरण मॉडल
सहयता मॉडल
संदमक मॉडल
10.6 अनुक्रमण की प्रवृत्तियां
10.7 सारांश
10.8 अंत में कुछ प्रश्न
10.9 उत्तर

10.1 प्रस्तावना

आप जानते है कि विभिन्न पारितंत्र गत्यात्मक सत्ताएं हैं जिनमें कई तरह की घटनाएं घटती रहती हैं तथा पारितंत्र के जैव समुदायों से संबंधित कुछ परिवर्तन होते हैं। इनमें कुछ परिवर्तन छोटे पैमाने पर होते हैं, तो कुछ बड़े पैमाने पर। छोटे पैमाने के परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं, कुछ प्राकृतिक कारणों से होते हैं तो कुछ मानवीय क्रियाकलापों से। छोटे पैमाने के परिवर्तनों का उदाहरण एक ऐसी नदी हो सकती है जिसमें अकस्मात् गंदे नाले का दूषित जल मिल जाए। ऐसी स्थिति में नदी के पानी में कार्बनिक और अकार्बनिक रसायनों की मात्रा बढ़ जाएगी। कार्बनिक अथवा जैव पदार्थों की अधिकता के कारण जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होगी। जीवाणु जैव पदार्थों का उपभोग करके आक्सीजन को समाप्त कर देंगे। इसलिए नदी के पानी में ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम हो जाएगी और मछलियां तथा दूसरे जलचर जीव मर जाएंगे या फिर उन्हें जान बचाकर नए जल क्षेत्रों की ओर जाना पड़ेगा। कुछ समय बाद नदी का पानी फिर सामान्य हो जाएगा। यदि जैव पदार्थों की मात्रा कम हो जाएगी तो जीवाणु मर जाएंगे और पानी में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा सामान्य हो जाएगी, इस कारण मछलियां फिर पानी में लौट आएंगी। इस उदाहरण से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि छोटे पैमाने के परिवर्तनों से पारितंत्र में रहने वाला जैव समुदाय अस्थायी तौर पर प्रभावित होता है।

दूसरी ओर, पारितंत्र में कभी-कभी दीर्घकालीन परिवर्तन भी होते हैं, जो जैव समुदायों के संगठन और बनावट को स्थायी रूप से बदल सकते हैं। ये दीर्घकालीन परिवर्तन ज्वालामुखी के फटने, भूस्खलन, भूकंप, बाढ़, झंझावात आदि से तथा मनुष्यों द्वारा खनन और जंगलों के काटने आदि के कारण हो सकते हैं। इन गड़बड़ियों से प्राकृतिक आवास-स्थल में बहुत अधिक परिवर्तन हो जाता है। बहुत प्रकार की जातियां बदले हुए विक्षोभ वाले स्थानों में प्रविष्ट हो जाती हैं और अंततः समय के साथ वहां एक नए समुदाय का विकास हो जाता है।

यह प्रक्रिया लगातार जारी रहती है। एक समुदाय, दूसरे समुदाय की जगह ले लेता है और यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक स्थायी परिपक्व समुदाय का विकास नहीं हो जाता।

इस इकाई में हम मुख्य रूप से अपना ध्यान समुदाय में होने वाले बड़े पैमाने के परिवर्तनों पर केंद्रित करेंगे। बड़े पैमाने पर होने वाले इन परिवर्तनों को सामूहिक रूप में पारिस्थितिकीय अनुक्रमण कह सकते हैं। पहले हम अनुक्रमण में होने वाली आधारभूत प्रक्रियाओं के बारे में विचार करेंगे। उसके बाद दो विशिष्ट उदाहरणों द्वारा प्रकृति में होने वाले अनुक्रमण की व्याख्या करेंगे तथा अनुक्रमण के मॉडल का अध्ययन करेंगे। हम अनुक्रमण की विशिष्टता और प्रवृत्तियों की भी चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- अनुक्रमण की परिभाषा दे सकेंगे
- प्राथमिक और द्वितीयक अनुक्रमण के बीच अंतर को समझ सकेंगे
- स्वजनिक अनुक्रमण और अन्यत्रजनिक अनुक्रमण की तुलना कर सकेंगे
- स्वपोषित और परपोषित अनुक्रमण की तुलना कर सकेंगे
- अनुक्रमण में होने वाली आधारभूत प्रक्रियाओं का वर्णन कर सकेंगे
- जलीय और स्थलीय आवास के संदर्भ में अनुक्रमण की प्रक्रिया और विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर सकेंगे तथा इस बात की व्याख्या कर सकेंगे कि क्रमिक अवस्थाओं के साथ प्राणी जीवन में क्यों परिवर्तन आता है
- अनुक्रमण के सुगमीकरण, संदमक और सह्यता मॉडलों के बारे में चर्चा कर सकेंगे
- अनुक्रमण की विशेषताओं और प्रवृत्तियों के बारे में विचार कर सकेंगे

अध्ययन के लिए मार्गदर्शन

इस इकाई को पढ़ते समय यदि पहली बार में आप 10.2.2 और 10.2.3 उपभागों को अच्छी तरह से न समझ सकें तो निराश न हों। हमारा सुझाव है कि आप इसके आगे के भागों का अध्ययन जारी रखें एवं भाग 10.4 को पढ़ लेने के बाद इन दोनों उपभागों को एक बार फिर से पढ़ें।

10.2 अनुक्रमण किसे कहते हैं?

इससे पिछले भाग में हमने आग, बाढ़ और मानवीय तत्वों की चर्चा की थी और बताया था कि मानव के हस्तक्षेप का पारितंत्र पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इस कारण उस क्षेत्र की मूलभूत वनस्पतियां या तो कम हो जाती हैं या फिर पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं। परिणाम यह होता है कि वहां वनस्पति-रहित केवल भूभाग (bare ground) रह जाता है। लेकिन यह वनस्पति-विहीन क्षेत्र बहुत समय तक जीवन रहित नहीं रहता। इस क्षेत्र पर शीघ्र ही विभिन्न जातियां आ बसती हैं, जो आखिरकार एक या अधिक पर्यावरण संबंधी कारकों को परिवर्तित कर देती हैं। पर्यावरण में इस परिवर्तन के कारण कुछ अन्य जातियां भी यहां आकर बस सकती हैं। इस प्रकार, प्राकृतिक अथवा मानवीय कारणों से नष्ट किए गए जैव समुदाय का स्थान कुछ क्रमिक परिवर्तनों के बाद धीरे-धीरे दूसरा जैव समुदाय ले लेता है और यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक कि उसका स्थान कोई परिपक्व या चरमावस्था (climax) वाला समुदाय न ले ले। समुदाय के विकास की इस प्रक्रिया को, जिसके बीच में कई क्रमिक मध्यवर्ती परिवर्तन होते हैं, अनुक्रमण (succession) कहते हैं। चरमावस्था के बीच की प्रत्येक मध्यवर्ती अनुक्रमणात्मक अवस्था (intermediate successional stage) को "क्रमिक अवस्था" (seral stage) कहते हैं तथा मात्र क्षेत्र (bare area) से चरमावस्था के समुदाय के बीच की सभी बीच की अवस्थाओं को सामूहिक रूप से "क्रमक" (sere) कहते हैं।

पारिस्थितिकीय समय मापक्रम (ecological time scale) के अनुसार वनस्पतियों में अनुक्रमण दिशात्मक परिवर्तन (directional change) की एक सार्वभौम (universal) प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में, अनुक्रमण परिवर्तन की प्रगामी शृंखला है जिसके द्वारा अपेक्षाकृत स्थायी चरम समुदाय स्थापित होता है।

अनुक्रमण के बारे में चर्चा करने के बाद अब हम आगे के तीन उपभागों में अनुक्रमण के प्रकारों के बारे में विचार करेंगे।

10.2.1 प्राथमिक और द्वितीयक अनुक्रमण

वनस्पति-रहित खाली प्रदेश में जहां पहले कोई जीव समुदाय नहीं था, वहां जो अनुक्रमण होता है, उसे प्राथमिक अनुक्रमण (primary succession) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर प्राथमिक अनुक्रमण नए ज्वालामुखी क्षेत्रों, द्वीपों, नदी के मुहानों, बालू के टिब्बों, मात्र शिलाओं और नई बनी झीलों में होता है। द्वितीयक अनुक्रमण (secondary succession) वहां होता है, जहां पूर्व-विकसित जीव-समुदाय का आग, बाढ़ आदि प्राकृतिक विपदाओं या जंगलों के काटने, हल चलाने, पशुओं को चराने आदि मानवीय हस्तक्षेप से विनाश हो जाता है और इसके बाद उस स्थल पर क्रमिक रूप से कई समुदाय विकसित हो जाते हैं। द्वितीय अनुक्रमण परित्यक्त फर्मों (abondoned farmlands) की जमीन पर, अतिचारित (overgrazd) क्षेत्रों में और निर्माण परियोजना क्षेत्रों में भी होता है।

स्थलीय क्षेत्रों में होने वाले (देखिए चित्र 10.1) प्राथमिक अनुक्रमण में पहले नए स्थल में कुछ पॉयनियर जातियां आकर बसती हैं, जो प्राय: सूक्ष्म-जीव (microbes), लाइकेन और मॉस होती हैं। ये पॉयनियर जातियां वृद्धि और विकास के द्वारा, कुछ पीढ़ियों में अपने आवास स्थल की स्थितियों को बदल देती हैं।

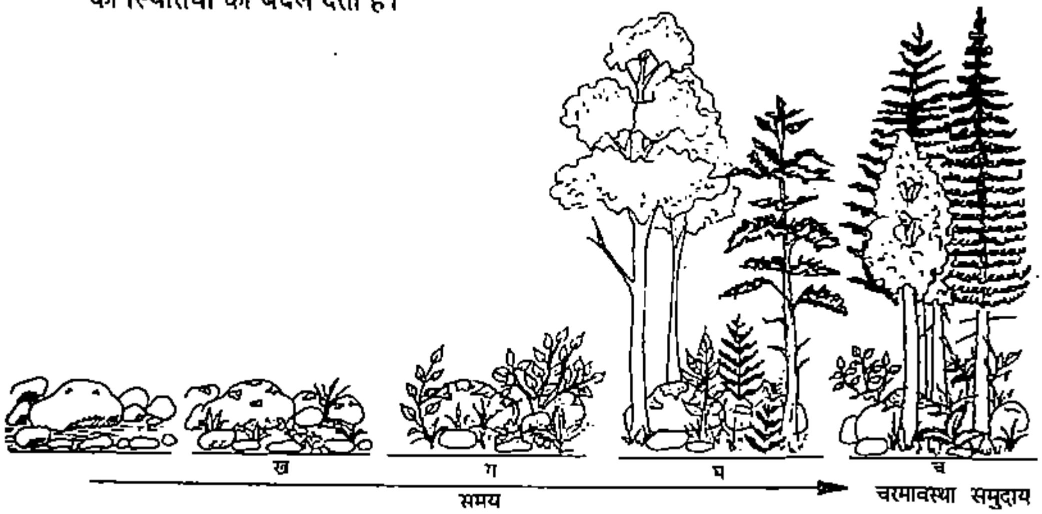

चित्र 10.1 : स्थलीय क्षेत्र में प्राथमिक अनुक्रमण पांच क्रमिक अवस्थाओं (क-च) में विकसित होता है। ये अवस्थाएं चित्र में बाएं से दाएं प्रदर्शित की गई हैं। पहले खाली शैल होते हैं। इन पर पहले लाइकेन तथा मॉस उगते हैं। धीरे-धीरे, और वनस्पति प्रकार यहां आते हैं, और विकसित होकर अपेक्षाकृत स्थायी या चरम वन समुदाय बन जाते हैं।

ये नई परिस्थितियां कुछ समय बाद आकर बसने वाले जीवों के लिए उपयुक्त हो सकती हैं। पॉयनियर जातियों के मरने और उनके अवशेषों के क्षय (सड़ने) के बाद उनसे उपलब्ध जैव पदार्थों पर प्रजीव (Protist) और अन्य छोटे प्राणी पलने लगते हैं। इन पॉयनियर जातियों द्वारा उपलब्ध किए गए जैव पदार्थों (organic materials) के क्षय से जैव अम्ल (organic acids) बनते हैं, यह अम्ल शैल का अध:स्तर (substratum) विखंडित करते हैं और पोषक तत्व मुक्त करते हैं। इससे शैल के अध:स्तर पर पोषक तत्व जमा हो जाते हैं। इसके बाद, शैल के छोटे-छोटे गड्ढे और दरारों में जैव मलबा (organic debris) जमा हो जाती है। इसकी मिट्टी में इधर-उधर से उड़कर आए हुए बीज उग जाते हैं। जैसे-जैसे जैव समुदाय का विकास होता जाता है, इसमें विविधता आती जाती है तथा इनमें स्पर्धा बढ़ती जाती है। इसके साथ ही, नये निकेतों (niches) के लिए नए अवसर पैदा होते हैं। यहां आवास स्थल की स्थितियां बदलने के साथ ही पॉयनियर जातियां लुप्त हो जाती हैं और नई जातियों का प्रवेश (invasion) शुरू हो जाता है। इस प्रकार, पहले वाली जाति का प्रतिस्थापन हो जाता है। यानी आरंभिक जाति के बदले नई जाति स्थापित हो जाती है। इसी तरह, कई क्रमिक समुदायों के माध्यम से जलीय आवास-स्थल (aquatic habitat) में भी प्राथमिक अनुक्रमण होता है। इस विषय पर हम एक उदाहरण द्वारा उपभाग 10.4.1 में चर्चा करेंगे।

द्वितीयक अनुक्रमण विद्यमान समुदाय के पूर्ण या आंशिक रूप से समाप्त होने के बाद जैव समुदायों के अनुवर्ती विकास (sequential development) को द्वितीयक अनुक्रमण कहते हैं। कभी-कभी भयंकर बाढ़, सूखे, आग या तूफान जैसी प्राकृतिक विपदाओं से या वन-उन्मूलन (deforestation) खेती, चरागाहों में अतिचारिता आदि या फिर मानव द्वारा किए गए हस्तक्षेप

आदि के कारण कोई विकसित (mature) अथवा मध्यवर्ती (intermediate) समुदाय नष्ट हो सकता है। आइए, अब हम किसी परित्यक्त कृषि फार्म के द्वितीयक अनुक्रमण का एक उदाहरण लें, जहां खेती करने से पूर्व मृदा बन चुकी है (देखिए चित्र 10.2)।

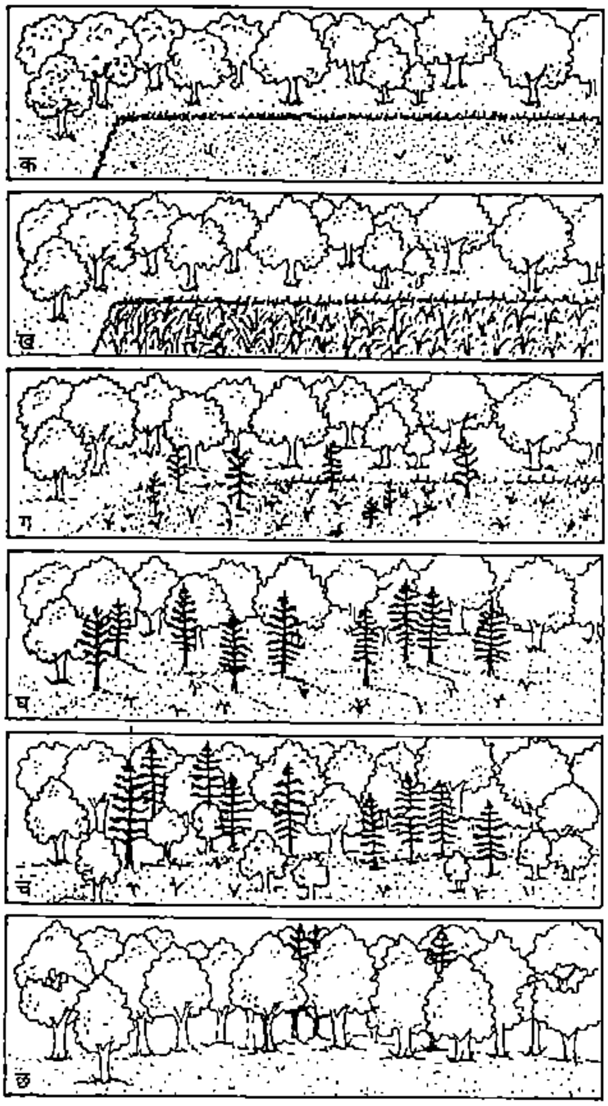

चित्र 10.2 : परित्यक्त फार्म भूमि पर द्वितीयक अनुक्रमण (क-छ) छह स्तरों पर प्रदर्शित किया गया है। पहले घास उगती है (देखिए क, ख में) और फिर मध्यवर्ती स्तरों (ग-च) से होते हुए अंत में वनक्षेत्र वाले पारितन्त्र का विकास होता है

इस परित्यक्त फार्म के भूभाग पर पहले घास की कुछ कड़ी और पुष्ट जातियां प्रविष्ट होती हैं, जो खाली, सूखी तथा धूप से तपी हुई मृदा में लम्बे समय तक जीवित रह सकती हैं। इन घासों के साथ-साथ, बड़ी-बड़ी घास और शाकीय पौधे उग आते हैं। कुछ वर्षों तक पारितंत्र में इनकी बहुतायत रहती है। इनके साथ ही वहां चूहे, खरगोश, कीड़े-मकौड़े और दूसरे बीज-भक्षी पक्षी रहने लगते हैं। अंततोगत्वा इस क्षेत्र में कुछ पेड़ भी उग जाते हैं, जिनके बीज हवा या प्राणियों के द्वारा लाए जाते हैं। धीरे-धीरे कई वर्षों में वन-समुदाय विकसित हो जाता है। इस प्रकार, एक परित्यक्त फार्म भूभाग पर 30 से 40 वर्षों की अवधि में खूब पेड़ उग आते हैं और यह भूभाग वन-क्षेत्र में बदल जाता है।

जब हम प्राथमिक और द्वितीयक अनुक्रमण में अंतर के बारे में विचार करते हैं तो इन दोनों अनुक्रमणों में एक स्पष्ट अंतर यह होता है कि द्वितीयक अनुक्रमण ऐसी समृद्ध मृदा पर शुरू होता है, जो काफी पहले ही वहां बन गई थी। द्वितीयक अनुक्रमण प्राथमिक अनुक्रमण की अपेक्षा अधिक तेजी से होता है। प्राथमिक अनुक्रमण में सैंकड़ों वर्ष भी लग सकते हैं।

10.2.2 स्वजनिक और अन्यत्रजनिक अनुक्रमण

बहुत से मामलों में पारितंत्र में रहने वाले प्राणी अपनी वृद्धि, मृत्यु और क्षय के द्वारा अपने

वातावरण को काफी हद तक बदल देते हैं। बदली हुई परिस्थितियों में उस क्षेत्र में नए प्रकार की जातियां संस्थापित हो जाती हैं। यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है यानी एक प्रकार के समुदाय का स्थान दूसरा समुदाय ले लेता है। इस अनुक्रमण को **स्वजनिक अनुक्रमण** (autogenic succession) कहते हैं। संक्षेप में, स्वजनिक अनुक्रमण उस समुदाय के सदस्यों के द्वारा आवास स्थल में स्वतः किए गए परिवर्तनों के द्वारा होता है।

कुछ दशाओं में आवास स्थल में ये परिवर्तन वहां वर्तमान वनस्पतियों से न होकर बाहरी कारणों से होते हैं। इस **अन्यत्र-जनिक** (allogenic) **अनुक्रमण** कहते हैं। यह अनुक्रमण अत्यधिक विक्षुब्ध (highly disturbed) स्थानों पर या अपरदित (eroded) क्षेत्र में अथवा ऐसे तालाबों में होता है, जहां पोषक तत्व और प्रदूषक पदार्थ बाहर से आकर इसमें मिलते हैं तथा पर्यावरण को एवं साथ ही समुदायों को भी प्रभावित करते हैं।

10.2.3 स्वपोषित और परपोषित अनुक्रमण

जहां प्रारंभ में प्राणियों की तुलना में हरे पौधों की संख्या बहुत अधिक हो, वहां होने वाले अनुक्रमण को स्वपोषित अनुक्रमण (autotrophic succession) कहते हैं। यह अनुक्रमण ऐसी जगह पर होता है, जहां अधःस्तर में अजैव पदार्थों की मात्रा प्रचुर होती है। चूंकि क्षेत्र में हरे पौधे होते हैं, इसलिए पारितंत्र में जैव पदार्थों की मात्रा तथा ऊर्जा प्रवाह में धीरे-धीरे वृद्धि होती है। दूसरी ओर, परपोषित अनुक्रमण (heterotrophic succession) में आरंभ में जीवाणुओं, (bacteria) एक्टिनोमाइसिटीज (actinomycetes) और कवकों (fungi) जैसे परपोषित जीवों की संख्या बहुत अधिक होती है। ऐसा अनुक्रमण वहां होता है, जहां अधःस्तर में जैव पदार्थों की मात्रा प्रचुर होती है। ये स्थान हैं—ऐसी नदियां अथवा जल-धाराएं जो मल-जल से बुरी तरह प्रदूषित (heavily polluted) हों या पानी के ऐसे छोटे पोखर जिनमें बहुत अधिक मात्रा में पत्ते मिल गए हों। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है कि यह प्रक्रिया मुख्य रूप से जैव पदार्थों में परिपूर्ण पर्यावरण में शुरू होती है और ऊर्जा की मात्रा में उत्तरोत्तर कमी होती जाती है।

बोध प्रश्न 1

सही उत्तर के सामने सही का निशान (✓) लगाइए :

1) अनुक्रमण के दौरान जातियों में बदलाव होता है :
   - क) वर्ष की विभिन्न ऋतुओं के समय में
   - ख) पारिस्थितिकीय समय में
   - ग) सूक्ष्म विकास (micro-evolution) काल में
   - घ) गुरु विकास (macro-evolution) काल में

2) प्राथमिक अनुक्रमण में द्वितीयक अनुक्रमण की अपेक्षा कहीं अधिक समय लगता है, क्योंकि इसमें :
   - क) मृदा का विकास शामिल होता है
   - ख) विभिन्न प्रकार के बीजों का जमाव शामिल होता है
   - ग) और अधिक दूरवर्ती जीवों द्वारा उपनिवेशन सम्मिलित होता है
   - घ) किसी प्राकृतिक विपदा से आवास स्थल का विनाश सम्मिलित होता है

3) अधिकांश खेती में ऐसे पौधों का उपयोग होता है, जिनका संबंध :
   - क) पूर्ववर्ती (early) प्राथमिक अनुक्रमण से होता है
   - ख) पूर्ववर्ती द्वितीयक अनुक्रमण से होता है
   - ग) उत्तरवर्ती (late) प्राथमिक अनुक्रमण से होता है
   - घ) उत्तरवर्ती द्वितीयक अनुक्रमण से होता है

4) स्वजनिक अनुक्रमण होता है :
   - क) मानव क्रियाकलापों द्वारा
   - ख) पर्यावरण की भौतिक स्थितियों द्वारा
   - ग) उस क्षेत्र के सजीव आवासियों द्वारा
   - घ) प्राकृतिक विपदाओं द्वारा

5) जिस अनुक्रमण में हरे पौधे आरंभिक अवस्था में होते हैं, वह है :
   क) परपोषित अनुक्रमण
   ख) अन्यत्रजनिक अनुक्रमण
   ग) स्वपोषित अनुक्रमण
   घ) (क) और (ख) दोनों

10.3 अनुक्रमण की प्रक्रियाएं

अनुक्रमण चाहे प्राथमिक हो या द्वितीयक, चाहे वह स्थलीय पारितंत्र में हो या जलीय पारितंत्र में इसकी आधारभूत प्रक्रियाएं वही रहती हैं। अनुक्रमण के कुछ सिलसिलेवार चरण (sequential steps) हैं। इस भाग में हम उनके बारे में विस्तार से विचार करेंगे। ये चरण या प्रक्रियाएं हैं : **न्यूडेश्नॅ, इनवेज़न या अभिगमन, आस्थापन, समुच्चयन, स्पर्धा, अभिक्रिया और स्थायीकरण-चरमावस्था।**

10.3.1 न्यूडेश्नॅ (nudation)

पहला चरण या पहली आवश्यकता उचित प्रकार के आवास स्थल की उपलब्धता की है। प्राथमिक अनुक्रमण अनावृत या खाली क्षेत्र (bare area) में होता है यानी जहां किसी प्रकार का जीवन नहीं होता; द्वितीयक अनुक्रमण ऐसे क्षेत्र में होता है, जहां पहले से मृदा तो बनी होती है लेकिन वहां की वनस्पति नष्ट हो चुकी होती है। अनावृत क्षेत्र बनने के कई कारण हो सकते हैं। उनमें से कुछ हैं : (i) **स्थलाकृतिक कारण (topographic factor)** : गुरुत्व पानी या हवा के द्वारा मृदा के अपरदन से वहां की वनस्पति नष्ट हो सकती हैं और खाली क्षेत्र रह जाता है। अन्य स्थलाकृतिक कारण हैं : रेत का जमना (sand deposition) भूस्खलन (landslides) और ज्वालामुखी का फट पड़ना है। (ii) **जलवायु संबंधी कारण** : हिमनंदन (glaciation) लंबी अवधि तक सूखा पड़ने, ओलावृष्टि और तूफान (hail and storm), पाला पड़ने और आग लगने से वनस्पति नष्ट हो जाती हैं (iii) **जीवीय कारण** : इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारण स्वयं मनुष्य है, जो वनों, घास के मैदानों और दूसरी प्रकार की वनस्पतियों का विनाश, कृषि, उद्योग स्थापित करने, आवास बनाने और दूसरे प्रयोजनों के लिए करता है। जानवरों की चरागाहों पर अतिचारिता (overgrazing) तथा जीवाणुओं, कवकों और कीड़ों आदि द्वारा पैदा किए जाने वाले रोगों से भी किसी क्षेत्र की वनस्पतियां नष्ट हो जाती हैं और इससे अनावृत (bare) क्षेत्र बन जाता है।

10.3.2 इनवेज़न या अभिगमन

जब किसी आवास क्षेत्र में परिवर्तन होता है तो वहां कई जीवों के आकर बस जाने की संभावना होती है। बहुत सी जातियां किसी दूसरे क्षेत्र से आकर इस नए स्थल में प्रविष्ट हो जाती हैं। पादप जातियों के बीज, बीजाणु (spore), या अन्य प्रवर्ध्य (propagule) जो इस क्षेत्र में पहुंच जाते हैं। इस प्रक्रिया को अभिगमन (migration) कहते हैं और ये बीज आदि प्रायः हवा, पानी या कई अन्य साधनों से यहां आते हैं।

10.3.3 आस्थापन (Ecesis)

नए क्षेत्र में पहुंचने के बाद वहां की परिस्थितियों के साथ समन्वय स्थापित करके जातियों के सफलतापूर्वक स्थापित होने की प्रक्रिया को आस्थापन कहते हैं। जहां तक पौधों का संबंध है, पुराने क्षेत्र से प्रवास के बाद उनके बीज या प्रवर्ध्य नए क्षेत्र में, अनुकूल स्थितियां पाकर अंकुरित और बड़े हो जाते हैं। आस्थापन तभी पूर्ण समझा जाएगा जब पौधा उस विशिष्ट क्षेत्र में लैंगिक दृष्टि से जनन (sexual reproduction) कर सके। जनन के परिणामस्वरूप पौधों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती है और वह जाति उस क्षेत्र में स्थापित हो जाती है।

10.3.4 समुच्चयन (Aggregation)

जनन के फलस्वरूप जाति के सफलतापूर्वक स्थापित हो जाने के बाद उस जाति की व्यष्टियों की संख्या में वृद्धि होती है। इस प्रकार, पहले की अवस्थाओं की तुलना में उस जाति के व्यष्टियों की संख्या कहीं अधिक हो जाती है, जो उस क्षेत्र में एकत्र हैं।

अंतराजातीय प्रतियोगिता : "क" और "ख" की विभिन्न जातियों में प्रतियोगिता
आंतरजातीय प्रतियोगिता : एक ही जाति के व्यष्टियों में प्रतियोगिता

10.3.5 प्रतियोगिता (Competition)

किसी क्षेत्र में व्यष्टियों के समुच्चयन के कारण अंतराजातीय (interspecific) और आंतरजातीय (intraspecific) प्रतियोगिता होती है। यह प्रतियोगिता प्राय: (i) पानी के लिए होती है, विशेष रूप से तब जब पानी की कमी हो। (ii) पोषक पदार्थों के लिए, विशेष रूप से जब उनकी पूर्ति में कमी हो। (iii) विकिरण ऊर्जा के लिए यदि एक पादप दूसरे पादप की छाया में बढ़ रहा हो। (iv) कार्बन डाइऑक्साइड (v) ऑक्सीजन; और (vi) स्थान आदि के लिए भी हो सकती है। प्रतियोगिता के दौरान किसी जाति की सफलता कई बातों पर निर्भर करती है यानी मज़बूत और सक्षम मूलतंत्र हो, पोषक तत्वों के ग्रहण की क्षमता हो, मृदा को सूखे और अल्पवातन को सहने की क्षमता हो, और पौधे में जनन क्षमता हो।

10.3.6 अभिक्रिया

अनुक्रमण में यह सबसे महत्वपूर्ण अवस्था होती है। पर्यावरण को जीवों के प्रभाव द्वारा बदलने की प्रक्रिया को अभिक्रिया कहते हैं। अभिक्रिया के कारण मृदा, पानी, विभिन्न प्रकाश स्थितियों, तापमान और पर्यावरण के कई अन्य कारकों में परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार, पर्यावरण में बदलाव आ जाता है और वह मौजूदा समुदाय के लिए अनुपयुक्त हो जाता है और अंततोगत्वा वह दूसरे समुदाय से प्रतिस्थापित हो जाता है। उस क्षेत्र से पुराने समुदाय की व्यष्टि धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं, और नए प्रवासी उनकी जगह ले लेते हैं। इस प्रकार, नए समुदायों के क्रमिक आगमन से पादप समुदायों में परिवर्तन का एक क्रम सा बन जाता है और धीरे-धीरे निम्नतर रूपों के स्थान पर उच्चतर रूप वहां स्थापित हो जाते हैं। अनुक्रमण की प्रत्येक अवस्था चरम स्थितियों को कम करने में कुछ न कुछ सहायक होती हैं, जिन स्थितियों में क्रमक (sere) की शुरुआत हुई थी। इस प्रकार, धीरे-धीरे क्रमिक समुदायों (seral communities) द्वारा उस क्षेत्र की स्थितियों में बदलाव आता है, और ये नई स्थितियां जातियों के विकास के अनुकूल होती हैं।

10.3.7 स्थायीकरण-चरमावस्था (Stabilization-climax)

अनुक्रमण की संपूर्ण प्रक्रिया में वनस्पतियों का स्थायीकरण होता है, जो अब उस स्थान के पर्यावरण संकुल (environmental complex) के साथ पूर्ण सामंजस्य (harmony) की स्थिति में हैं और यह स्थिति तब तक बनी रहती है जब तक जलवायु संबंधी और भू-आकृतिक स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं होता। मृदा पर चारों ओर पौधे ही पौधे होते हैं और समुदाय पूर्णता की स्थिति में होता है। केवल वे जातियां ही स्वयं को स्थापित कर पाती हैं, जो गहन प्रतियोगिता के बावजूद जीवन-चक्र को पूरा करने में समर्थ होती हैं। इस प्रकार, समस्थापन (homeostasis) प्राप्त किया जाता है। इस अंतिम समुदाय को प्रतिस्थापित नहीं किया जाता और इसे चरम समुदाय के रूप में जाना जाता है एवं इस अवस्था को चरम-अवस्था कहा जाता है।

कुछ सरल रूपों से कई प्रकार के जटिल रूपों में जिस प्रकार का अनुक्रमण होता है, उन्हें **प्रगामी अनुक्रमण** (progressive succession) कहा जाता है। कुछ मामलों में विपरीत स्थिति भी देखी गई है, अर्थात् वहां अनुक्रमण की प्रक्रिया प्रगामी होने के बजाय प्रतिगामी होती है। यह संभवत: जीवों के विनाशकारी प्रभाव के कारण होती है। उदाहरणार्थ कोई वन-क्षेत्र परिवर्तित होकर घास स्थल समुदाय में परिवर्तित हो जाए तो इसे हम **प्रतिगामी अनुक्रमण** (retrogressive succession) का उदाहरण कहेंगे।

10.4 अनुक्रमण के प्रकार

आवास स्थल की प्रकृति के आधार पर पारिस्थितिकीय अनुक्रमण को मोटे तौर पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है :

अनुक्रमण
- क. जलारंभी
  - i) जलक्रमक
  - ii) लवण क्रमक
- ख. शुष्कतारंभी
  - i) शैलक्रमक
  - ii) बालुकीय क्रमक

क) **जलारंभी** (Hydrarch) : जलारंभी अनुक्रमण गीले क्षेत्र में होता है यानी अनुक्रमण गीले (आर्द्र) क्षेत्र से कम नमी वाले क्षेत्रों की ओर होता है। इसको आगे जलक्रमक और लवण क्रमक में विभाजन किया जा सकता है। i) **जलक्रमक अनुक्रमण** (Hydrosere) : इसे कहते

हैं, जब अनुक्रमण तालाबों, जोहड़ों, झीलों या दलदली क्षेत्रों जैसे ताजे जल के पारितंत्र में शुरू होता है। ii) **लवण क्रमक** (Halosere) **अनुक्रमण :** उसे कहते हैं, जब अनुक्रमण मैंग्रोव (mangroves), प्रवाल भित्ति (coral reefs), ज्वारनदमुख आदि खारे पानी के पारितंत्रों में शुरू होता है।

ख) **शुष्कतारंभी** (Xerarch) : शुष्कतारंभी अनुक्रमण अपेक्षाकृत सूखे क्षेत्र में होता है यानी अनुक्रमण शुष्क क्षेत्र से कम नमी वाले क्षेत्र की ओर होता है। इसको आगे शैलक्रमक और बालुकीय क्रमक में विभाजित कर सकते हैं। i) शैलक्रमक अनुक्रमण अनावृत्त शैलों पर होता है; और ii) बालुकीय अनुक्रमण बालुकीय क्षेत्रों जैसे रेत के टीलों में होता है। इस भाग में हम जलारंभी और शुष्कतारंभी अनुक्रमणों का एक-एक उदाहरण देते हुए उनके बारे में विस्तार से विचार करेंगे।

10.4.1 जलारंभी (Hydrarch)

तालाबों, जोहड़ों और झीलों आदि पारितंत्र के संदर्भ में इसकी विभिन्न अवस्थाओं का अध्ययन आप कर चुके हैं। इस उपभाग में हम तालाब में होने वाले अनुक्रमण के बारे में चर्चा करेंगे। चूंकि तालाब एक ताजे जल का पारितंत्र है। इसलिए इसमें होने वाले अनुक्रमण को जलक्रमक (hydrosere) भी कहते हैं। तालाब में अनुक्रमण की शुरुआत पादपप्लवकों के उपनिवेशन (colonisation) से होती है और इसका अंत वन-क्षेत्र के रूप में होता है, जिसे हम चरम समुदाय कह सकते हैं। जैसे-जैसे अनुक्रमण का विकास होता है वैसे-वैसे वनस्पतियों के प्रकार में तथा उससे संबंधित प्राणी-जीवन में बदलाव आता जाता है। (देखिए चित्र 10.3)।

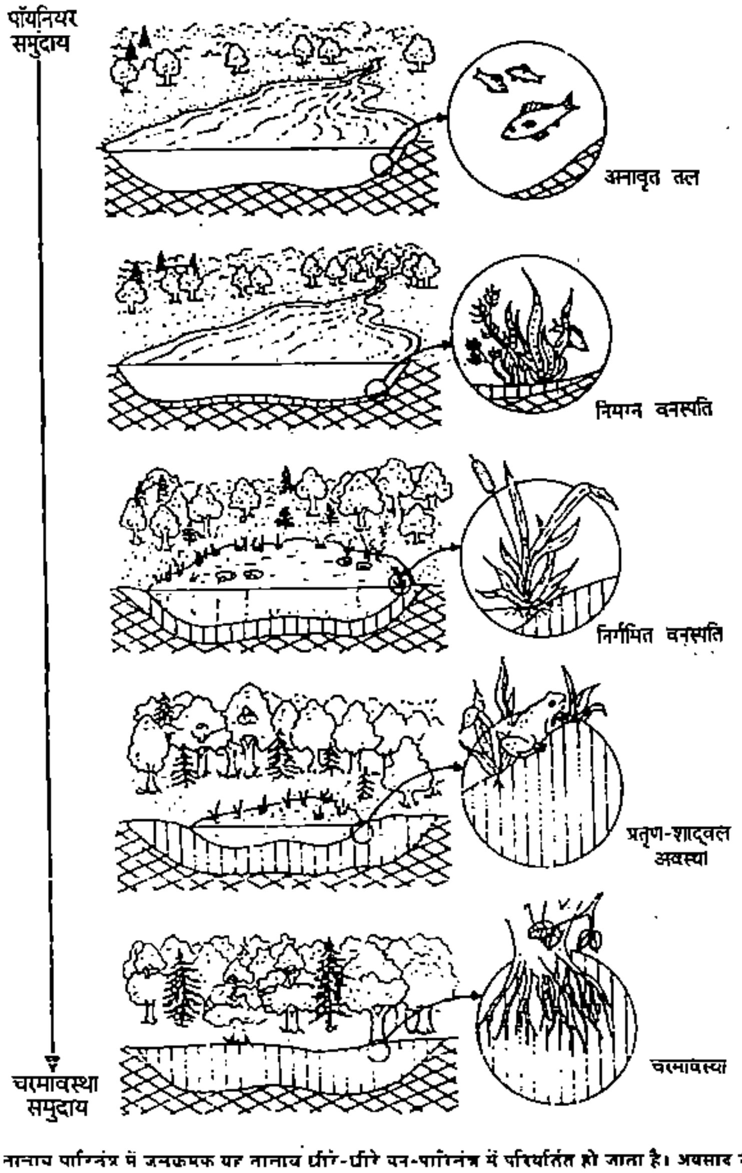

चित्र 10.3 : तालाब पारितंत्र में जलक्रमक यह तालाब धीरे-धीरे वन-पारितंत्र में परिवर्तित हो जाता है। अवसाद जमा होने लगता है और जैव समुदायों की शृंखला का विकास होने लगता है और यह तब तक जारी रहता है, जब तक परिपक्व पारितंत्र का विकास न हो जाए।

अनुक्रमण की इस पूरी प्रक्रिया या जलक्रमक (अनुक्रमण) को वहां के प्रमुख (dominating) जीवों के प्रकार के अनुसार उन्हें और आगे कई अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है। अब हम इन अवस्थाओं के बारे में एक-एक करके क्रमशः विचार करेंगे।

i) **पादपप्लवक अवस्था :** इस आरंभिक अवस्था में, तालाब के जल में पोषक तत्व बहुत कम होते हैं और यह प्रायः जीवन-रहित होता है। इस अवस्था में तालाब का जल विशाल जीव रूपों का भरण पोषण करने में समर्थ नहीं होता। ऐसी स्थिति में सूक्ष्म शैवाल (microscopic algae) आदि जलप्लवकों की संख्या में तेज़ी से वृद्धि होती है और शीघ्र ही वे पॉयनियर कॉलोनी स्थापक (pioneer colonizer) बन जाते हैं। जैसे ही जलप्लवक और उनके आश्रित जीव मर जाते हैं, वैसे ही जीवाणुओं और कवकों जैसे अपघटक जीवों की संख्या बढ़ जाती है, तथा यह जीवाणु जैव पदार्थों का अपघटन (decomposition) करते हैं। अपघटन के कारण पानी में खनिजों का मोचन (release) होता है और जलीय आवास पोषक तत्वों एवं खनिजों से समृद्ध हो जाता है। इसके अलावा, वर्षा के पानी के साथ आसपास के भूभाग से लवण की कुछ मात्रा भी तालाब में आ जाती है। अब तक तालाब तलछट जम जाने से उथला हो चुका होता है और पानी के नीचे कीचड़ में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। यह तालाब कुछ जड़ वाले जलोद्भिदों (hydrophytes) को सहारा प्रदान कर सकता है। इस प्रकार, इससे अगली अवस्था की शुरुआत हो जाती है।

ii) **निमग्नावस्था** (**Submerged Stage**) : अब आवास स्थल जो पहले की अपेक्षा उथला है और उसमें पोषक-तत्वों की मात्रा काफी है और जहां कुछ निश्चित गहराई तक सूर्य का प्रकाश भी पहुंच सकता है। इसलिए यह स्थल, पानी में डूबे हुए जड़ वाले पौधे जैसे कि *मीरियोफिलम, इलोडियो, हाइड्रिला, पोटामैजेटोन, वैलीसनेरिया, यूट्रीकुलेरिया* और *सिरैटोफिलम* आदि के अनुकूल हो जाता है। ये जलप्लवक पानी की भिन्न-भिन्न गहराइयों में पैदा होते हैं और भिन्न-भिन्न जातियों एवं पानी की स्वच्छता एवं गंदलेपन के अनुसार इनकी जड़ें कीचड़ वाली या रेतीली तालाब की तली में होती है। हर साल इन वनस्पतियों का विस्तार होता जाता है और धीरे-धीरे ये और अधिक जगह घेर लेती हैं एवं इससे उस आवास स्थल में उल्लेखनीय परिवर्तन आ जाता है। इस तालाब में जलधाराओं, वर्षा और किनारों के टूटने से बाहरी सामग्री आ मिलती है। इसमें से कुछ मिट्टी आदि सामग्री पौधों पर जम जाती है; क्योंकि ये पौधे पानी के बहाव के रास्ते में सीधी रुकावट पैदा करते हैं और प्रवाह को धीमा कर देते हैं। जब ये पौधे और इनके साथ रहने वाले प्राणी मर जाते हैं, तो उनके अवशेष डूबकर तालाब की पैंदी में बैठ जाते हैं। तालाब की तली में पर्याप्त उपापचयन (oxidation) न होने के कारण ये जैव पदार्थ आंशिक रूप से अपघटित होते हैं। इस प्रकार वे खाद-मिट्टी (ह्यूमस) बन जाते हैं, जो नीचे की कर्दमी (mucky) मृदा के साथ मिलकर उसे अधिक सख्त बना देता है। इन अभिक्रियाओं का परिणाम यह होता है कि तालाब या झील में एक अधःस्तर बन जाता है और झील या तालाब उथले हो जाते हैं। स्पष्ट ही, यह प्रक्रिया मौजूदा अध्यावासी पादप समुदाय के लिए हानिकारक होती है। अंततः दूसरे प्रकार के पानी पर तैरने वाले पादप इनका स्थान ले लेते हैं।

iii) **प्लवनावस्था** (**Floating Stage**) : अब तालाब में ऐसी पादप जातियों के व्याप्टि हैं, जिनकी जड़ें पानी के नीचे के पंक में हैं, लेकिन उनके पत्ते पानी की सतह पर तैरते रहते हैं। इनके उदाहरण *निलंबो, निम्फिया* (कुमुद), *ट्रापा, मोनोकोरिया* आदि पादप जातियां हैं। कुछ ऐसे भी उन्मुक्त रूप से प्लवमान जातियों के पादप उग जाते हैं, जिनकी जड़ें पंक में नहीं होतीं। इनके उदाहरण हैं : *लैम्ना, वॉल्फिया, पिस्टिया, मालविनिया, आज़ोला,* और *आइकोर्निया* आदि। इन जीवों के उगने, बढ़ने, मर जाने के पश्चात् सड़ जाने से अब तक तालाब का जल स्तर बहुत घट जाता है और तालाब पहले की अपेक्षा और अधिक उथला हो जाता है। पानी के वाष्पीभवन से और आसपास के क्षेत्रों से तालाब में गाद आ पड़ने से तालाब में पानी का स्तर और भी कम हो जाता है। अब तालाब इस प्रकार के पादपों के भी उपयुक्त नहीं रहता और यहां पादपों की नई अवस्था शुरू हो जाती है।

iv) **नड-अनूप अवस्था** (**Reed-Swamp Stage**) : नड-अनूप अवस्था का दूसरा नाम जल-स्थल चर (amphibious) अवस्था है। यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि इस समुदाय के पादप जड़ वाले तो होते हैं, परंतु इनका अधिकांश भाग हवा में खुला रहता है। इस अवस्था के कुछ उदाहरण हैं : *टाइफा, सैजिटैरिया* और *फ्रैग्माइटीज़*। इन पादपों की सुविकसित जड़ें होती हैं, तथा ये घनी वनस्पतियों के झुरमुट बनाते हैं। नड-अनूप पादपों का काम केवल जल की सतह पर छाया करना नहीं है, बल्कि तालाब के किनारों को बनाए रखना भी है। यह तालाब या झील में बहकर आई हुई तलछट (sedimentary materials) के रुकने और पादपों

के अवशिष्ट भाग का तेज़ी से जमा होने से हो जाता है। अब न केवल पहले से पादपों की संख्या बहुत अधिक होती है, तथा इनमें सुविकसित यांत्रिक ऊतक और वायव अवयव जोकि आसानी से सड़ नहीं पाते, भी देखे जाते हैं। इन पादपों के आगमन के बाद और इनके क्रियाकलापों से पानी का स्तर और भी कम हो जाता है और अंततः यह तालाब इन पादपों के लायक भी नहीं रहता।

v) **प्रतृण-शाद्‌वल अवस्था (Sedge-Meadow Stage)** : आवास क्षेत्र में अधिक प्रकाश की उपलब्धता से तथा पिछले वनस्पति समुदाय के समाप्त हो जाने के कारण नड-अनूप अवस्था धीरे-धीरे प्रतृण-शाद्‌वल अवस्था में परिवर्तित हो जाती है। और अब वहां साइपरेसी (cyperaceae) और ग्रामिनी (gramincae) की *केरस, जन्कस, साइपीरस* और *ईलियोकैरिस* आदि जातियां कॉलोनी बना लेती हैं। ये जातियां अपने बहुशाखी प्रकंद-तंत्र (rhizomatous system) की सहायता से वनस्पतियों का जाल-सा बिछा देती हैं। ये पौधे पानी द्वारा बहाकर और हवा द्वारा उड़ा कर लाई गई मृदा को बांधते हैं, जैव पदार्थों के अंशदान से तथा बड़ी मात्रा में जल-वाष्पों के उत्सर्जन से इस आवास क्षेत्र को काफी प्रभावित करती हैं। इस तरह इस आवास क्षेत्र में पानी कम होता जाता है तथा वहां मौजूद मृदा का हवा से संपर्क होता है। इसके कारण अमोनिया, सल्फाइड जैसे पोषक पदार्थ उपचयित होकर नाइट्रेट और सल्फेट में बदल जाते हैं। इस प्रकार उस क्षेत्र की स्थितियां धीरे-धीरे बदलती हैं और दलदली भूमि बदलकर कम नमी वाली हो जाती हैं तथा दलदली क्षेत्र की वनस्पतियों में कमी होने लगती है। प्रतृण-शाद्‌वल अवस्था के अंत तक उस क्षेत्र के जलवायु का अनुक्रमण पर कोई नियंत्रण नहीं होता क्योंकि मृदा में पानी की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसलिए उस क्षेत्र की वर्षा और जलवायु का मृदा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस अवस्था के अंत में, मृदा शुष्क हो जाती है और मृदा में जल की मात्रा वहां होने वाली वर्षा और जलवायु पर आश्रित हो जाती है। प्रतृण-शाद्‌वल अवस्था के बाद के पादप काफी हद तक वहां की जलवायु द्वारा नियंत्रित होते हैं। शुष्क जलवायु में इसके बाद की अवस्था घास-स्थल (grassland) अवस्था या अन्य शुष्क चरमावस्था (xeric climax) हो सकती है। अपेक्षाकृत आर्द्र जलवायु में वनस्थली अवस्था की संभावना हो सकती है।

vi) **वनस्थली अवस्था (Woodland Stage)** : किसी स्थान पर इस स्थिति तक निम्न भूमि बन जाए जहां मृदा में पर्याप्त नमी रहती हो, वहां पेड़ों और झाड़ियों की कुछ जातियां उग आती हैं। ऐसा प्रायः वसंत ऋतु या गर्मियों के शुरू में होता है। इनमें जो पेड़ या झाड़ियां अपनी जलाक्रान्त (waterlogged) मृदा में भी फल-फूल सकते हैं, वे पॉयनियर होंगे। ऐसे स्थानों पर *सैलिक्स, कॉर्नस, सिफेलैन्थस, ऐलनस* और *पॉपुलस* आदि विभिन्न जातियां घने झुरमुट बना सकती हैं। इन पेड़ों और झाड़ियों के बीच में कुछ छाया सह वनस्पति-बूटियां (shade-tolerant herbs) उग सकती हैं। ये काष्ठीय पेड़-पौधे, मृदा को और अधिक उपयोगी बनाकर और जल-वाष्पों के तेजी से उत्सर्जन तथा अपनी छाया के द्वारा और ज़मीन में पानी के स्तर को नीचा रखकर आवास स्थल को प्रभावित करते हैं। अनुक्रमण की इस अवधि तक पर्याप्त मात्रा में ह्यूमस जमा हो जाता है तथा जीवाणुओं, कवकों और अन्य सूक्ष्म जीवों आदि वनस्पतिजात की संख्या भी बढ़ जाती है। इस प्रकार, मृदा के खनिजीकरण (mineralisation) से वह क्षेत्र नई जातियों के आगमन के लिए अनुकूल हो जाता है और अब यहां चरमावस्था आरंभ हो सकती है।

vii) **चरम अवस्था (Climax Stage)** : विभिन्न प्रकार के पेड़ वनस्थली समुदाय में उगने लगते हैं। यह वन क्षेत्र शीघ्र ही चरम समुदाय में विकसित हो जाता है। चरम समुदाय का स्वरूप उस क्षेत्र के जलवायु पर निर्भर करता है। उष्णकटिबंध (tropical) क्षेत्र में, जहां खूब वर्षा होती है, घने वन विकसित हो जाते हैं और शीतोष्ण कटिबंध (temperate) में *क्वेर्कस, अल्मस, एसर* जातियों के पेड़ों के मिश्रित वनों का विकास हो जाता है। उन क्षेत्रों में जहां हल्की वर्षा होती है, चरम अवस्था में पतझड़ वाले वन या मानसूनी वन विकसित हो जाते हैं।

इस प्रकार, आपने अभी यह पढ़ा कि जलक्रमक में पहली अवस्था पॉयनियर समुदाय अवस्था (pioneer community stage) होती है और सातवीं अवस्था, चरम अवस्था होती है तथा दूसरी से छठी अवस्थाएं क्रमशः क्रमिक समुदाय (seral communities) और क्रमिक अवस्थाएं (seral stages) होती हैं।

जलक्रमक में प्राणियों के जीवन में प्रगामी परिवर्तन

इससे पूर्व हमने जलक्रमक में विभिन्न क्रमकों के पादप समुदायों में होने वाले प्रगामी परिवर्तनों के बारे में विचार किया था। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या विभिन्न क्रमों के साथ प्राणियों के जीवन में भी कुछ परिवर्तन होता है? इसमें संदेह नहीं कि प्राणी-जीवन में भी

अवश्य परिवर्तन होता होगा। लेकिन ये परिवर्तन पादप समुदाय में जितने स्पष्ट होते हैं, उतने प्राणिजगत में नहीं होते, इसी प्रकार के जलीय पारितंत्र में *पेरामीशियम, अमीबा, यूग्लीना* आदि कई अन्य प्रोटोज़ोअन (आदिजंतु) पॉयनियर (pioneers) हैं। जब प्लवकी (planktonic) वृद्धि रूपों की संख्या बहुत अधिक होती है तब नीली गिल मीन, सूर्यमीन या मोला, बड़े मुख वाली नास आदि प्राणियों का विकास होने लगता है और कुछ चेल मक्षिकाएं भी दिखाई देने लगती हैं। दूसरी अवस्था में, यानी निमग्नावस्था में, चेल मक्षिका का स्थान दूसरे प्राणी ले लेते हैं, जो जलमग्न वनस्पतियों पर रेंगने लगते हैं। इस अवस्था में ड्रैगन मक्षिका, मेफ्लाई (अल्पायु मक्षिका) और एसेलस, गेमेरस, डैफ्निया, साइप्रिस, साइक्लॉप्स जैसे परूषकवची (क्रस्टेशियाई) प्राणी तालाब में रहते हैं। प्लवनावस्था में प्राणी जीवन में प्रमुख रूप से हाइड्रा जातियां पाई जाती हैं। इनमें मुख्य हैं : *गिल श्वसनी घोंघे* (gill breathing snails), मेंढक, सैलामैंडर, निमज्जन भृंग (diving beetles) तथा कुछ अन्य कीट। इसके साथ ही, कुछ कछुए और सांप भी प्रकट हो जाते हैं।

नड-अनूप अवस्था में, तालाब और अधिक उथला हो जाता है। इस कारण उसकी तली दिखाई लगती है। प्लवमान (तैरने वाले) प्राणियों का स्थान मेफ्लाई, ड्रैगन फ्लाई की विभिन्न जातियां ले लेती हैं। इनके शिशुकीट (nymphs) जलमग्न वनस्पतियों से चिपटे रहते हैं, जबकि इनके प्रौढ़ बड़े कीट पानी के ऊपर वनस्पतियों के खुले भाग पर रहते हैं। घोंघों जैसे गिल श्वसनी (gill breathing) प्राणियों का स्थान *लिम्निया, फाइसा* और *गाइराउलस* जैसे फेफड़ों से सांस लेने वाले प्राणी ले लेते हैं। इस अवस्था में कीटों में जल वृश्चिकाभ (शलभ) (water scorpion), बृहत् जल मत्कुण (giant water bug) का अस्तित्व होता है। तालाब की तली पर अब एनेलिड (लघुवलयक), मड पिकरेल और बुलहैड जैसे कुछ जीव रहने लगते हैं। इस क्षेत्र में अनेकों पक्षी, मीनरंक (king fisher), स्वैंप-स्पैरो, बतख, कस्तूरी उंदर (musk rat) और बीवर आदि प्राणी आम हो जाते हैं।

प्रतृण शाद्वल अवस्था में *ऐनोडोटा, सीडियम* जैसे घोंघों की तरह के प्राणी सामान्य बात हो जाती है। अंततः वनस्थली अवस्था में स्थलीय स्थितियों में अधिकांश स्थलीय प्रकार के प्राणी उस क्षेत्र में विकसित होते हैं।

10.4.2 शुष्कतारंभी (Xerarch)

अनुक्रमण, जहां शुरुआत शैलों (bare rocks) पर हुई हो या वायुवाहित बालू (wind borne sand), शैल मलबे वाले ढलान (rocky talus slopes) पर या अन्य ऐसी स्थितियों में जहां पानी का नितांत अभाव हो, शुष्कतारंभी अवस्था कहते हैं। इस उपभाग में हम अनावृत शैल के उदाहरण पर विचार करेंगे। ऐसे स्थान पर न केवल पानी का अभाव ही होता है, बल्कि किसी तरह का जैव पदार्थ भी नहीं होता। यहां केवल विघटित और अनपक्षीण (unweathered) अवस्था में खनिज होते हैं। इस आदि अधःस्तर (primitive substratum) पर आरंभिक कॉलोनीकार पर्पटी रूप लाइकेन होते हैं। इसके पश्चात् अन्य क्रमक अवस्थाओं की श्रृंखला से धीरे-धीरे अनुक्रमण की समाप्ति वनस्थली अवस्था में होती है, जिसे हम चरम समुदाय कह सकते हैं (देखिए चित्र 10.1)। जलारंभी अनुक्रमण की तरह ये प्रगामी परिवर्तन पादपों और प्राणियों, दोनों में होते हैं। लेकिन ये परिवर्तन प्राणियों की अपेक्षा पादपों में अधिक स्पष्ट हैं। अब हम शुष्कक्रमक (xerosere) की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में चर्चा करेंगे।

i) **पर्पटी-लाइकेन अवस्था (Crustose Lichen Stage)** : अनावृत शैलों पर स्थिति जीवन धारण के अनुकूल नहीं होती, क्योंकि वहां पानी और पोषक तत्वों का पूर्णतया अभाव होता है और कड़ी तपती धूप एवं बहुत अधिक गर्मी होती है। ऐसी स्थितियों में केवल पर्पटी-दार लाइकेन ही वहां उग और बढ़ पाते हैं। इन पॉयनियर जातियों के कुछ उदाहरण *राइज़ोकार्पोन, राइनोडाइना, लेसीडिया* और *लेकैनोरा* हैं। ये वर्षा ऋतु में खूब फलते-फूलते हैं और सूखे की स्थिति में बहुत लंबे अरसे तक निर्जलीकरण (desiccation) की स्थिति में रह सकते हैं। वर्षा ऋतु में ये बहुत तेजी से अपनी स्पंज जैसी क्रिया से नमी को सोख लेते हैं। इन्हें खनिज पोषक तत्व इस प्रकार मिलते हैं : कार्बन डाइऑक्साइड के स्राव तथा पानी में मिलने से हल्का अम्ल बनता है, जो शैल को अपक्षीण करता है। इस शैल में राइज़ॉयड (मूलाभास) कभी-कभी कई मिलीमीटर तक अंदर प्रविष्ट हो जाते हैं। इनके लिये नाइट्रोजन की उपलब्धि वर्षा द्वारा या हवा द्वारा लाई गई धूल से होती है। इस प्रकार, इस सरल पपड़ीनुमा जाति के जीवन धारण के लिए सभी चीज़ें उपलब्ध हो जाती हैं। इस प्रकार, लाइकेन शैल का अपक्षय करने वाले दूसरे तत्वों के साथ मिलकर उसके क्षरण और अपघटन में मदद करता है। यह अपने अवशेषों के साथ शैल कणों को मिलाकर दूसरे जीवों की वृद्धि के लिए अनुकूल

परिस्थितियां पैदा कर देता है। इस प्रकार, शैल पर मृदा की एक पतली सी परत जम जाती है। शैल पर मृदा की यह परत कितनी जल्दी बनेगी, यह शैल और जलवायु की प्रकृति पर निर्भर करता है। क्वार्टज़ (Quartzite) या बेसाल्ट (basalt) शैलों पर, सूखी जलवायु में पर्पटी-लाइकेन अवस्था सैंकड़ों वर्षों तक कायम रह सकती है। परंतु चूने के पत्थर या बलुआ पत्थर पर नम जलवायु में पर्याप्त परिवर्तनों के कारण पर्णिल (foliose) लाइकेन उग आते हैं। यह सब काफी जल्दी यानी एक जीवनकाल में हो सकता है।

ii) **पर्णिल-लाइकेन अवस्था (Foliose Lichen Stage)** : जैसा कि इससे पूर्व उल्लेख किया जा चुका है, शैलों के अपक्षय और पर्पटीदार लाइकेनों के अपघटन से अनावृत शैलों पर मृदा की एक हल्की परत जम जाती है। शैलों के जिन स्थलों पर मृदा जमा हो जाती है, वहां पर्णिल लाइकेन उग आते हैं। इन लाइकेनों में *डर्मेटोकार्पान, पारमेलिया* और *अंबाइलीकेरिया* आदि शामिल हैं। इन लाइकेनों की बड़ी, पत्तों जैसी थेलाई (thalli) होती हैं, जो पर्णिल लाइकेनों को आच्छादित कर लेती है। इस प्रकार, पर्णिल लाइकेनों पर सीधा प्रकाश नहीं पहुंचता। अतएव ये लाइकेन समाप्त हो जाते हैं तथा उनके अवशेष सड़-गल जाते हैं। पर्णिल लाइकेन कुछ हद तक अधिक जल सोख तथा अवशोषित कर सकते हैं। हवा और पानी द्वारा लाए गऐं धूल के कण इन लाइकेनों में अटक जाते हैं। इससे अधःस्तर के विकास में सहायता मिलती है। इन सब प्रक्रियाओं के फलस्वरूप और भी अधिक ह्यूमस जमा हो जाता है। सजीव और अपघटित हुए पादपों से स्रवित अम्लों से शैलों का अपक्षय हो जाता है। शैलों के अपक्षय और ह्यूमस की तेज़ी से वृद्धि होने से मृदा की परत मोटी होती जाती है। इस प्रकार आवास स्थल में पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है।

iii) **मॉस अवस्था (Moss Stage)** : शैलों की दरारों और गड्ढों में मृदा का जमाव *पॉलिट्राइकम, टॉर्टुला* और *ग्रिमिया* आदि कुछ मरूद्भिदी जातियों के मॉस के उगने के लिए बहुत अनुकूल है। इस मॉस के बीजाणु (spores) हवा के साथ उड़कर आते हैं। इनमें भी पर्णिल लाइकेनों की तरह लगभग उतनी ही निर्जलीकरण की सामर्थ्य होती है। लाइकेन और मॉस साथ-साथ उगते हैं और ऐसा लगता है कि बढ़ने में मानों एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रहे हों। मॉसों के राइज़ॉयड और पर्णिल लाइकेनों से ज्यादा होती है। निम्नतर स्तर पर पादप यानी लाइकेन मर जाते हैं और मॉस फलते-फूलते हैं। अनेकों मॉस व्यष्टि एकत्रित रूप में गद्दे जैसी संरचना का आभास देते हैं, जिसकी मोटाई कुछ सेंटीमीटर तक होती है। इस अधःस्तर का धीरे-धीरे विकास होता है। धीरे-धीरे पर्णिल लाइकेन का स्थान मॉस ले लेते हैं और ये लाइकेनों पर छा जाते हैं। बहुत बार ये तीनों अवस्थाएं (i से iii तक) एक ही शैल की सतह पर पाई जाती है। इनमें पॉयनियर जाति सबसे खुले स्थान पर होती है।

iv) **शाक अवस्था (Herb Stage)** : मॉसो की मृदा-रचना और मृदा की पकड़ की अभिक्रिया इतनी प्रबल होती है कि विभिन्न मरुद्भिदी, विशेषतः लघु जीवी एकवर्षी (annual) वनस्पतियों के बीज वहां उग आते हैं और उनकी बढ़त अच्छी होती है। ये पादप बढ़कर परिपक्व हो जाते हैं, हालांकि सूखे और मृदा की अनुर्वरता के कारण पहली फसल की बढ़त कुछ अवरुद्ध सी रहती है। उनकी जड़ें शैल को संक्षारित करने की प्रक्रिया को जारी रखती हैं। प्रतिवर्ष उनके क्षयमान अवशेषों से निर्मित ह्यूमस मृदा को समृद्ध बनाता है। धीरे-धीरे द्विवर्षी (biennials) और सदाबहार (perennial) पादप उस क्षेत्र में प्रविष्ट होने लगते हैं और जैसे-जैसे आवास स्थल उनके लिए अधिक से अधिक अनुकूल होता जाता है, उनकी संख्या में भी वृद्धि होती जाती है।

जैसे-जैसे जड़ों के सम्मिश्रित नेटवर्क में वृद्धि होती है, और मृदा आच्छादित हो जाती है, शैलों के विघटन और ह्यूमस तथा पोषक तत्वों के जमाव की प्रक्रिया में वृद्धि होती है। इससे वाष्पीभवन और तापमान में काफी गिरावट आ जाती है। नमी की मात्रा में वृद्धि होती है और सूखे की अवधि कम हो जाती है। मृदा के जीवाणुओं, कवकों और प्राणियों की संख्या में वृद्धि होती है और वहां का वातावरण कम शुष्क हो जाता है। इस समय तक केवल कुछ मरुद्भिदी कम गहरी जड़ों वाली घास जैसे–*ऐरिस्टिडा, फेस्टुका* और *पोवा* आदि उगती थीं। ज्यों-ज्यों स्थिति में सुधार होता है, कुछ सूखा-सह-*पोटेंटिला, सॉलिडेगो* और कई अन्य जातियां उस क्षेत्र में प्रवेश करती हैं। कुछ वनस्पतियों के उगने से मॉस और लाइकेन जैसे छोटे पादपों को पर्याप्त प्रकाश नहीं मिल पाता। ये स्थितियां उनकी वृद्धि के लिए हानिकारक होती हैं, इसलिए वे धीरे-धीरे समाप्त होने लगती हैं।

v) **झाड़ी अवस्था (Shrub Stage)** : शाक अवस्था में काष्ठीय पादपों और झाड़ियों के संभरण के लिए अब तक पर्याप्त मृदा की रचना हो चुकी होती है। वे निकटवर्ती क्षेत्र से बीजों या प्रकंदों (rhizomes) की सहायता से प्रवास करते हैं। इसके उदाहरण हैं–रस *(Rhus)* और

फाइटोकार्पस जातियां। झाड़ियां शीघ्र ही घनी वनस्पतियों में विकसित हो जाती हैं। आवास क्षेत्र में पर्याप्त बदलाव आ जाता है। शाकीय वनस्पतियों पर उनके ऊपर उगी हुई झाड़ियों की छाया रहती है। ऐसी परिस्थितियों में उनके लिए जीवन धारण करना कठिन हो जाता है, इसलिए उनका स्थान पूरी तरह से झाड़ियां ले लेती हैं। झाड़ी वाली वनस्पतियों से बहुत सी जैव-पदार्थों, पत्तों और पादपों के दूसरे हिस्सों के रूप में मृदा में मिल जाते हैं। इस प्रकार, ह्यूमस की पर्याप्त मात्रा से मृदा समृद्ध हो जाती है। झाड़ियों की घनी फैली हुई जड़ें, शैलों को संक्षारित करती हैं। इस समृद्ध मृदा में जल को समाहित करके रखने की क्षमता बढ़ जाती है। झाड़ियां मृदा पर छायी रहती हैं, इसलिए पानी का वाष्पीकरण बहुत कम होता है। ऐसे क्षेत्रों में नमी की मात्रा बढ़ जाती है। यह वातावरण पेड़ के नवोद्भिदों की वृद्धि के अनुकूल होता है, जो इस क्षेत्र में फैलने लगते हैं।

vi) **चरम वनस्थली अवस्था** (Climax Forest Stage) : इस क्षेत्र में सबसे पहले पेड़ों की मरुद्भिद जातियां स्थापित होती हैं। ये पेड़ दूर-दूर बिखरे हुए होते हैं। अभी इनकी बढ़त के लिए स्थितियां पर्याप्त अनुकूल नहीं हुई होतीं इसलिए इनकी वृद्धि अवरुद्ध रहती है। समय के साथ, शैलों का और अधिक अपक्षय होता है। इसलिए उन शैलों पर मिट्टी की मोटी तह जम जाती है और वहां बहुत अधिक संख्या में पेड़ों की तेज़ी से वृद्धि होती है। छायादार पेड़ों के उग आने के कारण मृदा में नमी संरक्षित रहती है। इस प्रकार, चरम वन क्षेत्र का विकास होता है। ह्यूमस के जमा होने से वनस्पतियां अधिक से अधिक समोद्भिदी (mesophytic) हो जाती हैं।

इस प्रकार जलक्रमक (hydrosere) की तरह मरुक्रमक (xersere) में आवास स्थल चरम अवस्था से मध्यम अवस्था में परिवर्तित हो जाता है, जिससे समोद्भिद (mesophytic) प्रकार की वनस्पतियों का विकास हो सकता है।

मरुक्रमक अवस्था में प्राणी जीवन में परिवर्तन

जलक्रमक अवस्था की तरह मरुक्रमक अवस्था के दौरान भी प्राणी-जीवन में उत्तरोत्तर परिवर्तन होते हैं। सामान्यतः कुछ चिंचड़ी (mite) की तरह के जीव लाइकेनों से सम्बद्ध पाए जाते हैं। आरंभ में, जाति गठन की दृष्टि से प्राणिजात बहुत विरल थे। शैल विदरों और दरारों में कुछ चींटियाँ या कुछ मकड़ियाँ पाई जाती थीं। इन आरंभिक प्राणियों को कठोर पर्यावरण का विशेष रूप से चरम गर्मी का सामना करना पड़ता था। जैसे-जैसे अनुक्रमण का विकास होता है, तो चिंचड़ियों की कई विभिन्न जातियां आ जाती हैं। *मकड़ियाँ, कुंडलपुच्छ* (springtails) और *टैडी-ग्रेड्स* मॉस जातियों के साथ सम्बद्ध हो जाते हैं। अनुक्रमण की बाद की अवस्था में, जब भूभाग पर विभिन्न प्रकार की घास उगने लगी तो प्राणिजात में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। यह वृद्धि जहां गुणात्मक थी, वहीं मात्रात्मक भी थी। इस नए वातावरण में सूत्रकृमि, डिंभकी (larval) कीट, कोलेम्बोला, चींटियाँ, मकड़ियाँ और चिंचड़ियां आदि प्रकट होती हैं। वन-क्षेत्र चरम समुदाय के विकास के साथ अकशेरुकी (invertebrates) तथा कशेरुकी (vertebrates) प्राणियों का विकास होता है। इन प्राणियों के अंतर्गत—कुंडलपुच्छ (springtails), चूहे, गिलहरी, छछूंदर; स्तनपायी प्राणियों में—लोमड़ी, चिपमंक, मूषक और मंजोरू (shrew) आते हैं; पक्षी और सरीसृप वर्ग में कछुए, सांप तथा जलस्थल चर प्राणियों में सालामेंडर और मेंढक।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित जीवों में से कौन से प्राणी सर्वप्रथम शैलों पर निवेश करेंगे?
   - क) एकवर्षी पादप
   - ख) द्विवर्षी पादप
   - ग) सदाबहार पादप
   - घ) लाइकेन

2) किसी क्षेत्र में चरम समुदाय का प्रकार अधिकांशतः निम्नलिखित पहलुओं पर निर्भर करता है :
   - क) उपलब्ध कॉलोनीकारों के निकाय पर
   - ख) मृदा जीवों पर (soil organisms)
   - ग) जलवायु पर (climate)
   - घ) आधार शैल पर (bed rock)

3) यह एक वैचारिक पहेली है, इसे सुलझाइये। नीचे कुछ अंश दिए हैं।
(नीचे दिए गये स्थान पर व्यवस्थित किए गए अंशों की संख्या सही क्रम से लिखिए।)
क) अंतराजातीय और अंतरजातीय प्रतियोगिता
ख) किसी निर्धारित क्षेत्र में जातियों का समुच्चयन
ग) अनावृत क्षेत्र का विकास/उपलब्धता
घ) अधिक समय तक टिकने वाली स्थायीकृत वनस्पतियां
च) बीज़ों का नए स्थान पर पहुंचना
छ) लैंगिक जनन, संख्या में वृद्धि और जीवों की स्थापना
ज) जीवों के प्रभाव से पर्यावरण में बदलाव।

10.5 अनुक्रमण के मॉडल

अनुक्रमण की प्रक्रियाओं और प्रकारों का अध्ययन करने के बाद यह प्रश्न उठता है कि अनुक्रमण क्यों होता है। ऐसी क्या बात होती है कि मात्र शैल पर लाइकेनों और मॉसों की समष्टियां स्थापित हो जाती है; क्यों घास स्थल अवस्था के बाद झाड़ी अवस्था आती है तथा इसके बाद किसी प्रकार की वनस्थली अवस्था शुरू होती है, जिसका कि प्रायः पूर्वानुमान हो जाता है। बहुत समय से पारिस्थितिकी में यह क्षेत्र विवादास्पद रहा है। इस विवाद का समाधान इसलिए नहीं हो सका, क्योंकि इसके लिए पर्याप्त क्षेत्रीय आंकड़ों और परीक्षणों का अभाव था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्राथमिक अनुक्रमण के दौरान विभिन्न अवस्थाओं में और विभिन्न प्रकार के द्वितीयक अनुक्रमणों में विभिन्न प्रक्रियाएं कार्यरत रहती हैं, लेकिन इन प्रक्रियाओं के आपेक्षिक महत्व के बारे में पर्याप्त सहमति नहीं है।

अनुक्रमण संबंधी क्रियाविधि में दो प्रमुख विवादास्पद मुद्दे हैं। एक तो यह कि विभिन्न जातियों के अनुक्रमण को निर्धारित करने में पर्यावरण पर आरंभिक जातियों का प्रभाव महत्वपूर्ण कारक है या उनकी आयुष्य जैसी जीवन-वृत्त संबंधी विशेषताएं सबसे महत्वपूर्ण बातें हैं। नीचे हम तीन क्रियाविधियों का वर्णन कर रहे हैं (देखिए चित्र 10.4)। इनमें प्रथम पर्यावरण के परिवर्तन पर बल देती है, जबकि अन्य दो जीवन वृत्त संबंधी विशेषताओं पर बल देती हैं।

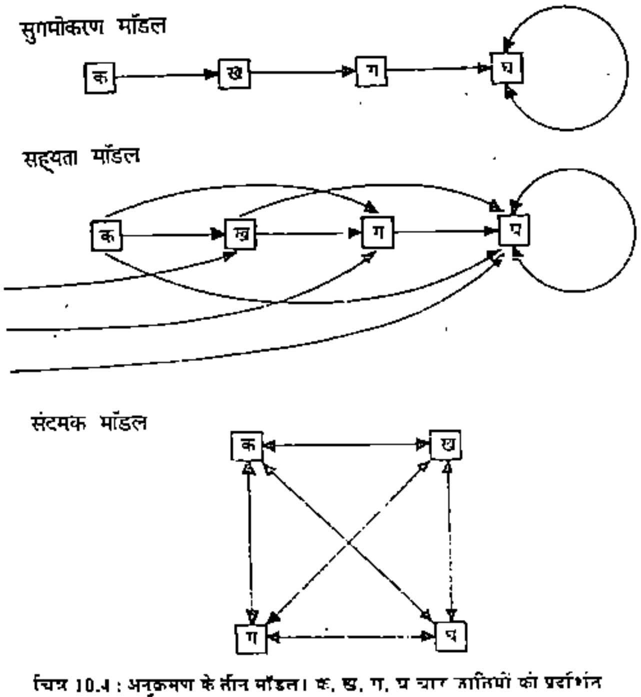

चित्र 10.4 : अनुक्रमण के तीन मॉडल। क, ख, ग, घ चार जातियों का प्रदर्शन करते हैं। तीर (—) से यह पता चलता है कि "इसके द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है" (सी.जे. केब 1985 के आधार पर)।

10.5.1 सुगमीकरण मॉडल (Facilitation Model)

यह अनुक्रमण का एक सुप्रतिष्ठित मॉडल माना जाता है। यह इस मान्यता पर आधारित मॉडल है कि पिछली अवस्था की जातियों का स्थान आगामी अवस्था की जातियां ले लेती हैं। प्रत्येक अवस्था की जातियां अपने पर्यावरण को इस प्रकार थोड़ा-बहुत परिवर्तित कर लेती हैं कि वह उनके लिए उत्तरोत्तर अनुपयुक्त होता जाता है परंतु वह आगामी जातियों के लिए अधिकाधिक अनुकूल होता जाता है। इन विशेषताओं के आधार पर कॉनेल और स्लेयर (1977) ने सुगमीकरण मॉडल का प्रस्ताव किया (देखिए चित्र 10.4.I)। इसे और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम तालाब में अनुक्रमण के उदाहरण को ले सकते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि पादपों की विभिन्न जातियों की मृत्यु और अपघटन से तालाब में अवसाद (गाद) भर जाता है और तालाब उथला हो जाता है। इस तरह उनके अपने जीवित रहने के लिए भी परिस्थितियां अनुकूल नहीं रहतीं और वह आने वाली जातियों के लिए अधिक उपयुक्त हो जाती हैं। सुगमीकरण मॉडल का सारांश यह है कि अनुक्रमण की पूर्व अवस्था की जातियां अपने वातावरण को इस तरह से परिवर्तित करती हैं कि वह उनके अपने पुनरुत्पादन में रुकावट बन जाती हैं, लेकिन वे अनुक्रमण की आगामी उच्च अवस्था की जातियों के प्रवेश और जीवन धारण को सुविधाजनक बनाती हैं।

कई वर्षों से इस मॉडल को एकमात्र मॉडल समझा जाता था। प्राथमिक अनुकरण की आरंभिक अवस्थाओं में यह मॉडल आज भी सबसे उपयुक्त व्याख्या प्रस्तुत करता प्रतीत होता है। परंतु प्राथमिक अनुक्रमण के बाद की अवस्थाओं में और द्वितीयक अनुक्रमण की वनस्थली और घासस्थल अवस्थाओं के लिए यह मॉडल पूर्णतया तर्कसंगत नहीं है।

10.5.2 सहयता मॉडल (Tolerance Model)

इस मॉडल में, पूर्ववर्ती अनुक्रमणात्मक जातियों की उपस्थिति आवश्यक नहीं है यानी कोई भी जाति अनुक्रमण आरंभ कर सकती है (देखिए चित्र 10.4, II)। कुछ जातियां प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। अंततः चरम समुदाय में उनका प्रभुत्व रहता है। ऐसी जातियां जो सीमित संसाधनों के प्रति ज्यादा सहनशील हैं, वे दूसरी जातियों का स्थान ले लेती हैं। आरंभिक परिस्थितियों को देखते हुए अनुक्रमण या तो बाद की जातियों पर आक्रमण के रूप में शुरू होता है या आरंभिक कॉलोनी स्थापित करने वाली जातियों के धीरे-धीरे क्षीण होने से आरंभ होता है। पूरी समस्या का रहस्य यह है कि यहां प्रतियोगितात्मक अनुक्रमण होता है, जिसमें बाद की जातियां अपने से पूर्ववर्ती जातियों को प्रतियोगिता में हरा देती हैं (देखिए चित्र संख्या 10.4, II)। और उनकी अनुपस्थिति में वे उन पर आक्रमण भी कर सकती हैं।

10.5.3 संदमक मॉडल (Inhibition Model)

इस मॉडल के अनुसार, अनुक्रमण बहुत ही विषम प्रकृति (heterogenous) का है, क्योंकि किसी एक स्थल पर विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वहां पहले कौन पहुंचता है। यह आवश्यक नहीं कि जातियों के प्रतिस्थापन की प्रक्रिया व्यवस्थित रूप में हो (देखिए चित्र 10.4, III)। क्योंकि प्रत्येक जाति, नई कॉलोनी स्थापित करने वाली जाति को अलग करना या उसका दमन करना चाहती है। इस प्रकार, अनुक्रमण अधिक व्यष्टिपरक (individualistic) और कम पूर्वानुमेय (competitively superior) हो जाता है क्योंकि समुदाय हमेशा जलवायवीय-चरम अवस्था की ओर अभिमुख नहीं होते। इस मॉडल में कोई भी जाति प्रतियोगिता की दृष्टि से दूसरी जाति से उत्कृष्ट नहीं है। जो कोई भी जाति आवास स्थल पर पहले स्थापित हो सकती है, वह उस स्थल पर सभी नए आने वालों के लिये बाधा भी बन जाती है। इस मॉडल में अनुक्रमण का आरंभ अल्पजीवी जाति से दीर्घजीवी जाति की ओर होता है, यह व्यवस्थित प्रतिस्थापन नहीं कहा जा सकता। इस मॉडल का सारांश यह है कि अनुक्रमण के दौरान सभी प्रतिस्थापन संभव है। इसमें यह इस बात पर निर्भर करता है कि पहले कौन पहुंचता है।

अनुक्रमण के तीन मॉडल इस बारे में सहमत हैं कि जातियां (pioneer species) सबसे पहले प्रकट होंगी क्योंकि इन जातियों में कुछ कॉलोनी बनाने वाली विशेषताएं विकसित हो चुकी होती हैं। ये विशेषताएं हैं—तेजी से वृद्धि, काफी मात्रा में बीजों के उत्पादन और उनको बिखेरने (dispersal) की व्यवस्था। पायोनियर कॉलोनी स्थापित करने वाली जातियां इस दृष्टि से अनुकूलित नहीं होती कि वे ऐसे स्थलों पर स्थापित हो सकें जहां पहले दूसरी जातियां स्थापित हैं। इसके कारण हैं : पूर्व स्थापित जातियों के साथ मूल (जड़ों) के लगने से प्रतिस्पर्धा और प्रकाश की कम उपलब्धता। अनुक्रमण के विभिन्न मॉडलों में आरंभिक कॉलोनी

स्थापित करने वाली जातियां आशुलोपी किस्म की हैं और वे ऐसी परिस्थितियां पैदा कर लेती हैं, जो अपने आवास स्थल को अपने ही लिए उत्तरोत्तर अनुपयुक्त बना लेती हैं।

इन तीन अनुक्रमण मॉडलों में मुख्य अंतर उनकी कार्यपद्धति में है, जो उनके स्थापित होने की प्रक्रिया को निर्धारित करती है। *सुगमीकरण मॉडल* में जातियों का प्रतिस्थापन (replacement) पूर्ववर्ती अवस्था की जातियों द्वारा सुसाध्य बनाया जाता है। *संदमक मॉडल* में जातियों का प्रतिस्थापन इन जातियों द्वारा अवरुद्ध कर दिया जाता है, जो वहां पहले से विद्यमान होती हैं। और यह भी तब तक, जब तक उन्हें नष्ट न कर दिया जाए। तीसरे मॉडल में जातियों का प्रतिस्थापन वहां रहने वाली जातियों द्वारा प्रभावित नहीं होता।

10.6 अनुक्रमण की प्रवृत्तियां

पारितंत्रों में अनुक्रमण परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। अनुक्रमण संबंधी समुदायों का साधारण वर्णन (जो भाग 10.3 और 10.4 में किया गया है) इस कहानी की शुरुआत मात्र है। अब आधारभूत स्तर पर हमारे लिए यह जानना आवश्यक है अनुक्रमण के दौरान *क्या होता है।* इससे हमें यह भी *संकेत* मिल सकता है कि *ऐसा क्यों होता है?*

प्राथमिक अनुक्रमण के दौरान जलीय आवास स्थल से या अनावृत शैल स्थल से चरमावस्था की वनस्थली तक वनस्पतियों और मृदा में कुछ स्पष्ट परिवर्तन होते हैं। उदाहरणार्थ– समुदाय के जैवभार में वृद्धि होती है और मृदा का विकास होता है। इस मृदा में मुख्य रूप से खनिज अवस्तर (mineral substrate) से प्राप्त जैव पदार्थ होता है। ये परिवर्तन कई अन्य पारितंत्र के अभिलक्षणों से जुड़े होते हैं। उदाहरण के तौर पर इसमें ऊर्जा का प्रवाह और पोषक तत्वों का चक्रण शामिल है।

अनुक्रमण का आरंभ अनावृत क्षेत्र से हो सकता है, जहां छोटे-छोटे पौधों की कॉलोनियां बनती हैं और जिसकी परिणति बड़े पादपों के समुदाय में हो सकती है। इन पादपों की वृद्धि से वर्धिता ऊर्ध्वाधर स्तरण (vertical stratification) होता है और इसका खास प्रभाव समुदाय के अंतर्गत पर्यावरण संबंधी स्थितियों पर पड़ता है। सारणी 10.1 में बताए गए बहुत से ऐसे परिवर्तन पारिस्थितिकीय अनुक्रमण के संदर्भ में अत्यधिक विशिष्ट हैं।

सारणी 10.1 : अनुक्रमण के दौरान पारितंत्रों में परिवर्तन (ओडम, 1969 से परिवर्तित रूप में उद्धृत)

विशेषताएं	अपरिपक्व (आरंभिक) पारितंत्र	परिपक्व (बाद का) पारितंत्र
सकल उत्पादन/श्वसन (P R अनुपात)	उच्च > 1 (P > R)	उपागम (Approaches) 1, शेष (P=R)
नेट समुदाय उत्पादन	उच्च	निम्न
आहार शृंखलाएं (food chains)	रेखीय, मुख्य रूप से चराई	जाल-सम, मुख्य रूप से अपरद
कुल जैव पदार्थ (जैव मात्रा)	कम	अधिक
जाति-विभिन्नता	कम	अधिक
समुदाय की संरचना	साधारण	सम्मिश्र (बहुत से सूक्ष्म आवास स्थलों के साथ स्तरण)
कुल जैव पदार्थ	थोड़ा	अधिक
अकार्बनिक पोषक पदार्थ	अधिकांश भौतिक वातावरण में पाए जाते हैं	बड़ी मात्रा में जैव पदार्थों में निहित होते हैं
खनिज चक्र	खुला	बंद
स्थिरता	कम	अधिक
जीवों का आकार	छोटा	बड़ा
सकल उत्पादन/खड़ी फसल के रूप में जैव मात्रा (P B अनुपात)	उच्च	निम्न

आपने भाग 10.4 में देखा कि आरंभिक अनुक्रमण की अवस्थाओं की विशेषता यह है कि उनमें जातियों की संख्या कम होती है, जैव मात्रा भी कम है, तथा पोषक तत्वों के लिए

जीवेतर स्रोतों पर निर्भरता होती है। आरंभिक अवस्थाओं में श्वसन की अपेक्षा सकल प्रारंभिक उत्पादन अधिक होता है। इस कारण उक्त अवधि में अधिक जैव भार उत्पन्न होता है। ऊर्जा कुछ ही जातियों की बहुत सी व्यष्टियों में अपेक्षाकृत कम मार्गों में प्रवाहित होती है और प्रति इकाई जैव मात्रा का उत्पादन अधिक होता है। आहार शृंखलाएं छोटी, रेखीय और पशुचारण (grazing) से संबंधित हैं।

अनुक्रमण में परिपक्व अवस्थाओं की यह विशेषता है कि उसमें अपेक्षतया अधिक जाति विभिन्नता पाई जाती है, अपेक्षाकृत अधिक जैव भार होता है। सकल उत्पादन कुल समुदाय के श्वसन के बराबर होता है (P=R) अधःस्तर में जैव पदार्थ प्रचुर मात्रा में होते हैं। आहार शृंखलाएं सम्मिश्र होती हैं और अधिकांशतः अपरदी होती हैं। अकार्बनिक पोषण तत्वों की बड़ी मात्रा जैव पदार्थ में, मृदा में और वनस्पतियों में बंद रहती हैं।

अधिकांश अनुक्रमणों की प्रवृत्ति अधिक जटिल, दीर्घस्थायी पारितंत्र की ओर होती हैं, जिसमें कम ऊर्जा नष्ट होती हैं। इसलिए ऊर्जा में और अधिक वृद्धि किए बिना अपेक्षाकृत अधिक जैव भार का भरण पोषण किया जा सकता है। वास्तव में, अनुक्रमण बहुत ही जटिल हो सकता है क्योंकि इसमें कुछ अवस्थाओं को छोड़ा, एक-दूसरे में मिलाया या बढ़ाया भी जा सकता है। खेती, फार्मिंग, लकड़ी की कटाई, शहरीकरण, और पर्यावरण संबंधी प्रदूषण आदि मानव क्रियाकलापों से इस अनुक्रमण को मंद किया जा सकता है या उलटाया भी जा सकता है। यदि कोई भी आवास स्थल अक्षुब्ध (undisturbed) रह जाए तो अंततः एक स्थायी चरम समुदाय का निर्माण हो जाएगा।

बोध प्रश्न 3

1) रिक्त स्थानों पर उपयुक्त शब्द लिखिए :
   I) तीन क्रियाविधियां अनुक्रमण के मार्ग को प्रभावित कर सकती हैं; .... , पूर्ववर्ती जातियां वातावरण को इस प्रकार बदल देती है उससे बाद में आने वाली जातियों के लिए क्षेत्र में सुधार हो जाता है; .... , में पूर्ववर्ती जातियां आगामी जातियों के लिए कॉलोनी स्थापित करना और कठिन बना देती हैं; और .... , में पूर्ववर्ती जातियों का बाद की जातियों के कॉलोनी स्थापित करने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

2) अनुक्रमण के दौरान, जातियों की संख्या में .... , समुदाय की जैव मात्रा में ..... , और समुदाय के उत्पादन और श्वसन के अनुपात में ..... चरम अवस्था में उत्पादन की दर श्वसन की दर से .... होती है।

10.7 सारांश

- अनुक्रमण तब होता है, जब लगातार कई समुदाय एक-दूसरे को प्रतिस्थापित करते हैं, एक-दूसरे का स्थान लेते हैं। प्रत्येक समुदाय अपने वातावरण को बदलता है और आगामी समुदाय के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करता है तथा अपने लिए प्रतिकूल परिस्थितियां बनाता है। सर्वप्रथम जो पादप आवास स्थल में कॉलोनी स्थापित करते हैं, उन्हें पॉयनियर (pioneer) समुदाय कहते हैं। अनुक्रमण की अंतिम अवस्था को चरम समुदाय (climax community) कहा जाता है। जिन अवस्थाओं से होकर चरम समुदाय तक पहुंचते हैं, उन्हें अनुक्रमणात्मक अवस्थाएं या क्रमक कहते हैं।
- प्राथमिक अनुक्रमण उस समय होता है, जब पादप अनावृत शैलों पर कॉलोनी स्थापित करते हैं, जहां मृदा नहीं होती। द्वितीयक अनुक्रमण उस समय होता है, जब पादप ऐसे क्षेत्रों में कॉलोनियां स्थापित करते हैं जहां चरम समुदाय को किन्हीं प्राकृतिक विपदाओं या मानवीय कारणों से उखड़ना पड़ा हो।
- जब अनुक्रमण जीवित निवासियों द्वारा लाया जाए तो उस प्रक्रिया को स्वजनिक या स्वगत अनुक्रमण कहा जाता है और जब यह परिवर्तन बाहरी बलों द्वारा किया जाए तो इसे अन्यत्रजनिक अनुक्रमण कहते हैं।
- जिस अनुक्रमण में आरंभ में हरे पादपों की संख्या बहुत अधिक होती है, स्वपोषित अनुक्रमण कहते हैं और जिस अनुक्रमण में परपोषियों की संख्या बहुत अधिक होती है, उसे परपोषित अनुक्रमण कहते हैं।
- सभी प्रकार के अनुक्रमणों की आधारभूत प्रक्रियाएं लगभग एक-समान होती हैं। वे

प्रक्रियाएं हैं : न्यूडेशन, इनवेज़न या अभिगमन, आस्थापन, समुच्चयन, प्रतियोगिता, अभिक्रिया और स्थायीकरण-चरमावस्था।

- तालाब जैसे जलीय पारितंत्र में अनुक्रमण, पोषक अवसाद (sediments) की वृद्धि, तटवर्ती पादपों के अतिक्रमण और जीवों की संख्या और किस्म दोनों में सामान्य वृद्धि से आरंभ होता है। इस प्रवृत्ति के लगातार जारी रहने से तालाब भर जाता है और बाद में आसपास के स्थलीय समुदाय के साथ मिल जाता है।
- अनावृत शैल जैसे शुष्क आवास स्थल में अनुक्रमण पॉयनियर पादपों के द्वारा शुरू होता है। ये पादप पानी की कमी, और तेज तपती धूप जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद मात्र शैल के अधःस्तर (substratum) पर स्थापित हो जाते हैं। इन पॉयनियर पादपों की सक्रियता से खाली क्षेत्र में मृदा जम जाती है। बाद में इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के पादप कॉलोनियां बना लेते हैं और धीरे-धीरे मृदा की पर्याप्त मात्रा जमा हो जाती है। ये शुष्कता का समग्र स्थितियां कम नमी वाली स्थितियों में बदल जाती हैं।
- अनुक्रमण की प्रक्रिया को समझाने के लिए हमारे सामने तीन प्रचलित मॉडल हैं। सुगमीकरण मॉडल के अनुसार अनुक्रमण की आरंभिक अवस्था की जातियां आवास स्थल में इस प्रकार परिवर्तन करती हैं कि इससे उनके पुनरुत्पादन में रुकावट पैदा हो जाती है लेकिन वही अनुक्रमण बाद की अवस्थाओं की जातियों की वृद्धि के अनुकूल होता है। दूसरे सहयता मॉडल के अनुसार जातियों में प्रतिस्पर्धात्मक क्रम परंपरा होती है, जिसमें बाद की जातियां अपने से पूर्ववर्ती जातियों को प्रतिस्पर्धा में हरा देती हैं और उनकी अनुपस्थिति में उस आवास स्थल में प्रविष्ट हो जाती हैं। संदमक मॉडल में यह स्पष्ट किया गया है कि अनुक्रमण के दौरान सभी प्रकार का प्रतिस्थापन संभव है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आवास स्थल में पहले कौन पहुंचता है।
- अनुक्रमण की कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं : उत्पादकता में वृद्धि होती है, जलाशयों से पोषक तत्वों का स्थानांतरण होता है, निकेतों (niche) का विकास होता है और आहार जालों (food webs) की जटिलता में क्रमिक वृद्धि से जीवों में अधिकाधिक विभिन्नता आती है।

10.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) नीचे दिए अनुक्रमणों को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए। (पाठ में दिए उदाहरणों का उपयोग न कीजिए)

क) प्राथमिक अनुक्रमण

....

....

ख) द्वितीयक अनुक्रमण

....

....

ग) प्रगामी अनुक्रमण

....

....

घ) प्रतिगामी अनुक्रमण

....

....

2) व्याख्या कीजिए कि कैसे स्थलीय आवास स्थल पर अनुक्रमण झील या तालाब में होने वाले अनुक्रमण से भिन्न होता है?

....

....

....

3) द्वितीयक अनुक्रमण के चिह्न क्या हैं? द्वितीयक अनुक्रमण कहां समाप्त होता है?

4) स्वच्छ जल या अलवण जल निकायों में ऐसी कौन सी बातें हैं, जो अनुक्रमण की दर को निर्धारित करती हैं?

5) कल्पना कीजिए कि दो ज्वालामुखीय क्षेत्र हैं और दोनों एक ही आकार के हैं। दोनों ही क्षेत्रों में ताजे लावे ने फैलकर भूभाग पर शैल बना दिए हैं। इनमें से एक क्षेत्र द्वीपीय है, जो भूभाग से दूर है और पूरा द्वीप लावा से ढक गया है। दूसरा क्षेत्र एक बड़े महाद्वीप के बीच में है। बताइए अनुक्रमण द्वीप पर अधिक तेज गति से होगा या महाद्वीप पर; या दोनों ही स्थानों पर समान गति से होगा? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए।

10.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1) 1) ख
   2) क
   3) ख
   4) ग
   5) ग

2) 1) घ
   2) ग
   3) ग, च, छ, ख, क, ज, घ

3) 1) सुगमीकरण, संदमक, सह्यता
   2) वृद्धि होती है, वृद्धि होती है, वृद्धि होती है, समान

अंत में कुछ प्रश्न

1) अपने निजी अनुभव के आधार पर उदाहरण लिखिए।

2) स्थलीय क्षेत्र में प्राथमिक अनुक्रमण ऐसे स्थान पर होता है, जहां पानी की कमी होती है और मृदा नहीं बनी होती। ऐसी स्थिति में अनुक्रमण शुष्क स्थल से कम नमी वाली स्थितियों की ओर होता है। दूसरी ओर, झील अथवा तालाब में अनुक्रमण बहुत अधिक

जल वाली और बहुत कम मृदा वाली स्थिति से कम नमी वाली स्थितियों की ओर होता है।

3) द्वितीयक अनुक्रमण विक्षुब्ध क्षेत्रों में होता है, जहां प्रायः मृदा अपने स्थान पर होती है। इससे मृदा के निर्माण की लंबी अवस्था की बचत होती है, जैसा कि हम प्राथमिक अनुक्रमण में देख चुके हैं। कुछ पादपों जैसे खर-पतवार या अपतृण बड़े पैमाने पर उग आते हैं और उनकी बढ़त को कोई रोकता नहीं। जैसे द्वितीयक अनुक्रमण प्रगति करता है आरंभिक आक्रांता पादपों (अपतृण) का स्थान अंततः आसपास के समुदाय के पादप ले लेते हैं। तेज़ी से बढ़ने वाले पेड़ सूर्य की रोशनी को रोक लेते हैं और तब पेड़ों की छत्र-छाया के नीचे छाया-सह्य झाड़ियों की नई पीढ़ी उग आती है। अंततः अनुक्रमण के क्षेत्र और आसपास के समुदाय के बीच की विभाजक रेखा धीरे-धीरे समाप्त होने लगती है। इस स्थिति में द्वितीयक अनुक्रमण की अंतिम अवस्था आ जाती है।

4) स्वच्छ अथवा अलवण जल निकायों में अनुक्रमण की दर पोषक तत्वों की उपलब्धता द्वारा निर्धारित होती है। विभिन्न क्रमकों के विकास और वृद्धि के पारितंत्र में पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती है। यदि पोषक तत्वों की पूर्ति बढ़ा दी जाए तो अनुक्रमण की दर भी बढ़ जाती है। जैसा कि झीलों और तालाबों में सुपोषण से होता है।

5) बड़े महाद्वीप के मध्य में स्थित क्षेत्रों में अनुक्रमण अधिक तेजी से होगा। इसका कारण यह है कि विभिन्न क्रमकों के पादपों के प्रवर्ध्य या बीज बहुत जल्दी वहां पहुंच जाएंगे तथा वहां स्थापित होकर अंततः चरम-समुदाय बनाएंगे।

इकाई 11 सामुदायिक संगठन और जीवों के बीच पारस्परिक क्रिया

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
11.2 सामुदायिक संगठन
आवास और निकेत
प्रकार्यात्मक भूमिकाएं और संघ
कीस्टोन जातियां
प्रमुख जातियां
स्थायित्व
सामुदायिक संगठन के बारे में विचार
11.3 जाति पारस्परिक क्रिया
11.4 स्पर्धा
प्रयोगशाला समष्टि में स्पर्धा
प्राकृतिक समष्टि में स्पर्धा
स्पर्धा का परिणाम
स्पर्धी योग्यता का विकास
11.5 परभक्षण
प्रयोगशाला में परभक्षण
क्षेत्रीय अध्ययन में परभक्षण
भक्ष्य-भक्षक तंत्र का सह-विकास
11.6 शाकाहारिता
पौधों में प्रतिरक्षा साधन
शाकाहारियों के प्रतिउपाय
पादप-शाकाहारियों की पारस्परिक क्रियाएं
11.7 सारांश
11.8 अंत में कुछ प्रश्न
11.9 उत्तर

11.1 प्रस्तावना

इकाई 9 और 10 में आपने समुदाय की संरचना के बारे में पढ़ा। आपने पढ़ा कि समुदाय समय के साथ-साथ बदलते हैं और अविच्छिन्न अनुक्रमण का अंत जीवों के अपेक्षाकृत स्थायी समूह से होता है, जिसे चरम (क्लामेक्स) समुदाय कहते हैं।

हालांकि पारितंत्र शांत और मौन-सा दिखाई देता है लेकिन भीड़ से युक्त जितना व्यस्त एक बड़ा शहर दिखाई देता है पारितंत्र भी उतना ही व्यस्त हो सकता है। एक अंतर है, पारितंत्र की व्यस्तता बिना शोर शराबे की होती है।

आइये हम जंगल का उदाहरण लेते हैं। वहां की मिट्टी जीवाणुओं, कवकों, कीटों, बरूथियों, स्लगों, कृमियों, मकड़ियों तथा बीसियों दूसरे जीवों से भरपूर रहती है। ये जीव घूमते और जनन करते हुए जमीन को खोदते हैं। कोमल नवोद्भिद् या पौध सतह को भेद कर बाहर निकलते हैं, अपघटकों द्वारा पुनःचक्रित पोषकों का अवशोषण करते हैं और अंततः बढ़कर झाड़ियां, पेड़ आदि बन जाते हैं। ये झाड़ियां और पेड़ शाकाहारियों के लिए खाद्य का निर्माण करते हैं। मांसाहारी शाकाहारियों और दूसरे मांसभक्षियों का भक्षण करते हैं।

एक पारितंत्र के जीव दूसरे पारितंत्र के जीवों से भिन्न होंगे और यहां वन का उदाहरण बताता है कि किस प्रकार जीव एक-दूसरे से परस्पर क्रिया करते हैं। कुछ पारस्परिक क्रियाएं एक या दोनों सहभागियों को लाभ पहुंचाती हैं, जबकि कुछ एक या दोनों सहभागियों को नुकसान पहुंचाती हैं। इस इकाई में हम पहले सामुदायिक संगठन की व्याख्या करने के लिए काम में लाए गए विभिन्न दृष्टिकोणों की चर्चा करेंगे। बाद के भागों में समुदाय बनाने वाले जीवों के बीच पारस्परिक क्रियाओं के बारे में बताएंगे।

अगली इकाई में हम विभिन्न प्राचलों का पता लगाएंगे, जो समुदाय में समष्टि को प्रभावित करते हैं।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सामुदायिक संगठन को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे और निकेत, संघ, कीस्टोन और आधारभूत अर्थात् प्रमुख जातियों को परिभाषित कर सकेंगे,
- उदाहरण सहित विभिन्न अंतराजातीय और आंतरजातीय पारस्परिक क्रियाओं की परिभाषा दे सकेंगे,
- स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे और यह बता सकेंगे, कि किस प्रकार वह जातियां जिनमें आपसी स्पर्धा की संभावना है, साथ-साथ रह सकती हैं,
- विभिन्न प्रकार के परभक्षण को परिभाषित कर सकेंगे और भक्ष्य-भक्षक तंत्र की व्याख्या कर सकेंगे,
- पौधों और शाकाहारियों के संबंध का पादप प्रतिरक्षा तंत्रों के कुछ उदाहरणों सहित वर्णन कर सकेंगे।

11.2 सामुदायिक संगठन

आपने इकाई 9 में जाना कि समुदाय में अनेक जातियों की समष्टियां होती हैं। अब हम यह देखेंगे कि पारितंत्र में समुदाय किस प्रकार संगठित होता है। तीन प्रक्रियाएं समुदायों को संगठित करने में मदद देती हैं। ये हैं—**स्पर्धा, परभक्षण और सहजीविता** (symbiosis)। उदाहरण के लिए पौधों, शाकाहारियों और मांसाहारियों के बीच स्पर्धा समुदाय में जातियों की विविधता और बहुलता को नियंत्रित कर सकती है। परभक्षण समुदाय को अशन या भोजन के अनुसार संगठित कर सकता है, जबकि सहजीवन सामुदायिक संगठन के सकारात्मक ढंग से बढ़ने में सहायक हो सकता है। सहजीविता में सहोपकारिता (mutualism) जैसी महत्वपूर्ण पारस्परिक क्रियाएं शामिल हैं, जो जातियों को जोड़ती हैं। इकाई के बाद के भागों में इन पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन करने पर यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

समुदाय के संगठन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की जांच करने से पहले हमें आवास और निकेत की महत्वपूर्ण संकल्पनाओं की समीक्षा करनी चाहिए।

11.2.1 आवास और निकेत

जीव जहां रहता है वही उसका **आवास** है। आप कह सकते हैं कि आवास उसका पत्र-व्यवहार वाला पता है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जीव के आवास का वर्णन सही हो और जहां तक हो सके विस्तार से किया गया हो।

जीव के **निकेत** का संबंध जीव द्वारा पारितंत्र में निभाई जाने वाली भूमिका से है। इसमें तापमान, प्रकाश, मृदा, नमी, pH और पोषण आवश्यकताएं जैसे भौतिक कारक शामिल हैं। इसमें जीव विज्ञानीय पक्ष भी शामिल हैं, जैसे कि—यह अपना आहार कैसे जुटाता है, वर्ष की किस ऋतु में यह जनन करता है और समुदाय में दूसरे जीवों के साथ यह किस प्रकार परस्पर क्रिया करता है। संक्षेप में, निकेत समुदाय में किसी जाति की भूमिका को परिभाषित करता है और यह हर जाति के लिए अनन्य यानी अपना-अपना है। किसी जाति के निकेत का वर्णन करते समय सारणी 11.1 में दिये हुए कारकों का ध्यान रखना चाहिए।

अगर हम एक सरल उदाहरण लें तो आवास और निकेत का अंतर स्पष्ट किया जा सकता है। किसी व्यक्ति से परिचित होने के लिए हमें उसका पता जानना ज़रूरी है अर्थात् वह कहां मिलेगा यानी कि उसका आवास। व्यक्ति को सचमुच अच्छी तरह जानने के लिए हम उसकी व्यावसायिक रुचियां, साहचर्य और समुदाय में उसकी भूमिका के बारे में जानना चाहेंगे और यह उसका निकेत होगा।

सारणी 11.1 : निकेत के पहलू

पौधे	प्राणी
वृद्धि और जनन के लिए ऋतु	अशन के लिए दिन का समय और जनन की ऋतु
धूप, जल, मृदा, pH, तापमान की आवश्यकताएं	आवास और खाद्य आवश्यकताएं
दूसरे जीवों से संबंध	दूसरे जीवों से संबंध
अजैव पर्यावरण पर प्रभाव	अजैव पर्यावरण पर प्रभाव

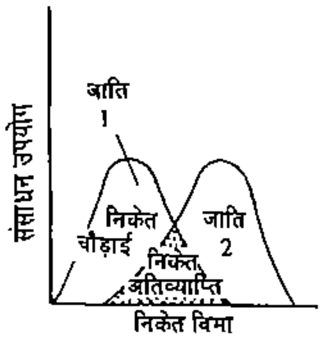

चित्र 11.1 : समुदाय में निकेत प्राचल

समुदाय में आम तौर पर जिन दो विमाओं (आयामों) का ध्यान रखा जाता है वे हैं **निकेत चौड़ाई** (niche width) और **निकेत अतिव्यापित** (niche overlap) (चित्र 11.1)। जीव द्वारा विभिन्न संसाधनों के उपयोग के कुल जोड़ को निकेत चौड़ाई कहते हैं। निकेत के मापन में आम तौर पर कुछ पारिस्थितिकीय परिवर्तनों (ecological variables) को शामिल किया जाता है। जैसे कि भोजन का आकार या आवास स्थान।

निकेत चौड़ाई संकीर्ण या विस्तृत हो सकती है। संकरी अथवा संकीर्ण चौड़ाई एक विशिष्ट जाति की सूचक है, जबकि विस्तृत चौड़ाई इस बात की सूचक है कि जाति व्यापक या सामान्य है और संसाधनों का व्यापक परास में उपयोग कर सकती है। निकेत अतिव्याप्ति इस बात का सूचक है कि दो या अधिक जातियां उपलब्ध संसाधनों के भाग का साथ-साथ उपयोग करती हैं। ये संसाधन खाद्य पदार्थ या स्थान हो सकते हैं। आप चित्र 11.1 में देख सकते हैं कि कुछ निकेत स्थान साझा रूप में काम में लाया जाता है, जबकि कुछ अनन्य यानि विशिष्ट हैं।

निकेत की संकल्पना यह सुझाती है कि संबंधित जातियां जो निकेत के संदर्भ में भिन्न हैं वे एक आवास या समुदाय में साथ-साथ रह सकती हैं। इसका कारण यह है कि इन जातियों के निकेत की भिन्नता संसाधनों को बांट देती है और इस प्रकार आपसी स्पर्धा से छुटकारा मिल जाता है। यह पौधों और प्राणियों, दोनों के लिए सच है और भाग 11.4 में हम इसके बारे में अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

11.2.2 प्रकार्यात्मक भूमिकाएं और संघ

समुदाय किस प्रकार संगठित होता है यह जानने के लिए हम अनेक विधियां अपना सकते हैं। सरलतम विधि समुदाय में उपस्थित जातियों का अशन स्वभाव के अनुसार समूह बनाना है। इस तरीके से हमें खाद्य जाल के बारे में जानकारी मिल सकती है और तब हम प्रत्येक पोषी स्तर को **संघों** (guilds) में उप-विभाजित कर सकते हैं। ये संघ जातियों के समूह हैं जो एक ही ढंग से सामान्य संसाधन आधार का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए एक जंगल में फल खाने वाले जीवों जैसे बंदर, तोते या दूसरे पक्षियों से मिलकर एक संघ बन सकता है; या मरुस्थल आवास में बीज खाने वाली चींटियां, कृतक (चूहे आदि) और पक्षी आदि एक अकेला संघ बना सकते हैं। संघ जातियों की आधारभूत प्रकार्यात्मक भूमिकाएं तय करने का काम कर सकते हैं। भिन्न-भिन्न संघ आपस में क्रिया करते हैं और समुदाय में संगठन को रूप देते हैं। समुदाय में जातियों के बीच पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन करने के लिए संघ एक सुविधाजनक इकाई है। प्रत्येक जाति का एक पृथक सत्ता के रूप में अध्ययन करने को अनावश्यक बनाकर, संघ हमें समुदाय के संगठन का अच्छी तरह से अध्ययन करने में मदद देता है।

11.2.3 कीस्टोन जातियां

जिस जाति की गतिविधियां समुदाय के ढांचे को निर्धारित करती हैं उस जाति को **कीस्टोन** (keystone) या **आधारभूत** जाति कहते हैं। उदाहरण के लिए तारामीन *पाइसैस्टर ओकरेसियस* पर विचार कीजिए। जब इस तारामीन को उत्तरी अमेरिका के चट्टानी अंतरज्वारीय क्षेत्रों से हटा दिया गया तो *माइटिलस कैलिफार्निएनस* मसल ने उस जगह को हथिया लिया और दूसरे अकशेरुकी प्राणियों और शैवाल को दूर रखा जिन्हें संलग्न स्थलों की यानी चिपकने के लिए जगह की जरूरत होती है। लेकिन प्राकृतिक परिस्थितियों में तारामीन द्वारा मसल के भक्षण से इसकी आबादी नियंत्रित रहती है और तारामीन इसे प्रमुख जाति नहीं बनने देती। इससे जिन दूसरी जातियों को संलग्न स्थलों की आवश्यकता होती है, उन्हें बचे रहने का अवसर मिल जाता है।

कीस्टोन जाति का दूसरा उदाहरण अफ्रीकी हाथी है। अपने अशन स्वभाव से हाथी झाड़ियों और छोटे पेड़ों को नष्ट कर देते हैं और वनस्थल आवासों को खुले घास स्थलों में परिवर्तित कर देते हैं। हाथी बड़े परिपक्व पेड़ों की छाल खाते हैं जिससे ये पेड़ नष्ट हो सकते हैं। वन आवासों पर घास स्थल बनने के कारण, आग लगने की बारम्बारता बढ़ जाती है, जिससे जंगलों की घासस्थलों के रूप में बदल जाने की गति और भी बढ़ जाती है। यह स्थिति हाथियों के लिए असुविधाजनक या हानिकारक है क्योंकि हाथियों के लिए घास एक पर्याप्त आहार नहीं है। इससे काष्ठीय जातियां विलुप्त हो जाती हैं और हाथी भूखों मरने लगते हैं। घास चरने वाले खुरदार प्राणियों के लिए हाथी की गतिविधि अनुकूल साबित होती है। इस प्रकार, इस समुदाय में समुदाय संगठन को ढालने में हाथी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

कीस्टोन जातियां प्राकृतिक समुदायों में अपेक्षाकृत विरल हो सकती हैं अथवा सरलता से नहीं पहचानी जाती हैं। आजकल ऐसा माना जाता है कि कीस्टोन जातियों द्वारा कुछ ही स्थलीय समुदायों का संगठन होता है लेकिन जलीय समुदायों में कीस्टोन जातियां सामान्य रूप से पाई जाती हैं।

11.2.4 प्रमुख जातियां

ये जातियां अपनी बड़ी संख्या या अधिक जीवभार के कारण पहचानी जाती हैं और आम तौर पर प्रत्येक पोषण स्तर के लिए इनका अलग-अलग वर्णन किया जाता है। प्रमुखता जाति विविधता की संकल्पना से संबंधित है। इसका यह अर्थ है कि जाति विविधता की कुछ माप प्रमुखता की माप मानी जा सकती है। इस प्रकार, हम **समुदाय प्रमुखता सूचकांक** (community dominance index) को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं :

समुदाय प्रमुखता सूचकांक = दो सर्वाधिक बहुल जातियों द्वारा दी गई बहुलता का प्रतिशत

$$= \frac{Y_1 + Y_2}{Y}$$

जहां Y_1 = सर्वाधिक बहुल जाति की बहुलता
Y_2 = दूसरी सर्वाधिक बहुल जाति की बहुलता
Y = सब जातियों की कुल बहुलता

बहुलता (abundance) को घनत्व, जीवभार या उत्पादकता द्वारा मापा जा सकता है। परन्तु प्रमुखता का विविधता से हमेशा ही घनिष्ठ संबंध नहीं होता। ऐसा माना जाता है कि प्रमुख जातियां आम तौर पर स्पर्धी प्रमुख (competitive dominant) हैं। फिर भी कुछ समुदायों में प्रमुख जातियां संयोगवश हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, विगलित यानी सड़ रहे लट्ठे समुदाय (rotting log community) में उपस्थित अनेक अकशेरुक जातियों में से कुछ कम से कम एक बार प्रमुख हो सकती हैं, लेकिन कोई भी जाति हर लट्ठे में प्रमुख नहीं होगी। इस प्रकार, एक जाति एक लट्ठे में प्रमुख हो सकती है जबकि यह संभव है कि वह बगल वाले लट्ठे में बहुत ही विरल हो। ऐसा लगता है कि प्रमुखता निर्धारित करने वाला कारक यह है कि कौन उस लट्ठे पर पहले पहुंचता है।

उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि प्रमुखता तीन तरीके से हासिल की जा सकती है : i) एक नए संसाधन में पहले पहुंचने वाली जाति, जैसे कि विगलित लट्ठे में प्रमुख हो सकती है, ii) एक जाति संसाधन समुच्चय के एक भाग पर, जो कि व्यापक रूप से वितरित है, विशिष्टता प्राप्त करके प्रमुख बन सकती है; और iii) जाति सामान्यीकृत हो सकती है ताकि यह संसाधन की व्यापक किस्म का उपयोग कर सके।

प्रमुखता सामुदायिक संगठन का एक महत्वपूर्ण घटक है हालांकि इसे अभी भी अच्छी तरह नहीं समझा गया। प्रमुख जातियां न केवल समुदाय के संगठन को, बल्कि इसके स्थायित्व को भी प्रभावित कर सकती हैं। इसलिए आइए अब हम समुदाय स्थायित्व की ओर ध्यान दें।

11.2.5 स्थायित्व

यह गतिक संकल्पना है, जो कि किसी तंत्र के परिवर्तनों को आत्मसात् (absorb) करने और विक्षोभ (disturbance) से वापस लौट आने की योग्यता के बारे में बताती है। आइए हम चित्र 11.2 पर नज़र डालें। यह पारितंत्र में स्थायित्व की संकल्पना को स्पष्ट करता है। काली गेंद एक सतह पर समुदाय को दर्शाती है और यह सतह पर्यावरणीय स्थितियों को दर्शाती है। (क) में समुदाय स्थायी है क्योंकि विक्षोभ के बाद तंत्र वापस बिंदु I पर लौट आएगा। (ख) में समुदाय स्थानीय रूप से स्थायी है, लेकिन अगर इसे एक सीमा से परे विक्षोभित कर दिया जाता है तो यह आपेक्षिक स्थायित्व (II और III) वाली दूसरी स्थितियों में चला जाएगा। (ग) में बड़े विक्षोभों से कुछ जातियां विलुप्त हो जाएंगी और अपेक्षाकृत नई जातियों द्वारा पुनर्निवेश (recolonisation) हो जाएगा।

इस प्रकार, स्थायित्व एक गतिक संकल्पना है, लेकिन साम्यावस्था केन्द्रित है। एक या अधिक साम्य सीमाएं या केन्द्र अवश्य होने चाहिए, जिन पर विक्षोभी बलों का सामना होने पर तंत्र टिक सके। स्थायित्व स्थानीय या विश्व-व्यापी हो सकता है। छोटे विक्षोभ के बाद तंत्र की अपनी मूल स्थिति में लौटने की प्रवृत्ति **स्थानीय स्थायित्व** कहलाती है। वन में अवकाशनों यानी खाली छूटी जगहों का वृक्षों की एक जैसी जातियों से भरा जाना स्थानीय स्थायित्व का

उदाहरण है। समुदाय द्वारा सभी संभव विक्षोभों से अपनी मूल स्थिति में लौट आने की प्रवृत्ति **भूमंडलीय या विश्व-व्यापी स्थायित्व** कहलाता है। आग लग जाने के बाद यूकेलिप्टस वनों का अपनी मूल स्थिति में लौट आना भूमंडलीय स्थायित्व का परिचायक है। समुदाय प्रतिरोध (resistance) और प्रत्यास्थता (resilience) दर्शाते हैं। विक्षोभ के बाद तंत्र साम्यावस्था से जिस अंश तक बदल सकता है, **प्रतिरोध** उसका माप है। **प्रत्यास्थता** वह गति है, जिससे एक क्षोभित तंत्र साम्यावस्था को लौटता है। तेज वापसी उच्च प्रत्यास्थता का प्रमाण है।

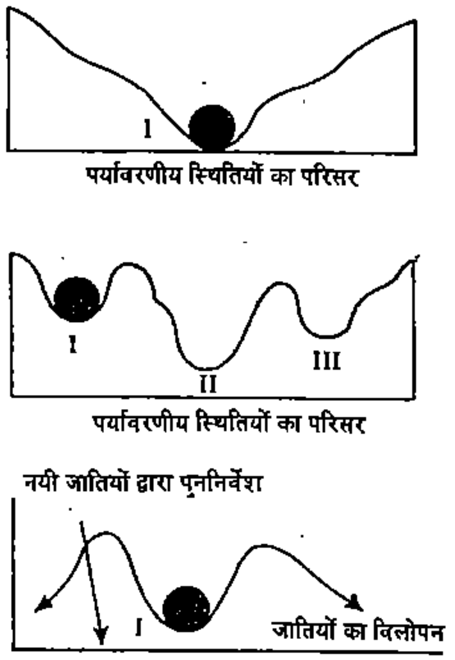

चित्र 11.2 J पारितंत्र में स्थायित्व की संकल्पना

यह सरल और आकर्षक धारणा, कि जातियों की विविधता से स्थायित्व आता है, गलत है। वस्तुतः गणितीय मॉडल में बढ़ती हुई जटिलता स्थायित्व को कम कर देती है और इसलिए अगर विविधता से स्थायित्व आता है, जैसा कि प्रायः उष्ण कटिबंधीय समुदायों के लिए कहा जाता है, तो यह जाति पारस्परिक क्रियाओं का स्वतः परिणाम नहीं है। प्राकृतिक समुदाय विकास के उत्पाद है जहां परस्पर क्रियाशील जातियों के अयादृच्छिक संयोजन (non-random combinations) उत्पन्न होते हैं, जिनमें विविधता और स्थायित्व संबंधित है। मनुष्य द्वारा किए जाने वाले अनेक बड़े-बड़े विक्षोभों के बावजूद पूरे समुदायों के स्थायित्व का विस्तृत अध्ययन बहुत कम किया गया है।

मनुष्य द्वारा पैदा किए गए प्रदूषण ने जलीय समुदायों को विक्षोभित किया है और प्रदूषण के दबाव में जलीय तंत्रों का स्थायित्व आज अनुप्रयुक्त पारिस्थितिकी का क्रांतिक केन्द्र है। हम इकाई 6 में इसका एक उदाहरण देख चुके हैं कि पोषक डालने से झीलों पर कैसे प्रभाव पड़ता है। इससे पहले कि समुदाय अवांछित विन्यास (configuration) में बदले, यह महत्वपूर्ण है कि हम यह जानकारी प्राप्त कर लें कि हम समुदाय को कितना विक्षोभित कर सकते हैं। वर्तमान समय में यह केवल परीक्षण प्रणाली (trial and error method) द्वारा किया जाता है।

आइए अब हम समुदाय संगठन के बारे में दो परस्पर विरोधी विचारों पर एक निगाह डालें।

11.2.6 सामुदायिक संगठन के बारे में विचार

साम्य परिकल्पना (equilibrium hypothesis) पारंपरिक (पुराना) विचार है। इसके अनुसार स्थानीय आबादियां स्पर्धा, परभक्षण और सहोपकारी पारस्परिक क्रियाओं द्वारा नियंत्रित की जाती हैं। भूमंडलीय स्थायित्व नियम हैं और विक्षोभ दबा दिए जाते हैं। निकेत के विविधरूपण से जाति विविधता निर्धारित होती है। इसलिए किसी विशेष आवास के शोषण में प्रत्येक जाति स्पर्धीय रूप से श्रेष्ठ है। नया और कम स्वीकृत **असाम्य परिकल्पना** (non-equilibrium hypothesis) का विचार यह है कि समुदाय का जाति संगठन हमेशा बदलता

रहता है और कोई संतुलन नहीं बचता। विश्व में समुदायों के लिए कोई भूमंडलीय स्थायित्व नहीं है और दृढ़ता अथवा प्रत्यास्थता अधिक प्रासंगिक माप है।

अगर हम यह मान लें कि जिन समुदायों को मध्यम से लेकर साधारण स्तर के विक्षोभ का सामना करना पड़ता है, उन समुदायों में जातियों की बहुलता बनी रहती है तो असाम्य परिकल्पना की व्याख्या की जा सकती है। अगर आग, पाला, भूस्खलन, आंधी आदि विक्षोभ बार-बार आते हैं तो केवल वही जीव उस स्थल पर पाए जाएंगे जो जल्दी से परिपक्व हो जाते हैं। दूसरी चरम सीमा पर अगर विक्षोभ होते ही नहीं, तो वे स्पर्धी जो अधिक आक्रामक हैं, दूसरी जातियों का सफाया कर देंगे।

उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन और प्रवाल भित्तियां (coral reefs) दो ऐसे समुदाय हैं, जिन्हें हमेशा ही साम्य परिकल्पना दर्शाने वाला माना गया है। लेकिन वर्षा वनों में, वितान वृक्ष स्थानीय रूप से उसी जगह वापस उग नहीं पाते क्योंकि उस स्थल पर छोटे वृक्ष विरले ही उस जाति के होते हैं जिसके वितान वृक्ष हैं। इसलिए ऐसा माना जा सकता है कि वर्षा वनों में भी समुदाय साम्यावस्था में नहीं है। ऐसा लगता है कि प्रवाल भित्तियां भी बार-बार तूफान वाले क्षेत्रों में ही उच्च विविधता बनाए रखती हैं। यह अच्छी तरह जानने से पहले कि प्राकृतिक समुदायों के लिए ऊपर दिए गए दो विचारों में से कौन-सा अधिक उपयुक्त है और भी ज्यादा प्रयोगात्मक कार्य करना पड़ेगा।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए वक्तव्य सही हैं अथवा गलत, यह बताइए। जहां कहीं आपको लगता है कि वक्तव्य गलत है, वहां अपने उत्तर का औचित्य बताइए :

i) **एक संघ में वर्गीकरणात्मकतः (taxonomically) एक जैसे जीव होते हैं, जो एक ही खाद्य संसाधन को मिल-बांट कर खाते हैं।**

....

ii) **मूल रूप से निकेत समुदाय में एक जीव की प्रकार्यात्मक भूमिका है।**

....

iii) **आवास जीव के निकेत का पर्याय है।**

....

iv) **कीस्टोन जातियां आम तौर पर जलीय समुदायों के ढांचे निर्धारित करती हैं।**

....

v) समुदाय में स्थायित्व का अर्थ यह है कि समुदाय को किसी परिवर्तन का सामना नहीं करना पड़ता।

....

11.3 जाति पारस्परिक क्रियाएं

अब हम यह जान चुके हैं कि समुदायों का संगठन कैसे होता है। आइए हम यह देखें कि समुदाय के ही भीतर पौधों और प्राणियों की समष्टि या आबादियां किस प्रकार पारस्परिक संबंध बनाती हैं। जाति समष्टि में व्यष्टि पारस्परिक क्रिया करते हैं, जो **आंतरजातीय** (intraspecific) पारस्परिक **क्रियाएं** कहलाती हैं। इसके अलावा, वे दूसरी जाति की समष्टि के व्यष्टियों से भी पारस्परिक क्रिया करते हैं, जिन्हें **अंतराजातीय** (interspecific) **पारस्परिक क्रियाएं** कहते हैं। कुछ एक दूसरे पर न्यूनतम असर डालती हैं, जबकि कुछ जैसे कि परजीवी और उनके परपोषी, परभक्षी और उनके शिकार, बहुत ही स्पष्ट और निकटतम संबंध रखती हैं। व्यष्टिगत स्तर पर ये संबंध हानिकारक अथवा लाभदायक हो सकते हैं; समष्टि स्तर पर आबादियां वृद्धि की दर घटा सकते हैं, स्थिर कर सकते हैं अथवा वृद्धि दर बढ़ा सकते हैं।

इन पारस्परिक क्रियाओं के प्रभाव **धनात्मक**, **ऋणात्मक** अथवा **निष्प्रभावी** हो सकते हैं (देखिए सारणी 11.2)। निष्प्रभावी पारस्परिक क्रियाओं (00) का समष्टि वृद्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। धनात्मक पारस्परिक क्रियाएं (++) दोनों समष्टियों को लाभ पहुंचाती है और अगर संबंध परस्पर घातक हैं तब पारस्परिक क्रिया ऋणात्मक (--) होती है। जब एक जाति

ऐसी परिस्थिति बनाए रखती है या उपलब्ध कराती है, जो दूसरी जाति के कल्याण के लिए आवश्यक हो, परन्तु ऐसी परिस्थिति के निर्माण से उसके अपने कल्याण पर प्रभाव नहीं पड़ता तब पारस्परिक क्रिया को **सहभोजिता** (commensalism) (0+) कहते हैं। किसी वृक्ष के स्तंभ पर उगने वाला अधिपादप (epiphytic) इसका उदाहरण है। पेड़ सहारा देता है यानी अधिपादप को अपने ऊपर टिकाए रखता है और अधिपादप अपना पोषण अपनी वायवीय जड़ों से लेता है। वह पारस्परिक क्रिया (0-) जिसमें एक जाति दूसरी जाति की आबादी को कम कर देती है अथवा प्रतिकूल प्रभाव डालती है तथा स्वयं अप्रभावित रहती है, **एमेन्सैलिज़्म** (amensalism) कहलाती है। उदाहरण के लिए, एक जीव द्वारा विषालु पदार्थों का निकालना जो दूसरे जीव की वृद्धि और उसके जीवित बने रहने का संदमन करते हैं। यह **ऐलीलोपैथी** (allelopathy) कहलाती है। इसका एक उदाहरण जुगलोन (juglone) नामक एक रासायनिक पदार्थ है, जो काले अखरोट के पेड़ द्वारा मिट्टी में छोड़ा जाता है, यह पदार्थ इस पेड़ के पास दूसरे पौधों की वृद्धि रोक देता है। एमेन्सैलिज़्म को स्पर्धा का ही एक रूप माना जा सकता है।

सारणी 11.2 : अंतराजातीय संबंध

पारस्परिक क्रिया की किस्म	जातियां 1	2	पारस्परिक क्रिया की प्रकृति
निष्प्रभाविता	0	0	कोई भी समष्टि दूसरी समष्टि पर प्रभाव नहीं डालती।
स्पर्धा	-	-	एक जाति द्वारा दूसरी जाति का सीधा संदमन
परभक्षण (शाकाहारिता सहित)	+	-	परभक्षी जाति 1, शिकार जाति 2 को मार डालती है।
परजीविता	+	-	परजीवी जाति 1, शिकार जाति 2 को मारे बिना उस पर रहती है।
सहभोजिता	+	0	सहभोजी जाति 1 को लाभ पहुंचाता है, जाति 2 अप्रभावित रहती है।
सहोपकारिता	+	+	पारस्परिक क्रियाएं दोनों के अनुकूल हैं।
एमेन्सैलिज़्म	0	-	जाति 1 अप्रभावित, जाति 2 को नुकसान।

एमेन्सैलिज़्म और सहभोजिता दोनों से ही पारिस्थितिकीय रूप से महत्वपूर्ण वह संबंध है जो दोनों समष्टियों (++) को फायदा पहुंचाता है। ऐसी पारस्परिक क्रियाएं **सहोपकारिता** (mutualism) कहलाती है। उदाहरण के लिए, दीमकों में और रोमन्थी (रूमिनैन्ट) प्राणियों के पेट में उपस्थित जीवाणु सेलुलोस के पाचन में सहायता देते हैं, जबकि जीवाणुओं को कोष्ण पर्यावरण मिलता है और वे अपने परपोषी को पोषण प्राप्त करने में सहायता करते हैं। नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु *राइज़ोबियम* जो फलीदार पौधों की मूल ग्रंथिकाओं में पाए जाते हैं, सहोपकारिता का दूसरा सामान्य उदाहरण है।

स्पर्धा (--) **परभक्षण तथा परजीविता** (-+) ऋणात्मक पारस्परिक क्रियाएं हैं। स्पर्धा दोनों जातियों की समष्टि के लिए घातक है और परभक्षण तथा परजीविता में एक जाति की समष्टि दूसरी जाति की कीमत पर फायदा उठाती है। परजीविता में एक जीव, दूसरे पर अशन करता है और शिकार अथवा "मेजबान" कभी-कभार ही एकदम मार दिया जाता है। मेजबान बचा रहता है हालांकि उसकी स्वस्थता घट जाती है और जब वह मरता है तो कारण होता है अन्य संक्रमणों के प्रति घटा हुआ प्रतिरोध। फीताकृमि, पिस्सू, *प्लाज्मोडियम* और रोग पैदा करने वाले अनेक सूक्ष्मजीव जाने-पहचाने परजीवी हैं।

पारिस्थितिकीविज्ञों ने धनात्मक की अपेक्षा ऋणात्मक पारस्परिक क्रियाओं का अधिक अध्ययन किया है, जिसमें स्पर्धा और परभक्षण शामिल हैं। इसका कारण यह है कि धनात्मक पारस्परिक क्रियाओं के प्रभाव को आसानी से नहीं दिखाया जा सकता। इस इकाई में हम दो जातियों के बीच पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन करेंगे, जिसमें स्पर्धा और परभक्षण शामिल हैं।

11.4 स्पर्धा

स्पर्धा **संसाधनों** को लेकर होती है। पौधों के लिए प्रकाश, पोषक और जल महत्वपूर्ण

संसाधन हैं। पौधे परागणकारियों (pollinators) के लिए अथवा संलग्नी स्थलों के लिए स्पर्धा कर सकते हैं। प्राणियों के लिए पानी, खाना और साथी संभावित संसाधन हो सकते हैं और वे स्थान के लिए भी स्पर्धा कर सकते हैं जैसे कि नीड़न स्थल, शीतऋत्वन (wintering) स्थल या एसे। जगहें जो परभक्षियों से सुरक्षित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संसाधन जटिल और विविध हो सकते हैं।

स्पर्धी पारस्परिक क्रियाएं दो प्रकार की होती हैं, जो कि निम्नलिखित हैं :

- **शोषणात्मक** (exploitative) अथवा **संघर्षी** (scramble) **स्पर्धा**। यह तब होती है, जब एक ही जाति या भिन्न-भिन्न जातियों के अनेक जीव ऐसे साझा संसाधनों का उपयोग करते हैं जिनकी आपूर्ति कम है।
- **व्यतिकरणीय** (interference) **स्पर्धा**। यह तब होती है, जब भले ही संसाधन की आपूर्ति कम न हो, फिर भी उसको प्राप्त करने की प्रक्रिया में जीव एक-दूसरे को नुकसान पहुंचाएंगे।

जब स्थलीय पर्यावरण में अथवा जलीय आवास में साझा संसाधन पर्याप्त है जैसे कि ऑक्सीजन, तब जीवों में इस संसाधन के लिए कोई स्पर्धा नहीं होती। लेकिन अधिकतर संसाधनों की आपूर्ति कम है इसलिए निकेत अतिव्याप्ति वाले जीवों में स्पर्धा शुरू हो जाती है। निकेत अतिव्याप्ति जितनी अधिक होगी, स्पर्धा भी उतनी तीव्र होगी (चित्र 11.3)। एक ही जाति के सदस्यों को समान प्रकार के संसाधनों में से कई संसाधनों की आवश्यकता होती है, इसलिए विभिन्न जातियों के सदस्यों के बीच अंतराजातीय स्पर्धा की अपेक्षा आंतरजातीय स्पर्धा अधिक तीव्र होती है।

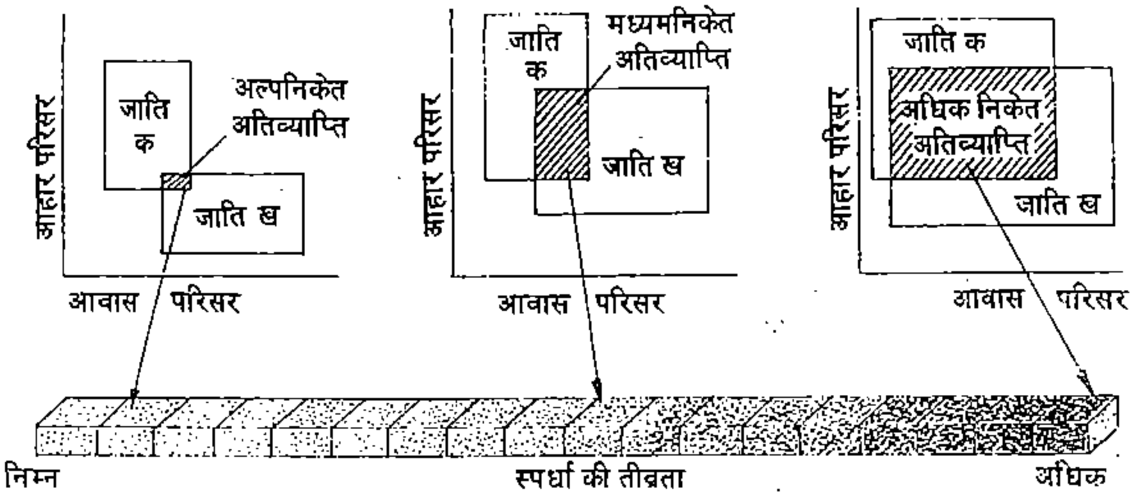

चित्र 11.3 : निकेत अतिव्याप्ति और स्पर्धा की तीव्रता। प्रत्येक ग्राफ दो जातियों (क) और (ख) के लिए आहार और आवास की आवश्यकताओं की तुलना करता है।

सरलीकृत समुदाय और प्रयोगशाला परीक्षण, पारिस्थितिकीविज्ञों को विभिन्न पारस्परिक क्रियाओं को एक-एक करके छांटकर उनका अध्ययन गुणात्मक रूप मे करने में मदद देते हैं। जब दो जातियां एक ही आहार को साझा रूप में बांटती है अथवा एक ही स्थान को घेरती हैं या एक दूसरे का शिकार करती हैं तो क्या होता है? इसके बारे में परिकल्पना तैयार करने के लिए गणितीय मॉडल व्यापक रूप से काम में लाए गए हैं। सर्वाधिक ज्ञात मॉडल दो गणितज्ञों द्वारा स्वतंत्र रूप से विकसित किए गए थे। ये गणितज्ञ थे अमेरिका के लोटका (1925) और इटली के वोल्तेरा (1926)। लोटका-वोल्तेरा समीकरण भक्ष्य-भक्षक परिस्थितियों और ऐसी परिस्थितियों पर लागू होती हैं, जिसमें आहार और जगह के लिए स्पर्धा होती है।

जीवों के बीच स्पर्धा के लिए लॉजिस्टिक वृद्धि समीकरण पर आधारित लोटका-वोल्तेरा समीकरण को अलग-अलग जातियों के लिये नीचे दिए गए रूप में लिखा जा सकता है :

$$\frac{dN_1}{dt} = r_1N_1 \frac{K_1 - N_1 - \alpha N_2}{K_1}$$

$$\frac{dN_2}{dt} = r_2N_2 \frac{K_2 - N_2 - \beta N_1}{K_2}$$

जहां $N_1 N_2$ = जाति 1 और जाति 2 की समष्टियाँ
$K_1 K_2$ = दूसरी जाति की अनुपस्थिति में प्रत्येक जाति के लिए साम्य समष्टि आकार
t = समय
$r_1 r_2$ = क्रमशः 1 और 2 जाति की प्रति व्यष्टि वृद्धि-दर

α एक स्थिरांक है, जो जाति 1 पर जाति 2 के संदमनी प्रभाव को दर्शाता है और β जाति 1 द्वारा जाति 2 के संदमन का महत्व उजागर करने वाला स्थिरांक है। लोटका-वोल्तेरा मॉडल मानता है कि : 1) पर्यावरण बदलता नहीं, 2) प्रवास महत्वहीन हैं, 3) सहअस्तित्व के लिए स्थायी साम्य केन्द्र आवश्यक है, 4) स्पर्धा ही एकमात्र महत्वपूर्ण जीव विज्ञानीय पारस्परिक क्रिया है। अब अगर हम इन दो जातियों 1 और 2 को साथ-साथ रखें तो आपसी स्पर्धा का क्या परिणाम होगा?

1) दो जातियां साथ-साथ रहती हैं
2) जाति 1 विलुप्त हो जाती है, या
3) जाति 2 विलुप्त हो जाती है।

सैद्धांतिक लोटका-वोल्तेरा समीकरणों ने वैज्ञानिकों को प्रयोगशाला में स्पर्धा पर अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया, जहां नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत परिणाम सरलता से निर्धारित किया जा सकता है।

11.4.1 प्रयोगशाला समष्टि में स्पर्धा

हालांकि निकेत में कम भिन्नताओं वाली जातियां समुदाय में सह-अस्तित्व के योग्य हैं, समरूप निकेतों वाली जातियों का सह-अस्तित्व नहीं हो सकता, भले ही केवल एक साझा संसाधन की आपूर्ति कम हो। स्पर्धा इतनी तीव्र हो जाती है कि एक जाति अंततः विलुप्त हो जाती है। विजयी जाति की संततियों की बड़ी संख्या जो अधिक उपयोगी विशेषक (traits) वाली होती है, धीरे-धीरे कम दक्ष जातियों के सदस्यों की जगह ले लेती हैं। यह **स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत** (exclusion principle) कहलाता है। सबसे पहले जी.एफ. गाउस (1934) द्वारा निकट रूप से संबंधित *पैरामीसियम* जाति के मिश्रित संवर्धन में प्रयोगशाला में इस सिद्धांत का प्रदर्शन किया गया। हालांकि अलग-अलग संवर्धन में प्रत्येक समष्टि जीवित रही, मिश्रित संवर्धन में केवल एक ही जाति जीवित बची (चित्र 11.4)।

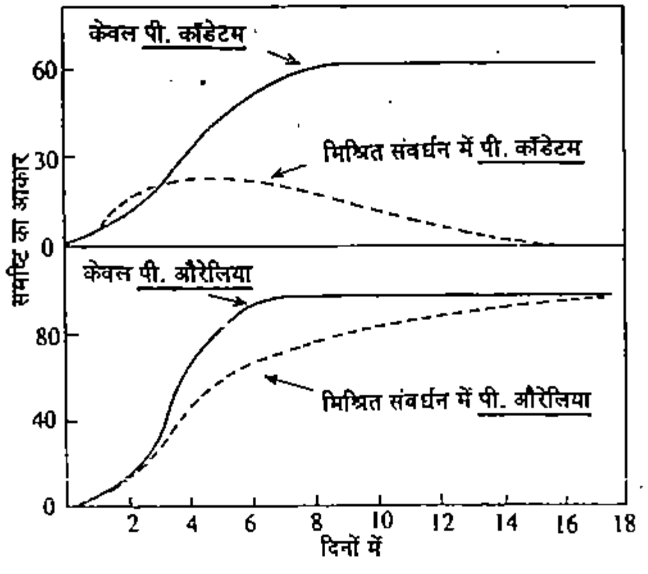

चित्र 11.4 : पैरामीसियम की दो जातियों के बीच स्पर्धा। शुद्ध संवर्धन में पी *औरेलिया* और *पी. कॉडेटम* दोनों में बढ़ी परन्तु मिश्रित संवर्धन में *पी. औरेलिया* अधिक अच्छा स्पर्धी साबित होती है और *पी. कॉडेटम* मर जाती है (गाउस 1934 के आधार पर)

ऐसा नहीं है कि जातियों के बीच स्पर्धा से हमेशा ही एक समष्टि में वृद्धि होती हो और दूसरी जाति पर रोक लगती हो। गाउस ने दूसरे प्रयोग में दिखाया कि जब पैरामीसियम की दो भिन्न जातियों *पी. औरेलिया* और *पी. बर्सेरिया* एक ही परीक्षण नलिका में रहती हैं तब दोनों जीवित

रहतीं हैं। इसका कारण है कि *पी. औरेलिया* भरण-पोषण के लिए तरल के ऊपरी स्तर में खमीर निलम्बन पर निर्भर रहती है, जबकि *पी. बर्सेरिया* नलिका के तल स्तर के खमीर से भरण-पोषण लेते हैं। इन दो जातियों के बीच अशन व्यवहार के इस अंतर के कारण इन दोनों का सह-अस्तित्व संभव है। इस तरह, यह प्रदर्शित किया गया कि दो अथवा दो से अधिक जातियां केवल तभी साथ-साथ रह सकती हैं, जब उनके निकेतों में भिन्नता हो।

11.4.2 प्राकृतिक समष्टि में स्पर्धा

आइए अब हम यह देखें कि क्या प्रयोगशाला के नतीजे प्रकृति में समष्टियों पर लागू होते हैं? स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत के महत्व के बारे में ढेर सारी धारणाएं हैं। हालांकि इस सिद्धांत को प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों में बार-बार प्रदर्शित किया गया है, प्रकृति में यह नियम नहीं है या यह कह सकते हैं कि प्राकृतिक समुदायों में इसे देखना आसान नहीं है।

पहले हम उन परिस्थितियों की जांच करते हैं, जहां स्पर्धी अनन्यता का आशय नहीं है। ये परिस्थितियां हैं :

1) जब क्रांतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में होता है। उदाहरण के लिए पातफुदका (leafhopper) *ऐरिथोन्युरा* की छः जातियां एक ही पेड़ पर रह सकती हैं और उन्हीं पत्तियों को खा सकती हैं। न केवल उनके आवास और आहार स्रोत एक हैं, बल्कि उनकी जीवन चक्र प्रावस्थाएं भी एक-जैसी ही हैं। यह स्पष्ट है कि संसाधनों की प्रचुरता के कारण स्पर्धी अनन्यता नहीं होती।
2) जब पर्यावरणी परिस्थितियां अस्थायी और बार-बार बदलती हैं। तब उस छोटी अवधि में जब संसाधन सीमित हो जाते हैं, एक जाति को दूसरी जाति की जगह लेने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता। उदाहरण के लिए, महासागरों और शीतोष्ण झीलों में, परिवर्तन कभी-कभी इतने अचानक होते हैं कि सीमित पोषकों के लिए जबरदस्त स्पर्धा के बावजूद पादपप्लवक की एक जाति को इतना समय नहीं मिलता कि अपनी संख्या इतनी बढ़ा लें कि दूसरी जाति को समाप्त कर सके। प्राथमिक और द्वितीयक अनुक्रमण के दौरान लगातार परिवर्तन होने के कारण अनुक्रमण की प्रक्रिया से गुज़रने वाले समुदायों में स्पर्धी अनन्यता नहीं देखी गयी है।

प्रकृति में स्पर्धी अनन्यता की प्रक्रिया का अनदेखा रह जाने का दूसरा कारण यह है कि एक जाति दूसरी जाति को समाप्त करने के लिए समय मांगती है। अगर अनुसंधानकर्ता समुदाय को लगातार नहीं देख पाते तब वे इस प्रक्रिया को देखने से पूरी तरह से चूक जाते हैं। इसे स्पष्ट करने के लिए एक दिलचस्प उदाहरण है। गैलापैगोस द्वीप समूह में एबिंग्डन द्वीप पर सन् 1957 में पहली बार बकरियों को लाया गया। उस द्वीप के कछुए जिस घास को खाते थे बकरियों ने भी उनको चरना शुरू किया। इसके अलावा, बकरियां दूसरी पत्तियों और तनों को भी चरने लगीं। परभक्षियों की अनुपस्थिति में बकरियों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी और कछुओं को जिस नीचे उगने वाली घास की आवश्यकता थी, वह समाप्त हो गई। जब तक 1962 में अनुसंधान दल पुनः वहां गया सभी कछुए विलुप्त हो चुके थे। यहां स्पर्धी अनन्यता ऐबिंग्डन कछुओं के विलुप्त हो जाने का कारण बनी।

11.4.3 स्पर्धा के परिणाम

केवल स्पर्धी अनन्यता ही स्पर्धा का परिणाम नहीं है। कभी-कभी साझा संसाधन को इस तरह बांट दिया जाता है कि संभावित प्रतियोगी संसाधन के भिन्न-भिन्न भागों को काम में लाते हैं। आइए हम एक जैसे आवास में रहने वाली चिड़ियों की 4 जातियों का परिकल्पित उदाहरण लें। वे वितान में विभिन्न स्थानों पर भोजन करेंगी और इस प्रकार स्पर्धा से बचेंगी। स्थान के बंटवारे के अलावा, एक साझा संसाधन का विभिन्न समयों पर उपयोग किया जा सकता है।

ये संसाधन बंटवारे के उदाहरण हैं। गाउस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए पक्षियों की निकट रूप में संबंधित जातियों पर अध्ययन किए गए। ये पक्षी थे पनकौआ *(फैलेक्रोकोरैक्स कार्बो)* और शैग *(फैलेक्रोकोरैक्स ऐरिस्टोटेलिस)* (देखिए चित्र 11.5)। ये जातियां एक जैसे आवासों में रहती हैं और लगता है कि इनके निकेत अतिव्याप्ति व्यापक हैं। ये दोनों ही भृगु यानी सीधी खड़ी चट्टान पर घोंसले बनाती हैं और मछली खाती हैं। यह देखा गया है कि पनकौआ मुख्य रूप मे चपटे चौड़े भृगु किनारों पर नीड़ बनाता है और मुख्य रूप में उथले ज्वारनदमुखों और बंदरगाहों में भोजन करता है। शैग संकरे भृगु किनारों पर घोंसले बनाता है और मुख्य रूप में समुद्र में भोजन करता है। इस प्रकार, इन भिन्नताओं के कारण स्पर्धा न्यूनतम हो जाती है।

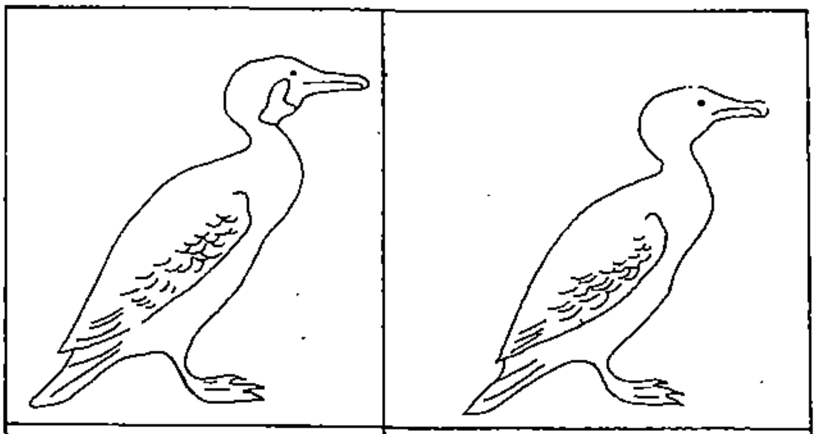

• सैंड ईल या स्प्रैट से मुक्त मिश्रित आहार • उथले ज्वारदनमुखों में मछलियों का आहार • चपटे चौड़े भृगु किनारों पर नीड़ बनाता है।	• मुख्यत: सैंड ईल तथा स्प्रैट का आहार • समुद्र में मछलियों का आहार • संकरे भृगु किनारों पर नीड़ बनाता है।

चित्र 11.5 : निकट रूप से संबंधित फैलेक्रोकोरैक्स जातियां अपना भरण-पोषण भिन्न-भिन्न ढंग से लेती हैं और इसलिए स्पर्धा नहीं करती।

संसाधनों का ऐसा ही बंटवारा पौधों में होता है। साथ-साथ बोई गई पादप जातियां मिट्टी की अलग-अलग गहराइयों का प्रयोग करती हैं (चित्र 11.6)। कुछ पौधों की जड़ें उथली रेशेदार हैं, जो सबसे ऊपरी मिट्टी से पानी लेती हैं। अन्य जाति में विरल रूप से शाखित मूसला जड़ें (taproot) होती हैं और मध्यम गहराई तक जाती हैं। इसके अलावा, ऐसी भी जाति है जिसकी मूसला जड़ ऊपरी सतहों पर थोड़ी बहुत शाखित होती हैं लेकिन जो मुख्य रूप से दूसरी जातियों के मूल क्षेत्र (rooting zone) से नीचे परिवर्धित होती हैं।

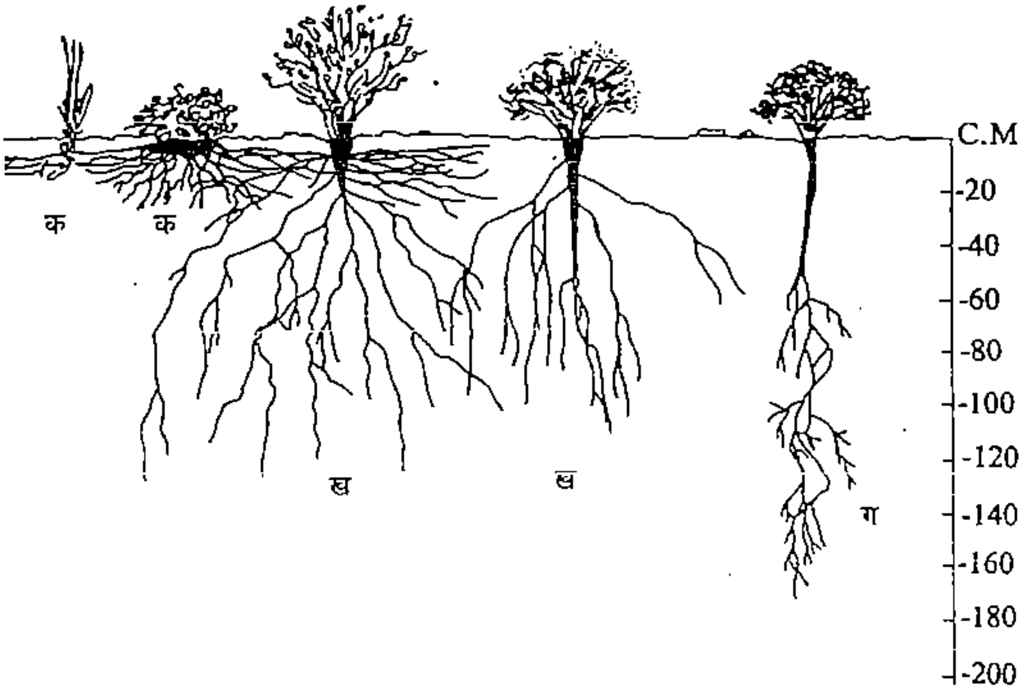

चित्र 11.6 : मरूस्थल पौधों के एक समूह द्वारा मिट्टी के संसाधन का बंटवारा। मूल तंत्र (root system) आकारिकी (morphogy) जाति विशिष्ट है। जाति (क) उथली सतह पर जड़ें निकालने वाली है जो कभी-कभी होने वाली वारिश के दौरान नमी को जल्दी से सोख लेती है। (ख) में मध्यम गहराइयों पर अधिक फैलने वाली जड़ें हैं। (ग) जैसे पौधों में गहरी मूसला जड़ें होती हैं।

स्थान के बंटवारे के अतिरिक्त साझा संसाधन का भिन्न-भिन्न काल में उपयोग किया जा सकता है। यह **कालिक बंटवारा** कहलाता है। इसका उदाहरण ऐसे घास-स्थलों में देखा जा सकता है, जहां नवनीतपुष्प (buttercup) *रैननकुलस* स्पर्धी बहुवर्षी घासों के उगने से पहले केवल बसंत के शुरू में उगता है।

स्पर्धी अनन्यता का दूसरा विकल्प **आनुवंशिक गुणों में परिवर्तन या विस्थापन** है। तीव्र स्पर्धा विकास को प्रभावित करती है और जातियों के विलोपन के बजाय किसी अभिलक्षण में विस्थापन या परिवर्तन हो जाता है। यूरोप के जंगलों में एक उदाहरण देखा जाता है। वहां टिटिमाइस *(पारस)* कहलाने वाली छोटी चिड़िया की छः जातियों का सह-अस्तित्व है। इसका कारण यह है कि हर चिड़िया की चोंच का साइज थोड़ा-सा भिन्न है। चोंच साइज की यह भिन्नताएं दो जातियों को एक ही अशन क्षेत्र में एक ही खाद्य की तलाश करने से रोकती हैं। उदाहरण के लिए लंबी चोंच वाली टिटिमाइस अपेक्षाकृत लम्बे कीटों को पकड़ती है। जीववैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि सभी छः जातियों का विकास एक समरूप पूर्वज से हुआ है और चोंच साइज में विभिन्नता गुण विस्थापना का परिणाम है।

11.4.4 स्पर्धी योग्यता का विकास

पहले उप-भागों में जिन उदाहरणों की चर्चा की गई है, उनसे यह स्पष्ट होता है कि अगर दो जातियां उस संसाधन के लिए संघर्षशील हैं जो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है तब दोनों जातियों के हित में यही है कि वे संरचनात्मक, शरीर क्रियात्मक और व्यवहारात्मक भिन्नताएं विकसित करें। इससे स्पर्धा कम हो जाएगी। फिर भी, परस्पर लाभ पहुंचाने वाले ऐसे परिवर्तनों को हमेशा विकसित करना संभव नहीं है क्योंकि यह संभव है कि उन जातियों के दूसरे प्रतियोगी भी हों।

अतः जीवित बचे रहने का एकमात्र रास्ता स्पर्धी योग्यता का विकास करना या "जमे रहना और लड़ना" है। इस संकल्पना को परिभाषित करना बहुत आसान नहीं है। लेकिन संक्षेप में इसका अर्थ यह है कि ऐसी कोई भी प्रक्रिया जो किसी प्रतियोगी को सीमित संसाधन तक पहुंचने से रोकती है स्पर्धी योग्यता को सुधारेगी। पक्षियों में प्रादेशिक व्यवहार (territorial behaviour) इसका एक अच्छा उदाहरण है। प्राणियों में, स्पर्धा के दौरान संसाधन को उपयोग में लाने की योग्यता के स्थान पर संघर्ष में योग्यता उत्पन्न कराने में आक्रामक व्यवहार का विकास क्रांतिक रहा है। इसके आधार पर हम एक आदर्श विकासीय क्रम को पहचान सकते हैं।

प्राणियों में आक्रामक व्यवहार से प्रमुखता पदानुक्रम (dominance hierarchy) या पद कोटि की स्थापना होती है। प्रमुखता वास्तविक लड़ाई या विधि अनुसार प्रतियोगिता से निर्धारित होती है जिसमें एक प्राणी दूसरे को डराकर भगा देता है। खाने और मैथुन में प्रमुख प्राणी प्रथम रहता है और दूसरे को अपने प्रदेश से निकाल देता है।

निम्न घनत्व —से होती है→ उपनिवेशन और वृद्धि

उच्च घनत्व —से होती है→ संसाधनों के लिये स्पर्धा

उच्च घनत्व —से होती है→ व्यतिकरण क्रियाविधियां (interference mechanisms) जो संसाधन के लिये स्पर्धा रोकती हैं।

इस विकासीय प्रवणता के सभी चरणों पर समष्टि का अस्तित्व हो सकता है।

बोध प्रश्न 2

खाली जगह पर सही शब्द भरिये :

i) स्पर्धी अनन्यता के सिद्धांत के अनुसार, जातियां एक समुदाय में नहीं रह सकतीं यदि उनकी ....समान है।

ii) क) जब एक ही या भिन्न-भिन्न जातियों के सदस्य उन साझा संसाधनों का उपयोग करते हैं जिनकी आपूर्ति कम है, तब .... स्पर्धा होती है।

ख) .... स्पर्धा उस समय होती है जब दोनों व्यष्टियों की संसाधन तक पहुंच होती है, परंतु एक व्यष्टि दूसरी की अपेक्षा संसाधन को अधिक काम में लाता है या अधिक कुशलता से काम में लाता है।

iii) अगर जातियां संसाधनों का .... कर लेती हैं तो वे समुदाय में स्पर्धा से बच सकती हैं। तीव्र स्पर्धा से प्रायः जातियों के विलोपन के बजाय .... का विकास होता है।

11.5 परभक्षण

भोजन या स्थान के लिए स्पर्धा के अलावा समुदाय में जातियां परभक्षण द्वारा परस्पर क्रिया

कर सकती हैं। परभक्षण शब्द से हमारे दिमाग में चूहे के ऊपर झपट्टा मार रहे बाज या हिरन की मारने वाले बाघ की तस्वीर आ जाती है। यह परभक्षण का संकीर्ण विचार है, जबकि इसका अर्थ इससे कहीं अधिक है। मक्खी द्वारा इल्ली (caterpiller) पर अंडे देना भी, ताकि वह इल्ली की कीमत पर परिवर्धित हो सके, परभक्षण का एक उदाहरण है। इसे **परजीव्याभता** (parasitoidism) कहते हैं। झाड़ियाँ या घास खाने वाला हिरन या बीजों और फलों का भक्षण करने वाला चूहा या चिड़िया भी परभक्षण का एक रूप है। वह **शाकाहारिता** कहलाता है। **स्वजातिभक्षण** (cannibalism) एक विशेष प्रकार का परभक्षण है, जिसमें परभक्षी और शिकार, दोनों एक ही जाति के होते हैं।

समष्टि पर परभक्षण के प्रभाव का सैद्धांतिक रूप से और व्यावहारिक रूप से अध्ययन किया गया क्योंकि इसका हमारी जाति पर आर्थिक प्रभाव पड़ता है। मुख्य रूप से समष्टि पर परभक्षण का प्रभाव तीन तरह से पड़ सकता है :

- वितरण को सीमित करता है या बहुलता को कम करता है।
- समुदाय की संरचना को प्रभावित करता है।
- यह एक प्रमुख वरणात्मक बल है, और जीवों में हम जो अनेक अनुकूलन देखते हैं, उनका स्पष्टीकरण भक्ष्य-भक्षक सहविकासों में है। ये अनुकूल हैं, अनुहरण (mimicry) और भयसूचक रंग (warning colouration)।

हम सैद्धांतिक मॉडलों का विचार करते हुए परभक्षण-प्रक्रिया का विश्लेषण शुरू करते हैं। इन मॉडलों की आधारभूत अभिधारणाएं यह हैं कि शिकार समष्टि चरघातांकी रूप से बढ़ती है और परभक्षी समष्टि में जनन खाए गए शिकार की संख्या का फलन है। जैसे-जैसे एकल परभक्षी समष्टि बढ़ती है, शिकार समष्टि एक सीमा तक घट जाता है जहां पर प्रवृत्ति उलट जाती है। दोनों की जनसंख्या में बढ़ोत्तरी और गिरावट के फलस्वरूप प्रत्येक में दोलन होता है। (चित्र 11.7)।

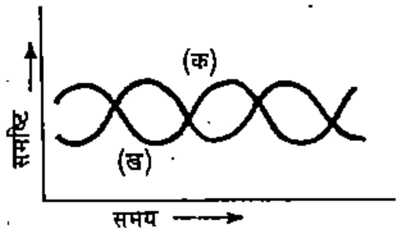

चित्र 11.7 : परभक्षी (क) और शिकार (ख) समष्टि की बहुलता को समय के सामने आलेखित किया गया है। शिकार की बहुलता में बढ़ोत्तरी के बाद परभक्षियों की बहुलता में बढ़ोत्तरी होती है।

यह चक्र या दोलन अनंतकाल तक जारी रह सकता है। परभक्षी द्वारा कभी भी शिकार का नाश नहीं हो सकता और परभक्षी स्वयं कभी भी पूरी तरह से खत्म नहीं होता।

11.5.1 प्रयोगशाला में परभक्षण

सामान्य तौर पर सैद्धांतिक भक्ष्य-भक्षक तंत्रों के अध्ययन के लिए प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों का परिणाम शिकार का उन्मूलन होता है। जी.एफ. गाउस (1934) ने संवृत तंत्र (closed system) में *पैरामीशियम कॉडटेम* (शिकार) और *डाइडीनियम नास्युटम* (परभक्षी) का पालन-पोषण किया। *डाइडीनियम* ने हमेशा ही *पैरामीशियम* को खाया और फिर भुखमरी से मर गया। अगर संवर्धन पात्र बहुत बड़ा रखा गया या उसमें रखे गए परभक्षियों की संख्या कम कर दी गई तब भी यही परिणाम निकला (देखिए चित्र 11.8 क)।

अगर गाउस ने शिकार को आश्रय दिया, जोकि इस मामले में संवर्धन पात्र की तली में तलछट था, तो शिकार समष्टि का कुछ भाग बच गया (चित्र 11.8 ख)। इससे संकेत मिलता है कि जब परभक्षी दाब हल्का हो जाता है और शिकार की समष्टि घट जाती है तब भक्ष्य-भक्षक संबंध स्थायी हो सकता है। फिर भी, जब परभक्षी नितांत रूप से एक ही प्रकार की शिकार जाति पर निर्भर करता है तब भक्ष्य-भक्षक पारस्परिक क्रियाएं दोनों समष्टियों का चक्रीय उतार-चढ़ाव दर्शा सकती है। दूसरे प्रयोग में प्रयोगशाला में परपोषी (शिकार) के रूप में एजुकी सेम घुन (weevil) और घुन के लार्वा पर परजीवी बर्र (परभक्षी) का तंत्र बनाया गया। चित्र 11.9 में दोलन दर्शाए गए हैं। बर्र ने शिकार समष्टि के लार्वों पर अंडे देकर अपने संतति के जीवित बचे रहने को सुनिश्चित कर दिया। इससे परभक्षी जनसंख्या में वृद्धि

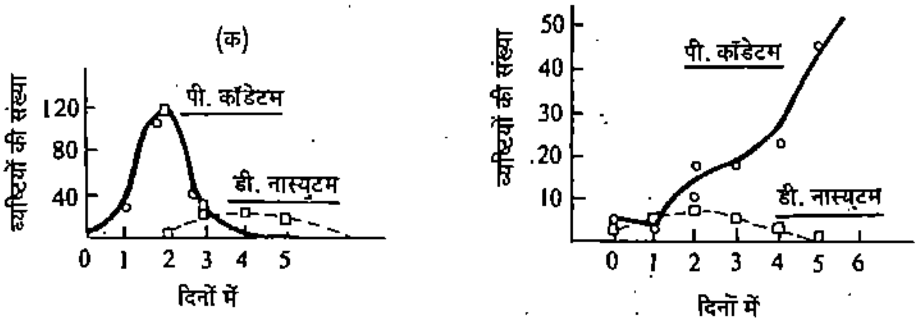

चित्र 11.8 : दो परिस्थितियों में *पैरामीशियम कॉडेटम* और *डाइडीनियम नास्युटम* के बीच भक्षी पारस्परिक क्रिया।

क) बिना तलछट के जई माध्यम
ख) तलछट सहित जई माध्यम

हुई। लेकिन परभक्षी संख्या बढ़ने के साथ ही घुन संख्या गिर गई और इस वजह से बर्र समष्टि की अगली पीढ़ी के जीवित रहने के अवसर कम हो गए। बर्र की घटी हुई समष्टि ने शिकार जाति को फिर बढ़ने दिया और इस तरह यह सिलसिला जारी रहा। यह पाया गया कि 12 पीढ़ियों के बाद एक दीर्घकालिक प्रवृत्ति देखने को मिली, परपोषी आबादी घनत्व में धीरे-धीरे बढ़ी और परजीवी आबादी धीरे-धीरे गिरी।

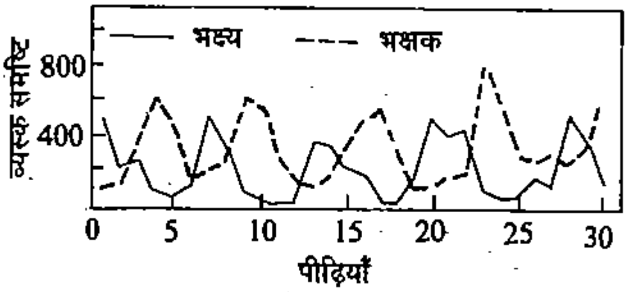

चित्र 11.9 : एजुकी सेम घुन और इसके बर्र परभक्षी की प्रयोगशाला समष्टि में चक्रीय उतार-चढ़ाव।

स्वाभाविक है कि अब आप यह जानना चाहेंगे कि क्या अल्पकालिक भक्ष्य-भक्षक प्रयोगों से जीवों में विकासीय परिवर्तन हो सकते हैं। लोटका-वोल्तेरा मॉडल की यह अभिधारणा है कि शिकार और परभक्षी जातियां नियत और अपरिवर्तनीय हैं।

परन्तु घरेलू मक्खी और परजीवी बर्र में 20 पीढ़ियों तक किए गए प्रयोगों ने परभक्षण की तीव्रता को कम करने के लिए स्पष्ट परिवर्तन दिखाए। संक्षेप में, हम यह मान सकते हैं कि परभक्षी अपने शिकार की बहुलता निर्धारित करते हैं और इसके विपरीत शिकार अपने परभक्षी की बहुलता निर्धारित करते हैं। और विकासीय परिवर्तनों के फलस्वरूप परभक्षी-शिकार संख्याओं में उतार-चढ़ाव होते हैं। आइए अब हम यह विचार करें कि क्या यह सामान्यीकरण प्रकृति में परिस्थितियों के लिए सच है।

11.5.2 क्षेत्र अध्ययनों में परभक्षण

हम कैसे पता लगा सकते हैं कि परभक्षी अपने शिकार निर्धारित करते हैं? तर्कसंगत बात यह होगी कि तंत्र से परभक्षियों को हटा दिया जाए और नतीजा देखा जाए। ऑस्ट्रेलिया में एक जंगली कुत्ता डिंगो भेड़ों पर हमला करता था। इसलिए डिंगों की जाति को मार डाला गया। इससे यह हुआ कि लाल कंगारू की आबादियां बढ़ गईं। तब यह निष्कर्ष निकाला गया कि डिंगो परभक्षण लाल कंगारुओं के घनत्व को सीमित करता है। हम संयुक्त राज्य अमेरिका की सुपीरियर झील में एक द्वीप पर मूज़ समष्टि का दूसरा उदाहरण लेते हैं।

ऐसा माना जाता है कि 1908 में इस द्वीप पर मूज़ के छोटे से समूह का आगमन हुआ। परभक्षी की अनुपस्थिति में मूज़ समष्टि तेजी से बढ़कर 1935 में 30,000 हो गई। यह संख्या वहां की वनस्पति के लिए बहुत ज्यादा साबित हुई, जिसके फलस्वरूप लगभग 90 प्रतिशत मूज़ भूखे रहने लगे और मर गए। संख्या कम हो जाने पर वनस्पति फिर जी उठी और इसमें

किसान अब उल्लुओं की संख्या बरकरार रखने के फायदों को समझने लगे हैं क्योंकि उल्लू कृंतकों (चूहे आदि) को पकड़ते हैं। अन्य उदाहरणों में पीड़क संख्या को नियंत्रित करने के लिए परभक्षियों को काम में लाया गया है। कौटनी कुशन स्केल ने कैलिफोर्निया के सिट्रस (नीबू वर्ग) उद्योग को खतरे में डाल दिया। यह रस चूसने वाला कीट है। इसका कौटनी-कुशन स्केल नाम मादा द्वारा पेड़ों की शाखाओं पर बड़े सफेद अंडे जमा करने के कारण पड़ा। इसके प्राकृतिक भक्षक सोनपंखी भृंग, *वेडेलिया* का निर्यात करके इस कीट को नियंत्रित किया गया।

मूज़ की संख्या भी बढ़नी शुरू हो गई और 1948 में 30,000 पर पहुंच गई तथा पुनः कम हो गई। 1949 में भेड़ियों का एक समूह द्वीप पर पहुंचा और मूज़ों का शिकार करने लगा। भेड़ियों ने अधिकांश रूप से बूढ़ों, कमज़ोरों और तरुणों को अपना निशाना बनाया। शीघ्र ही दो दर्जन भेड़ियों, 800 मूज़ और घास की एक स्वस्थ फसल का स्थायी संतुलन कायम हो गया।

यह उदाहरण दर्शाता है कि भक्ष्य-भक्षक संबंध से गतिक संतुलन बन सकता है। फिर भी, परभक्षियों द्वारा शिकार की समष्टि के नियंत्रण का कोई स्पष्ट प्रमाण व्यापक रूप से उपलब्ध नहीं है।

ऊपर दिये गये उदाहरण से ये स्पष्ट होता है कि परभक्षी को अपने लिये भोजन जुटाना ही है और उसके शिकार को भोजन बनने से बचना है। यदि ऐसा न हो, तो शिकार जाति लुप्त हो जाएगी और परभक्षी भूख से मर जायेंगे। यह स्थायी भक्ष्य-भक्षक संबंध किस तरह से कायम रह पाते हैं? यह माना जाता है कि प्राकृतिक वरण इनके कुछ गुणों को इस प्रकार बदल देता है जिससे कि उनकी आपसी प्रतिक्रियाएं समष्टि में स्थायित्व पैदा कर देती हैं।

समझदार परभक्षी वह है जो केवल बूढ़े, जनन में असमर्थ, कमज़ोर व तरुण अवस्था के व्यष्टियों का शिकार करता है क्योंकि एक समष्टि में तरुणों की मृत्यु-दर वैसे भी किसी न किसी कारणवश अधिक होती है। भेड़िये और मूज़ के उदाहरण में बहुत से मूज़ जो जनन में समर्थ हैं, पहले भेड़ियों द्वारा परखे जाते हैं और फिर इसलिये छोड़ दिये जाते हैं क्योंकि इन्हें पकड़ना आसान नहीं होता है।

परभक्षियों और शिकार का सहविकासीय अनुकूलन एक कीट घातक मत्कुण (assasin bug) और मरुस्थल कपूर खरपतवार (campher weed) के संबंध द्वारा सुन्दरता से चित्रित किया गया है। कपूर खरपतवार अपनी पत्तियों से एक चिपचिपा हानिकारक राल (रेजिन) टपकाती है। यह राल शाकाहारी परभक्षियों को हतोत्साहित करती है। घातक मत्कुण का उत्साह चिपचिपे सरेस से कम नहीं होता। मादा मत्कुण चिपचिपे पदार्थ को खुरच डालती है और अपने उदर पर मल लेती है और जब इसके अंडे बाहर आते हैं तो उन पर इसका लेप लगा लेती है। इसकी वजह से परभक्षियों के लिए अंडे अवांछित हो जाते हैं। कहानी यहीं पूरी नहीं होती। अंडेजोत्पत्ति के फौरन बाद तरुण मत्कुण अलग किए हुए अंडों के कवचों से सरेस को खुरच लेते हैं और इसे अपने अगले पांवों पर स्थानांतरित कर लेते हैं। अगले पांव पर लगी यह सरेस शिकार पकड़ने में मदद करती है। इन जटिल सहवास में, पौधों द्वारा विकसित किए गए सुरक्षा उपायों का मत्कुण द्वारा अपने परभक्षियों और शिकार के विरुद्ध उपयोग किया जाता है।

आपस में प्रतिक्रिया करने वाली दो या अधिक जातियों में विकासीय परिवर्तन अथवा **सहविकास** सबसे अधिक घनिष्टता से तभी होता है जब परभक्षी जाति, शिकार समष्टि पर नियंत्रण रखती है। कुछ भक्ष्य-भक्षक तंत्रों में, जहां परभक्षी शिकार की संख्या को नियंत्रित नहीं करते, विकासीय दबाव कम होता है। शायद इसी सह-विकास के कारण प्रकृति में अधिकतर स्थायित्व दिखाई देता है।

ऐसे परभक्षी जो अपने सारे शिकार को मार देते हैं बहुत कम समय के लिये कायम रह पाते हैं जिसके परिणामस्वरूप आज हमें अत्याधिक वरणात्मक भक्ष्य-भक्षक तंत्र देखने को मिलते हैं।

बोध प्रश्न 3

समुदाय में परभक्षण निम्नलिखित में से किसके द्वारा समष्टि को प्रभावित करता है :

क) शिकार समष्टि के वितरण को रोककर

ख) समुदाय के ढांचे को प्रभावित करके

ग) शिकार और परभक्षी समष्टियों में अनेक अनुकूलन का विकास करके

घ) उपरोक्त सभी

च) केवल (क) और (ख)

11.6 शाकाहारिता

शाकाहारिता भी एक विशेष प्रकार का परभक्षण है और इस भाग में हम शाकाहारियों और पौधों के कुछ बहुत विशिष्ट संबंधों की बात करेंगें। शाकाहारियों द्वारा पौधों के भक्षण में निष्पत्रण (defoliation) और फल तथा बीजों का उपभोग शामिल हैं। पौधों की पत्तियों, छाल, तनों और जड़ों आदि ऊतकों को नष्ट करना निष्पत्रण कहलाता है। हालांकि पौधे बने रह सकते हैं और उनका पुनरुद्भवन (regeneration) हो सकता है, फिर भी निष्पत्रण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पौधे का जीव-भार घट जाता है, पत्तियों के हटा देने से और कुछ जड़ों के मर जाने से पौधे का ओज, उसकी स्पर्धी योग्यता और उसकी स्वस्थता कम हो जाती है। जहां तक बीज भक्षण का सवाल है, अगर फैल रही पादप समष्टि में से केवल कुछ पौध बच जाती हैं तो परभक्षण का कोई वास्तविक प्रभाव नहीं होता। परन्तु अगर बीजों को फैल रही समष्टि से पूरी तरह से हटा दिया जाए तो बीज भक्षण से समष्टि की वृद्धि दर घट जाती है। दूसरी तरफ, अगर बीजों को खाया जाना उनके परिक्षेपण (dispersal) का एक साधन है तब परभक्षी शाकाहारियों के फायदे के लिए काम करते हैं। हम सभी यह बात समझते हैं कि पौधे चल नहीं सकते, इसलिए शाकाहारियों से "बचने" के लिए उनके कुशल अनुकूलनों के बारे में पढ़ें।

11.6.1 पौधों में प्रतिरक्षा साधन

कुछ पौधे परभक्षण को हतोत्साहित करने के लिए यांत्रिक साधन काम में लाते हैं। कैक्टस के पैने शूल (spines), गुलाब की झाड़ी में कांटे, बांज पेड़ों की चर्मिल (चमड़े जैसी) पत्तियां यांत्रिक साधनों के कुछ उदाहरण हैं। पौधे अपने बचाव के लिये कई प्रकार के रसायनक पदार्थ काम में लाते हैं। इस जानकारी को हमने हाल ही में सराहना शुरू किया है। ये रसायन **द्वितीयक पादप पदार्थ** कहलाते हैं। ये पदार्थ पौधों में प्राथमिक उपापचयी पथों के उपोत्पाद हैं।

द्वितीयक पादप पदार्थ अपशिष्ट या उत्सर्जी उत्पाद नहीं हैं बल्कि शाकाहारीरोधी घटकों के रूप में उनकी एक पारिस्थितिकीय भूमिका है और इनका टर्नओवर उपापचयी पूल में तेज़ी से होता है। इनमें से कुछ रसायन हमारे जाने-पहचाने हैं। जैसे कि दालचीनी और लौंग, फेनिलप्रोपेन्स हैं; पिपरमिंट तेल और कैटनिप टर्पिनाइड्स हैं; निकोटीन, अफीम, कैफीन ऐल्कलॉइड द्वितीयक पादप पदार्थ हैं।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि भक्ष्य-भक्षक पारस्परिक क्रियाओं की ही तरह विरोधी पादप-शाकाहारी पारस्परिक क्रियाओं का सह-विकास हुआ। इसके आधार पर एक सामान्य रक्षा सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। यह सिद्धांत इन पर्यवेक्षणों से किया गया है कि जीवों की स्वस्थता के संदर्भ में रक्षा उपाय कीमती हैं। यह कीमत ऊर्जा और पोषकों की दूसरी आवश्यकताओं से दिशा बदलने के कारण है और हम यह आशा कर सकते हैं कि शत्रुओं की अनुपस्थिति में ऐसे व्यष्टि जो कम अच्छी तरह से रक्षित हैं उनकी स्वस्थता ज्यादा अच्छी होगी। ऊपर के पर्यवेक्षणों से निम्नलिखित बातें निकलती हैं :

- अधिक परभक्षियों का नतीजा होता है अधिक रक्षा-साधन।
- जीवों के भीतर ही जोखिम में पड़े कीमती ऊतकों के लिए अधिक रक्षा उपाय उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए नव-विकसित पत्तियाँ और प्ररोह (shoots), बीज आदि।
- शत्रुओं की अनुपस्थिति में रक्षा साधन भी अनुपस्थित रहते हैं।
- अगर पौधों पर गंभीर रूप से पर्यावरणीय कारकों का दबाव पड़ता है तो रक्षा साधनों को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

पौधों में रक्षा-साधन दो प्रकार के हो सकते हैं :

1) **मात्रात्मक :** ये साधन सबसे मंहगे हैं और इन्हें आसानी से गतिशील नहीं बनाया जा सकता अर्थात् ये जहां बनते हैं वहीं पर स्थिर रहते हैं। ये विशेषज्ञ शाकाहारियों के विरुद्ध सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। पत्तियों की सतह के पास, छालों में और बीजों में सांद्रित टैनिन और राल इसके उदाहरण हैं। ये पत्ती-प्रोटीनों के साथ अपाच्य संकर बनाती हैं, आहारीय नाइट्रोजन के स्वांगीकरण की दर और आंत सूक्ष्मजीवों की पत्ती प्रोटीन को तोड़ने की योग्यता घटाती हैं तथा खाद्यता कम करती हैं।

2) **गुणात्मक :** निम्न सांद्रता (शुष्क भार के 2 प्रतिशत से कम) में उपस्थित ऐल्केलॉइड और साइनोजेनिक यौगिक इसके उदाहरण हैं। ये यौगिक उपापचय में हस्तक्षेप करते हैं। इन यौगिकों को कम लागत पर जल्दी से संश्लेषित किया जा सकता है। ये निम्न सांद्रता में प्रभावशाली हैं और आक्रमण स्थल पर सहजता से पहुंचाए जा सकते हैं। इन्हें पौधों में बढ़ रहे शीर्षों से पत्तियों, तनों, जड़ों और बीजों तक ले जाया जा सकता है और इन्हें बीजों से पौध तक स्थानांतरित किया जा सकता है। ये पौधों की सब तरह के पौधे खाने वाले शाकाहारियों से रक्षा करते हैं।

11.6.2 शाकाहारियों के प्रतिउपाय

जब पौधे रक्षा तंत्र विकसित करते हैं तो शाकाहारी भी कुछ न कुछ ऐसे उपाय विकसित करते हैं जो पौधों के रक्षा तंत्रों को नाकाम कर सकें। पौधों को हानिरहित बना देने की क्रियाविधि विकसित करके प्राणी उनके सुरक्षा साधनों पर विजय पाने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार, पौधों और प्राणियों का सह-विकास हो सकता है। आइए हम कुछ उदाहरणों की जांच करें। एक मिल्कवीड *(एस्क्लीपियस कुरासाविका)* होता है जिसमें एक रसायन होता है। यह रसायन कशेरूक प्राणियों के हृत्स्पंद यानी दिल की धड़कन पर प्रभाव डालता है इसलिये ढोर इसे नहीं खाते। लेकिन कुछ कीट जैसे कि जानी-पहचानी मोनार्क तितली के लार्वा इसे खाते हैं और उन पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तविकता यह है कि ये लार्वा विष को परभक्षण के लिए रासायनिक निवारक के रूप में अपने शरीर में एक ओर रख लेते हैं। चिड़ियां इन मिल्कवीड रखने वाली तितलियां का नहीं खातीं क्योंकि इनका स्वाद बुरा

दक्षिण अफ्रीका में अनेक आखेट रेंजों में, प्रत्येक सूखा ऋतु के दौरान हजारों कुडु मर जाते थे। कुडु, बारहसिंगा की एक किस्म है। इनके मरने का कारण अकेशिया (बबूल) की पत्तियां थीं। सामान्यतया अकेशिया कुडु के लिये खाद्य का प्राथमिक स्रोत है। और यह शाकाहारियों से अपनी रक्षा के लिए टैनिन बनाते हैं और सामान्य स्थिति में टैनिन के स्तर कुडु को नुकसान नहीं पहुंचाते। लेकिन सूखा पड़ने में या व्यापक चराई में पत्तियां टैनिन का यह उत्पादन बढ़ा देती हैं। और यह बढ़ा हुआ टैनिन कुडु की यकृत एंजाइमों को निष्क्रिय कर देता है। जब बारहसिंगें अकेशिया वृक्ष की चराई करते हैं, इसकी पत्तियां एथिलीन निकालती हैं। ऐसा लगता है कि एथिलीन दूसरे पेड़ों को अपना टैनिन उत्पादन बढ़ाने के लिए संकेत देती है। टैनिन उत्पादन में अल्पकालिक वृद्धि प्राकृतिक जनसंख्या नियमन साधन के रूप में कार्य करती है।

उष्ण कटिबंधी और उपोष्ण प्रदेशों में अकेशिया पेड़ों और झाड़ियों में चरने वाले जानवरों से बचने के लिए कांटे होते हैं। ऑस्ट्रेलिया में, जहां चारक नहीं हैं, अकेशिया की अधिकतर जातियों में कांटे नहीं हैं।

होता है। ऐसा उस दिल की धड़कन को प्रभावित करने वाले रसायन के कारण है जो तितलियों के ऊतक में संचित किया जाता है। इससे साफ ज़ाहिर होता है कि तितलियों ने रसायन से अप्रभावित रहने का और इसे संचित करने का साधन विकसित कर लिया है। इससे तितलियों को चिड़ियाओं से रासायनिक रक्षा मिल जाती है।

11.6.3 पादप-शाकाहारियों की पारस्परिक क्रियाएं

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, पादप-शाकाहारी पारस्परिक क्रिया भी परभक्षी-शिकार पारस्परिक क्रिया की तरह समझी जाती है जिसमें परभक्षी (प्राणी) को लाभ होता है और शिकार (पौधे) को हानि होती है। लेकिन जरूरी नहीं है कि सदा ही ऐसा हो। यह पारस्परिक क्रिया सहोपकारिक प्रकार की भी हो सकती है जिसमें दोनों को फायदा होता है।
चींटी-अकेशिया तंत्र में एक बहुत दिलचस्प उदाहरण देखने को मिलता है। अकेशिया के फूले हुए कांटे चींटियों को रहने के लिए जगह और खाने के लिए आहार देते हैं। (चित्र 11.10)। इसके बदले में जब भी कोई शाकाहारी पेड़ को खाने की कोशिश करता है तो चींटियां उस पर हमला बोलकर पेड़ की रक्षा करती हैं। इस प्रकार, चींटियां शाकाहारी से होने वाले विनाश को कम करती हैं और जीवित रक्षा साधन के रूप में काम करती हैं।

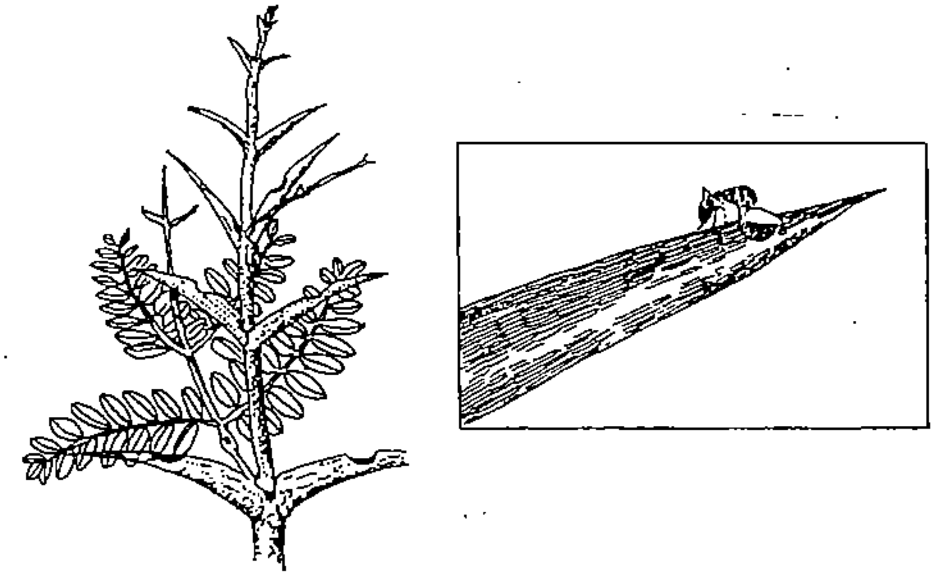

चित्र 11.10: पार्श्व शाखा पर अकेशिया के फूले हुए कांटे। हर कांटे पर 20-40 अपरिपक्व चींटियां और 10-15 कर्मी चींटियां रहती हैं।

पूर्वी अफ्रीका के मैदानों में चराई तंत्र का उदाहरण सर्वोत्तम है। पहले, प्रवासी ज़ेब्रा आते हैं और लम्बी घासों को खा जाते हैं। उसके बाद प्रवासी विल्डेबीस्ट का झुंड आता है जो छोटी ऊंचाई तक घासों को चर जाता है। इनके बाद बारी आती है कुरंगों (गज़ेल) की, जो सूखा ऋतु के दौरान छोटी घासों को खाते हैं। कुरंग घास आच्छद और शाक खाते हैं, विल्डेबीस्ट आच्छद और पत्तियों को खाते हैं तथा ज़ेब्रा घास को छोड़कर घास तने और आच्छद खा डालते हैं। स्पष्ट रूप से यह अशन भिन्नताओं का एक सुंदर उदाहरण है। तीनों शाहाकारियों के बीच कोई स्पर्धा नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि एक शाकाहारी जाति की अशन गतिविधि दूसरी जाति के लिए उपलब्ध खाद्य आपूर्ति को सुधारती है। यही चराई सरलीकरण या सुविधाकरण (grazing facilitation) कहलाता है। फिर भी, ऊपर बताए गए प्रदेश में घास के लिए कुछ अलग प्रकार के शाकाहारियों में स्पर्धा होती है। खुर वाले बड़े-बड़े प्राणियों के अलावा टिड्डे, कृतक (चूहे आदि) होते हैं जो इस स्पर्धा में शामिल हैं। यह स्पष्ट है कि ऐसे तंत्र का वर्णन करते हुए हमें अनेक प्रकार के शाकाहारियों की उपस्थिति का हमेशा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि हमें संपूर्ण पादप-शाकाहारी तंत्र की कार्य-प्रणाली के लिए शाकाहारियों के योगदान को भी जानना चाहिए।

बोध प्रश्न 4

i) खाली जगह पर सही शब्द भरिये :
द्वितीयक यौगिक .... द्वारा संश्लेषित अणु हैं और .... के लिए हानिकारक हैं। यौगिक को .... करके या .... द्वारा शाकाहारी

द्वितीयक यौगिक के प्रति सहनशील बन जाता है।

ii) पौधों के लिए रक्षा साधन क्रीमती क्यों है?

....

....

....

11.7 सारांश

- भौतिक पर्यावरण के भीतर कार्यशील जीवों में स्पर्धा, परभक्षण और सहजीविता द्वारा समुदाय संगठित किए जा सकते हैं। सामुदायिक पारिस्थितिकी में आवास और निकेत दो महत्वपूर्ण संकल्पनाएं हैं। आवास वह है, जहां जीव रहता है और निकेत उस जीव की समुदाय में प्रकार्यात्मक भूमिका है।
- समुदाय में जातियां खाद्य जाल और समूहों अथवा संघों (गिल्ड) में संगठित होती हैं, जो एक साझा संसाधन आधार का प्रयोग करते हैं। कीस्टोन जातियां वे जातियां हैं, जो समुदाय के ढांचे को निर्धारित कर सकती हैं और जो निष्कासन प्रयोगों द्वारा पहचानी जा सकती हैं। प्रमुख जातियां वे हैं, जिनकी समुदाय में अधिकतम बहुलता होती है या अधिकतम जीवभार होता है और जो समुदाय के स्थायित्व को प्रभावित कर सकती हैं।
- विक्षोभ के बाद किसी तंत्र की वापस अपनी मौलिक अवस्था में लौट आने की योग्यता उसका स्थायित्व कहलाता है। क्षेत्र अथवा प्रयोगशाला अध्ययनों से इस पारिस्थितिकीय सामान्यीकरण की पुष्टि नहीं होती कि विविधता से स्थायित्व आता है।
- सामुदायिक संगठन के बारे में दो विरोधी धारणाएं हैं। साम्य परिकल्पना बताती है कि प्राकृतिक समुदाय स्थायी हैं और असाम्य परिकल्पना समझाती है कि समुदाय कभी भी स्थायी नहीं होते और इनका हमेशा विक्षोभों से उद्धार होता है। जिन समुदायों को सामान्य विक्षोभों का सामना करना पड़ता है, उनमें जातियों की अधिक बहुलता बनी रहती है।
- समुदाय के जीव कई तरीकों से परस्पर क्रिया कर सकते हैं, जिसे ऋणात्मक, धनात्मक या निष्प्रभावी पारस्परिक क्रियाओं के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। संसाधनों को लेकर स्पर्धा होती है। सैद्धांतिक मॉडल दर्शाते हैं कि एक जैसी जातियों के बीच स्पर्धा के मामले में एक जाति विस्थापित की जा सकती है या दोनों स्थायी साम्यावस्था में पहुंच सकती हैं। विस्थापन की संभावना ने स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत को जन्म दिया। इसके अनुसार, संपूर्ण प्रतियोगियों का सह-अस्तित्व नहीं हो सकता है। जातियां एक ही समुदाय में केवल तभी साथ-साथ रह सकती हैं जब उनके निकेत थोड़े से भिन्न हों। बढ़ती हुयी निकेत अतिव्याप्ति के साथ-साथ स्पर्धा की तीव्रता बढ़ जाती है।
- स्पर्धा का नतीजा संसाधन का बंटवारा और आनुवांशिक गुणों में विस्थापन है। जीव संसाधनों के अधिक दक्ष उपयोग द्वारा और व्यतिकरण क्रियाविधियों द्वारा स्पर्धी योग्यता विकसित करते हैं। व्यतिकरण क्रियाविधि स्पर्धा करने वाली जातियों को एक जैसे संसाधनों को काम में लाने से रोकती है।
- जातियां परभक्षण द्वारा परस्पर क्रिया कर सकती हैं। गणितीय मॉडल परभक्षी और शिकार संख्याओं का नियमित दोलन सुझाते हैं। इसकी पुष्टि प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों से होती है। प्रयोगशाला तंत्र कम पीढ़ियों में अधिकाधिक स्थायित्व की तरफ धीरे-धीरे विकासीय परिवर्तन दर्शाते हैं। प्रकृति में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जो यह सुझाते हैं कि परभक्षण शिकार की संख्या को नियंत्रित करना चाहता है लेकिन इसमें दूसरे पर्यावरणीय कारक भी शामिल हैं। भक्ष्य-भक्षक तंत्र में हमेशा एक सह-विकासीय प्रजाति शामिल है। जिस तरह परभक्षी शिकार पकड़ने के लिए अनुकूलित हैं, इसी तरह शिकार भी परभक्षियों से बच निकलने के लिए अनुकूलित हैं। जब शिकार को परभक्षियों से सुरक्षित आश्रय मिल जाता है या जब परभक्षी समझदार होते हैं और उन बूढ़े अथवा तरुण प्राणियों का शिकार करते हैं, जिनमें जनन का मामूली सा महत्व है, तब ये तंत्र स्थायी बन जाते हैं।
- शाकाहारिता एक विशेष प्रकार का परभक्षण है, जिसमें पौधे और शाकाहारी शामिल हैं। पौधों ने विशेष प्रकार के संरचनात्मक और रासायनिक रक्षा साधन विकसित कर लिए हैं। ये शाकाहारियों को हतोत्साहित करते हैं कि उन्हें न खाएं। द्वितीयक पादप पदार्थ

शाकाहारियों के विरुद्ध रासायनिक रक्षा साधन हैं। शाकाहारियों ने भी इसके लिए तरकीब ढूंढ़ ली है। उन्होंने निराविषकारी (detoxifying) एन्ज़ाइम विकसित कर लिया है या अपने जीवन चक्र को इस प्रकार समयानुकूल ढाल लिया है कि रासायनिक खतरों से बच सकें। शाकाहारी प्राणी पौधों के लिए प्रतियोगिता या स्पर्धा कर सकते हैं, पर वह एक दूसरे की मदद भी कर सकते हैं, जैसे कि कुछ उदाहरणों में चराई से पादप उत्पादन बढ़ सकती है।

11.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) उपयुक्त सामुदायिक पारस्परिक क्रियाओं से खाली जगह भरिए :

जीव पारस्परिक क्रियाएं–
- दोनों अप्रभावित रहती हैं .... (क)
- दोनों को हानि होती है .... (ख)
- एक की हानि होती है .... (ग)
- .... (घ)
- एक को लाभ होता है .... (च)
- एक को फायदा पहुंचता है, एक अप्रभावित रहता है .... (छ)
- दोनों को फायदा होता है .... (ज)

2) किसी द्वीप पर पक्षियों की निकट रूप से संबंधित दो जातियां देखी गयी हैं, जिनमें से एक की चोंच दूसरी से थोड़ी-सी बड़ी है। स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत और पारिस्थितिकीय निकेत को परिभाषित करते हुए दोनों के संदर्भ में इस खोज की व्याख्या कीजिए।

....
....
....
....
....
....

3) यह जानते हुए भी कि कुछ जानवर जैसे कि जंगली कुत्ते कभी-कभी फार्म पशुओं का भी शिकार करते हैं, आप उन्हें न मारने की सिफारिश क्यों करेंगे?

....
....
....
....
....

4) प्राणियों द्वारा पौधों के बीज और फलों का भक्षण पत्तियों और तनों के भक्षण से कैसे भिन्न है?

....
....
....
....
....
....

11.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) गलत, एक संघ (गिल्ड) में जातियों के समूह हो सकते हैं, जो कि वर्गीकरणात्मक रूप से संबंधित भले ही न हों, लेकिन जिनकी समुदाय में एक जैसी या तुलनायोग्य अशनकारी भूमिकाएं होती हैं।
   ii) सही
   iii) गलत। आवास उस स्थान का वर्णन करता है, जहां कि कोई जीव मिलता है। लेकिन निकेत में जीव जिस भौतिक स्थान पर रहता है, उसके साथ-साथ समुदाय में जीव की प्रकार्यात्मक भूमिका भी शामिल है।
   iv) सही
   v) गलत। विक्षोभ के बाद समुदाय द्वारा वापस अपनी मौलिक अवस्था में लौट आने की योग्यता समुदाय में स्थायित्व कहलाती है।

2) i) निकेत ii) (क) संघर्षी (ख) व्यतिकरणीय
   iii) बंटवारा, गुण विस्थापन

3) घ)

4) i) पौधे, प्राणी, निराविषकारी, संचय
   ii) मूल्यवान पोषकों की वृद्धि और जनन से हटाकर दूसरी ओर मोड़ दिए जाने के कारण पौधों के लिये रक्षा साधन कीमती या मंहगे पड़ते हैं।

अंत में कुछ प्रश्न

1) क) निष्प्रभाविता, ख) स्पर्धा, ग) परभक्षण
   घ) परजीविता, च) शाकाहारिता, छ) सहभोजिता
   ज) सहोपकारिता

2) स्पर्धी अनन्यता सिद्धांत के अनुसार कोई भी दो जातियां एक ही निकेत में नहीं रह सकतीं। अगर निकट रूप से संबंधित जातियों को जीवित बचे रहना है तो उन्हें अपने निकेतों में भिन्नता लानी होगी, भले ही यह भिन्नता कितनी ही थोड़ी-सी क्यों न हो। पारिस्थितिकीय निकेत से अर्थ जीव द्वारा पारितंत्र में निभाई गई भूमिका से है। यह जीव की भौतिक और जैविक आवश्यकताओं को परिभाषित करता है। पक्षियों की संबंधित जातियों के सह-अस्तित्व का कारण यह है कि उनके निकेत का एक भाग अर्थात् चोंच के साइज भिन्न हैं। इसकी वजह से वे एक ही खाद्य संसाधन का प्रयोग नहीं कर सकतीं।

3) प्रकृति में भक्ष्य-भक्षक समष्टियां अकसर दोलन दर्शाती हैं। परभक्षी, शिकार की संख्या को नियंत्रित रखने में मदद लेते हैं। अगर सभी जंगली कुत्ते हटा दिए जाएं तब कृतक (चूहे आदि), खरगोश आदि जातियां जो कुत्तों के प्राकृतिक शिकार हैं, जबरदस्त तरीके से बढ़ जाएंगी और खाद्य फसलों को क्षति पहुंचाएंगी।

4) प्राणियों द्वारा फलों और बीजों के भक्षण से पौधे का विलोपन नहीं होता। इसका कारण यह है कि अगर कुछेक बीज बचे रहते हैं तो नए पौधे निकल आते हैं। बीज और फलों के उपभोग प्रायः परिक्षेपण का साधन हैं और वस्तुतः पौधे के लिए लाभकारी हैं। दूसरी ओर, पत्तियों और प्ररोहों के भक्षण का नतीजा निष्पत्रण, स्पर्धी योग्यता और ओज की हानि तथा पौधे की स्वस्थता में कमी होनी है।

इकाई 12 समष्टि प्राचल एवं नियमन

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
    उद्देश्य
12.2 व्याख्या
    सघनता
    जन्म-दर
    मृत्यु-दर
    समष्टि परिक्षेपण
    आयु वितरण
    समष्टि वंटन
12.3 समष्टि वृद्धि
    जीवीय विभव को प्रभावित करने वाले कारक
    वहन क्षमता
12.4 समष्टि नियमन
    सघनता निर्भर कारक
    सघनता निरपेक्ष कारक
12.5 समष्टि में अनुवांशिक विविधता
12.6 प्राकृतिक नियमन के विकास संबंधी परिणाम
12.7 सारांश
12.8 अंत में कुछ प्रश्न
12.9 उत्तर

12.1 प्रस्तावना

इकाई 11 में आपने पढ़ा कि समुदाय बनाने वाले जीव किस प्रकार परस्पर क्रिया करके समुदायों की रचना करते हैं। आपने परभक्षण, स्पर्धा और सहजीविता आदि अंतराजातीय परस्पर क्रियाओं के बारे में भी पढ़ा है। इस इकाई में आप समष्टि यानि एक ही जाति के जीव के समूह के बारे में पढ़ेंगे, जो एक समय में एक जगह में रहते हैं। समष्टि की कई विशेषताएं हैं, जो जीव समूह के विशिष्ट गुण तो होती हैं, मगर समूह के अलग-अलग जीवों की नहीं होतीं। यहां हम इनमें से कुछ गुणों पर चर्चा करेंगे, जैसे सघनता, जन्म-दर, मृत्यु-दर, आयु वितरण, जीवीय विभव, परिक्षेपण और वृद्धि। यह भी मालूम है कि समष्टि में अनुवांशिक गुण भी होते हैं, जिनका सीधा संबंध उनके पारिस्थितिक तंत्र से होता है, जैसे—अनुकूलन क्षमता, प्रजनन क्षमता, स्थायित्व आदि। यहां स्थायित्व का मतलब लम्बे समय तक नए जीव पैदा करने की या वंश चलाने की संभावना क्षमता से है। इसके अलावा आप समष्टि प्राचल, जनसांख्यिकीय विधियों, समष्टि नियमन के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों और प्राकृतिक नियमन के विकास संबंधी परिणामों के बारे में भी पढ़ेंगे। अगले खंड में आपको पर्यावरण के संदर्भ में मानव विकास और मानव जनसंख्या के बारे में जानने को मिलेगा। पारिस्थितिक तंत्र के प्रदूषण, ह्रास और एक बेहतर पर्यावरण के लिए नैतिक जरूरतों के बारे में भी अगले खंड में बताया जाएगा।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- समष्टि की व्याख्या कर लेंगे और सघनता, जन्म-दर, मृत्यु-दर, परिक्षेपण, आयु वितरण को अच्छी तरह समझ लेंगे,
- यह समझा सकेंगे कि समष्टि का बुनियादी गुण वृद्धि करना होता है, जो हमारे पर्यावरण की वहन क्षमता से सीमित होती है और समष्टि का आकार विभिन्न सघनता निर्भर व सघनता निरपेक्ष कारकों द्वारा नियमित होता है,
- मानव जाति और प्रकृति के भविष्य में बने रहने के लिए अनुवांशिक विविधता के महत्व और किस तरह प्राकृतिक नियमन की प्रणालियों पर विकासीय बदलावों का असर पड़ता है, समझा सकेंगे।

12.2 व्याख्या

जैसा कि आप इकाई 1 में पढ़ चुके हैं, समष्टि किसी एक जाति के जीवों के समूह को कहते हैं, जो किसी एक खास समय में किसी खास जगह में रह रहे हों, जैसे—किसी जंगल में रहने वाले सभी हिरण या वहां पाए जाने वाले चीड़ के वृक्ष। समूह को घेरे रहने वाली सीमा को बढ़ा या घटा कर हम विश्व, भारत या दिल्ली की जनसंख्या की भी बात कर सकते हैं। अंत: प्रजनन करने वाले जीव समष्टि के घटक तथा एक जीन कोश (gene pool) के सदस्य होते हैं। जीन कोश किसी भी समष्टि के सभी गुणसूत्रों या जीनों का कुल जोड़ है। समष्टि को डीम या स्थानीय समुदायों में बांटा जा सकता है। डीम अंत: प्रजनन (interbreeding) करने वाले जीवों या व्यष्टियों के सबसे छोटे समूह या इकाइयां हैं। आप डीम या समुदायों के बारे में इस पाठ्यक्रम के खंड 1 की इकाई 1 में पढ़ ही चुके हैं।

हमने मानव आबादी के लिए जनसंख्या तथा अन्य जीवों की आबादी के लिए समष्टि शब्द का प्रयोग किया है। किसी भी समष्टि में जीवों को व्यष्टि भी कहा जाता है।

समष्टि के कई समूहगत गुण या विशेषताएं होती हैं। ये गुण समष्टि के सांख्यिकीय माप या पैमाने तो हैं पर ये व्यष्टियों के गुण नहीं होते। ये समूहगत गुण यानि विशेषताएं हैं : सघनता, जन्म-दर, मृत्यु-दर, आप्रवासन (immigration) और उत्प्रवासन (emigration), आयु वितरण, परिक्षेपण, समष्टि बंटन, वृद्धि नियमन और आनुवांशिक गठन। सघनता या समष्टि का आकार इसका बुनियादी गुण है तथा जन्म-दर, मृत्यु-दर, आप्रवासन और उत्प्रवास आदि अन्य समूहगत गुणों से प्रभावित होता है। समष्टि की सघनता में कोई बदलाव होने का मतलब इन चार में से किसी एक या अधिक गुणों में परिवर्तन होना है। इन कारकों में संबंध इस प्रकार होता है :

आप्रवासन
↓ (+)
जन्म-दर (+) → समष्टि की सघनता (-) → मृत्यु-दर
↓ (-)
उत्प्रवासन

इन समूहगत गुणों या समष्टि प्राचलों का अध्ययन, उनमें समय-समय पर होने वाले बदलाव और आगे होने वाले बदलावों की पूर्व सूचना देना, जनसांख्यिकी (demography) कहलाता है। इन आंकड़ों का परिमाणात्मक अध्ययन करने की विधियों को जनसांख्यिकीय विधि (demographic techniques) कहा जाता है। आगे हम समष्टि के विभिन्न प्राचलों या गुणों के बारे में चर्चा करेंगे।

12.2.1 सघनता

किसी समय पर प्रति इकाई क्षेत्रफल या आयतन में जीवों की संख्या या समष्टि में जीवों के बायोमास (biomass of the population) को समष्टि की सघनता कहते हैं। बायोमास किसी क्षेत्र विशेष में सभी जीवों या एक खास समूह के जीवों का कुल भार होता है। जब किसी समष्टि में जीवों का आकार बदलने वाला हो तो सघनता को प्राय: बायोमास के रूप में व्यक्त किया जाता है। प्रति इकाई क्षेत्रफल में जीवों की संख्या या बायोमास की माप को स्थूल सघनता (crude density) कहा जाता है। मगर समष्टियां प्रति इकाई क्षेत्रफल में सभी जगह को नहीं घेरतीं। वह इसलिए कि पूरा क्षेत्र एक उपयुक्त या सही आवास स्थान नहीं हुआ करता है। हर जीव सिर्फ ऐसी जगह में ही रहेगा, जहां उसकी सभी जरूरतें पूरी हो सकें। इस कारण से समष्टि का वितरण अलग-अलग जगहों में टुकड़ों में होता है। भले ही कोई आवास कितना ही समरूप क्यों न दिखाई दे, वह समान रूप से रहने योग्य नहीं होता। कभी-कभी तो यह असमानता प्रकाश, नमी, तापमान इत्यादि में सूक्ष्म अंतरों के कारण भी हो जाती है। अत: पूरे क्षेत्र के केवल रहने योग्य स्थान को प्रति इकाई क्षेत्रफल मान कर मापी गई सघनता को पारिस्थितिकीय सघनता (ecological density) कहते हैं।

उदाहरण के लिए, किसी दिए गए क्षेत्रफल में बकरी की जनसंख्या 500 प्रति हैक्टेयर हो सकती है। मगर आदमी के बसने, पेड़-पौधों की कमी या भोजन की कमी आदि, कई तरह के कारणों की वजह से बकरियाँ पूरे क्षेत्रफल का इस्तेमाल नहीं कर सकतीं। एक एकड़ में 50 आम के पेड़, पानी के एक घन मीटर में 50 लाख डायटम, पानी की सतह के प्रति एकड़ में 200 पौंड मछलियाँ, प्रतिवर्ग किलोमीटर में सैकड़ों व्यक्तियों की संख्या जैसा कि आजकल के शहरों में देखने में आता है, इत्यादि अन्य उदाहरण हो सकते हैं। इन उदाहरणों से हमें विभिन्न समष्टियों की सघनता की सीमा का पता चलता है। अब जिस विधि से हम बकरियों

की समष्टि सघनता बखूबी निकाल लेते हैं, उसे हम डायटम के लिए प्रयोग नहीं कर सकते। इसलिए किसी भी जीव की समष्टि सघनता मापने की विधि का चुनाव मनुष्य की तुलना में उस जीव के आकार और गति द्वारा प्रभावित होता है। हम यहाँ संक्षेप में कुछ विधियों के बारे में बताएँगे।

1) समग्र गणना

किसी क्षेत्र में कितने जीव रहते हैं, यह जानने का सबसे सीधा तरीका उनकी गिनती करना है। बड़े या सुस्पष्ट जीवों या समूहों में एकत्र होकर रहने वाले जीवों में समग्र गणना (total count) का यह तरीका आसानी से काम में लाया जा सकता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण मानव की संख्या की गणना है। इसमें एक निश्चित अवधि के बाद लोगों की गणनाएं की जाती है। हाल ही में भारत में जनगणना की गई थी जिसमें पहली मार्च, 1991 को जनसंख्या 843,930,861 के लगभग थी। अन्य उदाहरणों में किसी क्षेत्र विशेष के पक्षियों में गाने वाले नर पक्षियों की गिनती की जा सकती है। उत्तरी ध्रुव में पाई जाने वाली फरदार सील जैसे जंतुओं की गणना तब की जा सकती है, जब वे प्रजनन समूहों (breeding colonies) में इकट्ठा हो जाते हैं। छोटे क्षेत्रफल में बड़े पौधों की गिनती समग्र रूप में की जा सकती है।

2) प्रतिचयन

प्रतिचयन विधि (sampling method) में समष्टि के एक छोटे भाग की यानि कुछ व्यष्टियों की नमूने (sample) के रूप में गिनती की जाती है और इस नमूने से पूरी समष्टि की गणना आँकी जाती है। प्रतिचयन द्वारा गणना दो प्रकार से की जाती है। आइए पढ़ें कि ये तरीके क्या हैं।

क्वाड्रेट या वर्ग जालिका नमूने के लिए लिया जाने वाला किसी भी आकृति का क्षेत्र है। हालांकि इस शब्द का मतलब चार किनारों वाली बनावट से है, पारिस्थितिकी के अध्ययन में इसका प्रयोग वृत्ताकार सहित हर तरह की आकृति के क्षेत्रों के लिए किया जाता है।

क्वाड्रेट का प्रयोग : इसमें जीवों की औसत सघनता जानने के लिए एक ही आकार के कई वर्ग जालिकाओं या क्वाड्रेट (quadret) में जीवों की गिनती की जाती है या उनका भार लिया जाता है। ये वर्ग या क्वाड्रेट निश्चित संख्या तथा निश्चित आकार के भूखंड (plot) या ट्रांसेक्ट होते हैं। अब प्रति क्वाड्रेट इस सघनता से पूरे क्षेत्रफल के लिए सघनता की गणना की जाती है। उदाहरण के लिए अगर आपको मिट्टी के 0.01 वर्ग मीटर क्षेत्रफल के किसी सैम्पल या नमूने में 9 भृंग कीड़े मिलें तो इस संख्या के आधार पर इस क्षेत्र के एक वर्ग मीटर में 900 कीड़े माने जाएँगे, जो उनकी सघनता कहलाएगी। एक अन्य उदाहरण में जैसा कि चित्र 12.1 में दिखाया गया है 37 छह भुजीय वर्ग क्वाड्रेट में 30 व्यष्टि (कनखजूरे) हैं। उनकी औसत सघनता इस प्रकार होगी :

$$\frac{30 \text{ जीव}}{37 \text{ क्वाड्रेट}} = 0.811 \text{ व्यष्टि/क्वाड्रेट}$$

चूँकि हरेक क्वाड्रेट की माप 0.08 वर्ग मीटर है, अतः ज्ञात सघनता 10.1 जीव प्रति वर्ग मीटर होगी। कनखजूरों (centipedes) के प्रतिचयन से इस समष्टि सघनता को 1967 में इंग्लैंड में लायड ने ज्ञात किया था।

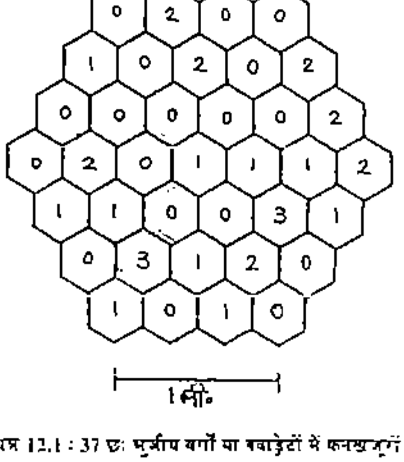

चित्र 12.1 : 37 छः भुजीय वर्गों या क्वाड्रेटों में कनखजूरों का प्रतिचयन। गणना करने पर सघनता 10.1 जीव निकली। प्रति वर्ग मीटर

पादप पारिस्थितिकी में क्वाड्रेट का बहुत प्रयोग किया जाता है। वृक्षों या पौधों के प्रतिचयन के लिए यह विधि सबसे आम है। एक क्वाड्रेट में पहले पुराने पेड़ों का प्रतिचयन करके और फिर नई पौध (seedlings) का प्रतिचयन करके हम यह पता लगा सकते हैं कि आने वाले

समय में समष्टि में कोई बदलाव होगा या नहीं। जंगल में पेड़ों व पौधों की संख्या का पता लगाने के लिए वनाधिकारियों ने कई तरह की क्वाड्रेट प्रतिचयन की मौलिक तथा ऊतम विधियां निकाली हैं।

प्रग्रहण-पुनरप्रग्रहण विधि

प्रग्रहण-पुनरप्रग्रहण विधि (capture-recapture method) में किसी समष्टि के व्यष्टियों का प्रग्रहण (capture) करके उनका अंकन करके उन्हें मुक्त कर दिया जाता है। इसके बाद व्यष्टियों को फिर पुनरप्रग्रहण (recapture) किया जाता है। पुनरप्रग्रहीत नमूनों में अंकित या ठप्पे लगे व्यष्टियों की संख्या से समष्टि सघनता मालूम करने में मदद मिलती है :

$$\frac{\text{कुल समष्टि में अंकित सदस्य}}{\text{कुल समष्टि संख्या}} = \frac{\text{पुनरप्रग्रहित नमूने में अंकित सदस्य}}{\text{नमूने में प्रग्रहीत कुल सदस्य}}$$

अगर कोई समष्टि प्रग्रहण, अंकन और पुनरप्रग्रहण के दौरान आकार में नहीं बदलती तो उसे संवृत या बंद समष्टि माना जाता है और अगर कोई समष्टि अध्ययन के दौरान आकार में बदलती है तो उसे विवृत या मुक्त कहा जाएगा। असल में समष्टियां साफ तौर पर मुक्त होती हैं, अगर हम बहुत ही छोटी अवधि के लिए नमूने लेकर उनका प्रतिचयन न करें।

उदाहरण के लिए, अगर किसी समष्टि के 100 सदस्यों को अंकित किया गया और 100 सदस्यों के पुनरप्रग्रहीत नमूने में से 10 सदस्य अंकित या ठप्पे लगे पाए जाते हैं तो समष्टि संख्या इस प्रकार होगी :

$$\frac{100}{P} = \frac{10}{100}$$

इसलिए कुल समष्टि (P) में 1000 सदस्य होंगे। प्रग्रहण-पुनरप्रग्रहण विधि समष्टि के विवृत या मुक्त (open) होने पर ज्यादा कारगर नहीं है। विवृत या मुक्त समष्टि की सघनता मृत्यु और उत्प्रवास (बहिर्गमन) के कारण बड़ी तेज़ी से बदलती रहती है। इस विधि को जंतु पारिस्थितिकी में तितलियों, घेंघें, छिपकलियों, चिड़ियों इत्यादि गतिशील और साफ दिखाई देने वाले जंतुओं की समष्टि की गणना के लिए काम में लाया जाता है।

आगे पढ़ने से पहले आप निम्न बोध प्रश्न का उत्तर लिखें, ताकि आप यह जान सकें कि आप सघनता का सिद्धांत समझ पाए हैं या नहीं।

बोध प्रश्न 1

कॉलम 1 में दिये गए कथनों का कॉलम 2 से मिलान करिए।

कॉलम 1	कॉलम 2
क) पारिस्थितिकीय सघनता	i) ऐसी समष्टियों में कारगर नहीं हैं, जिनकी सघनता तेजी से बदलती रहती है।
ख) प्रतिचयन विधि	ii) आवास या रहने योग्य स्थान के रूप में प्रति इकाई क्षेत्रफल सघनता
ग) प्रग्रहण-पुनरप्रग्रहण विधि	iii) समष्टि के एक छोटे भाग की गिनती की जाती है और उससे पूरी समष्टि की गणना की जाती है।
घ) क्वाड्रेट	iv) औसत सघनता को एक ही आकार के भू-खंडों की मदद से मालूम किया जाता है।

अभी तक आपने समष्टि के पहले महत्वपूर्ण प्राचल या पैरामीटर (parameter), सघनता के बारे में पढ़ा। समष्टि अध्ययन के लिए इस पर सबसे पहले ध्यान दिया जाता है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र पर समष्टि का प्रभाव व्यष्टियों के प्रकार और उनकी संख्या पर निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर एक कौवा 10 एकड़ के खेत की फसल पर कोई असर नहीं डाल सकता मगर 100 कौवे ज़रूर ही असर डालेंगे। अब हम समष्टि के दूसरे गुण या प्राचल जन्म-दर पर चर्चा करेंगे, जो उसकी सघनता को प्रभावित करती है।

12.2.2 जन्म-दर

जन्म-दर एक पारिस्थितिकीय अवधारणा है, जिसका मतलब समय की किसी अवधि के दौरान पैदा हुई संतानों की संख्या है। निषेचन क्षमता (fertility) एक शरीरक्रियात्मक अवधारणा है, जिससे यह पता चलता है कि जीव में प्रजनन करने की क्षमता है।

जन्म-दर (natality) से समष्टि में वृद्धि होती है। जन्म-दर का मतलब जन्म, स्फुटन (hatching) अंकुरण या विखंडन (fission) से नए जीवों का पैदा होना है। पारिस्थितिक और भौतिक कारकों की आदर्श स्थिति में नए जीवों की अधिकतम पैदाइश हमेशा सिद्धांतगत होती है और उसे अधिकतम जन्म-दर (maximum natality) कहा जाता है। यह वृद्धि समष्टि विशेष में हमेशा स्थिर या एक सी ही होती है। मगर किसी भी पर्यावरणीय स्थिति में किसी समष्टि में जो वास्तविक वृद्धि होती है उसे वास्तविक या पारिस्थितिक जन्म-दर (realised or ecological natality) कहते हैं। यह वृद्धि स्थिर नहीं होती और समष्टि के

व्यष्टियों की संख्या तथा समष्टि के गठन, यानि किसी एक खास समय में प्रजनन आयु की मादाओं की संख्या, के साथ बदलती रहती है। यह समष्टि के आवास स्थान के भौतिक पर्यावरणीय स्थितियों के बदलने पर भी बदल जाती है। उदाहरण के लिए मानव संख्या के लिए वास्तविक जन्म-दर बच्चे पैदा कर सकने की आयु तक पांच साल में एक बच्चा प्रति महिला हो सकती है, जबकि अधिकतम जन्म-दर हर नौ से ग्यारह महीने एक बच्चा प्रति महिला है।

जन्म-दर पैदा हुए जीवों की संख्या को इकाई समय मे भाग देकर निकाली जाती है। इसे निम्न तरीके से लिखा जाता है :

Δ (डेल्टा) चिह्न किसी चीज में बदलाव का संकेत है। इसे किसी अक्षर के आगे लिखने से यह पता चलता है कि वह वस्तु परिवर्तनशील है।

$$\text{जन्म-दर} = \frac{\Delta Nn}{\Delta t}$$

ΔNn = समष्टि में पैदा हुए नए जीवों की संख्या है।

Δt = इकाई समय है।

जन्म-दर प्रति इकाई समष्टि में प्रति इकाई समय में पैदा हुए नए जीवों की संख्या से भी निकाली जा सकती है।

इसे विशिष्ट जन्म-दर भी कहा जाता है और इस प्रकार व्यक्त किया जाता है :

$$\text{प्रति इकाई समष्टि की में जन्म-दर} = \frac{\Delta Nn}{N \Delta t}$$

यहां N कुल समष्टि या फिर समष्टि का प्रजनक हिस्सा, यानि मादाओं की संख्या हो सकती है। उदाहरण के लिए उच्च वर्गीय जंतुओं में जन्म-दर प्रति मादा निर्धारित होती है। जन्म-दर शून्य या धनात्मक होती है, मगर ऋणात्मक कभी नहीं होती।

जन्म-दर का माप या उसकी गणना जीव के प्रकार पर काफी ज्यादा निर्भर करती है। कुछ जातियाँ एक साल में केवल एक बार प्रजनन करती हैं, कुछ कई बार और कुछ अन्य लगातार प्रजनन करती हैं। कुछ काफी बीज या अण्डज पैदा करती हैं, जबकि दूसरे कुछ केवल गिने-चुने ही पैदा करती हैं। उदाहरण के लिए एक सीप (oyster) 5.5 करोड़ से 11.4 करोड़ अंडे दे सकती है, जबकि पक्षी एक से बीस तक अंडे देते हैं। विशिष्ट जन्म-दर भी समष्टि में विभिन्न आयु समूह वाले व्यष्टि जीवों में अलग-अलग होती है। उदाहरण के तौर पर, खरगोशों की समष्टि में एक से दो साल की मादाओं में विशिष्ट जन्म-दर प्रति मादा औसतन 4 नवजात खरगोश प्रतिवर्ष है जबकि एक साल से कम उम्र की मादाओं में यह दर औसतन 1.5 है। जन्म-दर चूंकि समष्टि से जुड़ी धारणा है, न कि अलग-अलग जीवों से, इसलिए जन्म-दर का पता लगाने के लिए व्यष्टियों की औसत प्रजनन क्षमता ली जानी चाहिए न कि अधिक प्रजनक या कम प्रजनक जीवों की क्षमता।

12.2.3 मृत्यु-दर

किसी समष्टि में एक सदस्य जीव की मृत्यु को मृत्यु-दर कहते हैं। जन्म-दर की तरह मृत्यु-दर को भी प्रति इकाई समय में मरने वाले सदस्य जीवों की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है। विशिष्ट मृत्यु-दर भी प्रति इकाई समष्टि में व्यक्त की जाती है। जन्म-दर की तरह ही मृत्यु-दर भी संभाव्य या पारिस्थिकीय हो सकती है। संभाव्य मृत्यु-दर को न्यूनतम मृत्यु-दर (minimum mortality) भी कहा जाता है, जो एक आदर्श पर्यावरणीय और शरीरक्रियात्मक (physiological) स्थितियों में रहने वाले जीव की मृत्यु को दर्शाती है। किसी भी समष्टि के लिए यह स्थिर होती है। पारिस्थितिकीय मृत्यु-दर या वास्तविक मृत्यु-दर (ecological or realised mortality) दिए गए पर्यावरणीय और शरीरक्रियात्मक स्थितियों में किसी समष्टि में मरने वाले जीवों की संख्या है। यह समष्टि और पर्यावरण के बदलने पर बदल जाती है।

इसका मतलब यह हुआ कि सबसे बेहतर पर्यावरणीय स्थितियों में जीव वृद्ध होने पर मरेंगे, जिनका जीव की शरीरक्रियात्मक आयु द्वारा निर्धारण होता है। प्रकृति में पाई जाने वाली ज्यादातर समष्टियों में औसत आयु दीर्घता जन्मजात शरीरक्रियात्मक आयु दीर्घता से काफी कम होती है और इसलिए वास्तविक मृत्यु-दर संभाव्य दर से कहीं ज्यादा होती है।

प्रकृति में सिर्फ कुछ गिने-चुने जीव ही अपनी संभाव्य आयु दीर्घता पाते हैं। इससे पहले कि वे अपनी वृद्ध अवस्था तक पहुंच पाएँ उनमें से ज्यादातर का जीवनकाल परभक्षियों, रोगों और दूसरे तरह के खतरों के कारण कम हो जाता है। मृत्यु-दर की गणना सीधे या परोक्ष तरीके की जा सकती है। प्रग्रहण-पुनर्प्रग्रहण विधि एक सीधी या प्रत्यक्ष विधि है, जिनके बारे में

हम इस इकाई में पहले बता चुके हैं। एक परोक्ष विधि यह है कि किसी समष्टि में एक के बाद एक क्रम से विभिन्न आयु वर्गों में जीवों की बहुलता मालूम हो तो इन समूहों में मृत्यु-दर मालूम की जा सकती है।

समष्टि के लिए सबसे महत्वपूर्ण यह नहीं है कि कोई व्यष्टि जीव मरता है, बल्कि यह है कि कौन जीवित रहता है। अतः किसी समष्टि में विशिष्ट मृत्यु-दर को उत्तरजीविता वक्र (survivorship curve) द्वारा व्यक्त किया जाता है। उत्तरजीविता वक्र बनाने के लिए हम समष्टि में नए जीव सदस्यों के एक सहगण यानि कोहार्ट (cohort) से शुरुआत करते हैं और इन सदस्यों के मरने की आयु का निर्धारण करने के लिए उनका अवलोकन करते हैं। कोहार्ट के आखिरी जीव सदस्य के मरने पर अध्ययन का काम पूरा हो जाता है। तब हम आयु तथा उत्तरजीवी सदस्यों की संख्या का एक ग्राफ पर अंकन (plot) कर लेते हैं। जैसा कि चित्र 12.2 में दिखाया गया है, उत्तरजीविता वक्र तीन तरह के होते हैं पहले प्रकार-I के उत्तरजीविता वक्र में कोहार्ट के ज्यादातर सदस्यों को आदर्श पर्यावरण स्थितियां मिलती हैं और शरीरक्रियात्मक आयु तक पूरी तरह से जीते हैं। उनकी मृत्यु वृद्धावस्था के कारण होती है। मगर प्रकार-I का आदर्श, सही वक्र कभी नहीं पाया जाता, क्योंकि नए सदस्यों के कोहार्ट के शुरुआत में हमेशा कुछ न कुछ मृत्यु-दर जरूर होती है। ज्यादातर आधुनिक औद्योगिक देशों में लोग अपने जीवन के पहले साल के बाद प्रकार-I के वक्र में पहुँच जाते हैं। पहले साल में ज्यादा शिशु मृत्यु-दर अनुवांशिक या विकास विकृतियों या जन्म के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं के कारण होती है।

दूसरे प्रकार-II के उत्तरजीविता वक्र में सभी आयु वर्गों या समूहों में मृत्यु-दर स्थिर होती है। अतः समष्टि में व्यष्टि की उत्तरजीविता की संभावना उसकी पूरी उम्र के हर वर्ष में एक सी रहती है। यह वक्र पहले और तीसरे प्रकार-III के वक्रों के बीच पड़ता है। कुछ पक्षियों में तथा कुपोषण और गंदगी में जी रहे मनुष्यों में यह वक्र प्रारूपिक है।

तीसरे प्रकार-III के उत्तरजीविता वक्र में अधिकतर जीव अण्डज या लार्वा (larva) अवस्था में ही मर जाते हैं। जैसे—कई अकशेरूकी जंतुओं, अस्थिल मछलियों, पौधों और कवकों में। मगर इसके बाद जो जीव जीवित रह जाते हैं, उनकी उम्र या जीवन काल काफी ज्यादा होता है। प्राकृतिक स्थितियों में पाए जाने वाले ज्यादातर वक्र इन तीन वक्रों के बीच के होते हैं।

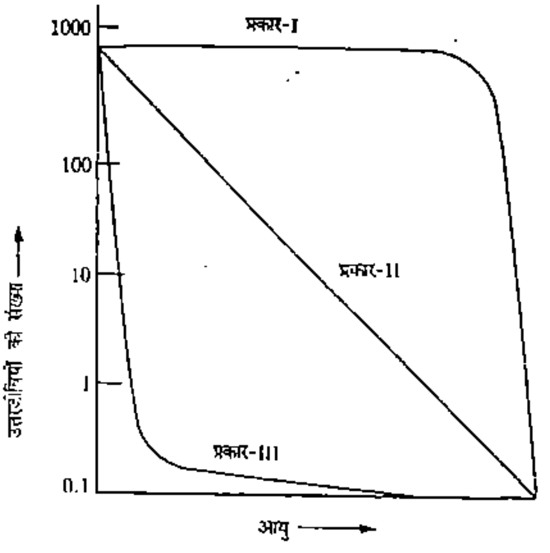

चित्र 12.2 : मुख्य तीन प्रकार के उत्तरजीविता वक्र। पहले प्रकार-I के वक्र में जीवों की मृत्यु जीवन के अंत में होती है। दूसरे प्रकार-II वक्र में आयुगत मृत्यु-दर स्थिर रहती है। तीसरे प्रकार-III के वक्र में जीवों की मृत्यु आरंभिक अवस्थाओं में काफी ज्यादा होती है।

किसी समष्टि में उत्तरजीविता को एक वय सारणी (life table) में भी व्यक्त किया जा सकता है। वय सारणी किसी समष्टि में जीवों का आयुगत वितरण है, जिससे मृत्यु-दर और उत्तरजीविता का पता चलता है। तालिका 12.1 में वय सारणी का एक उदाहरण दिया गया है।

वय सारणी बनाने के लिए हमें, आयु अंतराल तय करने होते हैं, ताकि समष्टि आँकड़ों को वर्गों में बाँटा जा सके। उदाहरणतः मनुष्य के लिए आयु अंतराल पाँच साल, हिरण के लिए एक साल, और चुहिया के लिए एक महीना हो सकता है।

जनसंख्या के लिए वय सारणियों का प्रयोग राष्ट्रीय और आंचलिक योजनाकारों, जीवन बीमा कंपनियों द्वारा यह जानने के लिए किया जाता है कि किसी दी गई आयु के लोग कितने लम्बे समय तक जीने वाले हैं। इससे विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के लिए बीमे का मूल्य निर्धारण करने में आसानी हो जाती है।

तालिका 12.1 : एक विकसित देश की कुल जनसंख्या की वय सारणी।

आयु अंतराल	100,000 जीवित पैदा हुए लोगों में से		औसत शेष जीवन काल	
दो आयु के बीच जीवन काल (वर्षों में)	आयु अंतराल के आरंभ में उत्तरजीवियों की संख्या (lx)	आयु अंतराल के दौरान मरने वालों की संख्या (dx)	मृत्यु-दर $\frac{dx}{ex} = q$	आयु अंतराल के आरंभ में उम्र के औसत वर्षों की संख्या
0-1	100,000	1,107	0.0110	73.6
1-5	98,893	269	0.0027	73.7
5-10	98,624	175	0.0017	71.7
10-15	98,449	181	0.0018	64.6
15-20	98,268	497	0.0050	59.7
20-25	98,771	673	0.0068	55.0
25-30	97,098	663	0.0068	50.4
30-35	96,435	725	0.0075	45.7
35-40	95,710	986	0.0103	41.0
40-45	94,724	1,483	0.0156	36.5
45-50	93,241	2,352	0.0252	32.1
50-55	90,889	3,483	0.0383	27.9
55-60	87,406	5,063	0.0579	23.9
60-65	82,343	7,281	0.0884	20.3
65-70	75,062	9,005	0.1196	17.9
70-75	66,057	12,214	0.1849	13.8
75-80	53,843	14,455	0.2684	10.4
80-85	39,388	14,467	0.3672	10.1
85 और उससे ऊपर	24,921	24,921	1	9.2

बोध प्रश्न 2

सही कथनों पर (✓) का चिह्न और गलत पर (×) का चिह्न लगाइए।

1) किसी समष्टि के लिए पारिस्थितिकीय जन्म-दर हमेशा स्थिर होती है। ( )

2) जन्म-दर की गणना या माप जीव के प्रकार पर निर्भर करती है। ( )

3) संभावित मृत्यु-दर किसी दिए गए पर्यावरण में जीव सदस्य की मृत्यु है। ( )

4) प्राकृतिक समष्टि में कुछ ही जीव संभावित दीर्घायु प्राप्त कर पाते हैं। ( )

12.2.4 समष्टि परिक्षेपण

समष्टि परिक्षेपण (population dispersal) जीव सदस्यों का समष्टि या समष्टि क्षेत्र के अंदर जाना या उससे बाहर निकलना है। किसी समष्टि में यह निम्न तीन तरह से होता है :

- उत्प्रवासन—यह किसी क्षेत्र से जीव सदस्यों का बाहर की ओर एक तरफा गमन है।
- आप्रवासन—इसमें किसी समष्टि क्षेत्र में जीवों का अंदर की ओर एक तरफा गमन होता है।
- प्रवासन—इसमें जीव समष्टि क्षेत्र से कुछ अवधि के लिए बाहर आकर फिर उसी में चले जाते हैं।

समष्टि प्राकृतिक रूप से गतिशील होती है, क्योंकि जीव सदा उसमें आते रहते हैं या उससे बाहर जाते रहते हैं। मगर आमतौर पर इस तरह के बदलावों का समष्टि के आकार या परिमाण पर कोई असर नहीं पड़ता। यह इसलिए हो पाता है क्योंकि उत्प्रवासन (बहिर्गमन) आप्रवासन (अंतःगमन) को संतुलित करता है, या फिर जीवों के बाहर निकलने या अंदर आने से होने वाली कमी या वृद्धि की बराबरी जन्म-दर और मृत्यु-दर के बदलने से हो जाती है। मगर सामूहिक परिक्षेपण समष्टि में तेज बदलाव ला सकता है। उदाहरण के तौर पर आप्रवासन या अंतःगमन से समष्टि में तेज वृद्धि हो सकती है या फिर अत्यंत कम परिमाण वाली समष्टि का विलोपन रुक सकता है। सामूहिक परिक्षेपण संतुलित समष्टि को दूसरे तरीकों से भी प्रभावित करता है। जैसे, अगर नीली गिल मछलियों से भरे तालाब में ऐसी ही मछलियों का आप्रवासन हो तो मछली की समष्टि की वृद्धि में कमी हो सकती है और दूसरे पर्यावरणीय सीमाओं के कारण मछलियों का औसत आकार छोटा हो सकता है। यद्यपि

बायोमास सघनता में कोई बदलाव नहीं भी होता है तो भी मछलियों का आकार काफी कम हो सकता है, जिसका असर मछली उत्पादन पर पड़ेगा।

समष्टि का परिक्षेपण रोधक (barrier) और प्रकीर्णनता (vagility) की मौजूदगी या अनुपस्थिति पर निर्भर करता है। प्रकीर्णनता एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने की जन्मजात क्षमता है, जिसे परिक्षेपण क्षमता भी कहा जाता है। कई पौधों और निम्न वर्ग के जंतुओं में परिक्षेपण या प्रकीर्णन क्षमता ज्यादा होती है, हालांकि पक्षी और कीड़े अपनी गमन क्षमता के लिए अधिक जाने जाते हैं।

प्रवासन या पलायन समष्टि परिक्षेपण की एक खास तरह की प्रक्रिया है, जिसमें अक्सर पूरी की पूरी समष्टि का सामूहिक गमन होता है। यह सिर्फ चल जीवों में होती है और संधिपादों (arthropoda) और कशेरूकी जंतुओं, जैसे—कुछ मछलियों, पक्षियों और स्तनधारियों में अधिक विकसित होती है। मौसमी (seasonal) और दैनिक (diurnal) प्रवासन की मदद से जीव ऐसे इलाकों में भी रह सकते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों में रहने के काबिल नहीं होते। ज्यादातर समष्टि का प्रवासन भोजन, आश्रय या प्रजनन के लिए और तापमान में भारी उतार-चढ़ावों जैसे पर्यावरणीय खतरों व परभक्षण से बचने के लिए होता है। प्रवासन न करने वाली समष्टियाँ ऐसी प्रतिकूल स्थितियों में या तो एक तरह की सुप्तावस्था या प्रसुप्ति में आ जाती हैं, या फिर उनकी जीव संख्या में भारी कमी हो जाती है।

परिक्षेपण के समष्टि के आकार और उसकी सघनता पर प्रभाव के अलावा कुछ अन्य लाभ भी हैं। इससे नए या समष्टि विहीन क्षेत्रों में समष्टियाँ बसती हैं। इससे जीन या अनुवांशिक प्रवाह में मदद मिलती है और समष्टियों के बीच जीन का आदान-प्रदान होता है, जिससे नई जातियों का उद्‌भव या विकास होता है।

12.2.5 आयु वितरण

किसी भी समष्टि के सदस्य जीव विभिन्न आयु वर्गों के होंगे। समष्टि में युवा और बूढ़े जीवों की सापेक्षिक संख्या उस समष्टि के व्यवहार, जैसे—मृत्यु-दर और जन्म-दर, पर भारी असर डालती है। किसी भी समष्टि की आयु संरचना को तीन प्रकार्यात्मक वर्गों में बाँटा जा सकता है :

पूर्व-प्रजननात्मक (pre-reproductive), प्रजननात्मक (reproductive), पश्च-प्रजननात्मक (post-reproductive) आयु।

मृत्यु-दर अलग-अलग आयु में अलग-अलग होती है, क्योंकि मृत्यु की संभावनाएँ आरंभिक पूर्व-प्रजननात्मक और पश्च-प्रजननात्मक आयु के अंत में अधिक होती हैं। इसी तरह जन्म-दर भी समष्टि में प्रजननात्मक आयु तक सीमित रहती है। जीवनकाल के अनुपात में इन उम्रों की सापेक्षिक अवधि अलग-अलग जीवों में अलग-अलग होती है। उदाहरण के लिए आज के मानव में ये तीनों उम्र एक दूसरे की तुलना में बराबर लम्बी होती हैं, तथा हरेक उम्र कुल जीवनकाल का लगभग एक तिहाई होती है। इसकी तुलना में आदि मानव की पश्च-प्रजननात्मक आयु काफी छोटी हुआ करती थी। कई जंतुओं और पौधों में पश्च-प्रजननात्मक काल काफी लम्बा होता है। टिड्डी (locust) का उदाहरण लें। इसके सत्रह वर्ष के जीवनकाल में प्रजननात्मक या वयस्क उम्र केवल एक वर्ष से कम होती है। शेष सभी वर्षों में इसका शरीर विकसित होता है।

पूरी समष्टि पर असर डालने वाले कुछ विशिष्ट पर्यावरणीय कारकों के महत्व को समझने में प्रकार्यात्मक आयु को बाँटना जरूरी है। अगर हमें किसी जीव द्वारा एक विशिष्ट प्रकार्यात्मक आयु वर्ग में बिताए गए समय और हरेक आयु पर सबसे ज्यादा प्रभाव डालने वाले कारकों की जानकारी हो, तो हम उस खास जाति की विशेषताओं, लक्षणों को अच्छी तरह से समझ सकते हैं। उदाहरण के लिए यह जानकारी तब बहुत जरूरी होती है, जब हम आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण किसी फसल को नियंत्रित कर रहे हों और जब यह जानना जरूरी हो कि जीवन चक्र के किस चरण में कीट सबसे ज्यादा और किस तरीके से हमला करेगा।

किसी समष्टि में आयु वितरण (age distribution) को दिखाने का सबसे सरल और सुविधाजनक तरीका समष्टि आँकड़ों को आयु पिरामिड (age pyramid) में व्यवस्थित करना है। आयु पिरामिड ऊर्ध्व दंड ग्राफ (vertical bar graph) होता है, जिसमें किसी दिए समय में विभिन्न आयु वर्गों में जीवों की संख्या या उनके अनुपात को क्षैतिज पड़े बारों से दिखाया जाता है। इस ग्राफ में सबसे नीचे सबसे कम आयु के और सबसे ऊपर सबसे ज्यादा आयु के

जीव दिखाए जाते हैं। चित्र 12.3 में तीन तरह के आयु पिरामिड दिखाए गए हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :

1) एक बड़े आधार वाला पिरामिड, जिसमें समष्टि में युवा या छोटी आयु के जीवों के प्रतिशत अधिक हैं। यह पिरामिड दिखाता है कि समष्टि बड़ी तेजी से बढ़ रही है।
2) त्रिभुजाकार या घंटी के आकार का पिरामिड जिसमें युवा और बूढ़े जीवों के बीच एक संयत अनुपात है। यह एक स्थायी (stable population) समष्टि का गुण है, जहाँ जन्म-दर मृत्यु-दर के बराबर होती है।
3) कम संख्या में युवा जीवों को दिखाता कलश या घड़े के आकार का पिरामिड। यह पिरामिड बूढ़ी होती या लुप्त होती समष्टि का लक्षण है।

चित्र में प्रयोगशाला में प्रजनित वोल (vole-*Microtus agrestis*) की समष्टि के आयु पिरामिडों का उदाहरण भी दिखाया गया है। पिरामिड क बड़ी तेजी से बढ़ रही प्रसरणशील समष्टि को दिखाता है। समष्टि में यह तेज वृद्धि एक असीमित पर्यावरण में उत्पन्न हुए नए जीवों की बढ़ती संख्या के कारण होती है। पिरामिड ख स्थायी समष्टि को दिखाता है, जिसमें जन्म-दर और मृत्यु-दर बराबर होती है।

स्थायी समष्टियों (stable population) में आयु संरचना एक ही बनी रहती है और वे या तो सुस्थिर तरीके से बढ़ती हैं या घटती रहती हैं या फिर स्थिर बनी रहती हैं। स्थिर समष्टि (stationary population) वह है, जिसमें काफी समय तक जीवों की संख्या एक समान रहती है और जन्म-दर और मृत्यु-दर बराबर होती है।

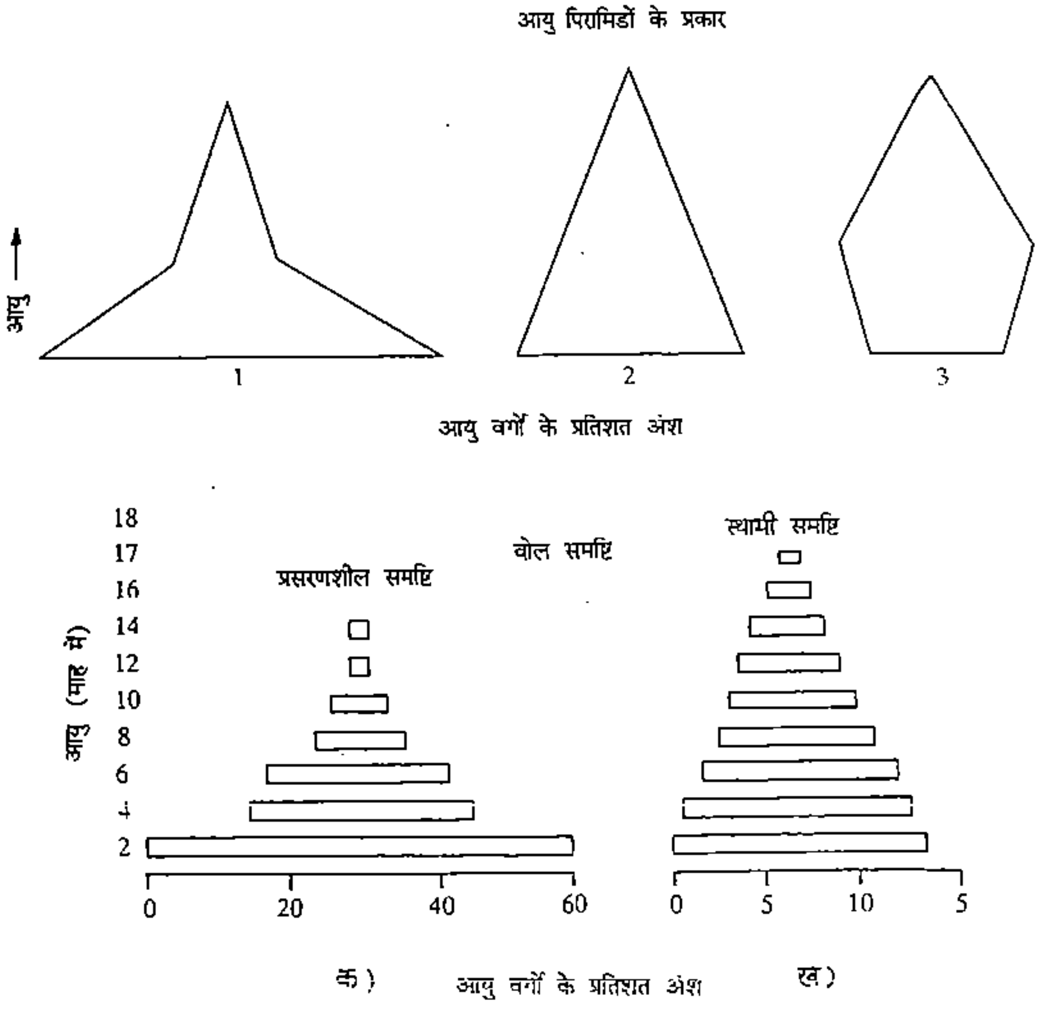

चित्र 12.3 : आयु पिरामिडों के तीन प्रकार जिसमें किसी समष्टि में युवा जीवों की संख्या दिखाई गई है : (1) अधिक, (2) मध्यम, और (3) कम। प्रयोगशाला स्थितियों में वोल समष्टि के प्रसरणशील (क) और स्थायी (ख) आयु पिरामिड।

12.2.6 समष्टि बंटन

समष्टि बंटन का अर्थ है किसी समष्टि के जीव सदस्यों के वितरण का पैटर्न या तरीका। जैसा कि चित्र 12.4 में दिखाया गया है, किसी समष्टि में व्यष्टि जीव मोटे तौर पर तीन तरह के पैटर्न में बंटे हो सकते हैं : क) एक समान, ख) यादृच्छिक, तथा ग) झुरमुट। यादृच्छिक बंटन (random distribution) ऐसी स्थिति में होता है, जहाँ पर्यावरण काफी हद तक एकरूप या समान हो और जीवों में एकत्रित होने की प्रवृत्ति न हो। प्रकृति में इस प्रकार का बंटन अपेक्षतया कम ही मिलता है। एकसमान बंटन (uniform distribution) यादृच्छिक बंटन से अधिक नियमित होता है और ऐसी स्थिति में पाया जाता है जहाँ जीवों के बीच स्पर्धा काफी अधिक होती है या वहाँ जहाँ आपस में काफी विरोध पाया जाता है। इससे जीवों के बीच समान दूरी बनती है। झुरमुट बंटन (clump distribution) या जीवों का समूहों में इकट्ठा होना बंटन का सबसे आम पैटर्न है। इस स्थिति में समूह समान या अलग-अलग आकार के हो सकते हैं। फिर ये समूह फिर से अपने आप में यादृच्छिक या एक समान रूप में बँट सकते हैं, या एक दूसरे के साथ झुरमुट में इकट्ठे हो सकते हैं। बंटन के ये सभी तरीके प्रकृति में पाए जाते हैं। अगर हम तीनों प्रकार के समष्टि बंटन के पैटर्न के छोटे नमूने लेकर समष्टि अध्ययन करें तो परिणाम काफी भिन्न होंगे। उदाहरण के लिए अगर हम झुरमुट बंटन वाली समष्टि से एक नमूना लें, तो इस नमूने की संख्या का कुल समष्टि का पता करने के लिए गुणन करने पर या तो बहुत कम सघनता मिलेगी या बहुत ज्यादा। इसलिए हम कह सकते हैं कि झुरमुट बंटन वाली समष्टि अध्ययन के लिए यादृच्छिक या एकरूप बंटन वाली समष्टियों की तुलना में अधिक सावधानी वाली विधियों की जरूरत पड़ती है।

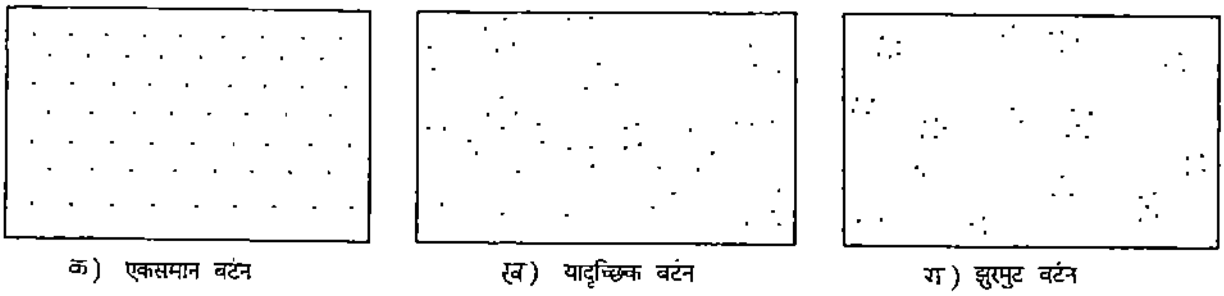

चित्र 12.4 : समष्टि में व्यष्टियों के बंटन के पैटर्न। प्रत्येक आयत में जीवों की संख्या लगभग समान है।

बोध प्रश्न 3

i) समष्टि परिक्षेपण के तरीके बताइए।

....

....

....

....

ii) स्थिर और स्थायी समष्टियों में अंतर बताइए।

....

....

....

....

iii) समष्टि बंटन के तीन पैटर्न बताइए।

....

....

....

....

12.3 समष्टि वृद्धि

अब तक आप जान गए होंगे कि समष्टि का आकार या माप जन्म-दर और आप्रवासन, जिनके जरिए उसमें नए जीव आते हैं तथा मृत्यु-दर और उत्प्रवासन जो जीवों को समष्टि से अलग करते हैं, में संतुलन पर निर्भर करता है। यदि जन्म-दर और आप्रवासन, मृत्यु-दर और उत्प्रवासन से अधिक हैं तो समष्टि में वृद्धि होगी और अगर ये आपस में बराबर हैं तो समष्टि का आकार समान यानि स्थिर रहेगा तथा अगर मृत्यु-दर और उत्प्रवासन अधिक होते हैं तो समष्टि का आकार घटेगा।

आइए कुछ उदाहरण लेकर समष्टि की वृद्धि पर चर्चा करें। खेतों में चूहों की संख्या में साल दर साल कोई ज्यादा अंतर या वृद्धि नहीं दिखाई देती। हालाँकि ये इतनी ज्यादा संतानें पैदा करते हैं, जिससे कि इनकी संख्या एक साल में काफी ज्यादा बढ़ जानी चाहिए। इस प्रकार की प्राकृतिक समष्टियों का आकार पर्यावरणीय स्थितियों से सीमित हो जाता है। आइए अब पैरामीशियम कॉडेटम (*Paramecium caudatum*) का उदाहरण लें। रूस के पारिस्थितिकीय वैज्ञानिक जी.एफ. गॉस ने यह जानने के लिए पैरामीशियम समष्टि का अध्ययन किया था कि अगर इसकी समष्टि वृद्धि में कोई बाधा न हो तो समष्टि कितनी तेजी से बढ़ सकती है। अच्छी तरह से पोषित पैरामीशियम कुछ ही घंटों में दो नए जीवों में विभाजित हो जाता है। गॉस ने कई परखनलियाँ लीं, उनमें भोजन के लिए जीवाणु काफी मात्रा में डाले, और प्रत्येक नली में एक पैरामीशियम डाल दिया। पैरामीशियम की वृद्धि न रोके जाने पर उसकी संख्या में घातीय वृद्धि (exponential growth) हुई। इसका मतलब यह है कि समय बीतने के साथ-साथ एक निश्चित समय अवधि में नए जोड़े गए जीवों की संख्या बढ़ती गई। जब रेखीय अक्ष (linear axis) में इस तरह की घातीय समष्टि वृद्धि का ग्राफ में आंकलन किया जाता है तो यह वृद्धि एक ऐसे वक्र की शक्ल में अंकित होती है, जो अत्यधिक वृद्धि दर्शाता है। जब लघुगणकीय अक्ष (logrithmic axis) में समष्टि आकार का ग्राफ अंकन किया जाता है, तो घातीय वृद्धि एक सीधी रेखा के रूप में दिखाई जाती है (चित्र 12.5 क, ख)।

किसी ग्राफ का रेखीय अक्ष तब लिया जाता है, जब चर के मान में परिवर्तन अधिक न हो और अक्ष में समायोजित किया जा सकता हो। यदि चर के मान में परिवर्तन काफी अधिक यानि 100 या उससे भी अधिक हो, तो उसे लघुगणकीय अक्ष में ही अंकित किया जाता है। इसके लिए चरों के लघुगणक मान ले लिए जाते हैं।

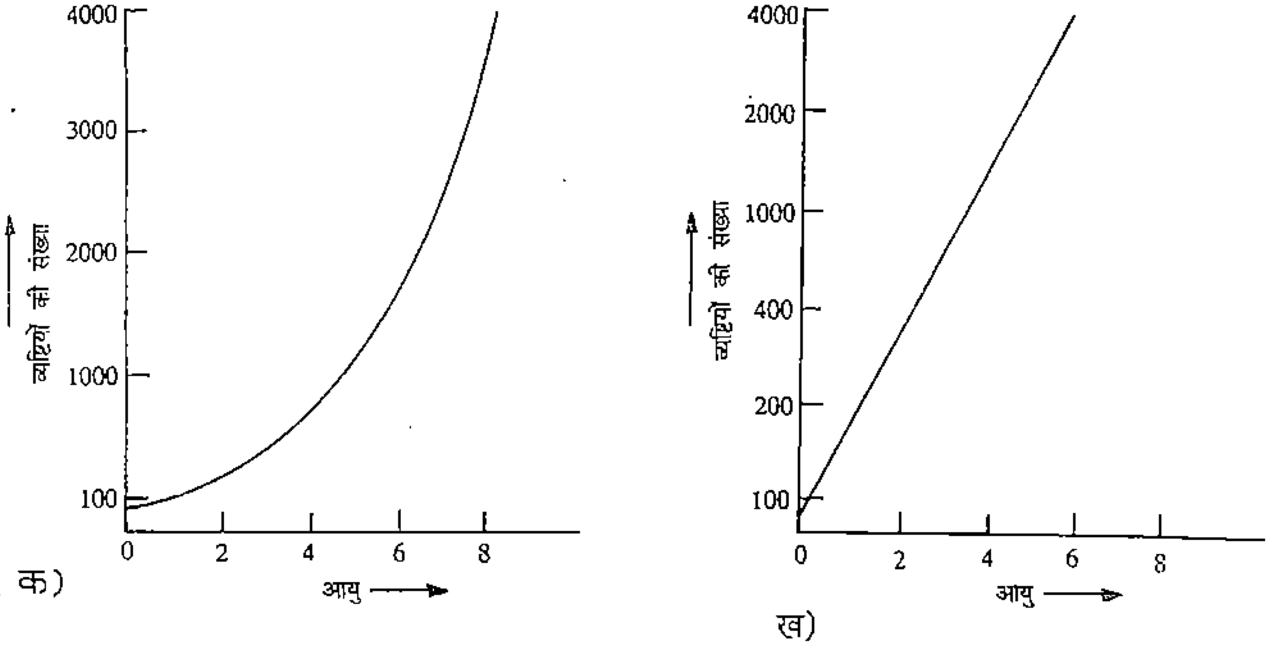

चित्र 12.5 : किसी समष्टि की घातीय वृद्धि को (क) रेखीय अक्ष, और (ख) लघुगणकीय अक्ष में दिखाया गया है।

इस प्रकार की घातीय वृद्धि को निम्न समीकरण के रूप में व्यक्त किया जा सकता है :

$$\frac{dN}{dt} = r_m N$$

जहाँ N किसी समष्टि में जीवों की संख्या, $\frac{dN}{dt}$ प्रति इकाई समय में जीवों की संख्या में वृद्धि या बदलाव और r_m प्रति जीव समष्टि वृद्धि की अधिकतम दर है। r_m को समष्टि की वृद्धि

करने की सहज क्षमता या जीवीय विभव (biotic potential) कहा जाता है। जीवीय विभव तभी प्राप्त होता है जब पर्यावरणीय परिस्थितियां कोई सीमा या बाधा नहीं डालतीं, यानि भोजन और रहने योग्य स्थान काफी हो और अन्य जाति के जीवों से भी कोई विघ्न न हो। जीवीय विभव जिसे प्रजनन क्षमता भी कहा जाता है, को मापना बड़ा कठिन होता है, क्योंकि वृद्धि के लिए आदर्श या सबसे उचित स्थितियाँ कृत्रिम प्रयोगशाला स्थितियों को छोड़कर प्रकृति में नहीं मिलती। हम जो समष्टि वृद्धि प्रकृति में देखते हैं वह समष्टि के जीवीय विभव और उसकी अमल वृद्धि में रोधक पर्यावरणीय कारकों के बीच परस्पर क्रिया का फल होता है। समष्टि वृद्धि की वास्तविक दर को r से व्यक्त किया जाता है, जो प्रति इकाई समय में प्रति जीव जन्म-दर और मृत्यु-दर के बीच का अंतर है। ज्यादातर प्राकृतिक समष्टियों में r का माप समष्टि और उसके पर्यावरण के बीच पारस्परिक क्रिया के कारण बदलता रहता है। प्रकृति में घातीय वृद्धि तब होती है जब समष्टि को सभी संसाधन भरपूर मिल रहे हों। उदाहरण के लिए जब जीवाणु किसी जंतु की आंत में पहुंचते हैं तो उनकी या फिर जब किसी नए-नए मरे जंतु या पौधे पर अपघटक हमला करते हैं तो उनकी समष्टि में अत्यधिक वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में जीवाणु व अपघटकों को भरपूर भोजन मिलता है, जिससे उनकी संख्या में घातीय वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप समष्टि में विस्फोट होता है। मगर घातीय वृद्धि का मतलब हमेशा यह नहीं होता है कि समष्टि अपने जीवीय विभव पर बढ़ रही है।

12.3.1 जीवीय विभव को प्रभावित करने वाले कारक

समष्टियों का जीवीय विभव विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण के तौर पर जीवाणु समष्टियाँ बांज के पेड़ों (oak trees) की समष्टि की तुलना में काफी तेज वृद्धि कर सकती हैं। किसी जीव के प्रजनन की दर निम्न में किसी एक या तीनों तरीकों से बढ़ सकती है :

- हर बार प्रजनन के समय कई संतानों को जन्म देकर
- प्रजननशीलता की लम्बी अवधि, और
- जीवन में शीघ्रातिशीघ्र प्रजनन करके

इन तीनों में से आखिरी तरीका सबसे महत्वपूर्ण है। इसे समझने के लिए एक उदाहरण लें। एक जीवाणु न तो लम्बे समय तक जीवित रहता है और न ही जब वह प्रजनन करता है तो हर बार कई संतानें पैदा करता है। जीवाणु की प्रजनन क्षमता कुत्ते की प्रजनन क्षमता से कहीं ज्यादा है क्योंकि अपने जीवन के महज एक घंटे के अंदर जीवाणु कोशिका विभाजन द्वारा प्रजनन कर सकता है। जबकि कुत्ता जब तक कम से कम छह महीने का नहीं हो जाता प्रजनन नहीं कर सकता। इसलिए हम कह सकते हैं कि जिस जाति का जनन काल (generation time) या पीढ़ी अंतर जितना छोटा होगा उसकी प्रजनन क्षमता उतनी ही ज्यादा होगी। जिन जीवों का जनन काल समान होता है, उनमें पैदा हुई संतानों की संख्या यह निर्धारित करती है कि किसमें समष्टि वृद्धि करने की अधिक क्षमता है।

अतः एक साल में 100 बीज पैदा करने वाले पौधे की समष्टि एक साल में सिर्फ 10 बीज पैदा करने वाले पौधे की समष्टि की तुलना में काफी तेजी से बढ़ सकती है। मगर लम्बी पूर्व-प्रजननात्मक अवधि वाले जीवों की समष्टि में पैदा हुई संतानों की संख्या उस समष्टि के जीवीय विभव पर कोई ज्यादा असर नहीं डालती।

12.3.2 वहन क्षमता

किसी भी समष्टि में लम्बे समय तक घातीय वृद्धि नहीं हो सकती। गॉस ने देखा कि एक निश्चित स्तर पर पहुँचने के बाद पैरामीशियम की समष्टि में वृद्धि अपने आप बंद हो गई। अतः वह स्तर जिसके बाद समष्टि में कोई बड़ी वृद्धि नहीं हो सकती संतृप्त स्तर या वहन क्षमता (carrying capacity) है, और इसे K अक्षर से व्यक्त किया जाता है। K जाति विशेष की समष्टि के व्यष्टियों की वह संख्या है, जिसका किसी पर्यावरण विशेष में चिरकाल तक भरण-पोषण हो सकता है।

इसी आधार पर समष्टि वृद्धि को वृद्धिघात समीकरण (logistic equation) के जरिए समझाया जा सकता है और ग्राफ पर अंकित वक्र को वृद्धिघात वक्र (logistic curve) कहते हैं (देखें चित्र 12.6)।

$$\frac{dN}{dt} = r_m N \left(\frac{K-N}{K}\right)$$

यहाँ N = व्यष्टि संख्या

$\frac{dN}{dt}$ = संख्या में प्रति इकाई समय में हुआ बदलाव

r_m = वृद्धि के लिए सहज क्षमता

K = वहन क्षमता

$\left(\frac{K-N}{K}\right)$ से यह पता चलता है कि समष्टि को अभी तक पर्यावरण में कितने संसाधन उपलब्ध हैं। N के K से काफी कम होने पर $\left(\frac{K-N}{K}\right)$ का मान लगभग 1 हो जाता है और समीकरण इस प्रकार हो जाता है : $\frac{dN}{dt} = r_m N$: यह घातीय वृद्धि का समीकरण है। N के K के बराबर होने पर $\left(\frac{K-N}{K}\right)$ का मान शून्य हो जाता है और $\frac{dN}{dt}$ यानि वृद्धि दर भी शून्य हो जाती है।

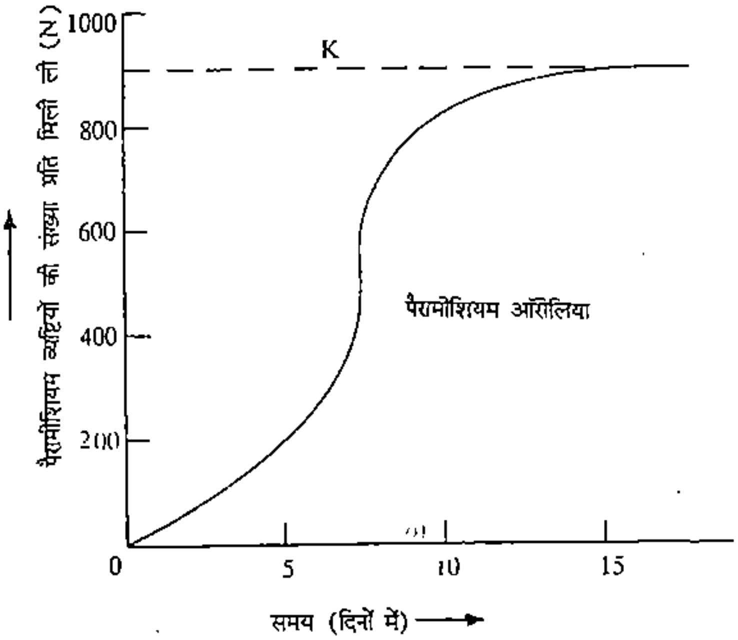

चित्र 12.6 : S आकार का वक्र, जो संवर्धन माध्यम में हर दिन भोजन के रूप में जीवाणुओं की नियमित आपूर्ति से पैरामीशियम समष्टि में हुई वृद्धि से प्राप्त हुआ है। समष्टि ने पहले पहल घातीय वृद्धि की, मगर जैसे ही इसके व्यष्टियों की संख्या N वहन क्षमता K के बराबर तक पहुँची इसने बढ़ना बंद कर दिया।

वृद्धि का एक और वक्र, जिसे J- आकार का वक्र कहते हैं, ग्राफ पर तब अंकित होता है जब जीवों की सघनता पहले तो तेजी से बढ़ती है और पर्यावरणीय बाधाओं या दूसरे कारकों के एकाएक प्रभावशाली हो जाने से एकाएक बढ़ना रुक जाती है। वहन क्षमता का निर्धारण परभक्षण, स्पर्धा और जलवायु संबंधी स्थितियों सहित कई तरह के कारकों द्वारा होता है। ऐसे सभी कारक जो किसी समष्टि की वृद्धि को सीमित करते हैं, समष्टि वृद्धि के पर्यावरणीय प्रतिरोध (environmental resistance) कहलाए जाते हैं। चूँकि ये कारक कई तथा भिन्न-भिन्न हैं, यह जाहिर है कि समय-समय पर समष्टि के लिए किसी भी क्षेत्र की वहन क्षमता भी भिन्न-भिन्न होगी। आगे हम समष्टि के आकार के नियमन के बारे में पढ़ेंगे, मगर उससे पहले निम्न बोध प्रश्न हल कर लें।

बोध प्रश्न 4

नीचे दिए गए कथनों में सही शब्द पर (✓) चिह्न लगाइए।

i) प्राकृतिक समष्टियों का आकार पर्यावरणीय कारकों से सीमित होता/नहीं होता है।

ii) जीवीय विभव समष्टि में वृद्धि/कमी की सहज क्षमता है।

iii) किसी जीव की प्रजननात्मक आयु की अवधि समष्टि के जीवीय विभव को प्रभावित करती/नहीं करती है।

iv) वहन क्षमता एक संतृप्त स्तर है/नहीं है, जिसके बाद समष्टि में वृद्धि नहीं हो पाती।

12.4 समष्टि नियमन

समय के साथ-साथ किसी भी समष्टि में जीवों की संख्या बदलती रहती है। अगर किसी कारण से किसी समष्टि का आकार तेजी से एकाएक घटता है, जो वह लुप्त हो सकती है। मगर दूसरी जगह के समष्टि से जीवों के आप्रवासन से वह फिर से स्थापित भी हो सकती है। समष्टि के आकार में वृद्धि असीमित नहीं होती, क्योंकि पर्यावरण की वहन क्षमता सदा इस पर अंकुश लगाती है। इन भारी उतार-चढ़ावों के बाद भी ज्यादातर बड़ी समष्टियों का सबसे बड़ा गुण यह है कि उनका औसत आकार काफी वर्षों में अपेक्षतया थोड़ा ही बदलता है और यह बदलाव उनके अपेक्षित जीवीय विभव से निश्चय ही कम होता है। समष्टि आकार का नियमन कुछ इस तरह से होता है कि छोटी समष्टि तेजी से बढ़ती है और बड़ी समष्टि पतन करने या घटने लगती है। आइए इस बात का पता लगाएँ कि समष्टियों में ऐसा पारिस्थितिकीय समस्थापन (ecological homeostasis) किस तरह से होता है। निम्न-विविधता, भौतिक तनावों से दबे पारिस्थितिक तंत्रों या फिर अनियमितताओं तथा अनिश्चित बाहरी बाधाओं वाले पारिस्थतिक तंत्रों में समष्टियाँ भौतिक घटकों जैसे मौसम, पानी, रसायनिक परिसीमन कारकों (chemical limiting factors), प्रदूषण इत्यादि से नियंत्रित तथा नियमित होती है। उच्च-विविधता वाले या भौतिक तनावों से मुक्त पारिस्थितिक तंत्रों में समष्टियाँ जैविकीय घटकों द्वारा नियंत्रित होती हैं। सभी पारिस्थितिक तंत्रों में समष्टियों में प्राकृतिक चयन के जरिए स्वतः नियमित होने की प्रवृत्ति होती है। स्वतः नियमन कई तरीकों से होता है, जैसे—प्रजनन बंद करके तथा खुद को मार कर। मगर पारिस्थितिक तंत्र में कई अन्य कारणों से समष्टियों का इस तरह से स्वतः नियमन भी मुश्किल होता है। स्वतः नियमन इसलिए होता है, क्योंकि व्यष्टियों की अत्याधिक संख्या किसी भी समष्टि के हित में नहीं होती। इसलिए किसी समष्टि में जीव संख्या को सीमित किया जाना मूलतः दो नियमन करने वाली प्रक्रियाओं की क्रिया और परस्पर क्रिया से होता है. ये प्रक्रियाएँ हैं, सघनता निर्भर और सघनता निरपेक्ष कारक जिनके बारे में हम आगे बताएंगे।

12.4.1 सघनता निर्भर कारक

सघनता निर्भर कारक (density dependent factors) आंतर (intrinsic) या जीवीय कारक है और ये एक ही समष्टि के जीवों या अलग-अलग जातियों की समष्टियों में परस्पर क्रिया पर निर्भर होते हैं। सघनता निर्भर कारक पर्यावरण की वहन क्षमता द्वारा तय स्तर पर समष्टि आकार को स्थिर कर सकते हैं। महत्वपूर्ण सघनता निर्भर कारक हैं; प्रजननशीलता, उत्प्रवासन, संसाधनों के लिए स्पर्धा, परभक्षण, परजीवी और रोग। इन कारकों का प्रभाव विभिन्न जातियों पर भिन्न-भिन्न होता है। आपने पढ़ा है कि किस तरह से बड़ी समष्टियों में पैदा होने वाले जीवों की संख्या कम होती है और इस तरह समष्टि आकार का स्वनियमन होता है। आप यह भी जान चुके हैं कि किसी तरह से किसी समष्टि से जीवों का उत्प्रवासन उसकी सघनता को कम कर देता है। स्पर्धा या होड़ एक ही जाति के जीवों में हो सकती हैं, जिसे अंतःजातीय स्पर्धा (intraspecific competition) कहते हैं, और विभिन्न जातियों के जीवों के बीच भी हो सकती है जिसे अंतराजातीय स्पर्धा (interspecific competition) कहते हैं। अक्सर एक ही जाति के जीवों को एक तरह के संसाधनों की जरूरत पड़ती है और इसलिए उन्हें इन संसाधनों के लिए आपस में होड़ करनी पड़ती है। पक्षी की कुछ जातियों में मादा और नर में चोंच अलग-अलग लंबाई की होती है, जिससे वे भिन्न-भिन्न कीड़ों का शिकार कर सकें।

एक दूसरा उदाहरण लें, जिसमें सफेद क्लोवर, (तिपतिया चारा, *Trifolium repens*) के बीज तीन वर्गों में अलग-अलग सघनताओं में बोए गए। हरेक सघनता में आधे पौधों को पूरे प्रयोग के दौरान पानी दिया गया, जबकि आधे पौधों को पहले 18 दिन ही सींचा गया। सात हफ्ते के बाद जीवित अंकुरित पौधों की सघनता मापी गयी। जैसा कि चित्र 12.7 को देखने से पता चलता है, जिन पौधों को बराबर सींचा गया था उनमें मृत्यु-दर कम थी, भले ही उनकी सघनता कुछ भी थी। मगर पानी से वंचित पौधों के वर्ग में मृत पौधों की संख्या माध्यक सघनता (intermediate density) वाले पौधों के हिस्से की तुलना में उच्च सघनता (high density) वाले पौधों के हिस्से में तीन गुना अधिक थी।

विभिन्न जातियों में अंतराजातीय स्पर्धा तब होती है जब जातियों के पारिस्थितिकीय निकेत यानि रहने के स्थान में साझेदारी होने लगती है। परभक्षण और रोग इस तरह की प्रतिस्पर्धी प्रतियोगिताएँ हैं, जो आंशिक रूप से सघनता निर्भर कारक हैं। ऐसा इसलिए है, क्योंकि किसी

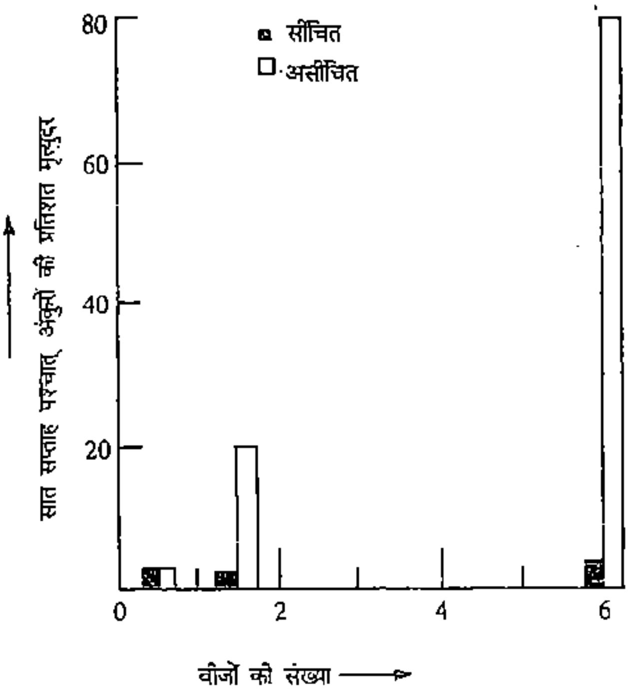

चित्र 12.7 : पानी की कमी में सफेद क्लोवर की पौध की उत्तरजीविता पर बीज सघनता का प्रभाव। काले रंग के बार से पता चलता है कि पानी मिलने पर विभिन्न सघनता वाले पौधों के तीन वर्गों की समष्टियों में मृत्यु-दर बराबर थी। अनाच्छादित बार से 18 दिन बाद नहीं सींची गई पौध में मृत्यु-दर की विभिन्नता का पता चलता है।

रोगकारक जीव के किसी परपोषी (host) पर हमला करने या किसी परभक्षी के किसी शिकार पर हमला करने की संभावना तब बढ़ जाती है, जब प्रति इकाई क्षेत्रफल में परपोषियों या शिकारों की संख्या ज्यादा हो। घनी जंतु समष्टियों में जंतुओं की सेहत गिर जाती है और ताकत कम हो जाती है, जिससे उन पर परभक्षियों और रोगों के हमला बोलने की संभावना बढ़ जाती है। आप इकाई 11 में अंतराजातीय स्पर्धा के बारे में पढ़ ही चुके हैं।

12.4.2 सघनता निरपेक्ष कारक

सघनता निरपेक्ष कारक (density independent factors) बाह्य कारक (extrinsic factors) होते हैं, जो किसी समष्टि की सघनता का नियमन ऐसे तरीकों से करते हैं, जो उसकी सघनता से नहीं जुड़े होते हैं। खराब मौसम, जगह की कमी, प्रदूषण इत्यादि पर्यावरण से जुड़े कुछ कारक सघनता निरपेक्ष कारक है। अंधड़, कड़ी ठंड या सूखा किसी भी समष्टि के अधिकांश जीवों को मार सकता है, भले ही उसकी सघनता कुछ भी हो। अगर आश्रयों की संख्या कम या सीमित है, तो बुरे मौसम से बचने के लिए कुछ ही जीव आश्रय ले सकते हैं, अतः किसी बड़ी समष्टि का केवल एक भाग ही उससे बच पाता है। इस प्रकार प्राकृतिक समष्टियों के आकार कई तरह के सघनता निरपेक्ष कारकों से प्रभावित होते हैं, जिनकी परस्पर क्रिया जटिल भी हो सकती है।

बोध प्रश्न 5

नीचे दिए गए वाक्यों के खाली स्थानों में सही शब्द लिखिए।

i) पारिस्थितिकीय समस्थापन समष्टि आकार का .... है।

ii) सघनता निर्भर कारक .... कारक हैं जो समष्टि के .... को प्रभावित करते हैं।

iii) विभिन्न जातियों के बीच संसाधनों के लिए प्रतियोगी स्पर्धा को .... कहा जाता है।

iv) पर्यावरणीय कारक .... होते हैं जो समष्टि के आकार को प्रभावित करते हैं।

12.5 समष्टि में अनुवांशिक विविधता

आप जानते हैं कि पुराने समय में विभिन्न जीव जातियों और अनुवांशिक विविधता के कम होने से कृषि और वानिकी में तात्कालिक लाभ मिले हैं। विशेष उच्च पैदावार वाली किस्मों का विश्व-भर में कृषि और वन भूमि में प्रसार इसका प्रमाण है। विविधता में कमी से पैदा हुए खतरों की ओर ध्यान देने के लिए जीव विज्ञानी अब जीन स्रोत संरक्षण (gene resource conservation) में लगे हैं।

मनुष्य की उत्तरजीविता के लिए जंतुओं, पौधों और सूक्ष्मजीवों की जैविक विविधता बेहद महत्वपूर्ण है। 'जीन स्रोतों' (gene resources) को अनुवांशिक विविधता कहा जाता है, जो हमेशा के लिए समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए बेहद जरूरी है। यह विविधता विभिन्न जातियों की विभिन्नता तथा किसी जाति के जीवों में विभिन्नता है। जीन स्रोतों में वन्य तथा पालतू जातियां, जिनमें से कई जातियां व्यावसायिक रूप से मूल्यवान नहीं हैं, शामिल है। हर वर्ष जीन स्रोतों का उपयोग करोड़ों रुपए के नए तथा परिचित उत्पाद बनाने में किया जाता है। जैसे– भोजन, कपड़ा, आश्रय, दवाइयां, ऊर्जा और सैकड़ों अन्य औद्योगिक उत्पाद। आप जानते ही होंगे कि कई तरह की जातियां और उनके उत्पाद आयुर्विज्ञान और अन्य शोध कार्यों में काम आते हैं। कृषि, वानिकी और संबंधित उद्योग जरूरत पड़ने पर उचित विविधता पर आश्रित होते हैं, जैसे– पादप रोगों के प्रति रोधकता वाले पौधे। अनुवांशिक विविधता यह तय करती है, कि किस सीमा तक वन्य तथा पालतू जातियां कई तरह के बदलावों में अपने को अनुकूलित कर लेती हैं। ये बदलाव हैं, 1) मौसमी बदलाव, कीड़े और रोग; 2) प्रौद्योगिकी; 3) मांग; और 4) मानव की पसंद। ज्यादातर जैविक विविधता अब भी प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों में पाई जाती है, जहां जीवों की उत्तरजीविता उनमें मौजूद विविधता पर निर्भर है।

अच्छी क्षेत्रीय और आंचलिक योजना बनाने से स्थानीय विविधता की कमी की भरपाई कुछ हद तक की जा सकती है। यह कमी सघन खेती, वानिकी और शहरी विकास के साथ-साथ पैदा होने लगती है। अगर एकधान्य कृषि, वन और एक जैसे मकानों की श्रृंखलाओं के बीच में विभिन्न प्राकृतिक या अर्धप्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र, जैसे कि पार्क, प्राकृतिक केंद्र आदि हों तो उस पूरे पारिस्थितिक तंत्र को कालांतर में संरक्षित किया जा सकता है। अगर कछारों (flood plains), आर्द्रभूमि (wet lands), ढलानों और दर्रों को अर्धविकसित ही छोड़ दिया जाय तो वहां न केवल मनोरंजन के लिए एक सुंदर भू-दृश्य बनेगा बल्कि उससे एक उच्च कोटि की अनुवांशिक विविधता भी संरक्षित रहेगी।

ऐसे भूदृश्यों की मदद से विविधता को सुरक्षित रखने का कार्य और साथ ही शहरी और औद्योगिक विकास को योजना बद्ध तरीके से किया जा सकता है। इस तरह आपने पढ़ा कि मनुष्य और प्रकृति की उत्तरजीविता के लिए विविधता कितनी जरूरी है।

12.6 प्राकृतिक नियमन के विकास संबंधी परिणाम

आप जानना चाहेंगे कि प्राकृतिक नियमन तंत्र विकास संबंधी बदलावों से किस तरह प्रभावित होते हैं। आप परभक्षी-शिकार तंत्रों (predator-prey system) और शाकाहारी-पादप तंत्रों (herbivore-plant system) के सहविकास में निहित परस्पर क्रियाओं के बारे में जानते होंगे। इस तरह की परस्पर क्रियाएं कई होती हैं और इनमें से कई में विकास संबंधी बदलाव बड़े धीरे-धीरे काम करते हैं जिससे उनका पता लगा पाना मुश्किल होता है। मगर हाल ही में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि विकास संबंधी बदलाव बड़ी तेजी से भी हो सकते हैं, जिससे विकास संबंधी समय मान (evolutionary time scale) पारिस्थितिकीय समय मान (ecological time scale) तक आ पहुंचता है। इसलिए प्राकृतिक चयन प्राकृतिक नियमन पर अतिक्रमण कर देता है।

समष्टियों में बहुत से ऐसे बदलाव बाह्य कारकों में बदलावों के कारण होते हैं। जैसे–मौसम, रोग या परभक्षण। मगर अधिकता में होने वाले कुछ बदलाव किसी समष्टि में मौजूद जीवों के अनुवांशिक गुणों में बदलावों के कारण होते हैं। ऐसे विकास संबंधी परिवर्तन अनुवांशिक पुनर्निवेशन क्रियाविधि (genetic feed back mechanism) से पैदा होते हैं।

हम एक सरल मॉडल से ऐसे क्रमबद्ध परिवर्तनों को समझाएंगे, जिनसे अनुवांशिक पुनर्निवेशन क्रियाविधि हो सकती है। मान लीजिए एक पौधा और एक शाकाहारी जंतु वाला कोई दो जातीय समष्टि तंत्र है। मॉडल को सरल बनाने के लिए आइए हम पौधों में एक गुणसूत्र (chromosome) के एक ही जीन (gene) पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। इस परिकल्पित जीन का 1) पौधे के अपने पर्यावरण में जीवित रहने की क्षमता, और 2) शाकाहारी के लिए पौधे की खाद्यता (स्वाद एवं रुचि) पर बड़ा असर पड़ना है। परिकल्पित जीन स्थल (gene locus) पर दो अलग एलील (allele) A और a होने हैं। जीन प्ररूपों (genotype) के गुण तालिका 19.2 में दिखाए गए हैं।

तालिका 19.2 : पौधों के जीन प्ररूप

	AA	Aa	aa
पौधों की जीवित रहने की क्षमता शाकाहारी के लिए खाद्यता	अच्छी अधिक	कम निम्न	बहुत कम बहुत निम्न

इस प्रकार AA जीन प्ररूप के पौधों की उत्तरजीविता काफी बेहतर होती है, मगर इनके शाकाहारियों के लिए अच्छा भोजन होने के कारण इनकी तरफ काफी शाकाहारी जंतु आकर्षित होते हैं। हरेक पादप पूरी तरह से चरे जाने से पहले कुछ ही शाकाहारी जंतुओं को चारा दे सकता है। हम यह मानते हैं कि शाकाहारी जंतु की प्रजननशीलता उस पौधे के जीन प्ररूप से प्रभावित होगी जिसे वह खाता है। अतः ज्यादा से ज्यादा खाद्यता या स्वाद वाले पौधे या वृक्ष शाकाहारी जंतुओं की प्रजननशीलता के लिए सबसे अच्छे हैं।

हम यहां पर इस तरह से होने वाले उन अनुवांशिक बदलावों के कुछ उदाहरण दे सकते हैं, जो समष्टि नियमन में भूमिका अदा करते हैं। उदाहरण के तौर पर कनसास (Kansas) में 1942 के बाद जब गेहूं की प्रतिरोधी किस्में लाई गई तो वहां हेशेन मक्खियों (Hessian fly) की समष्टि संख्या में बहुत जल्दी अत्यधिक कमी आई। गेहूं के पौधे का अनुवांशिक गठन बदलने पर हेशेन मक्खियों की शाकाहारी समष्टि काफी ज्यादा कम हो गई थी। दूसरा उदाहरण आस्ट्रेलिया में देखी गई मिक्सोमैटोसिस तथा खरगोश के बीच होने वाली परस्पर क्रिया का है। 1859 में आस्ट्रेलिया में यूरोपीय खरगोश लाया गया और बीस सालों में ही इस खरगोश की समष्टि बढ़कर काफी घनी हो गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इनकी संख्या को घटाने के लिए दक्षिण अमरीका से मिक्सोमैटोसिस नामक विषाणु रोग लाकर उनमें छोड़ दिया गया। इस रोग का मिक्सोमा वाइरस या विषाणु इन यूरोपीय खरगोशों के लिए बड़ा जानलेवा साबित हुआ और 99 प्रतिशत खरगोश मर गए। यह विषाणु आस्ट्रेलिया में 1951 में लाया गया था, तब से विषाणु और खरगोश दोनों में विकास क्रम जारी है। विषाणु अब हल्का पड़ गया है अतः इससे बहुत कम खरगोश मर पाते हैं और यह किसी खरगोश को मारने में काफी लम्बा समय लेता है। चूंकि मच्छर इस रोग के मुख्य वाहक हैं, इसलिए विषाणु के फैलने के लिए मृत्यु से पहले रोग की अवधि भी महत्वपूर्ण है। खरगोश भी विषाणु के लिए ज्यादा प्रतिरोधी हो गए हैं। अगर हम जंगली खरगोश को बराबर एक प्रयोगशालायी विषाणु के खतरे में रखें, तो हम देख सकते हैं कि प्राकृतिक चयन से इस रोग के प्रति खरगोश में रोधकता या लड़ने की क्षमता पैदा हो जाती है। इस तरह खरगोश तथा मिक्सोमा विषाणु तंत्र का विकास एक मध्यम दर से बढ़ता है। इसे खरगोश के लिए व्यक्तिगत स्तर पर मगर मिक्सोमा विषाणु के लिए सामूहिक स्तर पर काम कर रहे चयन से समझा जा सकता है। अधिक शक्तिशाली विषाणु समूहों की अपेक्षा कम शक्तिशाली विषाणु समूह का सामूहिक चयन होता है, क्योंकि कम शक्तिशाली विषाणु परपोषी खरगोश को मारने में अधिक समय लेते हैं।

स्वनियमित समष्टियां एक समस्या खड़ी करती हैं, जो अनुवांशिक पुनर्निवेश क्रियाविधि के कार्यक्षेत्र में नहीं आती। सवाल यह है कि कोई समष्टि स्वनियमित बनने के लिए किस तरह से क्रियाविधि का विकास कर लेती है? स्वनियमन किसी भी समष्टि के लिए एक ऐसा वांछनीय अनुकूलन है जो अपने संसाधन तथा स्रोत नष्ट करने की क्षमता रखती है।

बोध प्रश्न 6

नीचे कॉलम 2 में दिए गए कौन से लक्षण कॉलम I में दिए गए कथनों से मेल खाते हैं।

उनका सही शीर्षकों से मिलान कीजिए।

कालम-1	कालम-2
क) अनुवांशिक विविधता	i) यूरोपीय खरगोशों के लिए मिक्सोमा विषाणु बहुत ही प्राणघातक था जिसने 99 प्रतिशत खरगोशों को मार डाला।
ख) प्राकृतिक चयन के विकास संबंधी परिणाम	ii) यूरोपीय खरगोश 1859 में आस्ट्रेलिया में लाए गए थे और इनकी संख्या 20 वर्षों में काफी घनी हो गई थी।
	iii) विविधता के संरक्षण और साथ ही शहरी और औद्योगिक विकास के लिए भूदृश्यों की योजनाएं बनाई जा सकती हैं।

12.7 सारांश

आपने इस इकाई में यह पढ़ा है कि :

- समष्टि अंतरप्रजनन करने वाले जीवों का एक समूह है, जो एक खास समय में एक खास स्थान में रहते हैं। सघनता, जन्म-दर, मृत्यु-दर आदि कुछ गुण समूचे समूह के गुण माने जाते हैं न कि किसी एक जीव के।

- किसी समष्टि के सघनता जन्म-दर, मृत्यु-दर, आप्रवासन, उत्प्रवासन और समष्टि में जीवों के परिक्षेपण से प्रभावित होती है। वय सारणी में किसी समष्टि में विभिन्न आयु वर्गों में होने वाली मृत्यु-दर के आंकड़ों को सारणीबद्ध किया जाता है। इन आंकड़ों के अंकन से विभिन्न जातियों के उत्तरजीविता वक्र प्राप्त होते हैं।

- समष्टि में पूर्व-प्रजननात्मक, प्रजननात्मक और पश्च-प्रजननात्मक अवस्थाओं के वितरण में युवा और बूढ़े जीवों की सापेक्षिक संख्या होती है। आयु पिरामिड क्षैतिज पड़े बारों के ऊर्ध्व ग्राफ होते हैं, जो विभिन्न आयु वर्गों में जीवों की संख्या या उनके अनुपात को दर्शाते हैं। इनमें सबसे नए या युवा जीव सबसे नीचे और सबसे बूढ़े या सबसे अधिक उम्र वाले सबसे ऊपर होते हैं।

- किसी समष्टि में जीव का बंटन यादृच्छिक, एकसमान या झुरमुट पैटर्न में हो सकता है। ये तीनों बंटन पैटर्न, भोजन और जगह इत्यादि तरह-तरह के संसाधनों पर काफी निर्भर होते हैं।

- वृद्धि समष्टि का सबसे मुख्य या बुनियादी गुण है। समष्टि में बढ़ने या वृद्धि करने की सहज क्षमता होती है और वह घातीय वृद्धि कर सकती है। मगर कभी एक ऐसी सीमा भी आ जाती है, जिसके बाद पर्यावरणीय बाधाओं या सीमाओं के कारण कोई खास वृद्धि नहीं हो पाती। यह संतृप्त स्तर या वहन क्षमता को दर्शाता है। सभी समष्टियों में आकार में बढ़ने की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है। मगर यह वृद्धि असीमित नहीं होती और इसका नियमन कई सघनता निर्भर और सघनता निरपेक्ष कारकों द्वारा होता है।

- समष्टि की अनुवांशिक विविधता को विश्व की कृषि और वन भूमि के बड़े-बड़े हिस्सों में अधिक पैदावार देने वाली किस्मों के प्रसार में देखा जा सकता है। भू-भागों या भूदृश्यों को विविधता बनाए रखने और साथ ही शहरी और औद्योगिक विकास को खपाने के लिए नियोजित किया जा सकता है। अनुवांशिक विविधता मानव जाति की ही नहीं वरन् प्रकृति की उत्तरजीविता के लिए भी बेहद जरूरी है।

- नवीनतम अध्ययनों से पता लगता है कि विकास संबंधी बदलाव बड़ी तेजी से हो सकते हैं, जिससे विकासीय समय मान पारिस्थितिकीय समय मान के बराबर आ जाता है और उसके बाद प्राकृतिक चयन प्राकृतिक नियमन को प्रभावित कर सकता है।

12.8 अंत में कुछ प्रश्न

1) समष्टि की सघनता को मापने में क्वाड्रेट की भूमिका पर नीचे दिए स्थान में संक्षेप में चर्चा करें।

....

....

....

....

....

2) उत्तरजीविता वक्र क्या है, संक्षेप में बताइए।

....

....

....

3) नीचे दिए गए स्थान में तीन प्रकार के आयु पिरामिडों के नाम लिखिए?

....

....

....

....

....

4) वहन क्षमता से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताइए।

....

....

....

....

....

12.9 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) ii, ख) iii, ग) i, घ) iv

2) i) ×, ii) ✓ , iii) ×, iv) ✓

3) i) क) उत्प्रवासन—जीवों का बाहर को एक तरफ गमन
ख) आप्रवासन—जीवों का भीतर की ओर एक तरफ गमन
ग) प्रवासन—जीवों का आवधिक प्रस्थान और वापसी।
ii) स्थिर समष्टि का आकार समय-समय पर एक सा बना रहता है। स्थायी समष्टि तेजी से वृद्धि कर सकती है, घट सकती या फिर स्थिर हो सकती है।
iii) क) यादृच्छिक बंटन अत्यधिक समान या एक से पर्यावरण में पाया जाता है।
ख) एकसमान बंटन जहां जीवों के बीच होड़ या स्पर्धा बहुत तेज हो, वहां पाया जाता है।
ग) झुरमुट बंटन में जीव अलग-अलग समूहों में वितरित या बंटे होते हैं।

4) i) होता है, ii) वृद्धि,
iii) प्रभावित करती है, iv) है,

5) i) नियमन ii) आंतर, आकार,
iii) अंतराजातीय स्पर्धा iv) सघनता निरपेक्ष

6) i, ii)—ख) विकास संबंधी परिणाम
iii)—क) अनुवांशिक विविधता

अंत में कुछ प्रश्न

1) क्वाड्रेट पारिस्थितिकी में किसी भी आकार या आकृति के क्षेत्र हैं। किसी भी समष्टि की सघनता जानने के लिए जीव सदस्यों को विभिन्न ज्ञात आकार और संख्या के प्लाटों (भू-खंडों) में गिना या तोला जाता है और उनकी औसत सघनता ज्ञात की जाती है। इस औसत सघनता से ही पूरे क्षेत्र की सघनता निकाली जाती है।
2) उत्तरजीविता वक्र आयु के सापेक्ष मृत्यु-दर को बताने के लिए बनाए जाते हैं। इसके लिए आयु वर्ग के सामने जीवित जीवों की संख्या अंकित की जाती है। ये वक्र मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार-I में ज्यादातर जीव सदस्य लम्बे समय तक जीते हैं। तीसरे प्रकार-III के वक्र में ज्यादातर जीव कम उम्र में मर जाते हैं। दूसरे प्रकार-II का उत्तरजीविता वक्र इन दो वक्रों के बीच की अवस्था को दिखाता है।
3) आयु पिरामिड तीन तरह के होते हैं:
   i) बड़े आधार वाले पिरामिड जिनमें नए या कम उम्र वाले जीवों का प्रतिशत अधिक होता है।
   ii) त्रिभुजाकार पिरामिड जिसमें युवा तथा बूढ़े जीवों की संख्या का अनुपात संयत या सामान्य होता है।
   iii) घड़े के आकार के पिरामिड में कम उम्र के जीवों की संख्या कम होती है।
4) वहन क्षमता किसी समष्टि की सघनता में संतृप्त स्तर या अवस्था है, जिसके बाद समष्टि के आकार में कोई खास वृद्धि नहीं होती। इसे K अक्षर से व्यक्त किया जाता है। प्रति इकाई समय में किसी समष्टि में जीवों की संख्या और वहन क्षमता के बीच संबंध को निम्न समीकरण में व्यक्त किया जाता है।

$$\frac{dN}{dt} = r_m N \left(\frac{K-N}{K}\right)$$

शब्दावली

1) **अन्यत्रजनिक अनुक्रमण** (Allogenic succession): आग, तूफान या बाढ़ जैसे बाह्य जनित बलों के कारण होने वाले पारिस्थितिक परिवर्तन अथवा जातीय संरचना और समुदाय के संघटन संबंधी विकास को अन्यत्रजनिक अनुक्रमण कहते हैं।
2) **स्वजनिक अनुक्रमण** (Autogenic succession): किसी क्षेत्र में विद्यमान वनस्पति द्वारा लाये जाने वाले पारिस्थितिक परिवर्तनों या जातीय संरचना और समुदाय के संघटन संबंधी विकास को स्वजनिक अनुक्रमण कहते हैं।
3) **वहन क्षमता** (Carrying capacity) जीव जगत की वह अधिक से अधिक संख्या, जिसका पालन-पोषण उस क्षेत्र के संसाधनों से अनिश्चित काल तक हो सके।
4) **भूतलोद्भिद** (Chamaephyte): ज़मीन की सतह के करीब या कुछ ही ऊंचाई पर स्थित कलिकाओं को भूतलोद्भिद कहते हैं।
5) **अभिलक्षण विस्थापन** (Character displacement): दो समान जातियों में (जिनका अतिव्यापी सुरक्षित निकेत हो) अनुवांशिक गुणों के परिवर्तन को अभिलक्षण-विस्थापन कहते हैं। यह परिवर्तन स्पर्धी वरणात्मक बलों द्वारा होता है।
6) **चरम अवस्था** (Climax): अनुक्रमण वाला ऐसा समुदाय जो पर्यावरण की वर्तमान स्थितियों में स्व-स्थायीकरण में सक्षम हो।
7) **समुदाय** (Community) : समुदाय को जैव समुदाय भी कहते हैं। किसी निर्धारित क्षेत्र में साथ रहने वाले या अन्योन्यक्रिया करने वाले पौधों, प्राणियों और सूक्ष्म जीवों की संख्या को समुदाय कहते हैं।
8) **सह-विकास** (Co-evolution): ऐसी दो या अधिक संकरण रहित जातियों का संयुक्त विकास, जिनमें परस्पर अति निकट के पारिस्थितिक संबंध हों। ये अन्योन्यक्रियाशील जातियां विकासकाल के दौरान एक-दूसरे पर प्राकृतिक वरण के अभिकर्ता के रूप में कार्य करती हैं।
9) **सहगण** (Cohort): समान आयु वर्ग के व्यक्तियों के समूह को सहगण कहा जाता है।

10) **गूढ़ोद्भिद (Cryptophyte) :** भूपर्पटी (ज़मीन की सतह) के अंदर शल्क कंद (bulb) में गड़ी हुई कलियों को गूढ़ोद्भिद कहते हैं।

11) **डीम (Deme):** बड़ी समष्टि के अंदर स्थानीय समष्टि या अंत: प्रजनन करने वाले समूह (interbreeding group) को डीम कहते हैं।

12) **सघनता निर्भर (Density dependent) :** समष्टि सघनता के प्रभाव से घटते-बढ़ते हुए।

13) **सघनता निरपेक्ष (Density independent):** समष्टि की सघनता से अप्रभावित।

14) **विभिन्नता (Diversity):** विभिन्नता का अभिप्राय एक जैव समुदाय में विभिन्न जातियों की संख्या के परिमाण से है। जबकि बहुत-सी विभिन्न जातियां होती हैं, तो विभिन्नता अधिक होती है और जब जातियों की संख्या कम होती है, तो विभिन्नता कम होती है। विभिन्नता को हम विविधता भी कहते हैं।

15) **प्रमुख जाति (Dominant species):** किसी समुदाय की ऐसी समष्टि जिसका समुदाय में पारिस्थितिक दृष्टि से प्रमुखता हो और जिस समुदाय की संख्या तथा जैवभार सबसे अधिक हो।

16) **आस्थापन (Ecesis)** जातियों के स्थापित होने का कार्य।

17) **ईकोटोन (Ecotone):** निकटवर्ती पारिस्थितिक-तंत्र के बीच का संक्रमण क्षेत्र।

18) **सुगमीकरण मॉडल (Facilitation model) :** संक्रमण का ऐसा मॉडल, जिसमें पूर्ववर्ती समुदाय आगे आने वाले समुदाय के लिए सुगमीकरण करता है।

19) **अस्थायी जातियां (Fugitive species):** ऐसी जातियां जिनकी यह विशेषता है कि वे अस्थायी आवास बनाती हैं।

20) **जीन कोश (Gene pool):** किसी समष्टि में रहने वाले सभी व्यष्टियों के सभी जीनों का कुल योग।

21) **संघ (Guild):** समष्टियों का वह समूह, जो संसाधनों के एक नियत अनुपात का उपयोग समान रूप से करता हो।

22) **अर्ध गूढ़ोद्भिद (Hemicryptophyte):** ज़मीन की सतह के पास पाई जाने वाली सदाबहार कलियां या प्ररोह जो प्राय: घास-फूस से ढके रहते हैं।

23) **जलारंभी (Hydrarch):** आर्द्र (नमी वाले) भू-भाग पर होने वाला अनुक्रमण।

24) **महत्व मानानुपात (Importance Valve Index):** किसी समुदाय की जातियों के आपेक्षिक घनत्व, आपेक्षिक प्रमुखता और अपेक्षिक आवृत्ति का कुल योग।

25) **कीस्टोन जातियां (Keystone species):** कुछ ऐसी विशिष्ट जातियां जिनकी उपस्थिति किसी समुदाय के संगठन के लिए आवश्यक होती हैं।

26) **वयसारणी (Life Table) :** किसी समष्टि की मृत्यु-दर और उत्तरजीविता की अनुसूची को सारणीबद्ध करना।

27) **वृद्धिघात वक्र (Logistic curve):** जनसंख्या वृद्धि का एस (S) आकार का वक्र, जो पहले धीमे-चलता है, फिर सीधी ढाल वाला बन जाता और अंत में सपाट हो जाता है।

28) **वृद्धिघात समीकरण (Logistic equation):** आबादी की वृद्धि के वक्र की गणितीय अभिव्यक्ति, जिसमें वृद्धि की दर जनसंख्या (के आकार) में वृद्धि के साथ रेखीय रूप में घटती जाती है।

29) **सूक्ष्मावास (Microhabitat):** सामान्य आवास का वह भाग, जिसका उपयोग किसी जीव द्वारा किया जाता है।

30) **मॉडल (Model):** सैद्धांतिक और समुदाय पारिस्थितिकी में किसी नए तथ्य या परिघटना की भविष्यवाणी करने के लिए या मौजूदा परिघटना के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान करने के लिए प्राकृतिक परिघटना का सरलीकरण करना।

31) **मृत्यु-दर (Mortality):** किसी समष्टि में उसके व्यष्टियों की मृत्यु की दर।

32) **जन्म-दर (Natality):** किसी समष्टि में नए सदस्यों के जन्म की दर।

33) **निकेत (Niche):** समुदाय में किसी जाति की प्रकार्यात्मक भूमिका, जिसमें उसके सभी कार्यकलाप संबंध सम्मिलित हैं।

34) **निकेत विस्तार (Niche breadth):** किसी समष्टि द्वारा अधिकृत एक निकेत परिसर।

35) **दोलन (Oscillation):** किसी नियत चक्र में किसी निर्धारित बिंदु से ऊपर और नीचे नियमित रूप से उच्चावचन या उतार-चढ़ाव।

36) **पॉयनियर जातियां** (Pioneer species): ऐसे पादप, जो विक्षुब्ध स्थलों या अनुक्रमण की आरंभिक क्रम की अवस्थाओं के आरंभिक आक्रांता हैं।

37) **समष्टि** (Population): ऐसे परस्पर संबंधित व्यष्टियों का समूह, जो प्रजनन में सक्षम है।

38) **प्राथमिक अनुक्रमण** (Primary succession): अनुक्रमण, जिसमें किसी ऐसे नए स्थल पर जहां पहले कभी जीवित प्राणी नहीं थे से वनस्पतियों के विकास की शुरुआत होती है।

39) **प्रत्यास्थता** (Resilence): किसी तंत्र अथवा व्यवस्था में ऐसी सामर्थ्य होना कि वह परिवर्तनों को अपने अंदर जज़्ब अथवा अवशोषण कर सके और फिर अपनी पहले वाली स्थिति में आ जाए।

40) **द्वितीयक पादप पदार्थ** (Secondary plant substances): पौधों द्वारा उत्पादित जैविक पदार्थ जो शाकाहारियों के विरुद्ध रासायनिक प्रतिरक्षा के साधन हैं।

41) **द्वितीयक अनुक्रमण** (Secondary succession): ऐसे स्थल पर वनस्पतियों का अनुक्रमण, जहां पहले भी सजीव प्राणी रह चुके हों तथा मृदा का विकास हो चुका हो।

42) **क्रमक** (Sere): किसी विशिष्ट क्षेत्र में समुदाय परिवर्तन की क्रमिक अवस्थाएं, जो स्थिर अवस्था की ओर ले जाने वाली हों।

43) **स्थायित्व** (Stability): किसी तंत्र अथवा व्यवस्था की परिवर्तन-प्रतिरोध क्षमता अर्थात् विक्षोभ की स्थिति के बाद शीघ्र ही पुनः पूर्व-स्थिति में आने की क्षमता।

44) **अनुक्रमण** (Succession): एक जैव समुदाय के दूसरे जैव समुदाय द्वारा प्राकृतिक रूप से प्रतिस्थापन को अनुक्रमण अथवा उत्तर-परिवर्तन कहा जाता है।

45) **सह्यता मॉडल** (Tolerance model): अनुक्रमण का ऐसा सह्यता मॉडल, जिसके अनुसार अनुक्रमण से जातियों से गठित समुदाय बनता है, जो संसाधनों के दोहन में सबसे अधिक दक्ष है; कालोनी निर्माता नई कॉलोनियों की वृद्धि-दर को न तो बढ़ा सकते हैं और न ही घटा सकते हैं।

46) **शुष्कतारंभी** (Xerarch): शुष्क अथवा मरुस्थली आवास-स्थल में अनुक्रमण।

Suggested Reading

1) *A textbook of Plant Ecology*, R.S. Ambasht, Dev Jyoti Press, Varanasi, 1976.
2) *Basic Ecology*, E.P. Odum, Holt-Sauders, Japan, 1983.
3) *Communities and Ecosystem*, R.H. Whittaker, Macmillan, New York, 1975.
4) *Concept of Ecology* (third edition), E.J. Kormondy, Prentice-Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi, 1986.
5) *Ecology* (Modern Biology Series-Halt, Rinehart and Winston Inc.), 2nd Indian Edition, E.P. Odum, Mohan Primlani, Oxford and IBM Publishing Company, New Delhi, 1975.

प्रिय छात्र/छात्रा,

पाठ्यक्रम के बारे में आपकी राय जानने के लिए हमने यह प्रश्नावली तैयार की है, जो इसी खंड के लिए है। आपके उत्तर हमें पाठ्यक्रम को सुधारने में मदद करेंगे। अतः आपसे अनुरोध है कि आप शीघ्र ही हमें यह प्रश्नावली भर कर भेजें।

प्रश्नावली

एल.एस.ई. 02
खण्ड 3

नामांकन सं. | | | | | | | | | |

1) इकाइयों को पढ़ने में आपको कितने घंटे लगे?

इकाई सं.	9	10	11	12
कुल घंटे				

2) इस खंड से संबंधित कार्य को करने के लिए आपको (लगभग) कितने घंटे लगे?

सत्रीय कार्य सं.		
कुल घंटे		

3) हमारे विचार से आपके सामने 4 प्रकार की कठिनाइयां आई होंगी, उन्हें निम्नलिखित तालिका में दिया गया है। उपयुक्त कालमों से कृपया अपनी कठिनाई पर (✓) का निशान लगाइए और सही पृष्ठ संख्या लिखिए।

	कठिनाइयों के प्रकार			
पृष्ठ सं. तथा लाईन सं.	प्रस्तुतीकरण स्पष्ट नहीं है	भाषा कठिन है	चित्र स्पष्ट नहीं है	शब्दावली समझाई नहीं गई है

4) हमारा विचार है कि बोध प्रश्नों और अंत में दिये गये प्रश्नों में आपको कुछ कठिनाई हुई होगी। निम्नलिखित तालिका में हमने संभावित कठिनाईयां दी हैं। उपयुक्त कालमों में संबंधित इकाईयां और प्रश्न संख्या देते हुए अपनी कठिनाईयों पर सही (✓) निशान लगाइए।

			कठिनाई का प्रकार			
इकाई संख्या	बोध प्रश्न संख्या	अंत में दी गई प्रश्न संख्या	प्रश्न स्पष्ट नहीं हैं	दी गई जानकारी के आधार पर उत्तर नहीं दिया जा सकता	इकाई के अंत में दिया गया उत्तर स्पष्ट नहीं है	दिया गया उत्तर पर्याप्त नहीं है

5) क्या सभी कठिन परिभाषिक शब्दों को शब्दावली में दिया गया है? यदि नहीं तो कृपया नीचे दी गई जगह में उन शब्दों को लिखिये।

6) अन्य सुझाव

सेवा में,
पाठ्यक्रम संयोजक, एल.एस.ई.-02, पारिस्थितिकी
विज्ञान विद्यापीठ,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

UGZY/BY-06
पारिस्थितिकी

खंड
4

मानव तथा पारिस्थितिकी

इकाई 13
मानव विकास और जनसंख्या का सिंहावलोकन 5

इकाई 14
पारितंत्र निम्नीकरण और वन्यजीवन 27

इकाई 15
पर्यावरण : प्रदूषण, कारण, परिणाम और नियंत्रण 66

खंड 4 मानव और पारिस्थितिकी

इस पाठ्यक्रम का यह अंतिम खंड है। इसमें आप मानव और पारिस्थितिकी के तीन महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन करेंगे। इस खंड की इकाइयों में आप मुख्य रूप से पिछली इकाइयों में वर्णित पारिस्थितिकीय सिद्धांतों व संकल्पनाओं को लागू करेंगे।

इस खंड का प्रारंभ मानव विकास और जनसंख्या के सिंहावलोकन से होता है। लगभग 2 अरब वर्षों की अवधि में बदलते हुए पर्यावरण ने वास्तव में मानव जाति का विकास किया है और यह देखा गया है कि औद्योगिक क्रांति की शुरुआत के बाद ही, जनसंख्या तीव्रता से बढ़ी है। समष्टि पारिस्थितिकी की विभिन्न संकल्पनाओं को समक्ष रखकर ही इस इकाई में हमने जनसंख्या की अत्यन्त तीव्र वृद्धि और उससे संबद्ध समस्याओं पर गौर किया है। विकसित और विकासशील राष्ट्रों में विभिन्नताओं तथा विश्व जनसंख्या की भावी रूपरेखा पर भी चर्चा की गयी है।

दूसरी इकाई दो व्यापक पहलुओं—पारितंत्र निम्नीकरण और वन्यजीवन से संबंधित है। पहला पहलु मानव के विभिन्न कार्यकलापों के फलस्वरूप होने वाले पारितंत्र के निम्नीकरण से संबद्ध है और दूसरा, वन्यजीवन पर पारितंत्रीय निम्नीकरण से पड़ने वाले प्रभावों को दर्शाता है। वन्यजीवन जातियों की सुरक्षा और कल्याण वर्तमान स्थिति में चिन्ता का कारण है। इनमें से कुछ का अस्तित्व तो लगभग समाप्त हो रहा है और यदि सही समय पर उचित कदम न उठाए गए तो कुछ अन्य जातियाँ भी उसी स्थिति में पहुँच जाएंगी। आप इस इकाई में संकटग्रस्त जातियों को बचाने के लिए उठाए जाने वाले उचित संरक्षण उपायों के बारे में पढ़ेंगे। इसके अलावा आप वन्य जीवन के अनेक लाभों के बारे में भी विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस खंड की अंतिम इकाई में तीव्र गति से बढ़ते हुए प्रदूषण के कारणों और परिणामों की चर्चा की गई है। प्रदूषण के कारण हमारी वायु, जल और आहार का स्तर गिर रहा है। पिछले दो दशकों में जनसंख्या अतिरेक, औद्योगीकरण, प्रौद्योगिकीय उन्नति और मानव क्रियाकलापों के विस्तार के कारण हमारे पर्यावरण को बहुत क्षति पहुंची है।

इस इकाई में विभिन्न प्रदूषकों द्वारा पर्यावरण, जलीय पारितंत्रों, वनों तथा संसाधनों की होने वाली क्षति के कारणों पर चर्चा की गई है एवं जीवित घटकों जिसमें मनुष्य शामिल है पर विशेष ध्यान दिया गया है।

इस खंड को पढ़ने के पश्चात् आप :

- परिवर्तनशील पर्यावरण में मानव विकास पर चर्चा कर सकेंगे और वर्तमान समय में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बता सकेंगे,
- विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि में देखी गई भिन्नता के कारण दे सकेंगे और जनसंख्या वृद्धि को संसाधन प्रयोग और पर्यावरणीय निम्नीकरण से संबद्ध कर सकेंगे,
- पारितंत्र के निम्नीकरण के विभिन्न कारणों की पहचान और उनकी विवेचना कर सकेंगे,
- उन कारकों का जिन्होंने कुछ वन्य जातियों को संकटापन्न बना दिया है वर्णन कर सकेंगे और उनकी सुरक्षा के लिये उठाए जाने वाले अनिवार्य संरक्षण उपायों का वर्णन कर सकेंगे, मानव के लिए वन्यजीवन के लाभों के बारे में चर्चा कर सकेंगे,
- ठोस, तरल व गैस के अपशिष्टों की बहुत अधिक मात्रा में उत्पत्ति और इनके फलस्वरूप होने वाले वायु, जल और भूमि के प्रदूषण की विवेचना कर सकेंगे,
- विभिन्न प्रदूषकों के मानव स्वास्थ्य, पौधों, पारितंत्र सामग्री और जलवायु पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा कर सकेंगे।

अध्ययन गाइड

इकाई 14 अधिक बड़ी है, इसे पढ़ने के लिए आपको दो इकाइयों जितना समय चाहिए। औपचारिक रूप से इसे दो में विभाजित नहीं किया है। क्योंकि आप जानते हैं कि पारितंत्र के अजैविक और जैविक घटकों में गहन संबंध है। अतः हमने पारितंत्र के निम्नीकरण और वन्य-जीवन पर उसके प्रभावों को एक ही इकाई में शामिल करना उचित समझा। इसी प्रकार इकाई 15 भी बड़ी इकाई है जिसके अध्ययन के लिए भी आपको अपेक्षाकृत अधिक समय की आवश्यकता होगी। हमने वायु, जल और भूमि तीनों प्रदूषणों की इसमें चर्चा की है क्योंकि ये तीनों परस्पर घनिष्ट रूप से संबद्ध हैं।

हम याद दिलाना चाहेंगे कि आप समीक्षात्मक रूप से सभी चित्रों और तालिकाओं का भली-भाँति अध्ययन करें, परन्तु सांख्यिकीय चित्रों और आंकड़ों को मत रटिये। इसके अलावा हाशिए में दी गई टिप्पणियों को भी ध्यान से पढ़िए।

इस खंड के अंत में भी "feedback form" दिया गया है। कृपया आप इसे भर कर हमारे पास अवश्य भेजें, आपके सुझाव इस पाठ्यक्रम को सुधारने के लिए लाभप्रद होंगे।

इकाई 13 मानव विकास और जनसंख्या का सिंहावलोकन

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
13.2 पर्यावरण के संदर्भ में मानव विकास की प्रवृत्तियाँ
13.3 जनसंख्या—ऐतिहासिक दृष्टि से सिंहावलोकन
13.4 जनसंख्या वृद्धि के अभिलक्षण
चरघातांकी वृद्धि
आयु-लिंग वितरण
जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियाँ
13.5 प्रदेशवार जनसंख्या वृद्धि
13.6 जनसंख्या वृद्धि से संबंधित संसाधन उपयोग की समस्याएँ
13.7 पृथ्वी की भावी जनसंख्या का पूर्वानुमान
13.8 सारांश
13.9 अंत में कुछ प्रश्न
13.10 उत्तर

13.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 12 में समष्टि प्राचलों का अध्ययन किया और सामान्य रूप से समष्टि प्रवृत्तियों को मापने के लिए काम में लाए जाने वाले कुछ सूचकों और शब्दों से परिचित हुए। इस इकाई में आप मानव के विकास और उसकी जनसंख्या पारिस्थितिकी के बारे में सीखेंगे। आपके लिए यह समझना महत्वपूर्ण है कि किस प्रकार मानव के विकास के पूर्व ही विकास की प्रक्रियाओं द्वारा मानवों के लिए मंच तैयार किया गया और किस प्रकार उस काल के पर्यावरण द्वारा हमारी जाति को अक्षरश: आकार दिया गया।

मानव का विकासीय इतिहास लगभग 40 लाख साल पुराना है। इस विकासीय इतिहास का वर्तमान समय तक हम संक्षेप में वर्णन करेंगे। इस काल के दौरान अनुकूली विकिरणों ने पहले *होमो सेपिएन्स* के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इन विकिरणों में त्रिविम दृष्टि, सीधे दो पैरों पर खड़े होना, द्विपादी चलन, पादों की दक्षता और इन सबसे महत्वपूर्ण मस्तिष्क का परिवर्धन शामिल है। आरंभिक काल में *होमो सेपिएन्स* की उन्नति धीरे-धीरे हुई और उस काल में जनन दर भी कम थी, लेकिन बाद में वृद्धि की दर तेज हो गई।

इकाई के अगले भाग में विश्व जनसंख्या का सिंहावलोकन और तीव्र जनसंख्या वृद्धि से सम्बद्ध समस्याओं का वर्णन है। पिछले खंडों में वर्णित समष्टि पारिस्थितिकी की विभिन्न संकल्पनाओं को जनसंख्या का उदाहरण देकर विस्तार से समझाया जाएगा।

इस इकाई में हम हाल में हुए जनसंख्या विस्फोट के कुछ कारणों का पता लगाएंगे, विकसित और कम विकसित राष्ट्रों के जनसंख्या अभिलक्षणों में भिन्नताओं की जाँच करेंगे और भावी विश्व जनसंख्या को निरूपित करने की विधियों के बारे में चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- दो पैरों पर सीधे खड़े होना, द्विपादी चलन, लचीले हाथों और सम्मुख अंगुष्ठ, त्रिविम दृष्टि और मस्तिष्क के बड़े आकार की व्याख्या करते हुए, बदलते हुए पर्यावरण के संदर्भ में मानव विकास की चर्चा कर सकेंगे।
- कृषि और औद्योगिक क्रांतियों के बाद जनसंख्या में तेजी से हुई वृद्धि के कारण बता सकेंगे।

- जनसंख्या वृद्धि का पुर्वानुमान लगाने के लिए जन्म दर, मृत्यु दर, वार्षिक वृद्धि दर, कुल जनन क्षमता दर और आयु-लिंग जैसे जनसंख्या वृद्धि के मूल परिमाणों को बता सकेंगे और उनका उपयोग कर सकेंगे।
- भिन्न-भिन्न प्रदेशों में जनसंख्या वृद्धि में विविधता के कारण बता सकेंगे और जनसांख्यिकीय संक्रमण की संकल्पना की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनसंख्या आकार, संसाधन उपयोग और पर्यावरणीय निम्नीकरण के बीच संबंध की चर्चा कर सकेंगे।

13.2 पर्यावरण के संदर्भ में मानव विकास की प्रवृत्तियाँ

आप एफ.एस.टी. 01, खंड 3 की इकाई 13 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि मानव का विकास कैसे हुआ। *होमो सेपिएन्स* (मानव) स्तनी गण (mammaliam order) प्राइमेट में आता है। इस गण में वृक्ष श्रू, टार्सियर, लीमर, लोरिस, बंदर और कपि (ape) भी शामिल हैं (देखिए तालिका 13.1)।

तालिका 13.1 : गण प्राइमेट का वर्गीकरण

क	उपगण	प्रोसिमिआई (कपि से पहले) : वृक्ष श्रू, लीमर, लोरिस, वुश बेबी, टार्सियर
ख	उपगण	एन्थ्रोपॉडिया : बंदर, कपि, मानव
	अधिकुल	सेबाइडिया : नवीन विश्व वानर
	अधिकुल	सर्कोपिथोकॉइडिआ : प्राचीन विश्व वानर
	अधिकुल	होमिनॉयडिया :
	कुल	एन्थ्रोपाइडि : मानवाम, कपि, गिबन, ऑरेन्गउटैन, गोरिल्ला, चिम्पैन्जी
	कुल	होमिनिडी : *ऑस्ट्रालोपिथिक्स* (विलुप्त पूर्वमानव) *होमो इरेक्टस, हो. निएन्डरथैलेन्सिस, हो, सेपिएन्स*

सर्वाधिक विशिष्ट प्राइमेट अनुकूलन तंत्रिका तंत्र और मस्तिष्क के उन भागों के परिवर्धन में पाया जाता है जो अधिकाधिक पेशीय दक्षता और बुद्धि के लिए उत्तरदायी हैं।

प्रारंभिक प्राइमेटों में एक हाथ के बाद दूसरा हाथ रख कर चलने की क्रिया के अभिग्रहण के लिए अनेक पेशीय परिवर्तनों और आंतरिक अंगों के स्थापन में परिवर्तनों की ज़रूरत थी। इन अनुकूलनों से सीधे खड़े होने में सहायता मिली और प्राइमेट द्विपादी चलन की ओर अग्रसर हुए, जो आज की मानव जाति के अभिलक्षण हैं। प्राइमेटों के प्रत्येक पाद में 5 अंगुलियाँ (अंगुलियाँ और पादांगुलियाँ) होती हैं। इनमें पेड़ की शाखाओं या खाद्य को मजबूती से पकड़ने में मदद करने के लिए कम से कम एक-एक अंगुली दूसरों के सम्मुख होती है। अंगुलियों के सिरों सुग्राही तल्पों (sensitive pads) होते हैं और नखर (claws) की जगह नाखून होते हैं। प्राइमेटों में कस कर पकड़ने की क्षमता में श्रेणीकरण चित्र 13.1 में दिखाया गया है। ध्यान दीजिए कि मानव में पूरी तरह से सम्मुख अंगुष्ठ होता है।

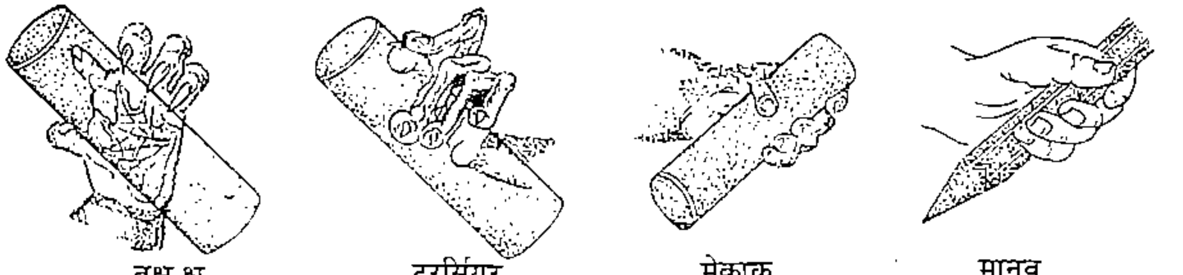

चित्र 13.1 : एक वृक्ष श्रू की अपेक्षाकृत अचल अंगुलियों से लेकर मानव में सम्मुख अंगुष्ठ दर्शाते हुए प्राइमेटों के हाथ।

प्राइमेटों के इतिहास में एक समय ऐसा आया जब उनमें से कुछ को पेड़ों से नीचे उतरना पड़ा। ऐसा उन्हें उस समय के पर्यावरण की वजह से करना पड़ा। एक दीर्घकालीन सूखा पड़ा, जिसकी अवधि 6 करोड़ साल से लेकर 4 करोड़ साल तक थी। यह काल कम ऊँचाई के वनस्पति के रूपो

के लिए अनुकूल रहा। वनस्पति जो प्रेअरी या सवाना में पाई जाती है। वृक्षों के कम होने के साथ-साथ वृक्षीय आवास शायद बहुत घनी आबादी वाला और कम वांछनीय बन गया होगा। संभवतया जलवायु संबंधी परिवर्तनों से फलों के उत्पादन में भी कमी आयी होगी। वस्तुतः हुआ यह कि जैसे-जैसे घने जंगलों के निकेत सुकड़ते गए वैसे-वैसे सवाना के निकेत फैलते गए। इस प्रकार, वृक्ष वासी प्राइमेटों में जो अनुकूली लक्षण शुरू हुए उनमें सवाना के विस्तारित निकेतों में रहने से और अधिक परिवर्तन आए। यह पर्यावरण *होमो सेपिएन्स* को जन्म दे रहा था। जिन अनुकूलनों ने प्राइमेटों को पेड़ों की शाखाओं को मजबूती से पकड़ने के योग्य बनाया, आखिर में उन्हीं अनुकूलनों ने हाथ के औजार बनाने और ऐसे नाजुक परिचालन की योग्यता दी जिसमें हाथ और आँख के समन्वय की जरूरत पड़ती है। तंत्रिका तंत्र का यह विकास आदि प्राइमेटों की वृक्षीय या पेड़ों पर रहने की जीवन शैली से जुड़ा हुआ है। पेड़ों पर रहने वाले प्राणी को एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदने के लिए पेशीय दक्षता और एक पैनी दृष्टि की आवश्यकता होती है। अधिकतर प्राइमेटों की दोनों आँखें आगे की ओर होती हैं और इसलिए एक ही चीज को देखती हैं।

दो अध्यारोपित बिम्ब (superimposed images) त्रिविम दृष्टि या गहराई का बोध करने की योग्यता देते हैं। विकास के दौरान प्राइमेटों की थूथन धीरे-धीरे छोटी होती गई। संभवतया यह एक ऐसा अनुकूलन था जिससे आँख आगे की तरफ अच्छी तरह से देख सके। दंतविन्यास (dentation) में परिवर्तन से जबड़े छोटे हो गए।

आप अपने गहराई बोध की तुलना सुई में धागा डालते समय एक आँख और दोनों आँखों को काम में लाते हुए कर सकते/सकती हैं।

मानव के विकास का जीवाश्म (फॉसिल) रिकॉर्ड काफी अधूरा है और हमें अभी भी बहुत कुछ जानना है। सीनोजोइक महाकल्प (cenozoic era) के दौरान प्राइमेटों के उद्भव और आधुनिक मानव के विभिन्न जीवाश्म रूपों से संबंध की एक प्रयोगात्मक रूपरेखा चित्र 13.2 में दी गई है।

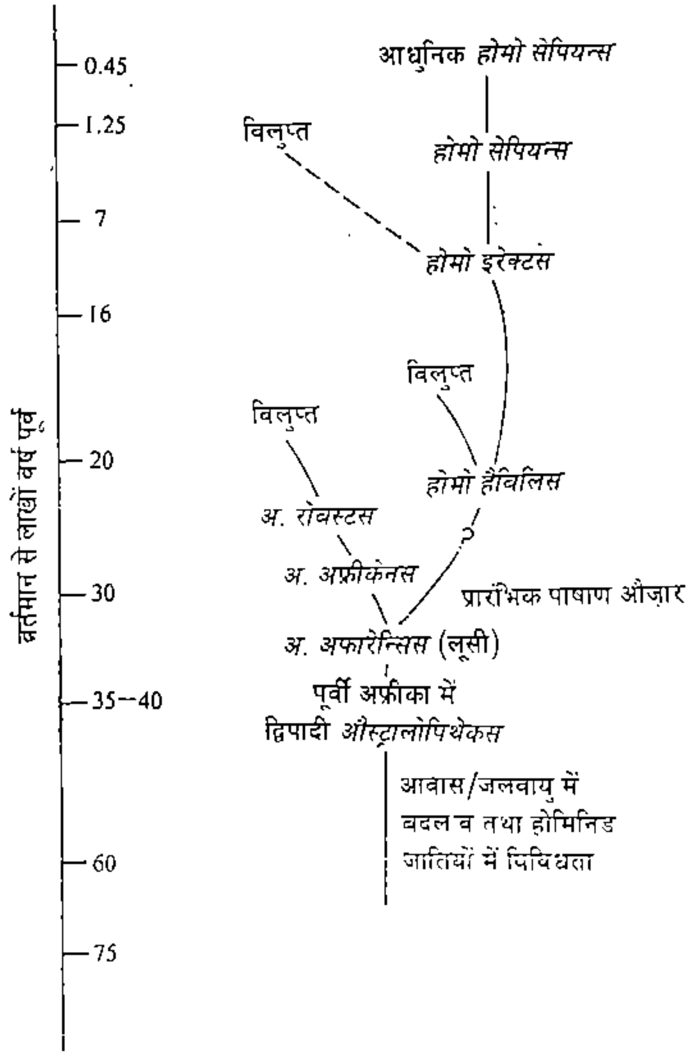

चित्र 13.2 : मानव विकास और समय के अनुसार आधुनिक मनुष्य के कुछ प्रसिद्ध पूर्वजों का युक्तियुक्त दिखाने वाला प्रतिरूप।

लगभग 500,000 से 1,000,000 वर्ष पूर्व *ओस्ट्रेलोपिथिकस ऐफैरेन्सिस* के कुछ समय बाद जीवाश्म रिकार्डों में *होमो इरेक्ट्स* पहली जाति के रूप में मिला जिसका अस्तित्व मानव जैसा था। *होमो सेपिएन्स* का आगमन हाल ही में 100,000 से 40,000 वर्ष पूर्व हुआ। *होमो सेपिएन्स* अपने बेहतर परिवर्धित मस्तिष्क और औजारों के कारण अन्य जातियों के मुकाबले में अच्छा प्रतियोगी साबित हुआ और इसके फलस्वरूप यह जीवित बचा रह सका (चित्र 13.3)।

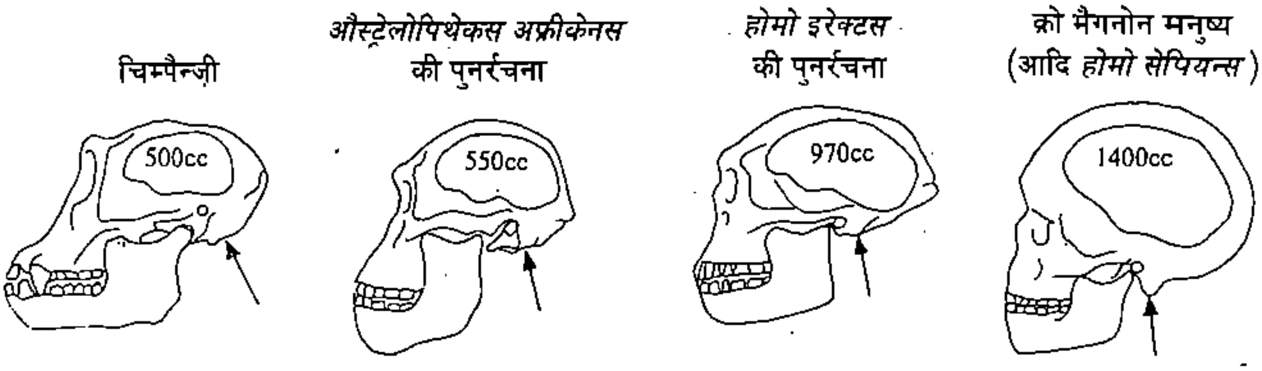

चित्र 13.3 : चिम्पैंजी की खोपड़ी से लेकर मानव खोपड़ी तक आए परिवर्तन। मस्तिष्क का आकार धीरे-धीरे बढ़ा (cc = घन सें.मी.) जैसे-जैसे मानवसम अधिकाधिक सीधे होते गए वह स्थान जहाँ गर्दन सिर से जुड़ती है (तीर से दिखाया गया) खिसका, और शाकाहारी के बदले सर्वभक्षी (omnivorous) आहार के कारण दाँतों और जबड़ों का आकार कम हो गया।

हमारे मानव पूर्वजों की बाहरी आकृति में परिवर्तन धीमे और सूक्ष्म थे। मानव जाति के आगे के विकास को अंतरजातीय सहयोग और संस्कृति द्वारा बढ़ावा मिला, जिसके फलस्वरूप जननात्मक (reproductive) सफलता में धीरे-धीरे वृद्धि हुई।

मानव जाति की सफलता का श्रेय पारिस्थितिकीय अनुकूलनशीलता को भी दिया जा सकता है। हमारे पास कोई विशेष शारीरिक योग्यता नहीं है लेकिन दूसरी प्राणी जातियों में मौजूद हर योग्यता का थोड़ा बहुत अंश हम में है। मानव तैर सकते हैं, दौड़ सकते हैं, ऊँचाइयों तक चढ़ सकते हैं लेकिन दूसरे जीव भी हैं जो यह सब ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हैं। तथापि, कोई भी दूसरी जाति वह सब नहीं कर सकती जो हम कर सकते हैं। क्योंकि हमारा जीवन सहयोगी पारस्परिक क्रियाओं पर आधारित है इसलिये, हम में से केवल एक ने ही पहिए का आविष्कार किया और हम सब उसका उपयोग कर सके।

मानव शिविर स्थलों के पुरातात्विक रिकॉर्डों से संकेत मिलते हैं कि आदि मानव ने पहले शिकारियों के छोटे झुंडों को बनाकर निकलना शुरू किया। ये शिकारी शिकार के साथ-साथ खाने वाली वस्तुओं को भी इकट्ठा करते थे। लगभग 10,000 साल पहले जब एक बार कृषि की शुरुआत हो गई तो आखेट-संग्रहण संस्कृति से हट कर मनुष्य खेती करने लगा। मानव ने 8000 ई.पू. के आसपास खेती-बाड़ी का काम गंभीरता से करना शुरू किया। खेती पहले पहल मध्य-पूर्व एशिया के समीप और दक्षिण पश्चिमी एशिया के भागों में शुरू की गई और 4000 ई.पू. के तुरंत बाद ही अनेक स्थानों पर पूरे पैमाने पर खेती होने लगी।

भोजन के लिए खेती की ओर झुकाव मानव जाति के लिए अत्याधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि पौधे प्राथमिक उत्पादक हैं और जैसा कि आप खंड 2 में पढ़ चुके हैं, पौधे खाद्य शृंखला का आधारभूत भाग है। जब खाद्य द्वारा प्राप्त ऊर्जा एक पोषण स्तर से दूसरे पोषण स्तर तक जाती है तो हर स्थानांतरण के साथ उपलब्ध ऊर्जा का लगभग 90 प्रतिशत भाग नष्ट हो जाता है। यह आज भी सही है कि अगर फसल भेड़ों को खिलाई जाए और मनुष्य इन भेड़ों को खाए तो बहुत कम लोगों को भोजन मिलेगा। इसकी तुलना में शाकाहारी भोजन से कहीं अधिक लोगों का पेट भर सकता है। इसके अलावा जब शिकार करना संभव न हो तब प्रतिकूल समय के लिए मांस की बजाय अन्न और फलियों का ज्यादा आसानी से भंडारण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कई अन्य कारणों से कृषि ने स्थाई जनसंख्याओं की स्थापना करने में सहायता दी और निर्वाह के लिए काम करने की प्रक्रिया में कम समय लगने लगा। इससे मानवों को आविष्कार में लगे रहने और प्रौद्योगिकी को विकसित करने के लिए अधिकाधिक सुअवसर मिले। यह एक ऐसी प्रौद्योगिकी थी जिसने मानव जनसंख्या के जीवित बने रहने और वृद्धि को बहुत ही ज्यादा प्रभावित किया।

बोध प्रश्न 1

1) नीचे दिए गए उत्तरों में से सही उत्तर छाँटिए :

क) धागे में गांठ बाँधने की योग्यता किस अनुकूलन का नतीजा है?

i) पेशीय शक्ति

ii) कस कर पकड़ने की शक्ति

iii) त्रिविम दृष्टि

iv) ऊपर के सभी

v) ii और iii

ख) निश्चित रूप से मानव की तरह रहने वाली पहली मानवसम जाति (होमिनॉइड जाति) कौन-सी थी?

i) *औस्ट्रालोपिथेकस ऐफारेन्सिस*

ii) *होमो इरेक्ट्स*

iii) *होमो सेपिएन्स*

iv) *होमो हैबिलिस*

ग) किस कारण भूतकाल में मानव कठोर जलवायु परिवर्तनों में जीवित बचा रहा?

i) ज़मीन पर रहने की उसकी विशेषज्ञ योग्यता

ii) सामान्यज्ञ परम्परा

iii) औज़ार बनाने की योग्यता

iv) शाकाहारी भोजन

13.3 जनसंख्या–ऐतिहासिक दृष्टि से सिंहावलोकन

पूरे इतिहास में जनसंख्या काफी कम रही है। यह अपेक्षाकृत धीरे-धीरे बढ़ी है और यदा-कदा इसमें गिरावट भी आई है। चित्र 13.4 में पिछले पाँच लाख सालों में जनसंख्या वृद्धि की सामान्य प्रवृत्ति दिखाई गई है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कृषि के आगमन से प्रमुख भूमंडलीय पर्यावरणीय परिवर्तनों का सिलसिला शुरू हुआ। जैसे-जैसे खेती-बाड़ी में अधिक सफलता प्राप्त होने लगी महिलाएँ अधिक बच्चों को जन्म देने लगीं और जनसंख्या बढ़ी। एक ज़मीन के क्षेत्रफल में अधिक अनाज उगाना संभव हुआ। आखेट-संग्रहकर्ता अधिकतर खानाबदोश थे और उनके रहन-सहन के तरीके में बच्चों से कोई मदद तो नहीं मिलती थी, वरन् शिशु एक जिम्मेदारी ही थे। जबकि, एक स्थिर कृषि प्रधान समाज में शिशु ज्यादा मुसीबत नहीं बनते और बच्चे खेती-बाड़ी में हाथ बंटाते हैं। इसलिए 10,000 ई.पू. और लगभग 1800 ईस्वी के बीच हुई जनसंख्या वृद्धि बढ़ती हुई जन्म दर का नतीजा थी, जो कृषि की वृद्धि के साथ हुयी।

लेकिन हमारे पूर्वज प्रतिकूल पर्यावरण का सामना नहीं कर पाते थे। प्रायः खाद्यान्न की कमी थी और अकाल तथा महामारी से बहुत से लोगों की मृत्यु हो जाती थी। इस तरह मृत्यु दर अधिक होने के कारण जनसंख्या वृद्धि कम बनी रही। ऐसा माना जाता है कि चौदहवीं शताब्दी के दौरान गिल्टी (bubonic) प्लेग ने यूरोप और एशिया की आधी से भी ज्यादा आबादी को खत्म कर दिया। यह चित्र 13.4 (क) में दिखाया गया है।

1800 ईस्वी के बाद जनसंख्या की दर में दूसरी तथा महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। यह वृद्धि औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ हुई। शहर तेजी से आबाद हुए, सामान और सेवाएँ अधिक सुगमता से मिलने लगीं। आयुर्विज्ञान में प्रगति और स्वच्छता में सुधार से मृत्यु दर में बहुत ज्यादा कमी हुई, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या में चरघातांकी (exponential) वृद्धि हुई। चित्र 13.4 (ख) से हमें यह भी पता चलता है कि जनसंख्या को एक अरब तक पहुँचने के लिए कई हज़ार साल लगे। ऐसा लगभग 1850 में हुआ। इसकी तुलना में केवल 80 साल में आबादी दुगुनी अर्थात् 2 अरब हो गई

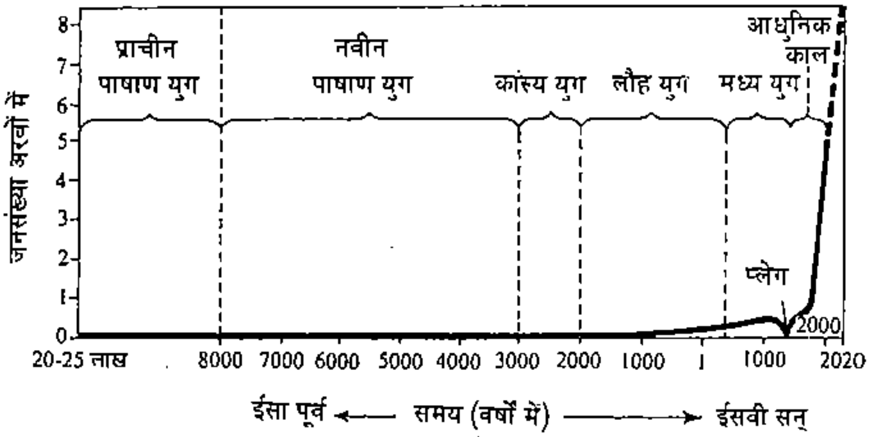

(क)

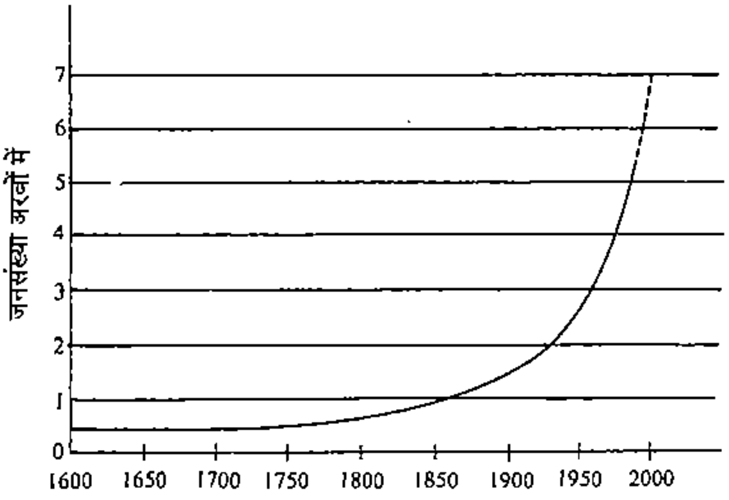

(ख)

चित्र 13.4 : (क) पिछले 5 लाख सालों में जनसंख्या की वृद्धि। पिछले 2000 सालों में विश्व जनसंख्या में तेज़ी से होने वाली बढ़ोत्तरी को देखिए। (ख) पिछले 400 सालों में मानव जनसंख्या में वृद्धि।

और 45 साल बीते भी नहीं थे कि यह चौगनी यानी 4 अरब हो गई। इस तरह हम देखते हैं कि हम जनसंख्या वृद्धि के ऐसे युग में रह रहे हैं, जो मानव अस्तित्व के काल के दौरान असमान रहा।

आइए अब हम जनसंख्या वृद्धि का अध्ययन करें और तब इस जनसंख्या विस्फोट का भविष्य पर पड़ने वाले प्रभाव की जाँच करेंगे।

बोध प्रश्न 2

सही उत्तर चुनिए :

जनसंख्या विस्फोट मुख्य रूप से किस कारण हुआ है?

क) जन्म दर में वृद्धि के कारण

ख) औद्योगिक क्रांति के कारण

ग) उन्नत पोषण और स्वच्छता के कारण जिसके फलस्वरूप मृत्यु दर में कमी आई

घ) महिलाओं की शिक्षा के कारण।

13.4 जनसंख्या वृद्धि के अभिलक्षण

जनसंख्या में वृद्धि उसी ढंग से होती है जैसे कि किसी और जीव की आबादी बढ़ती है। इस प्रकार आपने इकाई 12 में समष्टि वृद्धि के जिन सिद्धांतों का अध्ययन किया, वे मानव जाति पर भी लागू होते हैं।

जनसंख्या वृद्धि को मापने का सबसे आसान तरीका पिछली तारीख की जनसंख्या को बाद वाली जनसंख्या में से घटाना है। आइए हम 1950-1986 के दौरान 36 सालों में भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका की आबादियों का उदाहरण लेते हैं :

जनसंख्या करोड़ों में

	भारत	**संयुक्त राज्य अमेरिका**
1986	785	241
1950	360	152
	425	86

ये भिन्नताएँ क्या दर्शाती हैं? ये दर्शाती हैं कि हालाँकि अमेरिका की सम्पदा भारत से कई गुना ज्यादा है और उसका भूमि क्षेत्रफल भारत से तीन गुना बड़ा है फिर भी भारत की तुलना में उसकी जनसंख्या में एक-चौथाई बढ़ोत्तरी हुई। जनसंख्या वृद्धि आम तौर पर निरपेक्ष (absolute) संख्याओं में नहीं मापी जाती, बल्कि औसत वार्षिक वृद्धि दर निम्न प्रकार से परिकलित की जाती है :

$$\text{औसत वार्षिक वृद्धि दर (प्रतिशत)} = \frac{\text{अंतिम वर्ष में जनसंख्या} - \text{आरंभिक वर्ष में जनसंख्या}}{\text{आरंभिक वर्ष में जनसंख्या} \times \text{वर्षों की संख्या}} \times 100$$

1950 से 1986 तक भारत की जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धि–

$$\text{औसत वार्षिक वृद्धि दर} = \frac{(785 \times 10^6 - 360 \times 10^6)}{360 \times 10^6 \times 36} \times 100$$

= 3.3 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।

इसी ढंग से आप उसी काल के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका की औसत वार्षिक वृद्धि दर परिकलित कर सकते हैं (यह 1.69 प्रतिशत प्रति वर्ष थी)। हालांकि 1.2 या 4 प्रतिशत की वृद्धि दर सुनने में ज्यादा नहीं लगती लेकिन इन छोटी संख्याओं से बहुत बड़ा फर्क पड़ जाता है। प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के महत्व को समझना उस समय आसान हो जाता है जब हम संगत द्विगुणनकाल (doubling time) यानी दुगुने होने वाले समय को ध्यान में रखें। अगर वर्तमान वार्षिक वृद्धि बिना बदले रहे तो जनसंख्या के आकार को दुगुना होने में जो समय लगता है वह द्विगुणन काल कहलाता है। उदाहरण के लिए अगर जनसंख्या एक प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ रही है तो वह 70 साल में दुगुनी हो जाएगी। अगर 2 प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ रही है तो उसे दुगुना होने में 35 साल लगेंगे। द्विगुणन काल को परिकलित करने की आसान व सरल विधि 70 की संख्या को प्रतिशत वृद्धि दर से भाग देना है अर्थात्

$$\text{द्विगुणन काल} = \frac{70}{x} \quad \text{जहाँ}$$

x = प्रतिशत वृद्धि दर

उदाहरण के लिए 1987 में विश्व जनसंख्या का द्विभवन काल 41 साल था (70/1.7 = 41)।

वृद्धि की दर से द्विगुणनकाल अभिकलित (compute) करने के लिए हम बैंक में चक्रवृद्धि ब्याज से एक अनुरूपता पर विचार करते हैं। अगर वृद्धि की दर (बैंक में ब्याज दर) जनसंख्या का आकार P_o (बैंक में पूँजी) पर साल में एक बार लगाई जाती है तो वर्ष के अंत में जनसंख्या (पूँजी) इस प्रकार होगी :

$P_1 = P_o + P_o r = P_o (1 + r)$

अगर जनसंख्या वृद्धि दर में n बार (times) संयोजित (compounded) की जाती है तब t वर्ष में जनसंख्या

$P_t = P_o (1 + r/n)^{nt}$ है।

यह मानना युक्तिसंगत है कि जनसंख्या लगातार बढ़ती है अर्थात् n = £

प्रारंभिक कलन (calculus) से $\lim n \to £ (n + r/n)^{nt} - e^{rt}$ द्विगुणन काल समीकरण $2 P_o = P_o e^{rt}d$ का हल है।

अथवा समीकरण के दोनों ओर लॉगरिथम लेने पर $td = 0.693/r$

या $\frac{.70}{r}$

अथवा 70 प्रतिशत वृद्धि दर

वृद्धि की औसत दरों और द्विगुणन काल से हमें यह पता चलता है कि जनसंख्या कितनी तेजी से बढ़ रही है लेकिन जनसंख्याओं का आकार भविष्य में क्या होगा, यह बताने के लिए इतनी सूचना पर्याप्त नहीं है। जनसांख्यिकीविद (demographer) की रुचि दी गई जनसंख्या में होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं की संख्या में है। जन्म, मृत्यु, विवाह, प्रवास आदि ऐसी ही घटनाएँ हैं जो एक दिए गए समय में घटित होती हैं।

जैसा कि आपको इकाई 12 से पहले से ही पता है, जन्म दर और मृत्यु दर जनसंख्या वृद्धि के दो मूलभूत माप हैं। जनसंख्या में परिवर्तनों का वर्णन करने के लिए जनसांख्यिकीविद कुल जन्म और मृत्यु की बजाय **अशोधित** (crude) **जन्म दरों** और **अशोधित मृत्यु दरों** को काम में लाते हैं। अशोधित दरें किसी दिए गए वर्ष के मध्य बिंदु पर प्रति 1000 जीवित जन्मों और मृत्यों को बताती है क्योंकि यह उस वर्ष की औसत जनसंख्या को निरूपित करती है। इनके बीच का अंतर **प्राकृतिक वृद्धि दर** है।

प्राकृतिक वृद्धि दर = जन्म दर – मृत्यु दर

मान लीजिए किसी देश में x वर्ष में लगभग 225,000 व्यक्ति हैं। वहाँ 2600 जन्म और 1600 मृत्यु हुई।

जन्म दर $\frac{\text{जीवित जन्मों की संख्या}}{\text{मध्य वर्ष जनसंख्या}} \times 1000$ थी।

या $\frac{2600}{225{,}000} \times 1000 = 11.1$ जन्म प्रति 1000 व्यक्ति।

मृत्यु दर $\frac{\text{मृत्यु की संख्या}}{\text{मध्य वर्ष जनसंख्या}} \times 1000$ थी।

या $\frac{1600}{225{,}000} \times 1000 = 7.1$ मृत्यु प्रति 1000 व्यक्ति।

और वार्षिक वृद्धि दर = 11.1–7.1 = 4 प्रति हजार अथवा 0.4 प्रतिशत। चित्र 13.5 में सम्पूर्ण विश्व और अलग-अलग देशों के समूहों के लिए 1987 में अशोधित जन्म दरें तथा मृत्यु दरें दिखाई गई हैं।

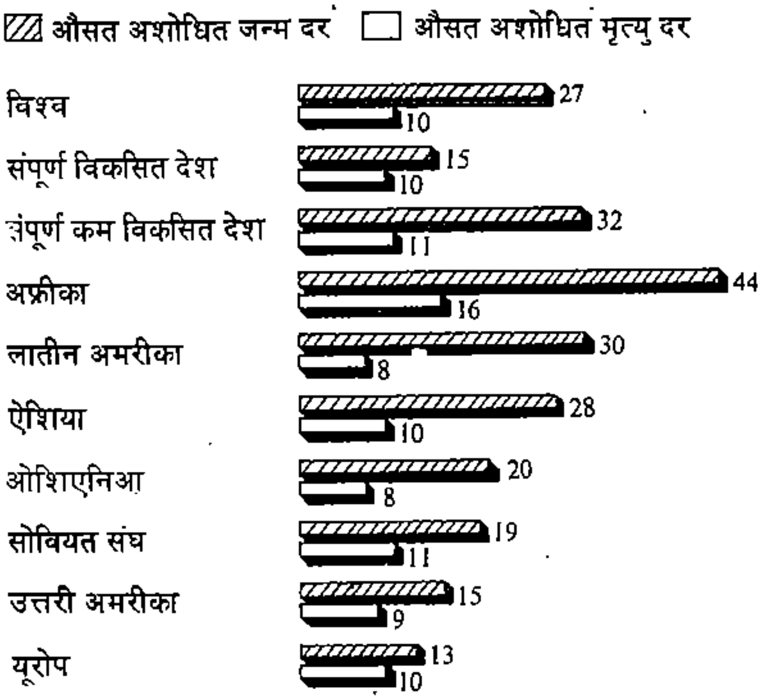

चित्र 13.5 : वर्ष 1987 में विभिन्न देशों की प्रति 1000 औसत अशोधित जन्म दरें और मृत्यु दरें (आँकड़े पॉपुलेशन रेफरेन्स ब्यूरो से लिए गए हैं)

बोध प्रश्न 3

1) चित्र 13.5 में दिए गए आँकड़ों से अफ्रीका, एशिया और यूरोप के लिए प्राकृतिक वृद्धि का प्रतिशत परिकलित कीजिए।

....

....

....

....

....

13.4.1 चरघातांकी वृद्धि

जनसंख्या कैसे बढ़ती है यह समझने से पहले इकाई 2 स चरघातांकी वृद्धि की संकल्पना को फिर से पढ़ना उपयोगी रहेगा। आपको यह याद रखना चाहिए कि चरघातांकी वृद्धि से छोटे समय

में ही विशाल संख्याएँ जन्म ले सकती हैं। उदाहरण के लिए, अगर विश्व की जनसंख्या के लिए द्विगणन काल 40 वर्ष है तब इसी दर से सन् 2090 तक जनसंख्या 32 अरब होगी।

चरघातांकी रूप से बढ़ने वाले प्राणियों की आबादी उनके आवास की वहन क्षमता को पार कर सकती है। इसी तरह, कुछ संसाधनों के संदर्भ में मानव की आबादी उन संसाधनों की क्षमता को लांघ जाएगी। यह समझना उपयोगी रहेगा कि जैसे-जैसे जनसंख्या चरघातांकी रूप से बढ़ती है, वैसे-वैसे जल, खाद्य, उर्वरक, आवास और चिकित्सा संबंधी देखभाल, खनिज आदि संसाधनों की माँग भी चरघातांकी रूप से बढ़ती है और इसी तरह हवा, मिट्टी और पानी में छोड़े जाने वाले कार्बनिक और अकार्बनिक व्यर्थ पदार्थों की मात्रा भी चरघातांकी रूप से बढ़ती जाती है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। इस प्रकार, चरघातांकी वृद्धि दर में थोड़ी-सी कमी भी जनसंख्या को पृथ्वी की वहन क्षमता के भीतर ही बनाए रखने के प्रयासों में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

13.4.2 आयु-लिंग वितरण

चरघातांकी वृद्धि का अध्ययन करते समय हमारे लिये केवल जन्म और मृत्यु दरों की ही जानकारी होना पर्याप्त नहीं है क्योंकि ये दरें आयु और लिंग के साथ-साथ बदलती रहती हैं।

जनसंख्या में आयु संरचना महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्तियों की आयु में भिन्नता होती है और अनेक प्रकार्यात्मक पहलू आयु से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, महिलाएँ केवल 15-44 वर्ष की आयु के बीच ही गर्भ धारण कर सकती हैं। मध्यम आयु के व्यक्तियों की तुलना में शिशुओं (एक साल से नीचे की उम्र वाले बच्चे) और वृद्धों में मृत्यु दर अधिक है। इसके अनुसार जनसंख्या को तीन उप-समूहों में बाँटा जा सकता है :

- जनन पूर्व (prereproductive) – (0-14 वर्ष)
- जननीय (reproductive) – (15-44 वर्ष)
- जननोत्तर (post reproductive) – (45 वर्ष और उससे ऊपर)

आयु-संरचना को और विस्तार से समझने के लिए जनसंख्या के व्यक्तियों को 5 या 10 साल के अंतराल से आयु समूहों में बाँटा जाता है।

इसके अलावा पुरुषों और स्त्रियों को आरेख में अलग-अलग दिखाया जा सकता है। दूसरी ओर, आयु-लिंग वितरण को प्रत्येक समूह में प्रत्येक लिंग की जनसंख्या के प्रतिशत के आलेखन (plotting) द्वारा भी दिखाया जा सकता है।

चित्र 13.6 में भारत, फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी में 1984 में आयु-लिंग वितरण दिखाया गया है।

जिस आयु-संरचना आरेख का आधार बहुत चौड़ा है, जैसा कि भारत का है (चित्र 13.6 (क)) से निम्नलिखित का पता चलता है :

क) हाल के वर्षों में जन्म दरें बहुत अधिक रही हैं। जनसंख्या में अनेक तरुण बच्चे हैं और ये बच्चे निकट भविष्य में जनन-आयु वाले हो जाएंगे। इस तरह की जनसंख्या से बहुत तेज़ी से बढ़ने की आशा की जा सकती है।

ख) आरेख का ऊपरी संकरा भाग संकेत देता है कि जनसंख्या का छोटा-सा प्रतिशत वृद्ध है या बुढ़ापे की ओर पहुँचने वाला है। इसलिए, छोटी-सी कालावधि में मृतकों की कुल संख्या अपेक्षाकृत कम होगी। इस प्रकार, जब जन्म की संख्या बढ़ जाती है और मृतकों की संख्या स्थिर बनी रहती है तब ऐसी आशा की जा सकती है कि जनसंख्या तेज़ी से बढ़ेगी।

फ्रांस में (चित्र 13.6 ख) जन्म दरों में गिरावट आई है, जिसकी वजह से 0 और 35 वर्ष की आयु के बीच के प्रत्येक आयु समूह में व्यक्तियों की संख्या बराबर है। दस साल बाद जनन-आयु समूह में पुरुषों और महिलाओं की संख्या लगभग बराबर होगी। निकट भविष्य में जनसंख्या काफी कुछ स्थिर रहेगी।

पश्चिम जर्मनी में 1984 तक (चित्र 13.6 ग) पिछले कुछ दशकों में जन्म दरें काफी कम रही हैं। इसलिए तरुण प्रौढ़ों के बजाय शिशु और बालकों की संख्या कम रही है। (दस वर्ष पहले की तुलना में दस वर्ष बाद जनन-समूह में और कम लोग होंगे।) अगर यह प्रवृत्ति बनी रहती है तो अंततः इस प्रदेश की जनसंख्या घट जाएगी।

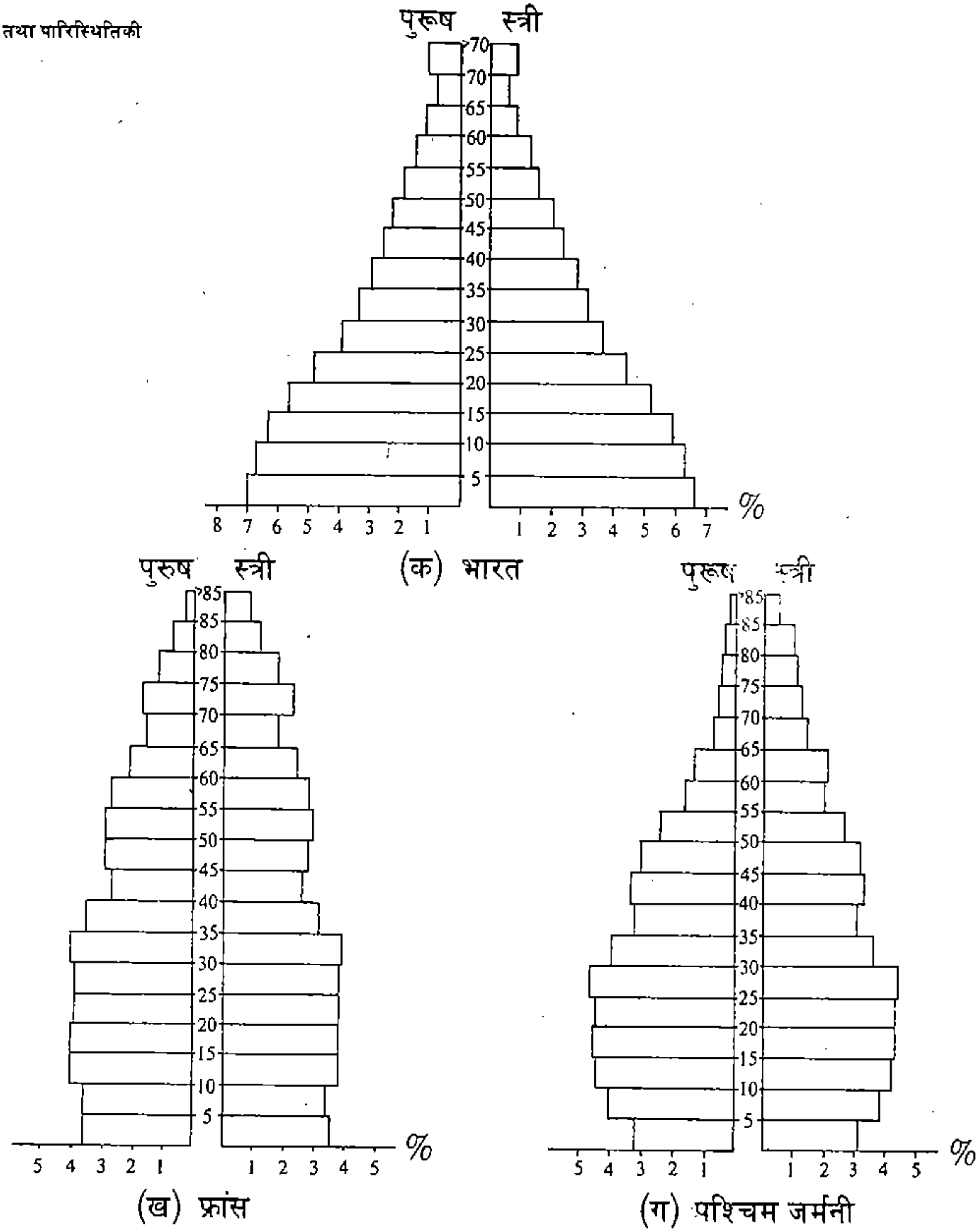

चित्र 13.6 : तीन राष्ट्रों के लिए आयु-लिंग वितरण, भारत (क) बढ़ती हुई जनसंख्या; फ्रांस (ख) स्थिर जनसंख्या; पश्चिम जर्मनी (ग) गिरती हुई जनसंख्या

(स्रोत : यू.एन. डेमोग्राफिक ईयर बुक, 1984)

जनन (child bearing) आयु समूहों के आकलन से उपयोगी सुराग तो मिलते हैं, लेकिन कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती। उदाहरण के लिए स्वीडन में 1910 में महिलाओं के आयु-वितरण का चौड़ा आधार था। 1930 के लिए भी स्वीडन में महिलाओं में वैसे ही आयु-वितरण पैटर्न की अपेक्षा की जा सकती है। फिर भी, 1930 में आधार छोटा हो गया (चित्र 13.7)। प्रथम विश्व युद्ध के कारण उपयुक्त पुरुष कम थे और इस प्रकार विवाह कम हुए और बच्चे भी कम पैदा हुए। इसलिए भविष्य के परिवर्तन का अनुमान लगाने के लिए अतिरिक्त सूचकों की आवश्यकता है।

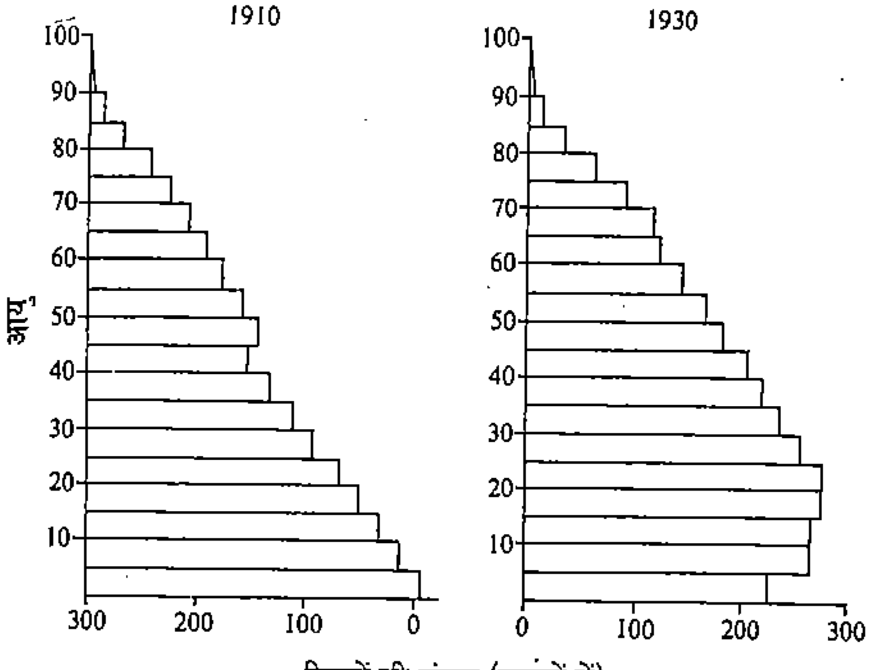

चित्र 13.7 : स्वीडन में 1910 और 1930 में महिला आयु वितरण

मृत्यु दरों से जनसंख्या का केवल व्यापक अनुमान लगाया जा सकता है। परन्तु, जनन-पूर्व या जनन-आयु समूह में व्यक्ति की मृत्यु का जनसंख्या की वृद्धि पर अलग-अलग प्रभाव पड़ेगा। मृत्यु दर के साथ-साथ शिशु मृत्यु दर से कहीं अधिक ज्यादा जानकारी मिलती है। शिशु मृत्यु दर को इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है :

$$\text{शिशु मृत्यु दर (प्रतिशत)} = \frac{\text{मृत्त शिशुओं की संख्या}}{\text{जीवित जन्मों की संख्या}} \times 100$$

इसी प्रकार जन्म दरों से किसी जनसंख्या में कुल जन्मों की संख्या का पता चलता है लेकिन चालू जनन क्षमता पैटर्न का पता नहीं चलता। इसलिए, **कुल जनन क्षमता दर** (total fertility rate or TFR) और **प्रतिस्थापन स्तर** (replacement level) ऐसे महत्वपूर्ण कारक हैं, जो आगामी जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

अगर जन्म दरें कम से कम एक पीढ़ी के लिए स्थिर रहें, तब दी हुई जनसंख्या में किसी महिला द्वारा धारण किए जा सकने वाले अपेक्षित बच्चों की कुल संख्या कुल जनन क्षमता दर (TFR) कहलाती है। प्रतिस्थापन स्तर TFR का मान है और बच्चों की वह संख्या है जो किसी दम्पत्ति को अपने प्रतिस्थापन के लिए अवश्य पैदा करने चाहिए। आप शायद सोचेंगे कि दो माँ-बाप के केवल दो ही बच्चे हों जो उन्हें प्रतिस्थापित कर सकें। लेकिन, वास्तविक औसत प्रतिस्थापन स्तर थोड़ा-सा उच्चतर है। इसका मुख्य कारण यह है कि कुछ बच्चे अपने जननीय वर्षों तक पहुँचने से पूर्व ही मर जाते हैं। विकसित देशों में प्रतिस्थापन स्तर 2.1 पर निर्धारित किया गया है। विकासशील देशों में जहाँ शिशु मृत्यु दरें ऊँची हैं और जीवन प्रत्याशाएँ (life expectancies) कम हैं प्रतिस्थापन स्तर लगभग 2.7 है। अगर प्रतिस्थापन स्तर नीचा है अर्थात् 2 से नीचे है यानी कि प्रत्येक दम्पत्ति के पास बच्चे उनको प्रतिस्थापित करने के लिए जरूरी संख्या से कम हैं तब जनसंख्या वास्तव में गिर जाएगी, जैसा कि स्वीडन और जर्मनी के मामले में हुआ।

अगर किसी जनसांख्यिकीविद की आयु-लिंग वितरण से किसी जनसंख्या में जनन-आयु की महिलाओं की संख्या का पता लगता है और TFR से प्रति महिला जन्मों की औसत संख्या का पता है और **अगर एक पीढ़ी की जन्म दरें बदलती नहीं हैं** तब जनसंख्या के भावी व्यवहार का पूर्वानुमान लगाना अपेक्षाकृत आसान होता है। लेकिन वास्तव में महत्वपूर्ण दरें अवश्य बदलती हैं। वे युद्ध, अकाल, प्रवास, चिकित्सा सुविधा, प्राकृतिक आपदाओं और रोगों से प्रभावित होती हैं। अगर TFR अप्रत्याशित रूप से बदलता है तब जनसांख्यिकीय पूर्वानुमान गलत होगा।

बोध प्रश्न 4

क) स्वीडन की कुल जनन क्षमता दर 1.55 और कीनिया की 8.1 है। दोनों में से कौन-सी जनसंख्या स्थिर है और कौन-सी बढ़ रही है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

ख) मृत्यु दर और शिशु मृत्यु दर का क्या अर्थ है? शिशु मृत्यु दर एक महत्वपूर्ण जनसांख्यिकी सूचक क्यों है?

....

....

....

....

....

....

13.4.3 जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियाँ

भाग 13.3 के शुरू में हमने चित्र 13.4 में जनसंख्या के आकार को प्राचीन काल से अब तक देखा। लेकिन भविष्य के बहिर्वेशन (extrapolation) के लिए इससे पर्याप्त जानकारी नहीं मिलती। चित्र 13.8 को देखिए और इसकी चित्र 13.4 से तुलना कीजिए। चित्र 13.8 में जनसंख्या की वृद्धि की भूमंडलीय दरें दिखाई गई हैं। वृद्धि दर 1970 में 2.06 प्रतिशत के शीर्ष मान पर पहुँची और उसके बाद 1986 में 1.7 प्रतिशत तक गिरी।

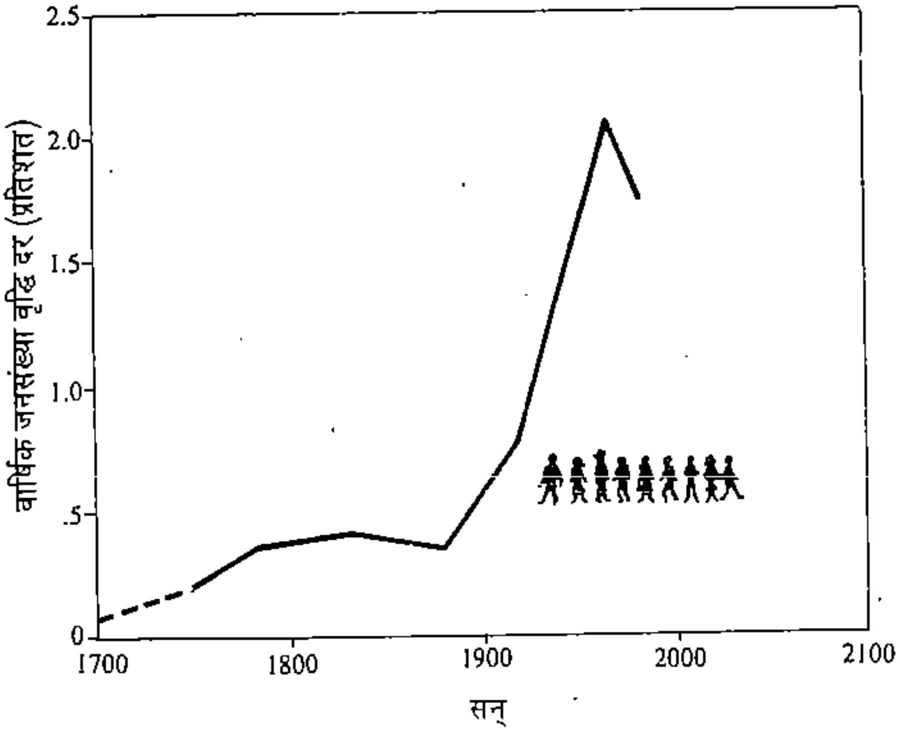

चित्र 13.8 : 1700 से 1985 तक विश्व जनसंख्या की वृद्धि दर

जनसंख्या वृद्धि की दर में गिरावट विश्व में अनेक प्रदेशों में जन्म दर में कमी के कारण आई। आप पूछ सकते हैं कि वृद्धि की दर गिरने के बावजूद भी जनसंख्या बढ़ती क्यों रही है? इसके दो कारण हैं :

क) किसी भी धनात्मक वृद्धि दर से जनसंख्या में बढ़ोत्तरी होगी। अगर वृद्धि दर गिरती है, लेकिन अभी भी धनात्मक ही रहती है, तब जनसंख्या में अन्यथा होने वाली वृद्धि की अपेक्षा कम वृद्धि होगी, लेकिन यह बढ़ती ही रहेगी।

ख) हाल के वर्षों में, हालांकि वृद्धि दर गिरी है लेकिन नवजात शिशुओं की संख्या हर साल नियमित रूप से बढ़ी है। इसका कारण यह है कि आधार जनसंख्या बढ़ रही है। उदाहरण के लिए जब जनसंख्या 3.8 अरब थी तब वृद्धि दर 2 प्रतिशत थी। इसलिए

3,800,000,000 × 0.02 = 7 करोड़ 60 लाख आबादी बढ़ी थी। 1986 में वृद्धि दर 1.7 प्रतिशत तक घट गई थी। लेकिन जनसंख्या पहले ही 5 अरब थी, जिससे 5,000,000,000 × 0.017 = 8 करोड़ 50 लाख नए व्यक्ति आए। चित्र 13.6 को फिर से देखिए। फ्रांस और जर्मनी जैसे विकसित राष्ट्रों से भारत जैसे कम विकसित राष्ट्र का आयु-लिंग वितरण भिन्न है। क्योंकि यह एक सामान्य पर्यवेक्षण है इसलिये जनसांख्यिकीविद विकसित और विकासशील देशों का अध्ययन अलग-अलग करते हैं।

13.5 प्रदेशवार जनसंख्या वृद्धि

चित्र 13.8 में दिखाया गया है कि जनसंख्या वृद्धि का कुल पैटर्न विश्व के सभी प्रदेशों का प्रतिनिधि नहीं है। सामान्य तौर पर दौलतमंद, औद्योगिकीकृत विकसित राष्ट्रों में 0.6 प्रतिशत है, यानी कि वृद्धि दर कम है जबकि अधिकांश कम विकसित देशों में वृद्धि की दर अभी भी 2 प्रतिशत है जिसका अर्थ यह हुआ कि इनकी जनसंख्याएँ हर 35 सालों में या उससे कम सालों में दुगनी हो जाती हैं। अनेक अफ्रीकी राष्ट्रों में (जैसे कि कीनिया, घाना, यूगांडा) और मध्य पूर्व राष्ट्रों (जैसे कि जोर्डन, सीरिया और कुवैत) की वृद्धि दरें 3 प्रतिशत से ऊँची हैं। इस प्रकार, उनकी जनसंख्या हर 24 सालों में दुगनी हो जाएगी। 1988 के वृद्धि दर पर धीमी वृद्धि और तेज वृद्धि वाले प्रदेशों के लिए जनसंख्या में वार्षिक बढ़ोत्तरी तालिका 13.2 में दर्शाई गई है।

तालिका 13.2 : चुने हुए देशों द्वारा 1988 में हुई विश्व जनसंख्या वृद्धि

प्रदेश	जनसंख्या (करोड़)	जनसंख्या वृद्धि दर (प्रतिशत)	वार्षिक वृद्धि (लाख)
धीमी वृद्धि वाले प्रदेश			
पश्चिमी यूरोप	15.90	0.2	3
उत्तरी अमरीका	27.20	0.7	19
सोवियत संघ	28.60	1.0	29
ऑस्ट्रेलिया	1.70	0.8	1
चीन	108.70	1.4	152
जापान	12.30	0.5	6
तेज वृद्धि वाले प्रदेश			
दक्षिण-पूर्व एशिया[1]	13.30	2.1	91
लातीन अमरीका	12.90	2.2	94
भारत	31.70	2.0	163
पश्चिम एशिया[2]	12.40	2.8	35
अफ्रीका	62.30	2.9	181

1. मुख्य रूप से बर्मा, थाईलैंड, वियतनाम, इंडोनेशिया, फिलीपिन्स
2. मुख्यतया इराक, सीरिया, तुर्की, सऊदी अरब

इन भिन्नताओं के क्या कारण हैं?

जैसा कि हमने पहले देखा, लगभग समूचे मानव इतिहास काल में मृत्यु दरें और जन्म दरें लगभग समान रही हैं। फिर पश्चिमी यूरोप में 17वीं और 18वीं शताब्दियों में मृत्यु दरें गिरना शुरू हुई, लेकिन जन्म दरें अभी भी ऊँची थीं। इसलिए जनसंख्या बढ़ी। लेकिन, धीरे-धीरे जन्म दरें गिरने लगीं और आज यूरोप में जन्म दरें तथा मृत्यु दरें लगभग बराबर हैं। इस प्रकार मृत्यु दर की गिरावट के बाद जन्म दरों की गिरावट के कारण जनसंख्या वृद्धि में कमी होने लगती है। इस प्रक्रिया को जनसांख्यिकीय संक्रमण (demographic transition) कहते हैं। यूरोपीय राष्ट्रों में जन्म और मृत्यु दरों में ये गिरावटें आम तौर पर आर्थिक विकास के साथ-साथ हुई। इस प्रकार, यह संक्रमण मुख्य रूप से ग्रामीण से एक अधिक शहरी, व्यापारिक और अंततः औद्योगिक तंत्र की अर्थव्यवस्था में परिवर्तन को भी बताता है। पिछले 50 सालों में विश्व जनसंख्या की तेज वृद्धि के कारण को समझने के लिये जनसांख्यिकीय संक्रमण की जानकारी उपयोगी है। जनसांख्यिकीय संक्रमण चार सुस्पष्ट प्रावस्थाओं में होता है :

1) **उद्योग पूर्व (preindustrial) अवस्था :** जिसमें जीवन की कठोर स्थितियों के कारण होने

वाले उच्च शिशु मृत्यु दर और उच्च मृत्यु दर की क्षतिपूर्ति करने के लिए जन्म दरें बढ़ती हैं। परन्तु जनसंख्या में वृद्धि बहुत कम होती है।

2) **संक्रमणीय (transitional) अवस्था** : जो उद्योगीकरण के कुछ ही देर बाद शुरू हो जाती है। इस अवस्था में बढ़े हुए खाद्य उत्पादन और बेहतर स्वच्छता तथा स्वास्थ्य देखभाल के फलस्वरूप मृत्यु दरें गिर जाती हैं। जन्म दरें उच्च बनी रहती हैं, जनसंख्या लम्बे समय तक उच्च दर 2.5 – 3 प्रतिशत प्रति वर्ष पर बढ़ती रहती है, लेकिन बाद में जीवन की परिस्थितियों में सुधार के साथ जन्म दरें कम हो जाती हैं।

3) **औद्योगिक (industrial) अवस्था** : उद्योगीकरण व्यापक रूप से फैल जाता है। शहरों में पहुँचने के बाद जैसे-जैसे लोगों को यह महसूस होने लगता है कि विस्तारी अर्थव्यवस्था में परिवार को छोटा रखना उनके हित में ज्यादा है, जन्म दरें गिरती हैं और अंततः मृत्यु दरों के बराबर हो जाती हैं। जनसंख्या वृद्धि होती रहती है लेकिन कम दर पर। संयुक्त राज्य अमरीका, जापान, सोवियत संघ, कनाडा, आस्ट्रेलिया और अधिकतर औद्योगीकृत पश्चिमी राष्ट्र इस अवस्था में हैं।

4) **उद्योगोत्तर (post-industrial) अवस्था** : जिसमें जन्म दर मृत्यु दर के बराबर हो जाती है और इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि शून्य होती है। इस स्थिति को शून्य जनसंख्या वृद्धि (zero population growth) अर्थात् ZPG कहा जाता है। इस प्रकार जनसंख्या का आकार धीरे-धीरे कम होने लगता है। कुछ देशों, जैसे कि आस्ट्रेलिया, डेनमार्क, हंगरी की जनसंख्या 1987 से गिरनी शुरू हुई और कई अन्य यूरोपीय राष्ट्र ZPG के पास पहुँच रहे हैं।

जनसांख्यिकीय संक्रमण के फलस्वरूप अधिक विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या अब 0.6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है, जिनका द्विगुणन काल 118 वर्ष है। कम विकसित देशों में बेहतर स्वास्थ्य देखभाल और स्वच्छता में सुधार के कारण मृत्यु दर में लगातार कमी हुई है जबकि जन्म दर में पर्याप्त रूप से कमी नहीं आई है: फलस्वरूप जनसंख्याओं ने तेजी से बढ़ना जारी रखा है।

वर्तमान विश्व जनसंख्या की लगभग 90 प्रतिशत वृद्धि का श्रेय विकासशील राष्ट्रों को जाता है। यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि वर्ष 2000 तक इस ग्रह पर जिन 6 अरब लोगों के बढ़ जाने की आशा है, उनमें से 5 अरब लोग विकासशील देशों के होंगे। संयुक्त राज्य सरकार के एक अध्ययन के अनुसार, 1950 में 66 प्रतिशत विश्व की जनसंख्या विकासशील राष्ट्रों में थी। 1955 में यह बढ़ कर 72 प्रतिशत हो गई और वर्ष 2000 तक इसके 79 प्रतिशत हो जाने की संभावना है। 1986 में विश्व जनसंख्या 5 अरब थी और वार्षिक वृद्धि 1.7 प्रतिशत थी, जिसके फलस्वरूप उस साल 8 करोड़ 50 लाख व्यक्ति बढ़े। अकेले भारत का योगदान हर साल एक करोड़ 60 लाख व्यक्तियों का रहा। चित्र 13.9 में भारत में 1911 से 1991 तक हुई जनसंख्या वृद्धि दिखाई गई है।

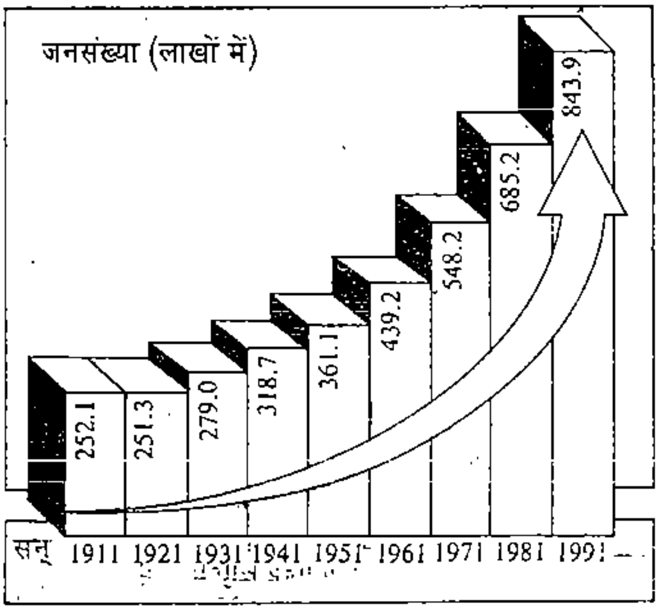

चित्र 13.9 : 1911 से 1991 तक भारत की जनसंख्या

अगर आर्थिक विकास से जनसंख्या वृद्धि शून्य होती है तब विकासशील देशों में भी आर्थिक विकास से जनसंख्या वृद्धि कम होनी चाहिए। अनेक जनसांख्यिकीविद इस मत से असहमत हैं

और अपने तर्क के पक्ष में अनेक कारण बताते हैं। विकासशील देशों के आर्थिक संसाधन ऐसे उद्योग खड़ा कर सकने के लिए कम बहुत कम हैं, जैसे कि जनसांख्यिकीय संक्रमण के दौरान संयुक्त राज्य अमरीका और यूरोप में थे। विकसित राष्ट्रों में तमाम दूसरे विकासों और अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद जनसांख्यिकीय संक्रमण को 200 से भी ज्यादा साल लगे। विकासशील देशों के पास तो इतना समय ही नहीं है। इन देशों में जनसंख्या की तेज वृद्धि उनके अपने जीवन-स्तर उठाने की योग्यता से कहीं अधिक है। चालू निम्न स्तर को बनाए रखने के लिए भी विकासशील राष्ट्रों के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष 2000 तक एक-एक संसाधन को दुगुना बनाएँ। यह काम तेज जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए बहुत मुश्किल हो सकता है। इसलिए जनसांख्यिकीय संक्रमण किसी दूसरे तरीके से आना चाहिए, विशेष रूप से जनसंख्या नियंत्रण के द्वारा ऐसा करना आवश्यक है।

बोध प्रश्न 5

नीचे दिए गए देशों के सामने दिखाए गए आंकड़ों को देखते हुए यह बताइए कि ये देश जनसांख्यिकीय संक्रमण की किस अवस्था में हैं :

देश	जन्म दर	मृत्यु दर
क	46	15
ख	19	8
ग	10	11
घ	55	53

13.6 जनसंख्या वृद्धि से संबंधित संसाधन उपयोग की समस्याएँ

अगर हमारे ग्रह पर जितने लोग आज हैं. उससे दो या तीन गुना हो जाएँ तो क्या हालत होगी? अकाल, भीड़-भाड़, महंगाई, बेरोज़गारी, प्रदूषण और घटते संसाधन सभी इस तथ्य से जुड़े हैं कि सीमित संसाधनों और अवसरों की स्पर्धा में बहुत ज्यादा लोग शामिल हैं।

विश्व जनसंख्या बढ़ने के कारण आवश्यक सामग्रियों की भी माँग बढ़ रही है और उनको पूरा करने के लिए उपलब्ध संसाधनों (जैसे कि जल, खाद्य, लकड़ी, खनिज, ईंधन) की सप्लाई बढ़ाना दिनोंदिन कठिन हो रहा है।

चित्र 13.10 से संकेत मिलता है कि भविष्य में अधिकांश जनसंख्या वृद्धि कम विकसित देशों में होगी। परन्तु जिन देशों के पास अपनी मौजूदा आबादी की माँगों को पूरा करने के लिए भी संसाधन नहीं है, वह भविष्य में बढ़ने वाले उन लाखों लोगों की आवश्यकताओं को कैसे पूरा कर सकेंगे। आज के असंतोष भरे जीवन स्तर को ही बरकरार रखने के लिए भारत में हमें 33 वर्ष के द्विगुण काल के भीतर ही हर सुविधा और संसाधन को दुगुना करना होगा।

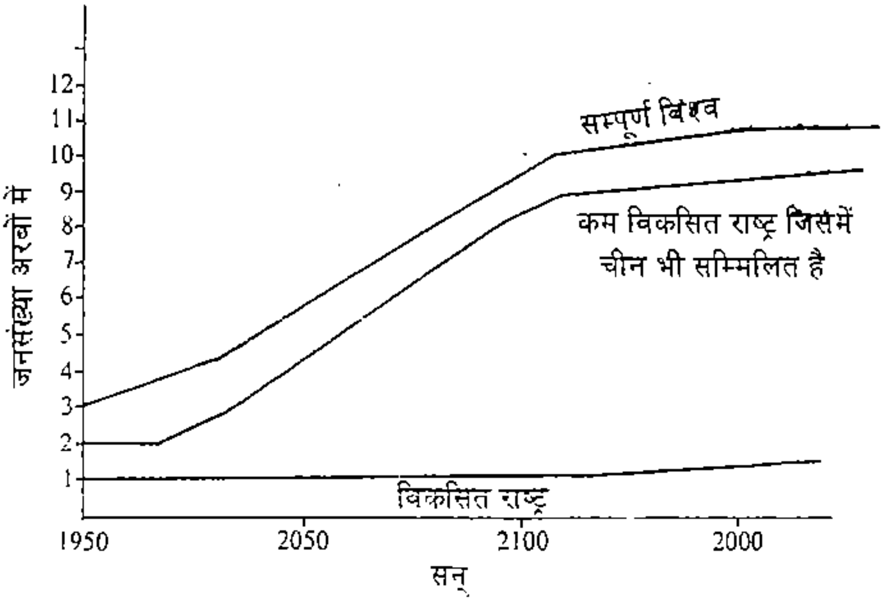

चित्र 13.10 : वर्ष 2100 के लिए प्रक्षिप्त जनसंख्या वृद्धि। ध्यान दीजिए कि लगभग सभी भावी जनसंख्या वृद्धि कम विकसित राष्ट्रों में होगी। (संयुक्त राष्ट्र 1981 आँकड़ों के आधार पर)

इससे संबंधित समस्या विकसित और विकासशील देशों के बीच बढ़ती हुई असमानता है। इन राष्ट्रों के बीच 1960 में प्रति व्यक्ति आय का अंतर 1240 डॉलर था, 1980 में यह 5700 डॉलर था और ऐसी आशा है कि वर्ष 2000 में यह अंतर 8000 डॉलर हो जाएगा।

किसी क्षेत्र में जनसख्या का पर्यावरणीय प्रभाव तीन कारकों पर निर्भर करता है : (1) लोगों की संख्या, (2) प्रत्येक व्यक्ति द्वारा काम में लाए जाने वाले संसाधन की औसत मात्रा और (3) काम में लाए गए हर संसाधन से होने वाले पर्यावरणीय निम्नीकरण और प्रदूषण (चित्र 13.11)।

जनसंख्या का पर्यावरणीय प्रभाव = व्यक्तियों की संख्या × प्रति व्यक्ति संसाधन उपयोग × प्रति इकाई संसाधन उपयोग द्वारा पर्यावरणीय निम्नीकरण एवं प्रदूषण

चित्र 13.11 : तीन कारकों का सरलीकृत मॉडल। ये कारक जनसंख्या के कुल पर्यावरणीय प्रभाव को प्रभावित करते हैं।

हम कह सकते हैं कि **जनसंख्या अतिरेक** उस समय होता है, जब किसी देश या प्रदेश या पूरे विश्व में अनीवकरणीय (nonrenewable) और नवीकरणीय संसाधनों को इस सीमा तक काम में लाया जाता है कि संसाधन निम्नीकृत या अवक्षयित (depleted) हो जाते हैं और वायु, जल तथा मिट्टी का प्रदूषण होने लगता है। यह प्रदूषण जीवमंडल को सहारा देने वाले तंत्रों को नुकसान पहुँचाता है।

चित्र 13.11 में दिखाए गए प्रत्येक कारक के महत्व और भिन्नताओं के आधार पर हम यह मान सकते हैं कि जनसंख्या अतिरेक दो प्रकार का होता है :

क) जनसमुदाय की अधिकता (people overpopulation)

ख) उपभोग की अधिकता (consumption overpopulation)

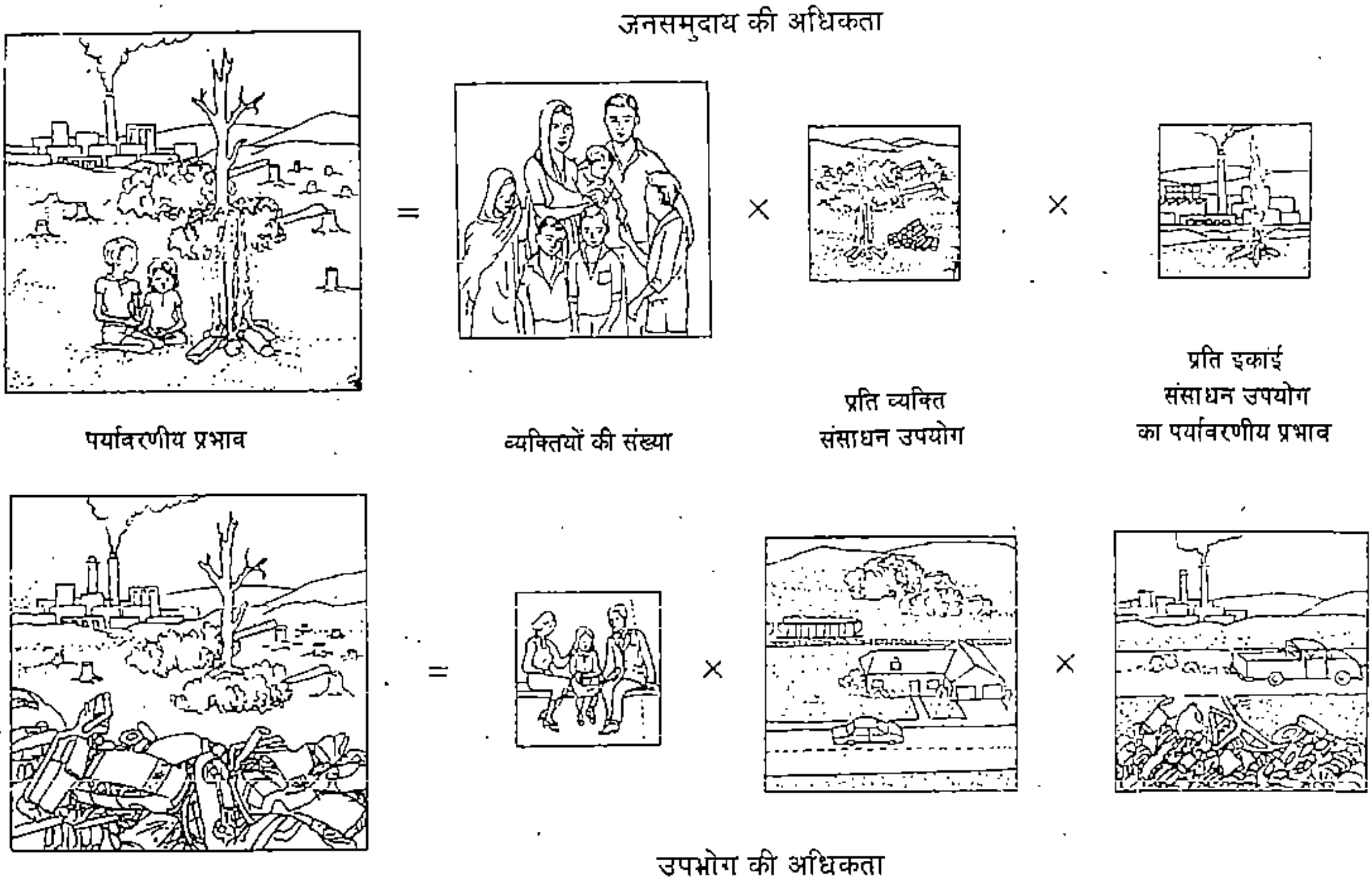

चित्र 13.12 : चित्र 13.11 में दिखाए गए कारकों के सापेक्ष महत्व पर आधारित दो प्रकार की जनसंख्या अतिरेक।

क) जनसमुदाय की अधिकता ऐसी स्थिति की सूचक है जहाँ लोगों की संख्या खाद्य पदार्थ, पानी और दूसरे संसाधनों की सप्लाई से ज्यादा है। इसका अर्थ यह हुआ कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक वृद्धि से आगे निकल गई है और लोग इतने गरीब हैं कि पर्याप्त अनाज नहीं उगा सकने या आवश्यक वस्तुएँ नहीं खरीद सकते। इस प्रकार के जनसंख्या अतिरेक में जनसंख्या की मात्रा और उसके फलस्वरूप मिट्टी, घासस्थल, वन और मछली पालन जैसे संभावित नवीकरणीय संसाधनों का निम्नीकरण, कुल पर्यावरणीय प्रभाव को निर्धारित करने में अधिक महत्वपूर्ण होने लगता है। विश्व के अत्याधिक गरीब और कम विकसित देशों में जनसमुदाय की अधिकता का नतीजा यह होता है कि भुखमरी और पोषण का अभाव तथा अकाल में होने वाले रोगों के कारण प्रति वर्ष एक करोड़ 20 लाख से लेकर 2 करोड़ तक व्यक्ति अकाल मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। अत्याधिक आबादी, अत्याधिक चराई, गंभीर मृदा अपरदन के दबाव से कुछ प्रदेशों की जमीन अपनी उत्पादकता खो रही है। इस प्रकार अनेक किसान और खानाबदोश अपनी आजीविका तथा खाने के स्रोतों को गंवा रहे हैं।

ख) उपभोग की अधिकता प्रौद्योगिक रूप से उन्नत और दौलतमंद देशों में देखी जाती है। उदाहरण है संयुक्त राज्य अमरीका, जापान, सोवियत संघ आदि। लोग बहुत अधिक नहीं हैं लेकिन वे संसाधनों का जरूरत से ज्यादा मात्रा में उपयोग कर रहे हैं। अगर बड़ी संख्या में लोग भी इन संसाधनों का उचित मात्रा में उपभोग करते तो इनका अवक्षय और पर्यावरणीय निम्नीकरण इतनी उच्च दर से नहीं होता। इस प्रकार के जनसंख्या अतिरेक में दो महत्वपूर्ण कारक हैं, जो जनसंख्या के पर्यावरणीय प्रभाव को निर्धारित करते हैं : संसाधन का प्रति व्यक्ति उपयोग और फलस्वरूप प्रति व्यक्ति प्रदूषण का उच्च स्तर।

चित्र 13.12 में दिखाया गया तीन कारक मॉडल अपेक्षाकृत सरल लगता है। परस्पर संबंधित अनेक भिन्न-भिन्न कारकों वाली वास्तविक स्थिति कहीं ज्यादा जटिल है। जनसंख्या वृद्धि के बारे में चिन्ता का दूसरा कारण यह है कि ये सारे के सारे लोग जाएँगे कहाँ? भारत में जनसंख्या का औसत घनत्व अब 267 व्यक्ति वर्ग किलोमीटर है। शहरी आबादी 1950 में कुल आबादी का सातवां हिस्सा थी, जो 1990 में बढ़कर एक तिहाई हो गई, हवा और पानी के प्रदूषण के अलावा अत्याधिक आबादी से मानसिक, शारीरिक और सामाजिक दबाव पैदा होते हैं। सारा पारितंत्र ही दबाव में है। न केवल मिट्टी, पानी और हवा ही प्रदूषित हो रहे हैं, जैसा कि आप इकाई 15 में पढ़ेंगे, बल्कि सभी दूसरे जीवित प्राणी, पौधे और जंतु भी प्रभावित हो रहे हैं। इस अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि की कीमत होगी प्रकृति का करीब-करीब खात्मा। इसके साथ प्रकृति की संपदा भी समाप्त हो जाएगी और वह विविधता भी नष्ट हो जाएगी, जिसे प्रकृति ने ही जन्म दिया और विकास के लाखों सालों के दौरान बड़ी सूक्ष्मता से संतुलित रखा।

बोध प्रश्न 6

1) पाठ्य सामग्री से उपयुक्त शब्दों को काम में लाते हुए नीचे दिए गए अनुच्छेद को पूरा कीजिए :

उपभोग अधिकता तब होती है जब..................लोग संसाधनों का..................दर पर उपयोग करते हैं, जिससे प्रदूषण और..................होता है। जब उपलब्ध संसाधनों की तुलना में लोग..................हो जाते हैं तो..................अधिकता जनसंख्या अतिरेक होता है। इस प्रकार में..................पर जनसंख्या के कुल प्रभाव और..................के अभिलक्षण को निर्धारित करने में जनसंख्या..................और उसके द्वारा पर्यावरणीय निम्नीकरण अधिक महत्वपूर्ण कारक है।

13.7 पृथ्वी की भावी जनसंख्या का पूर्वानुमान

1987 तक जनसंख्या 5.03 अरब तक बढ़ गई थी और अभी भी 1.7 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं हर साल 8 करोड़ 50 लाख व्यक्ति बढ़ते हैं। अगर पृथ्वी असीम रूप से बड़ी होती तो जनसंख्या अनिश्चित काल तक बढ़ती रह सकती थी। हमारा ग्रह और संसाधन सीमित हैं, इसलिए लगातार जनसंख्या वृद्धि को संभाले नहीं रख सकते। अत: जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगानी आवश्यक है और जल्दी से जल्दी शून्य जनसंख्या वृद्धि होनी चाहिए। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यह शून्य जनसंख्या वृद्धि कब हासिल हो सकेगी? जनसंख्या वृद्धि शून्य होने के बाद जनसंख्या आकार क्या होगा?

एक क्षण के लिए कल्पना कीजिए कि जन्म दरों को आज ही प्रतिस्थापन स्तर तक घटा दिया जाता है। अगर किसी चमत्कार से ऐसा हो भी जाए तब भी जनसंख्या बढ़ती रहेगी क्योंकि मानव

जनसंख्या का 35 प्रतिशत 15 वर्ष से कम आयु का है, जबकि 64 वर्ष से अधिक की आयु के व्यक्ति केवल 6 प्रतिशत हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उसी काल में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या की तुलना में जनन-आयु में पहुँचने वाले व्यक्तियों की संख्या कहीं अधिक होगी। अधिकांश देशों में विशेष रूप से कम विकसित देशों में, जननीय और जनन-पूर्व आयु वाली महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या है। उदाहरण के लिए, भारत में 1985 में लगभग 40 प्रतिशत महिलाएँ जनन-पूर्व आयु की थीं और 15 से 39 के बीच की महिलाओं की संख्या और भी अधिक थी। अगर ये महिलाएँ फौरन ही प्रतिस्थापन स्तर पर ही संतान पैदा करें तब भी आबादी 1985 की जनसंख्या से 1.6 गुना अधिक होने तक बढ़ती ही रहेगी।

चीन की आबादी एक अरब है, जो विश्व जनसंख्या का पाँचवाँ हिस्सा है। 1980 के दशक के मध्य में चीन सरकार ने 'प्रति दम्पत्ति एक बच्चे' का कठोर जन्म नियंत्रण कार्यक्रम शुरू किया। वृद्धि की दर तेजी से कम हुई और TFR 1985 में प्रतिस्थापन स्तर पर पहुँच गई। परन्तु अभी भी आबादी बढ़ती रहेगी और वर्ष 2075 तक ही 1.5 अरब के बराबर हो जाएगी।

तालिका 13.3 : प्रदेशवार कुल जनन क्षमता दर

(पॉपुलेशन रेफरेन्स ब्यूरो, 1986) वॉशिंगटन डी.सी.

अफ्रीका	6.3
लातीन अमरीका	4.1
एशिया	3.7
ओशिएनिया*	2.7
सोवियत संघ	2.4
उत्तरी अमरीका	1.8
यूरोप	1.8

* प्रशान्त महासागर और उसके आसपास के समुद्रों के टापू

तालिका 13.3 देखिए। विकासशील और विकसित राष्ट्रों के बीच TFR में बहुत भारी अंतर है। चित्र 13.13 में विकसित और कम विकसित प्रदेशों से कुछ देशों की TFR दरें दिखाई गई हैं। ध्यान दीजिए कि किसी अन्य राष्ट्र की अपेक्षा चीन में TFR दरें तेज़ी से गिर रही हैं। भारत और इंडोनेशिया में हालांकि कम लेकिन महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं।

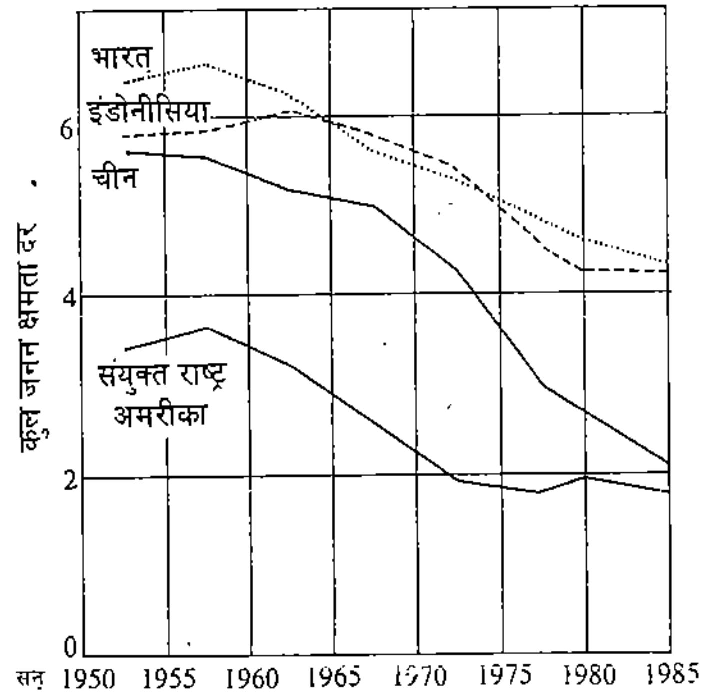

चित्र 13.13 : कुछ विकसित और कम विकसित देशों के लिए कुल जनन क्षमता दर। चीन में कुल जनन क्षमता दर महत्वपूर्ण रूप से गिर रही है।

दूसरी तरफ पूरे अफ्रीका दक्षिण-पश्चिमी एशिया और लातीन अमरीका के कुछ देशों में TFR स्थिर है या बढ़ भी रही है। इसलिए विश्व की वास्तविक जनसंख्या बढ़नी जारी रहेगी। TFR कब 2.1 के प्रतिस्थापन स्तर तक गिरेगी, इसके बारे में विभिन्न अभिधारणाओं पर आधारित विश्व जनसंख्या और अंतिम स्थायीकरण के लिए संयुक्त राष्ट्र प्रक्षेप चित्र 13.14 में दिखाए गए हैं।

फिर भी आपको याद रखना चाहिए कि यह जरूरी नहीं है कि ऐसा संक्रमण होगा ही। किसी भी प्रकार की विपत्ति की संभावना हमेशा बनी रहती है। ऐसे परिदृश्य में जनसंख्या तेजी से बढ़ती रहेगी, जब तक कि पृथ्वी की वहन क्षमता का अत्यधिक अतिक्रमण नहीं हो जाता और भूखमरी, संघर्ष, प्रदूषण और संसाधन अवक्षय के संयुक्त प्रभावों से जनसंख्या का विनाश होने लगेगा। ऐसा निराशावादी और विध्वंसकारी परिणाम चित्र 13.14 में बिंदुकित रेखा द्वारा दिखाया गया है।

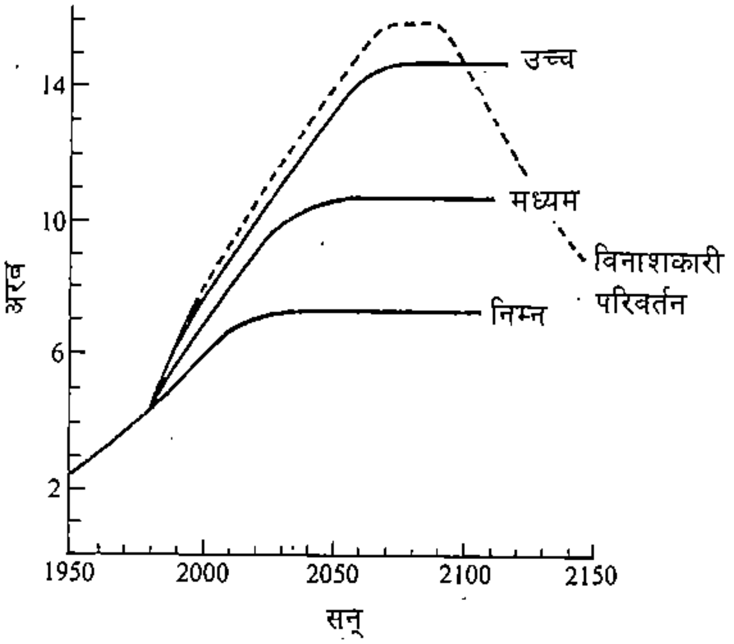

चित्र 13.14 : विश्व जनसंख्या वृद्धि के लिए चार भिन्न प्रकार के पूर्वानुमान (आँकड़े संयुक्त राष्ट्र संघ से)

कोई भी नहीं जानता कि ये भविष्यवाणियाँ खरी उतरेंगी भी या नहीं। एक बात जिससे सभी सहमत होंगे, वह यह है कि विश्व जनसंख्या अनंतकाल तक नहीं बढ़ सकती। कुछ देश आराम से संक्रमण कर लेंगे, जबकि दूसरे देश युद्ध, अकाल या भीड़-भरे शहरी क्षेत्रों में रोग की महामारियों के कारण समय-समय पर विनाश का सामना करेंगे। यह देखना बाकी है कि क्या हम जन्म दर में स्वेच्छा से कमी लाकर जनसंख्या स्थायीकरण प्राप्त करेंगे या अव्यवस्था द्वारा लाएंगे, जिसका परिणाम अकाल और प्राकृतिक आपदाएँ होगा।

13.8 सारांश

- मानव शायद वृक्षवासी कपि जैसे पूर्वजों से विकसित हुआ। वृक्षीय आवास से भू-आवास में परिवर्तन से सुस्पष्ट अनुकूलन हुए जैसे कि त्रिविम दृष्टि, सीधे खड़े होना, द्विपाद चलन, सम्मुख अंगुष्ठ और बड़ा तथा अधिक परिवर्धित मस्तिष्क।
- कृषि के आगमन से स्थायी जनसंख्याएँ अस्तित्व में आईं और पर्यावरणीय परिवर्तनों का क्रमिक सिलसिला शुरू हुआ।
- सारे ऐतिहासिक काल में मानव जनसंख्या काफी कम रही है, लेकिन औद्योगिक क्रांति शुरू होने के साथ यह धीरे-धीरे बढ़ती रही है और अब एक विस्फोटक रूप से बढ़ रही है।
- मानव जनसंख्या या जनसांख्यिकी के अध्ययन में जनसंख्याओं की वृद्धि का मापन, वार्षिक औसत वृद्धि दर का मापन, इसका द्विकाल या दुगुनी होने का काल, जन्म और मृत्यु

दर जैसी महत्वपूर्ण घटनाएँ, शिशु मृत्यु दर और प्राकृतिक वढ़ोत्तरी की दर शामिल हैं। जन्म दर में से मृत्यु दर घटाने पर प्राकृतिक वृद्धि निकल आती है।

- जनसंख्या चरघातांकी रूप से वढ़ता है और आयु-लिंग वितरण आरेख बीते इतिहास को प्रतिबिंबित करता है और भावी वृद्धि की पूरी जानकारी देता है। अगर एक पीढ़ी के लिए जन्म दर स्थिर रहती है तब किसी महिला द्वारा अपने जीवन काल में धारण किए जाने वाले प्रत्याशित वच्चों की कुल संख्या को कुल उर्वरता दर (TFR) कहते हैं। प्रतिस्थापन स्तर कुल जनन क्षमता दर का एक मान है, जो स्वयं को प्रतिस्थापित करती जनसंख्या के बाराबर है। यह 2.1 है।

- भूमंडलीय जनसंख्या की वृद्धि दर गिर रही है, लेकिन अभी भी धनात्मक है जिसका अर्थ है कि जनसंख्या अभी भी बढ़ना जारी रखेगी। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों की वृद्धि दरें कहीं अधिक हैं।

- इतिहास के प्रारंभ में, जन्म दरें उच्च थीं और स्वच्छता तथा पर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल के अभाव में मृत्यु दरें भी उच्च थीं, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या वृद्धि बहुत कम थी। आधुनिक औषधियाँ और उन्नत स्वच्छता से मृत्यु दरों में तेजी से कमी आती है लेकिन जन्म दर पर मामूली-सा प्रभाव पड़ता है इसलिए जनसंख्या तेजी से बढ़ती है। उन्नत आर्थिक स्थितियों के साथ-साथ धीरे-धीरे जन्म दर भी कम होती है और जनसंख्या स्थायी हो जाती है। शून्य जनसंख्या वृद्धि की ओर ले जाने वाली मृत्यु तथा जन्म दरों में परिवर्तन का यह पैटर्न जनसांख्यिकीय संक्रमण कहलाता है। अधिकांश विकसित देश जनसांख्यिकीय संक्रमण अवस्था पर पहुँच चुके हैं या इसे पार कर गए हैं।

- बढ़ती हुई जनसंख्या विश्व के संसाधनों को क्षति पहुँचाती है। किसी दिए गए क्षेत्र में जनसंख्या का पर्यावरणीय प्रतिघात तीन कारकों पर निर्भर करता है। ये कारक हैं—लोगों की संख्या, प्रति व्यक्ति संसाधन उपयोग और प्रति इकाई संसाधन उपयोग द्वारा हुआ पर्यावरणी निम्नीकरण। इनसे कम विकसित देशों में जन समुदाय की अधिकता और विकसित देशों में उपभोग की अधिकता द्वारा अतिरेख की स्थिति उत्पन्न होती है।

- अधिकांश विकसित राष्ट्रों में जन्म दरें गिर रही हैं, लेकिन विश्व जनसंख्या में वढ़ोत्तरी निश्चित है। 1986 में विश्व जनसंख्या 5 अरब थी। जनसांख्यिकीविदों का पूर्वानुमान है कि जनसंख्या 7.5 से 14 अरब के बीच कहीं पर स्थायी हो जाएगी और जनसंख्या में यह वृद्धि ज्यादातर कम विकसित देशों के कारण होगी।

13.9 अंत में कुछ प्रश्न

1) प्राइमेटों नें प्रमुख अनुकूलनों को बताइए, जिसकी वजह से पहली होमो जाति अस्तित्व में आई?

2) 1981 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 68 करोड़ 30 लाख थी। 1991 में इस संख्या में 16 करोड़ लोग और बढ़ गए। आबादी के लिए वार्षिक दर और द्विगुणन काल परिकलित कीजिए।

3) प्रतिस्थापन स्तर क्या है? अगर भारत में महिलाएँ प्रतिस्थापन स्तर पर संतान पैदा करें तो क्या शून्य जनसंख्या वृद्धि फौरन पा ली जाएगी?

....

....

....

....

....

4) जनसांख्यिकीय संक्रमण से क्या तात्पर्य है? जनसांख्यिकीय संक्रमण से पहले, उसके दौरान और उसके बाद की जन्म दरों और मृत्यु दरों की तुलना कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

5) वृद्धि दर निम्नलिखित होने पर परिकल्पित जनसंख्या दिखाने वाला ग्राफ बनाइए :

क) ऊँची है, फिर घटती है, लेकिन धनात्मक बनी रहती है।

ख) ऋणात्मक है, फिर धनात्मक हो जाती है।

ग) धनात्मक है, फिर ऋणात्मक हो जाती है।

13.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1) क) v, ख) iv, ग) ii

2) ग)

3) प्राकृतिक वृद्धि की दर :
अफ्रीका के लिए = 44 – 16 = 28 प्रति 1000 अथवा 2.8 प्रतिशत
एशिया के लिए = 28 – 10 = 18 प्रति 1000 अथवा 1.8 प्रतिशत
यूरोप के लिए = 13 – 10 = 3 प्रति 1000 अथवा 0.3 प्रतिशत

4) क) स्वीडन की TFR 2.1 के प्रतिस्थापन स्तर से काफी नीचे है अर्थात् इतने भी बच्चे नहीं हैं जो अपने माँ-बाप को प्रतिस्थापित कर सकें। अतः आखिर में जनसंख्या घटेगी। दूसरी ओर, कीनिया की जनसंख्या बढ़ती रहेगी क्योंकि TFR प्रतिस्थापन स्तर से कही ऊपर है।

ख) जनसंख्या में प्रति 1000 व्यक्ति होने वाली मृत्युओं की संख्या मृत्यु दर कहलाती है। इसमें सभी आयु के लोग शामिल हैं। एक वर्ष से कम आयु के शिशुओं में मृतकों की संख्या को जीवित जन्मों से भाग देकर जो संख्या आती है, वह शिशु मृत्यु दर है। शिशु मृत्यु दर एक महत्वपूर्ण कारक है, क्योंकि शिशु मृत्यु दर का अर्थ यह है कि कम लोग जनन-अवस्था तक पहुंच रहे हैं। यह जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर की भी सूचक है।

5) क) संक्रमण अवस्था
ख) औद्योगिक अवस्था
ग) उद्योगोत्तर अवस्था
घ) उद्योग पूर्व अवस्था

6) कम; उच्च; पर्यावरणीय निम्नीकरण; अधिक; जनसमुदाय; पर्यावरण; कम विकसित राष्ट्र; आकार।

अंत में कुछ प्रश्न

1) त्रिविम दृष्टि; पेशीविन्यास में परिवर्तन और आंतरिक अंगों की स्थापना तथा अभिविन्यास में परिवर्तन जिससे सीधे खड़े होना संभव हुआ; द्विपादी चलन; सम्मुख अंगुष्ठ; मस्तिष्क का विवर्धन और परिवर्धन।

2) औसत वार्षिक वृद्धि दर = 2.3 प्रतिशत
द्विगुणन काल = अनुमानतः 30 वर्ष

3) क) प्रतिस्थापन स्तर कुल जनन क्षमता दर का मान है, जो अगर एक पीढ़ी तक बिना बदले रही तो उसका नतीजा शून्य जनसंख्या वृद्धि होगा।

ख) नहीं, क्योंकि जननपूर्व और जनन-आयु में बहुत बड़ी जनसंख्या है (चित्र 13.6 क में आयु-लिंग आरेख देखिए)।

4) जब आर्थिक विकास के जवाब में मृत्यु दरें कम होती हैं और जन्म दरें भी गिरती हैं, तो जनसंख्या स्थायी हो जाती है। महत्वपूर्ण दरों को बदलने का यह पैटर्न जनसांख्यिकीय संक्रमण कहलाता है।

क) संक्रमण पूर्व—मृत्यु दर और जन्म दर, दोनों उच्च
ख) संक्रमण के दौरान—मृत्यु दरें कम हो जाती हैं, जन्म दरें पहले उच्च हो जाती हैं और फिर स्थायी हो जाती हैं।
ग) संक्रमण के बाद—मृत्यु दरें और जन्म दरें, दोनों कम हो जाती हैं जिससे शून्य जनसंख्या वृद्धि ZPG हो जाती है।

5)

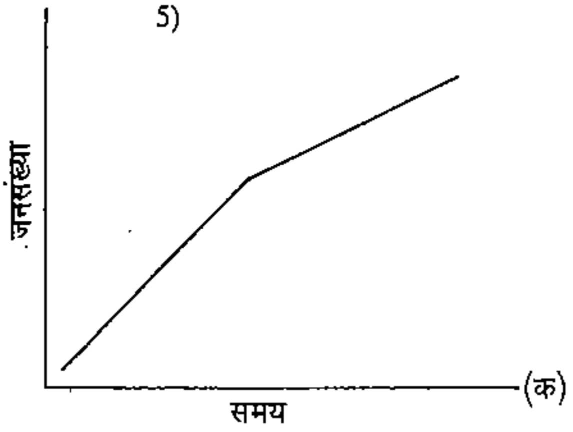

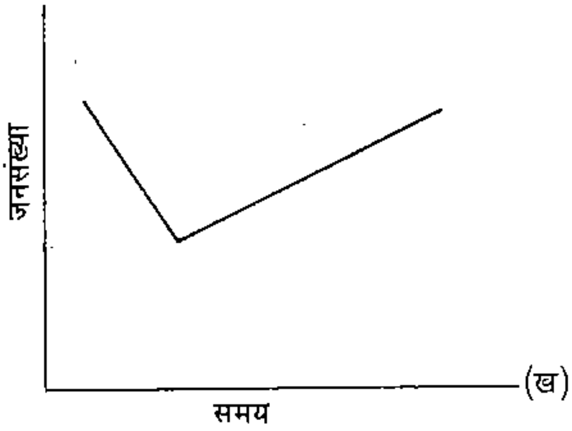

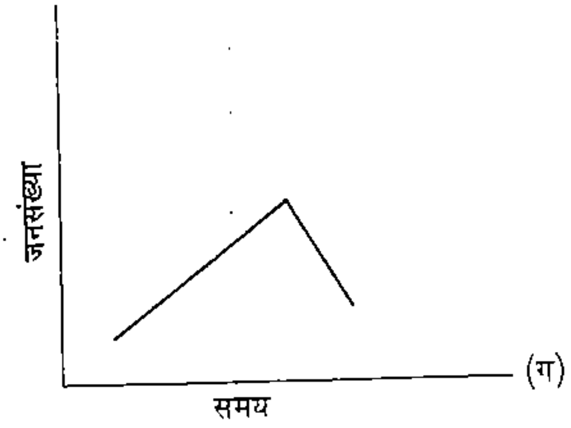

(ग)

इकाई 14 पारितंत्र निम्नीकरण और वन्यजीवन

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
- उद्देश्य

14.2 पारितंत्र का निम्नीकरण
- वनोन्मूलन
- अतिचराई
- कृषि
- खनन
- शहरीकरण

14.3 वन्यजीवन क्या है?

14.4 वन्यजीवन को खतरे
- आखेटन और निर्यात
- वन्यजीवन आवासों का विलोपन या उनका अस्त-व्यस्त होना
- चयनात्मक विनाश
- पालतू बनाना
- नई जातियों का उपस्थापन या प्रवेशन
- पीड़कनाशी
- पालतू प्राणी, आयुर्विज्ञानीय अनुसंधान और चिड़ियाघर

14.5 विलुप्त और संकटग्रस्त जातियाँ
- विलुप्त जातियाँ
- संकटग्रस्त जातियाँ
- खतरे से बाहर जातियाँ
- रेड डाटा बुक

14.6 वन्यजीवन का संरक्षण
- वन्यजीवन के संरक्षण का क्या अर्थ है?
- जाति संरक्षण के उपाय
- भारतवर्ष में वन्यजीवन संरक्षण

14.7 वन्यजीवन का संरक्षण क्यों?
- आर्थिक महत्व
- औषधीय मूल्य
- आयुर्विज्ञानीय अनुसंधान
- आनुवंशिक खजाना
- पारिस्थितिकीय महत्व
- सौंदर्यात्मक और मनोरंजनात्मक महत्व

14.8 सारांश

14.9 अंत में कुछ प्रश्न

14.10 उत्तर

14.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसकी पारिस्थितिकीय आवश्यकताएँ किसी भी दूसरे प्राणियों की तरह हैं। अपने अस्तित्व के लिए मनुष्य को लगातार ऊर्जा का स्रोत और खनिज पोषकों की ज़रूरत पड़ती है। जीवित रहने के लिए मनुष्य को कुछ पर्यावरणीय कारकों के इष्टतम (optimum) स्तरों की और उनकी सीमित परास (limited range) की भी आवश्यकता होती है।

मानव इस रूप में विचित्र है कि उसमें भूमंडलीय पारितंत्रों को, बड़े पैमाने पर रूपांतरित (modify) करने की क्षमता है। किसी और जीव ने पृथ्वी के भौतिक (physical), रासायनिक (chemical) और जीवीय संघटन (biological constitution) पर ऐसा प्रभाव नहीं डाला है, जैसा कि मानव ने। इसलिए, मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों को पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से सावधानीपूर्वक जाँचना आवश्यक है। इस प्रकार के अध्ययन से उन क्षेत्रों का पता लगाने में मदद

मिलेगी जहाँ म नव द्वारा अनायास उत्पन्न किए गए प्रतिबल (stresses) असहनीय होते जा रहे हैं तथा आवास (habitat) की कुछ जातियों (species) के भविष्य के लिए संकट खड़ा कर रहे हैं। इस अध्ययन से इन हानिकारक गतिविधियों में से कुछ के नतीजों की भविष्यवाणी करने में सहायता भी मिलेगी। इससे अनेक ऐसे मसलों का जवाब भी मिल सकता है, जो पर्यावरणीय दुविधा पैदा कर रही हैं।

पाठ्यक्रम की इस इकाई में, हम आपसे मनुष्य की उस भूमिका के बारे में चर्चा करेंगे जो उसने पारितंत्र के निम्नीकरण (degradation) करने में निभाई है। हम यहाँ विशेष रूप से जीवीय घटकों (biological components) पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में भी चर्चा करेंगे। वन्यजीवन किस प्रकार प्रभावित हुआ है और क्षतियों को न्यूनतम करने के या समाप्त करने के लिए उठाए जाने वाले उपायों की भी चर्चा की जाएगी। विभिन्न प्रसंगों को सुस्पष्ट करने के लिए इस इकाई में अनेक उदाहरण, चित्र और सारणियाँ (tables) दी गई हैं जिसकी वजह से यह इकाई कुछ लंबी हो गई है। आपसे यह आशा नहीं की जाती कि सारणियों में दिए गए गणितीय आंकड़ों को रट लें। लेकिन इनका बारीकी से अध्ययन अवश्य करें। यह संभव है कि इस इकाई में दी गई अनेक परिस्थितियों का आपने अनुभव किया होगा या इसमें दिए गए अनेकों उदाहरणों से आप परिचित होंगे। इसलिए हमें आशा है कि आप इस इकाई को पढ़ने में आनंद का अनुभव करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- पारितंत्र निम्नीकरण के मुख्य कारणों और परिणामों को पहचान सकेंगे
- वन्यजीवन की परिभाषा दे सकेंगे
- वन्यजीवन को जो मुख्य खतरे हैं, उनकी सूची बना सकेंगे और उनकी व्याख्या कर सकेंगे
- विलुप्त (extinct), संकटग्रस्त (threatened), संकटापन्न (endangered), विरल (rare), अवक्षयित (depleted), अनिश्चित (indeterminate) और खतरे से बाहर (out of danger) जातियों की संकल्पना को समझ सकेंगे
- वन्यजीवन संरक्षण के लिए आवश्यक उपायों को जान सकेंगे
- मानव के लिए वन्यजीवन के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।

14.2 पारितंत्र का निम्नीकरण

प्राचीन मनुष्य सरल बुद्धि वाला था--खाना इकट्ठा करता था और शिकार खेलता था। वह प्रकृति को विस्मय और आदर से देखता था और वास्तविकता तो यह है कि वह प्रकृति की पूजा करता था। लेकिन जिस समय उसने अपनी श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता का उपयोग करना शुरू किया और प्रकृति को समझना शुरू किया, वह क्रमशः आत्म-केन्द्रित होता चला गया और इस प्रक्रिया में प्राकृतिक पर्यावरण का निरादर करने लगा तथा उसका निम्नीकरण करने लगा। आज वह प्रकृति पर प्रभाव जमाने में, उसे अपने अनुरूप गढ़ने में तथा अपने चारों ओर की हर वस्तु को अपने फायदे के लिए काम में लाने का प्रयास कर रहा है। उसने प्रकृति के नाजुक संतुलन के बारे में अधिक सोच-विचार नहीं किया है। पिछले दो या तीन दशकों से जब पर्यावरणीय निम्नीकरण के कुछ अशुभ संकेत दिखाई देने लगे हैं, मानव ने परिस्थिति की गंभीरता को समझा है। अब उसको यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि पृथ्वी ग्रह वस्तुतः एक पारितंत्र है जिसमें मानव रहता है। उसे चाहिए कि वह अपने ग्रह को उस असाध्य स्थिति में न पहुँचा दे, जिससे कि वह पूर्ववत् स्थिति में न आ सके।

इस भाग में मनुष्य की उन विभिन्न गतिविधियों को बताएँगे और उनकी चर्चा करेंगे जिनके कारण पारितंत्र का निम्नीकरण हुआ है। यह भाग थोड़ा लंबा ज़रूर है परन्तु इस इकाई में आगे आने वाले भागों का यह भाग आधार होगा।

हमने पारितंत्र का निम्नीकरण करने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारणों की सूची और उनकी व्याख्या नीचे दी है :

14.2.1 वनोन्मूलन (deforestation)
14.2.2 अतिचराई (overgrazing)

14.2.3 कृषि या खेती-बाड़ी (agriculture)
14.2.4 खनन (mining)
14.2.5 शहरीकरण (urbanisation)

14.2.1 वनोन्मूलन

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम तीन पहलुओं की चर्चा करेंगे। पहला, इस (वनोन्मूलन) शब्द का अर्थ क्या है? दूसरा, वनोन्मूलन के कारण क्या हैं? तीसरा, वनोन्मूलन पारितंत्र को किस प्रकार निम्नीकृत या प्रभावित करता है?

पहले प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि वनोन्मूलन एक व्यापक शब्द है। इसका अर्थ किसी क्षेत्र के वन-आवरण या वनस्पति को हटाने या उसके नष्ट करने से है। वनोन्मूलन में निम्नलिखित प्रक्रियाएँ शामिल हैं : पेड़ों की बार-बार कतरन; पेड़ गिराना; वन बिछाली का हटाना; पत्तियों तथा कोंपलों का चरना; चराई तथा पौध का रौंदा जाना।

दूसरा प्रश्न है, वनोन्मूलन के कारण क्या हैं? वनोन्मूलन के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :

i) झूम खेती (shifting cultivation)
ii) विकास परियोजनाएँ (development projects)
iii) ईंधन की आवश्यकता (fuel requirement)
iv) उद्योग के लिए कच्चा माल (raw material for industry)
v) अन्य कारण

i) झूम खेती : खेती की यह विधि सारे भूमंडल पर काम में लाई जाती है लेकिन यह उष्णकटिबंधीय (tropical) देशों में बहुत प्रचलित है। इस पद्धति में ज़मीन के एक खंड को साफ कर लिया जाता है तथा वहाँ मौजूद वनस्पति जला दी जाती है। इस तरह से उपलब्ध राख को मिट्टी में मिला दिया जाता है और इस प्रकार मिट्टी में पोषक मिला दिए जाते हैं। ज़मीन के इस टुकड़े को दो या तीन साल के लिएं फ़सल उगाने के काम में लाया जाता है। इसमें उपज मध्यम होती है। इसके बाद इस क्षेत्र को खाली छोड़ दिया जाता है ताकि यह अपनी उर्वरता फिर से प्राप्त कर सके और यही पद्धति किसी दूसरी जगह ज़मीन के किसी अन्य टुकड़े पर दोहराई जाती है। खेती की इस विधि के लिए सिर्फ़ साधारण औज़ारों की आवश्यकता पड़ती है और उच्च स्तर के यंत्रीकरण (mechanisation) की कोई जरूरत नहीं होती। भारत में यह पद्धति उत्तर-पूर्वी प्रदेशों में महत्वपूर्ण रूप से व्यवहार में लाई जाती है जिसमें असम, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा और अरुणाचल प्रदेश, मिज़ोरम तथा अंडमान और निकोबार के संघ राज्य क्षेत्र (Union territories) शामिल हैं। यह पद्धति आंध्र प्रदेश और उड़ीसा तथा कुछ हद तक बिहार, मध्य प्रदेश, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और सिक्किम में भी प्रचलित है। इस पद्धति का स्थानीय नाम उत्तर-पूर्वी प्रदेश में झूम, आंध्र प्रदेश में पोडू और मध्य प्रदेश में बेवर या दाहज़ा है। उड़ीसा में इसे दाही (जलाना), गड़िया और चास कहते हैं। कुल मिलाकर देश में इस प्रकार की खेती के लिए लगभग 5 लाख हेक्टेयर ज़मीन हर साल साफ की जाती है।

हमारे देश में वनों का क्षेत्रफल लगभग 67.2 मिलियन हेक्टेयर है, जो कुल क्षेत्रफल का करीब 22 प्रतिशत बैठता है। हाल के वर्षों में बहुत बड़े क्षेत्र का वनोन्मूलन हुआ है। 1972-75 से 1980-82 के बीच हुए वनोन्मूलन का राज्यवार ब्यौरा नीचे दिया गया है। (स्रोत : राष्ट्रीय रिमोट सेन्सिंग एजेंसी)

राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र	वन क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)	
	1972-75	1980-82
आंध्र प्रदेश	4.90	4.04
असम	2.11	1.93
बिहार	2.27	2.01
गुजरात	0.95	0.51
हरियाणा	0.08	0.04
हिमाचल प्रदेश	1.51	0.91
जम्मू और कश्मीर	2.23	1.44
कर्नाटक	2.95	2.59
केरल	0.86	0.74
मध्य प्रदेश	10.86	9.02
महाराष्ट्र	4.07	3.04
मणिपुर	1.51	1.38
मेघालय	1.44	1.25
नागालैंड	0.82	0.81
उड़ीसा	4.84	3.94
पंजाब	0.11	0.05
राजस्थान	1.13	0.60
सिक्किम	0.18	0.29
तमिलनाडु	1.67	1.32
त्रिपुरा	0.63	0.51
उत्तर प्रदेश	2.59	2.10
पश्चिम बंगाल	0.83	0.65
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	0.33	0.64
अरुणाचल प्रदेश	5.14	5.21
दादरा और नगर हवेली	0.02	0.01
गोआ, दमन और दीव	0.12	0.11
मिज़ोरम	1.39	1.20

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि इससे पारितंत्र किस प्रकार निम्नीकृत होता है या प्रभावित होता है? खेती-बाड़ी के लिए ज़मीन साफ करते समय जीवभार (biomass) जलाया जाता है, जिसके फलस्वरूप बनने वाली राख मिट्टी को समृद्ध बनाती है। क्षेत्र की वनस्पति जला दिए जाने के बाद हालाँकि वर्षा होती रहती है, लेकिन पत्तियों तथा दूसरे कार्बनिक (organic) मलबे, जो मिट्टी को समृद्ध बनाते हैं, का मिलना बंद हो जाता है (देखिए चित्र 14.1)। ऐसे क्षेत्रों में वृक्षों का आवरण नहीं होने के कारण मूसलाधार वर्षा खुली मिट्टी पर पटापट गिरती है। इसकी वजह से न केवल मृदा अपरदन (soil erosion) होता है बल्कि वर्तमान पोषक भी पानी में बहकर नदियों या समुद्रों में चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा में कार्बनिक पदार्थों की घटती मात्रा और मृदा को बाँधे रहने वाले वनस्पति आवरण की हानि से मिट्टी की नमी धारण क्षमता (water retention capacity) भी पर्याप्त रूप से कम हो जाती है। इसके अलावा, एक क्षेत्र विशेष में दो या तीन फसलें लेने के पश्चात् मृदा के पोषक तत्वों की मात्रा में भी कमी होती है। कई बार एक क्षेत्र में एक के बाद एक लगातार फसलें उपजाई जाती हैं, जिसकी वजह से स्थायी निम्नीकरण (permanent degradation) हो जाता है। परित्यक्त ज़मीन (abandoned land) पर होने वाले वनस्पति पैटर्न में दूसरा बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव देखने में आया है। ऐसा देखा गया है कि झूम खेती की जगहों पर वन आवरण के हट जाने से मिट्टी खुली पड़ जाती है और उस जगह की सूक्ष्म जलवायु (microclimate) को बदल देती है, जिसकी वजह से बहुवर्षी पादपों (perennial plants) और पेड़ों (व्यक्तोद्भिद् या phanerophytes) की जगह एकवर्षी (एकन्नतद्भिद् या)

therophytes) अधिक उगते हैं। ऐसे अनेक स्थल जो मूल रूप से व्यक्त-ऋतुद्भिदीय (phanero-therophytic) थे, झूम खेती के बाद ऋतु-व्यक्तोद्भिदीय (thero-phanerophytic) हो जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि छोटे झूम चक्र के प्रभाव से *पार्थेनियम (Parthenium)*, *यूपेटोरियम (Eupatorium)*, और *आईकोर्निया (Eichhornia)*, जैसे अनेक खर-पतवार तेज़ी से पनप जाते हैं। आवास की सूक्ष्म जलवायु और दूसरे तत्वों में परिवर्तनों के कारण जर्मप्लाज़्म का ह्रास (depletion) हो जाता है।

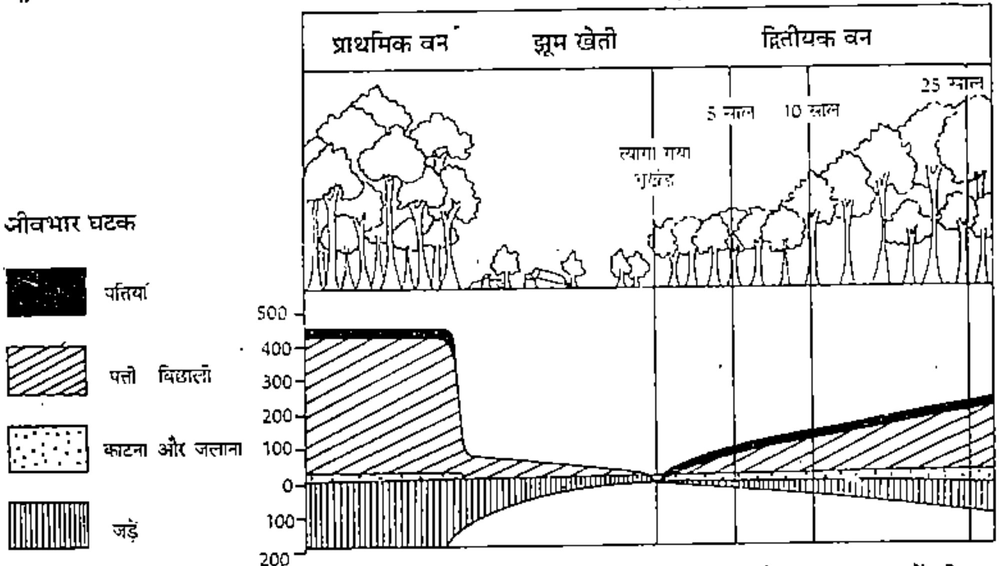

चित्र 14.1 : खेती की "काटो और जलाओ विधि" (झूम खेती) से पहले, उसके दौरान तथा बाद में जीवभार की स्थिति। जब प्राथमिक वन काटा जाता है तथा खाली ज़मीन खेती के लिए काम में लाई जाती है और उसके बाद छोड़ दी जाती है तो जीवभार में निर्णायक परिवर्तन होते हैं। जीवभार और वन भूमि में पोषक संचित रहते हैं। जब एक जंगल की वनस्पति काटी और जलाई जाती है तथा इसकी राख को मिट्टी में मिलाया जाता है तो ऐसे क्षेत्र को कुछ ही फसलें उगाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। तदोपरांत इस क्षेत्र को छोड़ दिया जाता है। ऐसी स्थिति में, यहाँ द्वितीय वन बन जाता है। यह द्वितीय वन, जोकि प्राथमिक वन की जगह लेता है, पहले वाले वन से बहुत ही कम मिलता-जुलता हुआ होता है। इसका कुल जीवभार कम होता है और जाति विविधता (species diversity) भी कम होती है।
(आर्नोल्ड न्यूमेन की ट्रॉपिकल रेनफोरेस्ट, 1990 पर आधारित)

ii) **विकास परियोजनाएँ :** मनुष्य की सदैव बढ़ने वाली आवश्यकताओं को सहारा देने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग, विकास कहलाता है। हाल के वर्षों में मानव जनसंख्या बहुत बढ़ी है और इसके साथ ही बढ़ी है उनकी आवश्यकताएँ। किसी भी देश को, विशेष रूप से हमारे जैसे विकासशील देश को अपने लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकास की प्रक्रिया को बहुत तेज़ रफ़्तार देनी होगी। हाल के वर्षों में हमने कई विकास परियोजनाओं को पूरा होते देखा है तथा कई दूसरी परियोजनाओं को बनते देखा है।

जल-विद्युत परियोजनाएँ, बड़े-बड़े बाँध और जलाशय, रेलवे पटरियों का बिछाना तथा सड़कों का बनाना आदि कई विकास परियोजनाएँ हैं जो न केवल अत्यधिक लाभकारी हैं बल्कि वे अनेक पर्यावरणीय समस्याओं से भी जुड़ी हुई हैं। इनमें से अनेक परियोजनाओं को पूरा करने के लिए अत्यधिक वनोन्मूलन करना पड़ता है। विभिन्न विकास परियोजनाओं के लिए मकानों, बस्तियों; बिजली सप्लाई जैसी अवसंरचनात्मक (infrastructural) सुविधाएँ देनी पड़ती हैं, इन सबके लिये वनों की कटाई कर, ज़मीन साफ करनी पड़ती है। अनेक विकास परियोजनाएँ ऐसी भी हैं जिनके लिए लकड़ी और दूसरे वन-उत्पाद परियोजना के ही काम में लाए जाते हैं। परियोजना के शुरू होने से बहुत पहले वनोन्मूलन शुरू हो जाता है और परियोजना के पूरे हो जाने के बाद भी बहुत समय तक जारी रहता है। वनोन्मूलन न केवल जीवजात (biota) और पड़ोसी पारितंत्रों को प्रभावित करता है, बल्कि इससे मृदा भी अपरदित होती है, भूमि निम्नीकृत होती है, भौमजल (ground water) जलमार्ग बदल जाते हैं और पानी प्रदूषित तथा दुर्लभ हो जाता है।

हमने ऊपर जिन बातों का उल्लेख किया है वे मात्र सैद्धांतिक नहीं हैं बल्कि वास्तव में ऐसी घटनाएँ देखी गई हैं। ऊपर कही गई बातों को सुस्पष्ट करने के लिए हम कुछ उदाहरणों का उल्लेख करेंगे।

हाल के कुछ वर्षों में अनेक नई सड़कें बनी हैं और पुरानी सड़कों को दुतरफा यातायात के लिए चौड़ा किया गया है। इस गतिविधि ने वनोन्मूलन, भू-स्खलन और अपरदन को बढ़ावा दिया है।

यह सभी जानते हैं कि कुछ वर्ष पहले बद्रीनाथ राजमार्ग पर ऋषिकेश तथा व्यासी के बीच भूस्खलन (landslides) लगभग नहीं के बराबर था। 1985 के दौरान लगभग 30 कि.मी. की छोटी-सी दूरी में ही 15 से भी अधिक भू-स्खलन हुए। इसमें संदेह नहीं कि सड़कों ने परिवहन के लिए सुविधा प्रदान की है और आधुनिक पर्यटन को बढ़ावा दिया है। कोई भी व्यक्ति सड़क निर्माण के खिलाफ नहीं है, लेकिन जिस ढंग से पहाड़ी सड़कें बनी हैं और बनाई जा रही हैं, वह दोषपूर्ण तथा आपत्तिजनक रहा है। सड़क निर्माण के दौरान भंगुर पर्वतीय प्रदेशों के बड़े-बड़े भाग डायनामाइट से काट दिए गए हैं या नष्ट कर दिए गए हैं और वे पास की घाटियों अथवा धाराओं में गिर गए हैं। ज़मीन के इस भारी मलबे के नीचे गिरने से न केवल पहले से ही कमज़ोर पहाड़ी ढालों को और कमज़ोर बनाया है बल्कि धाराओं/सरिताओं की आविलता (turbidity) को भी बढ़ाया है।

जलविद्युत (hydroelectric) शक्ति उत्पादन के लिए बाँधों का बनाया जाना आवश्यक है। लेकिन इससे भी पर्वतों के पारितंत्रों पर प्रभाव पड़ा है। टिहरी से लगभग 1.5 कि.मी. नीचे की ओर भागीरथी नदी पर बन रहा टिहरी बाँध पिछले वर्षों विवाद का विषय रहा है। इस बाँध के जलाशय का क्षेत्रफल 42 वर्ग कि.मी. है। बिजलीघर की कुल क्षमता 1000 मेगावाट है और परियोजना के दूसरे चरण में इसे दुगुना किया जाएगा। बाँध निर्माण गतिविधियों के कारण भी गंगा और भागीरथी की भू-आकृति (geomorphology) काफी हद तक बदल गई है। सुरंग बनाने की गतिविधियों के दौरान शैल पदार्थ—जिसका आकार धूल के कणों से लेकर चट्टान के एक घन मीटर टुकड़ों तक होता है नदियों में फेंके जाते हैं। जुलाई, 1981 के अंत तक कुल 38.42 लाख घन मीटर पदार्थ नदी में फेंका गया। सुरंग बनाने की प्रक्रिया में स्फोटन (blast) यानी चट्टानों आदि को उड़ाने के लिए 18.95 टन विस्फोटक (explosive) काम में लाया गया। सुरंग बनाने के पदार्थ और विस्फोटक के उपोत्पादों (byproducts) ने बाँध के पास भागीरथी के लगभग 2 कि.मी. विस्तार के प्राकृतिक गठन को बिगाड़ा है। बाँध स्थल से नीचे के प्रवाह में पानी के जिन भौतिक-रासायनिक प्राचलों (physico-chemical parameters) में सबसे जबरदस्त बदलाव आता है वे इस प्रकार हैं : प्रभाव की गति, पारदर्शिता (transparency), तापमान और घुली हुई ऑक्सीज़न (dissolved oxygen) (देखिए सारणी 14.1)।

तालिका 14.1 : टिहरी बाँध पर भागीरथी जल के भौतिक-रासायनिक प्राचल

(सिंह, एच.आर., 1987 के अनुसार)

क्र. सं.	स्थान	जल तापमान	आविलता (एन.टी.यू.)	वेग (मी./से.)	डी.ओ. (पी.पी.एम.)	बी.ओ.डी. (पी.पी.एम.)
1.	टिहरी (बाँध से पहले)					
	शीत ऋतु	11.25 + 2.87	10.5 + 7.51	1.44 + 0.48	10.26 + 0.69	2.15 + 0.32
	ग्रीष्म ऋतु	15.75 + 0.96	50.17 + 76.07	1.7 + 0.1	9.75 + 1.55	2.87 + 0.64
	मानसून	16.75 + 2.06	188.75 + 154.38	1.81 + 0.17	9.45 + 1.11	3.45 + 1.11
2.	टिहरी (बाँध बनने के बाद)					
	शीत ऋतु	12.33 + 2.31	17.17 + 15.69	0.86 + 0.19	10.07 + 0.85	2.45 + 0.21
	ग्रीष्म ऋतु	16.25 + 1.26	115.00 + 141.03	0.93 + 0.27	9.48 + 0.53	3.85 + 1.51
	मानसून	16.88 + 2.02	241.75 + 136.06	0.99 + 0.77	8.4 + 0.97	3.58 + 1.66

बाँध निर्माण से प्रभावित क्षेत्र में, इन प्राचलों के साथ-साथ नदी के प्लवकीय (plankfonic) और नितलस्थ (benthic) जीवन तथा मत्स्य क्षेत्रों का भी ह्रास हो रहा है।

विकास परियोजनाओं के फलस्वरूप पर्यावरण के निम्नीकरण का यह एकमात्र उदाहरण नहीं है। हम यहाँ एक और उदाहरण की चर्चा करेंगे। यह है सारदा सहायक नहर सिंचाई परियोजना। यह परियोजना पूर्वी उत्तर प्रदेश में 1974 में चालू हुई। इससे लगभग 16 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई हो सकेगी और यह उस क्षेत्र की रबी तथा खरीफ की फसल के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस नहर के चालू हो जाने से उस क्षेत्र में पर्यावरण के निम्नीकरण की गंभीर समस्याएँ पैदा हो गई हैं। निस्पंदन (seepage) की समस्या शुरू से ही रही और इस समय इस समस्या ने भयंकर रूप ले लिया है। इस नहर से निस्पंदन के कारण 1984 तक लगभग 385 गाँव, 13,677 घर और 2,200 मवेशियों का नुकसान हो चुका है। इसकी वजह से लगभग 1,42,000 हेक्टेयर भूमि ...

निकल गई (आँकड़े सिंह, पी.पी. और अफरोज़, ए., 1987 से)। इसके अलावा प्राकृतिक वनों का एक लंबा-चौड़ा हिस्सा, जिसमें लगभग 10 लाख साल पुराने पेड़ थे (*शोरिया रोवस्टा*) वह सारा का सारा निस्पंदन से नष्ट हो गया और पेड़ भी मर गए। किसी प्राकृतिक वन में पेड़ों का इतनी भारी संख्या में विनाश वहाँ के वन पर निर्भर रहने वाले प्राणियों तथा पौधों के जीवन को भी प्रभावित करता है।

दूसरे शब्दों में, जर्मप्लाज़्म (germplasm) की हानि होती है। जर्मप्लाज्म मनुष्य के लिए अत्यधिक मूल्यवान है। नहर स्पंदन और उच्च भौमजलस्तर (water table) ने व्यापक क्षेत्र को जलाक्रांत (water-logged) बना दिया। ऐसे क्षेत्र में लगातार जलाक्रांति से हाल ही के वर्षों में मलेरिया, फाइलेरिया, चमड़ी के तथा कई दूसरे रोगों की संख्या बढ़ गयी है। इस उदाहरण से साफ पता चलता है कि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराने से हमेशा ही सकारात्मक प्रभाव नहीं होता बल्कि कभी-कभी मिट्टी और भौमजलस्तर पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है। अधिकांश विकास परियोजनाओं के दौरान केवल उनके लाभकारी प्रभाव ही गिनाए जाते हैं और पर्यावरण पर पड़ने वाले उनके प्रतिकूल प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिए पर्यावरण की चिंता किए बिना जो विकास होता है वह अल्पकालिक विकास ही होगा और दीर्घकाल में वह प्रति-विकास अर्थात् विकासरोधी बन जाएगा।

iii) **ईंधन की आवश्यकता (fuel requirements) :** ईंधन की लकड़ी की बढ़ती हुई माँग वन पारितंत्र के निम्नीकरण का एक प्रमुख कारक (factor) है। वन उत्पादन के रूप में ईंधन का इतना बड़ा महत्व है कि विश्व-भर में काटी जाने वाली लकड़ी का आधा भाग खाना बनाने के लिए, आग जलाने या तापने के लिए आग जलाने के काम में आ जाता है। आज भी मानव जाति का एक-तिहाई भाग ईंधन के लिए लकड़ी पर निर्भर है। हाल के वर्षों में तेल संकट और तेल की कीमत में तेजी से हुई वृद्धि ने ईंधन के रूप में लकड़ी की माँग को बढ़ा दिया है।

भारत में प्रति वर्ष लगभग 135-170 मिलियन टन ईंधन काष्ठ की खपत होती है और इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए हर साल लगभग 10-15 मिलियन हेक्टेयर वन भूमि को खाली छोड़ दिया जाता है। ईंधन काष्ठ की खपत 1953 में 86.3 मिलियन टन से बढ़कर 1980 में 135 मिलियन टन तक पहुँच गई और ऐसा अनुमान है कि सन् 2000 तक यह माँग 300 से 330 मिलियन टन के आसपास पहुँच जाएगी। समय गुज़रने के साथ-साथ ईंधन काष्ठ की बढ़ती हुई माँग का अर्थ वनों पर अधिकाधिक दबाव पड़ना है। इसका यह मतलब भी हुआ कि वनोन्मूलन तेज़ी से होगा।

iv) **उद्योग के लिए कच्चा माल :** लकड़ी केवल ईंधन के रूप में ही काम नहीं आती, बल्कि इसके और भी अनेक उपयोग हैं। यह बक्से, क्रेट (crates), पैकिंग केस, माचिस की डिबिया, फर्नीचर, कागज़ और प्लाईवुड बनाने के काम भी आती है। 1951-1971 की कालावधि के दौरान विभिन्न औद्योगिक उपयोगों के लिए लगभग 1.24 लाख हेक्टेयर वन काटे गए। 1970 में उद्योगों के लिए लगभग 16 मिलियन घन मीटर लकड़ी की जरूरत हुई थी, जो 1980 तक बढ़कर 25 मिलियन घन मीटर तक पहुंच गई। देश में लकड़ी की वार्षिक खपत का लगभग 2 प्रतिशत कागज़ उद्योग के काम आता है। 1983 में लगभग 175 कागज़ मिलें थीं, जिनको बतौर कच्चे माल के 3.1 मिलियन टन लकड़ी की आवश्यकता होती थी। इस आवश्यकता का 51 प्रतिशत बाँस के उपयोग से पूरा होता था। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश में सेब उद्योग को सेब तथा सेब के उत्पादों के परिवहन के लिए भारी संख्या में पैकिंग केस की जरूरत पड़ती है। इस कार्य के लिए *ऐबीज* जाति और अन्य जातियों (species) की लकड़ी को पैकिंग सामग्री के रूप में काम में लाया जाता है।

चाय उद्योग में प्लाईवुड के बने पैकिंग केस भी व्यापक रूप से काम में लाए जाते हैं। इस समय असम में प्लाईवुड की लगभग 52 फैक्टरियाँ हैं। आज़ स्थिति यह है कि असम से प्लाईवुड उद्योग के लिए केवल 22 प्रतिशत कच्चा माल मिल पाता है। बाकी का कच्चा माल अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और नागालैंड से आता है।

जो उद्योग औषधियाँ (drugs), गंध (scents) और सुगंध (perfume), रेज़िन, गोंद, मोम, तारपीन (turpentine), लेटेक्स (latex) और रबड़, टैनिन (tannin), ऐल्केलॉइड (alkaloids), मधुमोम (bees' wax) बनाते हैं वे सभी अपना कच्चा माल पौधों से लेते हैं, जिससे पौधों पर भयंकर दबाव पड़ता है तथा अंत में वे नष्ट हो जाते हैं।

अब तक हुई चर्चा से आपको पता चल गया होगा कि उद्योगों की बहुत बड़ी संख्या वनों पर निर्भर है। विभिन्न कच्चे माल के लिए वनों का बिना सोचे-समझे तथा असीमित शोषण वन पारितंत्र के निम्नीकरण का मुख्य कारण हैं।

v) **अन्य कारण** : दीमकों, पीड़कों (pests) और अनेक प्रकार के रोगों से वनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बाढ़ और आग से भी वनों को बहुत भारी क्षति पहुँचती है। वनों में लगने वाली कुछ आग प्राकृतिक नहीं होती, बल्कि तस्कर-व्यापारी जानबूझकर यह आग लगाते हैं। रक्षा गतिविधियों के दौरान खाई खोदने, बंकर (bunker) बनाने, भारी हथियारों को लाने-ले जाने से और उनके परीक्षण तथा उपयोग से भी पारितंत्र पर पर्याप्त रूप से प्रभाव पड़ता है।

ऊपर बताए गए कारणों के अलावा अतिचराई (overgrazing), खेती-बाड़ी, खनन (mining) और शहरीकरण (urbanisation) से भी वनोन्मूलन होता है। इन सभी बातों का पारितंत्र पर जटिल प्रभाव पड़ता है। इसलिए इनकी अलग-अलग शीर्षक से उप-भागों (sub-sections) में चर्चा की गई है।

14.2.2 अतिचराई

अतिचराई उस परिस्थिति को दर्शाती है जब वनस्पति पर चराई का दबाव इतना जबरदस्त होता है कि वह फिर से नहीं उग पाती। आखिर में मिट्टी को बाँधे रखने वाला आवरण खत्म (वनोन्मूलन) हो जाता है और इससे मृदा-अपरदन होता है तथा रेगिस्तान बनने लगते हैं। वनोन्मूलन और अतिचराई दोनों मिलकर रेगिस्तान बनने की प्रक्रिया को और तीव्र कर देते हैं। अतिचराई के साथ-साथ जैसे-जैसे वनस्पति कम होती जाती है वैसे-वैसे मिट्टी और पानी का निर्णायक संबंध फेल हो जाता है और अंत में क्षेत्र के प्राणियों की वहन करने की क्षमता (carrying capacity) कम हो जाती है। चराई की मात्रा का जल के अंतःस्पंदन (infilteration) की दर से आनुपातिक (proportional) संबंध है। भारी चराई वाले क्षेत्रों में अंतःस्पंदन कम होता है और कम चराई वाले क्षेत्रों में ज़्यादा। भारी चराई वाले क्षेत्रों में वाहजल (runoff) की दर भी ऊँची होती है। अतिचराई वाले क्षेत्रों में मिट्टी की पानी संचित रखने की क्षमता यानी जल-धारिता घट जाती है। किसी विशेष समय में उपलब्ध नमी इतनी कम रह जाती है कि पौधों तथा उनके पुनर्जनन (regeneration) की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह अपर्याप्त होती है। ऊपर जिन घटनाओं का वर्णन किया गया है वे सभी मिट्टी की गुणता को कम करती हैं और अंततः पारितंत्र के निम्नीकरण का कारण बनती हैं।

भारत में ग्रामीण जीवन में पशुधन (livestock) संपदा एक निर्णायक भूमिका निभाती है। पिछले सालों में पशुधन आबादी लगातार बढ़ी है। 1951 से 1981 तक यानी 30 वर्षों के अंतराल में पशुधन में 42 प्रतिशत वृद्धि रजिस्टर की गई। ऊपर बताए गए काल में पशुधन 292.02 मिलियन से बढ़कर 415.95 मिलियन हो गया। दूसरी ओर, उसी कालावधि में चारा पैदा करने के लिए चराई की ज़मीन के रूप में उपलब्ध भूमि संसाधन 14545 मिलियन हेक्टेयर से घटकर 129.25 मिलियन हेक्टेयर रह गया। इससे आवास 11.03 प्रतिशत कम हो गया। इस प्रकार, प्रति पशु उपलब्ध ज़मीन 0.51 हेक्टेयर से घटकर 0.32 हेक्टेयर रह गई अर्थात् 37 प्रतिशत की कमी हुई। इन आँकड़ों से स्पष्ट पता चलता है कि पशुधन संसाधन बढ़े हैं और उपलब्ध भूमि संसाधनों में कमी हुई है। इसलिए चराई वाली भूमि पर भारी दबाव पड़ा है। नीचे दिए गए आँकड़ों से आपको परिस्थिति का भली-भाँति आभास हो जाएगा।

चराई की सामान्य परिस्थितियों में चराई की एक हेक्टेयर ज़मीन से वर्षाधीन (rainfed) क्षेत्रों में 3 मवेशियों का, और व्यापक रूप से सिंचित क्षेत्रों में 6 मवेशियों का भरण-पोषण हो सकता है। वास्तव में, इस प्रकार की भूमि पर निर्भर करने वाले प्राणियों की संख्या कहीं अधिक है–उन भूमियों की वहन क्षमता से 2.4 से लेकर 4.5 गुना तक की। उदाहरण के लिए जम्मू और कश्मीर में चराई-भूमि तथा चारा उपलब्ध करने वाली भूमि के प्रत्येक हेक्टेयर से 16.8 प्राणियों का भरण-पोषण होता है। ऊपर की गई इस प्रकार की चर्चा से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि चराई की भूमि तथा चारा-भूमियों की अतिचराई होती है।

14.2.3 कृषि

कृषि भले ही परंपरागत हो अथवा आधुनिक, दोनों में ही पारिस्थितिकीय तंत्रों (ecological systems) का हस्तक्षेप और रूपांतरण (modification) होता है। जब से मनुष्य ने खेती-बाड़ी करना शुरू किया है, उसका मुख्य लक्ष्य कृषि-पारितंत्र को ऐसे ढंग से रूपांतरित करना रहा है जिससे कि उत्पादकता पर प्राकृतिक सीमाओं के नियंत्रण को हटाया जा सके या कम किया जा सके और फसल उगाने के लिए एक अधिक अनुकूल पर्यावरण रचा जा सके। इस रूपांतरण में फसल पौधों और मवेशियों की नई जातियों (species) या किस्मों (varieties) का प्रवेशन (introduction), पीड़कनाशियों (pesticides) के उपयोग से पौधों (खरपतवार आदि) और अन्य जीवों (organisms) का विलोपन, उर्वरकों को अधिक मात्रा में काम में लाना, जुताई द्वारा मृदा

संरचनात्मक (structural) परिस्थितियों के अनुकूल कर लिया जाता है तथा सिंचाई और जल निकास द्वारा मिट्टी की नमीं का नियंत्रण शामिल है। हालाँकि इस क्षेत्र में आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ रही हैं लेकिन चित्र के दूसरे पक्ष की प्रायः उपेक्षा की गई। यह पहलू है पर्यावरण पर पड़ने वाला दुष्प्रभाव मनुष्य द्वारा अपनाई गई कृषि की विभिन्न पद्धतियों ने पर्यावरण को पर्याप्त रूप से निम्नीकृत किया है।

खेती-बाड़ी की वजह से पारितंत्र का निम्नीकरण निम्नलिखित कारणों से हो सकता है :

क) पेड़ों के कटने से (वनोन्मूलन) और कृषि के लिए ज़मीन को साफ करने से अनेक प्रकार के जीवों के आवास (habitats) नष्ट हो जाते हैं। वनोन्मूलन से अंततः मृदा-अपरदन, पोषकों की क्षति और रेगिस्तान बनने जैसी समस्याएँ पैदा होती हैं।

ख) यदि बिना समुचित मृदा प्रबंध के ज़मीन पर गहन खेती की जाती है तो मृदा-अपरदन, मरुस्थल (desertification) और पौधों के पोषकों के ह्रास (depletion) जैसी समस्याएँ पैदा होती हैं।

ग) सिंचाई जब पर्याप्त जल निकास की व्यवस्था के बिना की जाती है तो मिट्टी में पानी का (जलाक्रांति) या लवणों का अत्यधिक जमाव (लवणन-salinisation) तथा भौमजलस्तर (water table) ऊँचा होना जैसी समस्याएँ खड़ी होती हैं। इन सबसे मृदा की गुणता का निम्नीकरण होता है।

घ) कृषि-रसायनों (agrochemicals), उर्वरकों और पीड़कनाशियों के अंधाधुंध उपयोग से वे मृदा तथा भूमिगत जल (underground water) में जमा होते रहते हैं तथा हानिकारक स्तर तक पहुँच जाते हैं। इसकी वजह से आम तौर पर आहार-शृंखला (food chain) में उनका जैव-संचयन (bioaccumulation) होता है। इतना ही नहीं, ये रसायन प्रायः मृदा की गुणता को घटा देते हैं और आखिर में पारितंत्र को निम्नीकृत करते हैं।

14.2.4 खनन

मनुष्य के कल्याण और समृद्धि के लिए पृथ्वी की पपड़ी (crust) से खनिजों (minerals) और अन्य पदार्थों को हटाना खनन कहलाता है। आधुनिक औद्योगिक, आर्थिक और वाणिज्यिक गतिविधियाँ खनिजों के शोषण और उपभोग पर बहुत निर्भर करती हैं। खनिज संसाधनों की निष्कर्षण (extraction) प्रक्रिया और खनिजों के अनेक प्रकार के उपयोग से पर्यावरण में व्यापक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों से प्रायः पारितंत्र का निम्नीकरण होता है और इनके दूरगामी परिणाम होते हैं।

देश में 80,000 हेक्टेयर से भी अधिक भूमि (चित्र 14.2 देखिए) इस समय विभिन्न प्रकार की खनन गतिविधियों के दबाव में है।

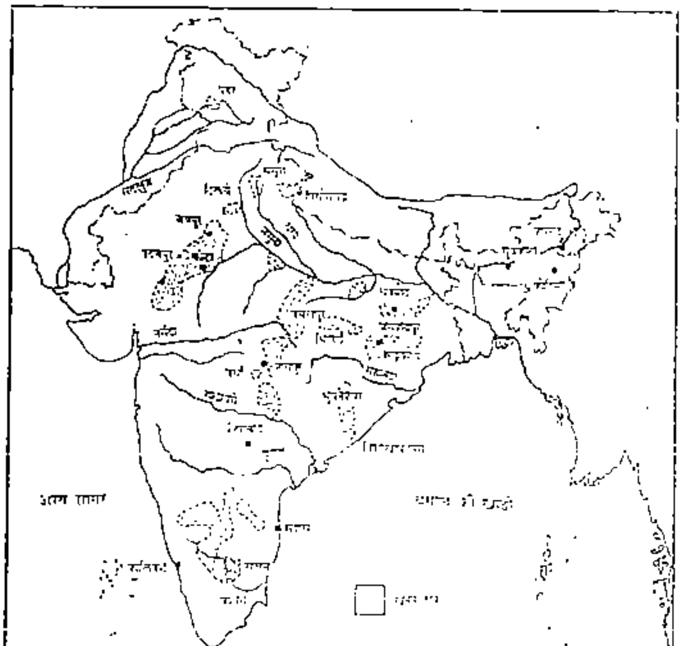

चित्र 14.2 : खनन गतिविधियों से प्रभावित क्षेत्र (के.एल. वल्दिया, 1987 से उद्धृत, साभार)

खनिजों और निर्माण पदार्थों को पाने के लिए अधःस्थ मृदा प्रावार (underlying soil mantle) यानी नीचे स्थित मिट्टी की तह सहित वनस्पति के आवरण (vegetable cover) को हटाना पड़ता है (वनोन्मूलन) और अपरिशायी यानी ऊपर पड़े चट्टान के द्रव्यमान (mass) जिसे अधिभार (overburden) कहते हैं, को खोदना पड़ता है। अधिभार की मात्रा सामान्यतया निकाले जाने वाले पदार्थों या खनिजों के आयतन से ज़्यादा होती है। इसका परिणाम होता है स्थलाकृति (topography) का पुनःरूपण यानी रूप बदल जाना, मलबे (अपशिष्ट पदार्थ) के भारी आयतन का जमाव और भू-पृष्ठजल (surface water) तथा भूमिगत जल (underground water) परिसंचरण (circulation) का टूटना। इससे और भी मृदा अपरदन होता है, भूस्खलनों (land slides) की संख्या बढ़ जाती है और आखिरकार भूमि का निम्नीकरण होता है। बनाई गई सड़कों का जाल भू-निम्नीकरण की समस्या को और बढ़ा देता है।

दून घाटी में मसूरी में चूना-पत्थर (limestone) खनन इस बात का अच्छा उदाहरण है कि खनन गतिविधियाँ किस प्रकार विनाश का कारण बनती हैं। यहाँ गहन खनन और इससे संबद्ध गतिविधियों ने इस क्षेत्र और यहाँ के प्राणियों पर गहरा प्रभाव डाला है। चूना-पत्थर आखनन (quarrying) के कारण पहाड़ी सैरगाहों की मलिका कहलाने वाली मसूरी को अपने वन आवरण से हाथ धोना पड़ा। एक समय जिन पहाड़ियों के नदी-तल (river bed) के पास का घना जंगल शीशम और साल के पेड़ों से भरा पड़ा था और जिसकी ऊँची ढलानों पर फर (fir), भूर्ज (birch) और चीड़ (pine) के वृक्षों की भरमार थी, वे पहाड़ियाँ क्रमशः अनावृत की जा रही हैं, प्रदेश में प्रचुरता से मिलने वाली श्वेत-शैल (white rock) यानी सफेद चट्टान और धूल-चूना-पत्थर के बड़े भूखंडों को उखाड़ा जा रहा है। किसी समय जो प्राणिजात (fauna) विविधता से भरा था और जिसमें लोमड़ियों, हिरनों, बकरियों, सूअरों, श्रृगालों (गादड़े), बंदरों और अनेक किस्म के पक्षियों की भरमार थी, उसका धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है।

चूना-पत्थर आखनन क्षेत्र के पास पशु-पालन एक महत्वपूर्ण उद्यम (enterprise) था क्योंकि पशुओं के लिए दूर-दूर तक फैला घासस्थल था और अधिकांश ग्रामवासी दूध के उत्पादन तथा व्यापार से जुड़े थे। अब, चूना-पत्थर आखनन के कारण, चरागाह (pastures) गायब हो गए हैं और चारा (fodder) एक दुर्लभ जिंस (commodity) बन गया है। इससे उस क्षेत्र में दूध का उत्पादन घट गया है। पालतू पशुओं की संख्या में कमी के कारण कार्बनिक (organic) खाद में कमी आई है और चीड़ों को गिराने से रेज़िन के उत्पादन पर प्रभाव पड़ा है। रेज़िन तारपीन बनाने के काम आता है। वनोन्मूलन के फलस्वरूप सोते (springs) सूख गए हैं।

इस क्षेत्र में पर्यावरण के निम्नीकरण का दूसरा महत्वपूर्ण कारक आखनन क्षेत्रों को जोड़ने वाली सड़कों का व्यापक जाल है। इन सड़कों ने यहाँ की पहाड़ियों को और यहाँ के परिदृश्य को न केवल भद्दा बना दिया है, बल्कि इसके फलस्वरूप बार-बार भूस्खलन हुआ है जिससे वहाँ के पारितंत्र पर काफी प्रभाव पड़ा है।

इसके अतिरिक्त चट्टान विस्फोटन से भी भारी क्षति हुई है। मसूरी की पहाड़ियों में विस्फोटकों को भारी मात्रा में काम में लाया जा रहा है। औसतन प्रति खदान (quarry) प्रति दिन 3 विस्फोट होते हैं और यहाँ लगभग 80 खदानें हैं। इन विस्फोटों से होने वाले शोर से न केवल खीज पैदा होती है बल्कि अधिक महत्वपूर्ण समस्याएँ चट्टान के टुकड़ों के उड़ने से पैदा होने वाला जोखिम तथा भू-कम्पनों (vibrations) के कारण होने वाली क्षति है। इनसे पहाड़ की चोटियाँ अस्थिर हो गई हैं। न केवल भूस्खलन की घटनाएँ बढ़ गई हैं, बल्कि जगह-जगह सोते सूख गए हैं और दूसरी जगहों पर विसर्जन (discharge) बढ़ गया है। उदाहरण के लिए ककवारी, डेरीनाला, केम्पटी जैसी और अन्य सरिताओं/धाराओं को पानी देने वाले सोते सूख गए हैं। अभी तक दर्जन से भी अधिक घाटियों में कई सोतों का विसर्जन कम हो गया है और कई सरिताएँ जिनमें हाल के वर्षों में पानी बहता था, अब बिल्कुल सूख गई हैं।

ऊपर का उदाहरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि किस प्रकार पर्यावरण की समस्याओं ने मसूरी में भूमि का निम्नीकरण किया है, जोकि एक स्थलीय पारितंत्र है। इसी प्रकार, महासागरों में, जहाँ खनिज मिलने की अपार संभावना है, पिछले कुछ वर्षों में खनन गतिविधियाँ बहुत बढ़ गई हैं। यह भी चिंता का विषय बनता जा रहा है क्योंकि खनन का उस क्षेत्र पर और अंततः वहाँ के जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

बहुधात्विक ग्रंथिकाएँ (polymetallic nodules) प्राप्त करने के लिए समुद्र अधस्तल (floor) का व्यापक पैमाने पर खनन करने से नितलस्थ जीवीय (biotic) समुदाय पर पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा।

बहुधात्विक नोड्यूलों में ज़िंक (Zn), निकिल (Ni) और दूसरे धातुओं के सल्फाइड होते हैं। नितलस्थ (benthic) जीवीय समुदाय पर प्रभाव पड़ने का कारण तलछट (sediments) का मंथन और निलम्बित (suspended) पदार्थों की अवनालिकाओं (flumes) का बनना है। अयस्कों (ores) के साथ निकले समुद्र तलछट पदार्थों का निपटारा एक बड़ी समस्या बन जाएगा क्योंकि प्रतिदिन 1000 टन बहुधात्विक ग्रंथिकाओं का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए उसके साथ प्रतिदिन आने वाली लगभग 1000 टन तलछट का निपटान आवश्यक है। ग्रंथिकाओं के प्रक्रमण (processing) के बाद अगर तलछटों और अपशिष्ट पदार्थों को वापस समुद्र में बह जाने दिया जाए तो यह उथले सूर्यदीप्त (sunlit) तटीय क्षेत्र के जीवन को प्रभावित करेगा। मछलियों और दूसरे प्राणिजात के अंडजनन (spawning) पर विशेष रूप से गंभीर प्रभाव पड़ेगा।

14.2.5 शहरीकरण

200 से भी ज़्यादा वर्षों से विश्व की जनसंख्या, नगर (town) और शहरों में, जोकि पृथ्वी की सतह का अपेक्षाकृत छोटा-सा भाग है, में सिमटती गई है। लेकिन शहरीकरण कहलाने वाली इस प्रक्रिया की गति में बीसवीं सदी के दौरान तेजी आई है। 1900 में विश्व जनसंख्या का 13.6 प्रतिशत और 1960 में 33.6 प्रतिशत शहर में रहता था। इसकी तुलना में शहर में बसने वालों की जनसंख्या का प्रतिशत 1985 में लगभग 41.6 हो गया। पिछले 25 वर्षों में लगभग सभी देशों में शहर में रहने वालों की जनसंख्या का अनुपात बढ़ा है।

शहरीकरण के कारण पर्यावरण का निम्नीकरण कई तरह से हुआ है जैसे कि :

1) गृह-निर्माण, उद्योगों, सड़कों और बाँधों को बनाने के लिए कृषि और उपजाऊ भूमि का अधिक्रमण (encroachment)। जैसे-जैसे नगर फैलते हैं, वे उपजाऊ फसल भूमि और समृद्ध वन भूमि पर वनोन्मूलन के कारण प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार उस क्षेत्र की जैविक (biological) विविधता हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है। 1950 से लगभग 1.5 मिलियन हेक्टेयर उपजाऊ भूमि नगरों और शहरों की भेंट चढ़ा दी गई है। ऐसा अनुमान है कि ईसवी सन् 2000 तक ऐसी ही 8 मिलियन हेक्टेयर भूमि शहरों और नगरों के विकास के लिए अर्पित कर दी जाएगी। अगर दिल्ली की मिसाल लें तो पता चलेगा कि पिछले 20 वर्षों के भीतर यह शहर 35 प्रतिशत फैला है। किसी भी शहर, जोकि लगभग 30 वर्ष पुराना है तथा उसके उपनगरों (suburbs) में लगभग सभी वन्य जीव समाप्त हो गये हैं क्योंकि इन जीवों के आवास नष्ट हो गए हैं।

2) निर्माण कार्य के लिए भारी मात्रा में निर्माण सामग्री चाहिए। ईंटें बनाने वाले भट्टे न केवल वायुमंडल को प्रदूषित करते हैं बल्कि ईंटें बनाने के लिए भारी मात्रा में उपजाऊ मिट्टी प्रयुक्त करते हैं। इस प्रकार जो उपजाऊ भूमि कृषि के लिए बेहतर होती है, वह घटिया बन जाती है और हमेशा के लिए नष्ट हो जाती है।

3) उद्योगों का विकास शहरीकरण के साथ मिलकर होता है। बंबई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली जैसे शहर बड़े पैमाने पर उद्योगीकृत हो गए हैं। महाराष्ट्र के उद्योगों का लगभग 60 प्रतिशत अकेले बंबई में ही स्थित है। कुछ उद्योगों के उपोत्पादों/उत्सर्जनों (byproducts/emissions) के कारण और उन उद्योगों द्वारा प्राकृतिक आवासों (habitats) के अत्यधिक उपयोग के कारण पारितंत्र पर्याप्त रूप से प्रभावित हुआ है। पारितंत्र पर उद्योग और प्रदूषण के प्रभावों के बारे में आप इस खंड की इकाई 15 में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

4) गंदी बस्तियाँ पर्यावरण के गिरते हुए स्तर को दर्शाती हैं। गंदी बस्तियों का विकास और उनका प्रचुरोद्भवन यानी भारी संख्या में उत्पन्न होना, शहरीकरण और उद्योगीकरण का सहवर्ती है। भारत की शहरी जनसंख्या का लगभग 18.8 प्रतिशत गंदी बस्तियों में रहता है। गंदी बस्तियों के निवासियों का पर्यावरण ऐसा है जहाँ रहने की जगह, जल-आपूर्ति, सीवर सुविधाओं की कमी है। इससे न केवल आसपास के क्षेत्र खराब होते हैं बल्कि मानव स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है।

बोध प्रश्न 1

1) नीचे दी गई खाली जगहों में उपयुक्त शब्द भरिए। यह बोध प्रश्न इकाई के पहले उद्देश्य से संगत है।

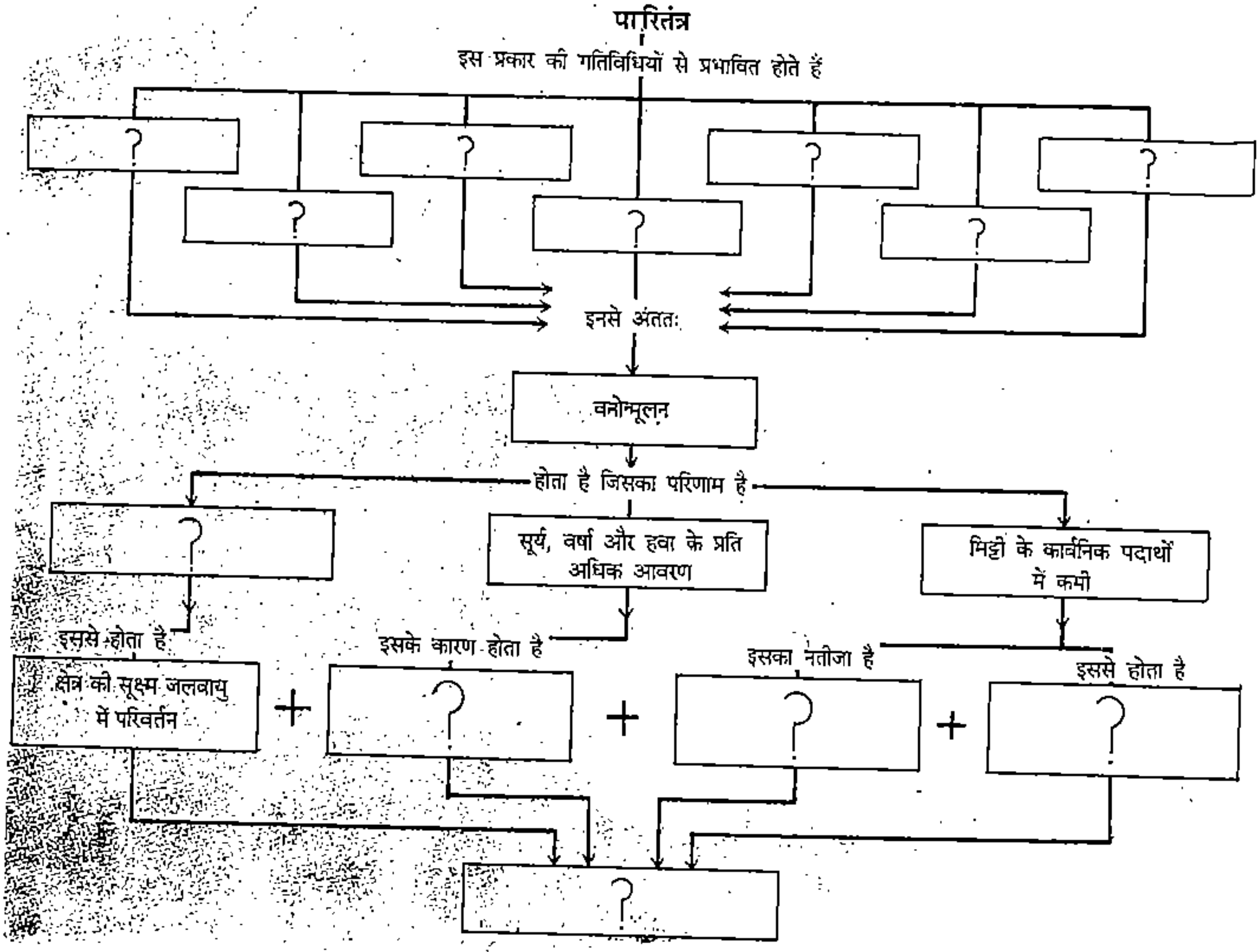

14.3 वन्यजीवन क्या है?

वन्यजीवन या वाइल्ड लाइफ शब्द का उपयोग संभवतया न्यूयॉर्क जुलोजिकल पार्क के निदेशक विलियम होर्नाडे द्वारा लिखित पुस्तक *"अवर वेनिशिंग वाइल्ड लाइफ"* में 1913 में पहली बार हुआ। इस पुस्तक का मुख्य फोकस शिकार के पक्षियों, स्तनियों (mammals) और मछलियों के अति-शोषण और कुछ ऐसे पक्षियों के पालन की ओर भी ध्यान आकर्षित करना था जो शिकार-पक्षी नहीं हैं। जैसे कि गायकपक्षी (songbird) जिसका यूरोपीय आप्रवासी प्रायः शिकार करते हैं। 1937 तक वन्यजीवन मिलकर एक शब्द वन्यजीवन हो गया।

हालाँकि उन्नीस सौ तीस के दशक में वन्यजीवन शब्द निर्मित कर लिया गया था और इसे एक शब्द मान लिया गया, फिर भी सुप्रसिद्ध शब्दकोशों में इसे परिभाषित नहीं किया गया। 1986 में इसे वेब्स्टर शब्दकोश में पहली बार शामिल किया गया। वेब्स्टर शब्दकोश में इसकी परिभाषा इस प्रकार है–"जीवित प्राणी जो न तो मानव हैं और न ही पालतू"। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार वन्यजीवन "किसी प्रदेश का मूल (प्राकृत) वनस्पतिजात (flora) और प्राणिजात (fauna)" है।

अगर हमसे वन्यजीवन जातियों की सूची बनाने के लिए कहा जाए तो उस सूची में प्राणियों, पक्षियों और कभी-कभी मछलियों की प्रमुखता होगी। सामान्यतया हम यह सोचते हैं कि केवल बड़े प्राणी, मांसाहारी, शिकार के प्राणी और पक्षी ही वन्यजीवन में आते हैं। आज के परिवेश में वन्यजीवन शब्द में ऊपर बताए गए जीवों के अलावा भी बहुत कुछ आता है। आजकल पौधे, सूक्ष्मजीव (microorganism) तथा जिन जीवों के बारे में हम बहुत कम जानते हैं, ऐसे जीव भी

वन्यजीवन की परिधि में आते हैं। वन्यजीवन का एक अभिलाक्षणिक गुण यह है कि वे मानव की देखभाल के बिना ही किसी क्षेत्र विशेष में फलते-फूलते हैं और जीवित रहते हैं। वे उस क्षेत्र-विशेष की मृदा, उसके प्रकाश और तापमान की परिस्थितियों के प्रति अच्छी तरह अनुकूलित होते हैं। हमारे बागों के तमाम फूल वन्य पुष्पों के वंशज हैं। जंगली फूल प्रकृति में अपने आप उगते हैं, अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं और अगली ऋतु में फिर उगते हैं।

14.4 वन्यजीवन को खतरे

जीवन लगभग 3.5 अरब (billion) वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ और तभी से 5000 लाख किस्म के पौधों, प्राणियों और सूक्ष्म जीवों ने पृथ्वी को अपना घर बनाया हुआ है। आजकल ऐसा माना जाता है कि केवल 50 लाख से लेकर एक करोड़ तक जातियाँ ही जीवित हैं। लेकिन हमारे पास सही-सही आँकड़े नहीं हैं क्योंकि पृथ्वी के अभी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहाँ के जीवों की खोज नहीं हुई है। उष्णकटिबंधीय (tropical) वर्षा वन ऐसे क्षेत्रों के उदाहरण हैं, जिसके बारे में हमारी जानकारी नहीं के बराबर है। वहाँ रहने वाले लगभग 90 प्रतिशत जीवों को अभी वर्गीकृत किया जाना है। इस प्रकार जीवन आरंभ होने के बाद लगभग 490 मिलियन जातियाँ विलुप्त (extinct) हो गई हैं।

पर्यावरणीय जागृति के इस युग में हम प्रायः अनेक वन्यजीवन जातियों के विलुप्त हो जाने के भय या आशंका के बारे में सुनते या पढ़ते हैं। ऐसे कुछ उदाहरण घटपर्णी (pitcher plant), ऑर्किडों की अनेक जातियाँ, रोडोडेन्ड्रॉन (बुरूंश), गैंडा, भारतीय पैंगोलिन और उड्डयन बलगुल (flying fox) हैं। इस भाग में हम आपसे उन कारणों के बारे में चर्चा करेंगे, जिनसे ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। हम इनकी चर्चा निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत करेंगे :

14.4.1 आखेट और निर्यात
14.4.2 वन्यजीवन आवासों का विलोपन या उनका अस्त-व्यस्त होना
14.4.3 चयनात्मक विनाश
14.4.4 पालतू बनाना
14.4.5 नई जातियों का उपस्थापन या प्रवशन (introduction)
14.4.6 पीड़कनाशी (pesticides)
14.4.7 पालतू प्राणी (pets), आयुर्विज्ञानीय (medical) अनुसंधान और चिड़ियाघर (zoos)

14.4.1 आखेटन और निर्यात

प्राणियों की कुछ जातियों का अत्यधिक शिकार करना और निर्यात करना भी उनकी संख्या में भयंकर कमी का दूसरा महत्वपूर्ण कारक है। तीन प्रमुख प्रकार के आखेट इस प्रकार हैं :

i) **वाणिज्य-आखेटन (commercial hunting) :** प्राणियों के फर या दूसरे भागों को बेचकर लाभ कमाने के लिए उनको मारा जाता है।

ii) **निर्वाह आखेटन (subsistence hunting) :** जीवित रहने के लिए पर्याप्त भोजन पाने के उद्देश्य से प्राणियों को मारना।

iii) **शिकार के लिए आखेटन (sport hunting) :** मनोरंजन के लिए जानवरों को मारना।

किसी समय निर्वाह (subsistence) के लिए शिकार करना भले ही कुछ जातियों के विलुप्त होने का प्रमुख कारण रहा हो, अब यह अधिकतर क्षेत्रों में तेजी से कम हो गया है। सिर्फ खेल की दृष्टि से शिकार करना अब अधिकतर देशों में बहुत नियंत्रित कर दिया गया है, जातियाँ तभी खतरे में पड़ती हैं जब रक्षात्मक नियंत्रण नहीं बने होते या लागू नहीं होते।

विश्वव्यापी स्तर पर वाणिज्य-आखेट से प्राणियों की बहुत ज्यादा जातियों को भय है। जागुआर, बाघ (tiger), हिम तेंदुआ (snow leopard) और चीता का शिकार उनकी खाल के लिए किया जाता है। हाथियों का शिकार उनके गजदंत (tusk) के लिए (उसकी वजह से एक वर्ष में लगभग 90,000 हाथी मार दिए जाते हैं) और गैंडों का शिकार उनके सींगों के लिए किया जाता है। गैंडे का सींग संहत (compact) बालों का पुंज है और एक सींग की काला बाज़ार में 24,000 डॉलर तक की कीमत है। उत्तरी यमन में इस सींग से अलंकृत चाकुओं की मूठें बनती हैं और इसे पाउडर के रूप में पीसकर दवा के काम में लाया जाता है, विशेष रूप से एशिया के भागों में इसे बुखार कम करने के लिए काम में लाते हैं। इसे बाजीकर (aphrodisiac) या यौन उद्दीपक

(sexual stimulant) माना जाता है। इसमें केराटिन नामक पदार्थ होता है, जो बालों की कतरनों और अंगुलियों के नाखून के पदार्थों से मिलता-जुलता है। हालांकि 60 देश गैंडे के सींगों का आयात-निर्यात न करने के लिए सहमत हो गए हैं, फिर भी इस सींग का ऊँचा बाज़ार-भाव होने से इसका अवैध धंधा चालू है। अफ्रीका में 1970 और 1986 के बीच काले गैंडों की संख्या 65,000 से घटकर लगभग 5,000 रह गई। इसके अलावा 1986 तक लगभग 100 सफेद गैंडे बचे रहे। अगर अनधिकार शिकार (poaching) आज ही की दर पर बरकरार रहा तो गैंडे की सभी जातियाँ एक दशक में ही विलुप्त हो जाएंगी।

दूसरा अत्यधिक प्रचारित वाणिज्य-आखेट व्हेल का है। व्हेल-उद्योग ने अपने प्रयास आम तौर पर बड़ी, लाभकारी शृंगास्थि (baleen) व्हेलों को पकड़ने में जुटाए हैं। उन व्हेलों का उनकी तिमी वसा (blubber), शृंगास्थि के लिए वध किया जाता है। शृंगास्थि एक अस्थिल छलनी है जिससे व्हेल समुद्र के जल को फिल्टर करती हैं। व्हेल वसा से लैंपों को जलाने तथा मशीनों के स्नेहन (lubrication) के लिए एक उच्च कोटि का तेल बनाया जाता था। बैलीन या "व्हेल-अस्थि" को चोली-टेक (carset stays), कंघे और ऐसे ही उत्पाद बनाने के काम में लाया जाता था।

व्हेल-उद्योग का इतिहास अति-शोषण का रहा है। व्हेल का अति-शोषण किया गया तथा व्हेल-आखेटकों ने एक जाति को पकड़ना तब तक जारी रखा जब तक विलुप्त होने के कगार पर नहीं पहुँच गई और उसके बाद दूसरी लाभकारी जाति के पास जा पहुँचे, और इस पैटर्न को बार-बार दोहराते रहे।

दुनिया का सबसे बड़ा जीवित प्राणी, नीली व्हेल की संख्या कभी लगभग 2,00,000 थी लेकिन 1950 के दशक के मध्य तक यह संख्या घटकर लगभग 1,000 रह गई। अनेक वैज्ञानिकों का मानना है कि हालाँकि नीली व्हेल की आबादी अब रक्षित है, लेकिन अब यह शायद ही पहले वाली स्थिति तक पहुँच पाए।

14.4.2 वन्यजीवन आवासों का विलोपन (elimination) या उनका अस्त-व्यस्त होना

आवास (habitat) का अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जहाँ जातियाँ आहार तलाशती हैं, आश्रय पाती हैं और जनन (reproduce) करती हैं। वन्य पौधों और प्राणियों की जातियों को सबसे बड़ा भय उनके आवास के नष्ट हो जाने या उसमें परिवर्तन हो जाने से होता है। अगर किसी प्राणी का आवास नष्ट कर दिया जाता है या विलुप्त हो जाता है तो उस प्राणी के सामने तीन विकल्प होते हैं—या तो वह नए परिवर्तनों के प्रति अनुकूल बन जाए, कहीं और चला जाए या मर जाए। जब उसे उसके प्रदेश से खदेड़ दिया जाता है और अगर उसे उपयुक्त आवास मिल भी जाता है तो यह संभावना है कि यह नया आवास पहले से ही अन्य जीवों द्वारा इस्तेमाल किया जा रहा हो। फलस्वरूप, उस प्राणी को उसी जाति के वर्तमान प्राणियों से स्पर्धा (competition) करनी पड़ेगी या उसी तरह के निकेतों (niches) में रहने वाले प्राणियों से स्पर्धा करनी पड़ेगी। दूसरा विकल्प यह है कि यह सीमांत आवास में चला जाए। इस सीमांत आवास में यह परभक्षण (predation) का, भूखमरी का या रोग का शिकार हो सकता है। कुछ जीव जैसे कि कबूतर, घरेलू गौरैया (sparrow), कृंतक (rodents) जैसे कि चूहे और मूषक (mouse) और हिरन, मानव गतिविधियों द्वारा बदल दिए गए आवासों में फल-फूल सकते हैं लेकिन कई और जीव नहीं फलते-फूलते।

आवास के अस्त-व्यस्त होने या नष्ट होने के कई कारण हैं। कुछ प्रमुख कारक वनोन्मूलन, जलनिकास या नम भूमियों की भराई, अतिचराई, विस्तरित हो रही खेती-बाड़ी, शहरीकरण, विभिन्न विकास परियोजनाएँ, खनन और अनेक दूसरे कारक हैं। भारतीय महान सारंग (हुकना) (Great Indian Bustard) आवास के नष्ट होने और अत्यधिक शिकार किए जाने की वजह से खत्म होता जा रहा है (अधिक ब्यौरे के लिए उपभाग 14.5.2, ii देखिए) इसी प्रकार प्रकाष्ठ (टिम्बर) की सप्लाई और फार्म भूमि के लिए वन काट डाले जाने से बंगाल बाघ (Bengal tiger) का विलोपन का सामना करना पड़ रहा है।

प्रदूषण से भी प्राकृतिक आवास पर्याप्त रूप से अस्त-व्यस्त हो जाता है। औद्योगिक अवशिष्टों यानी व्यर्थ पदार्थों का आवासों पर गंभीर प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से जलीय आवासों पर। उदाहरण के लिए, अम्ल वर्षा (acid rain) एक सूक्ष्म कारक हो सकता है जो झीलों और सरिताओं में कुछ जातियों को विलोपन की ओर धकेल रहा है। इसके अलावा, 195? के और 1960 के दशकों के दौरान कीटनाशकों ने, विशेषतया क्लोरीनित (chlorinated) हाइड्रोकार्बन (जैसे कि डी.डी.टी.) ने गंजे उकाब (bald eagle), भूरे हवासिल (brown pelican) जैसे अनेक पक्षियों की आबादी के स्तर को पर्याप्त रूप से कम कर दिया।

अब हम वनोन्मूलन के कारण आवास के विनाश का विषय लेकर चलेंगे और इसे अधिक स्पष्ट करेंगे। आज जिन तीन-चौथाई से भी अधिक जातियों पर विलुप्त हो जाने का भय मंडरा रहा है वह उनके बन आवास के नष्ट हो जाने के कारण है। इन जातियों की भारी संख्या उष्णकटिबंध (tropics) में है जहाँ मानव जनसंख्या की वृद्धि सबसे ज्यादा रही है और आवास सर्वाधिक तेजी से नष्ट किए गए हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षा-वन पृथ्वी की सतह का मात्र 7 प्रतिशत घेरे हुए हैं, फिर भी उनमें कुल जातियों की लगभग तीन-चौथाई जातियाँ बसती हैं। आज के वनों के नष्ट होने की दर काफ़ी ज्यादा है और अगर पारितंत्र मिट गए तो लाखों जातियों से सदा के लिए हाथ धोना पड़ेगा और इनमें से कुछ जातियाँ अत्यधिक महत्व की हो सकती हैं। अब हम आपको जंगली मक्का (wild corn) की एक जाति के बारे में बताएंगे जो संयोगवश विलुप्त होने से बच गई। कई साल पहले, मेक्सिको के एक पहाड़ी पार्श्व (hillside) को खेती के लिए तैयार किया जा रहा था, जब कुछ सचेत वैज्ञानिकों ने जंगली मक्का की यह जाति खोज निकाली जोकि उससे पहले अज्ञात थी। यह जाति *जीआ डिप्लोपेरिनिस (Zea diploperennis)* थी जो केवल उसी पहाड़ी पर उगती थी और किसी भी दूसरी जगह नहीं पाई गई थी। मक्का के ये पौधे बहुवर्षी (perennial) हैं जबकि मक्का की घरेलू किस्म एकवर्षी (annual) है। इसके अलावा वन्य मक्का घरेलू मक्का को हो जाने वाले कई रोगों के लिए प्रतिरोधी (resistant) है। इस प्रकार यह जाति बच गई और अब इसे नई घरेलू किस्मों के प्रजनन (breeding) और उन्नत किस्म तैयार करने के काम में लाया जा रहा है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि जातियों को पृथ्वी पर से विलुप्त हो जाने से बचाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

14.4.3 चयनात्मक विनाश

वर्तमान प्राणिजाति के किसी एक सदस्य का चयनात्मक विनाश करने के भी दुर्भाग्यपूर्ण नतीजे हो सकते हैं। ऐसे विनाश के अप्रत्याशित यानी आशा से विपरीत परिणामों का एक श्रेष्ठ उदाहरण संयुक्त राज्य अमरिका में इस सदी के प्रारंभिक वर्षों में देखने में आया। वहाँ के राष्ट्रपति थिओडोर रूज़वल्ट को प्रकृति से बहुत लगाव था। कैबब पठार (Kaibab Plateau) पर हिरनों की संख्या जोकि बहुत कम हो गई थी और उनको बढ़ाने के चक्कर में उन्होंने पूमा और भेड़िए को नष्ट करने का अधिकार दिया गया। ये दोनों हिरन के प्राकृतिक शत्रु हैं। नतीजा वह नहीं निकला जिसकी आशा थी। इन प्राकृतिक शत्रुओं ने हिरण की आबादी को नियंत्रित किया हुआ था। प्राकृतिक शत्रु न रहने की वजह से हिरन की आबादी इतनी तेजी से बढ़ी कि उनका भरण-पोषण करने वाले चराई के क्षेत्र कम पड़ने लगे। इसके परिणामस्वरूप जो भूमि कभी उपजाऊ घासस्थल थी और जो हिरनों के बड़े-बड़े झुंडों का भरण-पोषण कर सकती थी वह जल्दी ही बंजर रेगिस्तान में बदल गई। असलियत में यह एक ऐसा रेगिस्तान है, जो किसी भी तरह के वन्यजीवन का पेट नहीं भर सकता था। हिरनों को पर्याप्त आहार न मिलने के कारण काफी संख्या में हिरण भूख से मरने लगे और थोड़े से समय में ही हिरनों की कुल आबादी घटते-घटते काफी कम हो गई, जोकि वह उस समय थी जब वे अपने प्राकृतिक शत्रुओं के पूरे प्रभाव में थे।

चित्र : 14.3 : यात्री कबूतर—हमने सबक सीखा तो सही लेकिन बहुत देर से

जो पीड़क (pests) या परभक्षी (predator) जातियाँ भोजन के लिए लोगों और पशुधन से होड़ करती हैं उनको नष्ट करने के प्रयास से भी विलोपन या लगभग विलोपन हो सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका में 1914 के आस-पास कैरोलिना तोते (पराकीट) को खत्म कर दिया गया क्योंकि यह फलों की खेती को खाता था। इनका विलोपन जल्दी इसलिए हो गया क्योंकि जब किसी झुंड के एक सदस्य को मार दिया जाता था तो अनेकों तोते उसकी लाश पर मंडराने लगते थे जिससे उनको निशाना बनाना आसान हो जाता था।

जब हमने चयनात्मक विनाश की बात उठाई है तो हमें चाहिए कि आपको यात्री (passenger) कबूतर की कहानी अवश्य सुना दें (देखिए चित्र 14.3)। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक भी पृथ्वी पर जिन पक्षियों की भरमार थी उसमें यात्री कबूतर *(एक्टोपिस्टस माइग्रेटोरियस-Ectopistes migratorius)* का स्थान शायद सबसे ऊपर था। प्राचीन उत्तरी अमरीका में यात्री कबूतर निश्चित रूप से बहुत बड़ी संख्या में थे। इन पक्षियों के बारे में जो रिकॉर्ड उपलब्ध है उसमें बहुत दिलचस्प बातें देखने को मिलती हैं। इन पक्षियों की संख्या इतनी अधिक थी कि प्रावस्था (migration) के दौरान उनके झुंडों से आकाश में अंधेरा छा जाता था और ऐसे एक अकेला ही झुंड लगभग 400 कि.मी. लंबा होता था और इसमें 2 अरब पक्षियों से कम नहीं होते थे। उनकी संख्या इतनी विशाल थी कि जब वे पक्षी पेड़ों की शाखाओं पर बैठते थे तो वे उनके वज़न से टूट जाती थीं। किसी जगह से गुज़रते समय झुंडों को घंटों लगते थे। लगभग 5 कि.मी. चौड़े और 67 कि.मी. लंबे वन के पूरे फैलाव में हर पेड़ पर उनके 90 तक घोंसले होते थे। 1871 में किए गए आकलन के अनुसार मध्य विस्कॉन्सिन के 2200 कि.मी. क्षेत्रफल में लगभग 1360 लाख यात्री

कबूतरों ने घोंसले बनाए। जहाँ यात्री कबूतरों ने बसेरा किया था वहाँ टनों के हिसाब से की गई बीट (droppings) ने वन को उर्वरित (fertilised) कर डाला। इन जीवों के बारे में एक दिलचस्प बात यह है कि एक यात्री कबूतर केवल एक ही अंडा देता था। ऊपर की तमाम जानकारी से हमारे सामने जो तस्वीर बनती है उसमें इस जाति की संख्या का कोई ओर-छोर नहीं दिखाई देता। लेकिन जैसा कि आप आगे दिए गए ब्यौरे में देखेंगे किसी जाति की असीमित संख्या उसके विलुप्त न होने की गारंटी नहीं है। इतनी भारी तादाद में होने के बावजूद आज पृथ्वी पर एक भी यात्री कबूतर देखने को नहीं मिलता। आप शायद आश्चर्य कर रहे होंगे कि यह विलोपन हुआ क्यों। अब हम इसकी चर्चा करेंगे। करोड़ों यात्री कबूतर भोजन के लिए मार दिए गए (देखिए चित्र 14.4)।

चित्र 14.4 : यात्री कबूतरों का शिकार किया जा रहा है (अमेरिकन म्यूज़ियम ऑफ नेचुरल हिस्टरी)

1878 में 3 महीने के भीतर मिशिगन के नीड़न (nesting) क्षेत्र से 15 लाख से ज्यादा कबूतर जहाज़ द्वारा बाज़ार में भेजे गए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ऊपर के क्षेत्र में शिकार से लगभग एक करोड़ कबूतर मार दिए गए। शिकागो, न्यूयॉर्क और बोस्टन के लोकप्रिय रेस्ट्रा में 2 सेंट प्रति कबूतर के हिसाब से उपलब्ध थे। मात्र इतना ही नहीं उनके बच्चे विशेष रूप से स्वादिष्ट खाद्य माने जाते थे इसलिए इन पक्षियों की नीड़न कॉलोनियों में बड़ी संख्या में तरुण पक्षियों को पकड़ने के लिए कभी-कभी पेड़ भी गिरा दिए जाते थे। इस प्रकार यात्री कबूतरों को खुले आम मारने के साथ-साथ प्राय: नीड़न आवास भी नष्ट कर दिए जाते थे। प्रशीतन (refrigeration) की व्यवस्था न होने का अर्थ यह था कि बाज़ार में लाने ले जाने के दौरान जो मृत पक्षी सड़ जाते थे उस नुकसान की भरपाई के लिए और भी ज्यादा पक्षी मारे जाते थे. उनके विलुप्त हो जाने में दो प्रौद्योगिकियों—रेलमार्ग और टेलिग्राफ के विकास ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। व्यापक रेल जाल ने शिकारियों को यात्री कबूतरों की प्रमुख नीड़न कॉलोनियों तक पहुँचाने में सहायता की। ये कॉलोनियाँ मिस्सिसीपि नदी के पूरब में थीं। नए रेल संबंधनों (connections) के फलस्वरूप न्यूयॉर्क के एक व्यापारी को लगभग 18,000 पक्षी हर दिन मिलते थे। चूँकि ये पक्षी खानाबदोश थे, इसलिए लगातार इनकी खोज की जाती थी। तारघर इन पक्षियों की नीड़न कॉलोनियों के स्थान के बारे में शिकारियों को सूचित करते रहते थे। बाज़ार एवं शिकारियों से अपने संबंधों के कारण रेल कम्पनियों को भी फायदा होता था इसलिए रेल कम्पनियाँ भी उन जगहों के बारे में अद्यतन जानकारी देती रहती थी जहाँ से कबूतर पकड़े जा सकते थे। कबूतरों की कॉलोनियों को ऐसी निष्ठुरता से अस्त-व्यस्त करने का परिणाम यह हुआ कि साल-दर-साल बड़े पैमाने पर घोंसले नहीं पाए गए और यात्री कबूतर धीरे-धीरे कम होते गए। मार्था (Martha) नामक अंतिम कबूतर (मादा) 1914 में सिन्सिन्नाटी चिड़ियाघर में मर गया और उसका शव वॉशिंग्टन में संयुक्त राष्ट्र नेचुरल म्यूज़ियम में परिरक्षण (preservation) के बाद रख दिया गया। ऐसी प्रचुर जाति का ह्रास और अंत में उसकी विलुप्ति अब कल्पना से परे लगती है लेकिन यह एक ऐसी घटना है जो पर्यावरण के इतिहास में सबसे काले क्षणों को दर्शाती है।

14.4.4 पालतू बनाना

इसका अर्थ यह है कि जो प्राणी मनुष्य के लिए उपयोगी हैं उन्हें उसने अपनी देखरेख में रखा है। व्यापक प्रजनन (breeding) कार्यक्रमों द्वारा उसने इन प्राणियों को रूपांतरित (modify) कर लिया है ताकि उनके उत्पादों का अधिकतम फायदा उठा सके। इस प्रक्रिया में जातियों ने अपने कुछ उपयोगी गुण खो दिए हैं, यहाँ तक कि ये रूप प्रकृति में अपने आप जीवित नहीं बचे रह

सकते। मक्का इस बात का एक अच्छा उदाहरण है। इसकी इतना देखभाल की गई है कि अगर इसे बिना देखभाल के छोड़ दिया जाए तो यह जीवित नहीं रह सकता।

अब हम दूसरा पहलू लेंगे कि किस प्रकार पालतू बनाई गई जातियाँ वन्य जीवों के सामने जीवित बने रहने के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ खड़ी कर देती हैं।

आज मनुष्य के पास पालतू पशु बहुत अधिक संख्या में हैं। ये भी भूमि की अतिचराई (overgrazing) द्वारा वन्य जीवों की आबादी कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस अतिचराई से वे उस वनस्पति (vegetation) को नष्ट कर देते हैं जिस पर वे स्वयं और अन्य वन्य जीव निर्भर करते हैं। किसी क्षेत्र के मूल (native) वन्य जीवों में, उपस्थापित (introduced) यानी प्रवेशित जीवों की तुलना में मूल वनस्पति का अधिक कुशलता से या दक्षतापूर्वक उपयोग होता है और इसलिए वन्य जीवों द्वारा उपजाऊ क्षेत्रों को रेगिस्तान में बदल देने की संभावना बहुत कम होती है। इसलिए आम तौर पर पालतू पशुओं की प्रतिष्ठा के अतिरिक्त अधिक मूल्य नहीं है तथा मांस या दूध के रूप में उनकी देन ज्यादा मायने नहीं रखती।

दूसरा महत्वपूर्ण प्राचल (parameter) यह है कि पालतू पशु अनेक रोगों के वाहक (carrier) हैं जिन्हें वे वन्य प्राणियों को संचारित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए महान भारतीय गैंडे के नियमित पुनर्वास को स्पोंकनी (रिंडरपेस्ट) रोग से गंभीर धक्का लगा। यह रोग उन्हें इस रोग के वाहक स्थानीय पालतू पशुओं से लगा।

14.4.5 नई जातियों का उपस्थापन या प्रवेशन

विश्व के चारों ओर यात्रा करते समय मानव अपने साथ (बिना जाने या जानबूझकर) पौधों और प्राणियों की अनेक जातियों को लेता गया जिन्हें उसने नए भौगोलिक क्षेत्रों में उपस्थापित (introduce) किया। कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जब नए पर्यावरण में प्रवेश द्वार था और बाहरी (foreign) या विदेशी (alien) जाति ने मूल (native) जाति की आबादी की साइज को गंभीर रूप से प्रभावित किए बगैर अपने आपको वहाँ सफलता से स्थापित कर लिया। लेकिन कुछ उदाहरणों में विदेशी जाति श्रेष्ठ परभक्षी, परजीवी (parasite) या स्पर्धी (competitor) रही है और मूल जाति को विलुप्त या लगभग विलुप्त कर दिया। अपने प्राकृतिक परभक्षियों को मारकर यह वर्तमान जाति के आबादी विस्फोट का कारण भी बन सकती है। द्वीपीय जातियाँ विशेष रूप से संवेदनशील (vulnerable) हैं क्योंकि वे अनेक ऐसे पारितंत्रों में विकसित (evolved) हुई हैं जहाँ अगर प्राकृतिक शाकाहारी या मांसाहारी परभक्षी हैं भी तो बहुत कम संख्या में हैं।

1859 में दक्षिणी ऑस्ट्रेलिया के एक किसान ने आखेट प्राणी के रूप में दो दर्जन जंगली यूरोपीय खरगोशों का आयात किया। छह साल में ही 24 खरगोशों से 2 करोड़ 20 लाख हो गए, जो 1907 तक देश के हर कोने में पहुँच गए। 1930 के दशक तक उनकी आबादी अनुमानतः 75 करोड़ तक पहुँच गई। घास के लिए उन्होंने भेड़ से स्पर्धा की और उसकी आबादी को आधा कर दिया। उन्होंने खाद्य फसलों को खा डाला, तरुण पेड़ों को कुतर-कुतर कर बरबाद कर दिया, जल छिद्रों को गंदला बना दिया और कई स्थानों पर मृदा अपरदन को तेज कर दिया। 1950 के दशक के प्रारंभ में खरगोशों की लगभग 90 प्रतिशत आबादी मानव द्वारा जानबूझकर उपस्थापित किए गए एक विषाणु (virus) रोग से मर गई। लेकिन इस बात की चिंता बनी हुई है कि कहीं बाकी बची आबादी के सदस्य प्राकृतिक चयन द्वारा अंततः इस विषाणु रोग के प्रति प्रतिरक्षा (immunity) विकसित न कर लें और ऑस्ट्रेलिया के किसानों के लिए फिर से महाविपत्ति का रूप न धारण कर लें।

चित्र 14.5 : डोडो पहली प्राणी जाति थी जिसकी विलुप्ति का पूरा दस्तावेज़ तैयार किया जा सका

अब हम एक दूसरा उदाहरण लेंगे जो यह दर्शाता है कि द्वीपों पर विदेशी जाति के उपस्थापन से कैसे विनाशकारी प्रभाव होते हैं। द्वीपों पर विशेष रूप से स्थानीय (endemic) जातियों के पास मानवों और उनके पालतू पशुओं के हमलों का सामना करने के लिए अपर्याप्त साधन होते हैं। उदाहरण के लिए, डोडो पक्षी (चित्र 14.5) केवल मॉरीशस में रहता था जोकि हिन्द महासागर में एक छोटा-सा द्वीप है। डोडो के दो अभिलक्षण थे जो अंत में उसके सर्वनाश का कारण बने। इसे लोगों का डर नहीं था वह खुलेआम घूमता था। इसलिए आसानी से इसे मारकर मौत के घाट उतारा जा सकता था। दूसरा, यह उड़ नहीं सकता था इसलिए इसे ज़मीन पर अंडे देने पड़ते थे। द्वीप में सूअरों के प्रवेश के बाद 1681 तक डोडो विलुप्त हो गया। सूअर इसके अंडे खा जाते थे।

किसी भी द्वीप पर, आवासों की किस्म और वह क्षेत्र जिसमें प्रत्येक आवास है, दोनों ही भौतिक रूप से सीमित हैं। इस प्रकार के प्रतिबंधों के परिणामस्वरूप नए परभक्षियों और स्पर्धियों के प्रति वहाँ के मूल प्राणियों की अनुकूलन क्षमता घट जाती है। उदाहरण के लिए, यह हो सकता है

शिकार बन जाने वाली जाति का आवास पर्याप्त रूप से इतना बड़ा न हो या उसमें इतनी अधिक विविधता न हो कि वह नए परभक्षियों से बच सके। यह भी हो सकता है कि संसाधनों की विविधता इतनी पर्याप्त न हो कि वर्तमान जाति किसी नई स्पर्धी जाति के साथ-साथ अस्तित्व बनाए रख सके। इसलिए, कुछ मामलों में स्पर्धी अपवर्जन (exclusion) यानी बहिष्कार से मूल जाति का विलोपन हो सकता है।

गालपेगो द्वीप समूह के एक द्वीप में कछुए (tortoise) की मृत्यु से स्पर्धा अपवर्जन (competition) exclusion) को स्पष्ट किया जा सकता है। इस द्वीप पर मछुआरों ने 1957 में कुछ बकरियाँ छोड़ दीं। जब द्वीप पर कछुओं की आबादी का पता करने के लिए 1962 में चार्ल्स डार्विन स्टेशन से एक अनुसंधान दल वहाँ पहुँचा तो उन्हें कछुओं के खाली कवच (shell) ही मिले जिनमें से अधिकतर कवच उन चट्टानों के बीच फंसे हुए थे जिन्होंने उपरीभूमि (upland) ढलानों को ढका हुआ था। निम्नभूमि (lowland) पर की गई खोजों से संकेत मिला कि वह सारी वनस्पति जो पहले कछुओं की पहुँच में थी यानी जहाँ कछुए पहुँच सकते थे वह सब बकरियों के झुंड चर गए। फलस्वरूप, भूखे कछुओं को मजबूर होकर खाना पाने के लिए स्पष्ट तौर पर चट्टानी ढलानों पर जाना पड़ा, जहाँ वे या तो चट्टानों के बीच उलझ गए या खड़ी चट्टानों पर गिर पड़े और मर गए।

विदेशी जाति के उपस्थापन या प्रवेशन से द्वीप के वनस्पतिजात का भी विनाश हो गया। उदाहरण के लिए, जब यूरोपवासियों ने हवाई द्वीप समूह में 1700 में पालतू पशुधन (livestock) उपस्थापित किया तो उससे पहले द्वीपों पर किसी बड़े शाकाहारी प्राणी का अस्तित्व नहीं था। वहाँ के मूल पौधों को अनुकूल बनाने के लिए पहले से कोई चयन दाब नहीं होने के कारण काँटे और विष जैसे अभिलक्षण उनमें नहीं थे। ये दोनों गुण शाकाहारियों को दूर रखते हैं। इसके अलावा, द्वीपों पर आवासों का सीमित साइज़ अतिचराई के लिए अनुकूल नहीं थी। इस प्रकार जिन जातियों को पहले कोई भय नहीं था वे भी चरने वाले पशुओं से तबाह हो गईं। फलस्वरूप, हवाई द्वीपों में आधी मूल वनस्पति पर विलुप्त हो जाने का खतरा मंडरा रहा है।

सामान्य भाषा में द्वीप शब्द का अर्थ एक ऐसे भू-भाग से है जो पानी से घिरा हुआ हो। लेकिन पारिस्थितिकीय परिभाषा के अनुसार आवास का कोई भी प्रतिबंधित क्षेत्र जो असमरूप आवासों से घिरा हुआ हो आवास द्वीप कहलाता है। इसलिए, एक झील जिसका बाहर की ओर बहाव नहीं है एक जलीय द्वीप (aquatic island) मानी जाती है। इसके अलावा भी, जब प्राकृतिक आवास राजमार्गों (highways) द्वारा दो हिस्सों में काट दिए जाते हैं और फार्म तथा शहरों में बदल दिए जाते हैं, तब प्राकृतिक और अर्ध-प्राकृतिक (semi-natural) क्षेत्र छोटे तथा और भी पृथक (isolated) होते जाते हैं (चित्र 14.6 देखिए)। जो कुछ बाकी रह जाता है उसे बचाने के लिए उन विलगित (isolated) क्षेत्रों का कुछ भाग पार्क, संरक्षित स्थलों (conservancies), वन परिरक्षित स्थलों (preserves) के रूप में अलग रख दिया गया। ये आम तौर पर दूर-दूर बिखरे हुए हैं और बीच-बीच में पड़ने वाले राजमार्ग, फार्म तथा शहर ऐसे रोधकों (barriers) के रूप में कार्य करते हैं जो पौधों और प्राणियों की कई जातियों को उनके अंदर आने से और उनसे बाहर जाने से रोकते

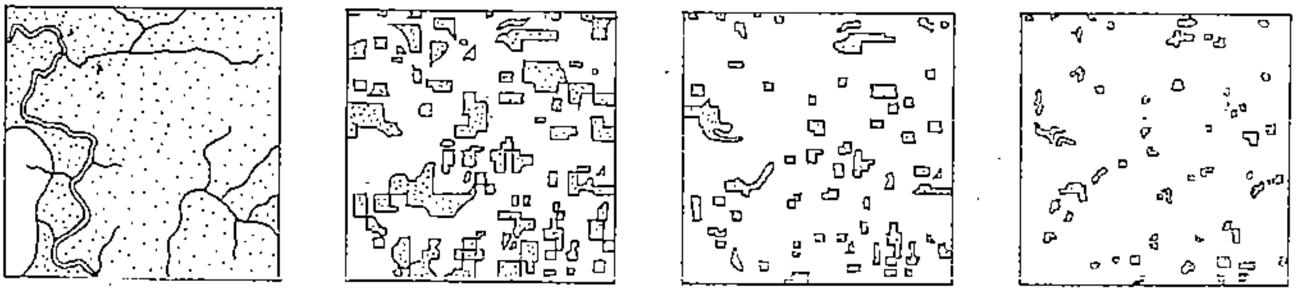

चित्र 14.6 : कैडिज़ नगर विस्कॉन्सिन में 1831 और 1950 के बीच जंगल (छायांकित क्षेत्र) का कम किया जाना और खंडित किया जाना। आवास का धीरे-धीरे करके विनाश किए जाने के फलस्वरूप अनेक जातियों का धीरे-धीरे करके विलोपन हुआ (जे. कर्टिस, 1955 से)

हैं। इसलिए वे प्राकृतिक और अर्ध-प्राकृतिक आवास भी द्वीप बन गए हैं और उनमें रहने वाले पौधों तथा प्राणियों को भी उसी तरह के दबाव का सामना करना पड़ता है जिस तरह का दाब पानी से घिरे हुए द्वीपों पर रहने वाले पौधों और प्राणियों को सहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त आवास द्वीप जितना छोटा होता है उसके निवासियों पर उतना ही ज़्यादा दबाव होता है। प्राकृतिक आवासों पर अंधाधुंध आक्रमण करने और उन्हें लगातार छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने के बजाय

हम इन कारकों का उस समय ध्यान रखेंगे जब हम यह योजना बनाएँगे कि भूमि का कैसे उपयोग किया जाए।

14.4.6 पीड़कनाशी

विश्व के अनेक भागों में वन्यजीवन को जो दूसरा खतरा अभी हाल ही में महसूस किया गया वह अधिक पीड़कनाशियों के विकास से है। जैसे-जैसे खेती-बाड़ी अधिक दक्ष होती चली गई वैसे-वैसे फसल के पीड़कों को नियंत्रित करने की आवश्यकता भी अधिक महत्वपूर्ण होती गई तथा इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए कृषि-रसायनविज्ञों ने यौगिकों के संश्लेषण (synthesis of compounds) में बहुत ज़्यादा ध्यान दिया। 1960 के दशक के शुरू में यह स्पष्ट हो गया कि क्लोरीनिन हाइड्रोकार्बन का एक विशेष समूह, खासकर ऐल्ड्रिन, डील्ड्रिन और हेप्टाक्लोर जो निस्संदेह पीड़कों को नियंत्रित करने में अत्यधिक प्रभावकारी है अनेक वन्य प्राणियों के लिए ज्यादा से ज्यादा हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। यह पाया गया कि इनमें सबसे बड़ी कमी यह थी कि जबकि दूसरे अधिकांश पीड़कनाशी ज़मीन पर गिर जाने के बाद तेजी से नष्ट हो जाते थे ऊपर बताए गए तीनों पीड़कनाशी मिट्टी में कई सालों तक बने रहे और संचित (जैव संचयन (bioaccumulation) होते गए थे क्योंकि हर साल के छिड़काव से पिछले सालों के अवशिष्टों (residues) के साथ, कुल मिलाकर और भी अधिक हो गए तथा यह क्रम चलता रहा।

इन पीड़कनाशियों का पहला प्रभाव कृमियों (worms), कीटों (insects) और छोटे प्राणियों के शरीरों में इनका धीरे-धीरे संचित होना है। फिर इन कृमि आदि को पक्षी खाते हैं जिनमें यह संग्रह पहुँच जाता है और इसके प्रभाव से उनमें जनन रुक सकता है या अंडे का कवच पतला पड़ सकता है। ये प्रभाव प्रभ्रमी बाज (peregrine falcon) पूर्वी कैलिफोर्निया भूरा हवासिल (पेलिकन कुरर, ऑस्प्रे), गंजे उकाब जैसे पक्षियों में देखे गए हैं।

भारत में इन यौगिकों के उपयोग से वन्यजीवन को पैदा हुए खतरे ने एक अलग ही मोड़ ले लिया है। यहाँ किसान इन पीड़कनाशियों को बाघ, तेंदुआ और दूसरे बड़े जानवरों को मारने के लिए सीधे ही ज़हर के रूप में काम में ला रहे हैं। वे प्राणियों के आहार में पीड़कनाशी की कुछ ग्राम मात्रा डाल देते हैं या उनके ज्ञात मार्ग पर बिखेर देते हैं। केरल में इस प्रकार जहरीले केलों से हाथी भी मारे गए हैं।

14.4.7 पालतू प्राणी, आयुर्विज्ञानीय अनुसंधान और चिड़ियाघर

चिड़ियाघरों, निजी संग्रहकर्ताओं, पालतू प्राणियों की दुकानों और जीवविज्ञान तथा औषधि में अनुसंधानकर्ताओं के लिए विश्व-भर में प्राणी और पौधे एकत्रित किए जाते हैं। पूरी दुनिया में संयुक्त राज्य अमरीका, इंग्लैंड, पश्चिमी जर्मनी में 60 लाख से भी ज़्यादा पक्षी हर साल बेचे जाते हैं जिनमें अधिकांश पालतू होते हैं। इन प्राणियों की बहुत बड़ी संख्या खरीदारी के बाद और पोतों में लादते समय और कुछ को उनके मालिक मार देते हैं या छोड़ देते हैं। कभी-कभी तो 10 से लेकर 50 पक्षी तक रास्ते में मर जाते हैं और एक ही जीवित पहुँच पाता है। इस तरह के व्यापार के कारण कम से कम नौ जातियाँ अब भयग्रस्त या संकटग्रस्त सूची में शामिल हो गई हैं लेकिन इनकी अवैध रूप से अमरीका और यूरोप में तस्करी जारी है। उदाहरण के लिए, ब्राज़ील से अवैध रूप से तस्कर किए जाने वाले भयग्रस्त हायासिन्ध मैका (hyacinth macaw) के लिए पक्षी संग्रहकर्ता 10,000 डॉलर तक चुकाने को तैयार हैं।

न केवल जानवरों की बल्कि पौधों तक की भी यही कहानी है। कैक्टस और ऑर्किड जैसे पौधों की भी भारी माँग है और ये एक विकसित हो रहे उद्योग को सहारा देते हैं। इन्हें घरों, दफ्तरों और भू-दृश्यों (landscapes) को अलंकृत करने के काम में लाया जा सकता है। एक अकेला, दुर्लभ ऑर्किड कभी-कभी तो संग्रहकर्ता को 5,000 डॉलर में बेचा जा सकता है। हर साल, 50 से भी ज्यादा देशों से संयुक्त राज्य अमरीका को लगभग 70 लाख कैक्टस पौधों का आयात किया जाता है। टेक्सास से भी हर साल कैक्टस के पौधे भेजे जाते हैं। बिग बैंड नेशनल पार्क के पास टेक्सास के एक क्षेत्र में 25,000 से लेकर 50,000 तक कैक्टस दूसरी जगह बेचे जाने के लिए केवल एक महीने में उखाड़े गए। 1970 के दशक के अंत में टेक्सास से प्रति वर्ष लगभग एक करोड़ कैक्टस जहाज द्वारा भेजे गए।

विश्व-भर में अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के लिए कई किस्म के प्राणियों को प्रयोग में लाते हैं। इनमें मूषक, चूहे, कुत्ते, बिल्लियाँ, प्राइमेट, पक्षी, मेढ़क, गिनि पिग और खरगोश आदि शामिल हैं जो जंगलों में लाए जाते हैं। बंदरों और विशाल कपियों (great apes) जैसे कि चिम्पैन्जी की

माँग सबसे ज्यादा है। अफ्रीका में अपनी गृह-भूमि से पकड़े गए चिम्पैन्जियों का हाल यह है कि प्रयोगशाला में पहुँचने वाले एक चिम्पैन्जी के पीछे पाँच मर जाते हैं। कुछ जीव-वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि दशक के अंत तक यह जाति हमारे वनों से विलुप्त हो जाएगी। प्राइमेटों और मानवों में शरीर रचनात्मक (anatomical), आनुवंशिकीय (genetical) और शरीर-क्रियात्मक (physiological) समानता होने के कारण प्राइमेटों की माँग है। प्राइमेटों ने जीव-आयुर्विज्ञानीय (biomedical) अनुसंधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए मानव जनन (reproduction) और कैंसर का पता लगाने के लिए चिम्पैन्जी को काम में लाया जाता है। हालाँकि विकसित राष्ट्रों में इन प्राणियों के आयात में कमी आई है इन प्राणियों के आँकड़े अभी भी चिंता का विषय बने हुए हैं। ये अनुसंधान प्राणी बंदी हालत में प्रजनन नहीं करते और इनकी मृत्यु दर ऊँची है इसलिए यह संभव है कि वन्य आबादी से लगातार पुन: पूर्ति यानी नए चिम्पैन्जियों का आना जारी रहे।

आज, 60 प्राइमेट जातियाँ संकटग्रस्त हैं। इनमें से अनेक जातियों का अनुसंधानकर्ताओं ने अतिशोषण किया है। उन्हें उनकी घटती आबादी या अंत में वनों में उनके मर जाने की कोई चिंता नहीं है। अधिकांश लोग सहमत हैं कि अनुसंधान मानवीय परिस्थितियों में होना चाहिए और यह विलोपन की कीमत पर नहीं होना चाहिए। जिन बंदी प्रजनन कार्यक्रमों जिनके अधीन चिड़ियाघरों और अनुसंधानकर्ताओं को सप्लाई की जाती है, उनका उन देशों में विस्तार किया जाना चाहिए जहाँ प्राइमेट काम में लाए जाते हैं। इससे इन प्राणियों का उनके प्राकृतिक आवास से लाया जाना बंद हो जाएगा। तुरन्त कार्यवाही करने से अनेक प्राइमेटों का विलोपन रोका जा सकता है।

चिड़ियाघरों, वनस्पति उद्योगों (botanical gardens) और जलजीवशालाओं (aquariums) पर लगातार इस बात के लिए दबाव डाला जाता है कि वे दुर्लभ और असामान्य/असाधारण प्राणियों जैसे कि ऑरेन्ज उटैन (orangutan) का प्रदर्शन करें। हर उस विदेशज (exotic) प्राणी या पौधे के लिए जो चिड़ियाघर या वनस्पति उद्यान में जिंदा पहुँचता है दूसरे बहुत से प्राणी या पौधे कैद के दौरान या नौ-परिवहन के दौरान मर जाते हैं।

कोई भी प्राणी चिड़ियाघर की सर्वाधिक अनुकूल परिस्थितियों में भी हमेशा जिंदा नहीं रहता और यदि वह प्राणी ऐसा नहीं है जो बंदी स्थिति में खुशी से प्रजनन करता हो तो उसके मर जाने पर उसकी जगह दूसरा प्राणी लाना आवश्यक हो जाता है। इस लगातार बढ़ती माँग से अंततः वन्य प्राणियों पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। फिलीपीन्स द्वीप समूह में हिन्डानोआ और लूज़ोन द्वीपों पर बंदर खाने वाले एक शानदार उकाब, *पिथेकोफैगा जेफरएई (Pithecophaga jefferyi)* का भविष्य इस समय डांवाडोल है क्योंकि दुनिया के चिड़ियाघरों के लिए उन्हें पकड़े जाने की दर वार्षिक जनन दर से ज्यादा है। इस गंभीर स्थिति के कारण इंटरनेशनल यूनियन ऑफ डाइरेक्टर्स ऑफ जुलोजिकल गार्डन्स के सदस्य इस बात के लिए सहमत हो गए हैं कि जब तक इन पक्षियों की आबादी को अपने आपको पुन:स्थापित करने का अवसर न मिले वे इस दुर्लभ पक्षी को नहीं खरीदेंगे। फिलीपीन में इस बंदर खाने वाले भरे (stuffed) उकाब को प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है तथा इसकी काफी माँग है। इस वजह से इस समय इस जाति के सामने जो संकट है वह और भी बढ़ गया है।

बोध प्रश्न 2

क) नीचे दी गई परिभाषाओं में वन्यजीवन पर सबसे सटीक परिभाषा कौन-सी है? अपना उत्तर नीचे दी गई जगह में लिखिए।

i) वे सभी पक्षी और पशु जो मनुष्य द्वारा पालतू नहीं बनाए गए।

ii) जंगल में रहने वाले वे सभी सूक्ष्मजीव (microorganisms) जो मनुष्य के लिए उपयोगी नहीं हैं।

iii) वे सभी जीव जिन्हें मनुष्य पालतू नहीं बना पाया है।

iv) सूक्ष्मजीवों सहित वे सभी प्रकार के जीव जो मानव हस्तक्षेप के बिना बढ़ते हैं और जीवित रहते हैं।

ख) वन्यजीवन के अस्तित्व के लिए भय उत्पन्न करने वाले कुछ मूल कारण नीचे दिए गए हैं :

i) आवासों का विलोपन या उनको अस्त-व्यस्त करना

ii) पालतू बनाना

iii) नई जातियों का प्रतिस्थापन/प्रवेशन

iv) चयनात्मक वितरण

v) आखेट और निर्यात

vi) पीड़कनाशी

vii) पालतू प्राणी, आयुर्विज्ञानीय अनुसंधान और चिड़ियाघर

नीचे दी गई व्याख्या में यह बताइए कि ऊपर दिए गए कारणों में से कौन-सा ठीक बैठता है। दाईं तरफ दी गई जगह में सही चुनाव का संकेताक्षर लिखें। अगर ऊपर दिया गया कोई भी कारण लागू नहीं होता हो तो "नहीं" लिखें।

क) श्रेष्ठ स्पर्धी होने के कारण कुछ विदेशी (alien) जातियाँ मूल रूप से बसी हुई जातियों के लिए खतरा बन जाती हैं। ☐

ख) जैव संचयन (bioaccumulation) से जनन में रुकावट और अनेक दूसरे विकास देखे गए हैं। ☐

ग) प्राणियों को खाद्य, समुचित आवास और मानव देखभाल का उपलब्ध न होना। ☐

घ) वनोन्मूलन, अतिचराई, खेती-बाड़ी, शहरीकरण, प्रदूषण, विकास परियोजनाओं और खनन जैसे कारकों की वजह से जिन क्षेत्रों में जातियाँ खाना तलाशती हैं, आश्रय पाती हैं और जनन करती हैं उन क्षेत्रों का विनाश या अनुपलब्धि। ☐

ङ) किसी जाति को विभिन्न उपयोगों के लिए ढूँढना, छांटना, अतिशोषण करना और समाप्त करना। ☐

च) मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जातियों को मानव की देखभाल में रखना तथा चयनात्मक प्रजनन द्वारा उनके लक्षणों को रूपांतरित (modify) करना। ☐

छ) शिकार, निर्वाह या लाभ के लिए वन्य प्राणियों का पीछा करना, पकड़ना या मारना। ☐

ज) प्राकृतिक शत्रु, प्रदर्शन, प्रजनन और अध्ययन के लिए प्राणियों का संग्रह करना। ☐

14.5 विलुप्त और संकटग्रस्त जातियाँ

कुछ वन्यजीवन जातियों पर विलुप्त हो जाने का संकट मंडरा रहा है और कुछ जातियाँ विलुप्त (extinct) हो चुकी हैं। इन दो जातियों के बीच अंतर क्या है? इसका आप इस भाग में अध्ययन करेंगे। आप संकटग्रस्त (threatened) जातियों के वर्गों (classes) के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।

कैरोलिना तोते के चमकदार रंगीन पंख ही उसकी जान के दुश्मन बन गए। महिलाओं के हैट की सजावट में काम आने के कारण ये मूल्यवान बन गए और पालतू पक्षी के रूप में लोकप्रिय बन गए। वे 1914 में विलुप्त हुए।

14.5.1 विलुप्त जातियाँ (Extinct species)

इन जातियों का अस्तित्व केवल संग्रहालयों (museums) और फोटोग्राफों तक ही सीमित है। आपने पिछले भाग में यात्री कबूतर के बारे में पढ़ा। यह विलुप्त जाति का एक प्रमुख उदाहरण है। जो अन्य जातियाँ विलुप्त हो गई हैं उनमें कैरोलिना तोता (Carolina parakeet), हीथ मुर्गी,

लैब्रेडोर बतख़, चीता, गुलाबी सिर वाली बतख़ और जेरडान-कूर्सर (Jerdon's courser) शामिल हैं।

ऊपर दिए गए उदाहरण यह संकेत देते हैं कि मानव गतिविधियों के कारण जातियाँ विलुप्त हो जाती हैं। अनेक संरक्षण विशेषज्ञ यह चेतावनी देते हैं कि वनोन्मूलन, मरुस्थलन और नम भूमियों तथा प्रवाल भित्तियों (coral reefs) का नाश यदि वर्तमान दर से जारी रहा तो 1975 और 2000 के बीच मानव की गतिविधियों के फलस्वरूप कम से कम 5 या शायद 10 लाख जातियाँ विलुप्त हो जाएंगी। अगर हम कम जातियों के विलुप्त होने की यही दर मान लें तब भी सन् 2000 तक 20,000 जातियाँ प्रति वर्ष (चित्र 14.7 देखिए) या हर 30 मिनट में एक जाति की दर से विलोपन होगा। इस प्रकार केवल 25 वर्षों में (अर्थात् 1975 और 2000 के बीच) विलोपन दर में 200 गुना वृद्धि हुई (पुनः चित्र 14.7 देखिए)।

हीथ मुर्गी खाने के बतौर काम में लाई जाती थी। 1900 सदी के प्रारंभ में लोगों को आभास हुआ कि यह पक्षी दुर्लभ होता जा रहा है और एक पक्षी विहार बनाया गया। जल्दी ही इनका झुंड बढ़ गया लेकिन पक्षी विहार में लगी आग सबको लील गई और केवल कुछ मादा पक्षी ही बचे। 1932 में अंतिम मुर्गी भी मर गई।

लैब्रेडोर बत्तख विलुप्त हो गयीं। अधिकांश पक्षियों को उनके पंखों के लिए मार डाला गया। ये पंख तकिए भरने के काम आते हैं

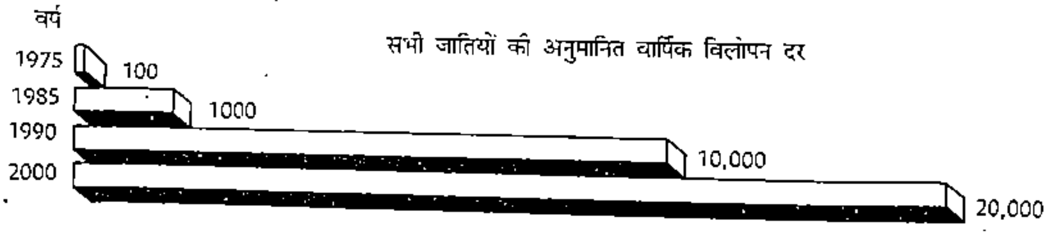

चित्र 14.7 : 1975 और 2000 के बीच सभी जातियों की अनुमानित वार्षिक विलोपन दर (मिलर से)

विलुप्त होने वाली जातियाँ वे पौधे और कीट होंगे जो अभी वर्गीकृत होने बाकी हैं और मनुष्यों के लिए उनकी उपयोगिता के बारे में तथा पारितंत्रों में उनकी भूमिका के बारे में अधिक जानकारी नहीं है।

हालांकि प्राणी-विलोपनों को अधिक प्रचार मिलता है, पारिस्थितिकीय रूप से पौधों का विलोपन अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिकांश प्राणी खाद्य के लिए प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से पौधों पर निर्भर हैं। आकलन के अनुसार विश्व की 10 प्रतिशत पादप जातियों के विलुप्त हो जाने का भय पहले से ही है और सभी पादप जातियों के 15 से 25 प्रतिशत को 2000 तक विलोपन का सामना करना पड़ेगा।

लेकिन कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि 2000 तक की जो विलोपन दर पेश की गई है वह ख्याली अनुमान है और इसमें परिस्थिति को बहुत ही ज्यादा बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया है। लेकिन अगर औसत विलोपन दर 1,000 प्रति वर्ष ही रहती है तब भी इस सदी के अंत तक इसे इस पृथ्वी पर जीवन के आरंभ के बाद से अब तक का सबसे व्यापक विलोपन माना जाएगा।

14.5.2 संकटग्रस्त जातियाँ (Threatened species)

पौधों और प्राणियों की अनेक जातियाँ विलुप्त हो जाने की संभावना के संकट से घिरी हुई हैं। इतना अवश्य है कि संकट की गंभीरता अलग-अलग है। उदाहरण के लिए, जिस जाति के 50 से भी कम बचे हुए प्राणी एक छोटे से क्षेत्र में रह रहे हैं वे बहुत अधिक गंभीर स्थिति में हैं बजाय उस जाति के जिसके 5,000 बचे हुए प्राणी कई क्षेत्रों में रह रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (International Union of Conservation of Nature—IUCN) के उत्तरजीविता सेवा आयोग (Survival Service Commission) अब जाति उत्तरजीविता आयोग (Species Survival Commission) कहलाता है, ने संकटग्रस्त जातियों की चार श्रेणियाँ बनाई हैं। इन श्रेणियों से यह पता चलता है कि किसी जाति के विलोपन का खतरा किस अंश तक है। ये श्रेणियाँ इस प्रकार हैं :

i) संकटापन्न (endangered)

ii) दुर्लभ (rare)

iii) अवक्षयित (depleted), और

iv) अनिर्धारित (indeterminate)

i) संकटापन्न जाति : एक जाति को संकटग्रस्त तब माना जाता है तब इसके सदस्य ... या/और इसका गृहक्षेत्र (homeland) इतना छोटा है कि अगर इसे विशेष रक्षण नहीं दिया गया तो यह विलुप्त हो सकती है।

दूसरे देशों के मुकाबले में भारत में संकटग्रस्त जातियाँ (संकटापन्न, दुर्लभ आदि) की सूची में स्तनियों (mammals) की संख्या सबसे ज्यादा है और रेड डाटा बुक में भारत का स्थान विश्व में सबसे ऊपर है। हमारे देश के संकटापन्न प्राणियों की सूची नीचे दी गई है :

स्तनी
1. अंडमान जंगली सूअर
2. बिंटुरॉंग (ऋक्ष विडाल)
3. काली बत्तख़
4. नीली व्हेल
5. भूरा-शृंगाभी हिरन
6. टोपीवाला लंगूर
7. कैराकल
8. तिमिंगणीय जातियाँ (सीटेसिआई जातियाँ)
9. चीता
10. चीनी वज्रशल्क (पैंगोलिन)
11. चिंकारा या भारतीय कुरंग (गज़ेल)
12. लमचीता (क्लाउडेड लेपर्ड)
13. केकड़ा भक्षी बंदर

14. रेगिस्तानी बिल्ली (मरुस्थल मार्जार)
15. हस्तिमकर (डुगांग)
16. मत्स्यन मार्जर (मछली पकड़ने वाली बिल्ली)
17. चार सींग वाला ऐन्टीलोप
18. सूंस (डॉल्फिन) गांगेय
19. उड्डयन गिलहरी
20. सुनहरी बिल्ली (स्वर्णिम मार्जार)
21. सुनहरा लंगूर
22. हिमालयी थार
23. हिमालयी आईबेक्स
24. दृढलोमी शंश (सख्त बाल वाला)
25. भालू सूअर
26. हुलुक गिबन
27. ककुद-पृष्ठी व्हेल (कूबड़-व्हेल)
28. भारतीय हाथी
29. भारतीय शेर
30. भारतीय जंगली गधा
31. भारतीय भेड़िया
32. कश्मीर महामृग
33. पत्ता बंदर
34. तेंदुआ या चीता
35. चीता मार्जार (लेपर्ड कैट)
36. लेसर या लाल पांडा
37. सिंह-पुच्छी वानर (शिया बंदर)
38. लोरिस
39. लिंक्स
40. मालाबार गंध मार्जार (सिवेट)
41. मलय या सूर्य भालू
42. अश्म-मार्जार (मार्बल्ड कैट)
43. मारखोर
44. मूषक हिरन (माउस डीयर)
45. कस्तूरी मृग
46. नीलगिरि थार
47. ओविस अमोन या न्यान
48. पाला-मार्जार
49. वज्रशल्क (पैन्गोलिन)
50. वामन शूकर
51. रैटल
52. राइनोसिरस (गैंडा वंश)
53. मोरचाभ-चित्ती-मार्जार
54. सिरो
55. रीछ
56. मंद लोरिस
57. छोटी ट्रावन्कोर उड़न गिलहरी
58. हिम चीता
59. चित्तीदार लिन्सैन्ग
60. अनूप हिरन
61. टाकिन या मिशमी टाकिन
62. तिब्बती बारहसींगा या चीत
63. तिब्बती कुरंग (गज़ेल)
64. तिब्बती जंगली गधा
65. गाय
66. एरिअल या शापू
67. जंगली भैंसा (अरना)
68. वन याक

दक्षिण भारत के वर्षा वनों और "शोलाज" में रहने वाले सिंह-पुच्छी बंदर (lion-tailed macaque) विश्व का सर्वाधिक संकटग्रस्त प्राइमेट है। ऐसा माना जाता है कि वनों में इस सुंदर प्राणियों की संख्या 195 से ज्यादा नहीं बची है क्योंकि इसके आवास स्थल का विस्तार पिछले 3(वर्षों में तेजी से घट गया है। इन वर्षा वनों में रहने वालों के आवास प्रमुख रूप से डिप्टेरोकार्पस पेड़ों पर था जिन्हें बेरहमी से काट डाला गया है। कॉफी और चाय सम्पदाओं के स्थापन के लिए देशज वनस्पति को साफ करने से स्थिति और बिगड़ गई है। उनकी संख्या को पर्याप्त रूप से क करने के लिए अनाधिकृत शिकार भी जिम्मेदार है। मांस के लिए भी इस प्राणी का शिकार किय जाता है। इन्हें पालतू बनाने और चिड़ियाघर में भेजने के लिए पकड़ने का व्यापार भी फल-फूल रहा है।

ii) **दुर्लभ जाति** : ये जातियाँ वे हैं जिनकी संख्या थोड़ी-सी है या वे इतने छोटे क्षेत्रों में रहती हैं या ऐसे असामान्य पर्यावरणों (विशेष क्षेत्री) में रहती हैं कि वे जल्दी विलुप्त हो सकती हैं।

दुर्लभ जाति का एक उदाहरण है–हवाई मॉन्क सील *(मोनाकस स्हाउइन्लैन्डी–Monachus schauinslandi)* है। यह केवल हवाई द्वीप समूह से उत्तर-पश्चिम में फैले छः छोटे-छोटे द्वीपों पर पाई जाती है। इनकी संख्या शायद 1500 से ज्यादा नहीं है। 1800 सदी के उत्तरार्ध में इन्हें वसा (चर्बी) के लिए मारा जाता था और वे लगभग विलुप्त हो गईं। 1909 से इनकी रक्षा की जा रही है और धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ी है। दुर्भाग्यवश अब स्थिति यह है कि इनका मारना बंद करना भी शायद इन्हें बचाने के लिए पर्याप्त न हो। जिन पुलिनों (beaches) पर मादाएँ अंडे देत हैं अगर वहाँ इन्हें क्षुब्ध कर दिया जाए तो वे दूर पानी में भाग जाती हैं। पीछे जो बच्चे छोड़ दिए जाते हैं उनमें से अधिकांश मर जाते हैं। सारी हवाई मॉन्क सील (Hawaiian monk seals) केवल इन कुछ द्वीपों पर ही सिमटकर रह गई हैं इसलिए यह संभव है कि कोई भी प्राकृतिक महाविपत्ति इनका नामो-निशान मिटा दे। उदाहरण के लिए, तेल चिकनापृष्ठ (oil slick) ऐसी घोर विपत्ति है। कुछ सील बंदीगृहों में हैं लेकिन वहाँ उन्होंने कभी भी प्रजनन नहीं किया।

दूसरा उदाहरण महान भारतीय सारंग (बस्टर्ड) है *(आर्डिओटिस नाईग्रिसेप्स–Ardeotis nigriceps)* का है। दुनिया के सबसे दुर्लभ पक्षियों में यह भी एक है जो भारतवासी है (चित्र 14.8 देखिए)। पहले यह पूर्वी पाकिस्तान से पश्चिम बंगाल तक तथा दक्षिण दिशा में दक्षिणी मद्रास के प्रायद्वीपीय (peninsular) क्षेत्रों तक वितरित था।

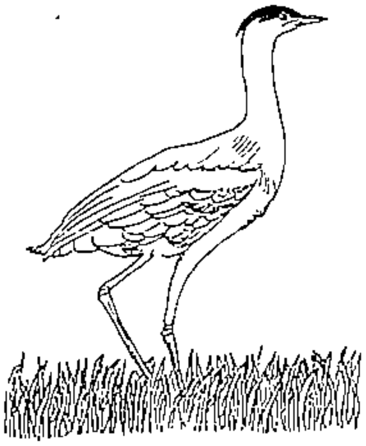

चित्र 14.8 : महान भारतीय सारंग

आजकल यह गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के बड़े-बड़े घासस्थलों, शुष्क (arid) और अर्ध-शुष्क (semi-arid) भूमियों तथा बोए हुए खेतों में छोटे-छोटे समूहों में रहता है। ऐसा विश्वास है कि अब केवल 750 पक्षी ही बचे हैं और आज भी इनका मुख्य आवास गुजरात है। हाल ही के वर्षों में अनधिकृत शिकार और इनके प्राकृतिक आवास के नष्ट हो जाने के कारण इस दुर्लभ और घटती जा रही जाति का विनाश हुआ। इसके प्राकृतिक आवास के चारों और कीटनाशकों तथा पीड़कनाशकों के अंधाधुंध उपयोग के कारण भी इन पर प्रभाव पड़ा है। खाने के लिए भी इन्हें मारा जाता रहा। कुल मिलाकर, हालात काफी खराब हैं और हम कह सकते हैं कि किसी सारंग का दिखाई देना कभी-कभी उतना ही मुश्किल है जितना कि "सूखी घास के ढेर में सुई तलाशना"।

iii) **अवक्षयित (अतिसंवेदनशील) जातियाँ :** इनमें वे जातियाँ शामिल हैं जिनकी संख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई है और अभी भी लगातार घट रही है। यह लगातार हो रही कमी ही चिंता का कारण है। इस श्रेणी के प्राणी जल्दी ही दुर्लभ या संकटापन्न श्रेणी में आ सकते हैं।

उत्तरी अफ्रीका का ऐडैक्स *(ऐडैक्स नासोमैक्यूलेटस– Addax nasomaculatus)* बारहसींगा (ऐन्टिलोप) कुल (फैमिलि) का सदस्य है। यह मूल रूप से मिस्र से लेकर मॉरीटिना के रेगिस्तान में रहता था। इस प्राणी का इतना अधिक शिकार किया जाता रहा कि अपने पहले वाले निवास के सारे क्षेत्रफल में 5,000 से भी कम जीवित बचे हैं। 1900 से ही मिस्र में तो इनका नामो-निशान ही नहीं रहा और ट्यूनीशिया से भी ये अलविदा हो गए हैं। लीबिया, स्पैनी सहारा, ऐल्जीरिया या सूडान में भी इनके अस्तित्व के बारे में संदेह है। लगता है उनका अंतिम जमावड़ा मॉरीटिना और माली में था जहाँ के खानाबदोश मूल निवासी उनका अभी भी शिकार करते हैं और उनके माँस को खाने के लिए सुखाते हैं। *ऐडैक्स* बारहसींगा की संख्या दिनोंदिन घट रही है। अगर इनकी आबादी का कम होना लंबे समय तक जारी रहा तो जाति विलुप्त हो जाएगी। लेकिन, अगर आज इनका शिकार करना बंद कर दिया जाए तो जीवित बने रहने के लिए इनकी संख्या अभी भी पर्याप्त रहेगी और आवास भी काफी फैला हुआ मिल जाएगा।

पिछले कुछ वर्षों में कुपीत (clouded) चीता *(निओफेलिस नेबुलोसा—Neofelis nebulosa)* का फर कश्मीर में अवैध रूप से बेचा जाता था। हिमालय प्रदेशों में इनकी संख्या इतनी घट गई है कि इसके दर्शन ही दुर्लभ हो गए हैं। सदाबहार वनों की बिगड़ती हालत इनकी अवक्षयित (depleted) स्थिति के लिए उत्तरदायी है। इस सुंदर प्राणी का क्षेत्र नेपाल, भूटान, सिक्किम से लेकर असम तक फैला हुआ है। इसलिए इसके संरक्षण के लिए उचित कदम उठाने चाहिए ताकि यह विलुप्ति के कगार पर न पहुँचने पाए।

iv) **अनिर्धारित जातियाँ :** चौथी श्रेणी में वे जातियाँ आती हैं जो खतरे में पड़ी हुई लगती हैं, लेकिन उनके बारे में पर्याप्त जानकारी के अभाव में उनकी सही स्थिति का विश्वसनीय आकलन करना संभव नहीं है।

इस श्रेणी में आने वाली जातियों के अनेक उदाहरण हैं। एक उदाहरण उत्तर-पूर्वी ब्राज़ील के तीन-पट्टी वाले आर्मेडिलो *(टोलीपियूटीज़ ट्रिंक्सिंक्टस-Tolypeutes trincinctus)* है जिसका माँस के लिए शिकार किया जाता है।

दूसरा उदाहरण सुमात्रा के छोटे कान वाले शश *निसोलैगस नेत्स्चेरी (Nesolagus netscheri)* का है जहाँ खेती-बाड़ी के लिए जंगलों के काटे जाने से यह गायब होता जा रहा है। तीसरा उदाहरण मेक्सिको के प्रेअरी कुत्ते *(साईनोमिस मेक्सिकैनस-Cynomys mexianus)* का है जिसे खाने के लिए मारा जाता है और इसके आवास पर खेती-बाड़ी के लिए कब्ज़ा कर लिया गया है।

आम तौर पर किसी अनिर्धारित जाति, इसके परिवर्तनों, और इसकी स्थिति पर निर्भर करते हुए जब विस्तृत जानकारी एकत्रित की जाती है तब इसे ऊपर दी गई किन्हीं भी तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है अथवा इसे सुरक्षित जाति घोषित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक अलवणजल (fresh water) समुद्र गौ (अमेजॉन मैनेटी) *ट्राइकिकस इनन्गुइस (Trichecus inunguis)* की स्थिति 1966 में अनिर्धारित समझी जाती थी। दो वर्षों के भीतर ही इसकी स्थिति संकटापन्न निर्धारित की गई। मांस के लिए शिकार किए जाने के कारण अब यह सर्वाधिक संकटापन्न जाति हो गई है। 1968 में हिम चीता *(लिओ अन्सिया-Leo uncia)* को अनिर्धारित जाति के रूप में वर्गीकृत किया गया और 1970 में इसे संकटापन्न घोषित किया गया। आप शायद जानते होंगे कि हिम चीते का शिकार इसके सुंदर मोटे फर के लिए किया जाता है।

इसमें और इससे पहले के उप-भागों में आपने विलुप्त और संकटग्रस्त जातियों के बारे में पढ़ा। इनमें जिन उदाहरणों की चर्चा की गई है उनसे आपको अंदाजा हुआ होगा कि उन जातियों को उनकी मौजूदा हालात तक पहुँचाने में अनेकानेक कारक (पर्यावरणीय और मानव) शामिल हैं। हम आपका ध्यान चित्र के दूसरे पहलू की ओर दिलाना चाहेंगे वह है कि कौन से लक्षण/अभिलक्षण कुछ प्राणी जातियों को संकटग्रस्त बन जाने को पहले से ही प्रवृत्त करते हैं (सारणी 14.2 देखिए)। ये अभिलक्षण नीचे दिए गए हैं। इनका अध्ययन करते समय आप यह बात ध्यान में रखिए कि किसी भी एक जाति में नीचे दिए गए सभी अभिलक्षण नहीं हैं। किसी एक जाति में इनमें से ज्यादा से ज्यादा दो या अधिक लक्षण हो सकते हैं।

[illegible] वन्यजीव

जलस्थलचर और सरीसृप

1. आगरा मॉनीटर छिपकली
2. अतलांतिक रिडले कूर्म (टर्टल)
3. कंटीली, अंडाकार या पीली मॉनीटर छिपकली
4. मगर (मगरमच्छ)
5. घड़ियाल
6. गांगेय मृदु-कवची-कूर्म
7. हरित समुद्र कूर्म
8. बाज चंचु कूर्म
9. हिमालयी न्यूट या सरट (सैलामेन्डर)
10. भारतीय अंड-भक्षी सर्प
11. भारतीय मृदु-कवची कूर्म
12. भारतीय तंबू कूर्म
13. बड़ी बंगाल मॉनीटर छिपकली
14. चर्मिल कूर्म
15. राज-कूर्म
16. ऑलिवर-पृष्ठी राज-कूर्म
17. मोर-चिन्हित मृदु-कवची कूर्म
18. अजगर
19. [illegible]नीतलित कूर्म
20. कछुआ
21. जरायुज भेक
22. जल छिपकली

पक्षी

1. अंडमान हंसक (टील)
2. असम बांस तीतर
3. बाजस
4. बंगाल फ्लोरिकन
5. काली गर्दन वाला सारस (क्रेन)
6. रक्त फीजेन्ट
7. भूरे सिर वाला छोमरा (गल)
8. पूर्वी सफेद ब्लाक (स्टोर्क)
9. वन्य चित्तीदार उलूक (आउलेट)
10. महान भारतीय नारंग (बस्टर्ड)
11. महान भारतीय धनेश (हॉर्नबिल)
12. बाज़ (हॉक)
13. छत्र-सारस
14. धनेश (हार्नबिल)
15. हाउबड़ा सारंग
16. ह्यूमस बार-पृष्ठी फीजेन्ट
17. भारतीय पीड धनेश
18. जेरडॉन-नुकरी (कोर्सर)
19. लैमरगीयर
20. बड़े बाज
21. बड़े शरालि
22. मोनल फीजेन्ट
23. पर्वत बटेर (क्वेल)
24. नारकोंडॉन धनेश
25. निकोबार मैगापोड
26. निकोबार कबूतर
27. ऑस्प्रे या मीन भक्षी उकाब (इंगल)
28. मोर फीजेन्ट
29. मयूर (मोर)
30. गुलाबी शीर्षी बत्तख
31. स्क्लेटर-मोनल
32. साइबेरियाई सफेद सारस
33. पदकंट कुक्कुट (मुर्गा)
34. तिब्बती हिम कुक्कुट
35. ट्रैगोपैन फीजेन्ट
36. श्वेत-तुंदी समुद्री उकाब
37. श्वेत-कर्णी फीजेन्ट
38. श्वेत चमस चंचु (स्पून बिल)
39. श्वेत-पंखी वन बत्तख

ऐसा विश्वास किया जाता है कि भारत में मौजूद 15,000 फूल वाले पौधों में से कम से कम 100 पौधे या संभवतया 200 पौधे संकटग्रस्त हैं। भारत में सर्वाधिक संकटग्रस्त पादप जातियाँ अतिशोषित औषधीय पौधे, ऑर्किड जैसे सजावटी पौधे, घटपर्णी जैसे वानस्पतिक जिज्ञासा वाले पौधे हैं। भारत में ऑर्किड की लगभग 1250 जातियाँ हैं जिसमें से अकेले मेघालय में ही 300 जातियाँ दुर्लभ हो रही हैं। आज, लगभग 20 मेघालयी ऑर्किड जातियाँ संकटापन्न हैं। हमारे देश के कुछ संकटापन्न पौधों की सूची नीचे दी गई है :

1. ऐंटिस
2. वाछा बच
3. 'कुलंजन
4. अंगूरसाग
5. मिशमी तीता
6. पिकोटी डेन्ड्रोबियम
7. गुग्गल
8. ि्न्स
9. हिम ऑर्किड
10. काड़ू
11. कमल
12. भारतीय पोडोफाइलम
13. सर्पगंधा
14. सूकड
15 कुष मूल
16. ब्रह्म कमल

सारणी 14.2 : विलोपन-प्रवृत्त जातियों के अभिलक्षण

क्र. सं.	अभिलक्षण		ब्यौरा	उदाहरण
1.	आवास	i)	द्वीप जातियाँ—महाद्वीप (continental) जातियों के आक्रमण से स्पर्धा कर सकने में असमर्थ	प्यूर्टो रीको तोता, पहरम्प किलीफिश, इन्डियाना चमगादड़, स्वर्णिम-कपोल फुदकी (गोल्डन-चीक्ड वार्बलर)। इनके अतिरिक्त हवाई की 200 पादप जातियों से आधे से भी अधिक संकटग्रस्त हैं।
		ii)	सीमित आवासों वाली जातियाँ—कुछ जातियाँ केवल कुछ पारितंत्रों (विशेष क्षेत्रीय या स्थानिक) में ही पाई जाती हैं।	वन कैरीबू (caribou), घासी कच्छ मगरमच्छ (everglade crocodile), उष्णकटिबंधीय (tropical) वर्षा वन में लाखों जातियाँ, हस्ति (elephant), सील, कुके-कोकिओ (Kooke's Kokis) हाथी दाँत जैसी चोंच वाला कठफोड़वा (Ivory-billed wood pecker), हुंकार सारस (wooping crane), ओरैन्ज उटैन।
		iii)	विशेषीकृत निकेतों (specialised niches) वाली जातियाँ—पारितंत्र अगर थोड़ा या बहुत कुछ पहले सा बचा रहता है तभी भी निकेत नष्ट हो सकता है।	
2.	अशन स्वभाव	i)	आहार संबंधी विशेष आदतें	घासी कच्छ चील (दक्षिणी फ्लोरिडा का सेब घोंघा—apple snail), नीली व्हेल (ध्रुवीय उत्प्रवाह-upwelling क्षेत्रों में क्रिल), कृष्ण-पदी फेरेट (प्रेअरी कुत्ते), और पॉकेट गोफर-gophers विशाल पांडा (बाँस)
		ii)	उच्च पोषण-स्तरों (trophic levels) का अशन	बंगाल बाघ, गंजा उकाब, एन्डियन कोंडोर (Andean.Condor) प्रकाष्ठ (timber) भेड़िया।
3.	जनन	i)	निम्न जनन-दरों वाली जातियाँ। कई जातियों ने इसलिए निम्न जननीय दरें विकसित की क्योंकि परभक्षण कम था, लेकिन आधुनिक काल में, लोग इनमें से कुछ जातियों के प्रति बहुत प्रभावी परभक्षक बन गए हैं।	नीली व्हेल, कैलिफोर्निया कंडोर (गीध), ध्रुव भालू, गैंडा (राइनोसिरस), यात्री कबूतर, विशाल पांडा, हुंकार सारस।
		ii)	विशेषीकृत नीड़न/प्रजनन (nestling/breeding) क्षेत्र	क्रिटलैंडफुदकी केवल 6 से 15 वर्ष की आयु वाले जैक चीड़ (पाइन) वृक्षों पर घोंसला बनाते हैं; हुंकार सारस घोंसला बनाने के लिए कच्छभूमियों (marshes) पर निर्भर रहते हैं, हरित समुद्र कूर्म (turtle) कुछ पुलिनों पर अंडे देते हैं, उकाब (वनयुक्त तटरेखा पर घोंसला बनाना पसंद करता है), बुलबुल चिकुर (Nightingale wren) (पनामा में केवल एक द्वीप पर नीड़ बनाती और प्रजनन करती है)।
4.	परभक्षी		प्रायः पालतू पशुओं पर परभक्षण कम करने के लिए मारे जाते हैं	ग्रिज़्ली भालू, प्रकाष्ठ भेड़िया, बंगाल बाघ, कुछ मगरमच्छ, एशियाई शेर, भूरा भेड़िया

5.	व्यवहार	i) मानव उपस्थिति सहन नहीं	ग्रिज़ली भालू
		ii) विलुप्त जाति का अनोखा व्यवहार-पैटर्न	यात्री कबूतर (बड़ी-बड़ी कॉलोनियों में घोंसले बनाता था)
		iii) व्यवहार संबंधी विशिष्टताएँ जो आज अनुकूलित (non-adaptive) हैं	लाल सिर वाला कठफोड़वा (कारों के सामने उड़ता है), कैरोलिना तोता (जब एक पक्षी को गोली से मार दिया जाता है तो बाकी का झुंड मरे हुए पक्षी पर मंडराने लगता है), कुंजी हिरन (राजमार्गों के साथ-साथ सिगरेट के टोटे ढूंढकर चर जाता है–इसको "निकोटिन की लत" है)
		iv) प्रवास–अधिकतर अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं में (या उसके पार प्रवास करते हैं) रहता है	अतलांतीय हरित समुद्र कूर्म, ओसिलोट (ocelot), अतलांतीय सामन (salmon), नीली व्हेल, क्रिटलैंड फुदकी, हुंकार सारस
6.	आखेट के लिए आर्थिक रूप से मूल्यवान	व्यापारिक तौर पर अनेक महत्वपूर्ण उत्पादों के लिए मानव द्वारा आखेट-दबाव	प्रदर्शन चीता, नीली व्हेल, हाथी, गैंडे
7.	प्रदूषण	कुछ जातियाँ औद्योगिक प्रदूषण, कीटनाशकों और पीड़कनाशकों के प्रति अधिक सुग्राही (susceptible) हैं।	गंजा उकाब, महान भारतीय सारंग (बस्टर्ड)

विलुप्त प्राणी हमेशा के लिए चले जाते हैं। हम उन्हें कभी भी वापस नहीं ला सकते। संकटग्रस्त जातियों को संभाला जा सकता है और यह हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि यह निश्चित करें कि इन जातियों का वही अंत न हो जो विलुप्त जातियों का हुआ था।

14.5.3 खतरे से बाहर जातियाँ (Out of danger species)

इसमें वे जातियाँ शामिल हैं जो पहले ऊपर की श्रेणियों में आती थीं लेकिन जो अब अपेक्षाकृत सुरक्षित समझी जाती हैं क्योंकि प्रभावशाली संरक्षण उपाय किए गए हैं या उनके जीवित न बचे रहने के लिए जो कारण था, उसे दूर कर दिया गया है।

14.5.4 रेड डाटा बुक (Red Data Book)

अनेक एजेंसियाँ और कुछ निजी संगठन भी संकटग्रस्त मानी गई जातियों की सूची बनाते हैं। इन सूचियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय रेड डाटा बुक है। अनेक जातियों की स्थिति (status) पर यह एक खुला पृष्ठ खंड है। अद्यतन करने का यह कार्य मॉर्गीज़ (Morges), स्विटज़रलैंड में स्थित अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (International Union of Conservation of Nature—IUCN) द्वारा किया जाता है। "लाल" उस संकट का प्रतीक है जो सभी संकटग्रस्त जातियों को झेलना पड़ता है। इन जातियों में प्राणी और पौधे दोनों शामिल हैं। रेड डाटा बुक सूचीबद्ध जातियों के सूत्रण (formulation), परिरक्षण और प्रबंध के लिए बतौर निर्देशिका के आई.यू.सी.एन. के विशेष उत्तरजीविता आयोग (Species Survival Commission) द्वारा 1966 में जारी की गई। इस किताब में दूसरे प्राणियों और पौधों की अपेक्षा संकटापन्न स्तनियों (mammals) और पक्षियों के बारे में अधिक व्यापक जानकारी दी गई है। इसमें उन जीवों के बारे में भी जानकारी दी हुई है जो कम विशिष्ट हैं और विलोपन का सामना कर रहे हैं।

इस प्रकाशन में गुलाबी पृष्ठों में गंभीर रूप से संकटापन्न जातियाँ भी शामिल की गई हैं। प्राणियों की स्थिति बदल जाने पर शुल्कदाताओं को नए पृष्ठ भेजे जाते हैं। जो जातियाँ पहले संकटापन्न थीं, लेकिन अब वे उन संकटों से उभर आई हैं तथा वे संकटापन्न नहीं रहीं उनके बारे में हरे पृष्ठों में ब्यौरा मिलता है। हाल के वर्षों में गुलाबी पृष्ठों की संख्या बढ़ती जा रही है। यह दयनीय है कि हरे पृष्ठ कुछ ही हैं।

बोध प्रश्न 3

स्तम्भ (कॉलम) "क" में हर वाक्यांश की बाईं ओर दी गई रेखा पर स्तम्भ (कॉलम) "ख" में जो शब्द वाक्यांश से उत्तम मेल खाता है, उसका अक्षर लिखिए। स्तम्भ "ख" में प्रत्येक शब्द एक बार, एक बार से अधिक काम में लाया जा सकता है या बिल्कुल ही काम में नहीं लाया जा सकता।

क	ख
i) जातियाँ जो खतरे में समझी जाती हैं लेकिन उनके सही आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।	क) विलुप्त जातियाँ
	ख) संकटग्रस्त (threatened) जातियाँ
ii) जातियाँ जिनकी संख्या कम है या वे असामान्य पर्यावरण में पाई जाती हैं।	ग) संकटापन्न (endangered) जातियाँ
	घ) दुर्लभ (rare) जातियाँ
iii) जातियाँ जिनके सारे व्यष्टि (individuals) मर गए।	ङ) अवक्षयित (depleted) जातियाँ
	च) अनिर्धारित (indeterminate) जातियाँ
iv) जातियाँ जिनकी संख्या विगत में अत्यधिक कम हो गई हैं और अभी भी घटना जारी है।	छ) संकट से बाहर जातियाँ

14.6 वन्यजीवन का संरक्षण

पिछले भागों के अध्ययन से आपने जाना कि अनेकों जातियाँ भूमंडल से पूरी तरह समाप्त हो चुकी हैं और अगर उन्हें बचाने के लिए समुचित उपाय नहीं किए गए तो कई जातियों के विलुप्त होने की संभावना है।

14.6.1 वन्यजीवन के संरक्षण (Conservation of wildlife) का क्या अर्थ है?

आजकल हम संरक्षण के बारे में बहुत सुनते या पढ़ते हैं। विविध क्षेत्रों के मनुष्य संरक्षण के बारे में बातें करते हैं जैसे कि पर्यावरणविद्, वैज्ञानिक, वास्तुविद् (architect), राजनीतिज्ञ, शहर योजनाकार और आम आदमी वस्तुतः भिन्न-भिन्न लोगों के लिए संरक्षण का अर्थ अलग-अलग है। वर्तमान संदर्भ में संरक्षण का अर्थ प्राणियों और पौधों को उनके प्राकृतिक पारितंत्र में या उनके प्राकृतिक पर्यावरण से हटाकर बागों तथा चिड़ियाघरों में उनके परिरक्षण (preservation) से है। आज वन्यजीवन संरक्षण एक संपूर्ण संकल्पना (concept) है और इसमें न केवल पौधे एवं प्राणी बल्कि सूक्ष्म जीव, मृदा तथा जिस पर्यावरण में वे रहते हैं या जिन पर वे निर्भर हैं उसके अन्य भौतिक तत्व भी शामिल हैं। अब हम आपसे जातियों के संरक्षण के लिए आवश्यक विभिन्न प्रकार के उपायों की चर्चा करेंगे।

14.6.2 जाति संरक्षण के उपाय (Measures for Species Conservation)

जाति संरक्षण के लिए आवश्यक अनेक प्रकार की क्रियाओं का वर्णन नीचे दिया गया है :

i) **आवास संरक्षण** (Habitat Conservation) : आवास का नष्ट होना पौधों और प्राणियों के विलोपन का मुख्य कारक है। शहरी और दूसरे विकास कार्यों के दौरान अगर पारिस्थितिकीय बातें ध्यान में रखी जाएँ तो आवास को होने वाले नुकसान से काफी हद तक बचाया जा सकता है।

ii) **क्रांतिक संसाधन उपलब्ध करना** (Providing Critical Resources) : संकटग्रस्त जातियों के आवास को सुधारने का दूसरा तरीका यह निर्धारित करने में है कि कौन-सा संसाधन आबादी के लिए सीमाकारी (limiting) है और उस संसाधन की अधिक मात्रा उपलब्ध करानी चाहिए। काष्ठ बत्तख के लिए नीड़ बक्से बनाने से अमरीका के अनेक भागों में काष्ठ बत्तख की आबादी बढ़ी है। श्वेत-कंधारा सारस (white-naped crane) शीत ऋतु जापान में बिताता है लेकिन एक क्षेत्र जहाँ यह बड़ा और सुंदर पक्षी भरण-पोषण प्राप्त किया करता था, वहाँ निर्माण कार्य हो चुका है। 1985 में पूरे जापान-भर में लगभग 45 पक्षी ही दिखाई दिए थे। इस वजह से जापानियों ने क्यूसू में केवल एक ही स्थान पर पक्षियों को खाना देना आरंभ किया और अब हर साल उस स्थान में 700 से भी अधिक पक्षी शीतकाल बिताते हैं।

iii) **बंदी प्रजनन (Captive Breeding) :** जो जातियाँ खतरनाक स्तर तक कम हो गई हैं उनको अधिक गहन प्रबंध की आवश्यकता है और एक योजना उनके बंदी प्रजनन की है। इसका अर्थ यह है कि संकटग्रस्त पक्षियों के घोंसलों से अंडे लेकर बंदी-स्थिति में अंडजोत्पत्ति की जाती है अर्थात् उन अंडों से बच्चे पैदा किए जाते हैं। कैलिफोर्निया कंडोर और सारस की अनेक जातियों पर किए गए इस प्रकार के प्रयास सफल रहे हैं। चिड़ियाघरों, प्राणी-प्रजनन पार्कों और अनुसंधान केन्द्रों में भी बंदी प्रजनन का प्रयास किया गया है और कुछ सफलता मिली है। उदाहरण के लिए, अरेबियाई ऑरिक्स वन में 1960 के दशक तक विलुप्त हो गया और बंदी प्रजनन का प्रयास किया गया और जो थोड़े से प्राणी पैदा किए गए उन्हें आरक्षित स्थलों/अभ्यारण्यों में छोड़ दिया गया। कुछ जातियाँ जैसे कि चीता, पांडा, सारस, जतूक (चमगादड़) और पेंग्विन, बंदी हालत में प्रजनन करने से कतराती हैं।

बंदी प्रजनन कार्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य जातियों को पुन: जंगल में छोड़ देना है। यह देखा गया है कि छोड़े गए व्यष्टि विशेष रूप से असुरक्षित हैं। छोटी आबादी में जो खतरे हो सकते हैं इन व्यष्टियों को उनका सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त बंदी हालत में पैदा किए जाने के कारण प्रायः उनमें अत्यावश्यक व्यावहारिक पैटर्न, जैसे कि खाना तलाशना इत्यादि, विकसित नहीं हो पाते। इसलिए जंगल में छोड़ दिए जाने के बाद अनेक प्राणी मर जाते हैं। इस सबके बावजूद, अगर जातियों के प्राकृतिक आवास नष्ट कर दिए जाते हैं तो कुछ वन्यजीवन जातियों के लिए चिड़ियाघर और प्रजनन उद्यान (पार्क) ही अंतिम आश्रय स्थल हैं।

iv) **आरक्षित स्थलों का विकास (Development of Reserves) :** जीवीय आरक्षित स्थलों, राष्ट्रीय उद्यानों, वन आरक्षित स्थलों, वन्यजीवन आश्रय स्थलों तथा जीव मंडल (biosphere) आरक्षित स्थलों की स्थापना वन्यजीवन जातियों के परिरक्षण का एक प्रभावकारी माध्यम है। ऐसे आरक्षित स्थल ज्यादातर प्राकृतिक रूप से कार्यरत पारितंत्रों में बनाए जाते हैं इसलिए इनका प्रबंध आसान है। इसके अतिरिक्त रख-रखाव की लागत और संसाधनों की आवश्यकता न्यूनतम है। इन आरक्षित स्थलों के मुख्य उद्देश्य चित्र 14.9 में दर्शाए गए हैं। इन आरक्षित स्थलों का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि एक ही क्षेत्र में एक से अधिक संकटग्रस्त जातियाँ रक्षित की जा सकती हैं।

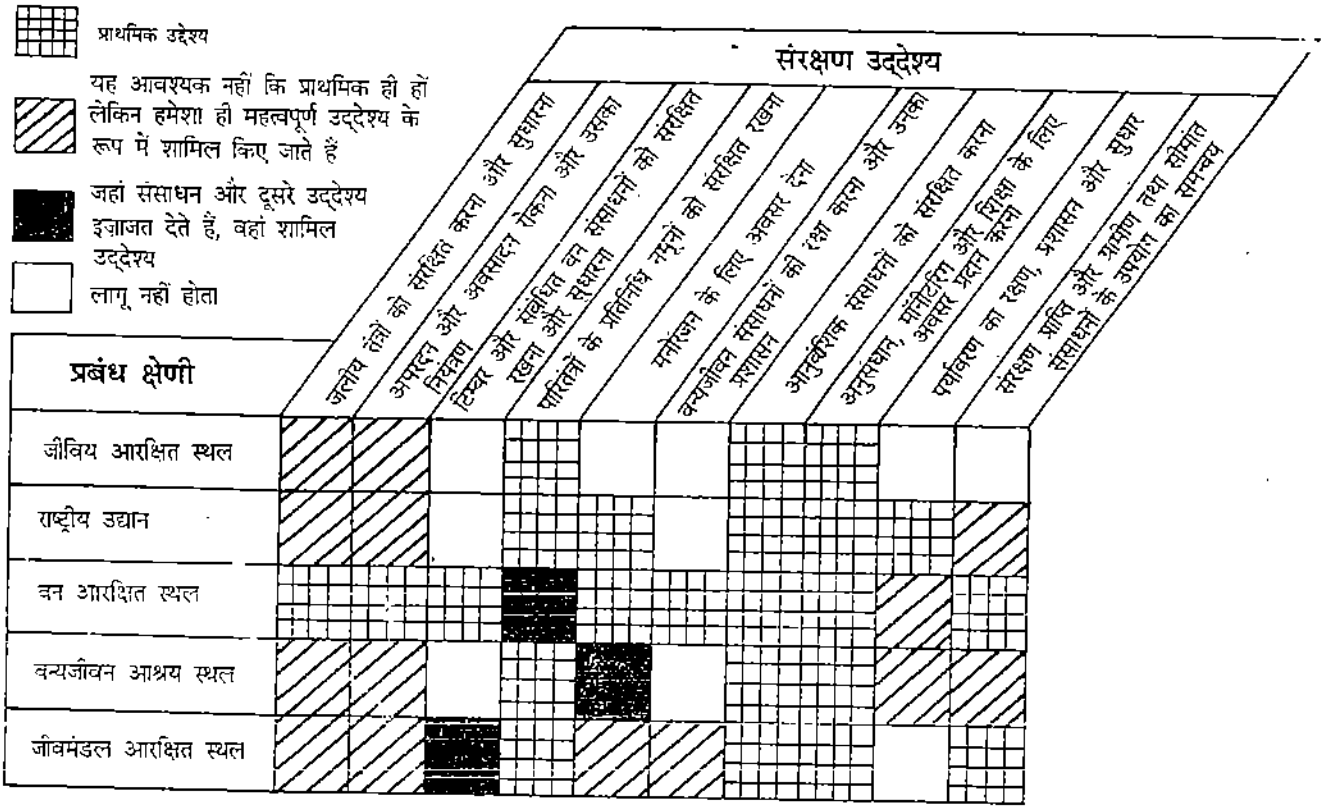

चित्र 14.9 : विभिन्न आरक्षित स्थलों के संरक्षण उद्देश्य

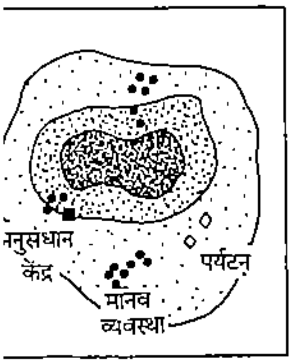

कोर क्षेत्र

बफ़र क्षेत्र 1

बफ़र क्षेत्र 2

14.10 : एक सफल क्षण स्थल वह है जिसमें ाय: सुरक्षित कोर क्षेत्र होता इस क्षेत्र के बाहर बफ़र क्षेत्र ा है जिसमें वैज्ञानिक ंधान किया जाता है तथा हद तक मानव गतिविधियों भी अनुमति दी जाती है।

आरक्षित स्थल (चित्र 14.10) वे क्षेत्र हैं जो वन्यजीवन के रक्षण के लिये विशेष रूप से सीमांकित किए गए हैं। आरक्षित स्थल के विभिन्न मंडल (जोन) और मानव द्वारा विभिन्न गतिविधियों के लिये इनका उपयोग भी चित्र 14.9 में दिखाया गया है।

v) **विदेशी जातियों के उपस्थापन/प्रवेशन का नियंत्रण (Controlling Introduction of Alien Species) :** जैसा कि आप जानते हैं, विदेशी जातियाँ वर्तमान आबादी को घटा सकती हैं या उन्हें विलुप्त तक कर सकती हैं। विदेशी जातियों के व्यष्टि दूसरी जातियों का शिकार करके, भोजन के लिए कड़ी स्पर्धा पैदा करके या उनके आवासों को नष्ट करके उन जातियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं। विदेशी जातियाँ वर्तमान जातियों के प्राकृतिक भक्षकों (predators) को मारकर उन जातियों में अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि का संकट पैदा कर सकती हैं। द्वीपीय जातियाँ विदेशी जातियों से विशेष रूप से असुरक्षित हैं क्योंकि वे ऐसे पारितंत्र में विकसित हुई हैं जहाँ अगर हैं भी तो बहुत कम शाकाहारी या मांसाहारी जातियाँ हैं। इसलिए विदेशी जाति के उपस्थापन/प्रवेश से पूर्व इन सभी पहलुओं को ध्यान रखना चाहिए।

vi) **प्रदूषण घटाना (Reducing Pollution) :** जैसा कि आप पहले से ही जानते हैं, अनेक प्रकार के प्रदूषणों ने जीवधारियों, विशेष रूप से वन्यजीवन को प्रभावित किया है। प्रदूषण आधुनिक सभ्यता की देन है और इस समस्या का बढ़ना अभी भी जारी है। ऐसे में किया क्या जाए? आज, हमारी जीवन शैली ऐसी हो गई है कि पुरानी अवस्था को वापस लौट जाना आसान नहीं है। इसलिए, प्रदूषण को काबू में रखने के प्रभावशाली तरीकों, प्रदूषकों (pollutants) को पैदा होने से रोकने के लिए प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है।

vii) **अनुसंधान और प्रलेखन (Research and Documentation) :** पहले, विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा संकटग्रस्त जातियों की सूचियाँ तैयार की जाती हैं। किसी संकटग्रस्त जाति को बचाने के लिए काम में लाई जाने वाली दूसरी प्रक्रिया उस जाति के बारे में जानकारी का संकलन करना है। आबादी की वर्तमान साइज क्या है और क्रांतिक (critical) क्या है। जाति का न्यूनतम साइज? जीवित रहने के लिए प्रजनन की विधि, अपेक्षित क्षेत्र, भोजन और जलवायु के बारे में जानकारी एकत्रित की जाती है। यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि आबादी खतरे के बिन्दु तक क्यों कर कम हो गई है?

viii) **वैध कार्रवाई (Legal Actions) :** जातियों के परिरक्षण के लिए अनेक विधिक कदम उठाए गए हैं। ऐसा एक कदम कुछ जातियों के सदस्यों को मारने के बारे में कानूनों (laws) को अधिनियमित करना है। इसमें कानून तोड़ने पर कठोर दंड की व्यवस्था है। ये कानून बहुत प्रभावकारी हो सकते हैं। कुछ देशों, जैसे कि अमरीका में हिरन का आखेट वर्ष के केवल खास समय के दौरान करने की आज्ञा देकर नियंत्रित किया जाता है। इसमें हर उस व्यक्ति को जो आखेट लाइसेंस के लिए आवेदन देता है टैग किए जाते हैं। अगर कोई व्यक्ति बिना आखेट-ऋतु के शिकार करता पकड़ा जाता है या किसी व्यक्ति के पास मरा हुआ हिरन मिलता है तो उस पर भारी जुर्माना लगाया जाता है। इस प्रणाली से वन्यजीवन एजेंसियाँ हिरन की आबादी को बहुत ठीक नियंत्रित कर सकती हैं। अनेक देशों में संकटापन्न जातियों के किसी सदस्य का मारना अवैध है।

तथापि, सख्त जुर्मानों के बावजूद अनधिकृत शिकार पूरी तरह से खत्म नहीं हो पाया है क्योंकि इससे तस्करों को ढेरों पैसा मिलता है। 1975 में **संकटापन्न जातियों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समागम (Convention of International Trade in Endangered Species—CITES)** पर 81 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किए। यह समागम संकटापन्न जातियों या उनके उत्पादों के व्यापार का निषेध करता है। कागज़ पर लिखे ये सभी कानून तभी उचित हैं जब इन्हें लागू किया जाए और इनसे प्राणियों का जीवन बच सके।

ix) **जन-सहभागिता और जागरुकता (Public Participation and Awareness) :** विलोपन का दोष आम तौर पर कुछ श्रेणियों के लोगों के सिर मढ़ दिया जाता है, जैसे कि तस्कर, शिकारी आदि लेकिन वास्तविकता यह है कि प्राणियों को उनकी मौजूदा हालत तक पहुँचाने में हम सभी की थोड़ी-बहुत भूमिका रही है। अत्यधिक उपभोगवाद, उदासीनता, बेलगाम बढ़ता प्रदूषण और बेरुखी की वजह से हम सभी इस समस्या को उत्पन्न करने में सहभागी हैं। अब प्रश्न यह है कि हम किस प्रकार समस्याओं के समाधान में सहायता कर सकते हैं?

पहला काम तो यह है कि हम बरबादी को न्यूनतम करके ऊर्जा की खपत घटाएँ। इसके लिए जब हम कमरे में न हों तो रोशनी, पंखे आदि बंद रखें। इस तरह के अनेक अभ्यासों से हम अपने प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से वनों से आने वाले उत्पादों को संरक्षित रख सकते हैं। इससे आवास के विनाश/हानि को कम किया जा सकता है।

दूसरा काम यह है कि हम दूसरों को उनकी खर्चीली आदतों को बदलने में मदद करें। शुरुआत हम अपने परिवार से कर सकते हैं और तब मित्रों तथा संबंधियों को विलोपन में अपनी भूमिका के बारे में बता सकते हैं। इसके अलावा शिक्षा-अभियानों, टेलीविज़न विज्ञापनों, पोस्टरों, किताबों, पैम्फलेटों आदि के माध्यम से हम दूसरों के साथ मिलकर संदेश फैला सकते हैं।

हम उन नागरिकों के काम में सहयोग दे सकते हैं जो प्रदूषण, आवास नष्ट करने, शिकार करने, पीड़क और परभक्षियों का अंधाधुंध नियंत्रण और अनुसंधान तथा घर के उपयोग के लिए पौधों एवं प्राणियों को एकत्रित करने के विरुद्ध लड़ाई जारी रखे हुए हैं।

14.6.3 भारतवर्ष में वन्यजीवन संरक्षण (Wildlife Conservation in India)

i) **परंपरागत दृष्टिकोण** (Traditional Approach) : प्राचीन भारतवासियों के मन में हमारे देश में वन्यजीवन का संरक्षण सर्वोपरि था। जीवन के सूक्ष्म रूपों के प्रति भी हिंसा के विरुद्ध आदि कालीन भारतीय साहित्य इस बात के अर्थपूर्ण प्रमाण हैं कि प्राचीन भारतवर्ष में वन्यजीवन को कितना आदर दिया जाता था। इस साहित्य में हिन्दू महाकाव्य, बौद्ध जातक-कथाएँ, पंचतंत्र और जैन धर्म-ग्रंथ शामिल हैं। आज भी विश्नोई (उत्तर भारत में) जैसे कुछ समुदाय हैं जो वन्यजीवन संरक्षण के लिए पूरी तरह समर्पित हैं। यह लगभग 390 वर्ष पुराना सम्प्रदाय है जो पौधों तथा प्राणियों के संरक्षण के लगभग 29 सिद्धांतों का पालन करता है, विशेष रूप से संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण का। राजस्थान और हरियाणा में विश्नोई गाँवों के आसपास अनेक कृष्णसार (ब्लैक बक) और खेजड़ी वृक्ष देखे जा सकते हैं जो अन्यथा दुर्लभ हैं।

विभिन्न संरक्षण प्रथाओं में कुछ ऐसी हैं जिनमें समूचे जीवीय समुदाय का रक्षण किया जाता है जैसे कि पवित्र उपवन और झीलें। हिमालय क्षेत्र में रुद्रनाथ के मंदिर के पास अनेक हेक्टेयर भूमि देवता के रखवालों को समर्पित है। इन एल्पीय चरागाहों और बुरुश (रोडोडेन्ड्रॉन) वनों में कटाई, या चराई की आज्ञा नहीं है। केरल में तटीय सदाबहार वन अब केवल उन छोटे-छोटे भूखंडों में बचे हैं जो पवित्र उपवनों के रूप में सर्प देवताओं को समर्पित हैं।

परम्परागत रूप से, अभिजात वर्ग आखेट परिरक्षित-स्थलों को अलग रख देता है। इस प्रथा का कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लेख है। इससे भी पहले ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में अशोक ने अपने तीसरे शिलालेख में कुछ पक्षियों के संहार पर प्रतिबंध लगाया था। मुगल शासक लालची शिकारी थे, लेकिन उन्होंने परिरक्षण परंपरा का पालन किया। अंग्रेज़ी चाय बागान वालों ने भी अपनी शिकारगाहें स्थापित कीं। उदाहरण के लिए, केरल की ऊँची पर्वतमाला में एराविकुलम पठार (Eravikulam plateau)। जूनागढ़ के नवाब ने भी शिकार के लिए क्षेत्र आरक्षित किया था, जैसे गीर शिकारगाह। हमारे आज जो अनेकों वन्यजीवन अभ्यारण्य (Sanctuaries) हैं उनमें से कई इस प्रकार के पुराने शिकार परिरक्षण-स्थल थे। सिम्पलिपाल, बांदीपुर और रणथम्भौर के बाघ आरक्षण स्थल, भरतपुर का पक्षी विहार तथा एराविकुलम राष्ट्रीय उद्यान इसके कुछ उदाहरण हैं।

ii) **आधुनिक दृष्टिकोण** (Modern Approach) : आधुनिक प्रकृति सरक्षण आंदोलन की शुरुआत आखेटकों और प्रकृतिविदों (naturalists) की रुचियों को देखते हुई थी। आखेट प्राणियों की आबादी बहुत ही तेजी से घटने के कारण, विशेष रूप से द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान, अनेक संगठन दीर्घकालीन वन्यजीवन संरक्षण की ओर ध्यान देने लगे। बंबई प्राकृतिक इतिहास सोसाइटी (Bombay Natural History Society) ने इसकी शुरुआत की। यह देश के आखेट प्रेमियों और प्रकृतिविदों का सर्वप्रथम संगठन था। **भारतीय वन्यजीवन बोर्ड** (Indian Board of Wildlife) और वन्यजीवन अभ्यारण्यों तथा राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना इस सोसाइटी का चरम बिंदु था। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर वन्यजीवन संरक्षण के लिए विश्व-व्यापी चिंता के फलस्वरूप विश्व वन्यजीवन निधि (World Wildlife Fund) की नींव रखी गई। इसमें अधिकतर यूरोप का अभिजात वर्ग था। विश्व वन्यजीवन निधि की शाखा 1952 में भारत में भी स्थापित की गई और जल्दी ही यह प्रमुख संरक्षण सोसाइटी बन गई।

पिछले दशक के दौरान, विस्तृत विधान विनियमित किया गया और भारत में वन्यजीवन संरक्षण के लिए कार्य योजनाएँ आरंभ की गई। भारतीय वन्यजीवन बोर्ड (Indian Board of Wildlife) वन्यजीवन संरक्षण के लिए भारत सरकार का प्रमुख सलाहकार निकाय (Advisory Body) है। इसकी सिफारिशों के आधार पर संसद द्वारा 1972 में वन्यजीवन रक्षण अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें संकटग्रस्त जातियों के शिकार के लिए कुछ प्रावधान (provisions) हैं। आज भारत में 80 राष्ट्रीय उद्यान (National Parks), 412 वन्यजीवन अभ्यारण्य (Wildlife sanctuaries), और 7 जीवमंडल आरक्षण स्थल (Biosphere Reserves) हैं। कुछ सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय उद्यान और अभ्यारण्य तथा जीवमंडल आरक्षण स्थल चित्र 14.11 में दिखाए गए हैं।

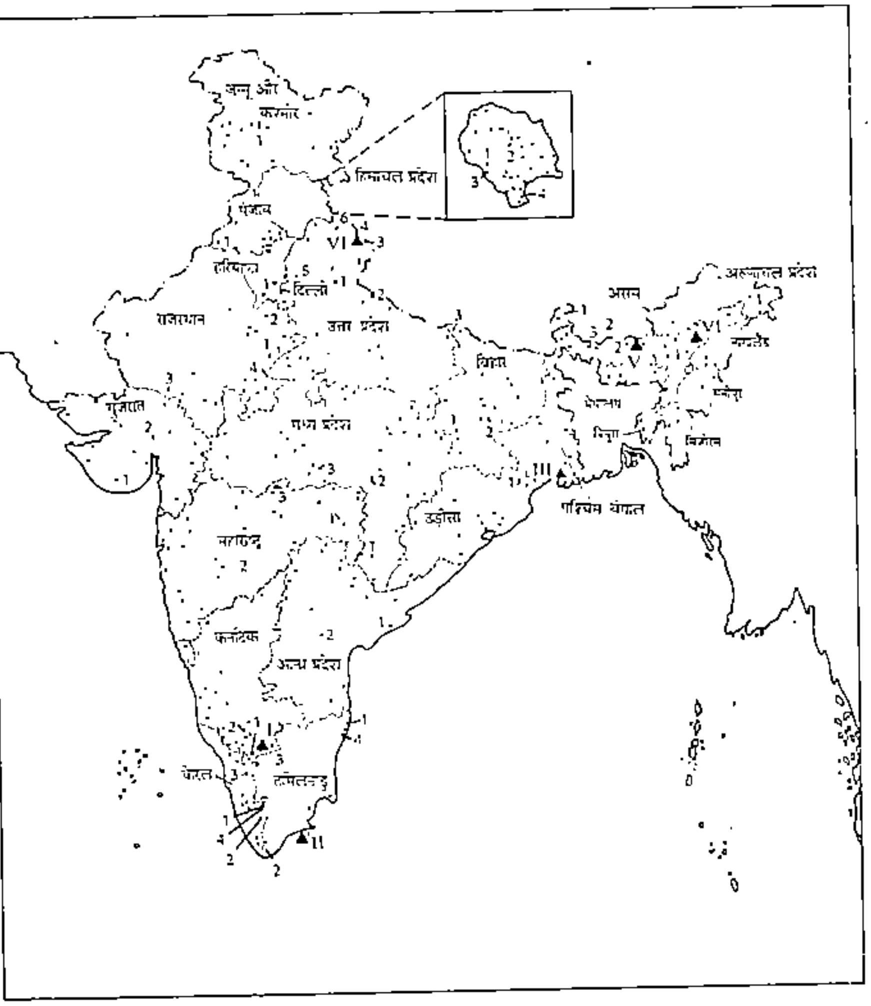

चित्र 14.11 : भारत में जीवमंडल आरक्षण स्थल, राष्ट्रीय उद्यान और अभ्यारण्य। इनके नाम जानने के लिए तालिका 14.3 (क और ख) देखिए।

तालिका 14.3 क : जीवमंडल आरक्षण स्थल	
i)	नीलगिरी जीवमंडल आरक्षण स्थल
ii)	मन्नार खाड़ी जीवमंडल आरक्षण स्थल
iii)	सुंदरवन जीवमंडल आरक्षण स्थल
iv)	काजीरंगा जीवमंडल आरक्षण स्थल
v)	मानस जीवमंडल आरक्षण स्थल
vi)	नंदादेवी जीवमंडल आरक्षण स्थल
vii)	ग्रेट निकोबार जीवमंडल आरक्षण स्थल

तालिका 14.3 ख : नेशनल पार्क तथा अभ्यारण्य। यह सब चित्र में बिन्दुओं द्वारा दर्शाए गए हैं। कुछ बिन्दुओं पर संख्या लिखी है। यह कुछ जाने-माने नेशनल पार्क तथा अभ्यारण्य हैं। उनका नाम जानने के लिए उनका क्रमशः नम्बर राज्य-विशेष में देखें।

आन्ध्र प्रदेश	1. कोलरू अभ्यारण्य, 2. नागार्जुनसागर श्रीशैलम् अभ्यारण्य
अरुणाचल प्रदेश	1. नामदफा नेशनल पार्क
असम	1. काजीरंगा नेशनल पार्क, 2. मानस नेशनल पार्क
बिहार	1. पालमू नेशनल पार्क, 2. हज़ारीबाग अभ्यारण्य, 3. वाल्मीकि नगर अभ्यारण्य
दिल्ली	1. इंदिरा प्रियदर्शनी अभ्यारण्य
गुज़रात	1. गीर नेशनल पार्क, 2. नालसरोवर अभ्यारण्य
हरियाणा	1. सुल्तानपुर अभ्यारण्य
हिमाचल प्रदेश	1. गोविंदसागर अभ्यारण्य, 2. खीखन अभ्यारण्य, 3. नैना देवी अभ्यारण्य, 4. रेनुका अभ्यारण्य
जम्मू और कश्मीर	1. दाछीगाम नेशनल पार्क
कनार्टक	1. बांदीपुर नेशनल पार्क, 2. रंगनाटिटू अभ्यारण्य
केरल	1. एराविकुलम नेशनल पार्क, 2. पेरियार नेशनल पार्क, 3. सालेंट वैली नेशनल पार्क, 4. इदुक्की अभ्यारण्य

महाराष्ट्र	1. तोडा वा नेशनल पार्क, 2. ग्रेट इंडियन बस्टर्ड अभ्यारण्य, 3. मेलघाट अभ्यारण्य
मध्य प्रदेश	1. इन्द्रावती नेशनल पार्क, 2. कान्हा नेशनल पार्क, 3. पंचमढ़ी अभ्यारण्य
उड़ीसा	1. सिमिलीपाल नेशनल पार्क
पंजाब	1. अबोहर अभ्यारण्य
राजस्थान	1. रणथम्भौर नेशनल पार्क, 2. सरिस्का नेशनल पार्क, 3. माउंट आबू अभ्यारण्य, 4. नेशनल घड़ियाल अभ्यारण्य
सिक्किम	1. सिंगवा रोडोडेन्ड्रॉन अभ्यारण्य
तमिलनाडु	1. गुइंडी नेशनल पार्क, 2. कलाकड़ मुण्डथुरई अभ्यारण्य, 3. मधुमलै अभ्यारण्य, 4. वेदान्थगल अभ्यारण्य
उत्तर प्रदेश	1. कॉर्बेट नेशनल पार्क, 2. दुधवा नेशनल पार्क, 3. नंदादेवी नेशनल पार्क, 4. वैली ऑफ फ्लावर्स नेशनल पार्क, 5. हस्तिनापुर अभ्यारण्य, 6. केदारनाथ अभ्यारण्य
पश्चिम बंगाल	1. सुंदरवन नेशनल पार्क, 2. बक्सा अभ्यारण्य, 3. जलदापाड़ा अभ्यारण्य

iii) **बाघ परियोजना :** इस सदी के शुरू में वन्य बाघों की संख्या 40,000 थी जो 1972 में घटकर कुल 1817 ही रह गई। बाघ की आबादी में इस अत्यधिक कमी को देखते हुए 1973 में बाघ परियोजना आरंभ की गई। भारत सरकार द्वारा इस परियोजना को डब्लू.डब्लू.एफ.–भारत और आई.यू.सी.एन. (I.U.C.N.) के सहयोग से तथा 5 करोड़ रुपए के अनुदान से शुरू किया गया। डब्लू.डब्लू.एफ. और आई.यू.सी.एन. ने उपस्कर (equipment) और विशेषज्ञों के लिए 10 लाख डॉलर खर्च देने का वायदा किया। सभी आरक्षण स्थलों की तरह भारत के बाघ आरक्षण स्थलों का भी एक क्रोड मंडल (core zone) है जो सब तरह के मानव हस्तक्षेपों से मुक्त है। क्रोड मंडल में पशु चराई बंद कर दी गयी है और कई गांवों से लोगों को, जो इस क्षेत्र में रहते थे, बाहर कर दिया गया है तथा बाघों को बिना मानव हस्तक्षेप के रहने की स्थिति उपलब्ध की गई है। परियोजना के आरंभ में अर्थात् 1973 में 9 बाघ आरक्षण स्थलों की स्थापना की गई जिनमें बाघों की कुल संख्या 268 थी। आज देश में 18 बाघ आरक्षण स्थल हैं (चित्र 14.12 देखिए) और 1990 में रिकॉर्ड की गई संख्या के अनुसार इनकी आबादी 4,334 तक पहुँच गई है। वन्यजीवन रक्षण के लिए किए गए हमारे प्रयासों में बाघ परियोजना एक अपूर्व ऐतिहासिक घटना माना जा सकता है।

तालिका 14.4 : बाघ आरक्षणस्थल (पर्यावरण और वन मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 1989-90 से)

क्र. सं.	बाघ आरक्षणस्थल का नाम	राज्य	कुल क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी. में)
1.	बांदीपुर नेशनल पार्क	कर्नाटक	866
2.	कॉर्बेट नेशनल पार्क	उत्तर प्रदेश	521
3.	कान्हा नेशनल पार्क	मध्य प्रदेश	1,945
4.	मानस नेशनल पार्क	असम	2,840
5.	मेलघाट अभ्यारण्य	महाराष्ट्र	1,618
6.	पालमू नेशनल पार्क	बिहार	928
7.	रणथम्भौर नेशनल पार्क	राजस्थान	825
8.	सिम्पिलिपाल नेशनल पार्क	उड़ीसा	2,750
9.	सुंदरबन नेशनल पार्क	पश्चिम बंगाल	2,585
10.	परियार नेशनल पार्क	केरल	777
11.	सरिस्का नेशनल पार्क	राजस्थान	800
12.	बक्सा अभ्यारण्य	पश्चिम बंगाल	759
13.	इंद्रावती नेशनल पार्क	मध्य प्रदेश	2,799
14.	नागर्जुनसागर श्रीशैलम् अभ्यारण्य	आंध्र प्रदेश	3,568
15.	नामदफा नेशनल पार्क	अरुणाचल प्रदेश	1,985
16.	दुधवा नेशनल पार्क	उत्तर प्रदेश	811
17.	कलाकड़ अभ्यारण्य	तमिलनाडु	800
18.	वाल्मीकि नगर अभ्यारण्य	बिहार	840
		कुल क्षेत्रफल	28,017

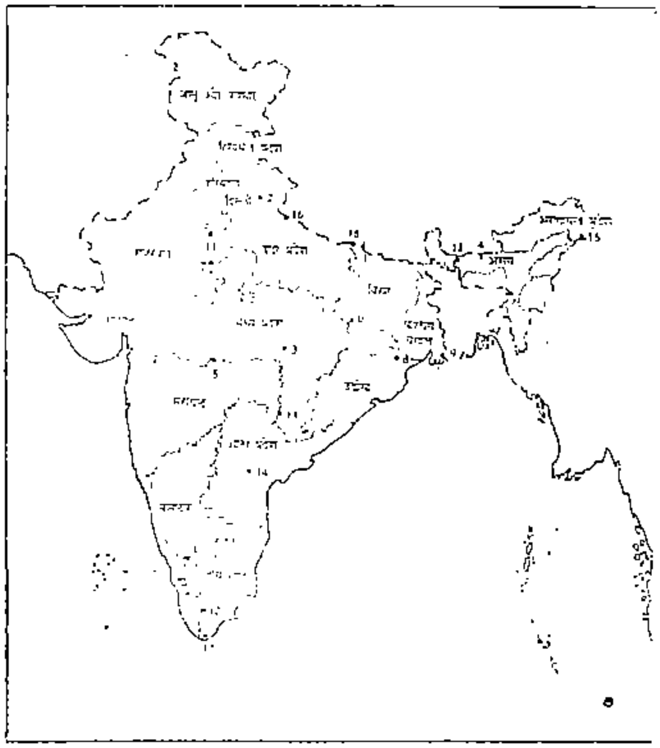

चित्र 14.12 : हमारे देश के बाघ आरक्षणस्थल। इन आरक्षणस्थलों के बारे में अधिक जानकारी के लिए तालिका 14.4 देखिए। अगर यदि आप चित्र में बाघ आरक्षणस्थल देखते हैं जिसकी संख्या-1 है तो इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए तालिका की क्रम संख्या-1 देखिए। इस प्रकार आप बाकी 17 आरक्षण स्थलों के बारे में भी जान सकते हैं।

ख) **भारत के जीवमंडल आरक्षणस्थल कार्यक्रम** : मनुष्य और जीवमंडल कार्यक्रम (Man and Biosphere Programme—MAB) के रूप में यूनेस्को द्वारा 1973 में विश्व-व्यापी स्तर पर जीवमंडल आरक्षण कार्यक्रम (Biosphere Reserve Programme) शुरू किया गया। इसकी वजह से अब तक लगभग 40 देशों में 200 के करीब जीवमंडल आरक्षणालय बनाए जा चुके हैं। हमारे देश में 7 क्षेत्रों में जीवमंडल आरक्षणालय स्थापित किए जा चुके हैं (चित्र 14.11 देखिए)। इनके नाम हैं—*नीलगिरि जीवमंडल आरक्षणालय, मन्नार खाड़ी जीवमंडल आरक्षणालय, सुंदरबन जीवमंडल आरक्षणालय, काजीरंगा जीवमंडल आरक्षणालय, मानस जीवमंडल आरक्षणालय, नंदादेवी जीवमंडल आरक्षणालय, और ग्रेट निकोबार जीवमंडल आरक्षणालय।*

भारत के जीवमंडल आरक्षणालय कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू पारिविकास (ecodevelopment) की संकल्पना (concept) है। इस कार्यक्रम में जल और मृदा संरक्षण द्वारा निम्नीकृत आवासों का पुनः उद्धार, आरक्षणस्थलों के सटे क्षेत्रों में पुनः वनीकरण और ग्राम विकास के अन्य कार्यक्रमों को समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है। इसका लक्ष्य ऐसे संरक्षण कार्यक्रमों में वन में रहने वालों को भी शामिल करना है। पारिविकास कार्यक्रमों से स्थानीय लोगों को लाभ पहुँचता है इसलिए वे परिरक्षण प्रयासों में मित्र बनकर मदद कर सकते हैं।

ग) **चिपको आंदोलन** : यह पेड़ों के रक्षण का एक बेजोड़ और सुप्रसिद्ध संरक्षण आन्दोलन है। इस आंदोलन के शुरू होने का इतिहास इस प्रकार है। चिपको आंदोलन का जन्म चमोली ज़िले में गोपेश्वर के सुदूर पहाड़ी कस्बे में मार्च, 1973 में हुआ। उस भाग्य-निर्णायक दिन को, इलाहाबाद में स्थित एक खेलकूद का सामान बनाने वाली फैक्टरी से कुछ प्रतिनिधिमंडल गाँव के पास 10 ऐश (ash) वृक्ष काटने के लिए गोपेश्वर पहुँचे। गाँव वालों ने उनसे विनम्रतापूर्वक ऐसा न करने के लिए कहा, लेकिन जब ठेकेदार जिद्द पर अड़े रहे तो उनके दिमाग में काटे जाने वाले पेड़ों पर चिपक जाने का विचार कौंधा। इसलिए खेलकूद सामान निर्माताओं को दूसरे दिन खाली हाथ वापस लौटना पड़ा।

कुछ सप्ताह बाद वही ठेकेदार रामपुर फाटा गाँव में आया जो गोपेश्वर से लगभग 80 किलोमीटर दूर है। उसके पास वन विभाग का ताजा आवंटन था। जैसे ही गोपेश्वर के गाँव वालों को इस बात का पता चला, उन्होंने ढोलकों और गीतों के साथ रामपुर फाटा की ओर कूच किया और रास्ते में अपने काफिले में और लोगों को साथ मिलाते गए। वाद-विवाद हुआ और आंदोलनकारियों ने फिर से लक्षित पेड़ों से चिपककर एक बार फिर उन ठेकेदारों के प्रयास को असफल कर दिया।

चिपको आंदोलन 1974 में उस समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा, जब जोशीमठ से लगभग 65 किलोमीटर दूर रेनी गाँव की महिलाएँ एक नाटकीय ढंग से इस आंदोलन से जुड़ीं। एक दिन जब उनके पुरुष रेनी के पास के जंगल की नीलामी के विरोध में प्रदर्शन करने गए हुए थे तब ठेकेदार इस मौके का फायदा उठाने की दृष्टि से गाँव में पेड़ गिराने के लिए आ पहुँचा। पेड़ गिराने आने वाले लोगों की संख्या या उनकी कुल्हाड़ियों से डरे बिना ही रेनी गाँव की महिलाओं ने गौरा देवी के नेतृत्व में गाँव से होकर वन को जाने वाले रास्ते को रोक दिया। गौरा देवी 55 वर्ष की निरक्षर महिला थीं। मार्ग को अवरुद्ध करके खड़ी हुई औरतें यह गाती रहीं—"यह वन हमारी माँ का घर है, हम अपनी पूरी शक्ति से उसकी रक्षा करेंगी"।

चिपको आंदोलन का जन्म पारिस्थितिकीय और आर्थिक पृष्ठभूमि में हुआ। अलकनंदा घाटी जहाँ कि इस आंदोलन ने जन्म लिया, वहाँ 1970 में अभूतपूर्व बाढ़ आई। इस बाढ़ के दुखद परिणाम ने पहाड़वासियों के मन पर गहरी छाप छोड़ी और इसके साथ ही उन्होंने अपने जीवन में वनों की महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय भूमिका को जल्दी-जल्दी समझना शुरू किया।

टिहरी प्रदेश में गोपेश्वर के चांदी प्रसाद भट्ट और सिल्यारा के सुंदर लाल बहुगुणा दो ऐसे नेता हैं जिन्होंने इस आंदोलन को सफल बनाने तथा इसे फैलाने में भी भारी योगदान दिया। उन्होंने महसूस किया कि अगर स्थानीय ग्राम समुदायों को अपने चारों ओर के संसाधनों को नियंत्रित करने का अधिकार है तो उन्हें इन संसाधनों के संरक्षण और विकास का भार भी उठाना होगा। अंततः इन दो नेताओं ने देश के सबसे बड़े वनरोपण (afforestation) कार्यक्रम आयोजित किए। आज चिपको आंदोलन ने बहुत लंबा सफ़र तय कर लिया है और इसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है। *अब यह वृक्षों के रक्षण या पौध रोपण तक सीमित नहीं है बल्कि संपूर्ण पर्यावरण की सुरक्षा तथा परिरक्षण से भी संबंधित है। पर्यावरण में आवास तथा उसका वन्यजीवन भी इसमें शामिल है।*

घ) **ऐपिको आंदोलन (Appiko Movement)** : यह दक्षिण भारत का सफल संरक्षण आंदोलन है, जो कर्नाटक में जन्मा।

कर्नाटक का उत्तर कन्नड़ जो पश्चिम घाटों का भाग है "वन ज़िला" कहलाता है। स्वाधीनता के समय ज़िले का 82 प्रतिशत भाग ऐसे वनों से भरा पड़ा था जहाँ टीक वृक्षों की भरमार थी। इसलिए वहाँ भारी संख्या में वन आधारित उद्योगों की शुरुआत हुई जिसके फलस्वरूप बेहद पेड़ गिराए गए। इसके अलावा, क्षेत्र में कई बड़े-बड़े बांध बनाए गए जिसने लंबी-चौड़ी ज़मीन को निमग्न कर दिया यानी डूबो दिया। इन सभी मिली-जुली गतिविधियों से 1983-84 में वन आवरण 20 प्रतिशत रह गया। फलस्वरूप न केवल क्षेत्र की मृदा निम्नीकृत हुई बल्कि वहाँ का जलतंत्र (hydrology) भी प्रभावित हुआ। उत्तरा कन्नड़ में अनाच्छादन (denudation) ने कृषि और प्रकृति के बीच पारिस्थितिकीय संतुलन नष्ट कर दिया है। सूक्ष्म-जलवायु पर भी इसका भारी प्रभाव महसूस किया गया है। पहले इस क्षेत्र की विशिष्ट सूक्ष्म जलवायु थी, जो काली मिर्च और इलायची जैसी नकदी फसलों के लिए अत्यधिक उपयुक्त थी। लेकिन हाल के कुछ वर्षों में सूक्ष्म-जलवायु में अनियमितता आ गई और इन महत्वपूर्ण पौधों की खेती पर असर पड़ा।

वनों की तबाही से स्थानीय नागरिकों की आंखें खुली। युवा वर्ग विशेष रूप से सीधी कार्रवाई के लिए प्रेरित हुआ। उन्होंने जंगलों को साफ करने वाले लोगों से अपील की। लेकिन उनकी अपील की उपेक्षा की गई। तब गाँव वालों ने लोकप्रिय चिपको आंदोलन शुरू करने की ठानी। उन्होंने पेड़ों की उस तरह रक्षा करने की कसम खाई जिस तरह चिपको आंदोलनकारियों ने वृक्षों की रक्षा की थी। कन्नड़ भाषा में चिपको का पर्यायवाची शब्द "एपिको" है। इसलिए यह एपिको आंदोलन के नाम से पहचाना जाने लगा। इस आंदोलन के अगुवा पांडुरंग हेगड़े हैं। हाल के वर्षों में यह आंदोलन कुर्ग, दक्षिण कन्नड़ और शिमोगा ज़िलों में भी फैल गया है। आंदोलन के तीन मुख्य उद्देश्य कन्नड़ में "उलिसू" (संरक्षित रखना), "बिलिसू" (बढ़ाना) और "बलासू" (विवेकसम्मत उपयोग) के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कुल मिलाकर एपिको आंदोलम ने दक्षिण भारत में और खास तौर से कर्नाटक में संरक्षण के बारे में जन-जागरण का काम किया है और पश्चिम घाट को बचाने में स्थानीय लोगों को शामिल करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

14.7 वन्यजीवन का संरक्षण क्यों?

भग 14.2 से 14.6 तक पढ़ने के बाद आपके मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या मानव गतिविधियों से होने वाला विलोपन वास्तव में कुछ मायने रखता है? जिस तेजी से जातियाँ हाल ही के वर्षों में विलुप्त हुई हैं अगर उसी तरह विलुप्त होती रहीं तो जीवमंडल का क्या बनेगा? विलोपन की चिंता किसलिए? वस्तुत: चिंता के अनेक कारण हैं। इस अंतिम भाग में हम इस बात की चर्चा करेंगे कि हमारे लिए वन्यजीवन का महत्व क्या है।

14.7.1 आर्थिक महत्व

वन्यजीवन संसाधनों के रूप में प्रसिद्ध कुछ वन्य जातियाँ अपनी वास्तविक या संभावित आर्थिक मूल्य के कारण मनुष्यों के लिए महत्वपूर्ण हैं। वन्यजीवन संसाधनों से मनुष्यों को अनेकों लाभकारी पदार्थ मिलते हैं। कुछ लाभ इस प्रकार हैं—खाद्य के स्रोत, मसाले, आस्वाद (flavouring) कारक, सुगंध (सेंट), साबुन, खाना पकाने का तेल, स्नेहक (lubricator) तेल, मोम, रंजक (dyes), प्राकृतिक रबड़, दवाइयाँ और अनेक दूसरे महत्वपूर्ण पदार्थ। आज विश्व-खाद्य का 90 प्रतिशत सप्लाई करने वाले अधिकांश पौधे हैं। वे उष्णकटिबंधीय वनों से पालतू बनाए गए थे। प्रत्यक्ष लाभ पहुँचाने के अतिरिक्त, अनेक वन्यजीवन जातियाँ हमें अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुँचाती हैं। अनेक कीट जातियाँ अनेक खाद्य और अखाद्य जातियों के लिए परागण (pollination) करती हैं। विभिन्न खर-पतवारों और कीट पीड़कों (insect pests) के जीवीय नियंत्रण के लिए परभक्षी कीटों, परजीवियों (parasites) और रोगकारी जीवाणुओं (bacteria) तथा विषाणुओं (viruses) का उपयोग दिनों-दिन बढ़ रहा है। इससे फलों और पेड़ों को होने वाला नुकसान कम हो रहा है।

14.7.2 औषधीय मूल्य

विश्वभर में काम में लाए जा रहे 40 प्रतिशत औषधि (ड्रग्स) पौधों और प्राणियों से निष्कर्षित किए जाने वाले यानी निकाले गए, सक्रिय संघटक (active ingredients) होते हैं। प्राकृतिक रूप से व्युत्पन्न (derived) रसायनों पर आधारित की विश्व-व्यापी बिक्री कम से कम 40 अरब डॉलर की होती है। एस्प्रिन शायद दुनिया की सबसे ज्यादा इस्तेमाल किए जाने वाली औषधि है। यह

उष्णकटिबंधीय विलो वृक्षों की पत्तियों से निष्कर्षित (extracted) एक यौगिक (compound) द्वारा सप्लाई की गई रासायनिक "रूपरेखा" (ब्लूप्रिंट) के अनुसार विकसित किया गया औषध है। पेन्सिलिन एक कवक (फंगस) से बनाई जाती है और जीवाणुओं की कुछ जातियाँ टेट्रासाइक्लिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन जैसे जीवन-रक्षक प्रतिजीवी (एन्टिबायोटिक्स) पैदा करती हैं। उन प्रतिजीवियों और दूसरे 1000 से भी ज्यादा प्रतिजीवियों की मेहरबानी से टाइफॉयड ज्वर, स्कारलेट ज्वर, गिल्टी (bubonic) प्लेग, रोहिणी (डिप्थीरिया), सिफिलिस और सुजाक जैसे रोगों का इलाज अधिक प्रभावशाली तरीके से किया जा सकता है। कुछ फूलों वाले पौधे भी औषधीय यौगिक पैदा करते हैं। उदाहरण के लिए क्विनीन को मलेरिया के उपचार में काम में लाया जाता है (सिन्कोना वृक्ष से), डिजिटेलिस को चिरकाली (chronic) हृदय कष्ट के इलाज में काम में लाया जाता है (फॉक्सग्लव पौधे से), तथा मॉर्फीन और कोकेन दर्द कम करने के काम आते हैं (क्रमशः अफीम खसखस (poppy) पौधे और कोका झाड़ी से प्राप्त होती है)। पौधों से निष्कर्षित औषध श्वेतरक्तता (leukemia) अनेक प्रकार के कैंसर, विभिन्न हृदय विकारों और अतिरक्तदाब (हाइपरटेंशन) के उपचार में काम में लाए जाते हैं। इसलिए अनेक जीवन रक्षक औषधों की खोज सूक्ष्मजीवों, पौधों और प्राणियों के जीवित बचे रहने पर निर्भर करती है। ऐसे सूक्ष्मजीव, पौधे और प्राणी जिन्हें कुछ व्यक्ति महत्वहीन मानते हैं। इसके अतिरिक्त, पृथ्वी के फूल वाले पौधों की 220,000 जातियों में से 5000 जातियों का वैज्ञानिकों ने मूल्यवान औषधों की उपस्थिति के लिए विश्लेषण किया है।

14.7.3 आयुर्विज्ञानीय अनुसंधान

प्राणियों की अनेक जातियों को औषध और टीका (वैक्सीन) परीक्षण करने के लिए तथा मानव स्वास्थ्य और रोग के बारे में ज्ञान बढ़ाने के काम में लाया जाता है। उदाहरण के लिए, नौ पट्टियों वाला अर्मेडिलो कुष्ठ के अध्ययन और इस रोग के लिए टीका तैयार करने के काम में लाया जा रहा है। यह रोग प्राचीन समय से ही मानव के लिए अभिशाप बना हुआ है और इस रोग से मुक्ति कठिन रही है क्योंकि रोग करने वाले जीवाणु की मानवों में तो वृद्धि होती है लेकिन प्रयोगशाला की परिस्थितियों में वृद्धि नहीं होती। टीका तैयार करने में यह एक प्रमुख समस्या थी। लेकिन 1971 में यह पता चला कि नौ पट्टी वाले आर्मेडिलो में यह जीवाणु फलता-फूलता है। भाग्यवश यह जाति हमारे पास है। वैज्ञानिकों को इसका अध्ययन करने से आशा है कि शायद किसी दिन कुष्ठ पर विजय पाने का अवसर मिले।

इस तरह एक संकटग्रस्त स्तनी, फ्लोरिडा मैनेटी को हीमोफीलिया को समझने के लिए काम में लाया जा रहा है। ऐसा विश्वास है कि अनेक नए औषध इस समय पौधों और प्राणियों की अवर्गीकृत जातियों से प्राप्त होंगे। इनमें से अधिकांश पौधे और प्राणी उष्णकटिबंध वनों और महासागरों में स्थित हैं। उदाहरण के लिए, विश्व की समुद्री जातियों का 10 प्रतिशत ऐसा है जिसमें कैंसर-रोधी रसायन हैं।

14.7.4 आनुवंशिक खजाना

मानव के लिए वर्तमान और भविष्य में आर्थिक तथा स्वास्थ्य महत्व के होते हुए भी पृथ्वी की 17 लाख पहचानी गई जातियों में से अधिकांश के बारे में बहुत कम जानकारी है। पौधों की उपयोगिता तय करने के लिए पृथ्वी की पहचानी गई पादप जातियों के 10 प्रतिशत से भी कम का अध्ययन किया गया है। जीवविज्ञानीय और आनुवंशिक विविधता के सदा के लिए खो जाने से नई समस्याओं और अवसरों के प्रति अनुक्रिया व्यक्त करने की हमारी योग्यता को घटा देती है, मानो हमने लाखों उपहार बिना देखे फेंक दिए हों।

विस्तृत जीन पूल (gene pool) भी कृषि वैज्ञानिकों के लिए बहुत ज्यादा रुचि वाला है। सभी पालतू फसलें और पशुधन जो हम आज देखते हैं, वे मूल पौधों और प्राणियों से जन्मे तथा विकसित हुए हैं। अपनी वर्तमान और भावी खाद्य उत्पादन समस्याओं को हल करने के लिए जिन आनुवंशिक विशिष्टताओं की हमें आवश्यकता है उन्हें प्राप्त करने के लिए हमें मूल जातियों की अभी भी आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, गेहूँ और चावल की जिन नई किस्मों (varieties) ने हाल के वर्षों में खाद्य उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि की है वे उन प्रजनन प्रयोगों से पैदा की गई हैं जिनमें चावल और गेहूँ की हजारों मूल और पालतू किस्मों का उपयोग किया गया।

पीड़कों, रोग करने वाले जीव और प्रौद्योगिकी कई वर्षों में विकसित हो पाती हैं इसलिए यह निश्चित है कि अनेक चुनौतियाँ जिनकी हम अभी भविष्यवाणी नहीं कर सकते सामने आएंगी—चुनौतियाँ जिन्हें दूसरी किस्मों और नस्लों (breeds) के आनुवंशिक संसाधनों की आवश्यकता पड़ेगी।

14.7.5 पारिस्थितिकीय महत्व

प्रत्येक जाति का मूल्यवान खजाना तो है ही। इसके अलावा वह दूसरी जाति से परस्पर क्रिया करती हैं और पारितंत्रों के भीतर तथा उनके बीच ऊर्जा एवं पदार्थों के स्थानांतरण में भूमिका निभाती हैं। इसलिए प्रत्येक जाति पारितंत्र के स्थायित्व में योगदान देती है। प्रत्येक जाति पारितंत्र के स्थायित्व को बनाए रखने के लिए पारितंत्र में महत्वपूर्ण है। अगर कुछ जातियाँ विलुप्त हो जाएँ तो विविधता कम हो जाती है और पौधे तथा प्राणी आबादियों पर अनेक प्रतिबंध और संतुलन कम हो जाते हैं। जातियों के नष्ट होने से परभक्षण, परजीविता (parasitism) और स्पर्धा के स्थायीकारी प्रभाव भंग हो जाते हैं और पारितंत्र बाधाओं के प्रति अधिक असुरक्षित हो जाता है।

हालाँकि हम पादप जाति की अपेक्षा प्राणी जाति के विलोपन पर ज्यादा शोक मनाते हैं, लेकिन पारितंत्र स्थायित्व के लिए पादप जातियों का विलोपन प्रायः अधिक गंभीर होता है। पौधे खाद्य जाल (food-web) के आधार में स्थित होते हैं इसलिए किसी अकेली पादप जाति के विलोपन से 10 से 20 तक प्राणी जातियों का विलोपन हो सकता है क्योंकि वे प्राणी जातियाँ अपने जीवनकाल के उस समय पर खाद्य या आश्रय के लिए उस पादप जाति पर निर्भर थीं।

14.7.6 सौंदर्यात्मक और मनोरंजनात्मक महत्व

बहुत से लोगों के लिए अनेक वन्य जातियाँ सुंदरता, कौतूहल, आनंद और मनोरंजन के साधन हैं—शरद ऋतु में पत्तियों को रंग बदलते हुए देखना, वन्य पुष्पों के सौरभ को सूंघना, उकाब को सिर के ऊपर उड़ते देखना कुछ ऐसे आनंद-भरे अनुभव हैं जिनकी व्याख्या शब्दों में नहीं की जा सकती और जिन्हें पैसों से खरीदा भी नहीं जा सकता।

इन सारी बातों का निचोड़ यह है कि हमें हमारी पृथ्वी अपने पूर्वजों से मिली है और हम इसे अपने बच्चों को दे जाएंगे। हम सभी को जो संरक्षण में विश्वास रखते हैं, अपने जीवित और अजीवित दोनों तरह के प्राकृतिक संसाधनों को बचाना चाहिए और हमें जो भी विरासत में मिला है उसका निखरा हुआ रूप आने वाली पीढ़ी को सौंपना चाहिए।

बोध प्रश्न 4

क) उपभाग 14.6 पढ़ते समय आपने देखा होगा कि निम्नलिखित शब्दों का बार-बार उपयोग हुआ है :

संरक्षण (conservation), आवास विनाश (habitat destruction), क्रांतिक संसाधन (critical resources), बंदी प्रजनन (captive breeding) और जीवमंडल आरक्षणालय (biosphere resources)

अपने शब्दों में इनके अर्थ लिखिए। अपनी व्याख्या नीचे दी गई जगह पर लिखिए :

संरक्षण ....

....

....

आवास विनाश ....

....

....

क्रांतिक संसाधन ....

....

....

बंदी प्रजनन ....

....

....

जीवमंडल आरक्षणालय ....

....

....

ख) वन्यजीवन संरक्षित रखने की आवश्यकता क्यों है? मानव के दृष्टिकोण से व्याख्या कीजिए।

अपने उत्तर शीर्षकों में लिखिए और साथ में नीचे दी गई जगह में संक्षिप्त वर्णन दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

14.8 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि :

- पारितंत्र का निम्नीकरण अनेक मानव गतिविधियों से होता है। जैसे कि–i) वनोन्मूलन (झूम खेती, अनेक प्रकार की विकास परियोजनाएँ, ईंधन की आवश्यकता, उद्योगों के लिए कच्चा माल, पीड़क, रोग, प्राकृतिक आपदाएँ, और रक्षा गतिविधियों के कारण) ii) पालतू पशुओं द्वारा अतिचराई; iii) कृषि गतिविधियाँ; iv) खनन और सम्बद्ध गतिविधियाँ; v) शहरीकरण।
- वन्यजीवन का अर्थ सभी प्रकार के जीवन से है जिसमें पारितंत्र के सूक्ष्मजीव शामिल हैं जो मानव की देखभाल के बिना अपने ही दम पर वृद्धि करते हैं और जीवित रहते हैं।
- वन्यजीवन के अस्तित्व को इनसे खतरा है–i) मनुष्य की आखेटक गतिविधियाँ; ii) वन्यजीवन के प्राकृतिक आवासों को समाप्त करना या उन्हें अस्त-व्यस्त करना; iii) जातियों का चयनात्मक विनाश; iv) पालतू बनाना; v) किसी पारितंत्र में नई जाति का उपस्थापन या प्रवेशन; vi) पीड़कनाशियों का अत्यधिक उपयोग; vii) विभिन्न प्रकार के पीड़क; viii) आयुर्विज्ञान-अनुसंधान में काम लाने के लिए और चिड़ियाघरों में संग्रह के लिए जातियों की भारी माँग।
- विलुप्त जातियाँ वे हैं जो पर्यावरण की बदली हुई परिस्थितियों में जीवित न बच सकीं। इसलिए सभी नष्ट हो गईं। संकटग्रस्त जातियाँ वे जातियाँ हैं जिनका पर्यावरण अगर बिगड़ता है या उनकी निर्णायक आवश्यकताएँ पूरी नहीं हुई तो वे भी विलुप्त हो सकती हैं। संकटापन्न जातियाँ चिंता का विषय हैं क्योंकि उनकी संख्या कम है या/और उनकी गृहभूमि बहुत ही छोटी है। अवक्षयित जातियाँ वे जातियाँ हैं जिनकी संख्या हाल के वर्षों में घटी है और यह कम होना अभी जारी है। अनिर्धारित जातियाँ वे जातियाँ हैं जिनके बारे में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध न होने के कारण उनकी स्थिति का सही-सही आकलन नहीं किया जा सकता। खतरे से बाहर जातियाँ वे जातियाँ हैं जिनका अस्तित्व खतरे में था, लेकिन अब वे सुरक्षित हैं।
- रेड डाटा बुक संकटाग्रस्त जातियों की विभिन्न श्रेणियों के बारे में जानकारी देती है।
- वन्यजीवन संरक्षण में निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्रवाई करनी पड़ती है–आवास संरक्षण, क्रांतिक संसाधनों की व्यवस्था, बंदी प्रजनन कार्यक्रम, आरक्षणस्थलों का विकास, विदेशी जातियों के उपस्थापन/प्रवेशन पर नियंत्रण, प्रदूषण पर रोक, अनुसंधान और प्रलेखन, वैध कार्रवाई, और अंत में जो किसी भी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है–वह है जन सहभागिता और जागरूकता।
- हमारे देश में संरक्षण के प्रति परंपरागत और आधुनिक दोनों प्रकार का चिंतन है। चिपको आंदोलन, एपिको आंदोलन, बाघ परियोजना, जीवमंडल आरक्षणालय कार्यक्रम, पारितंत्रों और स्वयं जीवन के संरक्षण के प्रति हमारी वचनबद्धता के प्रमाण हैं।
- वन्यजीवन का संरक्षण निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है : उनका आर्थिक महत्व, औषधीय मूल्य, आयुर्विज्ञान-अनुसंधान में उपयोग, संभावित आनुवंशिक खजाना, पारिस्थितिकीय भूमिका और सौंदर्यात्मक तथा मनोरंजनात्मक महत्व।

14.9 अंत में कुछ प्रश्न

1) निम्नलिखित प्रत्येक शब्द के बारे में एक महत्वपूर्ण पंक्ति लिखिए :

i) झूम खेती ....

ii) चिपको आन्दोलन ....

iii) संकटापन्न ....

iv) सूक्ष्मजलवायु ....

v) मॉर्गेस (Morges) ....

vi) आरक्षणस्थल (Reserves) ....

vii) पीड़कनाशी ....

viii) निस्पंदन ....

ix) एपिको आंदोलन ....

x) गोंद ....

xi) खनन ....

xii) हीमोफीलिया ....

xiii) रेज़िन ....

xiv) होर्नाडे (Hornaday) ....

xv) दुर्लभ (rare) जातियाँ ....

xvi) वनोन्मूलन ....

xvii) कृषि रसायन ....

xviii) विशेषक्षेत्री जातियाँ (endemic species) ....

xix) डोडो ....

xx) विदेशी जातियाँ (alien species) ....

14.10 उत्तर

बोध प्रश्न

1) पारितंत्र इस प्रकार की गतिविधियों से प्रभावित होते हैं

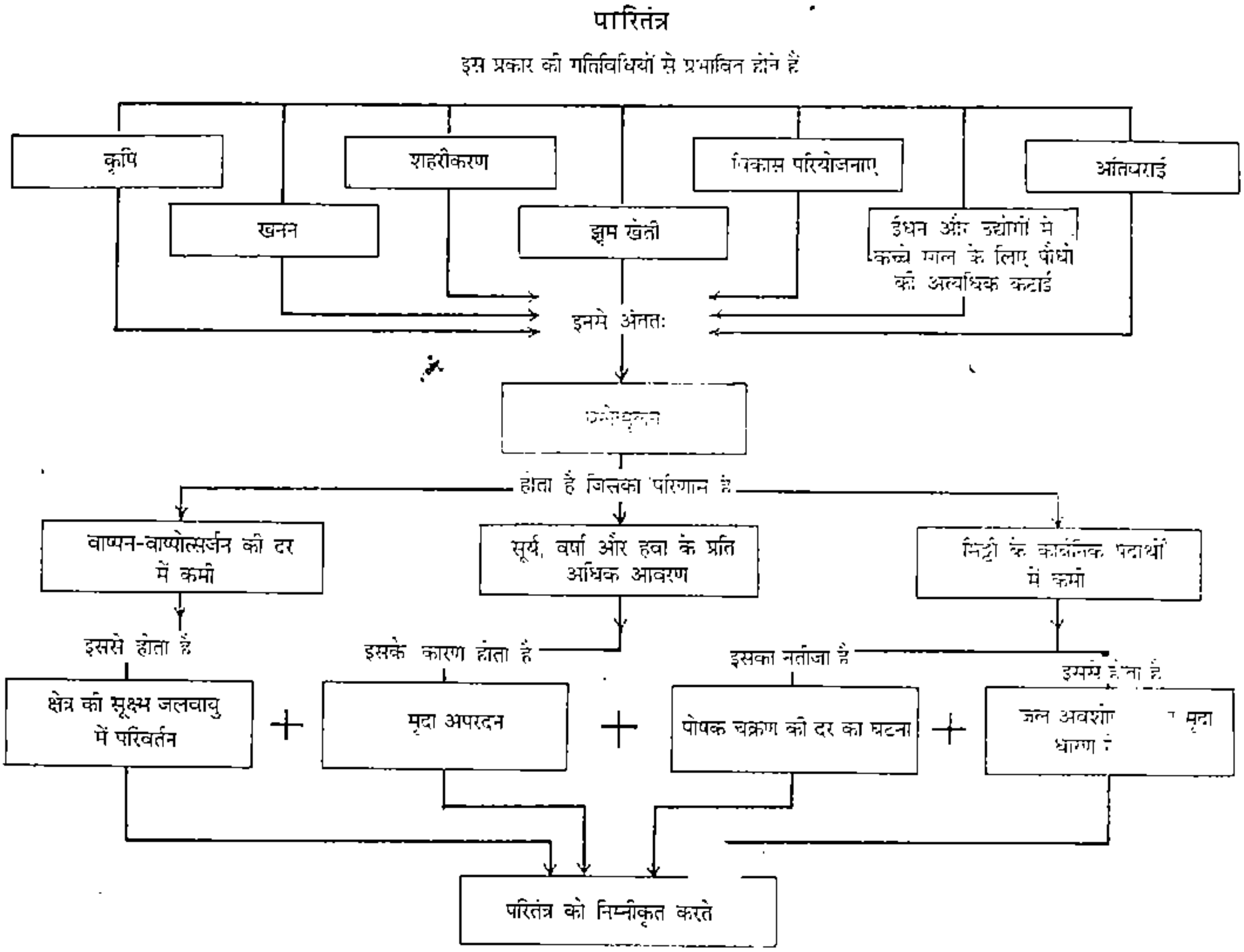

2) क) च

   ख) क) iii
      ख) vi
      ग) v
      घ) i
      ङ) iv
      च) ii
      छ) v
      ज) vii

3) i) च
   ii) घ
   iii) क
   iv) ङ

4) क) अगर आपको कोई बात पूरी तरह समझ न आई हो तो आपको उपभाग 14.6 को दोबारा पढ़ने की सलाह दी जाती है।

ख) प्रमुख पहलुओं और उनके वर्णन के लिए भाग 14.7 देखिए।

अंत में कुछ प्रश्न

i) झूम–स्थानांतरण खेती, देश के अनेक भागों में प्रचलित

ii) चिपको–संरक्षण के लिए एक आंदोलन, जो उत्तरी भारत में शुरू हुआ।

iii) संकटग्रस्त–विलोपन का खतरा जिनके बहुत पास पहुँच गया वे जातियाँ।

iv) सूक्ष्मजलवायु–वनोन्मूलन का जिस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

v) मॉर्गेस–स्विटज़रलैंड में, जहाँ अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (International Union of Conservation of Nature) स्थित है।

vi) आरक्षणस्थल–वे क्षेत्र जिन्हें वहाँ के वन्यजीवन के संरक्षण के लिए निर्दिष्ट किया गया है।

vii) पीड़कनाशी–इसके अंधाधुंध उपयोग से पारितंत्र और उसमें पाए जाने वाले जीवों को क्षति पहुँचती है।

viii) निस्पंदन–अनेक सिंचाई परियोजनाओं से संबद्ध समस्या और पर्यावरण का निम्नीकरण होता है।

ix) एपिको–दक्षिण भारत का संरक्षण आंदोलन जो कर्नाटक में प्रारंभ हुआ।

x) गोंद–महत्वपूर्ण वन उत्पादन।

xi) खनन–खनिज और अयस्क (ore) निकालने के लिए पृथ्वी की पपड़ी को हटाना जिससे अंततः पारितंत्र का निम्नीकरण होता है।

xii) हीमोफीलिया–फ्लोरिडा मानैटी एक संकटापन्न जाति जो कि इस बीमारी पर अनुसंधान के लिए काम में लाया जा रहा है।

xiii) रेज़िन–एक वाणिज्यिक महत्वपूर्ण उत्पादन।

xiv) होर्नाडे–वन्यजीवन शब्द की उत्पत्ति से सम्बद्ध।

xv) दुर्लभ–जातियाँ जो संख्या में कम हैं अथवा विशेष प्रकार के पर्यावरण में पाई जाती हैं।

xvi) वनोन्मूलन–अनेक साधनों से किसी क्षेत्र के वनस्पति आवरण (vegetation cover) को हटाना/नष्ट करना।

xvii) कृषि रसायन–पीड़कनाशी, उवर्रक आदि जिसके विवेकहीन उपयोग से पारितंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

xviii) विशेषक्षेत्री/स्थानिक (endemic)–विशेष प्रकार के पर्यावरणीय प्रतिबंधित क्षेत्र में ही रहने वाली जातियाँ।

xix) डोडो–मॉरीशस का एक विलुप्त पक्षी।

xx) विदेशी जातियाँ–नए क्षेत्रों में उपस्थापित/प्रवेशित जातियाँ, जिनमें से कुछ ने वहाँ पहले से मौजूद जातियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है।

इकाई 15 पर्यावरण : प्रदूषण, कारण, परिणाम तथा नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
15.2 प्रदूषण
15.3 वायु प्रदूषण
वायु प्रदूषण के कारण
वायु प्रदूषण के परिणाम
मौसम-संबंधी घटक तथा वायु प्रदूषण
15.4 जल प्रदूषण
जल प्रदूषण के कारक
जल प्रदूषण के परिणाम
भौमजल प्रदूषण
समुद्रीय प्रदूषण
15.5 भूमि प्रदूषण
15.6 ध्वनि प्रदूषण
ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव
15.7 विकिरण प्रदूषण
15.8 आर्थिक पहलू तथा प्रदूषण नियंत्रण
15.9 सारांश
15.10 अंत में कुछ प्रश्न
15.11 उत्तर

15.1 प्रस्तावना

औद्योगिक क्रांति के बाद से मानव समाज ने तकनीकी तथा औद्योगिक क्षेत्रों में बहुत उन्नति की है। कोयला उत्पादन, ऊर्जा उत्पादन, शैल रसायनिकों, उर्वरकों, पीड़कनाशी तथा रसायन उद्योगों में काफी वृद्धि हुई है और भविष्य में इनमें और भी वृद्धि होने की आशा है। प्रगति के साथ-साथ पर्यावरण का भी काफी अपक्षीणन हुआ है जो कि उद्योगों तथा अन्य मानव कार्यकलापों से अधिक मात्रा में उत्पन्न हुए गैसीय, तरल और ठोस अपशिष्टों के कारण हैं। पर्यावरणीय प्रदूषण हमारे जीव मंडल में जीवन को आश्रय देने वाली व्यवस्थाओं (life support systems) को क्षति पहुंचा कर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

इस इकाई में हम इस बात पर प्रकाश डालेंगे कि किस प्रकार मानव कार्यकलाप वायु, जल, तथा मृदा को प्रदूषित करके पर्यावरण का अपक्षय करते हैं। हमारे पर्यावरण में अधिक तेज ध्वनि तथा विकिरण भी हानिकारक हैं तथा इन्हें ध्वनि प्रदूषण तथा विकिरण प्रदूषण कहते हैं। हम प्रदूषकों के मानव स्वास्थ्य, पादप पारिस्थितिकी तंत्र, पदार्थों तथा भूमंडलीय जलवायु पर पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा करेंगे। साथ ही ध्वनि तथा विकिरण प्रदूषणों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर भी चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- मुख्य प्रदूषकों तथा उनके स्रोतों की सूची बना सकेंगे,
- मानव कार्यकलापों की सूची बना सकेंगे जिनसे प्रदूषण तथा पर्यावरण का अपकर्षण होता है,
- स्वास्थ्य, पौधों, पारिस्थितिकी तंत्र तथा जलवायु पर विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों के प्रभावों को उदाहरण सहित स्पष्ट कर सकेंगे,
- जल तथा भूमि प्रदूषण के कारणों को बता सकेंगे तथा झीलों, नदियों, भौमजल तथा महासागरों के प्रदूषण की समस्याओं की सोदाहरण व्याख्या कर सकेंगे,
- ध्वनि तथा विकिरण प्रदूषण के कारण और परिणामों के बारे में बता सकेंगे,
- प्रदूषण के आर्थिक पहलू तथा नियंत्रण पर विचार विमर्श कर सकेंगे।

15.2 प्रदूषण

आइये, सबसे पहले प्रदूषण शब्द को परिभाषित करें। हमारे पर्यावरण की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक विशेषताओं में किसी प्रकार के अवांछनीय परिवर्तन जो वायु, जल और मृदा में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानव या अन्य जातियों तथा हमारे जीव मंडल में जीवन को आश्रय देने वाली व्यवस्थाओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकते हैं या करेंगे को प्रदूषण कहते हैं वह पदार्थ जिसे किसी संसाधन में मिलाने से संसाधन की उपयोगिता कम हो जाती है, **प्रदूषक** कहलाता है।

प्रदूषकों को, मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बांटा गया है। 1) जैवविखंडनीय (biodegradable) 2) जैवविखंडन अयोग्य (non-biodegradable)। जैसा कि आपने एफ एस टी-1 की इकाई 16 में पढ़ा है जैवविखंडन अयोग्य प्रदूषण जैसे भारी धातु, पीड़कनाशी, आहार शृंखला से गुजरते हुए उच्चतर पोषण रीति के जीवों में हानिकारक स्तर तक बढ़ सकते हैं। इनमें से कुछ दूसरे यौगिकों से मिलकर विषैले पदार्थ बनाते हैं। तथापि जैव विखंडनीय पदार्थ जैसे मानव तथा पशु अपशिष्ट, कृषि आधारित अवशेष तथा उर्वरक भी खतरनाक साबित हो सकते हैं यदि उनकी मात्रा या उनका योगदान पर्यावरण की आत्मसात्कारी क्षमता से अधिक हो जाये।

15.3 वायु प्रदूषण

वायु प्रदूषण से संभावित खतरे तब सामने आये जब अमरीका, लंदन तथा जापान में कुछ गंभीर घटनाओं में मानव क्षति हुई। सन् 1948 में अमरीका के डोनारा नगर में स्टील मिलों तथा जिंक प्रगालक (smelter) संयंत्रों द्वारा पर्यावरण में उत्सर्जित प्रदूषकों के लम्बे समय तक वायुमंडल में फंसे रहने के फलस्वरूप 20 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई तथा हजारों व्यक्ति बीमार पड़ गये। सन् 1952 में लंदन में सल्फ्यूरिक अम्ल की वाष्प, कणिकीय पदार्थ तथा सल्फ़र डाइऑक्साइड गैस का आवरण बनने के कारण शहर में लगभग 2500 लोगों की मृत्यु हो गई। जैसा कि आप सब जानते हैं कि इतिहास की एक परम दुखदाई घटना 3 दिसम्बर 1984 के दिन भोपाल के यूनियन कार्बाइड प्लान्ट में घटी जब पीड़कनाशी सेविन (sevin) के संयोजन में काम आने वाली लगभग 36 टन मेथिल आइसोसायनेट (methyl isocyanate—MIC) नामक एक बहुत जहरीली गैस मध्यरात्रि के बाद, भंडारण कुंड से अचानक रिसने लगी तथा बादल तथा धुंध की तरह शहर भर में फैल गई। इस जहरीली गैस ने नींद में ही लोगों को जकड़ लिया तथा वे दम घोटने वाले दर्द, आतंक तथा भय से जाग गये। अनुमान है कि लगभग 10,000 लोगों की मृत्यु हो गई तथा लगभग 2,00,000 लोग क्षतिग्रस्त हो गये। जीवित क्षतिग्रस्त लोगों को स्थाई रूप से श्वसन बीमारियां तथा अपूर्णनीय दृष्टिक्षति का कष्ट भोगना पड़ रहा है।

15.3.1 वायु प्रदूषण के कारण

आपने इकाई 2 में पर्यावरण के संघटन, उसके मुख्य और गौण घटकों के बारे में पढ़ा था। हजारों वर्षों से पर्यावरण का यह संघटन वैसा ही बना हुआ है। तथापि केवल पिछले 100 से 200 वर्षों में जो परिवर्तन हुए हैं उनका जीव मंडल पर प्रभाव भयभीत कर देने वाला है। वायु के मुख्य घटक नाइट्रोजन (N_2), ऑक्सीजन (O_2) और निष्क्रिय गैसें, जो कि लगभग 99.9 प्रतिशत हैं, में परिवर्तन नहीं हुआ है। परन्तु कुछ गौण तथा अवशेष घटक जैसे सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) नाइट्रोजन के ऑक्साइड (N_2O, NO, NO_2 (NO_x) मिथेन (CH_4), क्लोरोफ़्लोरोकार्बन (CFC_s) के साथ-साथ कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), बिना जले हाइड्रोकार्बन व निलंबित कणिकीय पदार्थ (suspended particulate matter—SPM) बढ़ गये हैं। आप पढ़ चुके हैं कि ये मुख्य वायु प्रदूषक हैं जो वायु की गुणवत्ता में ह्रास का कारण हैं।

नाइट्रोजन के विभिन्न ऑक्साइडों को NO_x लिखा जा सकता है

वायु प्रदूषण की समस्या को समझने के लिए हमें निम्नलिखित बातों का पता लगाना चाहिए।

1) प्रदूषण का स्रोत
2) पिछले कुछ वर्षों में उत्सर्जन में वृद्धि के कारण
3) भविष्य में उनका स्वरूप

अंत में हमें वायु प्रदूषण से बचने तथा उसे नियंत्रित करने के उपाय ढूंढने चाहिए।

नीचे दिये गये आरेख में मुख्य वायु प्रदूषक तथा उनके स्रोत दिखाये गये हैं।

प्रदूषक	स्रोत
कार्बन के ऑक्साइड CO_2 तथा CO	कोयला तथा तेल का उपयोग ऊर्जा उत्पादन, विनिर्माणी तथा परिवहन के लिए बायोमास जलाना - चरागाह तथा कृषि भूमि के लिए वन तथा सवाना घास के मैदान जलाना
सल्फर के ऑक्साइड SO_2 तथा SO_3	सल्फ़रयुक्त कोयला जलाना अयस्क प्रगलन - Fe व Cu जैसी धातुओं के सल्फ़ाइड-अयस्क से निष्कर्षण औद्योगिक प्रक्रियाएं म्युनिसिपल कूड़ा भस्म करना
नाइट्रोजन के ऑक्साइड N_2O, NO तथा NO_2	परिवहन वाहनों के लिए पेट्रोल और डीज़ल का प्रयोग अचल स्रोतों द्वारा ईंधन जलाना नाइट्रोजन उर्वरक बायोमास जलाना
मिथेन तथा अन्य हाइड्रोकार्बन	जीवाश्मी ईंधन जलाना धान की खेती घरेलू पशु पालन वन तथा सवाना घास के मैदान जलाना म्युनिसिपल भूमि भराव वाहित मल के सूक्ष्म जैविक कार्य कलाप
निलम्बित कणिकीय पदार्थ	कोयले के जलने से कालिख और धुंआ पैदा होना परिवहन वाहन से मिट्टी उड़ना तथा धुंए का मोचन भवन निर्माण पत्थर तोड़ना
क्लोरोफ्लोरो कार्बन तथा क्लोरो यौगिक	प्रशीतक, वायुविलय स्प्रे, त्वरित खाद्य के डिब्बे (जो बाद में फेंक दिये जाते हैं) बनाने के लिए फ़ोम प्लास्टिक
फोटो रासायनिक ऑक्सीकारक ओज़ोन तथा PAN	निम्न परिवर्ती मंडल में फ़ोटो रासायनिक प्रतिक्रियायें, नाइट्रोजन के ऑक्साइडों तथा हाइड्रोकार्बन के साथ आक्सीजन की प्रतिक्रिया

चित्र 15.1 : मुख्य वायु प्रदूषक तथा उनके स्रोत

चित्र 15.1 में दी गई प्रदूषकों की सूची में हजारों खतरनाक जानलेवा रसायन तथा उनके विषैले माध्यमिक, जहरीली धातुओं का धुआं जैसे सीसा, पारा तथा कैडमियम शामिल नहीं हैं। इनके कारण सीमित प्रदूषण होता है जो आसपास के क्षेत्र तथा वहां के लोगों को प्रभावित करता है।

दी गई सूची से आप देख सकते हैं कि मौटे तौर पर वायु प्रदूषकों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

1) **प्राथमिक प्रदूषण** : वे प्रदूषक जो किसी नैसर्गिक या मानव कार्यकलाप के परिणामस्वरूप उत्पन्न हों व पर्यावरण में छोड़े गये हों जैसे कि कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन तथा निलंबित कणिकीय पदार्थ।

2) **द्वितीयक प्रदूषण** : ये वायुमंडल में प्राथमिक प्रदूषकों की वायुमंडलीय गैसों और नमी से रासायनिक अन्योन्य क्रिया द्वारा संयोजित होते हैं। यह क्रिया सूर्य की रोशनी से उत्प्रेरित होती है। उदाहरण के लिए ओज़ोन, परॉक्सिऐसिलनाइट्रेट (PAN) ऐल्डिहाइड, सल्फ़्यूरिक अम्ल तथा नाइट्रिक अम्ल। ये निम्नलिखित अभिक्रियाओं से बनते हैं

$$NO_2 + h\nu \text{ (light)} \longrightarrow NO + O$$

$$O_2 + O \longrightarrow O_3$$

$$\text{HC (Hydrocarbon)} + O \longrightarrow \underset{\text{(Hydrocarbon radical)}}{R'} + \underset{\text{(aldehyde)}}{RCHO}$$

$$HC + O_3 \longrightarrow RCO_2 + RCHO$$

$$RCO_2 + NO \longrightarrow RCO + NO_2$$

$$RCO + NO_2 + O_2 \longrightarrow \underset{\text{(Peroxyacyl nitrate)}}{R - \overset{\overset{O}{||}}{C} - O - O - NO_2}$$

$$SO_2 + O \longrightarrow SO_3$$

$$SO_3 + H_2O \longrightarrow H_2SO_4 \text{ (sulphuric acid)}$$

$$NO + O \longrightarrow NO_2$$

$$NO_2 + H_2O \longrightarrow HNO_3$$

प्रदूषण के स्रोत चल (mobile) या अचल (stationary) हो सकते हैं। बिजली संयंत्र तथा विनिर्माणी इकाइयां अचल स्रोतों के उदाहरण हैं जबकि परिवहन वाहन चल यानि गतिशील स्रोत हैं। अचल स्रोतों द्वारा होने वाला प्रदूषण-स्थान, उत्सर्जन स्तर तथा स्रोत से उत्सर्जन की मात्रा पर निर्भर करता है। इसलिए उस क्षेत्र में वांछित वायु मानकों की गुणवत्ता के अनुसार अचल स्रोतों को संस्थापित व नियंत्रित किया जा सकता है। चल स्रोतों से होने वाले प्रदूषण को नियंत्रित करना कठिन है। तथापि मोटर वाहनों की उचित देखरेख तथा इंजन के डिज़ाइन में सुधार कर इसकी मात्रा काफ़ी कम की जा सकती है।

वायु प्रदूषण के मुख्य कारकों में निम्नलिखित मानव कार्यकलाप शामिल हैं : i) जीवाश्मीय ईंधन, ii) मोटर परिवहन, iii) आधुनिक कृषि एवम् iv) उद्योग

जीवाश्मीय ईंधन से हमें खाना पकाने, बिजली उत्पन्न करने, परिवहन, विनिर्माण, घरों को ठंडा, गर्म व प्रकाशित करने तथा कई अन्य कार्यों के लिए ऊर्जा मिलती है। जीवाश्म ईंधनों में कोयला तथा तेल ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। जैसा कि हम जानते हैं कोयला दहन से CO_2 बनती है। अधूरे दहन से CO तथा कई हाइड्रोकार्बन जिनमें मेथैन तथा कालिख (soot, विभिन्न आकार के कार्बन के कण—बड़ों से धूलिकण तथा छोटों से धुआं बनता है) शामिल है। गैस के अलावा अधिकांश जीवाश्म ईंधनों में सल्फ़र तथा न जलने योग्य संदूषक होते हैं। इसी कारण कोयला जलाने से SO_2 तथा राख भी बनती है। लगभग 60% SO_2 का उत्सर्जन कोयला जलाने के क़ारण होता है।

आप अक्सर देखते हैं कि ट्रकों, बसों, कारों, दुपहिए तथा तिपहिए स्कूटरों की निकास नली से काला धुआं निकलता है। परिवहन वाहनों से NO_x तथा कार्बनमोनोक्साइड तथा हाइड्रोकार्बन उत्सर्जित होते हैं। इनमें सीसे के यौगिक भी निकलते हैं क्योंकि ट्रेटामेथिल सीसा (tetramethyl lead) अपस्फोटरोधी (antiknock) पदार्थ के रूप में इंजन की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए पेट्रोल में मिलाया जाता है।

$$\underset{\text{अमोनियम नाइट्रेट}}{NH_4NO_3} - \underset{\text{नाइट्रस ऑक्साइड}}{N_2O} + 2H_2O$$

कृषि संबंधी कार्यकलाप भी वायु प्रदूषण का एक प्रमुख कारण हैं। चरागाह तथा खेतों के जगह प्राप्त करने के लिए विश्वभर में जंगल जलाये जाते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा वायुमंडल में 60-65%,

अमेरिका के भू वैज्ञानिक सर्वेक्षण एम.किंग ह्यूबर्ट के अनुमान के अनुसार 200 से 300 वर्ष तक ही संसार के प्रमुख औद्योगिक ऊर्जा स्रोत के रूप में कोयले का प्रयोग किया जा सकेगा तथा पेट्रोलियम अगले 70-80 वर्ष तक ही समाप्त हो जाएगा।

कार्बनडाइऑक्साइड प्रवेश करती है। धान के खेतों से, मवेशियों की आंतों से तथा जैवमात्रा (biomass) को जलाने से 40%, मेथैन गैस उत्पन्न होती है नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) उत्पन्न होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य के सभी प्राथमिक व्यवसायों–कृषि, पशुपालन, लकड़ी काटने, खान खोदने आदि के कारण वायु प्रदूषित होती है।

औद्योगिक कार्यकलाप विशेषकर कच्ची धातु प्रगलन से काफ़ी मात्रा में सल्फ़र डाइऑक्साइड उत्पन्न होती है। विनिर्माण इकाइयों से हज़ारों खतरनाक रसायन उत्पन्न होते हैं। इन रसायनों में सबसे खतरनाक क्लोरोफ़्लोरो कार्बन है जो जैवविखंडन अयोग्य है तथा इनका जीवनकाल 7 से 10 वर्ष तक लम्बा होता है। वायुमंडल से बाहर जाने से पहले 10 क्लोरीन परमाणु, ओज़ोन के दस लाख अणुओं को नष्ट कर देते हैं।

रसायन संयंत्र औद्योगिक उत्सर्जन का एक बहुत बड़ा स्रोत है। लगभग 35% विषैली प्रदूषक गैसें उनसे उत्पन्न होती हैं। अन्य प्रमुख स्रोत कागज, प्लास्टिक, रबड़ तथा स्वचालित उद्योग हैं। रसायन विनिर्माणी इकाइयां हजारों रसायनों के साथ ही अनेक उपोत्पाद (by-products) भी उत्पन्न करती हैं जो उपयोगी हो भी सकते हैं और नहीं भी। इनमें से अनेकों उत्पाद कैंसरजन्य होते हैं। तम्बाकू का धुआं, ऐस्बेटॉस के तंतु, नाइट्रोसोऐमीन, डाइऑक्सेन, पॉलिक्लोरीनेटेड बाइफ़ेनिल (biphenyl) और पीड़कनाशी पर्यावरण के प्रमुख संदूषक हैं।

भारत के विभिन्न शहरों में परियोजित वाहन संख्या तथा प्रदूषण भार

शहर का नाम	वाहन संख्या	प्रदूषण भार टन/प्रतिदिन
दिल्ली	1599000	1319.96
बम्बई	576400	460.80
कलकत्ता	453400	357.35
हैदराबाद	453133	357.13
अहमदाबाद	414000	325.48
मद्रास	415000	325.06
बंगलौर	391500	305.30
पुणे	279500	211.10
जयपुर	214270	156.15
लखनऊ	192600	138.02
कानपुर	160000	110.61
नागपुर	141500	95.05
कुल	7219233	4162.11

स्रोत : केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड document (CPCB) 1988-1989

प्रदूषण की तीव्रता को mg/m^3 अथवा ppm में व्यक्त किया जाता है। ppm का तात्पर्य है एक घन मीटर में कितने घन सेंटीमीटर गैस है। दोनों के बीच सम्बन्ध इस प्रकार है।

$$ppm = \frac{mg/m^3 \times 22.4}{\text{प्रदूषक का अणु भार}}$$

निलंबित कणिकीय पदार्थ एक मुख्य वायु प्रदूषक है। विभिन्न स्रोतों से बारीक कण उत्पन्न होते हैं। जैसे बिजली के संयंत्रों, पेट्रो कोक, तेल शोधन शालाओं से कोयले की धूल, सीमेंट फैक्टरियों से सीमेंट की धूल, पत्थर तोड़ने तथा भवन निर्माण से सिलिका की धूल आदि। परिवहन वाहनों द्वारा भी काफी मात्रा में धूल उड़ती है। भारत में कोयले से चलने वाले पावर संयंत्रों से प्रतिवर्ष लगभग 800 लाख टन फ़्लाई ऐश (fly ash) उत्पन्न होती है। देश में, 10,000 से भी अधिक पत्थर तोड़ने वाली मशीनें हैं। सब मिलाकर लगभग 1000 टन पत्थर की धूल प्रतिदिन परिवेश में फैलती है। इनके कण काफी देर तक वायु में रह सकते हैं।

प्राक्कलनों (estimates) से पता चला है कि इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही वायु प्रदूषणों का स्तर बढ़ रहा है। यदि इसका सख्ती से नियंत्रण नहीं किया गया तो यह बढ़ता ही जायेगा। क्या आप सोच सकते हैं कि इसका क्या कारण है?

किसी राष्ट्र की उन्नति तथा आर्थिक विकास ऊर्जा की उपलब्धता पर निर्भर करती हैं। अमरीका, जर्मनी, जापान तथा कुछ अन्य औद्योगीकृत राष्ट्रों के रहन सहन का जो उच्च स्तर बना हुआ है, वह अधिकांशतः उनकी ऊर्जा तक पहुंच तथा उपभोग के कारण है। वे संसार की वाणिज्यिक ऊर्जा (commercial energy) के एक बड़े भाग करीब 70% से भी अधिक का उपयोग करते हैं। विकासशील देशों के हिस्से में बहुत कम ऊर्जा है। अब संसार में ऊर्जा की मांग बढ़ रही है। सन् 1900 से 1988 में संसार की ऊर्जा की खपत 21 एक्ज़ाजूल (exajoule) से बढ़कर 318 एक्ज़ाजूल (एक्ज़ाजूल = 10^{18} जूल) हो गई। ऊर्जा का 88% भाग कोयला, तेल तथा प्राकृतिक गैस से प्राप्त होता है व शेष भाग नाभिकीय ईंधन शक्ति संयंत्रों से। अब विकासशील देशों में भी ऊर्जा की खपत बढ़ रही है। ऊर्जा उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ CO_2, NO_x, SO_2, CO तथा कणिकीय पदार्थों के स्तर में भी वृद्धि होती है। इसी प्रकार पिछले पचास वर्षों में औद्योगीकरण, कृषि, परिवहन वाहन बहुत तेजी से बढ़ने के कारण वायु प्रदूषण अतिशय रूप में बढ़ा है।

भारत में सन् 1947 के दौरान कुल पावर उत्पादन क्षमता लगभग 1400 मैगा वॉट (MW) थी। सन् 1988-89 के अंत तक पावर उत्पादन क्षमता बढ़कर लगभग 59,000 मेगा वॉट (MW) हो गई। भारत में उर्वरकों की खपत भी 1950-51 में 0.69 लाख टन से बढ़कर 1986-87 में 922 टन हो गई। औद्योगिक क्षेत्रों में भी काफी वृद्धि हुई है। इस प्रकार के कार्यकलापों से वायु प्रदूषण बढ़ता है।

भारत के दस बड़े शहरों में मापे गये SO_2 तथा धूल कणिकाओं के स्तर से पता चला है कि अहमदाबाद तथा कलकत्ता में SO_2 की सांद्रता (60 $\mu g/m^3$) तथा बम्बई कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर तथा हैदराबाद में धूल की मात्रा (1200 $\mu g/m^3$) मान्य सीमा को पार कर गई है। मोटर वाहनों की संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप NO_x, CO तथा हाइड्रोकार्बन के उत्सर्जन के स्तर में भी वृद्धि होने की संभावना है। गणनाओं के अनुसार दिल्ली में 1980-81 से 1986-87 के दौरान मोटर वाहनों से होने वाला कुल प्रदूषण 424 टन प्रतिदिन से बढ़कर 865 टन प्रतिदिन हो गया और अब भी लगातार बढ़ रहा है।

वायु प्रदूषण पर चर्चा समाप्त करने से पहले आइये हम चित्र 15.2 को पढ़ें जिसमें पिछले 100 वर्षों में इन प्रदूषकों की सांद्रता तथा वर्ष 2030 में उनकी अनुमानित सांद्रता प्रदर्शित की गई है। यह सांद्रता पार्ट्स पर मिलियन (parts per million) में दर्शाई गई है।

	औसत सांद्रता 100 वर्ष पहले (पार्ट्स प्रति बिलियन -PPB)	लगभग वर्तमान सांद्रता (PPB)	पूर्वानुमानित सांद्रता वर्ष 2030 (PPB)
CO	? उ० गोलार्द्ध 40 से 80 द० गोलार्द्ध (स्वच्छ वायुमंडल)	100 से 200 उ० गोलार्द्ध 40 से 80 द० गोलार्द्ध (स्वच्छ वायुमंडल)	बढ़ोत्तरी सम्भावित
CO_2	290,000	350,000	400,000 से 550,000
CH_4	900	1,700	2,200 से 2,500
NOx	.001 से ? स्वच्छ से औद्योगिक	.001 से 50 स्वच्छ से औद्योगिक	.001 से 50 स्वच्छ से औद्योगिक
N_2O	285	310	330 से 350
SO_2	.03 से ? स्वच्छ से औद्योगिक	.03 से 50 स्वच्छ से औद्योगिक	.03 से 50 स्वच्छ से औद्योगिक
CFCs	0	लगभग 3 क्लोरीन अणु	2.4 से 6 क्लोरीन अणु

चित्र 15.2 : पिछले 100 वर्षों में वायु प्रदूषकों की सांद्रता तथा वर्ष 2030 में इनकी परियोजित सांद्रता

स्रोत : साइंटिफिक अमेरिकन 261, 1989, पृष्ठ 62, से संकलित।

बोध प्रश्न 1

क) एक चित्र (आरेख) बनाकर उसमें वायुमंडल में प्राथमिक प्रदूषकों का स्रोत तथा द्वितीयक प्रदूषकों का बनना दर्शाइये।

ख) इस शताब्दी में प्रदूषकों के उत्सर्जन में बढ़ोत्तरी के कारणों की सूची बनाइये।

....

....

....

15.3.2 वायु प्रदूषण के परिणाम

जीवधारियों में विषैले प्रदूषकों का शरीर कायकी (physiology) पर प्रभाव दो प्रकार का हो सकता है : 1) तीक्ष्ण प्रभाव (Acute effects) तथा 2) दीर्घकालिक प्रभाव (Chronic effects)

1) **तीक्ष्ण प्रभाव :** यह तुरन्त ही होता है परन्तु थोड़ी देर (short-lived) तक रहता है। यह तब होता है जब व्यक्ति उच्च सांद्रता वाले विषैले प्रदूषक के संपर्क में आता है। उदाहरणस्वरूप किसी भीड़भाड़ वाली सड़क पर सफर करते समय हमारे सिर में दर्द होने लगता है। यह मोटर वाहनों से निकली कार्बन मोनोक्साइड के सम्पर्क में आने के कारण होता है। तीक्ष्ण प्रभाव तब पड़ते हैं जब कोई प्रदूषक असामान्य मात्रा में छोड़ा जाता है जैसा कि भोपाल गैस त्रासदी में मेथिल आइसोसायनेट (MIC) का पीड़कनाशी प्लांट से आकस्मिक रिसाव।

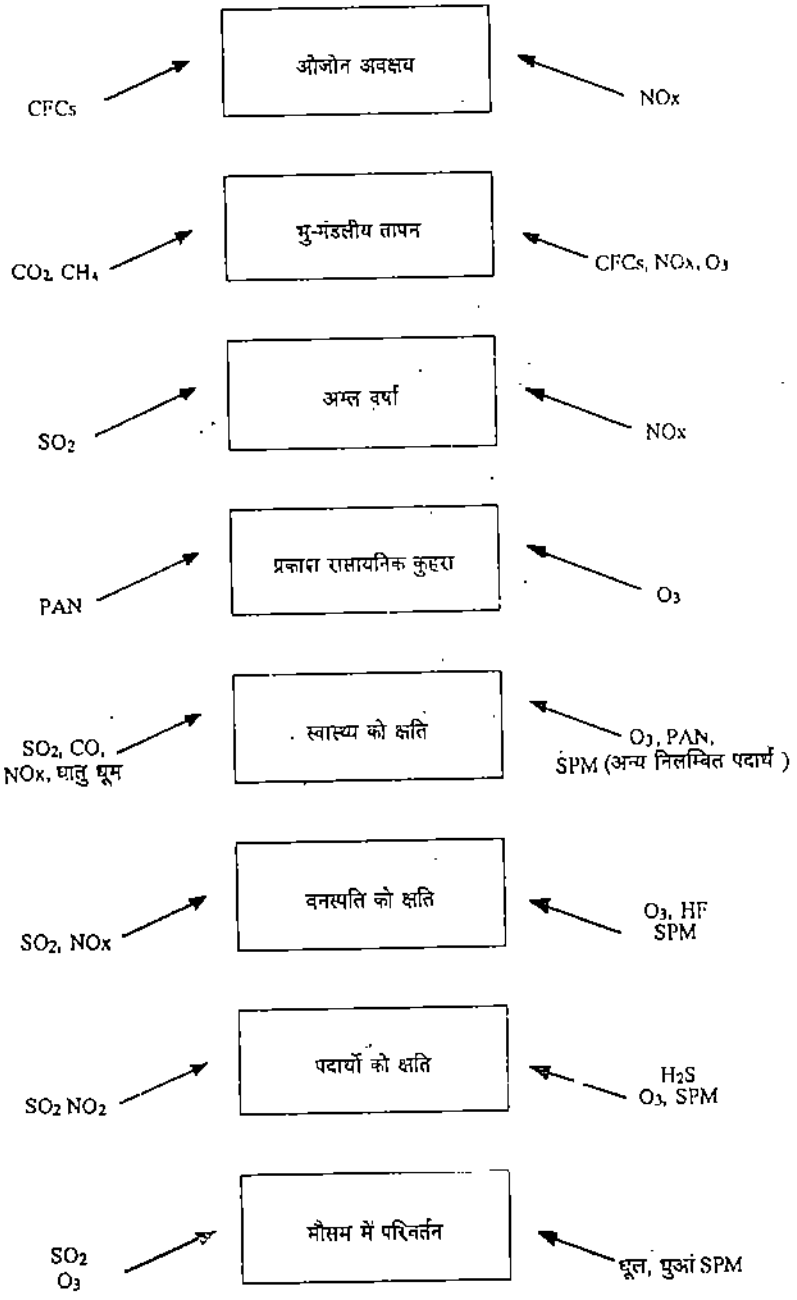

चित्र 15.3 : मुख्य वायु प्रदूषकों के प्रभाव

2) **दीर्घकालिक प्रभाव** : यह थोड़े-थोड़े विषैले रसायन का लम्बी अवधि तक उद्भासन (exposure) के कारण होता है। ये प्रभाव महीनों या वर्षों बाद दिखाई देते हैं। उदाहरणस्वरूप SO_2 के दीर्घकालिक सम्पर्क से पुराना श्वसनी शोथ (Chronic bronchitis), फुप्फुस तंतुमयता (Pulmonary fibrosis) या कोयले की धूल के उद्भासन से ऐनथ्रोकोसिस (anthracosis यानि black lung) हो सकता है।

दिये गये चित्र 15.3 में हमने मोटे तौर पर वायु प्रदूषण के परिणामों को दर्शाया है। एफ.एस.टी-1 कार्यक्रम में आप इनके बारे में संक्षेप में पढ़ चुके हैं। यहां आप इनके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे। आइये सबसे पहले इनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों से प्रारम्भ करें।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

वायु प्रदूषक हमारे शरीर में श्वास के साथ अंदर जाते हैं। यह श्वसन तंत्र के विभिन्न भागों पर आक्रमण करते हुए वायु कोषों तक पहुंचते हैं। एक बार जब प्रदूषक रक्त तक पहुंच जाते हैं तो वे रक्त के साथ पूरे शरीर में परिसंचरण करते हैं तथा लक्ष्य अवयव (target organ) तक पहुंच जाते हैं। किस मात्रा में नुकसान हुआ है यह विशिष्ट प्रदूषक, वायु में उसकी सांद्रता तथा उद्भासन की अवधि पर निर्भर करता है। हालांकि हमारे शरीर की सुरक्षा क्रिया विधि उन्हें निष्कासित करने में सहायता करती है, तथापि उच्च स्तर के उद्भासन से शरीर की सुरक्षा क्रिया विधि पर बहुत अधिक बोझ पड़ता है तथा उसका अपक्षीणन हो जाता है।

प्रमाणों से पता चलता है कि वायु प्रदूषक श्वास तथा अन्य रोगों से सम्बद्ध हैं। सल्फ़र डाइऑक्साइड एक मुख्य गैस है जो फेफड़ों के रोगों को बढ़ाती है। इसके प्रभाव हैं— नासिका तथा श्लेष्मा झिल्ली में उत्तेजन, साँस फूलना, ऊतकों में द्रव इकट्ठा होना तथा श्वसनी आंकुचन (bronchospasm)। ये इसके तीक्ष्ण लक्षण हैं। दीर्घकालिक उद्भासन से श्वसनी शोथ, बिगड़ा हुआ दमा। (aggravated asthma) वातस्फीति (emphysema), फुप्फुसीय तंतुमयता तथा हृदय पर अधिक दबाव इत्यादि जैसे रोग हो सकते हैं। कणिकीय पदार्थों का SO_2 के साथ श्वास में प्रवेश होने से गैस का प्रभाव प्रबल (potentiate) हो जाता है क्योंकि गैस कणों पर जमकर अन्दर श्वसन तंत्र के अंदरूनी अवयवों तक पहुंच जाती हैं। इस प्रकार कम सांद्रता में भी SO_2 का विषैला प्रभाव बढ़ जाता है। बसों, ट्रकों, दुपहिए वाहनों के धुएं से आंख तथा फेफड़ों में जलन होती है। यह धुएं में नाइट्रोजन के ऑक्साइडों द्वारा होता है। इनकी अधिक मात्रा साँस में लेने से मसूढ़ों में सूजन, आन्तरिक रक्तस्राव, न्यूमोनिया और कैंसर हो सकता है। NO_x कोशिकाओं के लिपिडों का ऑक्सीकरण करता है। इससे कोशिका की झिल्लियाँ फट जाती हैं तथा श्वसनी शोफ को अग्रसर करती है।

कार्बन मोनोक्साइड सबसे अधिक जहरीली गैसों में से एक है। जब यह रक्त परिसंचरण में प्रवेश करती है तो यह ऑक्सीजन के हीमोग्लोबिन से संयोग का प्रतियोगिता निरोध (competitive inhibition) करती है। इसकी हीमोग्लोबिन से बंधुता ऑक्सीजन के मुकाबले में 200 गुना ज्यादा है। यही कारण है कि बहुत ही कम CO का स्तर भी सुरक्षित नहीं होता। CO की अधिक सांद्रता में शारीरिक तथा मानसिक कार्यकलाप क्षीण हो जाते हैं तथा श्वासावरोध (asphyxiation), हृदय व मस्तिष्क को क्षति हो सकती है।

ओज़ोन व परॉक्सिएसिल नाइट्रेट में विचित्र अंश (remarkable degree) की जैव सक्रियता होती है। यहाँ तक कि PAN व ओज़ोन के बहुत कम सान्द्रण से ही आँखों में जलन होती है। ओज़ोन से खाँसी, सिरदर्द, कमजोरी, साँस लेने में कठिनाई, रक्तस्राव, गला सूखना, श्वसन मार्ग में संकीर्णन तथा फेफड़ों के ऊतक कमजोर हो जाते हैं।

कणिकीय पदार्थों का प्रभाव उसके स्वरूप व आकार पर निर्भर करता है। इनके कारण उत्तेजन प्रक्रियाएँ होती है। विषैली धातुएं जैसे सीसा, पारा, जस्ता तथा मैंगनीज़ की धूम साथ ही एन्टिमनी, आर्सेनिक, ताँबा आदि के ऑक्साइड अत्यधिक विषैले होते हैं। सीसा छोटे बच्चों के मस्तिष्क को क्षति पहुँचाता है तथा उनकी मृत्यु भी हो सकती है। वयस्कों में इसका गुर्दों, यकृत तथा रक्त पर प्रभाव पड़ता है तथा यह तंत्रकीय तंत्र की कार्य क्षमता को क्षीण कर देता है। पारे की धूम को साँस द्वारा अंदर लेना उसको निकालने से कहीं अधिक खतरनाक है। दीर्घकालिक उद्भासन से मुंह तथा चमड़ी पर घाव (lesions on the mouth and skin) तथा तंत्रकीय संबंधी समस्याएं होती हैं। कोयले की धूल, ऐस्बेस्टॉस, गन्ने, रुई, फ्लैक्स् (flax) और सन (hemp) के बारीक तंतु श्वसन संबंधी समस्याओं के कारण हैं। दीर्घकालिक उद्भासन से श्वसन की न्यूमोकोनिओसिस यानि धूल की बीमारियां हो जाती हैं। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि वायु प्रदूषकों के स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव होते हैं। हाइड्रोकार्बन जैसे कि बेन्ज़ीपाइरीन, बेन्जीन,

क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन, पॉलीबाईफ़ेनिल क्लोराइड और कई अन्य यौगिकों के कारण कैंसर होता है। धूम्रपान करने से भी वायु प्रदूषित होती है। फेफड़ों का कैंसर कई प्रकार की श्वसन व हृदय सम्बन्धी (cardiac) समस्याएँ धूम्रपान से संबद्ध हैं। धूम्रपान न करने वाले व्यक्ति को उतना ही खतरा है अगर वह धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के पास रहता है।

अकसर समाचार पत्रों में रसायन संयंत्रों में दुर्घटनाओं के समाचार छपते हैं। प्रदूषक के अधिक मात्रा में निष्कासन के कारण कई लोग तीव्र प्रभाव के कारण स्वास्थ्य समस्याओं के शिकार होते हैं।

पादप पर प्रभाव

वायु प्रदूषकों के कारण पौधों को अतिशय क्षति पहुँचती है क्योंकि गैसें जैसा कि SO_2, NO_2, O_3 तथा PAN सरंध्र (stomata) द्वारा पत्तियों में प्रवेश कर जाती हैं और उपापचय (metabolism) की महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं—श्वसन, प्रकाश संश्लेषण तथा प्रस्वेदन तथा पौधों की समस्त वृद्धि को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। पत्तियों के ऊपर की मोमी तह जो पानी का अधिक उड़ना, नाशी जीवों द्वारा नुकसान, बीमारियाँ, सूखा और पाले से बचाव करती है प्रदूषकों द्वारा नष्ट हो जाती है। वायु प्रदूषक SO_3, NO_x और O_3 शक्तिशाली ऑक्सीकारक हैं तथा पौधों की कोशिका में होने वाली रासायनिक क्रियाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर सकते हैं।

प्रदूषकों के सामान्य प्रभाव निम्नलिखित हैं : i) पत्तियों को क्षति, ii) प्रकाश संश्लेषण में निरोध, iii) पोषक तत्वों का कम उदग्रहण, iv) पोषक तत्वों का मृदा में विक्षालन, (leaching) v) जहरीली धातुओं के आयनों का मोचन जो साधारणतया मृदा से आबंधित होते हैं तथा vi) मृदा में अत्यावश्यक सूक्ष्म जीवों का नष्ट होना।

सल्फ़र डाइऑक्साइड से पर्णीय क्षति, ऊतकक्षय (necrosis), पत्तियों की नोक तथा किनारों का जलना, पत्तियों का झड़ना, सम्पूर्ण विकास में रुकावट, फलों के उत्पाद तथा उपज में कमी आ जाती है। औद्योगिक क्षेत्रों में मुख्य रूप से इस प्रकार की क्षति देखी गई है। कुछ विभिन्न परिणाम भी देखे गये हैं जिनसे यह निर्देश मिलता है कि कम सान्द्रण में SO_2 पोषक तत्व के रूप में पौधों में समाविष्ट होती है। यह पौधों में विद्यमान सल्फ़र की पोषक मात्रा पर निर्भर करता है। आप जानते हैं कि सल्फ़र प्रोटीनों, सहएन्ज़ाइमों, तथा हॉर्मोनों का संघटक है। इन परिणामों के अनुसार उर्वरक के स्रोत के रूप में वायु में व्याप्त SO_2 की उपयोगिता की सम्भावना की खोजबीन की जा रही है।

कणिकीय पदार्थ जैसे सीमेंट, कोयला, पेट्रोकोक की धूल और फ़्लाई ऐश प्रकाश को ढक लेते हैं तथा उसकी मात्रा तथा गुणवत्ता में परिवर्तन कर देते हैं। धूल से सरंध्र बन्द हो जाते हैं और यह गैसों के विनिमय तथा प्रस्वेदन को कम कर देती है। पौधों के गीले हिस्से धूल के कारण क्षारीय हो जाते हैं। फिर भी, कुछ परीक्षणों से इस बात का संकेत मिला है कि फ़्लाई ऐश के निम्न संकेंद्रण में पौधे का विकास बढ़ सकता है तथा उसे उर्वरकों का अनुकूल अनुपूरक माना जाता है।

ओज़ोन के कारण हरितरोग (chlorosis), पत्तियों के ऑक्सीकरण के कारण पत्तियों पर धब्बे पड़ना, पत्तियों की नोक जलना, कमज़ोर होना तथा समय से पहले झड़ना और विकास तथा उपज में कमी हो जाती है। ओज़ोन पत्तीवाली सब्जियां, खेतों में फसलों, फलों तथा वनों में पेड़ों को भी नुकसान पहुंचता है। नाइट्रोजन के ऑक्साइडों द्वारा क्लोरोफिल का ऑक्सीकरण होने से हरित रोग तथा पत्तियों को क्षति पहुंचती है। इनके कारण पौधों की वृद्धि तथा उपज में कमी हो जाती है और फल असमय गिर सकते हैं।

योगवाहिता (synergism) : दो विषैले रसायनों का सम्मिलित प्रभाव उनके अलग-अलग प्रभावों से अधिक होता है।

अक्सर वायु किसी एक प्रदूषक से दूषित नहीं होती अपितु कई सारे प्रदूषक एक साथ एक ही स्रोत से निकलकर इसमें मिल जाते हैं। इसलिए दो या दो से अधिक गैसों के मिले जुले प्रभावों से ही नुकसान होता है। प्रदूषक गैसों के पौधों में दर्शित लक्षणों को, प्रकाश, तापमान, नमी, पोषकों वगैरा की कमी के लक्षणों से अलग नहीं किया जा सकता।

सल्फ़र डाइऑक्साइड व ओज़ोन या सल्फर डाइऑक्साइड व हाइड्रोजन फ़्लुओराइड के मिश्रण के योगवाही (synergetic) प्रभाव होते हैं, जैसा कि हम बता चुके हैं कि कणिकीय पदार्थ SO_2 के प्रभावों को प्रबल कर देते हैं।

मृदा में अम्लों के जमा (acid deposition) होने से अनिवार्य (vital) पोषक तत्वों, जैसे कि मैग्नीशियम व कैल्सियम के अघुलनशील सल्फ़ेट बन जाते हैं। अम्ल मिट्टी से बंधित एलुमिनियम आयनों को मुक्त कर देते हैं। यह जड़ों के महीन रेशों को क्षति पहुँचाते हैं और इस प्रकार पानी का अवशोषण कम हो जाता है। मृदा का पी एच बदलने से अत्यावश्यक सूक्ष्म जीव मर जाते हैं। मृदा में अम्ल जमा होने पर आयनों के उद्ग्रहण में बदलाव हो सकता है। चित्र 15.4 में पौधों पर वायु प्रदूषकों के प्रभावों को दर्शाया गया है।

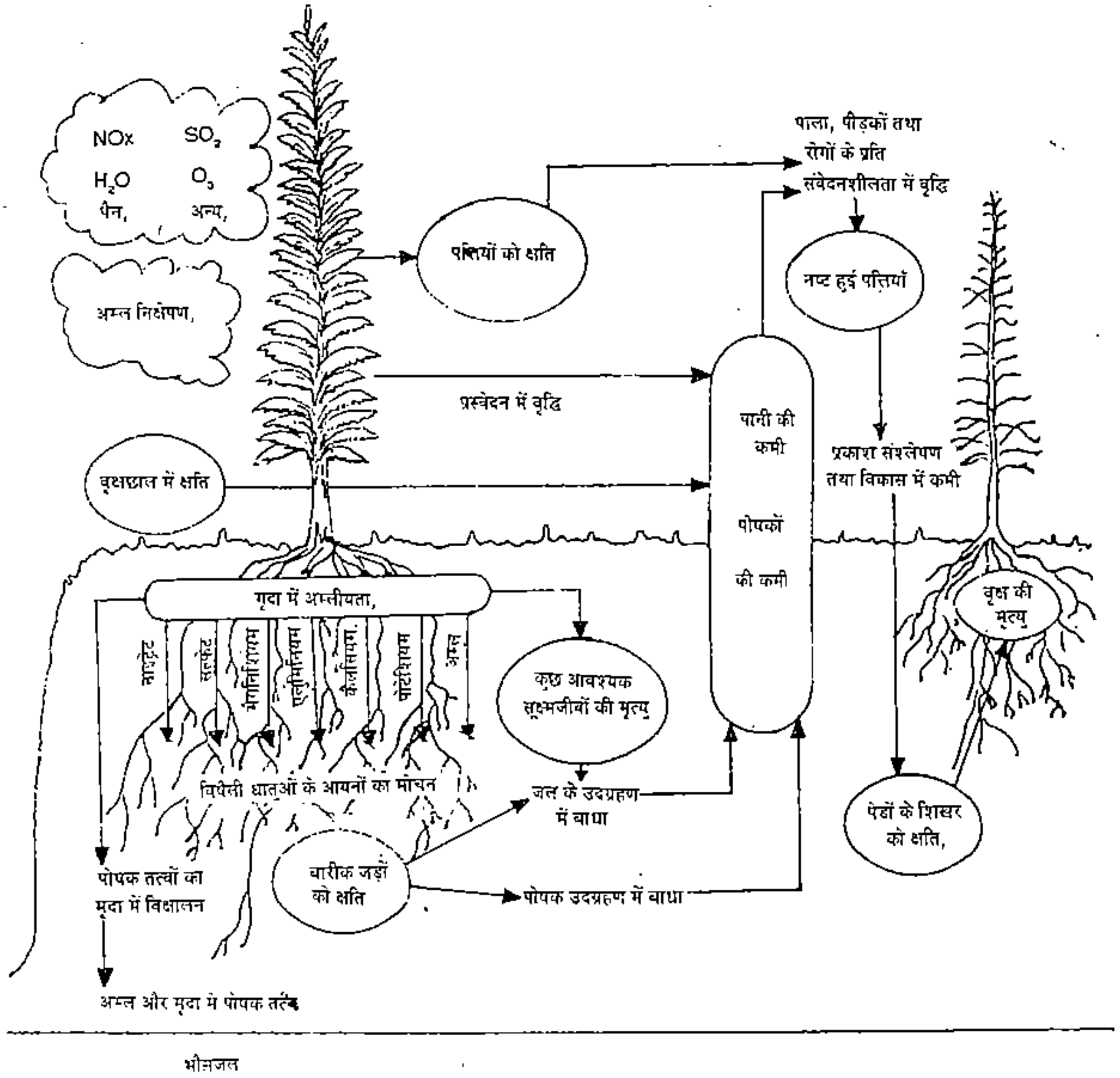

चित्र 15.4 : वायु प्रदूषकों का पौधों पर प्रभाव

आपने पढ़ा कि साधारणतः वायु प्रदूषक पौधों के लिए हानिकारक होते हैं तथापि कुछ स्पीशीज़ पर इनका प्रभाव औरों की अपेक्षा अधिक पड़ता है। उदाहरण के लिए मॉस (moss) व लाईकेन (lichen) वायु प्रदूषकों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। यह उन निम्न स्तर के वायु प्रदूषकों से भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो जाते हैं जिस स्तर पर प्रदूषकों के मानव तथा पौधों पर प्रभाव दृष्टिगत नहीं हुए हैं। इसलिए इनका प्रयोग प्रदूषण स्तर को प्रदर्शित करने के लिए किया गया है। इस प्रकार के पौधे जो वायु प्रदूषण का स्तर दर्शाते हैं, वायू प्रदूषण के जीवसूचक (bioindicators of pollution) कहलाते हैं।

हमारे देश के वैज्ञानिक, विभिन्न जातियों के पौधों की प्रदूषण के प्रति ग्रहणशीलता, सहनशीलता, प्रतिरोध आदि की सीमा (degree) के आधार पर पौधों, विशेषकर उच्च जाति के पौधों (higher plants) की पहचान करने के कार्य में लगे हुए हैं। इस प्रकार छाँटी गई सहनशील जातियां प्रदूषित क्षेत्रों में लगाने (land scaping) के लिए तथा संवेदनशील जातियां प्रदूषण के जीवसूचक के रूप में प्रयोग की जा सकेंगी।

आप जानते हैं कि पौधे पर प्रदूषकों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथापि पौधों को प्रदूषण पर नियंत्रण करने के लिए भी लगाया जा सकता है। कुछ पौधों की जातियां धूल, कालिख, धुआं व कणिकीय पदार्थ वायु से छानकर स्वयं पर इकट्ठा कर लेती हैं और इस प्रकार वायु को स्वच्छ करती हैं। खुरदरी व रोएँदार सरल पर्ण की सतह वाले सदाबहार वृक्ष, चिकनी सतह तथा संयुक्त

पर्ण वाले पर्णपाती पेड़ों की अपेक्षा अधिक धूल इकट्ठा करते हैं। ऐसे पेड़ों को प्रदूषण निवारण (abatement of pollution) करने के लिए हरित पट्टी (green belt) के रूप में लगाया जा सकता है।

अन्य जीवों पर प्रभाव

आप जानते हैं कि अन्य जीवों विशेषकर स्तनधारियों में, जीव रासायनिक व शरीर क्रियात्मक प्रक्रियाएं मनुष्यों जैसी ही होती हैं। इसलिए यह अनुमान लगाना गलत नहीं होगा कि वन्य जीवन तथा पालतू पशु भी प्रदूषकों के सम्पर्क में आने पर उनसे समान रूप से प्रभावित होंगे। यह देखा गया है कि प्रधान सार्वजनिक सड़कों (highways) पर चलने वाले पशु, मोटर वाहनों के धुएं से निकले सीसे से विषाक्त हो जाते हैं। प्रगालकों के आसपास चरने वाले मवेशी, धातुएं से विषाक्त हो जाते हैं। सीसा, फ़्लुओराइड, आर्सेनिक की विषाक्तता द्वारा फार्म के पशुओं को क्षति पहुँचती है।

पारिस्थितिक तंत्रों पर प्रभाव

पारिस्थितिक तंत्रों पर प्रदूषकों के प्रभाव बड़े अरसे के बाद ही दिखाई पड़ते हैं। अधिक औद्योगीकृत देशों में वनस्पति कई वर्षों तक प्रदूषकों से उद्भासित रही है। परिणामस्वरूप उनके विनाशकारी प्रभाव स्थलीय व जलीय पारितंत्रों पर बहुत समय से देखे गये हैं। ये मुख्य रूप से तरल अम्ल (अम्ल जैसे कि घुले हुए सल्फ़्यूरिक व नाइट्रिक अम्ल) अथवा सूखे अम्ल (अम्लीय गैसें जो वनस्पति व मृदा को प्रभावित करती हैं) के जमने व साथ ही अन्य प्रदूषक गैसों जैसे कि O_3, HF (hydrogen fluoride) और कणिकीय पदार्थों के कारण हैं।

हमने एफ एस टी-1 पाठ्यक्रम की इकाई 16 में अम्ल वर्षा (acid rain) तथा उसके प्रभावों को समझाया था। अम्ल वर्षा इस प्रकार परिभाषित की गई है। वर्षा या बर्फ़ के रूप में पानी का वर्षण जिसकी पी एच (pH) 3.9-5.7 के बीच हो।

इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूरे संसार भर में वनों का विनाश देखा गया है जो कि अम्ल वर्षण तथा अंतःसम्बन्धित परिवर्तनों के कारण है। यूरोपीय देशों तथा अमरीका में लगभग 70 लाख हेक्टेयर तक वन नष्ट हुए हैं। जर्मनी में शंकुवृक्षी और पर्णपाती वन पर्ण रहित, नग्न, विकृत तथा मृत खड़े हुए हैं।

कुछ वृक्ष लाइकेन तथा अपघटकों (decomposer) के फलन अंगों (fruiting bodies) से ढके हैं। वृक्षों की अवस्था काफी भयानक है। वन भूमि उखड़े हुए पेड़ों की सूखी, सहज में टूटने वाली छिली हुई शाखाओं से ढकी हुई है। वृक्ष जैसे कि स्प्रूस (spruce), चीड़ (pine), भूर्ज (birch), ऐश (ash), एल्डर (alder), मैपिल (maple) तथा बाँज (oak) नष्ट हो गये हैं। सन् 1985 में जर्मनी में वनों के नष्ट होने से लगभग दस खरब डालर का नुकसान हुआ। अमरीका में दीर्घकाल तक कई तरह के वृक्षों की चौड़ाई में (radial) वृद्धि नहीं हुई। सबसे अधिक प्रभावित वे वन हुए, जो हवा के रुख की ओर, ढलान पर, बादल या कोहरे से ढके हुए पर्वतों पर स्थित थे तथा काफी समय तक प्रदूषणों से उद्भासित रहे थे। क्षति का कारण ओज़ोन, प्रकाश रासायनिक ऑक्सीकारक, सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन के यौगिकों का जमाव, अम्ल वर्षण, भारी धातुओं का जमाव और कार्बनिक रसायन थे। पिछले भाग में हम बता चुके हैं कि किस प्रकार वायु प्रदूषक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में मृदा के पोषक स्तर में परिवर्तन करके पौधों को प्रभावित करते हैं। तथापि, अम्ल वर्षा और उसके पारिस्थितिकीय प्रभावों के बारे में फिलहाल हमारी जानकारी अपूर्ण है। अम्ल वर्षा उपज, प्रतिरोधकता (resistance) और स्थलीय पारितंत्रों की विविध जातियों पर प्रभाव डालती है।

जलीय जीवों तथा अलवणजल झीलों में अम्ल वर्षा के प्रभाव देखे गये हैं जहाँ मृदा बफर (buffering) करने में सक्षम न थी। स्वीडन, कनाडा, नार्वे, उत्तरी पूर्वी अमरीका तथा स्कैंडिनेविया में स्थित हजारों झीलें बिना मछलियों के हैं। अकेले स्वीडन में ही 3000 से अधिक झीलें नष्ट हो गई हैं यानि ये झीलें मछलियों, मेंढकों, कुमुदनी पर्ण अथवा अन्य जलीय जीवों से रहित हैं। वहां सिर्फ अम्ल सह्य शैवालों की कुछ जातियाँ हैं। जलीय झीलों के पारितंत्रों पर अम्ल वर्षा के प्रभाव निम्न प्रकार से हैं। i) पी एच 5.3 पर मुख्य जीवों का विलोपन, ii) पादप प्लवक जातियों में परिवर्तन, iii) मछलियों के प्रजनन में रुकावट, iv) तलहटी में बसने वाले जीवों की समाप्ति, v) रेशेदार शैवालों का प्रादुर्भाव। जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि मृदा में भारी धातुएँ अम्लीय माध्यम में गतिमान (mobilise) हो जाती हैं तथा अपवाह (run-off) जल के साथ अधिक मात्रा में झीलों व जलाशयों में पहुंचती हैं। घातक स्तर तक होने के बहुत पहले ही मछलियों के प्रजनन को बुरी तरह प्रभावित करती हैं।

पदार्थों पर प्रभाव

अधिकांश वायु प्रदूषक अभिक्रियाशील रसायन होते हैं। इस कारण वे आसपास के अधिकांश

पदार्थों के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। स्कूल में पढ़े रसायन विज्ञान के पाठ से आपको याद होगा। SO_2 ऑक्सीकृत होकर SO_3 बनाती है। इसे पानी में घोलने से सल्फ़्यूरिक अम्ल बनता है जो कि अत्यधिक कॉस्टिक होता है।

सल्फ़्यूरिक अम्ल धातुओं तथा उनके लवणों के साथ प्रतिक्रिया करके उनके तद्नरूप सल्फ़ेट बनाता है। इस प्रकार SO_2 से प्रदूषित वायु में ऐल्युमिनियम के साथ एल्युमिनियम सल्फ़ेट $Al_2(SO_4)_3$ बन सकता है तथा चूने के पत्थर तथा संगमरमर ($CaCO_3$) के साथ कैल्सियम सल्फ़ेट ($CaSO_4$) बन सकता है जिसे जिप्सम कहते हैं। ऐसी प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप पत्थर, प्लास्टर, संगमरमर या धातु से चित्रित काँच की वस्तुओं से बने भवनों, मूर्तिकलाओं तथा ऐतिहासिक स्मारकों को क्षति पहुँची है। इनमें से कुछ मध्यकालीन या उससे भी प्राचीन हैं। वायु प्रदूषण के कारण एथेंस के पार्थीनॉन (Parthenon) का पत्थर पिछले 2000 वर्षों की अपेक्षा गत 50 वर्षों में अधिक खराब हुआ है। इसी प्रकार SO_2 व NO_2 से स्टैच्यू ऑफ लिबर्टी (Statue of Liberty) तथा मथुरा परिष्करण शालाओं (Mathura refineries) से ताजमहल संक्षारित (corroded) हो चुका है। पत्थर (sandstone) की मूर्तियां काली तह से ढक जाती हैं जिनमें अधिक मात्रा में जिप्सम होता है। जब दरारों में जिप्सम बन जाता है तो जिप्सम के क्रिस्टल के प्रसरण (expansion) के कारण चूने का पत्थर चूर-चूर हो जाता है। इस प्रकार के नुकसान वास्तव में बहुत मंहगे पड़ते हैं तथा समाज के लिए बहुत बड़ी क्षति है क्योंकि उनमें से अधिकांश कला की उत्कृष्ट कृतियां हैं और टूटने पर उन्हें फिर से वैसा नहीं बनाया जा सकता।

SO_2, NO_2 तथा O_3 शक्तिशाली ऑक्सीकारक हैं, उनसे कपड़ों का रंग फीका पड़ जाता है और कपड़े खराब हो जाते हैं। सल्फ़रडाइऑक्साइड चमड़े तथा प्लास्टिक पर असर करती है। ओज़ोन गैस से कारों के सामने का शीशा साफ करने वाले वाइपर (wiper), टायर, तथा रबड़ के बने अन्य उत्पादों में दरार पड़ जाती है। हाइड्रोजन सल्फ़ाइड H_2S धातु से बने पेंट के साथ प्रतिक्रिया करती हैं तथा धातुओं के सल्फ़ाइड बनाकर उन्हें बदरंग कर देती हैं। यह जेवरातों तथा चांदी के बर्तनों को भी बदरंग कर देती हैं। कणिकीय पदार्थ इमारतों को गन्दा करते हैं और धीरे-धीरे काट (erode) देते हैं। भवनों के पेंट किये स्थानों पर कालिख चिपक जाती है तथा उसको हटाना मुश्किल होता है। इस तरह की क्षति की मरम्मत के लिए काफ़ी धन की आवश्यकता होती है।

मौसम पर प्रभाव

धूल, धुआं तथा अन्य निलंबित कणिकीय पदार्थों से दृष्टि सीमा क्षेत्र (visibility) कम हो जाता है। फ़्लाई ऐश से विकिरण के प्रकीर्णन (scattering) तथा अपरोधन (interception) में बाधा पड़ती है।

दृष्टि क्षेत्र सीमा के कम होने से हवाई यातायात, नौवहन, बंदरगाह परिचालन तथा सड़क पर यातायात का खर्चा बढ़ जाता है। सल्फ़्यूरिक अम्ल, धुंध, अमोनियम सल्फ़ेट तथा जल की वाष्प से वायु मंडल की ऊर्ध्वाधर तापमान (vertical temperature) के पार्श्वचित्र (profile) पर असर पड़ता है। वायु-विलय (aerosol) बादल के बनने व मौसम पर भी प्रभाव डालते हैं।

भू-मंडलीय प्रभाव

एफ़ एस टी-1 पाठ्यक्रम की इकाई 16 में आपने वायु प्रदूषण के भू-मंडलीय प्रभाव ग्रीनहाउस प्रभाव (Greenhouse effect) और ओज़ोन परत के अवक्षय (depletion of ozone layer) के बारे में पढ़ा है। हमारी सलाह है कि आगे पढ़ने से पहले आप उन भागों को दोहरा लें।

ग्रीनहाउस प्रभाव तथा भू-मंडलीय तापन

आप जानते हैं कि पृथ्वी का तापमान CO_2, NO_x, O_3 तथा CFCs द्वारा अवरक्त विकिरण पुनः विकिरित होने से तथा थोड़ा बहुत वायुमंडल के जलवाष्प द्वारा अनुरक्षित होता है। ये गैसें ताप को बाहर जाने से रोकती हैं। इसे ग्रीनहाउस प्रभाव तथा इन गैसों को **ग्रीनहाउस गैसें** (GH's) कहते हैं। इन गैसों के न होने पर पृथ्वी की सतह का औसतन तापमान वर्तमान मूल्य +15°की अपेक्षा -15°होगा तथा पृथ्वी एक बर्फीला प्राणहीन ग्रह होगा। इसी के अनुरूप GH's के स्तर में वृद्धि होने से पृथ्वी का तापमान बढ़ जायेगा। इस कारण यदि गैसों में वृद्धि का यही हाल रहा तो पूर्वानुमान लगाया जा सकता है कि वर्ष 2030 तक पृथ्वी का तापमान 2°C बढ़ जायेगा। इससे महासागरों का तापीय विस्तार (thermal expansion) होगा तथा भूमि आधारित दक्षिण ध्रुव प्रदेश के बर्फ के ढेर तथा ग्लेशियर पिघल जायेंगे। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि सन् 2073 तक औसत समुद्र स्तर 30 से 213 सेंटीमीटर तक बढ़ जायेगा जबकि पिछली शताब्दी में

विश्व ...ा समुद्र स्तर में इसकी अपेक्षा बहुत कम औसतन, लगभग 15 सेंटीमीटर की वृद्धि हुई है।

सम्भावित डेढ़ मीटर की वृद्धि से तटीय क्षेत्र जलमग्न हो जायेंगे, तट रेखा के कटाव की गति बढ़ जायेगी, मुहाने नष्ट हो जायेंगे, ज्वारनदमुखियों को नुकसान पहुँचेगा, पीने के पानी के जलभरों में लवणता बढ़ जायेगी। अनुमान है कि इससे बंगला देश के लगभग 11.5% भूमि क्षेत्र में बाढ़ आ जायेगी तथा अमरीका के तटीय आर्द्रभूमि का 30% से 80% तथा संसार के अनेकों दूसरे तटीय क्षेत्र जलमग्न हो जायेंगे। भय यह भी है कि अगले 10 वर्षों में माल्डीव द्वीप समूह जलमग्न हो जायेंगे। ये परिवर्तन पृथ्वी के तटीय क्षेत्रों में रहने वाले 50% लोगों को प्रभावित करेंगे। अपनी आजीविका के लिए लोग इन क्षेत्रों पर अवलम्बित हैं। मत्स्यपालन तथा दूसरे अन्य समुद्री खाद्यों के लिए तटीय आर्द्रभूमि महत्वपूर्ण है।

तापमान में वृद्धि होने से क्षेत्रीय जलवायु पर प्रभाव पड़ेगा, वर्षा तथा जलवायु क्षेत्र स्थानान्तरित हो जायेंगे। इससे मध्य अक्षांशों का तापमान बढ़ जायेगा। वन समाप्त हो जाएंगे, उपज की कमी, फसलें और खासकर अन्न की फसलें जिसमें धान भी शामिल है नष्ट हो जायेंगी। भीषण अकाल पड़ेंगे, व्यापक गर्म लहरें चलेंगी तथा झीलें सूख जायेंगी।

ओज़ोन का अवक्षय

आपने पढ़ा है कि वायु में ओज़ोन की मामूली मात्रा भी पौधों, पशुओं तथा मनुष्यों के लिए हानिकारक है। परन्तु समतापमंडल (stratosphere) में ओज़ोन पर्त करीबन सभी पराबैंगनी सौर विकिरण का अवशोषण कर, अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करती है जैसा कि नीचे दिखाया गया है।

$$O_3 + UV \longrightarrow O_2 + O \text{ .... (1)}$$
$$O_2 + O \longrightarrow O_3 + IR \text{ .... (2)}$$
$$\overline{O_3 + UV + O_2 + O \rightarrow O_2 + O + O_3 + IR}$$

इस प्रकार कुल परिणाम पराबैंगनी विकिरणों का लाभदायक अवरक्त विकिरण में बदलना होता है। ओज़ोन के निम्न होने पर परिवर्तन धीमा होगा तथा पराबैंगनी विकिरण पृथ्वी तक पहुंच जायेगा।

पिछली दशाब्दियों में क्लोरोफ़्लोरो कार्बन (CFCs) का प्रयोग होने के कारण ओज़ोन पर्त पर एक प्रकार से आक्रमण किया जा रहा है। इन रसायनों ने समस्त भू-मंडल के चारों ओर की सुरक्षात्मक ओज़ोन को कम कर दिया है। CFCs बहुत स्थायी तथा निष्क्रिय पदार्थ हैं। ये विषरहित, गैर कॉस्टिक, गैर संक्षारक (corrosive) तथा अज्वलनशील हैं। इसलिए इनका प्रयोग वायु-विलय (aerosol), डिब्बा नोदक (propellant), प्रशीतक (refrigerant), विलायक तथा चाय-कॉफी के तथा त्वरित खाद्यों (fast foods) के लिए डिब्बे, प्लास्टिक की वस्तुएँ वगैरा जो होता है। जो कि उपयोग के बाद फेंक दिये जाते हैं।

पहले तो ऊंची उड़ान भरने वाले हवाई जहाज़ों से नाइट्रोजन के ऑक्साइडों के उत्सर्जन तथा समताप-मंडल में परिचालन करने वाले सुपर सॉनिक जेट (supersonic jet) को भी ओज़ोन अणु नष्ट करने के लिए उत्तरदायी समझा जाता था पर अब ऐसा लगता है कि ये उतने भयानक नहीं हैं।

विसर्जित CFCs परवर्ती मंडल (troposphere) में ऊपर बढ़ते हैं तथा वर्षों तक वहीं रहते हैं फिर वे धीरे-धीरे समतापमंडल की ओर बढ़ते हैं। यहां CFCs विखंडित हो जाते हैं तथा क्लोरीन परमाणु विसर्जित करते हैं जैसा कि नीचे (प्रतिक्रिया 1) में दिखाया गया है। क्लोरीन परमाणु O_3 को O_2 में बदल देती है (प्रतिक्रिया 2)। विसर्जित क्लोरीन परमाणु (प्रतिक्रिया 3) फिर से प्रतिक्रियाओं का एक पूरा अनुक्रम शुरू कर देते हैं। वास्तव में ये शृंखलाबद्ध प्रतिक्रियाएं हैं।

$$CF_2Cl_2 + UV \rightarrow Cl + CF_2Cl \text{ .... (1)}$$
$$Cl + O_3 \rightarrow ClO + O_2 \text{ .... (2)}$$
$$ClO + O \rightarrow Cl + O_2 \text{ .... (3)}$$

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस दर पर CFCs के उत्सर्जन से अगले 100 वर्षों में, समतापमंडल में, ओज़ोन का स्तर 3 से 5% या इससे और अधिक कम हो जायेगा। क्लोरीन के एक परमाणु में 10 हज़ार ओज़ोन परमाणुओं को नष्ट कर सकने की क्षमता होती है। ओज़ोन पर्त की स्थिति इस मायने में चिंताजनक है क्योंकि CFCs का उत्पादन यदि अब भी रुक जाता है तो भी विद्यमान क्लोरीन परमाणुओं द्वारा अगली शताब्दी तक O_3 को O_2 में परिवर्तन होना जारी रहेगा। अनुमानों से ज्ञात हुआ है कि समतापमंडल में 1% O_3 की कमी होने से कैंसर का आपतन 2-5% तक बढ़

जायेगा। उन्नत तथा औद्योगिक राष्ट्र पराबैंगनी विकिरण के लिए दोषी होने के साथ तात्कालिक शिकार भी हैं। उदाहरणस्वरूप 1987 के अनुमानों से यह पता चलता है कि यदि CFCs का 5% दर पर बढ़ना जारी रहा तो आने वाले 88 सालों में 400 लाख अमरीका वासियों को चर्मकैंसर होगा तथा 8 लाख व्यक्ति मर जायेंगे। सन् 1985 में वैज्ञानिकों ने निमबस 7 उपग्रह (Nimbus 7 satellite) द्वारा दक्षिणी ध्रुव पर ओज़ोन की काफ़ी पतली पर्त, जो सिर्फ 60% बची हुई थी, का पता लगाया। यह अमरीका राष्ट्र जितने क्षेत्र तक में विस्तृत है। इसको "ओज़ोन होल" (ozone hole) सम्बोधित किया गया है। इसमें से ओज़ोन जल्दी से जल्दी समाप्त हो रही है।

आस्ट्रेलिया के 70 वर्ष तक जीवित रहने वाले तीन में से दो व्यक्ति अपने जीवनकाल में कम से कम एक बार चर्मकैंसर से ग्रसित होते हैं। कैंसर के इतने अधिक आपतन का सीधा संबंध दक्षिणी आस्ट्रेलिया पर ओज़ोन परत (4.9 से 10.6%) के ह्रास से है जिससे भूमि की सतह पर पराबैंगनी विकिरण अधिक आता है। आस्ट्रेलिया में ओज़ोन विवर उतना ही बड़ा है जितना अमेरिका तथा उतना गहरा है जितना एवरेस्ट पर्वत जो आस्ट्रेलिया महाद्वीप में चिंता का कारण है।

ऐसा सुझाव दिया गया है कि CFCs के उत्पादन एवम् उपभोग को 5 से 7 वर्ष तक नियंत्रित किया जाना आवश्यक है। इस बीच CFCs के विकल्प विकसित किये जाने चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जीवन अवधि अधिक होने के कारण विद्यमान CFCs के पर्यावरणीय प्रभाव जारी रहेंगे।

15.3.3 मौसम संबंधी घटक तथा वायु प्रदूषण

किसी क्षेत्र में वायु प्रदूषण के स्तर पर वायु, क्षेत्र की स्थिति, भौगोलिक दशाएं, वर्षण तथा तापमान व्युत्क्रमण (temperature inversion) का प्रभाव पड़ता है। वायु, प्रदूषकों को सैकड़ों या हजारों किलोमीटर दूर तक उड़ा कर ले जा सकती है। परिणामतः गैसीय प्रदूषक बहुत दूर तक पहुंच सकते हैं यानि प्रदूषकों के लिए कोई राजनीतिक सीमाएं नहीं हैं। इसलिए इंग्लैंड तथा यूरोप के अन्य कई भागों में उद्योगों से उड़कर आने वाली SO_2 की अम्ल वर्षा दक्षिण नार्वे तथा स्वीडन में होती है। अमरीका द्वारा लाखों टन छोड़े गये वायु प्रदूषक तेज़ हवा में उड़कर कनाडा पहुंच जाते हैं तथा अम्ल वर्षा करते हैं। बम्बई की फ़्लू गैस निकालने वाली चिमनियों से निष्कासित SO_2 पर्यावरण में फेंक दी जाती है जो कि पश्चिमी हवाओं द्वारा वाशी तथा न्यू बम्बई पहुंच जाती है। तटीय क्षेत्रों से भूमिगत हवाएं प्रदूषण को समुद्र तक ले जाती हैं तथा समुद्री हवाएं प्रदूषण को वापिस भूमि तक पहुंचा देती हैं।

स्थानीय हवाओं का स्वरूप, क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं, और उसकी स्थिति से प्रभावित होता है। समतल क्षेत्रों में प्रदूषकों के अधिक विसर्जन तथा पहाड़ी क्षेत्रों में निम्न विसर्जन की प्रत्याशा की जा सकती है। क्योंकि पहाड़ियां वायु के प्रवाह को रोकती हैं। जिससे प्रदूषक थोड़े क्षेत्र में इकट्ठे हो जाते हैं। आप इकाई 2 में तापमान व्युत्क्रमण के बारे में पढ़ चुके हैं। इस प्रकार की दशाएं प्रदूषण की निकासी में बाधा डालती हैं। इसलिए प्रदूषक एक छोटे से क्षेत्र में केन्द्रित हो जाते हैं।

सामान्य वायुमंडलीय परिस्थितियों में वायु का तापमान ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ नियमित रूप से कम होता जाता है। जब सूर्य की रोशनी से पृथ्वी गर्म हो जाती है तो यह गर्मी फौरन भूमि के ऊपर हवा में, स्थानान्तरित हो जाती है। प्रदूषक भी गर्म हवा के साथ-साथ ऊपर उठ जाते हैं। सैद्धांतिक रूप से प्रदूषक क्षोभमंडल के अन्दर तक नहीं घुस सकते। वैसे प्रदूषक भूमि से 100 मीटर ऊपर तक के पर्यावरण तक ही पहुंचते है।

सैद्धांतिक परिस्थितियों की अपेक्षा ऊँचाइयों पर तापमान वास्तव में अधिक ठंडा या गर्म हो सकता है। तब, अधिक ठंडी परिस्थितियों में वायु में हलचल रहती है क्योंकि ठंडी वायु गर्म वायु से अधिक सघन होने के कारण नीचे आने लगती है। यदि ऐसी अवस्था में प्रदूषक पर्यावरण में प्रवेश करते हैं तो वे अच्छी तरह तितर बितर हो जाते हैं तथा वायु में इनकी सांद्रता बहुत कम हो जाती है। तथापि गर्म वायु में यह स्थिति नहीं होती और प्रदूषक वायु में कम तितर बितर होते हैं।

क्या आप सोच सकते हैं कि वायुमंडलीय व्युत्क्रमण (atmospheric inversion) के समय स्थिति क्या होगी जब वायु की गर्म पर्त की वितान अधिक ठंडी व सघन पर्त के ऊपर होगी? उस स्थिति में प्रदूषक व्युत्क्रम की पर्त में फंस जायेंगे क्योंकि ठंडी वायु ऊपर की ओर नहीं उठ सकेगी। इस प्रकार ही प्रदूषकों की सांद्रता भयानक स्तर पर पहुंचती है। आमतौर पर ऐसे व्युत्क्रमण स्थानीय होते हैं और इनका प्रभाव थोड़े समय तक थोड़े ही क्षेत्र में होता है। तथापि कुछ व्युत्क्रम हजारों वर्ग किलोमीटर से भी अधिक फैल जाते हैं। यह पहाड़ी क्षेत्रों में खासतौर पर सर्दी के दिनों में सामान्य रूप से देखे जाते हैं क्योंकि पर्वतों की छाया के कारण सूर्य की किरणें घाटी तक प्रवेश नहीं कर पाती हैं। तापमान व्युत्क्रमण के कारण कई औद्योगीकृत देशों में वायु प्रदूषण की भयानक आकस्मिक घटनाएं घटित हुई हैं। सन् 1952 में लंदन में सल्फ़र डाइऑक्साइड, सल्फ़्यूरिक अम्ल व कणिकीय पदार्थों के 100-300 मीटर ऊँचे व्युत्क्रमण में फंसने के कारण 4000 लोगों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार की कई घटनाएं अमरीका, जापान, लंदन व जर्मनी में हुई हैं।

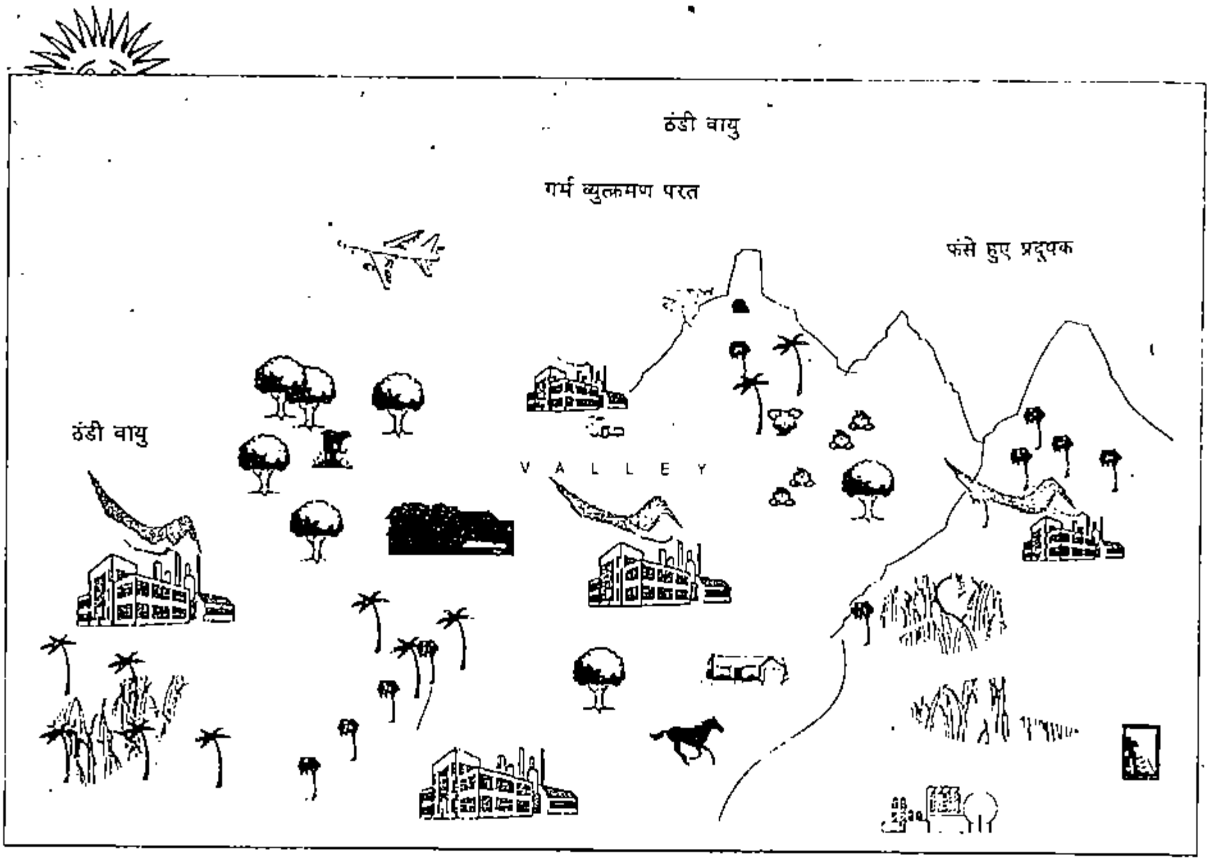

चित्र 15.5 : तापमान व्युत्क्रमण के कारण प्रदूषकों का फंसना

अब आप चित्र 15.6 को देखें। बड़े-बड़े शहरों में गुम्बद के आकार में शहरों के ऊपर फैले प्रदूषक, देखे गये हैं। शहरों में गर्मी कई स्रोतों से निकलती है। दरअसल अपेक्षाकृत ठंडे उपनगरीय व ग्रामीण क्षेत्रों के बीच, बड़े शहर, बड़े गर्म द्वीप के समान हैं। जैसे ही प्रदूषण युक्त गर्म हवा ऊपर की ओर उठती है, वह ठंडी हो जाती है फिर नीचे व बाहर की तरफ चलती है और शहर के ऊपर धूल तथा प्रदूषकों का गुम्बद सा बन जाता है।

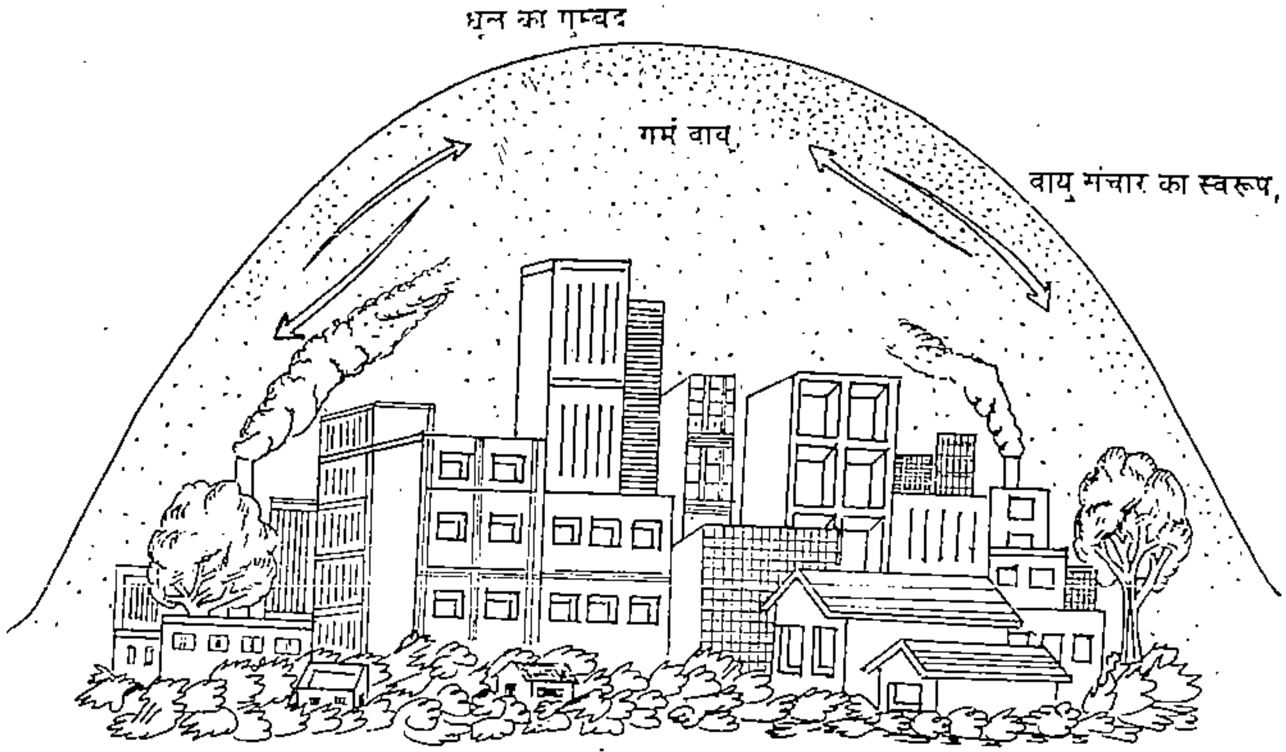

चित्र 15.6 : शहरों के ऊपर गुम्बद के आकार में फैले प्रदूषक

हम आशा करते हैं कि अब तक आपने वायु प्रदूषकों के बारे में काफी जानकारी हासिल कर ली है। अगला भाग पढ़ने से पहले निम्नलिखित बोध प्रश्न हल करें।

बोध प्रश्न 2

क) निम्नलिखित दशाओं में क्या होता है? रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा स्पष्ट कीजिए।

i) जब कोयला सीमित वायु में जलता है।

....

....

ii) CFCs जब ऊपरी वायुमंडल में पहुंचते हैं।

....

....

....

....

iii) गंधक जलने के पश्चात वर्षा हो या बर्फ पड़े।

....

....

....

....

iv) मोटर गाड़ियों का धुंआ जब वायुमंडल में सूर्य की रोशनी के सम्पर्क में आता है।

....

....

....

....

ख) मानव शरीर का आरेख बना कर विभिन्न भागों पर कुछ वायु प्रदूषकों के प्रभाव दिखाइये।

15.4 जल प्रदूषण

सभी जीवधारियों के जीवन के लिए जल सबसे अनिवार्य आवश्यकता है। जल का प्रयोग घरेलू काम काज, कृषि, उद्योग और मनोरंजन (तैरना, नौका विहार, वगैरा) के लिए किया जाता है। इस्तेमाल करने के पश्चात जो पानी विसर्जित किया जाता है उसमें घुलनशील, अघुलनशील विषैले, क्षति पहुंचाने वाले पदार्थ तथा रोगजनक (pathogen) जीव होते हैं। संसार भर के प्राकृतिक जल स्रोतों जैसे नदियों, झीलों, ज्वारनदमुखी में आजकल प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। इस भाग में हम जल प्रदूषण के कारणों, परिणामों तथा किस प्रकार ये मानव स्वास्थ्य व कल्याण को प्रभावित करते हैं, की चर्चा करेंगे।

आपको एक नदी की कहानी वीडियो कार्यक्रम देखने की सलाह दी जाती है।

15.4.1 जल प्रदूषण के कारक

अधिकांश मानव कार्यकलापों से तरल बहिःस्राव उत्पन्न होते हैं जो जल प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। जनसंख्या की तेजी से वृद्धि, गहन कृषि (intensive agriculture) बढ़ते हुए शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप हमारे प्राकृतिक जलाशयों के जल की गुणवत्ता में उत्तरोत्तर ह्रास हुआ है।

जल प्रदूषक

निम्नलिखित में से एक या अधिक सबल कारणों की वजह से जल प्रदूषित हो सकता है—

i) **जैविक** : विषाणु, जीवाणु, प्रजीवाणु तथा कृमि जैसे रोगजनक जीव।

ii) **रासायनिक : अकार्बनिक** : नाइट्रेट, फॉस्फेट, क्लोराइड तथा फ्लुओराइड।

कार्बनिक : पीड़कनाशी, रंजक, क्लोरो यौगिक, फीनोल, पेंट तथा प्लास्टिक।

भारी धातुएं : घुलनशील धातु आयन जैसे पारा, सीसा, कैडमियम, तांबा तथा उनके कार्ब-धात्विक (organometallic) यौगिक।

iii) **भौतिक** : औद्योगिक संयंत्रों से बेकार (waste) ऊष्मा।

जल प्रदूषण के स्रोत

जल प्रदूषकों के कुछ प्राकृतिक स्रोत हैं जैसे कि चट्टानों से खनिज अयस्क (mineral ores), खानों से रसायन, वायुमंडल से गैसें। परन्तु हम यहां पर केवल मानव कार्यकलापों से उत्पन्न स्रोतों का ही जिक्र करेंगे। मोटे तौर पर इन्हें निम्नलिखित श्रेणियों मे बाँटा जा सकता है।

1) घरेलू बहिःस्राव
2) औद्योगिक बहिःस्राव
3) भू-पृष्ठ अपवाह
4) अपशिष्ट ऊष्मा

निश्चित तथा अनिश्चित स्रोत (Point and non-point sources) : ग्राही जल निकाय में किसी विशिष्ट स्थान पर बहिःस्राव के विसर्जन को निश्चित स्रोत (point source) कहते हैं। इसके विपरीत प्रदूषकों के बड़े क्षेत्र में अंतर्वाह को अनिश्चित स्रोत (non-point source) कहते हैं। निश्चित स्रोत से साधारणतया, नदी में एक स्थल पर बहुत अधिक मात्रा में बहिःस्राव बह कर आते हैं जैसे कि गंदे पानी के उपचार संयंत्र, तापीय शक्ति संयंत्र तथा उद्योगों से निकला बहिःस्राव। निश्चित स्रोत से विसर्जित स्राव पर अपेक्षाकृत अधिक रुकावट और नियंत्रण लगाया जा सकता है तथापि खेतों तथा कटे हुए वन-क्षेत्रों से सतही जल निकायों में अपवाह, खेतों से भौमजल में रिसाव, जलावरुद्ध वन तथा निर्माण स्थलों जैसे अनिश्चित स्रोतों पर नियंत्रण रखना कठिन है क्योंकि वर्षा, तूफान और बर्फ पिघलने पर ये जल स्रोतों को प्रदूषित करते हैं।

1) घरेलू बहिःस्राव

रसोईघर, स्नानघर तथा शौचालय के तरल अपशिष्टों को सीधे ही नाले, नदी या किसी अन्य जलाशय द्वारा विसर्जित किया जाता है जो साधारणतया उपचारित नहीं होते हैं। हमारी अधिकांश नदियाँ जिनमें पवित्र गंगा नदी भी शामिल है, तरल बहिःस्रावों के अंधाधुंध विसर्जन के कारण जगह-जगह पर दूषित हैं। इसका कारण है कि हमारे देश में वाहित मल इकट्ठा करने तथा उनका उपचार करने की पर्याप्त सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। प्रथम श्रेणी के नगरों (आबादी 1 लाख से ज्यादा) में भी केवल 60% लोगों को वाहित मल प्रणाली की सुविधा उपलब्ध है। इस कारण अनउपचारित वाहित मल तथा अन्य बहिःस्राव सीधे नदियों, झीलों, मुहानों तथा समुद्रों में विसर्जित कर दिये जाते हैं। शहरी गंदगी तथा मलमूत्र व कूड़ाकरकट फेंकने के कारण भारत की अनेकों झीलें प्रदूषित होती जा रही हैं। उदाहरणस्वरूप कश्मीर की खूबसूरत डल झील शिकारों (house boats), होटलों तथा आसपास के इलाकों के घरेलू बहिःस्रावों तथा अपरिष्कृत वाहित मल के विसर्जन के कारण प्रदूषित हो गई है। जगह-जगह पर झील में से बदबू आने लगी है तथा उसके आसपास का वातावरण अस्वास्थ्यकर हो गया है।

हुगली ज्वारनदमुखी किनारों पर स्थित अनेकों उद्योगों के बहिःस्राव तथा शहरी व घरेलू अपशिष्टों के कारण प्रदूषित हो गई है।

घरेलू बहिःस्रावों तथा वाहित मल में रोगजनक जीव होते हैं तथा ये अकार्बनिक पोषकों, विशेषकर नाइट्रेट तथा फॉस्फेट से भी भरपूर होते हैं। कपड़े धोने के अधिकांश अपमार्जकों में फॉस्फेट होता है। इन पोषकों की अधिकता से पानी की गुणवत्ता में कमी आ जाती है। आजकल

अधिकांश घरों में विनाशकारी कीटों पर नियंत्रण रखने तथा सफाई के लिए अनेकों नये रसायन प्रयुक्त होते हैं। अन्त में उनका नालियों द्वारा ही विसर्जन होता है।

2) औद्योगिक बहि:स्राव

अधिकांश औद्योगिक क्रियाओं से बहि:स्राव उत्पन्न होते हैं जो पास की नदी या किसी अन्य जलाशय में फेंक दिये जाते हैं। औद्योगिक बहि:स्रावों में पारा, कैडमियम, सीसा, ताँबा तथा संखिया (arsenic) जैसी भारी धातुएं होती हैं। बीजों अथवा मृदा द्वारा उत्पन्न होने वाले पौधों के रोगों पर रोकथाम रखने के लिए पारे के यौगिकों को प्रयोग किया जाता है। वर्षा होने पर ये पानी के साथ वह कर जलाशयों को प्रदूषित करते हैं। अन्य मुख्य जल प्रदूषक रसायन हैं—बहुक्लोरीनीकृत बाईफेनिल, फीनोल, रंजक, पेंट, वार्निश तथा प्लास्टिक। इनमें से कुछ रसायन कैंसरजनी हैं। भूमि तथा जल को प्रदूषित करने में औद्योगिक बहि:स्राव ही सबसे अधिक खतरनाक हैं।

यूरोप की राइन (Rhine) नदी विश्व की सबसे अधिक प्रदूषित नदियों में से एक है। इसके डेल्टा की तलहटी की मिट्टी तथा ज्वारनदमुखी में भारी धातुएं तथा विषैले रसायन एकत्रित हो गये हैं। हमारे देश की अधिकांश नदियाँ किसी न किसी स्थान पर प्रदूषण ग्रस्त हैं क्योंकि बहुत से उद्योगों का बहि:स्राव नदी में बहा दिया जाता है जो कि तालिका 15.4 में दिखाया गया है। गंगा नदी में भी वाहित मल व औद्योगिक रसायनों का विसर्जन किया जाता है। गंगा प्रदूषण रोकथाम की योजना 1985 में बनाई गई थी हमें आशा है कि आप इस योजना से परिचित होंगे।।

तालिका 15.1 : भारतीय नदियों के मुख्य प्रदूषण स्रोत

नदी का नाम	प्रदूषण का स्रोत
भद्रा (कर्नाटक)	कागज़ तथा स्टील उद्योग
कावेरी (तमिलनाडु)	चर्म शोध, शराब की भट्ठियाँ, कृत्रिम रेशम और कागज़ की मिलें।
चम्बल (मध्य प्रदेश)	कृत्रिम रेशम मिलें तथा कास्टिक सोडा मिलें
कोऊम (तमिलनाडु)	मोटर गाड़ी का कारखाना
दहा	चीनी मिलें
दामोदर (बोकारो तथा पंचते के बीच)	उर्वरक, स्टील मिलें, बिजली घर कोयला धुलाई
गंगा (कानपुर)	रसायन, धातु तथा शल्य यंत्र उद्योग, चर्म शोधक तथा कपड़ा मिलें
गोदावरी (आंध्रप्रदेश)	कागज़ मिल
गोमती (लखनऊ के पास)	कागज़ तथा लुगदी मिलें
हुगली (कलकत्ता के निकट)	बिजली घर, रसायन मिलें, कागज़ की लुगदी, जूट, कपड़ा, पेंट, वार्निश, धातु, स्टील, वनस्पति तेल, रेयन (कृत्रिम रेशम), साबुन, माचिस, चमड़ा तथा पॉलिथिन उद्योग
जमुना (दिल्ली के निकट)	डी.डी.टी. फैक्टरी, मथुरा शोध कारखाने तथा इन्द्रप्रस्थ बिजली घर
काली (मेरठ में)	चीनी मिलें, शराब निर्माण शाला, साबुन, पेंट, रेयन (कृत्रिम रेशम), सिल्क, सूत, टीन तथा ग्लिसरीन उद्योग
नर्मदा (मध्य प्रदेश)	कागज़ मिलें
सिवान (बिहार)	कागज़, सीमेंट, गंधक तथा चीनी मिलें
सोन (उत्तर प्रदेश)	कागज़ मिलें
सुवाओ (बलरामपुर)	चीनी उद्योग

3) भूपृष्ठ अपवाह

जलाशयों में प्रदूषकों की भारी मात्रा कृष्य भूमि (cultivated land) से आती है। जहाँ अकार्बनिक उर्वरक, पीड़कनाशी, कीटमार और प्रचुर उर्वरकों का प्रयोग होता है। इसके अलावा शहरी और औद्योगिक स्थलों से ठोस अपशिष्ट भी नैसर्गिक जलाशयों को प्रदूषित करते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं डी.डी.टी. (Dichloro-diphenyl-tetra chloroethane), 2, 4 D

(Dichlorophenoxy acetic acid) डीलिड्रन, मैलथियान, कार्बारिल का उपयोग फसलों की सुरक्षा के लिए किया जाता है। अकेले भारत में लगभग 100,000 टन पीड़कनाशियों का प्रयोग होता है। अनुमानों द्वारा ज्ञात हुआ है कि हवाई जहाज द्वारा छिड़काव से पीड़कनाशी सिर्फ 25 से 50% तक ही लक्ष्य तक पहुंच पाते हैं, शेष वायुमंडल में फैल कर दूर-दूर के क्षेत्रों को संदूषित करते हैं। भूमि पर डाले गये पीड़कनाशियों का 25% भाग अंत में समुद्रीय जल में पहुंचता है।

खाद से निकले नाइट्रोजन उर्वरकों, नाइट्रेट तथा अमोनिया के अनुप्रयोग से जलाशयों में नाइट्रेट की मात्रा बढ़ जाती है। आप जानते हैं कि मृदा के जीवाणु अमोनियम आयनों को नाइट्रेट में बदल देते हैं। ऋण चार्ज तथा घुलनशील होने के कारण नाइट्रेट आयनों में गतिशीलता होती हैं। यह ऋण चार्ज वाली चिकनी मिट्टी (clay) तथा ह्यूमिक मिसेलों (humic micelle) से आबन्धित नहीं हो सकते हैं। इसी कारण नाइट्रेट आयन सहज ही मृदा से रिस कर पानी के साथ भौमजल में पहुंच जाते हैं।

4) अपशिष्ट ऊष्मा
तापीय शक्ति संयंत्रों, शोधकों तथा अन्य कई उद्योगों में पानी का उपयोग शीतलक (coolant) के रूप में किया जाता है। गर्म पानी के रूप में अपशिष्ट ऊष्मा आसपास की नदी, झील अथवा समुद्र में बहा दी जाती है, जो ग्राही निकायों का काम करते हैं। उदाहरणस्वरूप कोटा में स्थित परमाणु बिजली घर चम्बल नदी से ठंडा पानी लेता है तथा उसी में गर्म पानी बहा देता है। शक्ति संयंत्रों द्वारा बाहर निकाला गया पानी, शीतलक अंतर्गृहीत जल की अपेक्षा 8-10°C ऊँचे तापमान का बहाया जाता है। समुद्रतट के निकट स्थित परमाणु बिजली घर, अपनी ऊष्मा का 50% तटीय समुद्रीय जल में विसर्जित कर देते हैं। अपशिष्ट ऊष्मा से जलाशयों के पानी का तापमान बढ़ जाता है। इससे विलय हुई ऑक्सीजन की मात्रा तथा सामान्य रूप से जलीय समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इनकी चर्चा हम अगले भागों में करेंगे।

15.4.2 जल प्रदूषण के परिणाम

जल प्रदूषकों और उनके स्रोतों से आप परिचित हो गये हैं। आइये अब देखें कि जल प्रदूषक किस प्रकार जलाशयों, जलीय जीवों तथा मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

1) **जलाशयों पर प्रभाव**
आइए सबसे पहले देखें कि जैव अपशिष्ट (organic wastes) जिनमें फ़ॉस्फेट, नाइट्रेट तथा अन्य पोषक तत्व होते हैं, किस प्रकार जलाशयों की सामान्य गतिविधियों को प्रभावित करते हैं।

विलय हुई ऑक्सीजन (Dissolved Oxygen-DO)
अधिकांश जलीय जीव, पानी में घुली हुई ऑक्सीजन सांस में लेते हैं। पानी के एक इकाई आयतन में विलय हुई ऑक्सीजन की मात्रा केवल 0.0024 ग्राम होती है जो कि उसी आयतन की वायु में 25° सेंटीग्रेड पर विद्यमान ऑक्सीजन का सिर्फ तीसवाँ (1/30) भाग है। तापमान में वृद्धि होने के साथ-साथ यह मात्रा और भी कम होती जाती है। इस प्रकार जलीय जातियों के जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन एक क्रांतिक घटक (critical factor) है।

एक विशिष्ट तापमान तथा वायु दाब पर दिये गये निश्चित मात्रा के पानी में विलयित ऑक्सीजन की मात्रा डी.ओ. (DO) कहलाती है। इसको अंश प्रति मिलियन (parts per million–ppm) में व्यक्त किया जाता है। नैसर्गिक पानी में डी.ओ. निम्न से प्रभावित होती है–i) मिश्रित वायु की मात्रा, ii) जल कॉलम में प्रकाश संश्लेषण की सक्रियता, iii) पौधों, जलीय जीवों और अपघटकों द्वारा जल में घुली ऑक्सीजन का ग्रहण तथा iv) परिवेशी तापमान (ambient temperature)।

बहुत अधिक मात्रा में वाहित मल का विसर्जन करने से डी.ओ. कम हो जाती है क्योंकि जैव द्रव्यों का विघटन करने के लिए अपघटक जीव (decomposers) बहुत मात्रा में जल में घुली हुई ऑक्सीजन इस्तेमाल कर लेते हैं। जिस पानी में ऑक्सीजन की मात्रा 8 ppm से भी कम हो वह जल प्रदूषित माना जाता है। गम्भीर रूप से प्रदूषित जल में डी.ओ. 4 ppm से शून्य तक होता है।

जल की मात्रा तथा बहाव की गति भी जैव विखंडन को प्रभावित करती है क्योंकि बहते जल में ऑक्सीजन की कमी हवा की ऑक्सीजन मिलने से पूरी हो जाती है। जबकि ठहरे हुए जल में डी.ओ. के घटने से जैविक विखंडन विशेषतौर से गर्मियों में बहुत कम हो जाता है।

जैव ऑक्सीजन माँग-बी.ओ.डी. (Biological Oxygen Demand–BOD)
जैव विखंडनीय द्रव्यों को डालने से जलाशयों की ऑक्सीजन की माँग बढ़ जाती है। ऑक्सीजन की माँग का प्रत्यक्ष सम्बन्ध बढ़ते हुए जैव द्रव्यों से है और इसे **जैव ऑक्सीजन माँग**

(बी.ओ.डी.)द्वारा बताया जाता है। यह दिये गये जल को 20° सेंटीग्रेड पर पाँच दिन की अवधि तक ऊष्मायन करने पर वायुजीवी जीवाणु द्वारा जैव विखंडन करने के लिए विलय की गई ऑक्सीजन की माँग है। यह अंश प्रति मिलियन या मिलीग्राम ऑक्सीजन प्रति लिटर में व्यक्त किया जाता है। बी.ओ.डी. का अधिक मान जैव अपशिष्टों या वाहित मल की अधिक मात्रा दर्शाता है।

सुपोषण (Eutrophication)

साधारण मात्रा में जलाशयों में वाहित मल को प्राकृतिक रूप से विघटित करने की क्षमता होती है और कुछ समय पश्चात् पानी स्वयं ही स्वच्छ हो जाता है पर समस्या तब उत्पन्न होती है जब फेंके हुए वाहित मल का आयतन व सांद्रता जलाशयों को स्वच्छ करने की क्षमता से अधिक होती है। एफ़.एस.टी.-1 की इकाई 16 तथा इस पाठ्यक्रम की इकाई 6 में सुपोषण के बारे में आप पहले ही पढ़ चुके हैं। आमतौर पर सुपोषित होने पर जलाशयों में निम्नलिखित क्रमिक घटनाएँ होती हैं—i) अच्छा पोषण शैवालों को अत्यधिक पनपने में मदद करता है, ii) पानी में डी.ओ. की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि प्रकाश संश्लेषण तथा हवा द्वारा प्राप्त ऑक्सीजन की मात्रा जलाशय की ऑक्सीजन की माँग को पूरा नहीं कर सकती है इसलिए मछलियों की कुछ जातियाँ मर जाती हैं, iii) शैवाल भी मर जाते हैं और उनकी सड़न पर वायुजीवी जीवाणु पनपने लगते हैं, iv) इससे पानी का विऑक्सीजनीकरण (deoxygenation) होता है और परिणामस्वरूप और जलीय जातियाँ समाप्त होने लगती हैं, v) अब अवायवीय जीवाणु स्थान लेते हैं। ये मेथैन तथा अन्य गैसें छोड़ते हैं जिनसे बदबू फैल जाती है।

रोगाणुओं द्वारा संदूषण

वाहित मल, रोगजनक विषाणुओं, जीवाणुओं, कृमि तथा अन्य परजीवियों का स्रोत होता है। कोई जलाशय रोगाणुओं द्वारा कितना प्रदूषित है इसका पता हानिरहित कॉलीफार्म जीवाणुओं की गिनती द्वारा लगाया जाता है। अन्यथा नियमित रूप से विशिष्ट रोग का पता लगाना व्यावहारिक नहीं है। क्योंकि इसमें अधिक समय की आवश्यकता होती है और महंगा भी पड़ता है। इस कारण अप्रत्यक्ष तरीका अपनाया जाता है जिसमें प्राकृतिक रूप से मनुष्यों की आंतों तथा मल में पाये जाने वाले कॉलीफार्म जीवाणुओं को मॉनीटर किया जाता है। पानी में कॉलीफार्म की अधिक संख्या से मल-संदूषण की मात्रा का संकेत मिलता है। मल में जल-संबंधी बीमारियों के रोगजनक कारक होना संभव है।

2) जलीय जीवों पर प्रभाव

आविषी जल प्रदूषक जैसे कि भारी धातुएँ, पीड़कनाशी, कीटमार और रसायन प्रत्यक्ष रूप से जलीय जातियों को प्रभावित करते हैं जबकि गैर आविषी जैव अपशिष्टों का बाहुल्य जल में डी.ओ. को कम करके अप्रत्यक्ष रूप से जलीय जातियों को कम कर सकता है। ट्राउट (trout), बैस (bass) जैसी संवेदनशील जातियाँ जिनको ऑक्सीजन का स्तर अधिक चाहिए, पहले समाप्त हो जाती हैं। डी.ओ. के और अधिक कम होने से जोंक, शिंगटी (catfish), शफरी (carp) मर जाती हैं। सिर्फ प्रतिरोधी जातियाँ जैसे कि सर्पमीन (eel) व कठोर किस्म के कृमि बच जाते हैं। ट्राउट तथा सामन (salmon) प्रदूषण के उत्तम संकेतक हैं। झीलों और तालाबों के पोषक तत्वों में जरा से परिवर्तन से जलीय पेड़-पौधे प्रभावित होते हैं। इस प्रकार पूरा पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित होता है।

साधारणतया पौधों और प्राणियों में अपने तंत्रों से विष को बाहर कर देने की क्षमता होती है। परन्तु कुछ रसायन जैसे कि पीड़कनाशी, कीटमार, मेथिल मरक्यूरी शरीर में इकट्ठे होने लगते हैं। उदाहरण के लिए डी.डी.टी. एक कार्ब-क्लोराइड है। यह पानी में नहीं घुलता परन्तु वसा में घुल जाता है इसलिए जीवों में यह लम्बे समय तक संचित रहता है। इसे **जैव संचय (bioaccumulation)** कहते हैं। फिर आहार शृंखला द्वारा यह विष अन्य जीवों में पहुँचता है। उदाहरण के लिए एक झील में डी.डी.टी. के 0.02 ppm सान्द्रण का प्रवेश **पक्षी** में, प्लवक (15 ppm), मछली (300-400) द्वारा 2000 ppm तक जा सकता है। इसी प्रकार मृदा पर 9.9 ppm डी.डी.टी. का छिड़काव, पौधे (44 ppm) द्वारा रोबिन में (445 ppm) तक पहुँच जाता है। आहार शृंखला द्वारा उच्च स्तर के जीवों में आविष का सांद्रण बढ़ने को **जैव आवर्धन (biomagnification)** कहते हैं। यहाँ इस बात को समझना जरूरी है कि डी.ओ. के कम स्तर पर जैव संचय अधिक होता है क्योंकि कम डी.ओ. में मछली के सांस लेने की दर में वृद्धि हो जाती है और उसे सांस लेने के लिए जबरदस्ती अधिक पानी अन्दर लेना पड़ता है जो कि आविषी धातुओं और रसायनों से प्रदूषित हो सकता है। इस प्रकार जलाशय की अपेक्षा मछली में उनका अंतर्ग्रहण कई गुना बढ़ सकता है।

डी.डी.टी. तथा उनके उपापचयज (metabolites) के कारण पक्षियों के अंडों के कवच पतले हो जाते हैं। ये अंडे, सेने वाले माता-पिता के भार से कुचल जाते हैं। यदि अंडे साबुत बच ... हैं

उनमें सामान्य रूप से अंडे नहीं निकल पाते। आठवें दशक में डी.डी.टी. के ही कारण बाल्ड उकाब (bald eagle) तथा भूरी पेलिकन यानि हवासिल (brown pelican) की जनसंख्या में एकदम कमी हो गई थी। डी.डी.टी. से संदूषित मछलियाँ खाने से अक्सर पक्षी, चील व मिंक की मृत्यु हो जाती है। यदि वे बच जाते हैं तो उनके बच्चे कुछ ही दिनों में मर जाते हैं और इस प्रकार पूरी जनसंख्या प्रभावित होती है। डी.डी.टी. तथा आल्ड्रिन के केवल एक बार छिड़काव के अंश 15 वर्षों बाद भी पाये गए हैं। अगर किसी खेत में एक बार छिड़काव किया जाता है तो परभक्षी जीव लगातार कई वर्षों तक उसके प्रभाव में रहते हैं।

शक्ति संयंत्रों से अधिक मात्रा में गर्म जल विसर्जित होने के कारण मछली की कुछ जातियों तथा अन्य जलीय जीवों की मृत्यु हो जाती है। जिसके कारण पारिस्थितिक असंतुलन हो जाता है। पानी के तापमान के बढ़ने से उपापचय भी बढ़ता है जिससे जीवों को और अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। चूँकि पानी का डी.ओ. तापमान बढ़ने से घटता है इसलिए जीवों का दम घुट जाता है।

आप जानते हैं कि अधिकांश जलीय बाह्योष्मी (ectothermal) होते हैं यानि उनके शरीर का तापमान वातावरण के तापमान से निश्चित होता है। विभिन्न जातियों की वृद्धि, विकास एवम् प्रजनन के लिए अलग-अलग इष्टतम तापमान होता है। तापमान में थोड़ी सी वृद्धि होने से तनुतापी (stenothermal) जातियों की मृत्यु हो जाती है। गर्म पानी से कुछ जातियों में असमय प्रजनन प्रारंभ हो जाता है परन्तु जीवित रहने की वांछित दशाएँ जैसे कि भोजन उपलब्ध न होने के कारण बच्चे जीवित नहीं रह पाते। जगह-जगह पर अपशिष्ट ऊष्मा के कारण जलाशयों के तापमान की वृद्धि होने से मछलियों का प्रवास रुक जाता है जो उनके जीवन चक्र के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार तापमान से उनके जीवन चक्र अपूर्ण रह सकते हैं।

3) **स्वास्थ्य पर प्रभाव**

जल प्रदूषण के कारण पीने, नहाने, तैरने तथा मनोरंजन और सिंचाई के काम में आने वाले पानी की गुणवत्ता कम हो जाती है। वाहित मल से संदूषित जल में बदबू आने लगती है तथा आस-पड़ोस में अस्वास्थ्यकर दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनका स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है। विषाणु, जीवाणु, प्रजीवाणु तथा कृमि का स्रोत वाहित मल से प्रदूषित पीने का पानी है। पानी से फैलने वाले रोग जैसे कि पेचिश, टायफायड, पीलिया तथा कृमियों द्वारा संक्रामक रोग अभी भी विकासशील देशों की जन स्वास्थ्य-संबंधी मुख्य समस्याएँ हैं। तालिका 15.2 में मुख्य भारतीय नदियों में कॉलीफार्म जीवाणुओं की गणना द्वारा संदूषण को मापा गया है।

अधिक मात्रा में पारा, सीसा, कैडमियम, जिंक तथा ताँबा जैसी भारी धातुएँ स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक हैं। बहिःस्राव में बहाए गये पारे के यौगिक जलीय पर्यावरण में जीवाणु की क्रिया द्वारा अत्यधिक आविषी पारे के यौगिक-मेथिल मरक्यूरी में बदल जाते हैं। सन् 1952 में, जापान में मिनामाटा खाड़ी से प्रदूषित मछली खाने से "मिनामाटा नामक" बीमारी हुई जो कि पारे की विषाक्तता के कारण हुई। मछलियों में मेथिल मरक्यूरी, पर्यावरण में उसके सांद्रण की तुलना में हजार गुना अधिक इकट्ठा हो सकती है। इससे प्रभावित लोगों के हाथ, पैर, ओंठ तथा जीभ सुन्न हो गये तथा उन पर नियंत्रण नहीं रहा। इसके कारण बहरापन, धुंधला दिखना, उदासीनता तथा विक्षोभ भी हो गया।

तालिका 15.2 : नदी के जल की आविषता

नदी	शौच के कोलीफॉर्म (संख्या 100 मिली लीटर में)
माही	550,000
नर्मदा	260,000
ताप्ती	37,000
बाण गंगा	3,699
कावेरी	439
कृष्णा	57
गोदावरी	7
पेरियार	767
साबरमती	1,147

स्रोत : वर्ल्ड रिसोर्स 1987 : इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर एन्वायरमेंट, बेसिक बुक्स इंकॉर्पोरेशन 1987 द्वारा दी गई रिपोर्ट से।

कैडमियम प्रदूषण के कारण एक अन्य "इटाई-इटाई" (Itai-Itai) नामक रोग भी जापान में कैडमियम धातु से संदूषित चावलों को खाने से हुआ। प्रदूषण का कारण था कि चावल के खेत जस्ते के प्रगलकों से निकले बहिःस्राव से सींचे गये थे। इटाई-इटाई हड्डियों का एक बहुत ही पीड़ादायक रोग है तथा इसमें फेफड़ों तथा यकृत का कैंसर भी हो जाता है। कैडमियम यकृत, गुर्दों तथा अग्न्याशय में एकत्रित हो जाता है तथा कुछ एन्जाइमों के कार्य में बाधा पहुँचाता है।

पीने के पानी में नाइट्रेट की अधिकता से मेथमोग्लोबिनिमिया (methamoglobinemia) नामक रोग हो जाता है। दरअसल नाइट्रेट हीमोग्लोबिन को मेथमोग्लोबिन में बदल देता है जो कि हीमोग्लोबिन की ऑक्सीकृत (oxidised-Fe^{3+}) अवस्था है जो कार्य नहीं कर सकता है। मानव के लिए नाइट्रेट घातक हो सकता है विशेषकर तीन माह से कम उम्र के शिशुओं के लिए। नाइट्रेट से प्रभावित शिशुओं को ब्लू बेबीज़ (blue babies) कहा जाता है।

आप जानते हैं कि दंतक्षय को रोकने के लिए फ़्लुओराइड टूथपेस्टों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु फ़्लुओराइड की अधिकता से धब्बेदार दाँत, जोड़ों में अकड़न तथा हड्डियाँ सख़्त हो जाती हैं। इस रोग को कंकालीय फ़्लुओरोसिस (skeletal fluorosis) या घुटन तोड़ (knock knees) कहते हैं। घुटनों में विरूपता होने से चलने फिरने में असमर्थता आ जाती है। तमिलनाडु, केरल, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा तथा बिहार के पानी में फ़्लुओराइड की अधिकता पाई जाती है। पानी के क्लोरीनीकरण से क्लोरीनीकृत यौगिक उत्पन्न होते हैं। यह भी ज्ञात है कि इनमें से कुछ कैंसरजनी तथा विरूपोत्पादक (teratogens) हैं।

पीड़कनाशी की मात्रा उच्च पोषण रीति के जीवों में बढ़ती जाती है। डी.डी.टी. तथा आल्ड्रिन जैसे पीड़कनाशी तथा डील्ड्रिन रसायन के कैंसरजनी तथा विरूपोत्पादक होने की संभावना है। इनके कारण कंप (tremors), व्याक्षोम (convulsions) होते हैं जिनसे गुर्दों को क्षति पहुँचती है। भारत में एक केस का अध्ययन करते समय पीड़कनाशियों के खतरों का पता चला। कर्नाटक के मलनाड इलाके के हरिजन एक विशिष्ट रोग से ग्रसित हुए, जो केकड़ों को खाने से हुआ। यह केकड़े धान के खेतों से पकड़े गये थे जिन पर पीड़कनाशी का छिड़काव किया गया था। इस रोग में कूल्हे तथा घुटनों में दर्द रहने लगा और बाद में रोगी इतने विकलांग हो गये कि खड़े भी नहीं हो पाते थे।

सन् 1965 की एक रिपोर्ट के अनुसार भारतीयों में पीड़कनाशियों का ऊतकों में संचयन सबसे अधिक है। इसके संभावित कारण हैं—गलत ढंग से पीड़कनाशियों का प्रयोग, लगातार उनका संपर्क, खाने पीने की वस्तुओं में संदूषण तथा पीड़कनाशियों द्वारा उपचारित खाद्यान्नों, अनाजों तथा सब्जियों का उपयोग।

अभी तक अनेकों संश्लेषित रसायनों के तीक्ष्ण प्रभाव ज्ञात नहीं हैं। परन्तु उनके दीर्घ काल के पश्चात् कुप्रभाव होने की आशंका है। पिछले वर्षों में कुछ छुटपुट आकस्मिक घटनाओं की सूचना है। उदाहरणतया सन् 1968 में 1000 जापानी बहुक्लोरीनीकृत बाईफ़ेनिल से संदूषित चावल खाने से भयंकर रूप से बीमार पड़ गये। कई अन्य रसायनों के भी कैंसरजनी होने की आशंका है।

पानी में अधिक फ़्लुओराइड के उद्ग्रहण के कारण आंध्रप्रदेश के गांवों में घुटनतोड़ नामक रोग पाया गया है। हैदराबाद के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रीशन के वैज्ञानिकों का विश्वास है कि बाँध के जल के अवस्राव के कारण, मृदा की क्षारता में परिवर्तन से मृदा के तत्व फ़्लुओराइड, कैल्सियम, ताँबा, जिंक, मोलिब्डेनम तथा मैग्नीसियम के संघटन में अंतर आया है। परिणामस्वरूप सोरघम (sorghum) पौधे भारी धातुएं उद्ग्रहित करते हैं। मनुष्यों में ऐसे सोरघम ग्रहण करने से ताँबे की कमी हो जाती है और इसकी कमी से फ़्लुओराइड का उद्ग्रहण अधिक होता है जिसके कारण घुटनतोड़ रोग हो जाता है इस प्रकार एक दुर्घटना दूसरी घटनाओं से जुड़ती चली जाती है और भयंकर रूप से घातक सिद्ध होती है।

बोध प्रश्न 3

1) क) नीचे दिये गये मुख्य जल-प्रदूषकों में से प्रत्येक के दो-दो स्रोत तथा प्रभाव लिखिए।

प्रदूषक	स्रोत	प्रभाव
i) रोग-उत्पन्न करने के कारक		
ii) नाइट्रेट तथा फ़ॉस्फ़ेट		
iii) मेथिल मरक्यूरी		
iv) सीसा		
v) डी.डी.टी.		

ख) आरेख द्वारा उन विभिन्न जल प्रदूषकों तथा उनके स्रोतों के बारे में बतायें जिनसे झील में सुपोषण होता है।

ग) पानी में निम्नस्तर के पीड़कनाशियों से, साधारणतया वनस्पति जीवी मछली की अपेक्षा मांसाहारी मछली क्यों अधिक संवेदनशील होती है व्याख्या करें।

....

....

....

15.4.3 भौमजल प्रदूषण

हमारी अधिकांश जनता भूमिगत जल स्रोतों पर निर्भर है। तथापि, कूड़ा करकट के ढेरों, सेप्टिक टैंकों, वाहित मल की नालियों, ईंधन के टैंकों, कृषीय अपवाह तथा औद्योगिक वहि:स्राव के अवस्राव से होने वाले प्रदूषण से अब भौमजल खतरे में है।

भारत के कुछ शहरों में हैजे की घटनाएँ अक्सर हैंड पम्पों में वाहित मल के अवस्राव के कारण हुई हैं। कृषि अपवाह के अवस्राव से पानी नाइट्रेट से संदूषित होता है जिसके कारण मेथमोग्लोबिनिमिया बीमारी होती है। भारत के कई भागों का भौमजल विशेषकर शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में, विषैली धातुओं तथा फ्लुओराइड की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा से संदूषित है। पंजाब-लुधियाना, सोनीपत और अम्बाला जैसे औद्योगिक नगरों में, जहाँ साइकिल या गर्म कपड़े या दोनों बनाए जाते हैं, भारी धातुओं से भौमजल के प्रदूषित होने की रिपोर्ट मिली है। प्रदूषित जल में क्रोमियम, निकैल, सीसा, एलुमिनियम, ताँबा जैसे धातु आयन यहाँ तक कि सायनाइड होते हैं।

दूसरा उदाहरण राजस्थान के पाली शहर का है जहाँ शहर के चारों ओर फैली 450 कपड़े की मिलों के वहि:स्राव के कारण भौमजल प्रदूषित हो रहा है। वहि:स्राव में रंजक, विरंजक, अम्ल तथा अन्य रसायन शामिल होते हैं। ये कहीं भी ज़मीन पर सुविधानुसार फेंक दिये जाते हैं। यह वहि:स्राव मिट्टी से रिसते हुए भौमजल में प्रवेश कर उसे संदूषित करते हैं। कुछ रसायन विशेषकर कपड़े की फैक्टरियों में प्रयोग किये जाने वाले रंग कैंसरजन्य हैं।

तमिलनाडु के अम्बुर तथा रानीपट का भौमजल उस क्षेत्र में विद्यमान, अनेकों चर्म शोधकों के वहि:स्राव के भूमि पर विसर्जन से संदूषित है।

भौमजल की गुणवत्ता में ह्रास चिन्ता का विषय है क्योंकि भूपृष्ठ जल की, कुछ समय पश्चात स्वयं ही स्वच्छ होने की संभावना होती है अथवा वह उपचारित हो सकता है परन्तु भौमजल के साथ यह नहीं हो सकता। इसमें प्रदूषण का पता लगाना या उसमें सुधार करना मुश्किल है। इस कारण ये शताब्दियों तक वैसे ही दूषित रह सकता है।

15.4.4 समुद्रीय प्रदूषण

जल प्रवाहों, नहरों तथा नदियों में फेंके गये प्रदूषक अंत में समुद्र में ही पहुँचते हैं क्योंकि अधिकांश नदियाँ समुद्र में मिलती हैं। हिंद महासागर के तट के निकट समुद्री क्षेत्रों को 14 नदियाँ प्रदूषित करती हैं जिसमें वे अपवाह विसर्जित करती हैं। नदियों, झीलों व अन्य जल प्रवाहों की भाँति समुद्र भी जैव पदार्थों को तनु, परिक्षेप (disperse) व विखंडित करते हैं परन्तु उनकी क्षमता असीमित नहीं है। इसलिए समुद्र भी प्रदूषित रहते हैं विशेषकर तटीय क्षेत्रों के निकट, जहाँ बड़े शहर, बंदरगाह तथा औद्योगिक केन्द्र स्थित होते हैं। ज्वारनदमुखी और आर्द्रभूमि, क्षेत्र तटीय रेखा (coastline) को कटाव तथा नुकसान से बचाते हैं। इनमें भी प्रदूषण बढ़ता चला जा रहा है। आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि ज्वारनदमुखी पृथ्वी के सबसे उत्पादक पारिस्थितिकी तंत्र हैं।

भारत की तटीय रेखा लगभग 7000 किलोमीटर है। हमारी कुल जनसंख्या का 25% भाग तटीय क्षेत्रों में रहता है तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से समुद्रीय संसाधनों पर आश्रित है। तटीय रेखा के निकट समुद्र में घरेलू वाहित मल, तथा उद्योगों का औद्योगिक वहि:स्राव तथा आम ठोस कूड़ा करकट फेंक दिया जाता है।

यहाँ पर टैंकर से तेल बिखरने तथा बहते हुए अन्य प्रदूषकों की रिपोर्ट मिली है। दुर्घटनाओं के कारण प्रतिवर्ष विसर्जित होने वाला तेल जिसे तेल उत्प्लवन (oil spill) भी कहा जाता है लगभग 50 लाख मीट्रिक टन होता है।

साधारणतया निम्नलिखित कारणों से समुद्र प्रदूषित होते हैं।

i) **वाहित मल आपंक (sewage sludge)** : नदियाँ जो समुद्र में गिरती हैं, उनमें जीवाणु, विषाणु से भरे हुए जैव पदार्थ, आविषी धातुएँ, संश्लेषित रसायन तथा वाहित मल उपचार संयंत्र से

अपशिष्ट जल के ठोम अवशेष शामिल होते हैं।

ii) **औद्योगिक बहिःस्राव** : इनमें खतरनाक रसायन, प्लास्टिक, टिन, धातुओं के टुकड़े, उर्वरक तथा पीड़कनाशी शामिल हैं।

iii) **अपशिष्ट ऊष्मा** : उद्योगों द्वारा छोड़ा गया गर्म पानी भी महासागरों में छोड़ा जाता है।

iv) **तेल उत्प्लवन (oil spills) और समुद्री जहाजों से विसर्जन** : यह तेल टैंकरों की दुर्घटनाओं, अपतट वेधन (offshore drilling), तेल के छुटपुट उत्प्लवन, प्राकृतिक रिसाव, तथा समुद्री जहाजों की सफाई करने पर होता है।

v) **मुहरबंद ड्रमों में आविषी अपशिष्ट** : ये पैक किये हुए अपशिष्ट जैसे कि विषैले रसायन या रेडियोधर्मी आइसोटोप होते हैं। चूंकि ऐसा समझा जाता है कि गहरे सागरों में अपशिष्टों को पचाने की क्षमता भूमि की अपेक्षा अधिक है इस कारण ऐसे हजारों ड्रम समुद्रों में फेंके जा चुके हैं। तथापि ये ड्रम कभी न कभी या तो रिसते हैं या टूट जाते हैं। ऐसे कई ड्रमों को महाद्वीपीय तटों तथा उपतटों पर देखा गया है क्योंकि वे अच्छी तरह से पैक नहीं किये गये थे या समुद्र में गलत स्थान पर फेंके गये थे।

संभवतया इन सभी प्रदूषकों का समुद्रीय पर्यावरण पर कुप्रभाव होगा तथा दीर्घकाल तक रहेगा। यहाँ पर हमें यह बता देना चाहिए कि भूमि पर सघन कृषि में प्रयुक्त होने वाले उर्वरक, पीड़कनाशी, शाकनाशी जो कि आवश्यक हैं पानी में पहुँच कर मत्स्य उद्योगों को कुप्रभावित करते हैं। क्योंकि जैव विखंडन अयोग्य प्रदूषकों का समुद्रीय जीवों में जैव संचयन (biomagnification) होता है।

कच्चा तेल महासागरों के प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। मार्च सन् 1978 में तेल के टैंकर नष्ट हो जाने के कारण फ्रांस के ब्रिटेनी तट (Coast of Britany) पर 223 हजार टन तेल बिखर गया। दूसरा बड़ा 440 हजार टन तेल का अधिप्लाव मैक्सिको की खाड़ी में अपतट वेधन (offshore drilling) के परिणामस्वरूप हुआ। खाड़ी युद्ध के दौरान महासागरों में तेल का बहुत अधिक बिखराव हुआ। खाड़ी में हजारों टन अपरिष्कृत तेल उलीचा गया तथा ईराक ने कई तेल के कुओं को आग लगा दी। तेल संदूषण से बचाने के लिए जल विलवणीकरण संयंत्र बन्द कर दिये गये। जलीय जीवों की मृत्यु तथा विशिष्ट प्रदेश की वनस्पति के नाश की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। समुद्र में तेल के फैलने से बड़े और छोटे समुद्रीय पक्षियों का प्राकृतिक रोधन (insulation) और उत्पलावकता (buoyancy) नष्ट हो जाती है और वे डूब जाते हैं। तेल के घटकों से तलहटी में रहने वाले जीवों जैसे मछली, केकड़े, सीपी, शबु पर कुप्रभाव होते हैं और वह मर भी सकते हैं क्योंकि तेल की पर्त से उनके क्लोम विकृत हो जाते हैं।

अत्यधिक मात्रा में तेल के उत्प्लवन की एक अन्य सूचना 1989 में मिली। यह अलास्का के निकट मूंगे की चट्टानों (coral reef) में 500 लाख गैलन टैंकर के रिसने से हुई। आप शायद जानते ही हैं कि मूंगे की चट्टानों पर जीवों में बहुत अधिक विविधता पायी जाती है इसलिए प्रदूषण से उनकी रक्षा करना आवश्यक हो जाता है।

15.5 भूमि प्रदूषण

भूमि, घरेलू तथा विनिर्माण इकाइयों द्वारा उत्पन्न ठोस अपशिष्टों के कारण प्रदूषित हो रही है। ऐसे कुछ अपशिष्टों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

घरेलू अपशिष्ट : रसोई का कूड़ा करकट, अन्य घरेलू कचरा, टूटे काँच के बर्तन तथा बोतलें, टिन के फालतू डिब्बे, प्लास्टिक की बोतलें, फटे कपड़े, कागज के टुकड़े, गत्ते के डिब्बे, राख आदि। व्यापारिक प्रतिष्ठानों से भी ऐसे अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं।

औद्योगिक अपशिष्ट : बड़े उद्योगों से स्लेग, फ्लाई ऐश, चूने का आपंक (lime sludge), ब्राइन पंक (brine mud) ताँबे का स्लेग तथा धातुओं के टुकड़े आदि। लघु उद्योगों से राख, चर्म शोधकों से अपशिष्ट, रंजक, ऊन के बचे खुचे टुकड़े, धागे, कागज प्लास्टिक तथा और भी अनेकों प्रकार के अपशिष्ट।

उपरोक्त घरेलू तथा औद्योगिक अपशिष्टों के अलावा खेतों से अपवाह और वाहित मल से भी भूमि प्रदूषित होती है।

एक बड़ी समस्या जो शहरों व महानगरों के नगर अधिकारियों के सामने आती है वह है शहर के कूड़े कचरे का सुरक्षित और स्वास्थ्यकर तरीके से निपटान। साधारणतया कूड़े करकट की उत्पन्न मात्रा का सीधा अनुपातिक संबंध समाज की धनाढ्यता से होता है।

उदाहरणस्वरूप दिल्ली के सम्पन्न इलाकों में ठोस अपशिष्ट 800-1000 ग्राम प्रतिदिन उत्पन्न होते हैं जबकि म्युनिसिपल कॉरपोरेशन के क्षेत्रों में 300 ग्राम प्रतिदिन तथा ग्रामीण क्षेत्रों में और भी कम अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। भारतीय नगरों में प्रति व्यक्ति औसतन 300-400 ग्राम अपशिष्ट प्रतिदिन उत्पन्न होते हैं। उन्नत देशों की तुलना में यह बहुत ही कम है तथापि भारत के बड़े नगरों की जनसंख्या बहुत अधिक है और इस कारण अपशिष्टों का परिमाण अधिक है परन्तु उनके निपटान की दक्षता कम है जो लगभग 50 से 70% ही है। बाकी बचे अपशिष्टों का निपटान न होने से आसपास अस्वास्थ्यकर दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

कुछ चुने हुए नगरों का ठोस अपशिष्ट उत्पादन

नगर	जनसंख्या	ठोस अपशिष्ट (टन, प्रतिदिन)
बम्बई	8,227,332	3200
मद्रास	4,276,635	1819
कानपुर	1,688,424	2142
कोयम्बटूर	917,155	175
इन्दौर	827,071	120
मेरठ	538,461	120
जामनगर	317,037	149
आनन्द (आणन्द)	83,815	34
खोपोली	32,108	6
देहगाम	24,817	9

स्रोत : केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड दस्तावेज़ (सी.पी.सी.बी.) 1988-1989

भारत के उद्योगों से भी बड़ी मात्रा में अनेकों प्रकार के अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए लोहे और स्टील की समकालित मिलों की वात भट्टियों द्वारा लगभग 350 लाख टन स्लेग तथा कोयले से जलने वाले पावर स्टेशनों से लगभग 800 लाख टन फ्लाई ऐश प्रतिवर्ष उत्पन्न होती है यदि अन्य बड़े और 25 लाख लघु उद्योगों को भी शामिल किया जाय तो उद्योगों के ठोस अपशिष्टों की कुल मात्रा बहुत अधिक होगी।

आप जानते हैं कि भूमि पर फेंके वाहित मल और औद्योगिक अपशिष्ट, मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं तथा ये हमारे भूपृष्ठ और भौमजल स्रोतों को प्रदूषित करते हैं। अम्लों, क्षारों, कीटमार, धूमक, शाकनाशी आदि से मृदा की उर्वरता में अन्तर आ जाता है। वियतनाम तथा अन्य स्थानों पर इस्तेमाल किये गये आधुनिक जैव शस्त्रों के कारण पौधों, पशुओं तथा मानव की प्रजनन प्रक्रिया में वहुत परिवर्तन आया है। जिन स्थानों पर इन शस्त्रों का प्रयोग किया गया था वहां की मृदा का क्षय तथा पौधों और मनुष्यों को क्षति पहुँची है। इन लोगों का स्वास्थ्य तेज़ी से बिगड़ने के पश्चात कुछ की मृत्यु हो जाती है।

अंत में हम यहां नीचे दिये एक उदाहरण से स्पष्ट करेंगे कि औद्योगिक अपशिष्टों को बिना सोचे समझे फेंकने से किस प्रकार अमरीका के एक प्राथमिक स्कूल के छोटे बच्चे इनकी चपेट में आ गये।

केस अध्ययन

लव केनाल में विषैले रसायनों का विसर्जन : नियाग्रा प्रपात (Niagara Falls) में चालू हुकर केमिकल्स (Hooker Chemicals) नामक एक रसायन बनाने वाली कम्पनी ने अपने अपशिष्टों के निपटान के लिए लव केनाल नामक एक परित्यक्त नहर को खरीदा। लगभग 19,000 टन रासायनिक अपशिष्ट ड्रमों में पैक करके उसमें फेंक दिये गये। अपना कूड़ाकरकट फेंकने के इस स्थान को मिट्टी व कचरे से ढक कर कम्पनी ने सन् 1953 मे नियाग्रा प्रपात के शिक्षा बोर्ड को बेच दिया। बोर्ड ने इस स्थान पर एक प्राथमिक स्कूल तथा खेल का मैदान बनाया। सन् 1973 में वर्षा अधिक होने के कारण भौमजल का स्तर बढ़ गया और वह स्थान कीचड़ भरा दलदल बन गया। यह स्थान विषैले रसायनों से संदूषित था जो खेल के मैदान में तैर रहे थे तथा आसपड़ोस के घरों के तहखानों (basement) में भी प्रवेश कर गये थे। शीघ्र ही आसपास के क्षेत्र के बच्चे तथा वयस्क तेज सिर दर्द, चर्मघाव, (skin sores) मलाशयी रक्तस्राव (rectal bleeding), यकृत में खराबी तथा मिरगी से ग्रसित हो गये। बाद में गर्भपात तथा पैदा हुए बच्चों में जन्मजात दोषों की रिपोर्ट भी मिली।

जाँच पड़ताल करने पर यह पता चला कि दलदल में ये रसायन हुकर कम्पनी द्वारा एक दशक पहले यहां पर गाड़े ड्रमों के कारण था जो कि अब रिसने लगे थे।

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि खतरनाक अपशिष्टों की क्षेपण भूमि (dumping ground) एक टाइम बम्ब (time-bomb) की तरह हैं जो बिना चेतावनी दिये कभी भी फट सकते हैं। इस प्रकार की क्षेपण भूमि आवास के सर्वदा अयोग्य हो जाती है।

भारत में भी अन्य कई देशों की भांति नागरिक अधिकारी ठोस अपशिष्ट व्यवस्था को बहुत महत्व नहीं देते। उनके रवैये से ऐसा लगता है कि ठोस अपशिष्ट व्यवस्था के बदले में पर्याप्त लाभ नहीं होते और इनकी उपेक्षा से जन स्वास्थ्य पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ेगा। हालाँकि इस नीति के कुप्रभाव अभी से ही कुछ शहरों में दिखने लगे हैं इसलिए यह अत्यावश्यक है सुधार के लिए उपयुक्त कदम उठाये जायें क्योंकि परिस्थिति पहले से ही चिंताजनक है।

बोध प्रश्न 4

क) भारत के किन्हीं दो नगरों के भौमजल के प्रदूषकों तथा उनके स्रोतों के बारे में लिखिए।

....

....

....

....

ख) निम्नलिखित कथनों के रिक्त स्थानों में उचित शब्द लिखें।

i) महासागरों में अपशिष्ट ऊष्मा फेंकने से.................................की मृत्यु, ...बाधा और ....प्रभावित होता है।

ii) महासागरों में तेल उत्प्लवन से..............................मर जाते हैं, ...डूब जाते हैं तथा वनस्पति और जन्तु समूह प्रभावित होता है।

iii) समुद्रों में भारी धातुओं के निम्न संकेंद्रण वाले बहिःस्राव विसर्जित करने से मनुष्यों में इन धातुओं का अधिक संकेंद्रण...............................पोषण रीति वाले समुद्री जीवों में ....व...............................के कारण होता है।

15.6 ध्वनि प्रदूषण

शोर अवांछित या अधिक ऊँचे स्तर की आवाज है। ध्वनि प्रदूषण से न केवल खीझ आती हैं वरन् काफी तेज शोर से बहरापन भी हो सकता है। प्रौद्योगिकी की वृद्धि के फलस्वरूप ध्वनि प्रदूषण भी बढ़ गया है। शोर के मुख्य स्रोत हैं–सड़क यातायात, रेलवे, औद्योगिक काम, निर्माण कार्य, हवाई जहाज, फ़ौजी तोपखाना और गोलाबारूद तथा बिजली के घरेलू उपकरण।

प्रबलता और तारत्व या आवृत्ति के द्वारा हम शोर या ध्वनि से प्रभावित होते हैं। ध्वनि की आकृति चक्रों की संख्या प्रति सैकेंड है जिसे हर्ट्ज (Hertz (Hz)) कहते हैं। उदाहरणस्वरूप एक रेडियो स्टेशन पर प्रसारण के लिए एक निश्चित आवृत्ति का प्रयोग किया जाता है। मानव की श्रवण क्षमता 20 से 1000 की आवृत्ति के परिसर में है। आवाज की प्रबलता को डेसिबल स्केल (decibel scale) में मापा जाता है। ध्वनि की तीव्रता में दस गुना वृद्धि को स्केल पर 10 dB से सूचित किया जाता है। तालिका 15.3 में विभिन्न ध्वनियों को डेसिबल स्केल पर दर्शाया गया है। ध्वनि को ध्वनि स्तर मीटर (sound level meter) द्वारा मापा जाता है। मूल रूप से ध्वनि स्तर मीटर उत्तम कोटि का माइक्रोफ़ोन तथा प्रवर्धक (amplifier) का बना होता है। इसमें एक अंशशोधित क्षीणीकृत (calibrated attenuator) वेट्टिंग नेटवर्क (weighting network) और अंशशोधित मीटर होता जो 40 से 120 के परिसर तक ध्वनि स्तर को प्रदर्शित करता है।

15.6.1 ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव

ध्वनि निम्नलिखित तीन प्रकार से हमें प्रभावित कर सकती है।

i) बातचीत में बाधक,

ii) श्रवण में ह्रास,

iii) स्वास्थ्य तथा व्यवहार पर कुप्रभाव।

शोर एक क्षोभक (irritant) है जिसके कारण मानसिक तथा शरीर क्रियात्मक परिवर्तन होते हैं, तथा मनोविकार (psychological) सम्बन्धित अनुक्रियाएं उत्तेजित होती हैं और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शोर से झल्लाहट, खीज, बेचैनी, थकावट तथा मतली भी आ सकती है। लगातार अत्यधिक शोर में रहने से एकाग्रता में असमर्थता, अनिद्रा, सिरदर्द, रक्त धमनियों में अवरोध, हृदय की गति में परिवर्तन, रक्तचाप में वृद्धि, पीतचर्म, तथा स्नायविक गड़बड़ (nervous breakdown) हो सकती हैं। ऊच्चे स्तर की ध्वनि से अस्थाई श्रवण ह्रास और लगातार दीर्घकाल तक रहने से स्थाई क्षति हो जाती है। बढ़ती उम्र के साथ महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में श्रवण शक्ति में अधिक ह्रास होता है। तत्कालिक विस्फोट से कान के पर्दे फट सकते हैं तथा कान की छोटी हड्डियां विस्थापित हो सकती हैं।

शहर वासियों को उच्च स्तर के शोर में रहना पड़ता है जो धीरे-धीरे उन्हें बहरा बना देता है। कुछ शहरों के विभिन्न स्थानों में अलग-अलग समय पर शोर का स्तर इस प्रकार है नई दिल्ली में 28-70 dB, बम्बई में 6-102 dB, राउरकेला तथा अहमदाबाद में औसतन 62 dB तथा विशाखापटनम में कुछ और अधिक है।

तालिका 15.3 : डेसिबल (dB) मांप पर विभिन्न ध्वनियां

ध्वनि की तीव्रता के कारक	ध्वनि स्तर dB	ध्वनि स्रोत	प्रभाव	
			महसूस की गई प्रबलता	कानों को क्षति
10^{18}	180	राकेट इंजन		
10^{17}	170			
10^{16}	160			अभिघातज क्षति
10^{15}	150	उड़ान भरने के समय जेट इंजन	दुखदाई	
10^{14}	140			पीड़ावह श्रेणी परिसर अप्रत्यावर्ती क्षति
10^{13}	130	अधिकतम रिकॉर्ड किया रॉक म्यूज़िक		
10^{12}	120	बिजली की कड़क 1 मील दूर से गाड़ी का हार्न		
10^{11}	110	300 मीटर ऊंचाई पर उड़ता हुआ जेट	असुविधाजनक तीव्र	काफी समय तक उद्‌भासन के बाद क्षति प्रारंभ
10^{10}	100	निर्माण कार्य समाचार पत्र की प्रेस		
10^{9}	90	8 मीटर की दूरी पर मोटर साइकिल, फूड ब्लेंडर	बहुत तेज	
10^{8}	80			
10^{7}	70	वैक्यूम क्लीनर साधारण बातचीत		धीरे धीरे सुनाई कम पड़ना
10^{6}	60	6 मीटर की दूरी पर वातानुकूलन की आवाज़, 30 मीटर की दूरी पर यातायात की धीमी सी आवाज़	सीमित रूप से तेज	
10^{5}	50	उठने बैठने का औसत कमरा		
10^{4}	40			
10^{3}	30	पुस्तकालय धीमी फुसफुसाहट	शांत	
10^{2}	20	प्रसारण कक्ष	बहुत शांत	
10	10	पत्ते की सरसराहट	मुश्किल से सुनाई देने वाली	
0	0	सुनाई देने की न्यूनतम सीमा रेखा		

तालिका 15.3 : डेसिबल स्केल पर विभिन्न ध्वनियाँ

स्रोत : Turk et al (1968) Environmental Science, Philadelphia Saunders P 523 के चित्र से संकलित

ध्वनि प्रदूषण तथा सुपर सॉनिक जेट (supersonic jet) से होने वाली क्षति का भी अध्ययन किया गया है। सुपर सॉनिक जेट, एक यात्री विमान (passenger aircraft) है जो ऊँची तुंगता (high altitude) पर ध्वनि से भी तेज चलता है। यह कहा गया है कि एक सुपर सॉनिक जेट की **दौड़-पथ** (run-way) पर आवाज़ पचास साधारण जेटों के एक साथ उड़ान भरने की आवाज़ से अधिक तीव्र होगी। सुपर सॉनिक जेट जैसे ही हवा में गुजरता है, यह बहुत ही अधिक ऊर्जा वाली कोण के आकार की वेक (cone shaped wake) बनाता है जो इसके पीछे-पीछे चलती है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा समर्थित परिवेशी ध्वनि स्तर डेसिबल स्केल में निम्न हैं

	दिन	रात्रि
औद्योगिक	75	70
वाणिज्यिक	65	55
आवासीय	55	45
शांत क्षेत्र	50	40

सॉनिक बूम (sonic boom) की आवाज कड़कती बिजली के समान लगती है। उत्पन्न ऊर्जा की मात्रानुसार यह खिड़कियों को खड़खड़ा सकती है या तोड़ सकती है। कुछ अधिक तीव्र दशाओं में इसकी ध्वनि भवनों को नष्ट कर सकती है। यह प्रकट है कि इस प्रकार की तेज ध्वनि निद्रा, बातचीत व दृश्य अभिग्रहण में बाधा डालती होगी। इसके अलावा ऐसे जेट जब मकानों के ऊपर से गुजरते हैं तो लोग उसकी आवाज से भौचक्के रह जाते हैं।

भारत में ध्वनि नियंत्रित करने पर अपेक्षाकृत बहुत कम ध्यान दिया गया है। यह आवश्यक है कि सरकार बढ़ते हुए ध्वनि प्रदूषण को गंभीरता से ले। देश में इस प्रदूषण का मूल्यांकन करें तथा श्रमिकों को ऊँची ध्वनि के खतरों से बचाने के लिए समुचित उपाय लागू करें। ध्वनि प्रदूषण का मूल्यांकन करते समय एक समस्या जो सामने आती है वह यह कि स्पष्ट रूप से अन्तर करना कठिन हो जाता है कि लोगों में श्रवण ह्रास बढ़ती हुई उम्र के कारण है या वातावरण या व्यवसाय में ध्वनि प्रदूषण के कारण है। कठिनाइयां नियोक्ताओं के भय के कारण भी होती हैं क्योंकि उन्हें डर होता है कि इस समस्या कि जाँच पड़ताल से मुकदमेबाजी तथा कानूनी कार्यवाही को बढ़ावा मिलेगा। कभी-कभी श्रम संगठनों के रवैये से भी समस्याएं उठ खड़ी होती हैं।

ध्वनि पर नियंत्रण रखने के मुख्य तरीके हैं :

i) स्रोत को कम करना ii) प्रसारण के पक्ष में रुकावट तथा iii) ग्राही की रक्षा करना। स्पष्टत: इस दिशा में सबसे सीधा सादा रास्ता है ध्वनि उत्पन्न करने वाले स्रोतों को कम करना जैसे कि आवासीय क्षेत्रों में चलने वाली मोटर, ट्रकों, मोटर साइकिलों, बसों इत्यादि को कानून द्वारा कम करना। तथापि इस प्रकार के समाधानों की सीमाएं प्रत्यक्ष हैं। यदि इस प्रकार के स्रोत को कम करने में सफलता नहीं मिलती तो कम से कम ध्वनि प्रदूषण को कम करने के प्रयत्न तो अवश्य ही किये जा सकते हैं। वाहनों के पहियों में अच्छी प्रकार तेल का स्नेहक (oiling of wheels) लगाना, पुरानी मशीनरी के ढांचों को बदलना इत्यादि। प्रौद्योगिकी अभिगम का बदलाव करने में कोई असुविधा नहीं होनी चाहिए। श्रम की कार्य प्रणाली तथा समय सारणी में भी परिवर्तन किया जा सकता है जिससे उस क्षेत्र में रहने वाले तथा काम करने वाले लोगों की परेशानी को कम किया जा सके।

15.7 विकिरण प्रदूषण

रेडियो धर्मी अपशिष्टों से भयंकर प्रदूषण होता है परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम उसे आँखों या इन्द्रियों से नहीं देख पाते हैं। तथ्यों द्वारा भी उनका पता लगाना कठिन होता है जब तक वे ऐसे संकेन्द्रण में न हो कि मनुष्यों पर उनके तीव्र प्रभाव सामने आये। यह बिना वजन वाले अपशिष्ट हैं। रेडियो धर्मी प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं :

i) नाभिकीय परीक्षण, ii) परमाणु विस्फोट, iii) नाभिकीय संयंत्रों के निकास और उनमें दुर्घटना और iv) रेडियो आइसोटोपों का चिकित्सकीय या औद्योगिक उपयोग।

विश्व के जीवाश्म ईंधनों का भण्डार सीमित है। इस कारण अधिक से अधिक नाभिकीय विभाजन (nuclear fission) रिऐक्टर लगाये जा रहे हैं क्योंकि वह शक्ति उत्पन्न करने के परिशुद्ध व सस्ते स्रोत हैं परन्तु उनके साथ दो समस्याएं जुड़ी हैं–i) उनमें अधिक मात्रा में रेडियो धर्मी अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं तथा ii) उनमें दुर्घटना होने का खतरा रहता है।

यूरेनियम ^{235} का एक ग्राम, 81900 मिलियन जूल के बराबर होता है जो 2.7 मीट्रिक टन कोयला या 13.7 बैरेल अपरिष्कृत तेल से प्राप्त ऊर्जा के बराबर होता है।

शायद आपने सुना हो कि सन् 1986 में सोवियत रूस के चार चेरनोबिल (Chernobyl) रिऐक्टरों में से एक परीक्षण करते समय दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। परीक्षण के समय सुरक्षा व्यवस्था बन्द कर दी गई थी। अचानक ईंधन रॉड (fuel rod) बहुत गर्म होकर फट गई। शीतल करने वाली व्यवस्था का पानी भाप बन गया। भाप की धातु ईंधन के साथ प्रतिक्रिया द्वारा हाइड्रोजन तथा कुप्रस्फोटक गैसें बन गईं। इनसे रिऐक्टर की लगभग 1000 टन वजन की छत उड़ गई।

यूरोपीय देशों में इन रेडियो धर्मी अपशिष्टों के काले बादल फैल गए। इस सम्पर्क के कारण 31 लोगों की 6 महीनों के अंदर मृत्यु हो गई तथा आने वाले वर्षों में लाखों लोगों को कैंसर होने की संभावना की गई। आशंका है कि इस विकिरण का बहुत दिनों तक पड़ने वाला प्रभाव हिरोशिमा और नागासाकी के पीड़ितों जैसा ही होगा। परमाणु रिऐक्टर के आसपास का लगभग 30 किलोमीटर क्षेत्र खाली करा दिया गया है।

दुर्घटना से पूर्व अमरीका, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, जापान तथा सोवियत संघ में संसार की 72% नाभिकीय शक्ति उत्पन्न करने की क्षमता थी। परन्तु इस दुर्घटना के बाद अनेकों देशों ने इस ऊर्जा स्रोत को विकसित न करने तथा चालू रिऐक्टरों को बंद करने का इरादा कर लिया है।

हमारे ग्रह का अधिक नाभिकीय प्रदूषित (nuclear polluted) स्थान 40 हेक्टेयर तक फैला पानी का निकाय कराचय (Karachay) झील है, जो सोवियत संघ में, मास्को के 1450 किलोमीटर पूर्व तक फैली हुई है। इसमें सन् 1951 से परमाणु अपशिष्ट फेंके जा रहे थे और यह तब तक फेंके गये जब तक झील में रेडियो सक्रियता 120 मिलियन क्यूरी नहीं हो गई। झील के किनारे निकास पाइप के पास रेडियो सक्रियता की दर 600 रैम प्रति घंटा है। कोई व्यक्ति अगर इतने उच्च उद्भासन में एक घंटा ही रह जाये तो कुछ ही सप्ताह में उसकी मृत्यु हो सकती है।

हाल ही में मानव ने जैव भू-रासायनिक चक्र (biogeochemical cycle) में कुछ बिल्कुल नए रेडियो धर्मी पदार्थ जोड़ने प्रारम्भ कर दिये हैं। उदाहरणस्वरूप जब नाभिकीय रिऐक्टरों अथवा नाभिकीय अस्त्र परीक्षणों में यूरेनियम विखंडित होता है तो रेडियो धर्मी न्यूक्लाइड्स (nucleides) बनते हैं जिन्हें विखंडन उत्पाद (fission products) कहते हैं। यह विखंडन उत्पाद मुख्य रूप से स्ट्रॉन्शियम तथा सीज़ियम होते हैं जो जीवन के लिए आवश्यक नहीं है। इनका आहार शृंखला तथा बाद में बायोमास यानि जैव मात्रा में समावेश हो जाता है। मनुष्यों में स्ट्रॉन्शियम अस्थिमज्जा के निकट सांद्रित होता है और सफेद रक्त कणिकाओं (white blood corpuscles) यानि श्वेताणुओं के बनने में बाधा डाल सकता है। जीवों में रेडियो धर्मी पदार्थों का जैव संचयन (bioaccumulation) जैव मात्रा में पर्यावरण की तुलना में बहुत अधिक बढ़ जाता है। उदाहरणस्वरूप अमरीका में कोलम्बिया नदी के किनारे स्थित रियेक्टर से बहुत कम मात्रा में रेडियो धर्मी फ़ॉस्फ़ोरस निकलता है परन्तु जंगली हँस (wild geese) जिन्होंने नदी से आहार लिया था उनके अंडों में इसकी मात्रा नदी के जल से हजारों गुना अधिक थी।

मानव निर्मित रेडियो धर्मी पदार्थों की पर्यावरण में नियति तथा आहार शृंखला में उनकी गतिविधियां पारिस्थितिकीय वैज्ञानिकों के साथ-साथ आम जनता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

15.8 आर्थिक पहलू तथा प्रदूषण नियंत्रण

हमने देखा कि प्रदूषण, मानव स्वास्थ्य, वनस्पति, खेतों की उपज, पेड़ों, मत्स्य उद्योग, वनों, भवनों, पुरातात्विक स्मारकों तथा पर्यटन को भी प्रभावित करता है। इन दुष्प्रभावों को ठोस मौद्रिक रूप में भी आंका जा सकता है। अनुमान है कि प्रदूषण से होने वाली अनुमानित क्षति कुल राष्ट्रीय सकल उत्पाद का अमरीका में 2%, कनाडा में 1%, इंग्लैंड में 3% तथा जर्मनी में 6% है। विकासशील देशों के लिए इस प्रकार के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

प्रदूषण का नियंत्रण दो स्तरों पर हो सकता है—
i) प्रौद्योगिकी बदलाव तथा, ii) कानूनी कार्यवाही।

वायु प्रदूषण को, थैले के निस्यंदकों (bag filters), स्थिर विद्युत अवक्षेपकों (electrostatic precipitators) तथा चक्रवात संग्रहियों (cyclone collectors) आदि के प्रयोग द्वारा कम किया जा सकता है (चित्र 15.7)। ये उत्सर्जित गैसों से बड़े और छोटे कणिकीय पदार्थों को अलग करते हैं। पानी को शुद्ध करने के लिए वाहित मल उपचार संयंत्र का प्रयोग किया जा सकता है। इन प्रौद्योगिकियों के लिए बहुत बड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है। फिर भी खर्च और लाभ विश्लेषण कर प्रदूषण से हानि तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग से लाभ को यदि विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से देखें तो खर्च किये गये धन की अपेक्षा दुगना लाभ होता है।

हमारे देश के पास संसाधन बहुत कम हैं इसलिए एक अधिक अभिप्रेत युक्ति है अपशिष्ट कम करके प्रदूषण रोकना। अध्ययनों से पता चलता है कि औद्योगिक क्षेत्रों के अपशिष्टों में कमी करना आर्थिक रूप से बहुत अधिक लाभप्रद होता है तथा इससे प्रदूषण रोकने में मदद मिलती है।

प्रभावी कानून द्वारा भी प्रदूषण पर नियंत्रण करना चाहिए। भारत के संविधान में पर्यावरण संबंधी कानून बनाने का प्रावधान है। जल प्रदूषण को नियंत्रित करने तथा रोकने के लिए अमरीका, जापान, जर्मनी तथा अन्य देशों की भांति भारत में भी बोधशील अधिनियम बनाए गए हैं। केन्द्रीय तथा राज्य बोर्डों द्वारा जल अधिनियम सन् 1974 में तथा वायु अधिनियम सन् 1981 से लागू किये जा रहे हैं। केन्द्रीय बोर्ड, देश में जल तथा वायु प्रदूषण को प्रभावी ढंग से रोकने, नियंत्रण या घटाने के लिए नियामक मानक तथा नीतियों को समन्वित करता है या योजनाएं लागू

करता है। यह संघ शासित प्रदेशों में प्रदूषण नियंत्रण के कार्यकलापों को भी देखता है। वायु अधिनियम मोटरगाड़ियों तथा औद्योगिक संयंत्रों से होने वाले रेचन (exhaust) को भी व्यवस्थित तथा नियंत्रित करता है। राज्य सरकार कुछ क्षेत्रों को वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र घोषित कर सकती है तथा ऐसे क्षेत्रों में राज्य की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना उद्योग नहीं लगाये जा सकते हैं। जल अधिनियम विषैली धातुओं, खतरनाक रसायनों तथा अन्य प्रदूषकों के जल प्रवाहों, नदियों तथा कुंओं में फेंकने का निषेध करता है। वाहित मल तथा औद्योगिक बहिःस्राव को पानी में फेंकने से पहले राज्य बोर्ड की अनुमति लेना आवश्यक है।

इन कानूनी उपायों के अतिरिक्त परिवेशी वायु (ambient air) की गुणवत्ता मॉनीटर करने के लिए 1984 में एक राष्ट्रव्यापी तंत्र तैयार किया गया। अब 24 नगरों में 85 स्टेशन हैं। नदियों की गुणवत्ता मॉनीटर करने के लिए लगभग 170 स्टेशन बनाए गये हैं। केन्द्रीय बोर्ड तथा सागर विकास विभाग ने सम्मलित रूप से, जल की गुणवत्ता मानकों के लिए भारतीय तट के साथ-साथ 173 परिवीक्षक (monitoring) स्टेशन निर्धारित किए हैं। इसी प्रकार 1968 में पीड़कनाशियों के आयात, विनिर्माण, बिक्री, इधर उधर ले जाने, प्रयोग तथा वितरण को व्यवस्थित करने के लिए पीड़कनाशी नियंत्रण अधिनियम लागू किया गया। परमाणु संस्थापनों को व्यवस्थित करने तथा परमाणु अपशिष्टों के निपटान पर नियंत्रण रखने के लिए भी प्रावधान है।

इन कानूनी कार्यकलापों के बावजूद भी यह रिपोर्ट है कि कुछ औद्योगिक क्षेत्रों तथा बड़े-बड़े भारतीय नगरों में खासतौर से दिल्ली में वायु प्रदूषण पूर्ण विश्व के कई क्षेत्रों से अधिक है। हमारी झीलें, नदियां और नाले अभी भी वाहित मल तथा औद्योगिक अपशिष्टों से भरे रहते हैं। प्रदूषण की समस्या का और भी अधिक गंभीरता से समाधान करने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न 5

क) लगातार शोर के सम्पर्क में रहने से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले तीन मुख्य प्रभावों को लिखिए।

....

....

ख) प्रदूषण से होने वाली क्षति की सूची बनायें तथा उसमें शामिल मानव (human) तथा बाह्य (external) मूल क्षति निर्धारित करें।

....

....

....

15.9 सारांश

इस इकाई में आपने पढ़ा कि

- जीवाश्म ईंधन, औद्योगिक क्रियाओं, आधुनिक कृषि तथा मोटर परिवहन के कारण वायु प्रदूषक SO_2NO_x, CO धूल तथा हाइड्रोकार्बनों के अधिकाधिक निकास से, दिन पर दिन वायु की गुणवत्ता कम होती जा रही है। इन प्रदूषकों से वायुमंडल में ओज़ोन तथा PAN बनते हैं।
- धूल, SO_2 NO_x CO, O_3 तथा PAN मानव स्वास्थ्य, वनस्पति, पशुओं, पारितंत्रों, पदार्थों तथा मौसम पर बुरा प्रभाव डालते हैं। SO_2 तथा NO_x से अम्ल वर्षा होती है जो स्थलीय तथा जलीय पारितंत्रों को नष्ट कर सकती है। मौसम सम्बन्धी घटक किसी स्रोत से निकले हुए प्रदूषक को दूर-दूर तक फैलाते हैं।
- CFCs के कारण पिछले दशक में समतापमंडल में ओज़ोन की पर्त पतली हो गई है। ग्रीन हाउस गैसें बढ़ने से पूरे विश्व में गर्मी बढ़ने की संभावना की जाती है। वायुमंडल में उनकी अधिक वृद्धि चिन्ता का विषय है।
- घरेलू और औद्योगिक बहिःस्राव खेतों और कूड़ा फेंकने के स्थानों में भूपृष्ठ अपवाह तथा औद्योगिक इकाइयों से अपशिष्ट ऊष्मा के बहुत अधिक निकलने से संसार भर के जल संसाधनों में प्रदूषण बढ़ रहा है। वाहित मल तथा बहिःस्राव जिसमें पोषक तत्व होते हैं, पानी का डी.ओ. कम कर देते हैं, और बी.ओ.डी. बढ़ा देते हैं तथा जलीय पारितंत्रों को अस्तव्यस्त कर देते हैं। रोगजनक जीवों के कारण पानी से होने वाले रोग फैलते हैं।

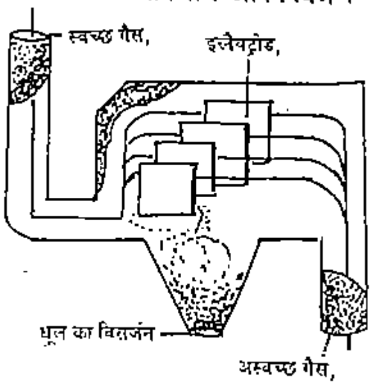

क) स्थिर विद्युत अवक्षेपक (electrostatic precipitator) : कणिकीय पदार्थ विद्युत से चार्ज किये जाते हैं जिससे उनका अपवहन विद्युत भू संपर्कित दीवार की तरफ हो जाता है जहाँ से उन्हें आसानी से हटाया जा सकता है।

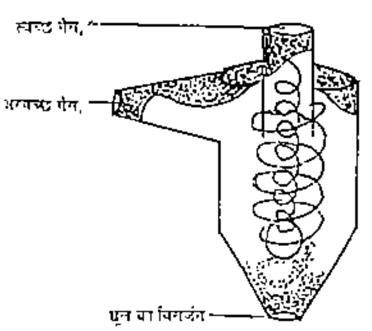

ख) चक्रवात पृथक्करी (cyclone separator) : चक्रीय गति से धूल के कण बाहर फेंक दिये जाते हैं।

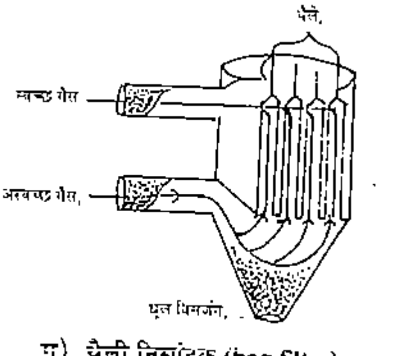

ग) थैली निस्पंदक (bag filter) : कणिकीय प्रदूषक गैसें अलग हो जाती हैं क्योंकि वह थैली से बाहर नहीं निकल सकती है।

चित्र 15.7 : निकास गैसों के कणिकीय पदार्थों को निकालने के लिए प्रयुक्त उपाय।

- विषैली धातुएं तथा पीड़कनाशी, जलीय जीवों को विषाक्त कर देते हैं तथा उच्चतर पोषण रीति के जीवों को जैव आवर्धन के कारण प्रभावित करते हैं। भौमजल स्रोत नाइट्रेट, फ़्लुओराइड, विषैली धातुओं तथा अन्य हानिकारक रसायनों से प्रदूषित होते जा रहे हैं। समुद्रीय प्रदूषण से समुद्रीय जीव-जंतु, तथा मत्स्य उद्योग खतरे में पड़ जाते हैं।
- भूमि पर विसर्जित किये गए ठोस अपशिष्ट तथा तरल वहिःस्राव, मृदा की उर्वरता, मानव स्वास्थ्य तथा जलस्रोतों को प्रभावित करते हैं।
- उच्च स्तर के शोर से शारीरिक तथा मानसिक समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं।
- परमाणु शक्ति संयंत्रों से रेडियोधर्मी तथा रेडियोधर्मी अपशिष्ट मानव के लिए घातक हैं। उसके परिणाम आगे आने वाली पीढ़ियों पर भी पड़ने की आशंका है।
- प्रदूषण नियंत्रित करना आर्थिक रूप से लाभदायक है।
- उचित प्रौद्योगिकी तथा प्रभावी विधान द्वारा प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सकता है।

15.10 अंत में कुछ प्रश्न

1) आप अपने पर्यावरण को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? उन पदार्थों की सूची बनाएं जो सम्भवतः आपके कारण पर्यावरण में जुड़ जाती हैं।

....

....

....

2) उन तरीकों की चर्चा कीजिए जिनके द्वारा भारी धातुओं के खनन प्रचालन (mine tailing) द्वारा उत्पन्न अवशेष पर्यावरण में इधर-उधर बिखर जाते हैं।

....

....

....

....

....

3) अम्ल वर्षण के पारिस्थितिकी प्रभावों की सूची बनाएं।

....

....

....

....

....

4) निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक-एक शब्द बताएं :

i) वह पदार्थ जिसकी जैव क्रियाओं के परिणामस्वरूप पर्यावरण में विघटन हो सकता है।

ii) पोषकों से संवर्धन के कारण जलाशय के जल की गुणवत्ता का ह्रास होना।

iii) किसी आहार श्रृंखला के अंदर अधिक सांद्रण में वृद्धि।

iv) दो या अधिक प्रदूषकों का मिला जुला प्रभाव।

v) प्रदूषण के प्रति बहुत अधिक संवेदनशील पौधे, जिनका प्रयोग, वायु प्रदूषण का स्तर दिखाने के लिए किया जा सकता है।

vi) जैव तंत्रों में आविषों का सांद्रण।

vii) नीचे की ठंडी और ऊपर की गर्म वायु की पर्त के बीच प्रदूषकों का फंसना।

viii) फ्लुओराइड के बहुत अधिक अंतर्ग्रहण द्वारा हड्डियों तथा दांतों का असामान्य कैल्सीकरण।

15.11 उत्तर

बोध प्रश्न

1) (क)

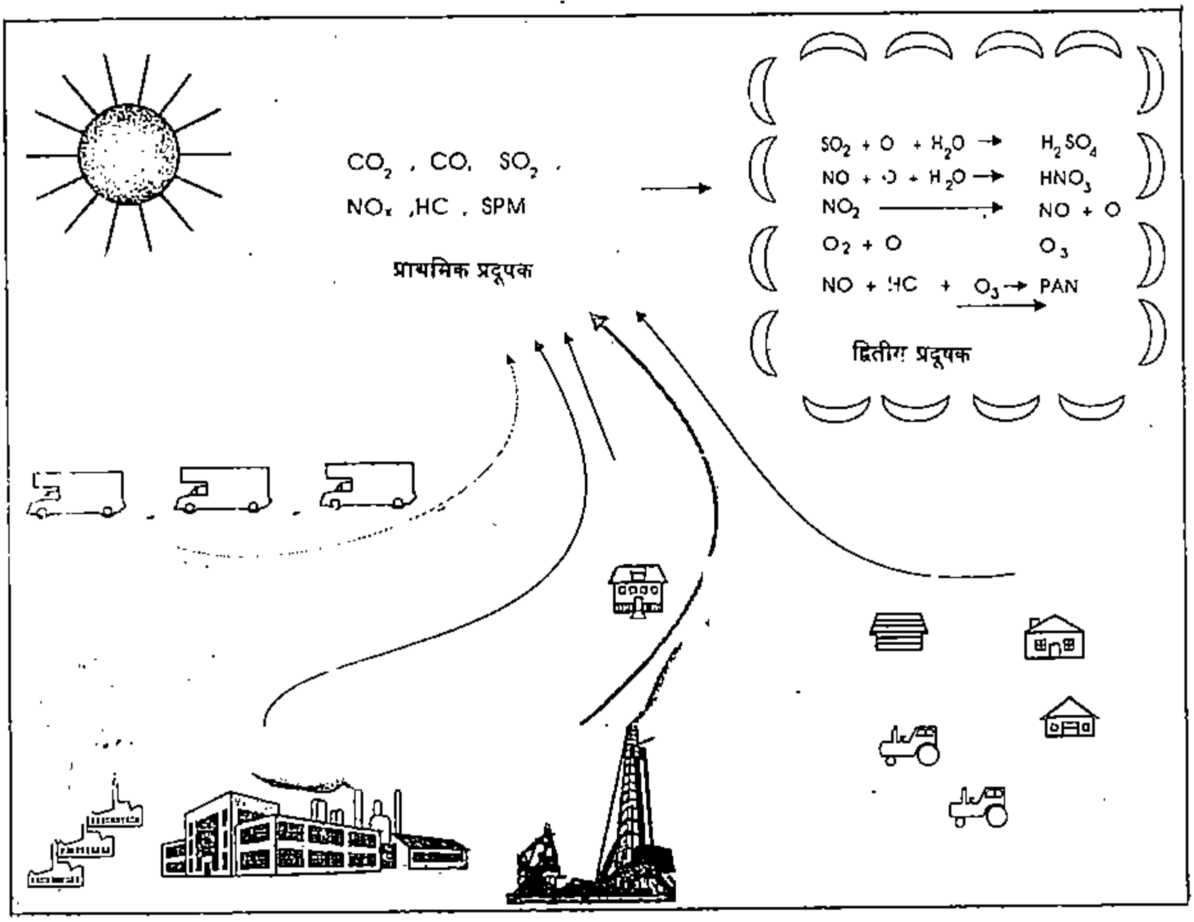

(ख) i) ऊर्जा की खपत में वृद्धि

ii) फसल तथा चरागाह हेतु भूमि प्राप्त करने के लिए वनों और सवाना घास के मैदानों को जलाना।

iii) आधुनिक कृषि के लिए पीड़कनाशियों तथा उर्वरकों का प्रयोग।

iv) मोटर वाहनों का अधिकाधिक प्रयोग

v) गहन औद्योगीकरण।

2) (क) i) कार्बन मॉनोऑक्साइड बनती है।

$$2\,C + O_2 - 2\,CO$$

ii) क्लोरोफ्लूरो कार्बन ऊपरी वायुमंडल में पहुँच जाते हैं तथा ओज़ोन का ऑक्सीजन में अपघटन उत्प्रेरित करके ओज़ोन को नष्ट कर देते हैं। ओज़ोन सूर्य के पराबैंगनी विकिरणों को IR में बदलती है। इसके ह्रास से ओज़ोन का आवरण कम हो जायेगा।

$$Cl + O_3 - ClO + O_2$$

$$\underline{ClO + O - Cl + O_2}$$

$$O_3 + O - 2\,O_2$$

iii) गंधक के जलने से सल्फ़र डाइऑक्साइड बनती है जिसका ऑक्सीकरण होने पर सल्फ़र ट्राइऑक्साइड बनती है। जो वायुमंडलीय नमी के साथ प्रतिक्रिया कर सल्फ़्यूरिक अम्ल बनाती है।

$$S + O_2 - SO_2$$
$$2\,SO_2 + O_2 \rightarrow 2\,SO_3$$

iv) सूर्य की रोशनी में नाइट्रोजन के ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन के साथ प्रतिक्रिया करके ओज़ोन, परॉक्सिएसिल नाइट्रेट (peroxy-acyl nitrate) तथा एल्डिहाइड बनाते हैं।

प्रतिक्रियाओं के लिए पृष्ठ देखें।

(ख)

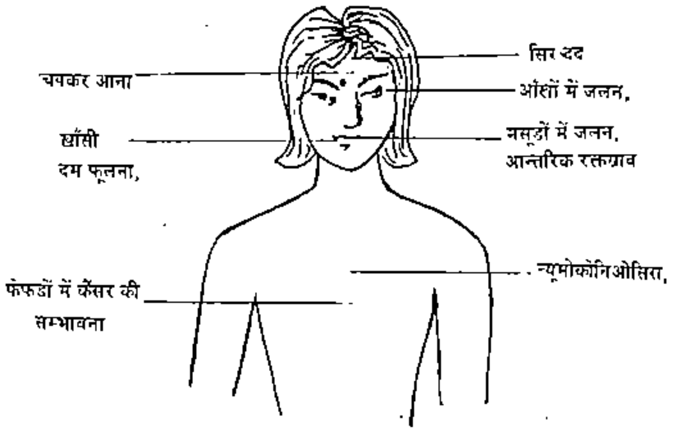

3) (क) **स्रोत :**

i) घरेलू वाहित मल, पशु अपशिष्ट
ii) कृषि से संबंधित अपवाह, खनन, अपमार्जकों में फ़ॉस्फ़ेट
iii) औद्योगिक अपशिष्ट, कवकनाशी
iv) मोटर वाहनों द्वारा तथा औद्योगिक अपशिष्ट
v) कृषि, नाशक कीट नियंत्रण

प्रभाव :

i) टायफ़ायड, हैजा, पेचिश जैसे जलवाहित रोगों का फैलना।

ii) सुपोषण से शैवालों की अत्यधिक वृद्धि तथा जलीय जीवों व मछलियों का नष्ट होना।

iii) मानव तथा जलीय जातियों के लिए बहुत अधिक विषाक्त।

iv) मानव सहित अनेकों जीवों के लिए विषाक्त।

v) कुछ मछलियों—शेलफ़िश, परभक्षी पक्षियों तथा स्तनधारी के लिए हानिकारक

(ख)

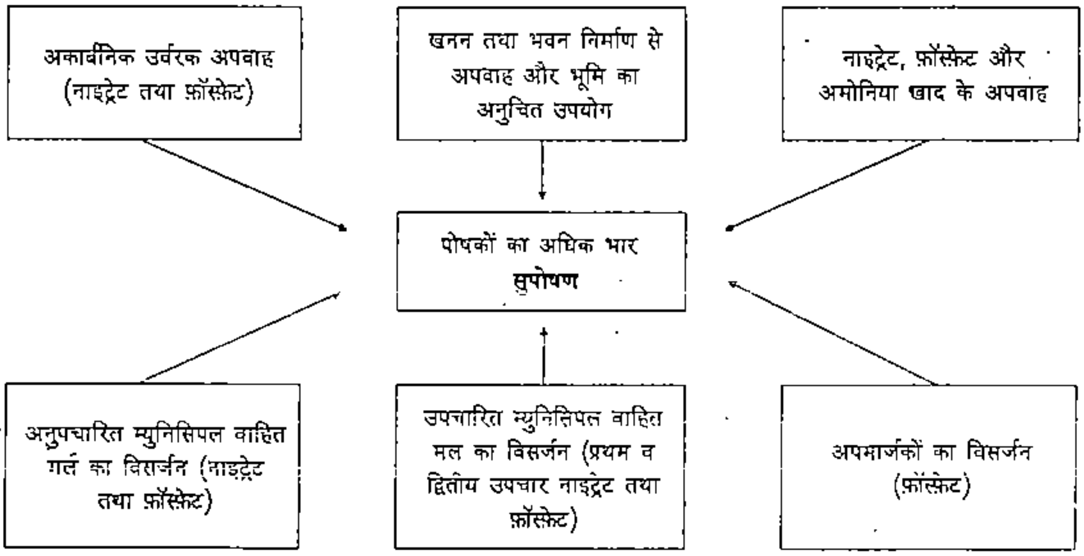

(ग) उच्चतर पोषण रीति पर जैव आवर्धन बढ़ जाएगा।

4) (क) **लुधियाना**—साईकिल तथा गर्म कपड़ों की फैक्टरियों के कारण क्रोमियम, निकल, सीसा, एल्युमिनियम जैसी भारी धातुएं से भौमजल का प्रदूषण।

पाली—कपड़े की छपाई की इकाइयों से रंजक, विरंजक तथा अम्लों का भौमजल में प्रवेश।

(ख) i) मछली, प्रवास, प्रजनन

ii) तलहटी में रहने वाले जीव, समुद्रीय पक्षी।

iii) उच्चतर, जैव संचयन, जैव आवर्धन

5) (क) i) सुनने की संवेदनशीलता में कमी,

ii) स्थाई अथवा अस्थाई श्रवण शक्ति में ह्रास,

iii) हृदय गति में परिवर्तन, रक्त धमनियों में संकीर्णन।

(ख) आप इन्हें इस प्रकार दिखा सकते हैं :

स्वास्थ्य : रोग, दीर्घकालिक प्रभाव, वेतन हानि, मेडिकल बिल वगैरा।

मनोरंजनात्मक हानि : व्यक्तिगत घाटा, व्यवसाय में घाटा—रेस्तरां, पर्यटन होटल आदि।

पदार्थों की क्षति : भवन, साफ़ करने तथा पेंट करने की लागत, जंग लगी मशीनरी तथा उपस्करों की मरम्मत।

कृषि सम्बन्धी क्षति : टिम्बर (timber) का घाटा, मृदा की क्षति, फसल की क्षति तथा उपज का क्षय।

अन्य जीव : मवेशियों का ह्रास, मत्स्य उद्योग में ह्रास।

अंत में कुछ प्रश्न

1) अपने घर में चारों ओर देखिए तथा उन सभी पदार्थों की सूची बनाइए जो आपका परिवार वायु, जल या मृदा में डालते हैं। उदाहरणस्वरूप ईंधन से CO_2, वाहन से NO_x CO, Pb घरेलू बहिःस्राव तथा स्नानघर (शौचालय) के अपशिष्ट आदि।

2) धात्विक यौगिक निम्न प्रकार से तितर-बितर होते हैं :

i) **वायु** : किसी भट्टी के धुएं की चिमनी से निकली हुई राख में से धात्विक यौगिक वायु द्वारा इधर-उधर बिखर जाते हैं। ये उड़कर दूर-दूर तक जा सकते हैं और अंत में पेड़-पौधों या जल पर चिपक जाते हैं।

ii) **वर्षा का जल** : यह छोटे-छोटे कणों को बहाकर ले जाता है जो अंत में नदी में जमा हो जाता है तथा मैदानों को जलमग्न कर देता है।

iii) **निक्षालन** : धात्विक लवण अम्लीय जल में घुल जाते हैं। ये भूमि में रिस सकते हैं तथा भौमजल संसाधनों को प्रदूषित कर सकते हैं।

3) i) वनों, कृषि भूमि, झीलों तथा नदियों के पोषक बजट में परिवर्तन

ii) स्थलीय तथा जलीय परितंत्रों की जातीय विविधता में ह्रास

iii) प्रतिरोधक जातियों का विकास

iv) आर्थिक तथा पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण मृदा के सूक्ष्म जीवों का सक्रिय न होना

v) कृषि फसल की पैदावार में कमी, वनों तथा मत्स्य उद्योग का अंत

vi) भवनों तथा ऐतिहासिक स्मारकों का संक्षारण

4) i) जैव विघटनीय

ii) सुपोषण

iii) जैव आवर्धन

iv) योगवाहिता

v) जैव सूचक

vi) जैव संचयन

vii) वायु मंडल व्युत्क्रमण

viii) फ़्लुओरोसिस

शब्दावली

आपंक (sludge) : पानी की उपचार प्रक्रियाओं द्वारा निकाला गया निलंबित पदार्थ जो गाढ़े पेस्ट के रूप में इक्ट्ठा किया जाता है।

परिवेशी वायु (ambient air) : वायु जिसमें सांस लेते हैं, यानि आस पास की वायु।

वार्षिक औसत वृद्धि दर (annual average growth rate) : वह संख्या है जो दी हुई अवधि में जनसंख्या वृद्धि को प्रारंभिक जनसंख्या से भाग देने पर मिलती है।

श्वसनी शोथ (bronchitis) : शोथ के परिणामस्वरूप फेफड़ों की श्वसनिकाओं में सूजन, अक्सर इससे लगातार खांसी आती है।

बंदी प्रजनन (captive-breeding) : पौधों और जानवरों को चिड़ियाघरों या अन्य नियंत्रित परिस्थितियों में क्रमशः उगाना या जनन क्रिया करवाना तथा तदोपरान्त अनुकूल प्राकृतिक आवासों में छोड़ देना।

जनसांख्यिकीय संक्रमण (demographic transition) : वह अवस्था है जिसमें विकासशील देशों में जन्म-मरण के आंकड़ों में परिवर्तन होता है। जनन क्षमता और उच्च मृत्यु दर में धीरे-धीरे गिरावट आती है और जन्म दर तथा मृत्यु दर बराबर हो जाती है।

जनसांख्यिकी (demography) : समष्टि या जनसंख्या के जन्म और मृत्यु दर संबंधी सांख्यिकी का अध्ययन।

वातस्फीति (emphysema) : फेफड़ों में वायु क्षेत्र के अतिप्रसारण और उच्छेद द्वारा होने वाली फुप्फुस अनियमितता।

संकटापन्न जातियाँ (endangered species) : वह जातियाँ जिनके विलुप्त होने का खतरा है।

तन्तुमयता (fibrosis) : क्षोभक के चारों ओर रेशेदार ऊतक का बनना।

विखंडन (fission) : परमाणु नाभिक का खंडित होना।

जीन पूल (gene pool) : निर्दिष्ट समष्टि में सभी व्यक्तिगत सदस्यों के जीन्स।

आवास द्वीप (habitat island) : असमान आवासों द्वारा घेरा गया प्रतिर्बाधित क्षेत्र।

धूल संबंधी रोग (pneumoconiosis) : वर्षों तक प्रश्वसन द्वारा धूल कणों के प्रवेश से होने वाली फेफड़ों की बीमारी।

पोचर (poach) : जो वन्य जीवन का अवैध रूप से शिकार कर उनकी तस्करी करते हैं।

प्राकृतिक वृद्धि दर (rate of natural increase) : अपरिपक्व जन्म और अपरिपक्व मृत्यु दर में अंतर।

प्रतिस्थापन स्तर (replacement level) : कुल जनन क्षमता दर का स्तर जो यदि किसी पीढ़ी में अपरिवर्तनीय रहता है तो जनसंख्या में वृद्धि नहीं होगी।

कुल जननक्षमता दर (total fertility rate) : यदि कोई स्त्री अपनी प्रजनन अवधि (15-49 वर्षों) के दौरान प्रचलित जनन क्षमता स्वरूप में है तो उसके द्वारा पैदा किए जा सकने वाले बच्चों की संख्या।

शहरीकरण (urbanisation) : नगरों की ओर जनसंख्या की बढ़ती हुई एकाग्रता/केंद्रीकरण और शहरी पद्धति के संगठन के अनुसार भूमि के प्रयोग में परिवर्तन।

कॉलीफार्म जीवाणु (coliform-bacteria) : ग्राम वर्ण अग्राही स्पोर न बनने वाले बेसिलस, जो आमतौर पर मनुष्यों और जंतुओं की आंतों में पाये जाते हैं। कॉलीफार्म जीवाणु किण्वन द्वारा लैक्टोज़ को अम्ल और गैस में बदल देते हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

The State of India's Environment : The First Citizen's Report. Third Edition 1987. Centre for Science and Environment, New Delhi.

The State of India's Environment, 1984-85, The Second Citizen's Report. 1986. Centre for Science and Environment, New Delhi.

The Wrath of Nature : The Impact of Environmental Destruction on Floods and Droughts. Centre for Science and Environment, New Delhi.

Environmental Concerns and Strategies, T.N. Khoshoo, 1988. Ashish Publishing House, New Delhi.

Environmental Protection : Problems, Policy, Administration, Law. Deep and Deep Publications, New Delhi.

प्रिय छात्र/छात्रा,

इस पाठ्यक्रम के बारे में आपकी राय जानने के लिए हमने यह प्रश्नावली तैयार की है, जो इसी खंड के लिए है। आपके उत्तर हमें पाठ्यक्रम को सुधारने में मदद करेंगे। अतः आपसे अनुरोध है कि आप शीघ्र ही हमें यह प्रश्नावली भर कर भेजें।

प्रश्नावली

एल.एस.ई.-02
खण्ड 4

नामांकन सं. | | | | | | | | | |

1. इकाइयों को पढ़ने में आपको कितने घंटे लगे?

इकाई सं.	13	14	15
कुल घंटे			

2. इस खंड से संबंधित कार्य को करने के लिए आपको (लगभग) कितने घंटे लगे?

सत्रीय कार्य सं.		
कुल घंटे		

3. हमारे विचार से आपके सामने 4 प्रकार की कठिनाइयाँ आई होंगी, उन्हें निम्नलिखित तालिका में दिया गया है। उपयुक्त कॉलमों में कृपया अपनी कठिनाई पर (√) का निशान लगाइए और सही पृष्ठ संख्या लिखिए।

पृष्ठ सं. तथा लाईन सं.	कठिनाइयों के प्रकार			
	प्रस्तुतीकरण स्पष्ट नहीं है	भाषा कठिन है	चित्र स्पष्ट नहीं है	शब्दावली समझाई नहीं गई है

4. हमारा विचार है कि बोध प्रश्नों और अंत में दिये गये प्रश्नों में आपको कुछ कठिनाई हुई होगी। निम्नलिखित तालिका में हमने संभावित कठिनाइयां दी हैं। उपयुक्त कॉलमों में संबंधित इकाइयाँ और प्रश्न संख्या देते हुए अपनी कठिनाइयों पर सही (√) का निशान लगाइए।

इकाई संख्या	बोध प्रश्न सख्या	अंत में दी गई प्रश्न संख्या	कठिनाई का प्रकार			
			प्रश्न स्पष्ट नहीं है	दी गई जानकारी के आधार पर उत्तर नहीं दिया जा सकता	इकाई के अंत में दिया गया उत्तर स्पष्ट नहीं है	दिया गया उत्तर पर्याप्त नहीं है

5. क्या सभी कठिन पारिभाषिक शब्दों को शब्दावली में दिया गया है? यदि नहीं तो कृपया नीचे दी गई जगह में उन शब्दों को लिखिये।

6. अन्य सुझाव

सेवा में,

पाठ्यक्रम संयोजक, एल.एस.ई.-02, पारिस्थितिकी
विज्ञान विद्यापीठ,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068